विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) द्वारा प्रायोजित एवं वर्तमान में
राष्ट्रीय परीक्षा एजेन्सी (NTA) द्वारा आयोजित –

- राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा (NET) एवं कनिष्ठ अनुसन्धान अध्येतावृत्ति (JRF) एवं महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में लेक्चररशिप हेतु

प्राख्याता

NTA, UGC-NET/JRF

संस्कृतम् (कोड-25)

प्रश्नपत्रम्-II, III

सम्पादक
सर्वज्ञभूषण

व्याख्यात्री
अर्पिता त्रिपाठी
सुमन सिंह

• **प्रकाशनाधिकारी संस्था**
संस्कृतगङ्गा (पञ्जीकृत)
59, मोरी, दारागञ्ज, प्रयागराज
(कोतवाली दारागञ्ज के आगे, गङ्गाकिनारे संकटमोचन छोटे हनुमान् मन्दिर के पास), Mb. : 9839852033
email-Sanskritganga@gmail.com

• **प्रकाशन सहयोग**
यूनिवर्सल बुक्स
अल्लापुर, प्रयागराज

• मुख्यवितरक
राजू पुस्तक केन्द्र
अल्लापुर, प्रयागराज (उत्तर प्रदेश)
मो० 9453460552, www.bookpaper.in

• पुस्तकें डाक द्वारा भी आर्डर कर सकते हैं–
Mob. : 8004545095
8004545096

• **अक्षर संयोजक- नितिन कुमार, संदीप कुमार**

• **पृष्ठ विन्यास- ब्रह्मानन्द मिश्र**

• प्रथमसंस्करण – 'शिक्षक दिवस'
05 सितम्बर - 2020

• **मूल्य – ₹240/-** (दो सौ चालीस रुपये मात्र)

पुस्तक प्राप्ति के स्थान

संस्कृतगङ्गा उवाच

प्रियसंस्कृतमित्राणि!

नमः संस्कृताय।

- संस्कृतगङ्गा दारागञ्ज प्रयागराज की प्रस्तुति के रूप में **NTA** (राष्ट्रीय परीक्षा एजेन्सी) द्वारा आयोजित **UGC-NET/JRF** (संस्कृत- 25 कोड) परीक्षा हेतु **'प्राख्याता'** नाम से यह व्याख्यात्मक हल संस्कृतमित्रों की सेवा में प्रस्तुत है। पुस्तक का यह नाम **'आख्यातोपयोगे'** सूत्र से प्रेरित है।
- इस पुस्तक में जून 2015 से लेकर दिसम्बर 2019 तक के कुल **आठ प्रश्नपत्रों से लगभग 700 प्रश्नों** की व्याख्या की गयी है। सभी प्रश्नों के सही उत्तर के साथ-साथ प्रामाणिक पुस्तकों से स्रोत भी लिखा गया है।
- सभी प्रश्नों के चारों विकल्पों की व्याख्या की गयी है, जिससे किसी भी प्रश्न का पूरा कॉन्सेप्ट आपको समझ में आयेगा।
- उन सभी संस्कृतमित्रों को हार्दिक धन्यवाद जिन्होंने इन पुस्तक में व्याख्याकार्य को पूर्ण किया। कुछ लोगों ने प्रूफ संशोधन, स्रोतान्वेषण, टाइपिंग, प्रकाशन आदि कार्यों में संस्कृतगङ्गा का मनसा वाचा कर्मणा सहयोग किया, जिनमें सत्यप्रकाश साहू, शंकरदत्त त्रिपाठी, श्यामकिशोर मिश्र, राजेश तिवारी, अभिनेष पाल, कमलेश तिवारी, आशुतोष शुक्ल, अरुण कुमार पाण्डेय (शोधच्छात्र, गङ्गानाथ झा), अरुण कुमार पाण्डेय 'निर्मोही' संगीता राय, स्वागतम् मौर्य, पूनम दुबे, ज्योतिमा सिंह, प्रतिमा त्रिपाठी, शफीना, बेगम, गायत्री पाण्डेय, रिंकी, राधा आदि मुख्य हैं।
- पुस्तक के व्याख्याकार्य में अर्पिता त्रिपाठी एवं सुमन सिंह का कार्य अत्यन्त सराहनीय रहा, जिन्होंने इस कार्य को सन् 2015 से ही प्रारम्भ किया था........शनैः शनैः यह कार्य पाँच वर्ष बाद **05 सितम्बर 2020 ''शिक्षक दिवस''** के दिन संस्कृत जगत् को पुस्तक रूपी सुमन अर्पित करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ।
- इस पुस्तकीय सामग्री को अपनी टाइपिंग कला द्वारा पुस्तकीय आकार प्रदान करने वाले सन्दीप जी, नितिन जी एवं पुस्तक को बाह्यावरण (कवर पेज) से सुसज्जित करने वाले ब्रह्मानन्द मिश्र एवं हमारे प्रकाशकीय कार्यों के सहयोगी एवं मुख्य वितरक राजू पुस्तक केन्द्र, अल्लापुर प्रयागराज के स्वामी श्री राजकुमार गुप्ता (राजू) जी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।
- यह प्रयास किया गया है कि पुस्तक पूर्णरूपेण शुद्ध हो, फिर भी प्रमाद या अज्ञानवशात् कुत्रचित् मुद्रणदोष या गलत उत्तर या व्याख्या में तथ्यात्मक त्रुटि हो गयी हो तो कृपया हमें इन नम्बरों पर सूचित करें – **9839852033, 8004545095**

संस्कृतगङ्गा, दारागञ्ज, प्रयागराज
05 सितम्बर–2020
शिक्षक दिवस

सम्पादकः
सर्वज्ञभूषणः

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

पाठ्यक्रम

संस्कृत (विषयकोड-25)

इकाई 1

वैदिक साहित्य

वैदिक साहित्य का सामान्य परिचय-

- **वेदों का काल -** मैक्समूलर, ए.वेबर, जैकोबी, बालगंगाधर तिलक, एम.विन्टरनिट्ज, भारतीय परम्परागत विचार,
- **संहिता साहित्य**
- **संवाद सूक्त-** पुरूरवा-उर्वशी (10-95), यम-यमी (10.10), सरमा-पणि (10.108), विश्वामित्र-नदी (3.33)
- **ब्राह्मण साहित्य**
- **आरण्यक साहित्य**
- **वेदांग-** शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष

इकाई 2

वैदिक साहित्य का विशिष्ट अध्ययन

- **निम्नलिखित सूक्तों का अध्ययन -**
- **ऋग्वेद -** अग्नि (1.1), वरुण (1.25), सूर्य (1.115), इन्द्र (2.12), उषस् (3.61), पर्जन्य (5. 83), अक्ष (10.34), ज्ञान (10.71), पुरुष (10.90), हिरण्यगर्भ (10.121), वाक् (10.125), नासदीय (10.129),
- **शुक्लयजुर्वेद -** शिवसंकल्प,अध्याय- 34 (1-6) प्रजापति, अध्याय- 23(1-5) 32वाँ अध्याय भी पढें।
- **अथर्ववेद -** राष्ट्राभिवर्धनम् (1.29), काल (10.53), पृथिवी (12.1)
- **ब्राह्मण साहित्य-** प्रतिपाद्य विषय, विधि एवं उसके प्रकार, अग्निहोत्र, अग्निष्टोम, दर्शपूर्णमास यज्ञ, पञ्चमहायज्ञ, आख्यान (शुनःशेप, वाङ्मनस्)।
- **उपनिषद् साहित्य-** निम्नलिखित उपनिषदों की विषयवस्तु तथा प्रमुख अवधारणाओं का अध्ययन - ईश, कठ, केन, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर।
- **वैदिक व्याकरण निरुक्त एवं वैदिक व्याख्या पद्धति-**
- **ऋक्प्रातिशाख्य-** निम्नलिखित परिभाषाएँ - समानाक्षर, सन्ध्यक्षर, अघोष,सोष्म, स्वरभक्ति, यम, रक्त, संयोग, प्रगृह्य, रिफित।

• **निरुक्त-** (अध्याय 1 तथा 2)
चार पद- नाम विचार, आख्यात विचार, उपसर्गों का अर्थ, निपात की कोटियाँ,

• **निरुक्त अध्ययन के प्रयोजन**

• **निर्वचन के सिद्धान्त**

• **निम्नलिखित शब्दों की व्युत्पत्ति**
आचार्य, वीर, ह्रद, गो, समुद्र, वृत्र, आदित्य, मेघ, वाक्, उदक, नदी, अश्व, अग्नि, जातवेदस्, वैश्वानर, निघण्टु

निरुक्त- (अध्याय 7 दैवत काण्ड)

वैदिक स्वर- उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित ।

वैदिक व्याख्या पद्धति- प्राचीन एवं अर्वाचीन ।

इकाई 3

दर्शन साहित्य

(क) प्रमुख भारतीय दर्शनों का सामान्य परिचय

प्रमाणमीमांसा, तत्त्वमीमांसा, आचारमीमांसा (चार्वाक, जैन, बौद्ध, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा एवं उत्तरमीमांसा के सन्दर्भ में)

इकाई 4

(ख) दर्शन साहित्य का विशिष्ट अध्ययन

- **ईश्वरकृष्ण- सांख्यकारिका-** सत्कार्यवाद, पुरुषस्वरूप, प्रकृतिस्वरूप, सृष्टिक्रम, प्रत्ययसर्ग, कैवल्य
- **सदानन्द, वेदान्तसार-** अनुबन्ध-चतुष्टय, अज्ञान, अध्यारोप-अपवाद, लिंगशरीरोत्पत्ति, पञ्चीकरण, विवर्त महावाक्य, जीवन्मुक्ति ।

- **अन्नंभट्ट, तर्कसंग्रह/ केशव मिश्र, तर्कभाषा-** पदार्थ, कारण, प्रमाण (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द,) प्रामाण्यवाद, प्रमेय ।
- **लौगाक्षिभास्कर-अर्थसंग्रह-**
- **पतंजलि-योगसूत्र-** (व्यासभाष्य) - चित्तभूमि, चित्तवृत्तियाँ, ईश्वर का स्वरूप, योगाङ्ग, समाधि, कैवल्य ।
- **बादरायण-ब्रह्मसूत्र 1.1 (शाङ्करभाष्य)**
- **विश्वनाथपञ्चानन-न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (अनुमानखण्ड)**
- **सर्वदर्शनसंग्रह- जैनमत, बौद्धमत**

इकाई 5

व्याकरण एवं भाषाविज्ञान

- **सामान्य परिचय- निम्नलिखित आचार्यों का परिचय-** पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि, भर्तृहरि, वामनजयादित्य, भट्टोजिदीक्षित, नागेशभट्ट, जैनेन्द्र, कैय्यट,शाकटायन, हेमचन्द्रसूरि, सारस्वतव्याकरणकार।
- **पाणिनीय शिक्षा**
- **भाषाविज्ञान -** भाषा की परिभाषा, भाषा का वर्गीकरण, (आकृतिमूलक एवं पारिवारिक), ध्वनियों का वर्गीकरण, स्पर्श, संघर्षी, अर्धस्वर, स्वर, (संस्कृत ध्वनियों के विशेष सन्दर्भ में), मानवीय ध्वनियन्त्र, ध्वनि परिवर्तन के कारण, ध्वनि नियम (ग्रिम,ग्रासमान,वर्नर), अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ एवं कारण, वाक्य का लक्षण व भेद, भारोपीय परिवार का सामान्य परिचय, वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत में अन्तर, भाषा तथा वाक् में अन्तर, भाषा तथा बोली में अन्तर

इकाई 6

(ख) व्याकरण का विशिष्ट अध्ययन

- **परिभाषाएँ-** संहिता, संयोग,गुण, वृद्धि, प्रातिपदिक, नदी,घि, उपधा,अपृक्त, गति, पद, विभाषा, सवर्ण, टि, प्रगृह्य, सर्वनामस्थान, भ, सर्वनाम, निष्ठा।
- **सन्धि-** अच् सन्धि, हल् सन्धि, विसर्ग सन्धि, (लघुसिद्धान्तकौमुदी के अनुसार)
- **सुबन्त-अजन्त-** राम, सर्व, (तीनों लिंगों में), विश्वपा, हरि, त्रि, (तीनों लिंगों में), सखि, सुधी, गुरु, पितृ, गौ, रमा, मति, नदी, धेनु, मातृ, ज्ञान, वारि, मधु ।
- **हलन्त-** लिह, विश्ववाह, चतुर् (तीनों लिंगों में), इदम् (तीनों लिंगों में), किम् (तीनों लिंगों में), तत् (तीनों लिंगों में), राजन्, मघवन्, पथिन्, विद्वस्, अस्मद्, युष्मद् ।
- **समास-** अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि, द्वन्द्व, (लघुसिद्धान्तकौमुदी के अनुसार)
- **तद्धित-** अपत्यार्थक एवं मत्वर्थीय (सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार)
- **तिङन्त-** भू,एध् ,अद् ,अस् ,हु, दिव् ,षुञ् ,तुद् ,तन् ,कृ, रुध् ,क्रीञ् ,चुर्
- **प्रत्ययान्त-** णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त, यङ्लुगन्त, नामधातु।
- **कृदन्त-** तव्य/तव्यत्, अनीयर्, यत्, ण्यत्, क्यप्, शतृ, शानच्, क्त्वा, क्तवतु, तुमुन्, णमुल् ।
- **स्त्रीप्रत्यय-** लघुसिद्धान्तकौमुदी के अनुसार
- **कारकप्रकरण-** सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार
- **परस्मैपद एवं आत्मनेपद विधान-** सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार
- **महाभाष्य (पस्पशाह्निक)-** शब्दपरिभाषा, शब्द एवं अर्थ सम्बन्ध, व्याकरण अध्ययन के उद्देश्य, व्याकरण की परिभाषा, साधु शब्द के प्रयोग का परिणाम, व्याकरण पद्धति।
- **वाक्यपदीयम् (ब्रह्मकाण्ड)-** स्फोट का स्वरूप, शब्द-ब्रह्म का स्वरूप, शब्द-ब्रह्म की शक्तियाँ, स्फोट एवं ध्वनि का सम्बन्ध, शब्द-अर्थ का सम्बन्ध,ध्वनि के प्रकार, भाषा के स्तर।

इकाई 7

संस्कृत साहित्य, काव्यशास्त्र एवं छन्दपरिचय

- **निम्नलिखित का सामान्य परिचय -** भास, अश्वघोष, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त, भारवि, माघ, हर्षवर्धन, बाणभट्ट, दण्डी,भवभूति, भट्टनारायण, बिल्हण, श्रीहर्ष, अम्बिकादत्तव्यास, पण्डिता क्षमाराव, वी. राघवन्, श्रीधरभास्कर वर्णेकर

♦ **काव्यशास्त्र-** रससम्प्रदाय, अलंकारसम्प्रदाय, रीतिसम्प्रदाय, ध्वनिसम्प्रदाय, वक्रोक्तिसम्प्रदाय, औचित्यसम्प्रदाय ।

♦ **पाश्चात्त्य काव्यशास्त्र-** अरस्तू, लॉन्जाइनस, क्रोचे

इकाई 8

निम्नलिखित ग्रन्थों का विशिष्ट अध्ययन

♦ **पद्य-** बुद्धचरितम् (प्रथम सर्ग), रघुवंशम् (प्रथमसर्ग), किरातार्जुनीयम् (प्रथमसर्ग), शिशुपालवधम् (प्रथमसर्ग), नैषधीयचरितम् (प्रथमसर्ग)

♦ **नाट्य-** स्वप्नवासवदत्तम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, वेणीसंहारम्, मुद्राराक्षसम्, उत्तररामचरितम्, रत्नावली, मृच्छकटिकम्,

♦ **गद्य-** दशकुमारचरितम् (अष्टम उच्छ्वास), हर्षचरितम् (पञ्चम उच्छ्वास) कादम्बरी (शुकनासोपदेश)

♦ **चम्पूकाव्य-** नलचम्पू (प्रथम उच्छ्वास)

♦ **साहित्यदर्पण-**

काव्यपरिभाषा, काव्य की अन्य परिभाषाओं का खण्डन, शब्दशक्ति (संकेतग्रह, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना), काव्यभेद (चतुर्थ परिच्छेद), श्रव्यकाव्य (गद्य,पद्य, मिश्र काव्य-लक्षण)

♦ **काव्यप्रकाश-**

काव्यलक्षण, काव्यप्रयोजन, काव्यहेतु, काव्यभेद, शब्दशक्ति, अभिहितान्वयवाद, अन्विताभिधानवाद, रसस्वरूप एवं रससूत्र विमर्श, रसदोष, काव्यगुण, व्यञ्जनावृत्ति की स्थापना (पञ्चम उल्लास)

♦ **अलंकार-**

वक्रोक्ति, अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, अपह्नुति, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, विभावना, विशेषोक्ति, स्वभावोक्ति, विरोधाभास, संकर, संसृष्टि।

♦ **ध्वन्यालोक (प्रथम उद्योत)**

♦ **वक्रोक्तिजीवितम् (प्रथम उन्मेष)**

♦ **भारत-नाट्यशास्त्र (द्वितीय एवं षष्ठ अध्याय)**

दशरूपकम् (प्रथम एवं तृतीय प्रकाश)

छन्दपरिचय-

आर्या, अनुष्टुप् , इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा,वसन्ततिलका, उपजाति, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, शालिनी, मालिनी, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा।

इकाई 9

पुराणेतिहास, धर्मशास्त्र एवं अभिलेखशास्त्र

निम्नलिखित का सामान्य परिचय -

♦ **रामायण-** विषयवस्तु, काल, रामायणकालीन समाज, परवर्ती ग्रन्थों के लिए प्रेरणास्रोत, साहित्यिक महत्त्व, रामायण में आख्यान।

♦ **महाभारत-** विषयवस्तु, काल, महाभारतकालीन समाज, परवर्ती ग्रन्थों के लिए प्रेरणास्रोत, साहित्यिक महत्त्व, महाभारत में आख्यान।

♦ **पुराण-** पुराण की परिभाषा, महापुराण-उपपुराण, पौराणिक सृष्टि-विज्ञान पौराणिक आख्यान ।

♦ **प्रमुख स्मृतियों का सामान्य परिचय**

♦ **अर्थशास्त्र का सामान्य परिचय**

♦ **लिपि-** ब्राह्मी लिपि का इतिहास एवं उत्पत्ति के सिद्धान्त

♦ **अभिलेख का सामान्य परिचय**

इकाई 10

निम्नलिखित ग्रन्थों का विशिष्ट अध्ययन

कौटिलीय-अर्थशास्त्र (प्रथम-विनयाधिकारिक)

मनुस्मृति- (प्रथम,द्वितीय एवं सप्तम अध्याय)

याज्ञवल्क्यस्मृति- (व्यवहाराध्याय)

लिपि तथा अभिलेख- गुप्तकालीन तथा अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि

अशोक के अभिलेख- प्रमुख शिलालेख, प्रमुख स्तम्भलेख।

मौर्योत्तरकालीन अभिलेख- कनिष्क के शासन वर्ष 3 का सारनाथ बौद्ध प्रतिमा लेख, रुद्रदामन् का गिरनार शिलालेख, खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख ।

गुप्तकालीन एवं गुप्तोत्तर कालीन अभिलेख- समुद्रगुप्त का इलाहाबाद स्तम्भलेख, यशोधर्मन् का मन्दसौर शिलालेख, हर्ष का बांसखेड़ा ताम्रपट्ट अभिलेख, पुलकेशिन् द्वितीय का ऐहोल शिलालेख

अनुक्रमणिका

NTA UGC-NET/JRF संस्कृत व्याख्यात्मक हल

॥ नमः संस्कृताय ॥

1	दिसम्बर 2019	NTA UGC–NET/JRF संस्कृतम्	प्रश्नपत्रम् II

1. अनुकरणसिद्धान्तस्य समर्थकः मुख्यतया अस्ति?
(A) अरस्तू **(B)** लॉन्जाइनस
(C) क्रोचे **(D)** प्लेटो

व्याख्या- अरस्तू का अनुकरण सिद्धान्त-

अनुकरण का अर्थ-

* प्लेटो की तरह अरस्तू ने भी काव्य को अनुकरण सिद्धान्त पर आधारित स्वीकार किया है, इसीलिए वह भी कलाकारों की तरह कवि को भी अनुकर्त्ता कहता है।

* अरस्तू ने अपने गुरु प्लेटो से अनुकरण (मिमैसिस) शब्द को ग्रहण किया और उनकी मान्यता कला अनुकरण है, को ही स्वीकार किया, लेकिन उनकी व्याख्या उसने अपने ढंग से की और कहा कि कलाकार प्रकृति की गोचर वस्तुओं का नहीं वरन् प्रकृति की सर्जन प्रक्रिया का भी अनुकरण करता है।

* प्लेटो एवं अरस्तू की अनुकरण विषयक मान्यताओं में मूलभूत अन्तर यह है कि प्लेटो ने अनुकरण का विषय बाह्यप्रकृति की वस्तुओं को माना है और अरस्तू ने गोचर वस्तुओं के अस्तित्व में आधारभूत रूप में निहित प्राकृतिक नियमों को अनुकरण का विषय माना।

* अरस्तू अपने ग्रन्थ 'पोएटिक्स' में कहता है कि कविता केवल अनुभवजन्य घटनाओं का अनुकरण नहीं, कविता की दुनिया अनुभव की दुनिया की अपेक्षा अधिक बोधगम्य है और जहाँ प्रकृति सफलता प्राप्त नहीं करती, वहाँ कवि सफल हो जाता है।

* अरस्तू ने अनुकरण के लिए एकमात्र आधार मानव जीवन को स्वीकार किया है। उसके अनुसार मानव जीवन ही वह प्रकृति है जिसका अनुकरण कला करती है।

* अरस्तू का मत है कि कलाकार को वस्तुओं की तीन स्थितियों में से किसी एक का अनुकरण करना चाहिये।
(1) जैसी वह थी या है। (2) जैसी वह कही या समझी जाती है। (3) जैसी वह होनी चाहिए।

* अरस्तू के काव्य एवं इतिहास के विवेचन से भी अनुकरण के इसी तथ्य का बोध होता है कि अनुकरण का अभिप्राय भावपरक अनुकरण से है न कि यथार्थ वस्तुपरक प्रत्यंकन से।

* अरस्तू ने विषय, माध्यम और शैली के अन्तर के आधार पर एक ओर काव्य और अन्य कलाओं में भेद किया। इस तरह पहली बार उसने एक कलाकृति के रूप में काव्य को महत्त्व दिया।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अनुकरण-सिद्धान्त के समर्थक अरस्तू हैं। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा आलोचना-योगेन्द्र प्रताप सिंह, पेज 197

2. अमृतसहोदरापि कटुविपाका .... शुकनासोपदेशे वर्णनमिदं वर्तते?
(A) सरस्वत्याः **(B)** कादम्बर्याः
(C) लक्ष्म्याः **(D)** महाश्वेतायाः

व्याख्या- ➢ बाणभट्ट की सर्वोत्कृष्ट कृति कादम्बरी है, जो एक गद्यकाव्य है। यह ग्रन्थ पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भागों में लिखा गया है। पूर्वभाग महाकवि बाणभट्ट की रचना है और उत्तरभाग उनके पुत्र पुलिनभट्ट या भूषणभट्ट द्वारा लिखा गया है।

➢ कादम्बरी के प्रारम्भ में प्रस्तावना के रूप में 20 श्लोक हैं जिसमें मङ्गलाचरण, सज्जनप्रशंसा आदि विषय निहित हैं।

➢ सम्पूर्ण कृति में चन्द्रापीड और पुण्डरीक के तीन जन्मों की कथा वर्णित है।

➢ राजा तारापीड का पुत्र चन्द्रापीड था और प्रधानमन्त्री शुकनास का पुत्र वैशम्पायन था।

➢ यथासमय राजकुमार चन्द्रापीड के यौवराज्याभिषेक की तैयारियाँ आरम्भ हुईं। इसी समय शुकनास ने राजकुमार चन्द्रापीड को जो उपदेश दिया था, वही शुकनासोपदेश है।

➢ मन्त्री शुकनास ने राजकुमार चन्द्रापीड को लक्ष्मी के अवगुणों के विषय में बताया है-

परस्परविरुद्धञ्चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निजं चरितम्।

(इस प्रकार यह लक्ष्मी) इन्द्रजाल (जादू) के समान परस्पर विरोधी बातें दिखाती हुयी जगत् में अपना चरित्र प्रकट करती है।

तथाहि, सततमूष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति।

(उदाहरण के लिये) निरन्तर ऊष्मा उत्पन्न करती हुई भी जड़ता उत्पन्न करती है।

* **उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति।**
उन्नति को धारण करती हुई भी नीच स्वभावता को प्रकट करती है।
* **तोयराशिसंभवापि तृष्णां संवर्धयति।**
समुद्र से उत्पन्न हुई भी तृष्णा को बढ़ाती है।
* **ईश्वरतां दधानाप्यशिवप्रकृतित्वमातनोति।**
प्रभुता को धारण करती हुई भी अशिव स्वभाव (अमङ्गल) का विस्तार करती है।
* **बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति।**
बल समूह को लाती हुयी भी लघुता को प्राप्त कराती है अर्थात् लाती है।
* **अमृतसहोदरापि कटुविपाका। विग्रहवत्यप्यप्रत्यक्षदर्शना।**
अमृत की सगी बहन होकर भी कड़वे फल वाली है। विग्रह वाली होकर भी प्रत्यक्ष न दिखाई देने वाली है।
* **पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया। रेणुमयीव स्वच्छमपि कलुषीकरोति।**

पुरुषोत्तम में आसक्त होते हुए भी दुष्टजनों से प्रेम करने वाली है। रेणुमयी यह लक्ष्मी स्वच्छ को भी कलुषित बना देती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'अमृतसहोदरापि कटुविपाका ......' यह पंक्ति शुकनासोपदेश में मन्त्री शुकनास चन्द्रापीड को उपदेश देते हुए लक्ष्मी के सम्बन्ध में कहते हैं।

अतः विकल्प 'C' सही है।

स्रोत- शुकनासोपदेश- राजेश्वरप्रसाद मिश्र, पेज 72

3. अलोऽन्त्यात् पूर्ववर्णस्य का सञ्ज्ञा भवति?
(A) निष्ठा (B) उपधा
(C) गति (D) संहिता

व्याख्या- * अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा (1.1.65) उपधासंज्ञा करने वाला सूत्र है-

अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः।

वर्णों के समुदाय में से जो अन्तिम वर्ण हो, उससे पूर्व के वर्ण की यह उपधासंज्ञा होती है।

जैसे- राम = र् आ म् अ

राम में अन्त्य वर्ण 'अ' है और उससे पूर्व का वर्ण है 'म्' अतः 'म्' की उपधा संज्ञा हो जायेगी।

* **क्तक्तवतू निष्ठा (1.1.26)** निष्ठासंज्ञा करने वाला सूत्र है- **एतौ निष्ठासञ्ज्ञौ स्तः।**

➢ क्त और क्तवतु प्रत्यय निष्ठासंज्ञक होते हैं।

➢ निष्ठासंज्ञक क्त और क्तवतु प्रत्यय भूतकाल अर्थ में सभी धातुओं से होते हैं।

* **गतिश्च (1.4.60)**
प्रादयः क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञाः स्युः।
प्र, परा आदि क्रिया के योग में गतिसंज्ञक होते हैं।
* **संहितासञ्ज्ञा- हलोऽनन्तराः संयोगः (1.1.7)**
अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसञ्ज्ञाः स्युः।
अचों (स्वरों) से अव्यवहित हल् संयोगसञ्ज्ञक होते हैं।

जैसे- पत्नी में त् और न् के बीच में कोई भी अच् नहीं है, अतः त् - न् इस हल् समुदाय की संयोग सञ्ज्ञा हो जाती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'उपधासंज्ञा' वर्णों के समूह के अन्तिम वर्ण से पूर्व वर्ण की होती है।

अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी - गोविन्दाचार्य, पेज 175

4. महाकविकालिदासस्य प्रसिद्धौ कस्यालङ्कारस्योदाहरण-रूपेण उपयोगः क्रियते?
(A) उपमालङ्कारस्य
(B) उत्प्रेक्षालङ्कारस्य
(C) समासोक्त्यलङ्कारस्य
(D) अतिशयोक्त्यलङ्कारस्य

व्याख्या- महाकवि कालिदास की विशिष्टता उपमा के कारण है, भारवि का प्रधान गुण अर्थगौरव है, दण्डी (या नैषधचरित) की विशिष्टता पदलालित्य के कारण है तो माघ में तीनों गुणों का समन्वित प्रयोग प्रमुख वैशिष्ट्य है। इसलिए कहा गया है-

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः (नैषधे) पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।

कवियों के प्रिय अलङ्कार

कवि		अलङ्कार
कालिदास	-	उपमा
भारवि	-	चित्रालङ्कार, अर्थालङ्कार
माघ	-	उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, चित्रालङ्कार
श्रीहर्ष	-	उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति,

श्लेष, अनुप्रास, यमक		
भवभूति	-	उपमा, उत्प्रेक्षा, काव्यलिङ्ग, रूपक
बाणभट्ट	-	विरोधाभास, श्लेष,
परिसंख्या, उत्प्रेक्षा, उपमा,		
रूपक		
अश्वघोष	-	उपमा, रूपक, अनुप्रास
रत्नाकर	-	उत्प्रेक्षा अलङ्कार
विशाखदत्त	-	उपमा, रूपक, श्लेष
हर्षवर्धन	-	उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक
भट्टनारायण	-	उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा
सुबन्धु	-	श्लेष, विरोधाभास,
परिसंख्या, उत्प्रेक्षा		
अम्बिकादत्तव्यास	-	विरोधाभास

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'उपमा कालिदासस्य' उपमा अलङ्कार कालिदास के लिए प्रसिद्ध है।

अतः विकल्प 'A' सही है।

स्रोत- संस्कृतसाहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि', पेज 269
संस्कृतगङ्गा साहित्यम् - सर्वज्ञभूषण, पेज 288

5. याज्ञवल्क्यमते उत्तरा क्रिया कुत्र बलवती भवति?
(A) सर्वेष्वर्थविवादेषु
(B) आधौ प्रतिग्रहे
(C) सर्वेषु भूमिविवादेषु
(D) दायविभागविवादेषु

व्याख्या- याज्ञवल्क्यस्मृति के रचयिता याज्ञवल्क्य वैदिक ऋषि हैं, वे शुक्लयजुर्वेद के द्रष्टा थे।

याज्ञवल्क्यस्मृति के अतिरिक्त याज्ञवल्क्य के नाम से सम्बद्ध तीन अन्य स्मृतियाँ भी हैं-

(i) वृद्धयाज्ञवल्क्य (ii) योगयाज्ञवल्क्य (iii) बृहद्-याज्ञवल्क्य

* याज्ञवल्क्यस्मृति के सुप्रसिद्ध टीकाकार विश्वरूप, विज्ञानेश्वर और अपरार्क ने वृद्धयाज्ञवल्क्य को अनेक बार उद्धृत किया है।

* याज्ञवल्क्यस्मृति सुस्पष्ट व सुसंश्लिष्ट शैली में निबद्ध है। यह अनुष्टुप् छन्द में बद्ध है।

* इसमें लगभग 1000 श्लोक हैं।

* याज्ञवल्क्यस्मृति तीन भागों में विभक्त है-

प्रथम आचाराध्याय है जिसमें 14 विद्याएँ, धर्मोपादान, आचार के दस सिद्धान्त आदि तेरह प्रकरण हैं।

* द्वितीय व्यवहाराध्याय, इसमें पञ्चीस प्रकरण हैं।

* तृतीय प्रायश्चित्ताध्याय, इसमें आपद्धर्म, यतिधर्म, प्रायश्चित्त आदि छः प्रकरण हैं।

* 'व्यवहाराध्याय' याज्ञवल्क्यस्मृति का हृदय है। इसमें सर्वाधिक प्रकरण समाया हुआ है।

व्यवहाराध्याय के अन्तर्गत ही यह कारिका कही गयी है-

सर्वेष्वर्थविवादेषु बलवत्युत्तरा क्रिया (2/23)

सभी प्रकार के अर्थ (धन) के विवादों में उत्तरक्रिया (बाद के कार्य) प्रबल होते हैं।

* **आधौ प्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा (॥2/23॥)**

किन्तु आधि (बन्धन) दान और क्रय में पूर्वकार्य (पहले का अधिकार-पत्र) प्रबल होता है।

* **दर्शने प्रत्यये दाने प्रातिभाव्यं विधीयते।**
आद्यौ तु वितथे दाप्यावितरस्य सुता अपि (॥2/53॥)

प्रातिभाव्य (जमानतदार- वह अन्य व्यक्ति जो शर्त या विश्वास दिलाता है), दर्शन (आवश्यकता पड़ने पर उपस्थित करने या दिखाने), प्रत्यय (विश्वास कि यह देने लायक है) और दान (न देने पर स्वयं देना) के कार्य में प्रातिभाव्य (जामिन) होता है। प्रथम दो दर्शन और प्रत्यय के असत्य होने पर राजा उससे धन दिलावे और तीसरे के असत्य होने पर उसके पुत्रों से भी धन दिलावे।

* **संततिः स्त्रीपशुष्वेव धान्यं त्रिगुणमेव च।**
वस्त्रं चतुर्गुणं प्रोक्तं रसश्चाष्टगुणस्तथा (॥2/57॥)

प्रतिभू के स्त्री और पशु दिलाने की स्थिति में तो बच्चे सहित स्त्री और पशु दे। धान्य होने पर तीन गुना, वस्त्र होने पर चौगुना और रस (तेल घृतादि) होने पर आठ गुना दिलावे।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्यमते 'उत्तरा क्रिया सर्वेष्वर्थविवादेषु बलवती भवति।'

अतः विकल्प 'A' सही है।

स्रोत- याज्ञवल्क्यस्मृति (2/23)- गङ्गासागर राय, पेज 182

6. अधोलिखितेषु केन सह कस्य सम्बन्धः?

(क)	द्यूतक्रीडा	(i)	भीष्मपर्व
(ख)	गीता-उपदेशः	(ii)	महाप्रस्थानिकपर्व
(ग)	अभिमन्यु-वधः	(iii)	सभापर्व
(घ)	पाण्डवानां हिमालययात्रा	(iv)	द्रोणपर्व

	क	ख	ग	घ
(A)	(i)	(iv)	(iii)	(ii)
(B)	(iii)	(i)	(ii)	(iv)
(C)	(iv)	(ii)	(iii)	(i)
(D)	(iii)	(i)	(iv)	(ii)

व्याख्या- महर्षि वेदव्यास द्वारा विरचित ऐतिहासिक महाकाव्य महाभारत अठारह पर्वों में विभक्त है जिनमें अनेक उपपर्व मुख्य घटनाओं के शीर्षक के रूप में हैं। यहाँ पर्वों की मुख्य विषय-वस्तु का संक्षिप्त परिचय बताया गया है-

(1) आदिपर्व - इस पर्व में 11 उपपर्व तथा 233 अध्याय हैं। प्रथम दो उपपर्व अनुक्रमणिका तथा पर्वसंग्रह के रूप में एक-एक अध्याय वाले हैं।

➢ शकुन्तला का आख्यान एवं पुरुवंश के राजाओं का वर्णन है।

➢ धृतराष्ट्र का अपनी पत्नी गान्धारी से 100 पुत्रों की प्राप्ति तथा पाण्डु की पत्नियों (कुन्ती एवं माद्री) से नियोग द्वारा पाँच पुत्रों के जन्म की घटनाएँ वर्णित हैं।

➢ कौरवों एवं पाण्डवों की शिक्षा-दीक्षा तथा विवाहादि वर्णन भी इसी पर्व में है।

➢ इस विशाल पर्व में प्रायः नौ सहस्र श्लोक हैं।

(2) सभापर्व - इस पर्व में 81 अध्याय और दस उपपर्व हैं।

➢ मुख्यरूप से पाण्डवों की दिग्विजय यात्रा, जरासन्धवध युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान और शिशुपालवध वर्णित है।

(3) वनपर्व - इस पर्व में 315 अध्याय एवं 22 उपपर्व हैं। पाण्डवों के वनवास की घटना से सम्बद्ध आख्यान है। नल और राम के आख्यान प्रधान हैं। सावित्री तथा सत्यवान् की कथा यहाँ पर आयी है। मुख्य दो घटनायें- जयद्रथ द्वारा द्रौपदी का हरण और इन्द्र द्वारा कर्ण के कवच-कुण्डल माँग ले जाना।

(4) विराट पर्व - इस पर्व में पाँच उपपर्व तथा 72 अध्याय हैं। प्रायः 2700 श्लोक इसमें हैं।

➢ पाण्डवों के अज्ञातवास की घटना का वर्णन, पाण्डवों का वेश बदलकर मत्स्यराज विराट के राजप्रसाद में अज्ञात रूप से रहना।

➢ यहीं द्रौपदी के प्रति आसक्त कीचक का भीमद्वारा वध

➢ अन्तिम उपपर्व में विराट की पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से होता है।

(5) उद्योग पर्व - इसमें दस उपपर्व तथा 196 अध्याय हैं। श्लोकों की संख्या प्रायः 7100 है।

➢ इसमें मुख्य वृत्त शान्ति के लिये वार्तालाप एवं युद्ध की पूर्वपीठिका की प्रस्तुति है।

➢ इसमें अम्बोपाख्यान के रूप में पूर्वकथा सुनायी गयी है।

➢ शान्ति प्रस्ताव में पाण्डव केवल पाँच गाँव लेकर भी सन्तुष्ट होने की बात कहते हैं।

(6) भीष्मपर्व - इसमें पाँच उपपर्व तथा प्रायः 6100 श्लोक हैं। इसका विभाजन 122 अध्यायों में हुआ है।

➢ भीष्म के सेनापतित्व में दस दिनों के भारत युद्ध का वर्णन है।

➢ सञ्जय धृतराष्ट्र को युद्ध का समस्त वृत्तान्त दिव्यदृष्टि से देखकर बतलाता है।

➢ युद्ध के आरम्भ में कृष्णार्जुन संवाद के रूप में 18 अध्यायों का अंश है जिसे 'भगवद्गीता' कहते हैं।

(7) द्रोणपर्व - इस पर्व में आठ उपपर्व, 202 अध्याय तथा प्रायः दस सहस्र श्लोक हैं।

➢ युद्ध में क्रमशः संशप्तकों, अभिमन्यु, जयद्रथ, घटोत्कच तथा द्रोणाचार्य का वध होता है।

* द्रोण का वध छलपूर्वक होने पर उनका पुत्र अश्वत्थामा कुपित होकर नारायणास्त्र का प्रयोग करता है।

(8) कर्णपर्व - इस पर्व में 96 अध्याय तथा प्रायः साढ़े पाँच सहस्र श्लोक हैं। इसका विभाजन उपपर्वों में नहीं हुआ है।

➢ कर्ण और शल्य का परस्पर वाग्युद्ध बड़ा रोचक है।

➢ कौरव-सेना का अध्यक्ष कर्ण बनता है।

(9) शल्यपर्व - इसमें दो उपपर्व (ह्रद प्रवेश तथा गदापर्व), 65 अध्याय तथा प्रायः 3700 श्लोक हैं।

➢ इसमें भारत युद्ध के अन्तिम (18) दिन के युद्ध का वर्णन है।

➢ शल्य का वध, दुर्योधन का गदायुद्ध और ऊरुभङ्ग इस पर्व की मुख्य घटनाएँ हैं।

➤ शल्यपर्व में कुछ प्राचीन आख्यान भी हैं जिनमें तीर्थों का माहात्म्य वर्णित है।

(10) सौप्तिक पर्व - इसमें एक उपपर्व, 18 अध्याय तथा 810 श्लोक हैं।

➤ मुख्य कथा पाण्डवों की सोयी हुयी सेना पर आक्रमण करके द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के मारे जाने की है।

➤ पाण्डव अश्वत्थामा को पकड़कर उसके सिर की मणि निकाल लेते हैं।

(11) स्त्रीपर्व - इसमें तीन उपपर्व, 27 अध्याय तथा 820 श्लोक हैं।

➤ कुन्ती युधिष्ठिर को कर्ण के जन्म का वृत्तान्त सुनाकर उसका भी श्राद्ध करने का अनुरोध करती है।

➤ युधिष्ठिर स्त्रीजाति को शाप देते हैं कि अब से स्त्रियों के मन में रहस्य की कोई बात छिपी नहीं रहेगी।

(12) शान्तिपर्व - इसमें तीन उपपर्व हैं- राजधर्मानुशासन, आपद्धर्म तथा मोक्षधर्म।

➤ इसमें वर्तमान में 365 अध्याय तथा 14,725 श्लोक हैं। इस दृष्टि से यह महाभारत का सबसे बड़ा पर्व है।

➤ इस पर्व में पराशर-गीता, हंस-गीता इत्यादि ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण हैं।

➤ शरशय्या पर लेटे हुये भीष्म के द्वारा युधिष्ठिर आदि को दिये गये उपदेश के रूप में इस पर्व का विन्यास हुआ है।

(13) अनुशासन पर्व - इस पर्व में मुख्यरूप से धर्मशास्त्रीय उपदेश हैं जो भीष्म द्वारा अपने समक्ष उपस्थित युधिष्ठिर आदि को दिये गये हैं।

➤ इसमें दो उपपर्व, 168 अध्याय तथा दस सहस्र से कुछ कम श्लोक हैं।

➤ भीष्म का स्वर्गारोहण (उपपर्व) में केवल दो ही अध्याय हैं।

➤ इसी पर्व के 17वें अध्याय में शिवसहस्रनामस्तोत्र है।

(14) आश्वमेधिक पर्व - इस पर्व में 92 अध्याय तथा प्रायः सवा चार सहस्र श्लोक हैं।

➤ अनुगीता नामक उपपर्व में दर्शनशास्त्र की सामग्री है।

➤ व्यास के आदेश से युधिष्ठिर अश्वमेध-यज्ञ करते हैं और अर्जुन एक वर्ष तक यज्ञाश्व की रक्षा करते हैं।

(15) आश्रमवासिकपर्व - इसमें तीन उपपर्व, 39 अध्याय तथा 1100 श्लोक हैं।

इसका मुख्य इतिवृत्त धृतराष्ट्र के साथ गान्धारी, कुन्ती और विदुर का वन में आश्रम बनाकर निवास करना है।

(16) मौसल पर्व - यह केवल आठ अध्यायों और 304 श्लोकों का लघुकाय पर्व है।

➤ युधिष्ठिर के सिंहासनारोहण के 26 वर्षों के बाद गान्धारी का शाप सत्य होता है और यादव वंश के लोग परस्पर युद्ध करके समाप्त हो जाते हैं।

(17) महाप्रस्थानिक पर्व - यह तीन अध्यायों का महाभारत का सबसे छोटा पर्व है।

➤ जिसमें केवल 115 श्लोक हैं।

➤ इसमें पाण्डवों की हिमालय यात्रा का वर्णन है।

➤ हिमालय में क्रमशः द्रौपदी सहदेव आदि गिरते जाते हैं और युधिष्ठिर उनके पतन का कारण बतलाते हैं।

(18) स्वर्गारोहणपर्व - यह केवल पाँच अध्यायों और 220 श्लोकों का छोटा सा पर्व है इसमें युधिष्ठिर के स्वर्ग पहुँचने तथा देवदूत के साथ नरक में जाकर अपने अनुजों के करुण क्रन्दन सुनने का वृत्तान्त है।

➤ अन्तिम अध्याय में महाभारत का माहात्म्य तथा इसके उपदेश प्रतिपादित हैं। इसे भारत सावित्री भी कहते हैं।

स्पष्टीकरण - उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 149, 150, 152

7. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
अत्र श्लोके केषां वर्णनं प्राप्यते-

(A) आरण्यकानाम् **(B)** उपनिषदाम्
(C) वेदाङ्गानाम् **(D)** वेदानाम्

व्याख्या- पाणिनीय शिक्षा में इन छह वेदाङ्गों का वेदपुरुष के छः अङ्गों के रूप में वर्णन है।

जैसे- छन्द वेदपुरुष के पैर हैं, कल्प हाथ हैं, ज्योतिष नेत्र हैं, निरुक्त कान हैं, शिक्षा नाक है और व्याकरण मुख है।

छन्दः पादौ तु वेदस्य, हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।

तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥

(पा.शि.-41-42)

	वेदाङ्ग	नाम
1.	छन्द	पैर
2.	कल्प	हाथ
3.	ज्योतिष	नेत्र
4.	निरुक्त	कान
5.	शिक्षा	नाक
6.	व्याकरण	मुख

➢ **शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा ।**
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः ॥

वेदाङ्गों की संख्या और उनके नाम हैं- शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प।

➢ **आरण्यक ग्रन्थ -** ब्राह्मणग्रन्थों और उपनिषदों को जोड़ने वाली कड़ी है। ब्राह्मणग्रन्थों में यज्ञों के दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष का जो अङ्कुरण हुआ है, उसका पल्लवित रूप आरण्यक ग्रन्थ हैं।

महाभारत में कहा गया है-

नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा ।
आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा॥

(महा. 1.331.3)

महाभारत में कथन है कि आरण्यक ग्रन्थ वेदों के सारभाग हैं। जैसे दही से मक्खन, मलय से चन्दन और ओषधियों से अमृत प्राप्त होता है, वैसे ही वेदों से आरण्यक प्राप्त हुए हैं।

➢ **उपनिषद् ग्रन्थ -** उपनिषद् शब्द उप + नि + सद् + क्विप् अर्थात् उप और नि उपसर्गपूर्वक सद् धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर बनता है। इसका अर्थ है- 'तत्त्वज्ञान के लिये गुरु के पास निष्ठापूर्वक बैठना।'

मुख्य उपनिषदों की संख्या दश मानी है -

ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा॥ (मुक्तिक. 1.30)

➢ **वेद -** वेदों की संख्या चार है- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'छन्दः पादौ तु वेदस्य' यह पंक्ति वेदाङ्ग से सम्बन्धित है।

अतः विकल्प 'C' सही है।

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 190

8. इन्द्रियार्थयोस्तु यः सन्निकर्षः साक्षात्कारिप्रमाहेतुः? स कतिविधः?

(A) सप्तविधः **(B)** चतुर्विधः
(C) षड्विधः **(D)** पञ्चविधः

व्याख्या- आचार्य गौतमप्रणीत न्यायदर्शन का प्रकरणग्रन्थ तर्कभाषा है जिसके प्रणेता केशवमिश्र हैं। तर्कभाषा के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण, षोडश पदार्थ आदि का निरूपण करने के पश्चात् षोडश पदार्थों में सर्वप्रथम परिगणित 'प्रमाण' को बताते हुये उसके अन्तर्गत आने वाले षोढा सन्निकर्ष को परिभाषित करते हैं-

इन्द्रियार्थयोस्तु यः सन्निकर्षः साक्षात्कारिप्रमाहेतुः स षड्विध एव। तद्यथा, संयोगः, संयुक्तसमवायः, संयुक्तसमवेतसमवायः, समवायः, समवेतसमवायः, विशेष्यविशेषण- भावश्चेति।

इन्द्रिय तथा अर्थ का जो सन्निकर्ष प्रत्यक्षज्ञान साक्षात्कारिणी प्रमा का निमित्त होता है, वह छः प्रकार का ही है, जैसे- (1) संयोग (2) संयुक्तसमवाय (3) संयुक्तसमवेत समवाय (4) समवाय (5) समवेत समवाय (6) विशेष्यविशेषणभाव।

(1) संयोग सन्निकर्ष - चक्षुषा घटविषयं ज्ञानं जन्यते तदा चक्षुरिन्द्रियं घटोऽर्थः। अनयोः सन्निकर्षः संयोग एव, अयुतसिद्ध्यभावात्।

उनमें से जब चक्षु द्वारा घट आदि विषय का ज्ञान होता है, तब चक्षु इन्द्रिय है, घट विषय है। इन दोनों का सन्निकर्ष संयोग ही है, क्योंकि ये दोनों अयुतसिद्ध नहीं हैं।

(2) संयुक्तसमवाय - यदा चक्षुरादिना घटगतरूपादिकं गृह्यते, घटे श्यामं रूपमस्तीति, तदा चक्षुरिन्द्रियं, घटरूपमर्थः, अनयोः सन्निकर्षः संयुक्तसमवाय एव।

जब चक्षु आदि से घट में रहने वाले रूप आदि का ग्रहण होता है कि घट में श्याम रूप है तब चक्षु इन्द्रिय है, घट का रूप विषय है। इन दोनों का संयुक्तसमवाय सन्निकर्ष है।

(3) संयुक्तसमवेत समवाय - चक्षुषा घटरूपसमवेतं रूपत्वादि-सामान्यं गृह्यते, तदा चक्षुरिन्द्रियं, रूपत्वादिसामान्यमथ, अनयो सन्निकर्षः संयुक्तसमवेतसमवाय एव।

जब चक्षु के द्वारा घट के रूप में समवेत रूपत्व आदि सामान्य जाति का ग्रहण होता है। तब चक्षु इन्द्रिय है। रूपत्व आदि सामान्य

ही अर्थ (विषय) है। इन दोनों का सन्निकर्ष संयुक्त समवेतसमवाय है।

(4) समवाय सन्निकर्ष - यदा श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दो गृह्यते तदा श्रोत्रमिन्द्रियं, शब्दोऽर्थः, अनयोः सन्निकर्षः समवाय एव। कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नं नभः श्रोत्रम्।

जब श्रोत्रेन्द्रिय से शब्द का ग्रहण होता है तब श्रोत्र इन्द्रिय है, शब्द अर्थ है इन दोनों का सन्निकर्ष समवाय ही है, क्योंकि कर्णविवर से अवच्छिन्न आकाश ही श्रोत्र है।

(5) समवेतसमवाय सन्निकर्ष - यदा पुनः शब्दसमवेतं शब्दत्वादिकं सामान्यं श्रोत्रेन्द्रियेण गृह्यते, तदा श्रोत्रमिन्द्रियं, शब्दत्वादिसामान्यमर्थः। अनयोः सन्निकर्षः समवेतसमवाय एव। श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात् ।

जब शब्द में समवेत शब्दत्व आदि जाति का श्रोत्र इन्द्रिय से ग्रहण किया जाता है तब श्रोत्र इन्द्रिय है, शब्दत्व आदि जाति अर्थ विषय है। इन दोनों का सन्निकर्ष समवेतसमवाय ही है। क्योंकि श्रोत्र में समवेत शब्द में समवाय सम्बन्ध होता है।

(6) विशेष्यविशेषण भाव - यदा चक्षुषा संयुक्ते भूतले घटाभावो गृह्यते इह भूतले घटो नास्ति इति तदा विशेष्यविशेषणभावः सम्बन्धः।

जब चक्षु से संयुक्त भूमि पर 'यहाँ भूतल पर घट नहीं है'- इस प्रकार घट के अभाव का ग्रहण होता है तब विशेष्य विशेषण भाव सन्निकर्ष हुआ करता है।

षोढा सन्निकर्ष -

सन्निकर्ष	इन्द्रिय	विषय
संयोग सन्निकर्ष	चक्षु	घट
संयुक्तसमवाय सन्निकर्ष	चक्षु	घटरूप
संयुक्तसमवेत समवाय	चक्षु	घटरूपत्व जाति
समवाय सन्निकर्ष	श्रोत्र	शब्द
समवेतसमवाय सन्निकर्ष	श्रोत्र	शब्दत्व
विशेषण-विशेष्यभाव सन्निकर्ष	चक्षु	भूतले घटाभाव

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'इन्द्रियार्थयोस्तु यः सन्निकर्षः साक्षात्कारिप्रमा हेतुः सः षड्विधः'

अतः विकल्प 'C' सही है।

स्रोत- तर्कभाषा - श्रीनिवास शास्त्री, पेज 61

9. न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः
कृतं न वा तेन विजिह्ममाननम्।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते
नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ॥
अस्मिन् श्लोके प्रशंसा वर्तते?

(A) युधिष्ठिरस्य **(B)** वनेचरस्य
(C) दुर्योधनस्य **(D)** अर्जुनस्य

व्याख्या- महाकवि भारवि द्वारा प्रणीत बृहत्त्रयी के अन्तर्गत परिगणित अष्टादशसर्गात्मक महाकाव्य किरातार्जुनीयम् है।

इस ग्रन्थ के प्रथम सर्ग में वनेचर हस्तिनापुर से दुर्योधन के राज्य वृत्तान्त को जानकर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास आकर उस वृत्तान्त को कहता है -

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः
कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम् ।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते
नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ॥1/21॥

दुर्योधन के मित्र राजाओं की स्थिति के विषय में वनेचर दुर्योधन की प्रशंसा का वर्णन कर रहा है -

उस दुर्योधन के द्वारा कहीं पर भी चढ़ी हुयी प्रत्यञ्चा वाला धनुष नहीं उठाया गया अथवा क्रोध के कारण मुख टेढ़ा नहीं किया गया। राजाओं के द्वारा गुणों के प्रति प्रेम के कारण उसकी आज्ञा को माला के समान शिरोधार्य किया जाता है।

किरातार्जुनीयम् की महत्त्वपूर्ण सूक्तियाँ-

* **अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (1/23)**

वनेचर का कथन है- अहो (आश्चर्य है कि) बलवानों से विरोध बड़ा ही दुःखान्त होता है।

* **प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः ॥1/25॥**

वनेचर युधिष्ठिर से कहता है- दूसरे लोगों के द्वारा कहे गये वचनों का सङ्ग्रह करने वाले मुझ जैसों की बातें तो वृत्तान्तमात्र पर्यवसायिनी होती हैं।

* **प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधान्**
असंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ॥1/30॥

द्रौपदी का कथन युधिष्ठिर से- धूर्त लोग बिना ढके हुए अङ्गों वाले उन जैसे लोगों को तीक्ष्ण बाणों के समान भीतर प्रविष्ट होकर मार डालते हैं।

* **शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः ॥1/32॥**

द्रौपदी का कथन है- आपको सूखे हुए शमी के वृक्ष को जला देने वाली प्रज्वलित अग्नि के समान उद्दीप्त क्रोध क्यों नहीं क्रोधित करता?

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः ....' यह वनेचर का कथन है जिसमें दुर्योधन की प्रशंसा हो रही है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- किरातार्जुनीयम् (1/21)

10. कथनद्वयम् अधोलिखितं तत्र एकम् अभिकथनम् (A) अपरश्च तस्य कारणम् (R) इति।

अभिकथनम् (A) - एकनवतिवर्षीयस्य प्रणवस्य प्रपौत्रः ओङ्कारः ओङ्कारस्य युवापत्यसञ्ज्ञा भवति।

कारणम् (R) - जीवति तु वंश्ये युवा इति विधानात्।

उपर्युक्तम् अभिकथन- कारणमाश्रित्य समुचितं विकल्पं चिनुत-

(A) (A) तथा (R) उभयं सत्यमस्ति। (A) इत्यस्य (R) उचितं कारणमस्ति।

(B) (A) तथा (R) उभावपि असमीचीनौ

(C) (A) तथा (R) उभावपि समीचीनौ, परं (A) इत्यस्य (R) इति समुचितं कारणं नास्ति।

(D) (A) इति असमीचीनं परं (R) इति समीचीनम्

व्याख्या- जीवति तु वंश्ये युवा (4.1.163)

वंश्ये पित्रादौ जीवति (सति) पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद् युवसंज्ञमेव स्यात् ।

वंश में होने वाले पिता, पितामह आदि के जीवित रहते जो पौत्र आदि का अपत्य चतुर्थ आदि पीढ़ी से स्थित हो वह युवन् संज्ञक ही हो। (गोत्रसंज्ञक नहीं)

अपत्य शब्द लोक में पुत्र अर्थ में प्रसिद्ध है परन्तु यहाँ शास्त्र में पुत्र, पौत्र आदि पीढ़ी के अर्थ में आता है। इस शास्त्र में अपत्य तीन प्रकार से प्रयुक्त होता है-

(1) अनन्तरापत्य - अनन्तरापत्य केवल पुत्र अर्थात् दूसरी पीढ़ी को कहते हैं। इसका विग्रह केवल 'अपत्यम्' लगाकर ही किया जाता है।

जैसे- गर्गस्यापत्यं गार्गिः

दक्षस्यापत्यं दाक्षिः

उपगोरपत्यम् औपगवः

(2) गोत्रापत्य - गोत्रापत्य पुत्र के पुत्र अर्थात् तीसरी पीढ़ी से आरम्भ होता है और आगे की सब पीढ़ियों में चला जाता है। इसका विग्रह गोत्रापत्यम् शब्द लगाकर ही किया जाता है।

जैसे- गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः

दक्षस्य गोत्रापत्यं दाक्षिः

(3) युवापत्य - यदि बाप दादा आदि जीवित हों तो प्रपौत्र अर्थात् चतुर्थ पीढ़ी से लेकर आगे युवन् सञ्ज्ञा हो जाती है, तब गोत्रसंज्ञा नहीं रहती। इसका विग्रह 'गर्गस्य गोत्रापत्यं युवा' या 'गर्गस्य युवापत्यम्' इस प्रकार से किया जाता है गार्ग्यायणः, दाक्षायणः इत्यादि उदाहरण हैं।

विशेष - कथन (A) 'एकनवतिवर्षीयस्य प्रणवस्य प्रपौत्रः ओङ्कारः। ओङ्कारस्य युवापत्य संज्ञा भवति।' यह सत्य है।

कारण (R) में 'जीवति तु वंश्ये युवा' इस सूत्र से इसका विधान हुआ है।

स्पष्टीकरण - उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि (A) तथा (R) दोनों सत्य कथन है और (R) कथन (A) कथन का उचित कारण है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी (भैमीव्याख्या, भाग-5), पेज 25

11. अधस्तनेषु चित्तभूमिषु न गण्यते-

a चलम् **b मूढम्**

c विक्षिप्तम् **d अचलम्**

समुचितं विकल्पं चिनुत -

(A) a एवं c **(B)** a एवं d

(C) a एवं b **(D)** b एवं c

व्याख्या- महर्षि पतञ्जलि प्रणीत योगदर्शन है। जिसमें चार पाद- (1) समाधिपाद (2) साधनपाद (3) विभूतिपाद (4) कैवल्यपाद हैं।

➢ प्रथमपाद में 51 सूत्र, द्वितीय पाद में 55, तृतीय पाद में 55 सूत्र और चतुर्थपाद में 34 सूत्र हैं।

➢ महर्षि पतञ्जलि प्रथम पाद में पञ्चचित्तभूमियों को बताते हैं- (1) क्षिप्त (2) मूढ (3) विक्षिप्त (4) एकाग्र (5) निरुद्ध

1. क्षिप्तम् - रजसा विषयेष्वेव वृत्तिमत्

रजोगुण के उद्रेक के कारण विषयों में ही व्यापृत रहने वाली चित्त की अवस्था क्षिप्त भूमि है।

2. मूढम् - तमसा निद्रादिवृत्तिमत्

तमोगुण के उद्रेक के कारण मूर्च्छादि व्यापारवान् चित्त की स्थिति मूढ भूमि कहीं जाती है।

3. विक्षिप्तम् - क्षिप्ताद्विशिष्टं विक्षिप्तं, सत्त्वाधिक्येन समादधदपि चित्तं रजोमात्रयाऽन्तरा विषयान्तरवृत्तिमद्

क्षिप्तादि भूमि से कुछ बेहतर या अच्छी भूमि। इसमें सत्त्वगुणाधिक्य रहता है। इसमें किञ्चित् कालपर्यन्त समाधि लगने पर भी रजोगुण के जोर मारते रहने के कारण बीच में अन्य विषयों की ओर चित्त दौड़ जाता है चित्त की यह अवस्था उसकी विक्षिप्त नामक भूमि कही जाती है।

4. एकाग्रम् - एकस्मिन्नेव विषयेऽग्रं शिखा यस्य चित्तदीपस्येत्येकाग्रं, विशुद्ध-सत्त्वतयैकस्मिन्नेव विषये वक्ष्यमाणावधीकृतकालपर्यन्तमचञ्चलं निवातस्थदीपवत्। तथा च क्षिप्तादित्रयेऽपि किञ्चिदैकाग्र्यसत्त्वेऽपि तत्र नातिप्रसङ्गः।

इस अवस्था में चित्त की सात्विकवृत्ति किसी एक विषय की ओर लगी रहती है। रजोगुण और तमोगुण दबे रहते हैं। अतः उस एक विषय की ओर अग्र या उन्मुख वृत्ति वाली अवस्था को एकाग्रभूमि कहते हैं।

5. निरुद्धम् - 'निरुद्धं च निरुद्धसकलवृत्तिकं संस्कारमात्र-शेषमित्यर्थः।'

जिस अवस्था में चित्त की तामस और राजस वृत्तियों के साथ-साथ सात्विक वृत्ति का भी निरोध हो जाता है, केवल संस्कारमात्र चित्त में रहते हैं, उसे निरुद्ध भूमि कहते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण स्पष्ट है कि चित्तभूमियों में चल और अचलत्व की गणना नहीं होती है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- पातञ्जलयोगदर्शन (1/1)-सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, पेज 6

12. निरुक्तकारेण केन क्रमेण पदजातानि वर्णितानि?

1 आख्यातम् **2 उपसर्गाः**

3 निपाताः **4 नाम**

अत्र कः क्रमः? स्पष्टयत-

(A) 4 1 2 3
(B) 1 3 2 4
(C) 2 1 3 4
(D) 3 2 4 1

व्याख्या- आचार्य यास्क प्रणीत निरुक्त है। यह निरुक्त निघण्टु का व्याख्या ग्रन्थ है। मूलग्रन्थ निघण्टु कहलाता है।

➢ निरुक्त के प्रारम्भिक तीन अध्याय नैघण्टुक काण्ड 4-6 तक, अगले तीन अध्याय नैगमकाण्ड और अन्तिम छः अध्याय दैवतकाण्ड नाम से कहे जाते हैं।

➢ **चत्वारि पदजातानि नामाख्याते च, उपसर्ग-निपाताश्च, तानीमानि भवन्ति।**

ये नाम और आख्यात तथा उपसर्ग एवं निपात रूप चार प्रकार के पद प्रसिद्ध हैं।

➢ **'भावप्रधानमाख्यातम् सत्त्वप्रधानानि नामानि'**

क्रिया की जिसमें प्रधानता होती है, वह आख्यात है और जिसमें सत्त्व अर्थात् द्रव्य की प्रधानता हो वह नाम पद कहलाता है।

➢ **षड् भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः। जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते, विनश्यति इति।**

छः प्रकार के क्रियाओं के भेद होते हैं-

यह वार्ष्यायणि आचार्य का मत है - जायते (उत्पन्न होना) अस्ति (रहता है।), विपरिणमते (परिवर्तित होता है।), वर्धते (बढ़ता है।), अपक्षीयते (क्षीण होता है), विनश्यति (नष्ट होता है।)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि निरुक्त के अनुसार चत्वारि पदजातानि का क्रम- नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- निरुक्त - आचार्य विश्वेश्वर, पेज 18

13. महाभारताश्रितं भासविरचितं ग्रन्थद्वयं किमस्ति?

a अभिज्ञानशाकुन्तलम् **b ऊरुभङ्गम्**

c स्वप्नवासवदत्तम् **d दूतघटोत्कचम्**

अधस्तनेषु समीचीनं विकल्पं चिनुत-

(A) a एवं d **(B)** b एवं c
(C) c एवं d **(D)** b एवं d

व्याख्या-

कवि	**ग्रन्थ**	**उपजीव्य**
भास	ऊरुभङ्गम्	महाभारत
भास	दूतवाक्यम्	महाभारत
भास	पञ्चरात्रम्	महाभारत
भास	दूतघटोत्कचम्	महाभारत

भास	कर्णभार	महाभारत
भास	मध्यमव्यायोग	महाभारत
भास	बालचरितम्	महाभारत
भास	प्रतिमानाटकम्	रामायण
भास	अभिषेकनाटकम्	रामायण
भास	प्रतिज्ञायौगन्धरायण	उदयनकथामूलक
भास	स्वप्नवासवदत्तम्	उदयनकथामूलक
कालिदास	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	महाभारत
कालिदास	रघुवंशम्	रामायण
भारवि	किरातार्जुनीयम्	महाभारत
श्रीहर्ष	नैषधीयचरितम्	महाभारत
माघ	शिशुपालवधम्	महाभारत
भट्टनारायण	वेणीसंहार	महाभारत
भवभूति	उत्तररामचरितम्	रामायण
त्रिविक्रमभट्ट	नलचम्पू	महाभारत

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महाभारत आश्रित और भास विरचित ग्रन्थ - ऊरुभङ्ग और दूतघटोत्कच हैं। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास - उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 465-466

14. पुरूरवा-उर्वशीसंवादसूक्ते कियन्तो मन्त्राः सन्ति?

(A) एकादश **(B)** पञ्चदश

(C) सप्तदश **(D)** अष्टादश

व्याख्या- * ऋग्वेद के संवाद सूक्त *

➢पुरूरवा - उर्वशी संवाद सूक्त

मण्डल - 10
सूक्त - 95
कुल मन्त्र - 18
ऋषि - पुरूरवा ऐळ और उर्वशी
देवता - उर्वशी और पुरूरवा ऐळ
छन्द - त्रिष्टुप्
स्वर - धैवत

➢यम - यमी संवाद सूक्त

मण्डल - 10
सूक्त - 10
कुल मन्त्र - 14
ऋषि - यम वैवस्वत, यमी
देवता - यम वैवस्वत, यमी वैवस्वती
छन्द - त्रिष्टुप्

➢सरमा - पणि संवाद सूक्त

मण्डल - 10
सूक्त - 108
कुल मन्त्र - 11
ऋषि - पणि एवं सरमा
देवता - सरमा एवं पणि
छन्द - त्रिष्टुप्
स्वर - धैवत

➢विश्वामित्र नदी संवाद-

मण्डल - 3
सूक्त - 33
कुल मन्त्र - 13
ऋषि - विश्वामित्र
देवता - नदियाँ विपाट्, शुतुद्री
छन्द - पंक्ति, त्रिष्टुप्

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पुरूरवा-उर्वशी संवाद सूक्त में कुल 18 मन्त्र हैं। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वैदिकवाङ्मय दृष्टि - सर्वज्ञभूषण, पेज 10

15. दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि।
एता जुषत मे गिरः॥
उपर्युक्तमन्त्रे 'गिरः' पदस्य अर्थौ स्तः -

a पर्वतः **b गिरिः**
c वाणी **d स्तुतिः**

अत्र समीचीनमुत्तरं चिनुत-

(A) b एवं c **(B)** a एवं b

(C) c एवं d **(D)** b एवं d

व्याख्या- वरुण सूक्त संक्षिप्त परिचय-

मण्डल - 1
सूक्त - 25
कुल मन्त्र - 21
ऋषि - अजीगर्त शुनःशेप

देवता - वरुण

छन्द - गायत्री

स्वर - षड्ज

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि।

एता जुषत मे गिरः ॥ (1.25.18)

सम्पूर्ण विश्व के द्वारा देख सकने योग्य उस वरुण को निश्चित रूप से मैंने देख लिया है। भूमि पर उस वरुण के रथ को मैंने देख लिया है। उस वरुण देवता ने इन मेरी स्तुतियों को ग्रहण कर लिया है।

शब्दार्थ -

दर्शम् - देख लिया है।

जुषत - ग्रहण कर लिया है।

गिरः - स्तुतियों को

अधिक्षमि - भूमि पर

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'गिरः' शब्द का अर्थ वाणी और स्तुति दोनों होगा। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वरुण सूक्त - (1.25.18)

16. नाट्यशास्त्रे विश्वकर्मणा प्रेक्षागृहस्य त्रैविध्ये वर्णितम्?

a विकृष्टम् **b त्र्यस्त्रम्**

c चतुरस्त्रम् **d अष्टास्त्रम्**

उपर्युक्तेषु समीचीनमुत्तरं चिनुत -

(A) a एवं b **(B)** a एवं d

(C) b एवं d **(D)** c एवं d

व्याख्या- आचार्य भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र में कुल 36 अध्याय हैं। इसमें श्लोकों की संख्या 6000 है। इसलिये इसे 'षट्साहस्रीसंहिता' के नाम से भी जाना जाता है।

➢ नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में नाट्यशास्त्र की दिव्य उत्पत्ति का मनोरंजक एवं विशद वर्णन हुआ है।

➢ द्वितीय अध्याय में नाट्यमण्डप के भेदोपभेदों का निरूपण हुआ है।

➢ नाट्यशास्त्र में नाट्यमण्डप के दो प्रकार से भेद किये गये हैं। पहला आकार की दृष्टि से, दूसरा प्रमाण की दृष्टि से।

➢ आकार की दृष्टि से नाट्य-मण्डप के तीन प्रकार होते हैं - विकृष्ट, चतुरस्र और त्र्यस्र।

प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां त्रिप्रकारो विधिः स्मृतः।

विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्र्यस्रश्चैव प्रयोक्तृभिः॥

त्रिविधः सन्निवेशश्च शास्त्रतः परिकल्पितः।

विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्र्यस्रश्चैव तु मण्डपः॥

इसी प्रकार शास्त्रीय रीति से प्रेक्षागृह के तीन भेद - विकृष्ट, चतुरस्र और त्र्यस्र होते हैं।

1. विकृष्ट - वह मण्डप है जो आयत अर्थात् ऐसे चतुर्भुज के आकार के समान होता है जिसकी आमने-सामने की भुजाएँ समानान्तर एवं तुल्य होती है तथा प्रत्येक कोण समकोण होता है।

2. चतुरस्र - यह मण्डप वर्गाकार अर्थात् उस चतुर्भुज के आकार का होता है जिसकी चारों भुजाएँ और कोण तुल्य होते हैं।

3. त्र्यस्र - त्रिभुजाकार नाट्यमण्डप जिसकी तीनों भुजाएँ और कोण तुल्य होते हैं। त्र्यस्र कहलाता है।

त्र्यस्रं त्रिकोणं कर्तव्यं नाट्यवेश्म प्रयोक्तृभिः॥

प्रमाण की दृष्टि से भी नाट्यमण्डप तीन प्रकार के होते हैं - (1) ज्येष्ठ (2) मध्य और (3) कनीय

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृह या नाट्यमण्डप को विश्वकर्मा को बनाने की आज्ञा दी गई थी। वह नाट्यमण्डप तीन प्रकार- विकृष्ट, चतुरस्र और त्र्यस्र है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- नाट्यशास्त्र - ब्रजमोहन चतुर्वेदी, पेज 126

17. ध्वन्यालोके प्रतीयमानस्य तृतीयः प्रभेदः कः?

(A) अलङ्कारादिः **(B)** गुणादिः

(C) रसादिः **(D)** वृत्यादिः

व्याख्या- ध्वनि सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्धन प्रणीत ध्वन्यालोक में चार उद्योत हैं। इसके प्रथम उद्योत में काव्यलक्षण 'काव्यस्यात्मा ध्वनिः' काव्य की आत्मा ध्वनि है, का प्रतिपादन किया गया है। इसके बाद वाच्यादि को बताते हुए प्रतीयमान को बताते हैं-

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।

यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्ग-नासु ॥ (1/4)

प्रतीयमान कुछ और ही चीज है जो रमणियों के प्रसिद्ध (मुख, नेत्र, श्रोत्र, नासिकादि) अवयवों से भिन्न उनके लावण्य के समान, महाकवियों की सूक्तियों में वाच्य अर्थ से अलग ही भासित होता है।

1. वस्तुध्वनि का वाच्यार्थ से स्वरूपकृत भेद-

वह प्रतीयमान अर्थ वाच्य सामर्थ्य से आक्षिप्त वस्तुमात्र, अलङ्कार और रसादि भेद से अनेक प्रकार का दिखाया जायेगा।

➤ उन सभी भेदों में वह वाच्य से अलग ही है। जैसे पहला वस्तुध्वनि भेद वाच्य से अत्यन्त भिन्न है।

➤ क्योंकि कहीं वाच्य के विधिरूप होने पर भी वह प्रतीयमान निषेध रूप होता है।

उदाहरण- स हि कदाचित् वाच्ये विधिरूपे प्रतिषेधरूपः-

भ्रम धार्मिक विस्रब्धः स शुनकोऽद्य मारितस्तेन।
गोदावरीकच्छकुञ्जवासिना दृप्तसिंहेन ॥

पण्डित जी महाराज! गोदावरी के किनारे कुञ्ज में रहने वाले मदमत्त सिंह ने आज उस कुत्ते को मार डाला है। आप निश्चिन्त होकर घूमिये।

विशेष - इस श्लोक का वाच्यार्थ तो विधिरूप है परन्तु जो उससे प्रतीयमान अर्थ (वस्तुध्वनि) है, वह निषेधरूप है इसलिए वाच्यार्थ से प्रतीयमान अर्थ अत्यन्त भिन्न है।

क्वचिद् वाच्ये प्रतिषेधरूपे विधिरूपो यथा-

श्वश्रूरत्र निमज्जति अत्राहं दिवसकं प्रलोकय।
मा पथिक रात्र्यन्धक शय्यायां मम निमंक्ष्यसि॥

कही वाच्यार्थ प्रतिषेधरूप होने पर प्रतीयमानार्थ विधिरूप होता है- जैसे- हे पथिक! दिन में अच्छी तरह देख लो, यहाँ सास जी सोती हैं, और यहाँ मैं सोती हूँ। रात को रतौंधीग्रस्त होकर कहीं हमारी खाट पर न गिर पड़ना।

यहाँ वाच्यार्थ निषेधरूप है, परन्तु व्यङ्ग्यार्थ (प्रतीयमानार्थ) विधिरूप है।

2. अलङ्कारध्वनि का वाच्यार्थ से भेद-

इस प्रकार वाच्यार्थ से भिन्न प्रतीयमान (वस्तुध्वनि) के और भी भेद हो सकते हैं। यह तो इनका केवल दिग्दर्शनमात्र है। दूसरा अलङ्कारध्वनिरूप प्रकार भी वाच्यार्थ से भिन्न है।

3. रसध्वनि का वाच्यार्थ से भेद-

'तृतीयस्तु रसादिलक्षणः प्रभेदो वाच्यसामर्थ्याक्षिप्तः प्रकाशते ....' तीसरा रसध्वनि रसादिरूप भेद वाच्य के सामर्थ्य से आक्षिप्त होकर ही प्रकाशित होता है, साक्षात् शब्दव्यापार अभिधा, लक्षणा, तात्पर्या, शक्तिव्यापार का विषय नहीं होता, इसलिए वाच्यार्थ से भिन्न ही है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि ध्वन्यालोक में प्रतीयमान के तीन भेद हैं- वाच्य, अलङ्कार, रसध्वनि। इसलिये तृतीय प्रभेद रसध्वनि है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- ध्वन्यालोक (1.4) - आचार्य विश्वेश्वर, पेज 13-18

18. राम शब्दस्य पञ्चम्येकवचनस्य विषये समुचितं कथनं नास्ति?

(A) रामात् इति रूपं सम्भवति
(B) रामाद् इति रूपम्भवति
(C) अवसाने खरः स्थाने चरो भवति
(D) अवसाने झलां चरो वा स्युः

व्याख्या- राम शब्द की सिद्धिप्रक्रिया के अन्तर्गत राम शब्द का पञ्चमी एकवचन रामात् और रामाद् रूप बनता है।

वाऽवसाने (8.4.55)- अवसाने झलां चरो वा। रामात्, रामाद्, रामाभ्याम्। रामेभ्यः।

यदि झल् प्रत्याहार में स्थित वर्ण के बाद वर्णों का अभाव (अवसान) हो तो उसके (झल् के) स्थान पर विकल्प से चर् हो जाता है। इसके फलस्वरूप दो रूप प्राप्त होते हैं, रामात् और रामाद्।

इससे स्पष्ट है कि अकारान्त राम आदि शब्दों के पञ्चमी विभक्ति के एकवचन में अन्त में आने वाले प्रत्यय 'ङसि' के स्थान में 'टाङसिँङसामिनात्स्याः' सूत्र से जो 'आत्' आता है उसके तकार के स्थान पर जब 'झलां जशोऽन्ते' से 'द्' हो जाता है तब 'वाऽवसाने' नियम के अनुसार पुनः द् को विकल्प से 'त्' होकर दोनों रूप प्राप्त होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट होता है कि राम शब्द के पञ्चमी विभक्ति एकवचन के विषय में 'अवसाने खरः स्थाने चरो भवति' यह अशुद्ध कथन है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी, भैमी व्याख्या (भाग-1), पेज 183-187

19. वैदिकसाहित्ये अधोलिखितानां सुनिश्चितक्रमो लेख्यः-

(1) ब्राह्मणम् **(2) उपनिषद्**
(3) शुक्लयजुर्वेदः **(4) सूत्रसाहित्यम्**

अधोलिखितेषु उचितक्रमं चिनुत-

(A) 2 1 4 3
(B) 3 1 2 4
(C) 1 2 3 4
(D) 4 1 2 3

व्याख्या- ➤ वेद शब्द ज्ञानार्थक विद् धातु (विद ज्ञाने) से घञ् (अ) प्रत्यय करने पर बनता है।

➤ इसका आशय है- 'ज्ञान' अतः वेद शब्द का अर्थ होता है- ज्ञान की राशि या ज्ञान का संग्रह-ग्रन्थ।

➤ प्राचीन ऋषियों ने जो ज्ञान अपनी आर्ष दृष्टि से प्राप्त किया था, उसका संग्रह वेदों में है।

➤ संस्कृत व्याकरण के अनुसार वेद शब्द चार धातुओं से विभिन्न अर्थों में बनता है।

1. विद सत्तायाम् (होना दिवादिगण)
2. विद ज्ञाने (जानना, अदादिगण)
3. विद विचारणे (विचारना, रुधादिगण)
4. विद्लृ लाभे (प्राप्त करना, तुदादिगण)

सत्तायां विद्यते ज्ञाने, वेत्ति विन्ते विचारणे।
विन्दति विन्दते प्राप्तौ, श्यन्लुक्श्नम्शेष्विदं क्रमात्॥

इन अर्थों का समन्वय करते हुए ऋक्प्रातिशाख्य की व्याख्या में विष्णुमित्र ने वेद का अर्थ किया है -

विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते एभिर्धर्मादिपुरुषार्था इति वेदाः।

अर्थात् वेद शब्द का भावार्थ होता है -

(1) जिन ग्रन्थों के द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थ चतुष्टय के अस्तित्व का बोध होता है।
(2) इनसे पुरुषार्थ चतुष्टय का ज्ञान प्राप्त होता है।
(3) इनसे पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति होती है।
(4) इनसे पुरुषार्थ चतुष्टय का विवेचन किया गया है इस प्रकार वेद पुरुषार्थ चतुष्टय के सर्वांगीण विवेचन करने वाले ग्रन्थ हैं।

आचार्य सायण ने वेद शब्द की एक अन्य व्याख्या की है-

इष्टप्राप्त्यनिष्ट-परिहारयोरलौकिकम् उपायं यो ग्रन्थो वेदयति, स वेदः।

अर्थात् जो ग्रन्थ इष्टप्राप्ति और अनिष्ट निवारण का अलौकिक उपाय बताता है उसे वेद कहते हैं।

*** वैदिक साहित्य का विभाजन-** वैदिक साहित्य को सुविधा की दृष्टि से चार भागों में बाँटा गया है-

(1) वेदों की संहिताएँ (2) ब्राह्मणग्रन्थ (3) आरण्यकग्रन्थ (4) उपनिषद्

➤ वेदों की चार संहिताएँ हैं- (1) ऋग्वेदसंहिता (2) यजुर्वेदसंहिता (3) सामवेदसंहिता (4) अथर्ववेदसंहिता

➤ यजुर्वेद संहिता में दो भाग हैं- कृष्णयजुर्वेदसंहिता तथा शुक्लयजुर्वेदसंहिता

➤ **ब्राह्मण ग्रन्थ-** ब्राह्मणग्रन्थों में मुख्यतः ऐतरेयब्राह्मण, शतपथब्राह्मण, तैत्तिरीयब्राह्मण, पंचविंशब्राह्मण, षड्विंशब्राह्मण, जैमिनीयब्राह्मण और गोपथब्राह्मण आदि प्रमुख हैं।

➤ **आरण्यकग्रन्थ-** अरण्य (जंगल) में होने वाले अध्ययन, अध्यापन, मनन, चिन्तन, शास्त्रीय चर्चा आदि आरण्यक के अन्तर्गत आते हैं। ऐतरेय, शांखायन, बृहदारण्यक, तैत्तिरीयारण्यक, तलवकार आरण्यक आदि प्रमुख हैं।

➤ **उपनिषद् ग्रन्थ-** ऐतरेयोपनिषद् , तैत्तिरीयोपनिषद्, ईशोपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद्, कठोपनिषद्, केनोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, प्रश्नोपनिषद् आदि प्रमुख उपनिषद् हैं।

➤ **वेदाङ्ग-** वेदाङ्ग छः हैं- शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि वैदिकसाहित्य का सुनिश्चित क्रम इस प्रकार है- सर्वप्रथम शुक्लयजुर्वेदसंहिता, ब्राह्मणग्रन्थ, उपनिषद् और अन्तिम में कल्पसूत्र है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति - कपिलदेव द्विवेदी, पेज 01

20. पैलः इति पदं विद्यते -

a गणविशेषस्यादिमः शब्दः b पीलाया गोत्रापत्यम्
c पैले भवा d पैलस्य इयम्

अधोलिखितेषु समुचितं विकल्पं चिनुत -

(A) a एवं b **(B)** c एवं d
(C) a एवं c **(D)** b एवं d

व्याख्या- (a) ''पैलादिभ्यश्च'' (2.4.59) सूत्र के अनुसार पैल आदि गण का प्रथम शब्द ''पैल'' है। पैलादि गण आकृति गण है इसमें आने वाले शब्दों की संख्या निश्चित नहीं है। इसमें से कुछ प्रसिद्ध शब्द -पैल। शालङ्कि, सात्यकि, सात्यकामि, दैवि, औदमज्जि, औदव्रजि। औदमेधि, औदबुद्धि, दैवस्थानि, पैङ्गलायनि, राणायनि, शैहक्षिति, भौलिङ्गि, औङ्गाहमानि, औज्जिहानि।

(b) ''पीलाया वा'' (4.1.118) - सूत्र के अनुसार पीला शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। अण् प्रत्यय होने के कारण ''पीलायाः गोत्रापत्यम्'' इस अर्थ में ''पैलः'' शब्द बनता है।

(c), (d) ''पैले भवा'' इस अर्थ में ''तत्र भवः'' से अण् प्रत्यय होगा तथा ''पैलस्य इयम्'' में ''तस्येदम्'' सूत्र से अण् प्रत्यय होगा परन्तु उक्त दोनों विग्रहवाक्यों में ''भवा'' और ''इयम्'' शब्द दिया है फलस्वरूप स्त्रीलिङ्ग हो जाने के कारण ''पैली'' शब्द बनेगा।

स्पष्टीकरण- उक्त विवरण से स्पष्ट है कि **विकल्प 'C' सही हैं।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी भैमी व्याख्या (भाग-5), पेज 23

21. हरी + एतौ इत्यत्र भवतः-

a **यण् सन्धि** b **पररूपम्**

c **प्रगृह्यसंज्ञा** d **प्रकृतिभावः**

अधोलिखितेषु समुचितं विकल्पं चिनुत -

(A) a एवं b **(B)** b एवं c

(C) c एवं d **(D)** a एवं d

व्याख्या- ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् (1.1.11)

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यं स्यात्। हरी एतौ। विष्णू इमौ। गङ्गे अमू। ईदन्त, ऊदन्त तथा एदन्त द्विवचन प्रगृह्य सञ्ज्ञक हो।

उदाहरण- हरी एतौ- (ये दो हरि अर्थात् घोड़े व बन्दर हैं।)

यहाँ रेफोत्तर ईकार ईदन्त द्विवचन हैं। इसकी इस सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा होती है।

प्रगृह्यसंज्ञा होने से 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' सूत्र द्वारा प्रकृतिभाव हो जाता है। अतः एकार = अच् परे होने पर भी 'इको यणचि' से ईकार को यण् नहीं होता।

* **विष्णू इमौ -** (ये दो विष्णू हैं।)
* **गङ्गे अमू -** (ये दो गङ्गाएँ हैं।)

प्रकृतिभाव करने वाला सूत्र -

➢ **प्लुत-प्रगृह्या अचि नित्यम् (6.1.121)**

प्लुत और प्रगृह्यसंज्ञक अच् परे होने पर प्रकृति से रहते हैं।

उदाहरण- आगच्छ कृष्ण 3! अत्र गौश्चरति

➢ **अदसो मात् (1.1.12)-**

अदस् शब्द के मकार से परे ईत् और ऊत् प्रगृह्यसंज्ञक हों।

जैसे- अमी ईशाः

रामकृष्णावमू आसाते

➢ **ओत् (1.1.15)**

ओकार अन्त वाला निपात प्रगृह्य सञ्ज्ञक हो।

जैसे- अहो ईशाः।

➢ **सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे (1.1.16)**

सम्बुद्धि निमित्तक ओकार - अवैदिक अर्थात् वेद में न पाये जाने वाले 'इति' शब्द के परे होने पर विकल्प करके प्रगृह्य संज्ञक होता है।

जैसे- विष्णो इति

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'हरी + एतौ' में प्रगृह्य संज्ञा और प्रकृतिभाव हुआ है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी (भैमी व्याख्या भाग-1), पेज 83

22. पाणिनीयशिक्षानुसारं ऌकारस्य भेदाः सम्भवन्ति-

(A) ह्रस्वदीर्घौ **(B)** दीर्घप्लुतौ

(C) ह्रस्वप्लुतौ **(D)** ह्रस्वदीर्घप्लुताः

व्याख्या- स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः ॥4॥
अनुस्वारो विसर्गश्च ᳵक ᳶपौ चाऽपि पराश्रितौ।
दुस्स्पृष्टश्चेति विज्ञेय ऌकारः प्लुत एव च ॥5॥

स्वर बीस और (इक्कीस), स्पर्श पच्चीस, यकारादि अन्तःस्थ और ऊष्म वर्ण आठ और यम वर्ण चार, अनुस्वार (एक) विसर्ग क ख परक तथा प फ परक जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय वर्ण दो, दुस्स्पृष्टता को प्राप्त ऌकार (एक) जानना चाहिये।

विंशतिरेकः - 21 स्वर कौन-कौन से हैं -

ह्रस्व - अ ह्रस्व - इ ह्रस्व - उ ह्रस्व- ऋ
दीर्घ - आ दीर्घ - ई दीर्घ - ऊ दीर्घ - ॠ
प्लुत - अ3 प्लुत - इ3 प्लुत - उ3 प्लुत - ऋ3
3+ 3+ 3+ 3+
ह्रस्व ऌ - 01 = 12 + 01 = 13
दीर्घ - ए दीर्घ - ओ दीर्घ - ऐ दीर्घ - औ
प्लुत - ए3 प्लुत - ओ3 प्लुत - ऐ3 प्लुत - औ3
+2 +2 +2 +2

इस तरह कुल 13 + 08 = 21 स्वर हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पाणिनीयशिक्षानुसार ऌकार ह्रस्व और प्लुत होगा क्योंकि ऌ का दीर्घ नहीं होता। 'ऌकारस्य दीर्घाभावात्'। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- पाणिनीय शिक्षा (4-5 श्लोक) - दामोदर महतो, पेज 6

23. जैनमतानुसारं सप्ततत्त्वानां समुचितः क्रमोऽस्ति-

(A) आस्रवः, संवरः, बन्धः, निर्जरा, जीवः, अजीवः, मोक्षः
(B) बन्धः, आस्रवः, संवरः, निर्जरा, जीवः, अजीवः, मोक्षः
(C) जीवः, अजीवः, आस्रवः, बन्धः, संवरः, निर्जरा, मोक्षः
(D) बन्धः, जीवः, अजीवः, आस्रवः, संवरः, निर्जरा, मोक्षः

व्याख्या- जैनदर्शन का अपर नाम आर्हत दर्शन है।

जैन दर्शन के तीन रत्न - (1) सम्यक् दर्शन (2) सम्यक् ज्ञान (3) सम्यक् चरित्र

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग'

तज्ज्ञानं पञ्चविधं मतिश्रुतावधिमनः पर्यायकेवलभेदेन।

वह ज्ञान- (1) मति (2) श्रुत (3) अवधि (4) मनः पर्याय (5) केवल, इन भेदों के कारण पाँच प्रकार का है।

जैन तत्त्व-मीमांसा -

तावज्जीवाजीवाख्ये द्वे तत्त्वे स्तः। तत्र बोधात्मको जीवः। अबोधात्मस्त्वजीवः।

जीव और अजीव नामक दो तत्त्व हैं। उनमें ज्ञान के रूप में जीव है और अज्ञान के रूप में अजीव है।

सात तत्त्व -

जीवाजीवास्त्रवबन्धसम्वरनिर्जरमोक्षास्तत्त्वानि इति।

जीव, अजीव, आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व हैं।

सप्तभङ्गीनय -

सप्तभङ्गिनयाख्यं न्यायमवतारयन्ति जैनाः।

स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति चावक्तव्यः, स्यान्नास्ति चावक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः इति।

जैन लोग सर्वत्र सप्तभङ्गी-नय उपस्थित करते हैं।

1. स्यादस्ति - किसी प्रकार है।
2. स्यान्नास्ति - किसी प्रकार नहीं है।
3. स्यादस्ति च नास्ति च - किसी प्रकार है और नहीं है।
4. स्यादवक्तव्यः - किसी प्रकार अवर्णनीय है।
5. स्यादस्ति चावक्तव्यः - किसी प्रकार है और अवर्णनीय है।
6. स्यान्नास्ति चावक्तव्यः - किसी प्रकार नहीं है और अवर्णनीय है।
7. स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः - किसी प्रकार है, नहीं है और अवर्णनीय है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जैनमतानुसार सप्त तत्त्व हैं क्रमशः जीव, अजीव, आस्त्रवः, बन्धः, संवरः, निर्जरा, मोक्ष है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्त्रोत- सर्वदर्शनसंग्रह - उमाशंकर शर्मा, ऋषि, पेज 135

24. पूर्ववर्ती आचार्यस्य प्राथम्येन कालक्रमानुसारमुचितमुत्तरं निर्दिशत-

(a) क्षेमेन्द्रः **(b) अभिनवगुप्तः**

(c) भरतः **(d) रुय्यकः**

एषु क्रमं चिनुत-

(A) d c b a

(B) c b a d

(C) a d b c

(D) b d c a

व्याख्या-

आचार्य	कालक्रम	ग्रन्थ
भरतमुनि	300 ई.	नाट्यशास्त्र
अभिनवगुप्त	980-1010ई.	तन्त्रालोक
क्षेमेन्द्र	1000-1070ई.	औचित्यविचारचर्चा
रुय्यक	1100-50ई.	अलङ्कारसर्वस्व
भामह	500 ई. लगभग	काव्यालङ्कार
आनन्दवर्धन	9वीं शताब्दी उत्तरार्ध	ध्वन्यालोक
रुद्रट	9वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध	काव्यालङ्कार
दण्डी	7वीं शताब्दी	काव्यादर्श
वामन	800-850 ई. लगभग	काव्यालङ्कारसूत्र
उद्भट	8वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध	काव्यालङ्कारसारसंग्रह
धनञ्जय	10वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध	दशरूपक
कुन्तक	11वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध	वक्रोक्तिजीवितम्
मम्मट	1050ई. लगभग	काव्यप्रकाश
भोजराज	11वीं शताब्दी लगभग	सरस्वतीकण्ठाभरण
विश्वनाथ	14वीं शताब्दी	साहित्यदर्पण
पण्डितराज जगन्नाथ	17वीं शताब्दी	रसगङ्गाधर

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आचार्यों का सही क्रम-भरत, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, रुय्यक है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्त्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 577,581,583,584

25. भर्तृहरेः कृती इमे -

a दीपिका **b प्रदीपः**

c द्योतनम् **d वाक्यपदीयम्**

अधोलिखितेषु समुचितं विकल्पं चिनुत -

(A) a एवं b **(B)** b एवं c

(C) a एवं d **(D)** b एवं d

व्याख्या- पाणिनि की अष्टाध्यायी के सूत्रों पर कात्यायनादि द्वारा प्रणीत वार्त्तिकों के आधार पर विशिष्ट शैली में लिखा गया व्याख्यान ग्रन्थ महाभाष्य नाम से प्रसिद्ध है।

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः।

स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥

➢ इसका विभाजन आह्निकों में है - 'अह्ना निवृत्तम् आह्निकम्'-

इस व्युत्पत्ति से यह प्रतीत होता है कि एक-एक दिन के अध्यापनीय या अध्यापित विषय का संग्रह एक-एक आह्निक में किया गया है।

➢ प्रथम आह्निक भूमिकात्मक है और इसे 'पस्पशा' नाम से कहा जाता है।

➢ प्रथम आह्निक में मुख्य रूप से शब्द का स्वरूप, व्याकरणाध्ययन के प्रयोजन, शब्दानुशासन की पद्धति, शब्द-अर्थ-सम्बन्ध की नित्यता, व्याकरणशास्त्र द्वारा नियम का बोधन, अप्रयुक्त शब्दों के भी अन्वाख्यान की आवश्यकता, शुद्ध शब्दों के ज्ञान में धर्म की उत्पत्ति, व्याकरण पद का अर्थ और अइउण् आदि वर्णसमाम्नाय के उपदेश के प्रयोजन प्रतिपादित हैं।

महाभाष्य की व्याख्याएँ -

दीपिका -

➢ भर्तृहरि की 'महाभाष्यदीपिका' ही सबसे प्राचीन मानी जाती है।

➢ भर्तृहरि की 'दीपिका' प्रारम्भिक तीन आह्निकों पर ही प्रकाशित है।

➢ वाक्यपदीय भी भर्तृहरि की अमर कृति है।

➢ वाक्यपदीयम् में ब्रह्मकाण्ड, वाक्यकाण्ड और पदकाण्ड तीन काण्ड हैं।

➢ भर्तृहरि का समय चतुर्थ और पञ्चम शती के मध्य माना जाता है।

➢ जैय्यट पुत्र कैयट का 'प्रदीप' व्याख्यान सर्वातिशयी है। यह पूरे महाभाष्य पर लिखा गया है।

➢ कैयटकृत 'प्रदीप' टीका पर विद्वानों ने अनेक व्याख्याएँ लिखीं। जिनकी संख्या 15 है। इनमें नागेशभट्ट कृत उद्द्योत सर्वश्रेष्ठ और अत्यन्त गम्भीर है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि भर्तृहरि की दो कृतियाँ-दीपिका और वाक्यपदीयम् हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- महाभाष्यम् - जयशङ्करलाल त्रिपाठी, पेज भू. 06

26. अधोऽङ्कितानां केन सह कस्य सम्बन्धः?

(a) प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्	**(i) जैनाः**
(b) सप्तभङ्गिनयः	**(ii) सांख्यदर्शनम्**
(c) हेत्वाभासाः	**(iii) चार्वाकाः**
(d) सत्कार्यवादः	**(iv) नैयायिकाः**

अत्र समुचितं विकल्पं चिनुत -

(A)	4	1	3	2
(B)	3	1	4	2
(C)	2	4	3	1
(D)	1	3	2	4

व्याख्या- * दर्शन शब्द दृश् धातु से ल्युट् प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। दर्शन शब्द का अर्थ है- जिसके द्वारा किसी वस्तु को देखा या समझा जाय।

* भारतीयदर्शन की दो शाखाएँ हैं- आस्तिक तथा नास्तिक
* जो दर्शन वेदों को प्रमाण रूप में स्वीकार करते हैं, उन्हें आस्तिक दर्शन कहते हैं जिनमें सांख्य, योग, न्याय-वैशेषिक पूर्वमीमांसा एवं उत्तरमीमांसा (वेदान्त) की गणना करते हैं।
* जो दर्शन वेदों को प्रमाण रूप में स्वीकार नहीं करते हैं उन्हें नास्तिक दर्शन कहते हैं। जिनमें चार्वाक, बौद्ध, जैन प्रमुख रूप से हैं।
* सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक, पूर्व मीमांसा-उत्तरमीमांसा इन्हें षड्दर्शन भी कहते हैं।

➢ **चार्वाकदर्शन -** चार्वाकदर्शन को 'लोकायत' के नाम से भी जाना जाता है।

* चार्वाकदर्शन में चार महाभूत तत्त्व हैं - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु।
* यह दर्शन प्रत्यक्षमात्र को ही प्रमाण मानता है। 'प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्'

➢ **जैन दर्शन -**

* जैन दर्शन को आर्हत दर्शन के नाम से भी जाना जाता है।
* जैन दर्शन दो तत्त्व मानता है - जीव और अजीव
* जैन दर्शन में त्रिरत्न हैं - सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग।'
* सप्त भङ्गीनय है - स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति चावक्तव्यः, स्यान्नास्ति चावक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः। 'सप्तभङ्गिनयाख्यं न्यायमवतारयन्ति जैनाः।'

➢ **न्यायदर्शन -** न्यायदर्शन का प्रथम ग्रन्थ न्यायसूत्र है, जिसमें पाँच अध्याय हैं। इसके प्रणेता गौतम हैं।

* न्यायदर्शन में सोलह पदार्थों के ज्ञान से मोक्षप्राप्ति बताई गई है।
* न्यायदर्शन चार प्रमाण मानता है- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। 'तच्चतुर्विधं प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात्।'
* न्यायदर्शन में पाँच प्रकार के हेत्वाभास माने गये हैं- सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम, असिद्ध और बाधित

हेत्वाभासः पञ्चविधः - सव्यभिचार-विरुद्ध-प्रकरणसम-असिद्धबाधितभेदात्।

➤ **सांख्यदर्शन-** सांख्यदर्शन के प्रणेता कपिलमुनि हैं। सांख्यदर्शन का प्रकरणग्रन्थ सांख्यकारिका है, जिसके प्रणेता आचार्य ईश्वरकृष्ण हैं।

* सांख्यदर्शन तीन प्रमाण मानता है- प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम
दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात् ।
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि॥ (सा. का. 04)
* सांख्यदर्शन सत्कार्यवाद मानता है-
असदकरणादुपादानग्रहणात्सर्वसम्भवाभावात् ।
शक्तस्य शक्यकरणात्कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥
(सा. का. 09)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- सर्वदर्शनसंग्रह- उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 04,146,545, 403

27. संस्कृत-आलोचनापरम्परायां वाल्मीकिरामायणं कीदृशं काव्यं मन्यन्ते?
(A) अरससिद्धकाव्यम् **(B)** सिद्धरसकाव्यम्
(C) असिद्धरसकाव्यम् **(D)** सिद्धासिद्धरसकाव्यम्

व्याख्या- आचार्य आनन्दवर्धन प्रणीत ध्वन्यालोक के प्रथम उद्योत में (कहे गये प्रकार से) ध्वनि के दो भेद बताये हैं - इनके निरूपण के अनन्तर द्वितीयोद्योत में व्यङ्ग्य की दृष्टि से ही भेदपूर्वक ध्वनि के निरूपण के बाद ध्वनिकार पुनः तीसरे उद्योत में व्यञ्जक की दृष्टि से ध्वनि के स्वरूप का निरूपण करते हैं।

प्रबन्ध के रसाभिव्यञ्जकत्व का प्रथम हेतु -

सन्ति सिद्धरसप्रख्या ये च रामायणादयः।
कथाश्रया न तैर्योज्या स्वेच्छा रसविरोधिनी॥

सिद्धरस के समान रामायण आदि जो कथा के आश्रय हैं, उनमें स्वेच्छा का प्रयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि स्वेच्छा रस की विरोधिनी होती है।

'सिद्धरसप्रख्या' पद के सिद्ध शब्द का अर्थ है कि वे केवल आस्वादन के ही योग्य हैं। उनमें रस भावनीय नहीं है। कथाओं के आश्रय इतिहास हैं। उन इतिहासों के अर्थों के साथ स्वेच्छा को नहीं जोड़ना चाहिए।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि संस्कृत आलोचना परम्परा में वाल्मीकिरामायण को 'सिद्धरस काव्य' माना जाता है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- ध्वन्यालोक (तृतीय उद्योत) - शिवप्रसाद द्विवेदी, पेज 401

28. रथाङ्गपाणेः पटलेन रोचिषामृषित्विषः संवलिता विरेजिरे।
चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरोस्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः॥
अस्मिन् श्लोके 'तुषारमूर्तिः' इति शब्दः कस्य वाचकः?
(A) सूर्यस्य **(B)** चन्द्रस्य
(C) श्रीकृष्णस्य **(D)** रथस्य

व्याख्या- महाकवि माघ द्वारा प्रणीत एकमात्र महाकाव्य शिशुपालवधम् बृहत्त्रयी के अन्तर्गत आता है। शिशुपालवध महाकाव्य बीस सर्गात्मक है। जिसके प्रथम सर्ग में नारद जी की कान्ति की हरि के श्यामल किरणों से मिश्रित होने का वर्णन किया गया है -

रथाङ्गपाणेः पटलेन रोचिषामृषित्विषः संवलिता विरेजिरे।
चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरोः तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः॥ (1/21)

चक्रपाणि (श्रीकृष्ण) के कान्तिपुञ्ज से मिली हुई मुनि की किरणें रात्रि में हिलते-डुलते पत्तों के बीच में पड़ने वाली चन्द्र किरणों की तरह सुशोभित हुई।

टिप्पणी -

रथाङ्गपाणेः - हाथ में चक्र धारण करने वाले (श्रीकृष्ण)
ऋषित्विषः - नारद जी की आभायें
नक्तम् - रात में
तुषारमूर्तेः - हिम शरीर वाले चन्द्रमा की
अंशवः - किरणें
विरेजिरे - सुशोभित हुई

अन्य विशेषण -

वसुदेवसद्मनि - वसुदेव के घर में
हिरण्यगर्भाङ्गभुवम् - ब्रह्मा के पुत्र
मुनिम् - नारद को
अनूरुसारथेः - सूर्य
व्रततीततीः - लताओं के समूहों
धराधरेन्द्रम् - हिमालय
शितिवाससः - बलभद्र जी (बलराम)
हिमशुभ्रम् - तुषार के समान गौर
घनान्ते - शरद् ऋतु में
नागेन्द्रम् - गजराज
महती - नारद की वीणा का नाम
तपोनिधिः - नारद
अच्युतः - कृष्ण

देवकीसुतं - श्रीकृष्ण
धातुश्चरणौ - नारद जी के चरणों में
आदिपूरुषः - श्रीकृष्ण
तप्तकार्तस्वर - तपे सोने के समान
पुण्डरीकाक्षः - श्रीकृष्ण
कैटभद्विषः - कैटभ नामक असुर के शत्रु
भानुना - सूर्य
विष्टरे - आसन पर
व्रती - नियमी, तपस्वी (नारद)
पुराविदः - प्राचीन तत्त्व को जानने वाले (कपिल आदि मुनि)
ओकसः - गृह का
हेलया - अनायास, खेल-खेल में
धरित्री - पृथ्वी
त्रिदिवात् - स्वर्ग से
विश्वम्भर - श्रीकृष्ण से
रवेः ऋते - सूर्य के बिना
उपेन्द्र - श्रीकृष्ण
अहिद्विषः - इन्द्र का
तपनद्युति - सूर्य सदृश तेजस्वी
द्युसदाम् - स्वर्ग में रहने वाले देवताओं के
पिनाकिनः - शङ्करः
नमुचिद्विषा - इन्द्र से
कौशिकः - इन्द्र अथवा उल्लू

स्पष्टीकरण - उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'तुषारमूर्तेः' शब्द का अर्थ 'चन्द्रमा' है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- शिशुपालवधम् (1/21)

29. (A) स किंसखा साधु न शास्ति यो नृपम्। इयं पंक्तिः भारवेः किरातार्जुनीयादुद्धृतोऽस्ति।
(R) वनेचरः युधिष्ठिरं प्रति दुर्योधनस्य सत्यं वृत्तान्तमवबोध-यितुं वदति अधोलिखितेषु उचितं कारणं लिखत-

(A) (A) कथनं मित्रस्य साधुशीलतां प्रमाणी करोति
(R) कथनं वनेचरस्य स्वामिनः वञ्चनां निषेधयति
(B) (A) कथने नृपस्य स्वरूपं वर्णितमस्ति
(R) कथने दुर्योधनं प्रति वनेचरस्य सहृदयता ज्ञायते
(C) (A) कथने सः पदेन वनेचरः नृपम् पदेन सुयोधनं कथितमस्ति।
(R) कथनेन सुयोधनं प्रति सेवाभावोऽस्ति।
(D) (A) कथने सखा वनेचर अस्ति
(R) वनेचरः युधिष्ठिरं सत्यं वृत्तान्तं न कथयति

व्याख्या- महाकवि भारविप्रणीत किरातार्जुनीयम् महाकाव्य बृहत्त्रयी के अन्तर्गत परिगणित अठारह सर्गों वाला महाकाव्य है। जिसके नायक अर्जुन और नायिका द्रौपदी है।

राजा युधिष्ठिर के द्वारा नियुक्त ब्रह्मचारी वेश वाला वनेचर दुर्योधन के राज्यकार्यों को जानकर आया है और कहता है-

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं
हितान्न यः संश्रृणुते स किम्प्रभुः।
सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं
नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः (॥1/5॥)

जो राजा को समुचित उपदेश नहीं देता है क्या वह मित्र है? (कभी नहीं) अथवा वह कुत्सित मित्र है। इसी प्रकार जो शुभाकांक्षी व्यक्ति से सदुपदेश नहीं सुनता है क्या वह प्रभु है? (कभी नहीं) अथवा वह निन्दनीय नरेश है। क्योंकि राजाओं तथा सचिवों के परस्पर अनुकूल रहने पर ही समग्र सम्पत्तियाँ सदैव अनुराग करती हैं। (अन्यथा नहीं)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त पंक्ति से स्पष्ट होता है कि वनेचर कथन (A) में मित्र की साधुशीलता को प्रमाणित कर रहा है। और कथन (R) में स्वामी को धोखा नहीं देना चाहिये या झूठ नहीं बोलना चाहिये। धोखा देने का निषेध कर रहा है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- किरातार्जुनीयम् (1/5)

30. वेदान्तसारानुसारं तत्त्वमसि इत्यत्र अखण्डार्थबोधक-सम्बन्धः कतिविधः?

(A) चतुर्विधः **(B)** त्रिविधः
(C) द्विविधः **(D)** पञ्चविधः

व्याख्या- आचार्य बादरायणकृत ब्रह्मसूत्र वेदान्त या उत्तरमीमांसा का आधारग्रन्थ है। इसी का दूसरा नाम वेदान्तसूत्र भी है।

* ब्रह्मसूत्र पर लिखा गया आचार्य शङ्कर का 'शारीरकभाष्य' इस दर्शन का अद्भुत ग्रन्थ माना गया है।
* प्रस्थानत्रयी के नाम से प्रसिद्ध उपनिषद्, गीता एवं ब्रह्मसूत्र सभी वेदान्त सम्प्रदायों के प्रमुख आधार ग्रन्थ हैं।
* ब्रह्म और जीव का ऐक्य प्रतिपादन करना ही इस दर्शन का मुख्य उद्देश्य रहा है।

➢ महावाक्य के अर्थ का वर्णन किया जा रहा है-

यह 'तत्त्वमसि' (वह तू है) इत्यादि वाक्य तीन सम्बन्धों से अखण्ड अर्थ का बोध कराने वाला होता है। वे तीन सम्बन्ध

वस्तुतः दो पदों का समानाधिकरण्य सम्बन्ध, दो पदों के अर्थों का विशेषणविशेष्यभाव सम्बन्ध एवं आन्तरिक आत्मा तथा उसको बताने वाले लक्षण दोनों में लक्ष्यलक्षणभाव सम्बन्ध है।

अथ महावाक्यार्थो वर्ण्यते। इदं तत्त्वमसीतिवाक्यं सम्बन्धत्रयेणाखण्डार्थबोधकं भवति। सम्बन्धत्रयं नाम पदयोः समानाधिकरण्यं पदार्थयोर्विशेषणविशेष्यभावः प्रत्यगात्मलक्षणयोर्लक्ष्यलक्षणभावश्चेति। तदुक्तम् -

समानाधिकरण्यं च विशेषणविशेष्यता
लक्ष्यलक्षणसम्बन्धः पदार्थप्रत्यगात्मनाम् ॥ इति

* वेदान्त में चार महावाक्यों की चर्चा की गयी है-
(i) प्रज्ञानं ब्रह्म (एतरेयोपनिषद् -5)
(ii) तत्त्वमसि (छान्दोग्योपनिषद् -6.8.7)
(iii) अहं ब्रह्मास्मि (बृहदारण्यकोपनिषद् 1.4.10)
(iv) अयमात्मा ब्रह्म (माण्डूक्य 02)

➢ यहाँ लक्ष्यलक्षणसम्बन्ध को 'भागलक्षणा' भी कहा जाता है।
➢ लक्षणा तीन प्रकार से होती है-
(i) जहत् लक्षणा (ii) अजहत् लक्षणा (iii) जहत् अजहत् लक्षणा। इसी को भागलक्षणा भी कहा गया है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि तत्त्वमसि अखण्डार्थबोधक सम्बन्ध तीन प्रकार से सम्बद्ध है।

अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत- वेदान्तसार - राकेश शास्त्री, पेज 232-233

31. रामायणस्य बालकाण्डस्य सर्गानुसारम् उपाख्यानानां समुचितः क्रमोऽस्ति -
(A) शुनःशेपाख्यानम्-ऋष्यशृङ्गाख्यानम्-क्रौञ्चवधाख्यानम्-अहिल्योद्धाराख्यानम्
(B) क्रौञ्चवधाख्यानम्-ऋष्यशृङ्गाख्यानम्-अहिल्योद्धाराख्यानम्-शुनःशेपाख्यानम्
(C) क्रौञ्चवधाख्यानम्-शुनःशेपाख्यानम्-अहिल्योद्धाराख्यानम्-ऋष्यशृङ्गाख्यानम्
(D) ऋष्यशृङ्गाख्यानम्-शुनःशेपाख्यानम्-अहिल्योद्धाराख्यानम्-क्रौञ्चवधाख्यानम्

व्याख्या- * यह काव्य का आदिरूप है जिसकी रचना महर्षि वाल्मीकि ने की थी। वाल्मीकि को आदिकवि कहा गया है।
* रामायण सात काण्डों में विभक्त है -
बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड।
* प्रत्येक काण्ड सर्गों में विभक्त है। इस काव्य में सर्वाधिक संख्या अनुष्टुप् छन्द की है, जिसे श्लोक भी कहा जाता है।
* सम्पूर्ण ग्रन्थ में 24 सहस्र पद्य या श्लोक हैं। इसीलिए इसे 'चतुर्विंशतिसाहस्री संहिता' कहते हैं।

➢ **बालकाण्ड -**
* नारद जी का वाल्मीकि मुनि को संक्षेप से श्रीरामचरित्र सुनाना
* रामायण काव्य का उपक्रम तमसा के तट पर क्रौञ्चवध से सन्तप्त हुए महर्षि वाल्मीकि के शोक का श्लोकरूप में प्रकट होना तथा ब्रह्मा जी का उन्हें रामचरित्रमय काव्य के निर्माण का आदेश देना।
* सुमन्त्र का राजा को ऋष्यशृङ्ग मुनि को बुलाने की सलाह देते हुए उनके अङ्ग देश में जाने और शान्ता से विवाह करने का प्रसङ्ग सुनाना।
* गङ्गावतरण के उपाख्यान की महिमा
* श्रीराम के द्वारा अहल्या का उद्धार
* विश्वामित्र द्वारा शुनःशेप की रक्षा का सफल प्रयत्न
* विश्वामित्र ऋषि एवं महर्षि पद की प्राप्ति मेनका द्वारा उनका तपोभङ्ग तथा बह्मर्षि पद की प्राप्ति के लिए उनकी घोर तपस्या
* श्रीराम द्वारा धनुर्भङ्ग चारों भाइयों का विवाह
* श्रीराम का वैष्णव धनुष को चढ़ाकर अमोघ बाण के द्वारा परशुराम के तपःप्राप्त पुण्यलोकों का नाश करना तथा परशुराम का महेन्द्र पर्वत को लौट जाना
* राजा दशरथ का पुत्रों और वधुओं के साथ अयोध्या में प्रवेश।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि रामायण के बालकाण्ड में सर्गानुसार उपाख्यान क्रमशः हैं- क्रौञ्चवध उपाख्यान, ऋष्यशृङ्ग उपाख्यान, अहल्या उपाख्यान तत्पश्चात् शुनःशेप आख्यान है।

अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत - रामायण (प्रथम खण्ड), पेज 10, 12, 13

32. 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः' इति कथनमस्ति-
(A) साङ्ख्यदर्शने **(B)** योगदर्शने
(C) मीमांसादर्शने **(D)** वैशेषिकदर्शने

व्याख्या- * योगदर्शन के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि हैं।
* योग शब्द 'युज् + घञ्' से बना है, जिसका अर्थ है- समाधि।

* योगसूत्र के लेखक महर्षि पतञ्जलि हैं।
* योग को 'सेश्वरसांख्य' कहा जाता है क्योंकि यह ईश्वर तत्त्व को मानता है।
* योगसूत्र में चार पाद हैं- समाधिपाद - 51 सूत्र, साधनपाद- 55 सूत्र, विभूतिपाद - 55 और कैवल्यपाद - 34 सूत्र कुल 195 सूत्र हैं।
* योगदर्शन में पदार्थों (तत्त्वों) की संख्या 26 है।
* योगदर्शन में 26वाँ पदार्थ है 'ईश्वर', जिसको बताया जा रहा है-

'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।' (1/24)

* ईश्वर, क्लेश, कर्म, विपाक और आशय (वासनाओं) के परामर्श से रहित एक विशेष प्रकार का पुरुष है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश 'क्लेश' हैं। धर्म और अधर्म 'कर्म' है। कर्म का फल 'विपाक' है। उस विपाक से बनने वाले संस्कार 'वासना' कहलाते हैं, वही 'आशय' है। ये चारों बुद्धि में रहते हुए पुरुष में वर्तमान कहे जाते हैं और पुरुष बुद्धिगत फल का भोक्ता कहा जाता है जो पुरुष विशेष इस भोग से भी अपरामृष्ट है, वही ईश्वर है।
* योगदर्शन में तीन प्रमाण माने गये हैं -
  प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण हैं।
  'प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि' (1/7)
* योगदर्शन में पाँच वृत्तियों की चर्चा की गयी है -
  प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच वृत्तियाँ हैं।
  'प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः' (1/6)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः' यह योगदर्शन का कथन है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- पातञ्जलयोगदर्शन (1/24)-सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, पेज 80

33. ननु तन्तुसम्बन्ध इव तुर्यादिसम्बन्धोऽपि पटस्य विद्यते, तत्कथं तन्तुष्वेव पटः समवेतो जायते, न तुर्यादिषु? सत्यम् द्विविधः सम्बन्धः संयोगः समवायश्चेति। तत्रायुतसिद्धयोः सम्बन्धः समवायः, अन्ययोस्तु संयोग एव।

अत्र उचितमुत्तरं चिनुत -

(A) तन्तुः पटस्य समवायिकारण, अयुतसिद्धत्वात्
(B) न तन्तुः पटस्य समवायिकारणम्, अयुतसिद्धत्वात्
(C) तन्तुः पटस्य असमवायिकारणम्, अयुतसिद्धत्वात्
(D) तुर्यादि पटस्य समवायिकारणम्, अयुतसिद्धत्वात्

व्याख्या- उक्त वाक्य तर्कभाषा ग्रन्थ में 'कारण' का विशद वर्णन देते हुए कहा गया है। इस वाक्य में 'समवाय' और 'संयोग' सम्बन्ध में भेद बताया गया है। सामान्यतः हम जिन दो पदार्थों को एक दूसरे से कभी अलग नहीं कर सकते, उनमें समवाय सम्बन्ध होता है। जैसे 'घड़ा और मिट्टी' 'कपड़ा और धागा' इनके सम्बन्ध को अलग नहीं किया जा सकता तथा जिन दो पदार्थों में सम्बन्ध को इच्छानुसार दूर किया जा सकता है उनमें संयोग सम्बन्ध होता है। जैसे- 'मेज और पुस्तक' इत्यादि।

न्यायदर्शन के अनुसार कारण तीन प्रकार के होते हैं। (1) समवायिकारण (2) असमवायिकारण (3) निमित्तकारण।

(1) समवायिकारण वह कारण होता है जो कार्य में नित्य रूप से सम्बद्ध होकर रहता है। जैसे घट का समवायिकारण मिट्टी, कपाल इत्यादि, पट (कपड़ा) का कारण तन्तु (धागे)। समवायिकारण हमेशा कोई न कोई द्रव्य ही होता है।

(2) यदि गुण या क्रिया को कारण के रूप में बताया जाता है तो वह असमवायिकारण ही होता है। जैसे घट के प्रति 'कपाल-संयोग' तथा पट के प्रति 'तन्तुसंयोग' इत्यादि।

(3) कार्य के निर्माण होने में जो साधनरूप सहायक होते हैं वे निमित्त कारण कहलाते हैं जैसे घट रूपी कार्य के निर्माण में 'चाक, दण्ड, चीवर' इत्यादि तथा पट रूपी कार्य के निर्माण में 'तुरी, वेमा' इत्यादि।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि 'तन्तु पट का समवायि कारण है'। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- तर्कभाषा-गजाननशास्त्री मुसलगाँवकर, पेज 30

34. ऋग्वेदसंहिताया वैशिष्ट्यमस्ति -

(A) यज्ञवर्णनम् **(B)** देवस्तुतिः
(C) स्मार्तकार्यम् **(D)** वास्तुनिर्देशः

व्याख्या- **ऋग्वेद-संहिता**

ऋक् का अर्थ -

* ऋक् का अर्थ है- स्तुतिपरक मन्त्र **ऋच्यते स्तूयतेऽनया इति ऋक्।**
* जिन मन्त्रों के द्वारा देवों की स्तुति की जाती है, उन्हें ऋक् कहते हैं।
* ऋग्वेद में विभिन्न देवों की स्तुति वाले मन्त्र हैं, अतः इसे ऋग्वेद कहते हैं।
* इन मन्त्रों के द्वारा देवों का आह्वान किया जाता है।

* ऐसी ऋचाओं के संग्रह के कारण इसे ऋग्वेदसंहिता कहते हैं।
* संहिता शब्द संकलन या संग्रह का बोधक है।
* ब्राह्मणग्रन्थों में ऋक्, यजुः और साम शब्दों की आध्यात्मिक और दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।
* ऋक् भूलोक है (अग्नि देवता प्रधान)
* यजुः अन्तरिक्षलोक है। (वायु देवता प्रधान)
* साम द्युलोक है (सूर्य देवता प्रधान)
* अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और सूर्य से सामवेद की उत्पत्ति बतायी गयी है।
* ऋग्वेद वाक्तत्त्व (ज्ञानतत्त्व या विचारतत्त्व) का संकलन है।
* यजुर्वेद मनस्तत्त्व (चिन्तन, कर्मपक्ष, कर्मकाण्ड, संकल्प) का संग्रह है तथा सामवेद प्राणतत्त्व का संग्रह है।
* इन तीनों तत्त्वों के समन्वय से ब्रह्म की प्राप्ति होती है।
* वैदिक यज्ञ में चारों वेदों के प्रतिनिधि के रूप में चार ऋत्विज् होते हैं। ऋग्वेद में इन चारों ऋत्विजों के कर्तव्यों का निर्देश है।
* यज्ञ में चार ऋत्विज् होते हैं- (1) होता (2) उद्गाता (3) अध्वर्यु (4) ब्रह्मा

* **होता -** यह ऋग्वेद का प्रतिनिधित्व करता है। यज्ञ में ऋग्वेद के मन्त्रों का पाठ करता है।
* ऐसी देवस्तुति वाली ऋचाओं का पारिभाषिक नाम शस्त्र है।
* **उद्गाता -** यह सामवेद का प्रतिनिधित्व करता है। यह यज्ञ में देवस्तुति में सामवेद के मन्त्रों का गान करता है।
* **अध्वर्यु -** इसका सम्बन्ध यजुर्वेद से है। यह यज्ञ के विविध कर्मों का निष्पादक है। यह प्रमुख ऋत्विज् है।
* यज्ञ में घृत की आहुति देना आदि इसका ही कार्य है।
* **ब्रह्मा -** यह अथर्ववेद का प्रतिनिधित्व करता है। यह यज्ञ का अधिष्ठाता और संचालक होता है।

ऋग्वेद का महत्त्व -

* चारों वेदों में ऋग्वेद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और आदरणीय माना जाता है। ऋग्वेद सबसे प्राचीन है।
* इसमें अधिकांश देव, इन्द्र, विष्णु, मरुत् आदि प्राकृतिक तत्त्वों के प्रतिनिधि हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि ऋग्वेदसंहिता का वैशिष्ट्य 'देवों की स्तुति' करना है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 44

35. अधस्तनेषु केन सह कस्य सम्बन्धः?

(क) शिक्षा	**(i) पादव्यवस्था**
(ख) कल्प	**(ii) शब्दानुशासनम्**
(ग) व्याकरणम्	**(iii) यज्ञविधानविमर्शः**
(घ) छन्द	**(iv) वर्णस्वरमात्रादिविमर्शः**

समुचितां तालिकां चिनुत -

	क	ख	ग	घ
(A)	(i)	(ii)	(iii)	(iv)
(B)	(iv)	(iii)	(ii)	(i)
(C)	(ii)	(i)	(iv)	(iii)
(D)	(iii)	(i)	(iv)	(ii)

व्याख्या- * वेदाङ्ग शब्द का अर्थ- वेद के अङ्ग का अर्थ है- वे उपकारक तत्त्व जिनसे वस्तु के स्वरूप का बोध होता है।
* वेदों के गूढ़ एवं वास्तविक अर्थों को जानने के लिए जिन सहायक तत्त्वों की आवश्यकता होती है, उन्हें वेदाङ्ग कहते हैं।

वेदाङ्गों की संख्या और उनके नाम-

वेदाङ्ग छः हैं - शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प।

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः॥

1. शिक्षा - शिक्षा का अर्थ वर्णोच्चारण की शिक्षा देना है। सायण ने ऋग्वेदभाष्यभूमिका में शिक्षा का अर्थ दिया है- जिसमें स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण की शिक्षा दी जाती है, उसे शिक्षा कहते हैं।

'स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा' तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा के छः अङ्गों का उल्लेख है। वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और संतान। (तै.उ. 1.2)

2. व्याकरण - व्याकरण का अर्थ - 'व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्' अर्थात् जिस शास्त्र के द्वारा शब्दों के प्रकृति-प्रत्यय का विवेचन किया जाता है, उसे व्याकरण कहते हैं। इसमें शब्द कैसे बनता है? इसमें क्या प्रकृति और प्रत्यय लगा है तदनुसार शब्द का अर्थ निश्चित किया जाता है।

3. छन्द - छन्दस् (छन्द) शब्द 'छद्' ढँकना धातु से बना है। यास्क ने निरुक्त में छन्दस् का निर्वचन दिया है 'छन्दांसि छादनात्' अर्थात् छन्द भावों को आच्छादित करके उसे समष्टि रूप प्रदान करता है।

'यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः' जिसमें वर्णों या अक्षरों की संख्या निर्धारित होती है, उसे छन्द कहते हैं।

* वैदिक छन्दों में प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या गिनी जाती है इसी के आधार पर छन्दों में भेद किया जाता है।

* एक चरण को पाद कहते हैं। एक पाद में कम से कम 5 वर्ण होते हैं, प्रचलित गायत्री आदि छन्दों में प्रत्येक पाद में 8, 11 या 12 वर्ण होते हैं।

4. निरुक्त - निरुक्त का अर्थ है - निर्वचन या व्युत्पत्ति। शब्द के मूलरूप का ज्ञान कराना, शब्द में प्रकृति-प्रत्यय का स्पष्टीकरण, धात्वर्थ और प्रत्ययार्थ का विशदीकरण, समानार्थक और नानार्थक शब्दों का विवेचन आदि कार्य निरुक्त का है।

5. ज्योतिष - ज्योतिष का अर्थ है - ज्योतिर्विज्ञान।

सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि आकाशीय पिण्डों की गणना ज्योतिर्मय पदार्थों में है।

लगध ने इसको 'ज्योतिषाम् अयनम्' अर्थात् नक्षत्रों आदि की गति का विवेचन करने वाला शास्त्र कहा जाता है।

6. कल्प - आचार्य सायण ने कल्प का अर्थ दिया है - जिन ग्रन्थों में यज्ञ-सम्बन्धी विधियों का समर्थन किया जाता है, उन्हें कल्प कहते हैं।

कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगेऽत्र इति व्युत्पत्तेः।
वेदविहितानां कर्मणाम् आनुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्॥
(विष्णु ऋक् -13)

कल्पसूत्रों के भेद - कल्पसूत्रों के प्रमुख चार भेद हैं -

(i) श्रौतसूत्र (ii) गृह्यसूत्र (iii) धर्मसूत्र (iv) शुल्बसूत्र

स्पष्टीकरण - उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शिक्षा-वर्णस्वरमात्रा-दिविमर्शः से, कल्प-यज्ञविधानविमर्शः से, व्याकरण-शब्दानुशासन से, छन्द-पादव्यवस्था से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 190

36. यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेतत्सत्यमङ्गिरः।
अत्र अङ्ग इति कस्मिन्नर्थे प्रयुक्तोऽयं शब्दः? सायणदिशा निर्दिश्यताम् -

(A) अभिमुखीकरणार्थे	(B) शरीरार्थे
(C) अवयवार्थे	(D) विषयार्थे

व्याख्या- ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त का छठवाँ मन्त्र है-

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेतत्सत्यमङ्गिरः॥ (1.1.6)

हे अग्ने! जो तुम हवि का दान करने वाले यजमान के लिए धन, गृह, प्रजा, पशु आदि कल्याण करने वाले पदार्थ प्रदान करोगे, वे सब पदार्थ तुम्हारे ही हैं। हे अग्नि देवता यह बात सच ही है। इसमें कोई संशय नहीं है।

सायणभाष्य - अङ्ग इत्यभिमुखीकरणार्थो निपातः। अङ्ग अग्ने! हे अग्ने त्वं दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय तत्प्रीत्यर्थं यत् भद्रं वित्तगृहप्रजापशुरूपं कल्याणं करिष्यति तत् भद्रं तव इत् तवैव। सुखहेतुरिति शेषः। हे अङ्गिरः! अग्ने एतच्च सत्यं न त्वत्र विसंवादोऽस्ति। यजमानस्य वित्तादिसंपत्तौ सत्यामुत्तर- क्रत्वनुष्ठानेनाग्नेरेव सुखं भवति।

स्पष्टीकरण - इस सायणभाष्य से स्पष्ट है कि अङ्ग शब्द का प्रयोग- 'अभिमुखीकरणार्थ' है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- वैदिकसूक्तसंग्रह- विजयशङ्कर पाण्डेय, पेज 35

37. ऐतरेयब्राह्मणग्रन्थानुसारेण शुनःशेपस्य पितुर्नाम किमासीत् ?

(A) कुक्षीवान्	(B) ऐतरेयः
(C) अजीगर्तः	(D) महीदासः

व्याख्या- * ऋग्वेद का ब्राह्मणग्रन्थ है- ऐतरेय ब्राह्मण। ऐतरेय ब्राह्मण में 40 अध्याय हैं। प्रत्येक पाँच अध्यायों की एक पंचिका होती है। कुल 8 पंचिकाएँ हैं।

* पूरे ऐतरेय ब्राह्मण में 40 अध्याय, 8 पंचिकाएँ और 285 खण्ड हैं।

* ऐतरेय ब्राह्मण के रचयिता महिदास ऐतरेय ऋषि माने जाते हैं।

* ऐतरेय ब्राह्मण के पंचिका सात में राजसूय यज्ञ है। इसके तृतीय अध्याय में सुप्रसिद्ध शुनःशेप उपाख्यान है जो 'चरैवेति चरैवेति' गाथाओं के कारण विख्यात है।

* 'चरैवेति चरैवेति' ऐतरेय ब्राह्मण की प्रमुख शिक्षा है- चर-एव-इति अर्थात् चलते रहो, चलते रहो। सदा कर्म करते रहो, सदा उद्योगशील रहो। निरन्तर कर्मठ बने रहो। कर्मनिष्ठ जीवन ही जीवन है।

शुनःशेप आख्यान - इस आख्यान को हरिश्चन्द्र उपाख्यान भी कहते हैं। इसका 'चरैवेति' गान विश्वविश्रुत है।

शुनःशेप ऋषि ऋग्वेद प्रथम मण्डल के सात सूक्तों के द्रष्टा हैं। इनके दृष्ट मन्त्रों की संख्या 17 है।

संक्षिप्त कथा - राजा हरिश्चन्द्र को कोई पुत्र नहीं था वरुण की

उपासना से पुत्र की प्राप्ति हुई। पुत्र का नाम रोहित था। निर्धन, लोभी ब्राह्मण अजीगर्त का पुत्र शुनःशेप था। अजीगर्त वरुण के यज्ञ में स्वयं अपने पुत्र शुनःशेप की बलि देने के लिये तैयार हो जाता है।

* शुनःशेप मृत्यु से बचने के लिए वरुण, अग्नि आदि देवों की स्तुति की। अन्त में मृत्यु से बच जाता है।

* शुनःशेप अपने लोभी पिता का परित्याग करके विश्वामित्र की गोद में बैठ जाता है।

* विश्वामित्र ने उसे अपना दत्तक पुत्र बना लिया और उसका नाम देवरात रखा।

* विश्वामित्र के 101 पुत्र थे। 50 मधुच्छन्दस् से बड़े थे और 50 छोटे।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि शुनःशेप का पिता अजीगर्त था। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 125

38. पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न च।
वाक्यात् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन॥
अस्याः कारिकायाः सम्बन्धः केन सिद्धान्तेन सह भवितुमर्हति?

(A) ध्वनिवादः **(B)** स्फोटवादः
(C) व्यञ्जनावादः **(D)** लक्षणावादः

व्याख्या- * पाणिनीय व्याकरण तन्त्र में वैयाकरण दार्शनिक भर्तृहरि का अनुपम स्थान है। इन्होंने वाक्यपदीय के रूप में व्याकरण दर्शन की एक अद्भुत कृति के द्वारा अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

* महाभाष्य में निरूपित दार्शनिक सिद्धान्तों तथा अर्थविज्ञान के नियमों का पद्यात्मक कारिकाओं के रूप में विवेचन वाक्यपदीय में है।

* इसके अतिरिक्त महाभाष्य की दीपिका नामक व्याख्या भी भर्तृहरि ने लिखी थी जिसके प्रथम सात आह्निक प्रकाशित हैं। सम्भवतः उन्होंने केवल तीन पादों की व्याख्या लिखी थी।

* वाक्यपदीय तीन काण्डों में विभक्त है - ब्रह्मकाण्ड -156 कारिकाएँ, वाक्यकाण्ड-486 कारिकाएँ तथा प्रकीर्णकाण्ड या पदकाण्ड 14 समुद्देशों में विभक्त, 1323 कारिकाएँ हैं।

* ब्रह्मकाण्ड, शब्दरूप तथा स्फोट का विवेचन करता है, इसमें वाणी के तीन स्तरों (पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी) का निर्देश है।

वाक्यपदीयम् के ब्रह्मकाण्ड में कहा गया है-

पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न च।
वाक्यात् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन॥1/73॥

वर्णों में अवयवों के समान पद में वर्णों की सत्ता नहीं होती और वाक्य से पदों का कोई अत्यन्त पार्थक्य नहीं है। इस प्रकार वर्ण और पद के भेद से रहित एक अनवयव वाक्य रूप शब्दात्मा है, ऐसा अखण्डवाक्यस्फोटवादी मानते हैं।

अर्थ, सम्बन्ध और फल शब्दमूलक है, अतः व्याकरण-सम्मत शब्द का क्या स्वरूप है, इसका निरूपण करते हैं-

द्वावुपादानशब्देषु शब्दौ शब्दविदो विदुः।
एको निमित्तं शब्दानामपरोऽर्थे प्रयुज्यते॥1/44॥

शब्दविद् वैयाकरण उपादान या वाचक शब्दों में दो अन्य शब्द निहित हैं, ऐसा मानते हैं। एक शब्दों का निमित्त है, जिसे स्फोट कहते हैं और दूसरा स्वरूपार्थ के रूप में प्रयुक्त होता है।

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥1/1॥

आदि और अन्त से रहित अर्थात् कालकृत परिच्छेद से शून्य अथवा पूर्वापर विभाग से हीन अर्थात् देशकृत परिच्छेद से मुक्त, अकारादि अक्षरों का निमित्त होने के कारण अक्षर अर्थात् परप्रणवात्मक, शब्दतत्त्व पराप्रकृति परापश्यन्ती या संविद्रूप ब्रह्म, अर्थ रूप में स्वरूपात्मक एवं गो-घटादि बाह्यार्थ रूप में सन्निवेश विशेष द्वारा अनेकधा प्रतिभासित होता है, जिससे समस्त वाङ्मय जगत् तथा सरित्सागर, वन पर्वतात्मक चराचर जगत् उत्पन्न होता है।

अव्याहताः कला यस्य कालशक्तिमुपाश्रिताः।
जन्मादयो विकाराः षड् भावभेदस्य योनयः ॥1/3॥

जिस शब्दब्रह्म की आरोपित कलाओं या भेदों वाली कालशक्ति का आश्रय लेकर जन्म, सत्ता, विपरिणाम, वृद्धि, अपक्षय और नाश ये 6 विकारभाव अर्थात् मूर्ति और क्रिया भेद के कारण बनते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न च ....' यह सिद्धान्त स्फोटवाद से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वाक्यपदीयम् (1/73)

39. सर्वप्राचीनरचनायाः प्राथम्येन कालक्रमानुसारमुचितमुत्तरं चिनुत-

(1) बुद्धचरितम् **(2) नैषधीयचरितम्**
(3) स्वप्नवासवदत्तम् **(4) मुद्राराक्षसम्**

एषु क्रमं चिनुत -

(A)	1	4	2	3
(B)	4	3	1	2
(C)	3	2	1	4
(D)	3	1	4	2

व्याख्या- संस्कृतवाङ्मय के प्रमुख लेखकों का अनुमानित कालक्रम -

लेखक	**प्रमुख ग्रन्थ**	**अनुमानित काल**
भास	स्वप्नवासवदत्तम्	100ई.पू.-200ई. के मध्य
मनु	मनुस्मृति	200ई.पू. से 200 ई. के बीच
कालिदास	रघुवंशम्, अभिज्ञान-शाकुन्तलम् आदि	ई.पू. प्रथम शताब्दी
अश्वघोष	बुद्धचरितम्, सौन्दरानन्द	प्रथम शताब्दी ई.
शूद्रक	मृच्छकटिकम्	तीसरी-चौथी शताब्दी ई.
विशाखदत्त	मुद्राराक्षसम्	पाँचवी छठी शताब्दी ई.
भारवि	किरातार्जुनीयम्	6 शता. ई. (560-615)
दण्डी	दशकुमारचरितम्	6 शताब्दी ई.
भर्तृहरि	वाक्यपदीयम्	6 शता. ई.
माघ	शिशुपालवधम्	7 शता. का पूर्वार्द्ध
भवभूति	उत्तररामचरितम्	7 शता. के आस-पास
श्रीहर्ष	नैषधीयचरितम्	12वीं शता. का उत्तरार्द्ध

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि कालक्रमानुसार सर्वप्रथम भास की रचना स्वप्नवासवदत्तम्, अश्वघोष की रचना बुद्धचरितम्, विशाखदत्त की रचना मुद्राराक्षस और श्रीहर्ष की रचना नैषधीयचरितम् है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास - उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 465,226,501,284

40. चत्वारो वेदाः जगति प्रसिद्धा सन्ति। एते ऋग्वेदः यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्ववेदश्च। एतेषां मन्त्राणामर्थख्यापनाय बहवः आचार्यः प्रयत्नं कृतवन्तः। तत्रर्ग्वेदस्य प्रथमो भाष्यकारः स्कन्दस्वामी आसीत् । विस्तारपूर्वकयज्ञपद्धतेः प्रथमं भाष्यं आचार्यसायणेन कृतम् । स एव कृष्णयजुर्वेदस्य भाष्यं प्रथमतया विरचितवान् । आनन्दतीर्थः दयानन्दश्च वेदभाष्यं रचितवन्तौ। उपर्युक्तेषु ऋग्वेदस्य प्रथमभाष्यकारः कः आसीत् -

(A) सायणः **(B)** स्कन्दस्वामी
(C) आनन्दतीर्थः **(D)** दयानन्दः

व्याख्या- उपर्युक्त पूछे गये प्रश्न का हिन्दी अर्थ है - चार वेद जगत् में प्रसिद्ध हैं। वे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं। इन मन्त्रों के अर्थ को जानने के लिए अनेक आचार्यों ने प्रयत्न किया। ऋग्वेद के प्रथम भाष्यकार स्कन्दस्वामी थे। विस्तारपूर्वक यज्ञपद्धति प्रथम भाष्य आचार्य सायण ने किया। वह ही कृष्णयजुर्वेद के भाष्य को सर्वप्रथम किया। आनन्दतीर्थ और दयानन्द सरस्वती ने वेदभाष्य की रचना की।

प्राचीन वेदभाष्यकार

आचार्य स्कन्दस्वामी -

* ऋग्वेद का सबसे प्राचीन भाष्य स्कन्दस्वामी का ही उपलब्ध है।
* स्कन्दस्वामी का भाष्य ऋग्वेद के चतुर्थ अष्टक तक प्राप्त होता है। शेषभाग नारायण और उद्गीथ ने किया है।
* स्कन्दस्वामी ने यास्क के निरुक्त पर टीका भी लिखी है।

आचार्य सायण -

* वेदों की व्याख्या करने वाले आचार्यों में सायण का स्थान अग्रगण्य है। वे केवल ऐसे आचार्य हैं, जिन्होंने सभी वेदों तथा ब्राह्मणग्रन्थों आदि की भी व्याख्या की है।
* ये वेदों को अपौरुषेय और नित्य मानते हैं।
* सायण ने ऋग्वेद सहित पाँच वैदिक संहिताओं, 11 ब्राह्मण ग्रन्थों और दो आरण्यकों पर पाण्डित्यपूर्ण भाष्य लिखा है। इन ग्रन्थों का क्रम यह रहा है - **संहिताएँ -**

(1) तैत्तिरीय संहिता (2) ऋग्वेदसंहिता (3) सामवेदसंहिता (4) काण्वसंहिता (5) अथर्ववेद संहिता

ब्राह्मण ग्रन्थ - तैत्तिरीय ब्राह्मण ऐतरेय ब्राह्मण, ताण्ड्य महाब्राह्मण, षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय उपनिषद्, संहितोपनिषद् वंश ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण

आरण्यक - तैत्तिरीय आरण्यक, ऐतरेय आरण्यक

आनन्दतीर्थ - इनका दूसरा नाम मध्व है। इन्होंने ऋग्वेद के कुछ चुने हुये 40 सूक्तों का पद्यात्मक भाष्य किया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती -

* आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती आधुनिक युग में वेदों के पुनरुद्धारक माने जाते हैं।
  ऋग्वेद की व्याख्या मण्डल 7 के 80 सूक्त तक ही कर सके। असामयिक निधन से ऋग्वेद भाष्य पूरा नहीं हो सका।
* उन्होंने शुक्लयजुर्वेद सम्पूर्ण की संस्कृत और हिन्दी में व्याख्या की है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त पूछे गये गद्यांश से ही स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वेद के प्रथम भाष्यकार स्कन्दस्वामी जी हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 22

41. यजुर्वेदसंहितायां प्राधान्येन निरूपणं प्राप्यते -

(A) संवादस्य **(B)** यज्ञानाम्
(C) गानानाम् **(D)** दार्शनिकविचाराणाम्

व्याख्या- यजुष् (यजुस्, यजुः) का अर्थ

* यजुर्वेद के यजुष् शब्द की कई व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई हैं, जो विभिन्न दृष्टिकोणों की सूचक हैं।
* यजुष् के मुख्य अर्थ हैं - 'यजुर्यजतेः' अर्थात् यज्ञ से सम्बद्ध मन्त्रों को यजुष् कहते हैं।
* 'इज्यतेऽनेनेति यजुः' अर्थात् जिन मन्त्रों से यज्ञ किया जाता है, उन्हें यजुष् कहते हैं।
* यजुर्वेद का यज्ञ के कर्मकाण्ड से साक्षात् सम्बन्ध है अतः इसे अध्वर्युवेद भी कहा जाता है।
* यज्ञ में अध्वर्यु नामक ऋत्विज् यजुर्वेद का प्रतिनिधित्व करता है और वही यज्ञ का नेतृत्व करता है। इसलिए सायण ने कहा है कि वह यज्ञ के स्वरूप का निष्पादक है-

''अध्वर्युनामक एक ऋत्विग् यज्ञस्य स्वरूपं निष्पादयति अध्वरं युनक्ति, अध्वरस्य नेता।''

* 'अनियताक्षरावसानो यजुः' अर्थात् जिन मन्त्रों में पद्यों के तुल्य अक्षरसंख्या निर्धारित नहीं होती है, वे यजुष् हैं।
* 'शेषे यजुः शब्दः' अर्थात् पद्यबन्ध और गीति से रहित मन्त्रात्मक रचना को यजुष् कहते हैं।
* तैत्तिरीयसंहिता के भाष्य की भूमिका में सायण ने यजुर्वेद का महत्त्व बताते हुए कहा है कि यजुर्वेद भित्ति (दीवार) है और अन्य ऋग्वेद एवं सामवेद चित्र हैं। इसलिए यजुर्वेद सबसे मुख्य है।
* यज्ञ को आधार बनाकर ही ऋचाओं का पाठ सामगान होता है।

➢ **ऋग्वेद-संहिता - ऋक् का अर्थ -**

* ऋच् या ऋक् का अर्थ है - स्तुतिपरक मन्त्र
'ऋच्यते स्तूयतेऽनया इति ऋक्'
* जिन मन्त्रों के द्वारा देवों की स्तुति की जाती है, उन्हें ऋक् कहते हैं।
* ऋग्वेद में विभिन्न देवों की स्तुति वाले मन्त्र हैं, अतः इसे ऋग्वेद कहते हैं।

➢ **सामवेद-संहिता - सामन् (साम) का अर्थ-**

* सामन् या साम का अर्थ- 'गीतियुक्त मन्त्र' है। साम के लिये गीतियुक्त होना अनिवार्य है।
* पूर्वमीमांसा में गीति या गान को साम कहा गया है 'गीतिषु सामाख्या'

➢ **अथर्ववेद-संहिता - 'अथर्वन्' का अर्थ**

* निरुक्त और गोपथब्राह्मण में 'अथर्वन्' शब्द की इस प्रकार से व्याख्या की गई है -
* अथर्वन् - गतिहीन या स्थिरता से युक्त योग
* निरुक्त के अनुसार 'थर्व्' धातु का अर्थ है गति या चेष्टा, अतः अथर्वन् का अर्थ है - गतिहीन या स्थिर।
* इसका अभिप्राय है कि जिस वेद में स्थिरता या चित्तवृत्तियों के निरोधरूपी योग का उपदेश है, वह अथर्वन् वेद है। **'अथर्वाणोऽथर्वणवन्तः'**

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि यजुर्वेदसंहिता की प्रधानता यज्ञ करना है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज

42. भाषाणां सतम् वर्गे स्वीक्रियते-

(A) लैटिन **(B)** ग्रीक
(C) संस्कृतम् **(D)** फ्रेन्च

व्याख्या- * 'भारोपीय' शब्द 'भारत+यूरोपीय' का संक्षिप्त रूप है।
* यह Indo-European का अनुवाद है।
* भारोपीय में भारतवर्ष से लेकर यूरोप तक फैली हुई भाषाओं का संग्रह है। इस परिवार में दस शाखाएँ हैं-

1. भारत-ईरानी (आर्य)
क - भारतीय
ख - ईरानी
2. बाल्टो स्लाविक
क - बाल्टिक
ख - स्लाविक
3. आर्मीनी 4. अल्बानी (इलीरी)
5. ग्रीक (हेलेनिक) 6. केल्टिक
7. जर्मानिक (ट्यूटानिक) 8. इटालिक
9. हिटाइट (हित्ती) 10. तोखारी

➢ **केन्टुम् और शतम् वर्ग -**

* भारोपीय परिवार की भाषाओं को ध्वनि के आधार पर दो भागों में विभक्त किया जाता है। (क) केन्टुम् (ख) शतम्
* इस विभाजन का श्रेय प्रो. अस्कोली को है।
* इन्होंने 1870 ई. में यह प्रस्तुत किया कि मूल भारोपीय

भाषा की कण्ठ्य ध्वनियाँ कुछ भाषाओं में कण्ठ्य रह गई हैं और कुछ भाषाओं में वे संघर्षी हो गई हैं।

* इसको स्पष्ट करने के लिए दो प्रतिनिधि भाषाएँ लैटिन और अवेस्ता ली गईं।
* सौ के लिए मूल भारोपीय भाषा का शब्द Kmtom (क्मतोम्) माना जाता है। इसका विभिन्न भाषाओं में विकास इस प्रकार माना जाता है-

➢ **मूल भारोपीय शब्द - Kmtom (क्मतोम् = शतम्)**

शतम् (सतम्) वर्ग	केन्टुम् वर्ग
संस्कृत - शतम्	लैटिन - केन्टुम्
अवेस्ता - सतम्	ग्रीक - हेकटोन
फारसी - सद	केल्टिक - (आयरिश) केत्
हिन्दी - सौ	तोखारी - कन्ध
रूसी - स्तो	गाथिक - हुन्ड
लिथुआनियन - स्जिम्तास	जर्मन - हुन्डर्ट
	फ्रेंच - सं (सेंट cent)
	इटालियन - केन्तो

* प्रारम्भ में यह विचार प्रस्तुत किया गया था कि केन्टुम् वर्ग की भाषाएँ पश्चिम में प्रचलित हैं और शतम् वर्ग की भाषाएँ पूर्व में।
* प्रो. हर्ट ने विश्चुला नदी के पश्चिम में केन्टुम् वर्ग और शतम् वर्ग माना था। बाद में तोखारी और हिटाइट भाषाओं के मिलने पर यह सिद्धान्त निरस्त हो गया, क्योंकि तोखारी और हिटाइट भाषाएँ पूर्वी क्षेत्र में और इनमें केन्टुम् के तुल्य क् ध्वनि मिलती है, स् ध्वनि नहीं।

➢ **केन्टुम् और शतम् वर्ग (भारोपीय परिवार-विभाजन)**

भारोपीय परिवार को केन्टुम् और शतम् वर्ग के आधार पर इस प्रकार बाँटा जाता है-

शतम् वर्ग	केन्टुम् वर्ग
1. भारत-ईरानी (आर्य)	5. ग्रीक
2. बाल्टो-स्लाविक	6. केल्टिक
3. आर्मीनी	7. जर्मानिक (ट्यूटानिक)
4. अल्बानी (इलीरी)	8. इटालिक
	9. हिटाइट
	10. तोखारी

ईरानी-भारती चैव, बाल्टी-सुस्लाविकी तथा
आर्मीनी अल्बनी चैताः शतम् वर्गे समाश्रिताः ॥1॥
इटालिकी च ग्रीकी च, जर्मानिक् केल्टिकी तथा
हित्ती तोखारिकी चैताः, केन्टुम् वर्गे प्रकीर्तिताः ॥2॥

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भाषाओं में सतम् वर्ग में 'संस्कृतम्' है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 385

43. आर्हतदर्शनानुसारं सप्तभङ्गीनयः कुत्र न स्वीकृतोऽस्ति

(A) स्यादस्ति च नास्ति च
(B) स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः
(C) स्यादस्ति च वक्तव्यः
(D) स्यान्नास्ति चावक्तव्यः

व्याख्या- * जैनदर्शन को ही आर्हत दर्शन के नाम से जाना जाता है।

* जैनदर्शन में परामर्श के पूर्व 'स्यात्' लगाते हैं।
* इसी सिद्धान्त को 'स्याद्वाद' कहते हैं। इसका दूसरा नाम 'अनेकान्तवाद' है, क्योंकि किसी ज्ञान का निश्चय या एकान्त इसमें नहीं हो सकता।
* जैन लोग सर्वत्र सप्तभङ्गीनय नामक Logic उपस्थित करते हैं। इसके सात निम्नाङ्कित रूप हैं-

स्यादस्ति - किसी प्रकार है
स्यान्नास्ति - किसी प्रकार नहीं है।
स्यादस्ति च नास्ति च - किसी प्रकार है और नहीं है
स्यादवक्तव्यः - किसी प्रकार अवर्णनीय है
स्यादस्ति चावक्तव्यः - किसी प्रकार है और अवर्णनीय है
स्यान्नास्ति चावक्तव्यः - किसी प्रकार नहीं है और अवर्णनीय है।
स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः - किसी प्रकार है, नहीं है और अवर्णनीय है।

* **स्याद्वाद (जैन दर्शन) के दो प्रमाण हैं-** प्रत्यक्ष और अनुमान
* **त्रिरत्न -** 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग'
  (1) सम्यक् दर्शन (2) सम्यक् ज्ञान (3) सम्यक् चारित्र
* **जैन तत्त्व मीमांसा -** दो तत्त्व हैं- जीव और अजीव ज्ञान के रूप में जीव है और अज्ञान के रूप में अजीव है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि आर्हत दर्शनानुसार सप्तभङ्गीनय में 'स्यादस्ति च वक्तव्यः' स्वीकृत नहीं है। **अतः विकल्प 'C' सही है**

स्रोत- सर्वदर्शनसंग्रह - उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 146

44. अधस्तनयुग्मानां समीचीनां तालिकां चिनुत-

(a) हर्षः	(i) मुद्राराक्षसम्
(b) भवभूतिः	(ii) कर्णभारम्
(c) विशाखदत्तः	(iii) उत्तररामचरितम्
(d) भासः	(iv) रत्नावली

एषु समीचीनमुत्तरं चिनुत-

(A) 3 2 4 1
(B) 4 3 1 2
(C) 2 1 3 4
(D) 1 4 2 3

व्याख्या-

संस्कृत वाङ्मय के प्रमुख नाट्यग्रन्थ

ग्रन्थ	अङ्क	लेखक
प्रतिज्ञायौगन्धरायण	4	भास
स्वप्नवासवदत्तम्	6	भास
ऊरुभङ्गम्	1	भास
दूतवाक्यम्	1	भास
पञ्चरात्रम्	3	भास
बालचरितम्	5	भास
दूतघटोत्कचम्	1	भास
मुद्राराक्षसम्	7	विशाखदत्त
कर्णभारम्	1	भास
रत्नावली	4	हर्ष (हर्षवर्धन)
उत्तररामचरितम्	7	भवभूति
मृच्छकटिकम्	10	शूद्रक (शिमुक)
अभिज्ञानशाकुन्तलम्	7	कालिदास
वेणीसंहारम्	6	भट्टनारायण
महावीरचरितम्	7	भवभूति
मालतीमाधवम्	10	भवभूति
बालरामायणम्	10	राजशेखर

संस्कृतवाङ्मय के प्रमुख गद्यकाव्य

गद्यरचना	लेखक
दशकुमारचरितम्	दण्डी
वासवदत्ता	सुबन्धु
कादम्बरी	बाणभट्ट
हर्षचरितम्	बाणभट्ट
शिवराजविजय	अम्बिकादत्त व्यास
मुकुटताडितक	बाणभट्ट
तिलकमञ्जरी	धनपाल
मन्दारमञ्जरी	विश्वेश्वर पाण्डेय

संस्कृतवाङ्मय के प्रमुख गीतिकाव्य

गीतिकाव्य	लेखक
ऋतुसंहारम्	कालिदास
मेघदूतम्	कालिदास
नीतिशतकम्	भर्तृहरि
शृङ्गारशतकम्	भर्तृहरि
वैराग्यशतकम्	भर्तृहरि
अमरुशतकम्	अमरुक

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त तालिकाओं से स्पष्ट है कि हर्ष की रचना रत्नावली, भवभूति की रचना उत्तररामचरितम्, विशाखदत्त की मुद्राराक्षस और भास की रचना कर्णभार है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा, पेज 513,522,502,465

45. वैशेषिकदर्शनानुसारं सप्तपदार्थेषु न गण्येते-

a पुरुषः	b विशेषः
c गुणः	d अहङ्कारः

समुचितं विकल्पमत्र चिनुत -

(A) a एवं c **(B)** b एवं c
(C) c एवं d **(D)** a एवं d

व्याख्या- अन्नम्भट्टप्रणीत तर्कसंग्रह में सप्तपदार्थों की चर्चा करते हैं-

* **पदार्थनिरूपण-**

'द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्तपदार्थाः।'

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये सात ही पदार्थ हैं।

* **द्रव्यनिरूपण-**

'पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव'

उन पदार्थों में द्रव्यों की संख्या नौ है- पृथिवी, जल, तेज,

वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन।

*** गुणनिरूपण-**

रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-संख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-परत्वापरत्व-गुरुत्व-द्रवत्व-स्नेह-शब्द-बुद्धि-सुख-दुःखेच्छा-द्वेष, प्रयत्न, धर्माधर्म-संस्काराश्चतुर्विंशतिर्गुणाः।

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार ये चौबीस गुण हैं।

*** कर्मनिरूपण-** उत्क्षेपणापक्षेणाकुञ्चनप्रसारणगमनानि पञ्चकर्माणि।

उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन- ये पाँच कर्म हैं।

*** सामान्यनिरूपण-** परमपरं चेति द्विविधं सामान्यम्।

पर (सामान्य) और अपर (सामान्य) यह दो प्रकार का सामान्य (जाति) है।

*** विशेष पदार्थ-** 'नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता एव'

नित्यद्रव्यों में रहने वाले विशेष पदार्थ हैं और वे अनन्त हैं।

*** अभाव निरूपण-** अभावश्चतुर्विधः प्रागभावः, प्रध्वंसाभावोऽत्यन्ताभावोऽन्योन्याभावश्चेति।

अभाव पदार्थ चार प्रकार का होता है- प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव।

*** कारण निरूपण-** कारणं त्रिविधम् -समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदात्।

कारण तीन प्रकार के होते हैं- समवायि, असमवायि और निमित्त।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि वैशेषिक दर्शनानुसार सप्त पदार्थों में पुरुष और अहङ्कार परिगणित नहीं हैं। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- तर्कसंग्रह - आद्याप्रसाद मिश्र, पेज 18

46. ऋग्वेदस्य वरुणसूक्ते (1.25) कियन्तो मन्त्राः सन्ति?

(A) दश **(B)** द्वादश

(C) एकविंशतिः **(D)** द्वाविंशतिः

व्याख्या-

सूक्त	मण्डल/सूक्त	ऋषि	देवता	मन्त्रों की संख्या
अग्निसूक्त	1/1	मधुच्छन्दा	अग्नि	9
वरुणसूक्त	1/25	अजीगर्त शुनःशेप	वरुण	21
सूर्यसूक्त	1/115	अङ्गिरस्, कुत्स	सूर्य	06
इन्द्रसूक्त	2/12	गृत्समद	इन्द्र	15
उषस्सूक्त	3/61	विश्वामित्र	उषस्	07
पर्जन्यसूक्त	5/83	अत्रि	पर्जन्य	10
अक्षसूक्त	10/34	कवष ऐलूष	अक्षकृषि प्रशंसा	14
ज्ञानसूक्त	10/71	बृहस्पति	परब्रह्म ज्ञान	11
पुरुषसूक्त	10/90	नारायण	पुरुष	16
हिरण्यगर्भसूक्त	10/121	हिरण्यगर्भ	क संज्ञक प्रजापति	10
वाक्सूक्त	10/125	वागाम्भृणी	परमात्मा वाक्	08
नासदीयसूक्त	10/129	परमेष्ठी प्रजापति	सृष्टि-स्थिति प्रलयकर्ता परमात्मा	07

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि ऋग्वेद के वरुणसूक्त में कुल 21 मन्त्र हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह - हरिदत्तशास्त्री, पेज 83

47. कल्पसाहित्ये गण्येते -

a गौतमधर्मसूत्रम् b वाजसनेयिप्रातिशाख्यम्

c मानवशुल्बसूत्रम् d निघण्टुः

अधोलिखितेषु समुचितमुत्तरं चिनुत -

(A) a एवं b **(B)** c एवं d

(C) a एवं c **(D)** b एवं d

व्याख्या- वेदाङ्ग में अङ्ग शब्द का अर्थ है वे उपकारक तत्त्व जिनसे वस्तु के स्वरूप का बोध होता है।

'अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते एभिरिति अङ्गानि'

वेदाङ्गों की संख्या छह है -

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः॥

शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प, वेदाङ्ग हैं।

कल्प वेदाङ्ग - कल्पसूत्र ग्रन्थ का तात्पर्य प्रयोगविधि के यथार्थ प्रतिपादक ग्रन्थों से है।

* जिन ग्रन्थों में यज्ञ-सम्बन्धी विधियों का समर्थन या प्रतिपादन किया जाता है, उन्हें कल्प कहते हैं।

* **कल्पसूत्र के भेद-** कल्पसूत्र के चार भेद हैं-
श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, शुल्बसूत्र

ऋग्वेद के श्रौतसूत्र - शांखायन, आश्वलायन श्रौतसूत्र

ऋग्वेद का धर्मसूत्र - वासिष्ठ धर्मसूत्र

ऋग्वेद के गृह्यसूत्र - आश्वलायन, शांखायन, कौषीतकि

ऋग्वेद का शुल्बसूत्र - कोई शुल्बसूत्र प्राप्त नहीं होता

यजुर्वेद के श्रौतसूत्र - (i) शुक्लयजुर्वेद का कात्यायन श्रौतसूत्र
(ii) कृष्णयजुर्वेद का बौधायन, वाधूल, मानव, भारद्वाज, आपस्तम्ब, काठक, सत्याषाढ, वैखानस, वाराह श्रौतसूत्र

यजुर्वेद के गृह्यसूत्र - शुक्लयजुर्वेद पारस्कर गृह्यसूत्र, बौधायन, मानव, भारद्वाज, आपस्तम्ब काठक, अग्निवेश्य, हिरण्यकेशि, वाराह, वैखानस

यजुर्वेद के धर्मसूत्र - बौधायन, वैखानस, आपस्तम्ब, विष्णु, हारीत, हिरण्यकेशी, शंख

यजुर्वेद के शुल्बसूत्र - शुक्लयजुर्वेद- कात्यायन शुल्बसूत्र
कृष्णयजुर्वेद- बौधायन, आपस्तम्ब, मानव शुल्बसूत्र

सामवेद के श्रौतसूत्र - आर्षेय, कल्प या मशक, लाट्यायन, द्राह्यायण, जैमिनीय

सामवेद के गृह्यसूत्र - गोभिल, खादिर, दाह्यायण, जैमिनीय, कौथुम

सामवेद का धर्मसूत्र - गौतम धर्मसूत्र

सामवेद का शुल्बसूत्र - कोई शुल्बसूत्र प्राप्त नहीं होता

अथर्ववेद का श्रौतसूत्र - वैतान श्रौतसूत्र

अथर्ववेद का गृह्यसूत्र - कौशिक गृह्यसूत्र

अथर्ववेद का धर्मसूत्र - कोई धर्मसूत्र प्राप्त नहीं है।

अथर्ववेद का शुल्बसूत्र - कोई शुल्बसूत्र प्राप्त नहीं है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कल्पसाहित्य के अन्तर्गत सामवेद का गौतमधर्मसूत्र और कृष्णयजुर्वेद का मानव शुल्बसूत्र समाहित है। **अतः विकल्प 'C' सही हैं**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 236,241

48. भवभूतिकृतं रचनाद्वयं किमस्ति?

(A) महावीरचरितम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्
(B) उत्तररामचरितम्, महावीरचरितम्
(C) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मुद्राराक्षसम्
(D) मृच्छकटिकम्, महावीरचरितम्

व्याख्या-

लेखक	ग्रन्थ (नाटक)	अङ्क
भवभूति	उत्तररामचरितम्	07
भवभूति	महावीरचरितम्	07
भवभूति	मालतीमाधवम्	10
कालिदास	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	07
कालिदास	मालविकाग्निमित्रम्	05
कालिदास	विक्रमोर्वशीयम्	05
शूद्रक	मृच्छकटिकम्	10
विशाखदत्त	मुद्राराक्षसम्	07
भास	प्रतिज्ञायौगन्धरायण	04
भास	स्वप्नवासवदत्तम्	06
भास	बालचरितम्	05
भास	पञ्चरात्रम्	03
भास	प्रतिमानाटकम्	07
भास	अभिषेकनाटकम्	06
भास	अविमारकम्	06
भास	चारुदत्तम्	04
भास	ऊरुभङ्गम्	01
भास	दूतवाक्यम्	01
भास	दूतघटोत्कचम्	01
भास	कर्णभारम्	01
भास	मध्यमव्यायोगः	01

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि भवभूति की रचना है- उत्तररामचरितम्, महावीरचरितम्, मालतीमाधवम्। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास- उमाशङ्कर शर्मा, पेज 526,528

49. तैत्तिरीयब्राह्मणस्य प्रथमे काण्डे के द्वे वर्णिते?

a उपहोमः **b अग्निहोत्रम्**
c अग्न्याधानम् **d गवामयनम्**

अधोलिखितेषु समुचितमुत्तरं चिनुत -

(A) b एवं c **(B)** a एवं d
(C) c एवं d **(D)** a एवं b

व्याख्या- ब्राह्मण शब्द की व्युत्पत्ति -

* ब्राह्मणग्रन्थों के अर्थ में 'ब्राह्मण' शब्द विभिन्न तीन अर्थों को लेकर ब्रह्मन् शब्द से अण् (अ) प्रत्यय करके बना है।
* ये तीन अर्थ हैं - शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ब्रह्मन् शब्द का अर्थ है 'मन्त्र'। अतः वेदमन्त्रों की व्याख्या और विनियोग प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ को 'ब्राह्मण' कहते हैं।
* शतपथ के अनुसार ही ब्रह्मन् शब्द का दूसरा अर्थ है- 'यज्ञ'। अतः यज्ञों की व्याख्या और विवरण प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थों को 'ब्राह्मण' कहते हैं।
* ब्रह्मन् शब्द का एक अन्य अर्थ है- 'पवित्र ज्ञान या रहस्यात्मक विद्या।' अतः जिन ग्रन्थों में वैदिक रहस्यों का उद्घाटन किया गया है, उसे 'ब्राह्मण' कहते हैं।

➢ **वाचस्पति मिश्र के अनुसार ब्राह्मण हैं-**

नैरुक्त्यं यत्र मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम् ।
प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते॥
(वाचस्पति मिश्र)

* ब्राह्मण ग्रन्थों के चार प्रयोजन बताए हैं - निर्वचन, विनियोग, प्रतिष्ठान और विधि।
* मीमांसादर्शन के भाष्य में शबरस्वामी ने इन्हीं विषयों को कुछ और विस्तृत करते हुए ब्राह्मणग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषयों की संख्या दस बताई है।

हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः।
परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारण-कल्पना।
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य वै॥
(मीमांसासूत्र शाबरभाष्य 2.18)

हेतु, निर्वचन, निन्दा, प्रशंसा, संशय, विधि, परक्रिया, पुराकल्प, व्यवधारण, कल्पना और उपमान।

➢ **कृष्णयजुर्वेद में परिगणित एकमात्र ब्राह्मण तैत्तिरीयब्राह्मण है-**

* तैत्तिरीयब्राह्मण के रचयिता वैशम्पायन के शिष्य आचार्य तित्तिर हैं। तित्तिर ने तैत्तिरीय संहिता और तैत्तिरीय ब्राह्मण की रचना की।
* दूसरी ओर याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा और शतपथ ब्राह्मण का संकलन किया।
* शतपथब्राह्मण के समान इसमें भी स्वरचिन्ह हैं। इसकी प्राचीनता का द्योतक है।
* यह तीन काण्डों या अष्टकों में विभाजित है।
* प्रथम और द्वितीय काण्ड में 8-8 अध्याय या प्रपाठक हैं। तृतीय काण्ड में 12 अध्याय हैं।
* इनके उपखण्डों को 'अनुवाक' कहते हैं। इनकी संख्या 353 हैं।

➢ **काण्डों के अनुसार प्रतिपाद्य विषय**

काण्ड-1 - अग्न्याधान, गवामयन, वाजपेय, सोम, नक्षत्रेष्टि और राजसूय याग।

काण्ड-2 - अग्निहोत्र, उपहोम, सौत्रामणी बृहस्पति सव, वैश्य सव आदि।

काण्ड-3 - नक्षत्रेष्टियाँ और पुरुषमेध।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि तैत्तिरीयब्राह्मण के प्रथम काण्ड में अग्न्याधान और गवामयन का वर्णन है।

अतः विकल्प 'C' सही है।

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 136

50. 'सोऽर्थस्तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी'- अत्र सः पदस्य क आशयः -

(A) शब्दः **(B)** व्यंग्यः
(C) लक्ष्यः **(D)** वाच्यः

व्याख्या- आचार्य आनन्दवर्धन ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनकी रचना ध्वन्यालोक में चार उद्योत हैं। प्रथम उद्योत में मङ्गलाचरण, अभाववादी आदि पक्ष के तीनों भेदों का निरूपण, ध्वनि निरूपण का प्रयोजन आदि की व्याख्या के पश्चात् वाच्यार्थ से भिन्न व्यङ्ग्य की सत्ता को सिद्ध करते हुए कहते हैं-

सोऽर्थस्तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन।
यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थौ महाकवेः॥1/8॥

इस प्रकार वाच्यार्थ से भिन्न व्यङ्ग्य की सत्ता को सिद्ध करके प्राधान्य भी उसी का है यह दिखाते हैं- वह प्रतीयमान अर्थ और उसकी अभिव्यक्ति में समर्थ विशेष शब्द। इन दोनों को भली प्रकार पहचानने का प्रयत्न महाकवि को करना चाहिये।

'स व्यङ्ग्योऽर्थस्तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन न शब्दमात्रम्'

➢ वह व्यङ्ग्य अर्थ और उसको अभिव्यक्त करने की शक्ति से युक्त कोई विशेष शब्द ही है। शब्दमात्र नहीं।

➢ महाकवि को वही शब्द और अर्थ भली प्रकार पहचानने चाहिये।

➢ व्यङ्ग्य और व्यञ्जक के सुन्दर प्रयोग से ही महाकवियों को महाकविपद की प्राप्ति होती है, वाच्य वाचक रचनामात्र से नहीं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'सोऽर्थस्तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी ....' यहाँ 'स' पद का अर्थ- 'व्यङ्ग्य' है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- ध्वन्यालोक - (1/8)

51. मनुस्मृतेः टीकाकाराणां केन सह कस्य सम्बन्धः

क.	**गोविन्दराजः**	**(i)**	**मनुष्यभाष्यम्**
ख.	**कुल्लूकभट्टः**	**(ii)**	**मन्वाशयानुसारिणीमनुटीका**
ग.	**सर्वज्ञनारायणः**	**(iii)**	**मन्वर्थमुक्तावली**
घ.	**मेधातिथिः**	**(iv)**	**मन्वर्थविवृत्ति**

अधस्तनेषु समीचीनं विकल्पं चिनुत-

(A) 3 1 2 4
(B) 2 3 4 1
(C) 4 2 1 3
(D) 1 4 3 2

व्याख्या- मनुस्मृति की टीकायें

टीका	टीकाकार	समय
मनुभाष्य	मेधातिथि	824-900ई.
मनुटीका	गोविन्दराज	1050-1140ई.
मन्वर्थमुक्तावली	कुल्लूकभट्ट	1150-1300ई.
मन्वर्थवृत्ति	सर्वज्ञनारायण	1400-ई. से पूर्व
मन्वर्थचन्द्रिका	राघवानन्द	1300ई. के पश्चात्
मन्वर्थबोधिनी	मणिराम	1630-1660ई.
चन्द्रिका	रामचन्द्र	समय अनिश्चित
नन्दिनी	नन्दन	समय अनिश्चित
मनुशास्त्रविवरण	भारुचि	छठी शताब्दी अथवा 1050ई से पूर्व

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनुस्मृति के टीकाकार क्रमशः सम्बन्धित हैं- गोविन्दराज-मनुटीका, कुल्लूकभट्ट-मन्वर्थ-मुक्तावली, सर्वज्ञनारायण-मन्वर्थवृत्ति, मेधातिथि-मनुभाष्य से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- मनुस्मृति - राकेश शास्त्री, पेज भू. xxviii

52. काव्यप्रकाशे ''विशेषवपुरपदार्थोऽपि वाक्यार्थः'' अत्र क उच्यते -

(A) अननन्वितार्थः **(B)** लक्ष्यार्थः
(C) व्यंग्यार्थः **(D)** तात्पर्यार्थः

व्याख्या- आचार्य मम्मटकृत काव्यप्रकाश जिसमें दस उल्लास हैं। उपाधि के भेद से एक ही शब्द कभी वाचक, कभी लक्षक और कभी व्यञ्जक कहा जा सकता है, उसी प्रकार अर्थ भी तीन प्रकार के होते हैं-

वाच्यादयस्तदर्थाः स्युः वाच्य-लक्ष्य-व्यङ्ग्याः।

वाच्य, लक्ष्य तथा व्यङ्ग्य आदि उन वाचक, लक्षक तथा व्यञ्जक शब्दों के अर्थ भी तीन प्रकार के हैं।

तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्।

अर्थ का चतुर्थ भेद - तात्पर्यार्थ

कुमारिलभट्ट के अनुयायी पार्थसारथिमिश्र आदि (अभिहितान्वयवादी मीमांसकों) के मत में (तीन प्रकार के वाच्यादि अर्थों के अतिरिक्त चौथे प्रकार का) तात्पर्यार्थ को भी मानते हैं, परन्तु मीमांसक व्यञ्जना शक्ति को नहीं मानते इसलिये यह 3 शक्तियाँ ही हैं। अभिहितान्वयवाद का अभिप्राय यह है कि पहले पदों से पदार्थों की प्रतीति होती है।

अर्थात् वाक्यार्थ बोध के लिये अभिहित पदार्थों का अन्वय मानने के कारण कुमारिलभट्ट आदि का यह सिद्धान्त अभिहितान्वयवाद कहा जाता है।

आकांक्षा-योग्यता-सन्निधिवशात् वक्ष्यमाणस्वरूपाणां पदार्थानां समन्वये तात्पर्यार्थो विशेषवपुरपदार्थोऽपि वाक्यार्थः समुल्लसतीति 'अभिहितान्वयवादिनां' मतम् ।

पदार्थों का आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि के बल से परस्पर सम्बन्ध होने से पदों से प्रतीत होने वाला अर्थ न होने पर भी विशेष प्रकार का तात्पर्य रूप वाक्यार्थ प्रतीत होता है यह अभिहितान्वयवादियों का मत है।

वाच्य एव वाक्यार्थ इति 'अन्विताभिधानवादिनः'।

पदों के द्वारा अन्वित पदार्थों की ही उपस्थिति होती है इसलिए पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध रूप वाक्यार्थ वाच्य ही होता है। यह अन्विताभिधानवादियों का मत है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि काव्यप्रकाश में 'विशेष- वपुरपदार्थोऽपि वाक्यार्थः' यहाँ तात्पर्यार्थ शक्ति को बताया जा रहा है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- काव्यप्रकाश - आचार्य विश्वेश्वर, पेज 36,37

53. नाट्यशास्त्रानुसारं रसानां वर्णाः सन्ति-

(A) शृङ्गारः श्यामः हास्यः कपोतः
(B) हास्यः सितः शृङ्गारः श्यामः
(C) हास्यः सितः शृङ्गारः कपोतः
(D) करुणः कपोतः शृङ्गारः श्यामः

समीचीनमुत्तरं चिनुत-

(A) a एवं b **(B)** b एवं d
(C) c एवं d **(D)** a एवं d

व्याख्या- रससूत्र के प्रथम आचार्य भरतमुनि प्रणीत ग्रन्थ नाट्यशास्त्र है जिसके छठवें अध्याय में रसों की चर्चा की गयी है-

श्यामो भवति शृङ्गारः सितो हास्यः प्रकीर्त्तितः।
कपोतः करुणश्चैव रक्तो रौद्रः प्रकीर्त्तितः॥ 42॥
गौरो वीरस्तु विज्ञेयः कृष्णश्चैव भयानकः।
नीलवर्णस्तु बीभत्सः पीतश्चैवाद्भुतः स्मृतः ॥43॥

* भारतीय वाङ्मय में व्यक्ताव्यक्त सभी विषयों के रूप-रङ्ग एवं आकार-प्रकार का वर्णन उपलब्ध होता है।
* भरतमुनि भी यहाँ शृङ्गारादि रसों के रूप-रङ्ग एवं देवताओं का निरूपण कर रहे हैं।
* शृङ्गारादि रस भी भावरूप होने से मूर्त्त ही होते हैं तथापि उनका व्यक्तीकरण करके यह निरूपण किया गया है।
* शृङ्गार का रङ्ग साँवला होता है तथा हास्य सित अर्थात् शुभ्र वर्ण का कहा गया है।
* करुण का वर्ण कपोत अर्थात् चितकबरा तो रौद्र रस का वर्ण रक्त होता है।
* वीर रस को गौर समझना चाहिए तथा भयानक को काले रङ्ग का।
* बीभत्स रस का वर्ण नीला है तो अद्भुत रस पीले रङ्ग का माना गया है।

शृङ्गारो विष्णुदैवत्यो हास्यः प्रमथदैवतः।
रौद्रो रुद्राधिदैवत्यः करुणो यमदैवतः ॥44॥
बीभत्सस्य महाकालः कालदेवो भयानकः।
वीरो महेन्द्रदेवः स्यादद्भुतो ब्रह्मदैवतः ॥45॥

अब रसों के तत्तत् अधिष्ठातृ देवताओं का निरूपण करते हैं।

* शृङ्गार रस के देवता विष्णु हैं तथा हास्य के देवता प्रमथ हैं जो भगवान् शिव के गण माने गये हैं।
* रौद्र रस के अधिष्ठाता साक्षात् रुद्र ही हैं तथा करुणरस के देवता यम हैं।
* बीभत्स रस के देवता महाकाल हैं।
* भयानक रस के अधिष्ठाता के रूप में कालदेव को माना गया है।
* महेन्द्र वीररस के देवता हैं तो अद्भुत रस के देवता ब्रह्मा माने गए हैं।

साहित्यशास्त्र में रसों की संख्या

	रस	स्थायीभाव	वर्ण	देवता
1.	शृङ्गार	रति	श्याम	विष्णु
2.	वीर	उत्साह	सुवर्णवत्	महेन्द्र
3.	बीभत्स	जुगुप्सा	नील	महाकाल
4.	रौद्र	क्रोध	रक्त	रुद्र
5.	हास्य	हास	शुक्ल	प्रमथ
6.	अद्भुत	विस्मय	पीत	ब्रह्मा
7.	भयानक	भय	कृष्ण	महाकाल
8.	करुण	शोक	कपोत	यम

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नाट्यशास्त्र के अनुसार रसों का वर्ण है- हास्य का सित अर्थात् श्वेतवर्ण और शृङ्गाररस का श्याम (साँवला) वर्ण होता है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- नाट्यशास्त्र (6/42-43)

54. अशोकस्य गिरनार- अभिलेखानां सन्दर्भे समुचितं कथनमस्ति-

(a) अभिलेखानां भाषा संस्कृतमस्ति
(b) अभिलेखानां भाषा प्राकृतम् (पालिः) अस्ति
(c) अभिलेखानां लिपिः देवनागरी अस्ति
(d) अभिलेखानां लिपि ब्राह्मी अस्ति

अधस्तनेषु समीचीनं विकल्पं चिनुत -

(A) a एवं b **(B)** b एवं c
(C) c एवं d **(D)** b एवं d

व्याख्या- अशोक का गिरनार अभिलेख

स्थान - गिरनार **जिला -** जूनागढ़ (महाराष्ट्र)
भाषा - प्राकृत (पालि) **लिपि -** ब्राह्मी
काल - अशोक कालीन (लगभग 272-32ई.पू.)
विषय - हिंसा और समाज का विरोध, व्यक्तिगत जीवन

1. इयं धंम-लिपी देवानं प्रियेन
2. प्रि यदसिना राञा लेखा पिता (।) इध न किं -
3. चि जीवं आरभित्पा प्रजूहितव्यं (।)

1. यह धम्मलिपि देवानंप्रिय (देवताओं में प्रिय)
2. प्रियदर्शी राजा (अशोक) द्वारा लिखवाई गयी
3. कोई भी जीव बलि के लिए नहीं मारा जायेगा

➢ **खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख**

स्थान - हाथीगुम्फा-भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि पहाड़ी
जिला - पुरी उड़ीसा
लिपि - ब्राह्मी
काल - लगभग प्रथम शती ई.पू. का उत्तरार्ध
विषय - चेदिवंशी राजा कलिंगाधिपति खारवेल के जीवन की घटनाओं का क्रमिक विवरण एवं उसकी राजनैतिक उपलब्धियों तथा लोकमंगल के कार्यों का उल्लेख
मूलपाठ - नमो अरहंतानं। नमो सव-सिधानं।। ऐरेण महाराजेन महावेघवाहनेन चेति राज व स-वधनेन पसथ-सुभ-लखनेन चतुरंत लुठण गुण उपितेन कलिंगाधिपतिना सिरि-खारवेलेन

अर्हतों को नमस्कार। सब सिद्धों को नमस्कार। आर्य, महाराज, महामेधवाहन चेदिराज वंशवर्धन करने वाले, प्रशस्त एवं शुभ लक्षण युक्त चतुर्दिक् प्रशस्त गुणों में पूर्ण कलिंगाधिपति श्रीखारवेल ने।

➢ **समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ-अभिलेख**

स्थान - इलाहाबाद उत्तर प्रदेश (यह मूलतः कौशाम्बी में था जहाँ से इलाहाबाद किले में लाया गया)
भाषा - संस्कृत
लिपि - ब्राह्मी
काल - समुद्रगुप्त (लगभग 335-76)
विषय - समुद्रगुप्त का जीवन चरित्र तथा उपलब्धियों का विवरण
लेख का नाम - इस स्तम्भ में समुद्रगुप्त की प्रशस्ति का उल्लेख है तथा यह प्रयाग में है। इससे इसको प्रयाग-प्रशस्ति कहा जाता है। चूँकि इसका लेखक हरिषेण है इससे इसको हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति नाम से भी जाना जाता है।

➢ अग्रेंजी मे इसे Allahabad Pillar Insription कहते हैं।

➢ **रुद्रदामन का जूनागढ शिलालेख**

स्थान - जूनागढ़ गुजरात
भाषा - संस्कृत
लिपि - ब्राह्मी
काल - रुद्रदामन के राजत्वकालान्तर्गत 72वाँ वर्ष
विषय - रुद्रदामन के प्रान्तीय शासक सुविशाख द्वारा सुदर्शन बाँध का पुनर्निर्माण, बाँध का पूर्व इतिहास एवं रुद्रदामन की राजनैतिक उपलब्धियों का विवरण

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अशोक का गिरनार अभिलेख के सन्दर्भ में अभिलेख की लिपि ब्राह्मी लिपि और भाषा प्राकृत भाषा में है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- भारतीय पुरालेखों का अध्ययन-शिवस्वरूप सहाय, पेज 90-91

55. आधिदैविकदुःखेषु गण्येते -

a	**झञ्झावातः**	**b**	**अश्वाघातः**
c	**पश्वाघातः**	**d**	**भूकम्पः**

अत्र समुचितं विकल्पं चिनुत -

(A) a एवं c **(B)** a एवं d
(C) c एवं d **(D)** b एवं c

व्याख्या- सांख्यदर्शन का प्रकरणग्रन्थ सांख्यकारिका है जो ईश्वरकृष्ण द्वारा प्रणीत है।

दुःखत्रयाभिघाताज् जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ॥1॥

तीन प्रकार के दुःखों आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक द्वारा किए गए प्रहार के कारण उनके विनाश करने वाले कारण के सम्बन्ध में जिज्ञासा अत्यन्त स्वाभाविक होती है।

प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले उपायों के होने से वह शास्त्र विषयक व्यर्थ है तो दुःखों के अनिवार्य रूप से, हमेशा के लिए समाप्त न होने से (उचित) नहीं है।

दुःख तीन प्रकार का होता है-
(1) आध्यात्मिक (2) आधिभौतिक (3) आधिदैविक

(1) आध्यात्मिक- दुःख जिसका आन्तरिक तत्त्वों से सम्बन्ध है जो दो प्रकार का होता है-

(क) शारीरिक (ख) मानसिक

जो शरीर के प्रमुख तत्त्व वात, पित्त और कफ की विषमता के कारण उत्पन्न होता है, शारीरिक दुःख कहलाता है। जैसे-ज्वरादि।

यह भी दो प्रकार का होता है - नैसर्गिक (भूखादि), त्रिदोषजन्य (ज्वरादि)।

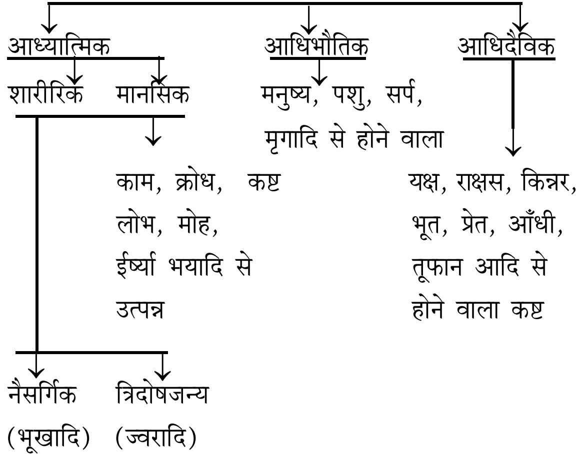
(ख) काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय और ईर्ष्या आदि भावों के कारण उत्पन्न होने वाला दुःख मानसिक कहलाता है।

(2) आधिभौतिक - बाह्यकारणों अथवा पदार्थों जिन्हें हम देख सकते हैं, से उत्पन्न होने वाला दुःख आधिभौतिक कहलाता है।

जैसे- पशु, पक्षी, सर्प, मनुष्यादि पदार्थों से उत्पन्न दुःख अथवा कष्ट।

(3) आधिदैविक - प्रत्यक्ष न दिखाई देने वाली देवयोनियों जैसे- यक्ष, राक्षस, विकार, ग्रहादि के दुष्प्रभाव से होने वाला कष्ट आधिदैविक कहलाता है।

दुःखत्रय



स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि आधिदैविक दुःख में देव आदि से अर्थात् यक्ष, राक्षस आदि से उत्पन्न कष्ट झंझावात, भूकम्प आदि भी हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- सांख्यकारिका (कारिका 01)

56. 'अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवे दिवे' इत्यस्मिन् मन्त्रांशे (रयिः) पदस्य अर्थं निर्दिशतु -

a रात्रिः b रत्नम्

c धनम् d वसु

अत्र उचितमुत्तरं चिनुत -

(A) a एवं b (B) c एवं d

(C) b एवं c (D) a एवं d

व्याख्या- ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त में अग्नि देवता की स्तुति की गयी है।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ (1.1.3)

स्तुति किये जाते हुए अग्नि से यह यजमान प्रतिदिन ही निरन्तर पोषण को प्राप्त होने वाले, पान आदि के द्वारा यश को प्राप्त होने वाले और पुत्र भृत्य आदि वीरों से अत्यधिक युक्त धन को प्राप्त करता है।

शब्दार्थ -

रयिम् - धन को

अश्नवत् - प्राप्त करता है

पोषम् - पोषण को प्राप्त होने पर

दिवे दिवे - प्रतिदिन

यशसम् - यश को प्राप्त होने वाले

वीरवत्तमम् - पुत्र, भृत्य आदि वीरों से युक्त

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'रयिः' पद का अर्थ धन होता है। वसु शब्द का भी अर्थ धन ही होता है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- ऋग्वेद (1.1.1)- किरातार्जुनीयम् (1/3)

57. 'काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्' इत्युक्ति अस्ति-

(A) दण्डिनः (B) वामनस्य

(C) अभिनवगुप्तस्य (D) भोजस्य

व्याख्या- आचार्य वामन कृत काव्यालङ्कारसूत्र प्रथम अधिकरण के 'प्रयोजनस्थापना' नामक प्रथम अध्याय में काव्य को बताते हैं-

➢ **काव्यं ग्राह्यम् अलङ्कारात् ॥1.1॥**

काव्य अलङ्कार से युक्त होने के कारण ग्रहण करने योग्य होता है।

काव्यं खलु ग्राह्यमुपादेयं भवति, अलङ्कारात्। काव्यशब्दोऽयं गुणाऽलङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते। भक्त्या तु शब्दार्थमात्रवचनोऽत्र गृह्यते।

काव्य अलङ्कार से युक्त होने से उपादेय है। यह काव्य शब्द गुण ओज, प्रसाद आदि और अलङ्कार उपमा, यमक आदि से संस्कारसम्पन्न शब्द और अर्थ का बोध कराता है, परन्तु उपचार से केवल शब्दार्थ का बोधक 'काव्य' शब्द का ग्रहण होता है।

➢ **सौन्दर्यमलङ्कारः ॥1.1.2॥**

यह अलङ्कार क्या वस्तु है? इस शब्द का उत्तर द्वितीय सूत्र में देते हैं-

सुन्दरता की स्थापना पद्य में करना अलङ्कार है।

अलङ्कृतिरलङ्कारः। करणव्युत्पत्त्या पुनरलङ्कार-शब्दोऽयम् उपमादिषु वर्तते-

भाव में विग्रह करने पर अलङ्कृति ही अलङ्कार है। ('अलङ्क्रियतेऽनेन' ऐसी) करण में व्युत्पत्ति करने पर तो वह अलङ्कार शब्द उपमा, यमक आदि में प्रयुक्त होता है।

स दोषगुणालङ्कारहानादानाभ्याम् ॥1.1.3॥

वह (सौन्दर्यस्वरूप अलङ्कार दोषों) दुष्ट पदों (दुष्ट पद,

असाधु पद आदि) के त्याग और गुणों (ओज, प्रसाद आदि) के ग्रहण से होता है।

शास्त्रतस्ते ॥1.1.4॥

वे दोनों (दोषों का त्याग तथा गुणों का ग्रहण) शास्त्र से होते हैं।

काव्यं सद्दृष्टाऽदृष्टार्थं प्रीतिकीर्तिहेतुत्वात् (1.1.5)

अलङ्कारयुक्त काव्य से क्या फल है, जिससे इस (अलङ्कार) के लिए प्रयत्न है?

उत्तम काव्य का फल प्रीतिजनक होने से दृष्ट (इस लोक में-ऐहलौकिक) और कीर्तिजनक होने से अदृष्ट (पारलौकिक) दोनों प्रकार से प्राप्त होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्' यह उक्ति वामन की है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति (1.1.1)

58. कथनद्वयमधोलिखितम् एकम् अभिकथनम् (A) अपरञ्च कारणम् (R)

अभिकथनम् (A) - सांख्यकारिकायां पुरुषस्य सत्ता स्वीक्रियते।

कारणम् (R) - सङ्घातपरार्थत्वात्

अत्र समुचितमुत्तरं चिनुत -

(A) (A) असत्यम् (R) सत्यम्

(B) (A) तथा (R) उभे सत्ये स्तः

(C) (A) तथा (R) उभे असत्ये स्तः

(D) (A) सत्यम् (R) असत्यम्

व्याख्या- कपिलमुनि द्वारा रचित सांख्यदर्शन का ही प्रकरणग्रन्थ ईश्वरकृष्णद्वारा प्रणीत सांख्यकारिका है। सांख्यकारिका में विशेषतः प्रकृति और पुरुष की सत्ता का वर्णन किया गया है, पुरुष की सत्ता को इस कारिका के द्वारा बताया गया है-

संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात् ।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥17॥

संघटनात्मक समूहरूप वस्तुओं के दूसरों के लिए होने के कारण, गुणत्रययुक्त धर्मों से विपरीत धर्म वाले की अपेक्षा होने के कारण (व्यक्तरूप संघात का) अधिष्ठाता होने की अपेक्षा से भोक्ता होने की अपेक्षा से मोक्ष के लिए प्रवृत्ति होने से पुरुष (की सत्ता) है।

पुरुष की सिद्धि के लिए पाँच युक्तियों को प्रस्तुत करते हैं- (1) संघातपरार्थत्वात् (2) त्रिगुणादिविपर्ययात् (3) अधिष्ठानात् (4) भोक्तृभावात् (5) कैवल्यार्थं प्रवृत्तेः

➢ प्रकृति (अव्यक्त) की सिद्धि के लिए भी पाँच युक्तियों को बताया गया है-

भेदानां परिमाणात् समन्वयत्वात् शक्तितः प्रवृत्तेश्च ।
कारणकार्यविभागादविभागाद् वैश्वरूप्यस्य ॥15॥

महत् आदि कार्यों के परिमित होने से, कारण के समान होने से, (कारण की) शक्ति से उत्पन्न होने से और कारण से ही कार्य के आविर्भूत होने से, उसी कारण में लीन हो जाने से विविध रूपों वाले सभी कार्यों का एक कारण (प्रधान) अव्यक्त अवश्य है।

(1) भेदानां परिमाणात् (2) भेदानां समन्वयात् (3) शक्तितः प्रवृत्तेः (4) कारणकार्यविभागात् (5) वैश्वरूप्यस्य अविभागात्

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कथन (A) सांख्यकारिका में पुरुष की सत्ता स्वीकार की जाती है। कथन (R) में जो कारण है- 'संघातपरार्थत्वात्' यह उचित कारण है।

अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत- सांख्यकारिका (कारिका - 17)

59. महाभारताश्रितं भासविरचितं नाटकमस्ति-

a दूतवाक्यम् **b प्रतिमानाटकम्**

c मध्यमव्यायोगम् **d बालभारतम्**

अधस्तनेषु समीचीनं विकल्पं चिनुत -

(A) a एवं b **(B)** a एवं d

(C) a एवं c **(D)** b एवं c

व्याख्या- संस्कृतवाङ्मय के प्रमुख नाट्यग्रन्थ एवं उनके उपजीव्यग्रन्थ

नाट्यग्रन्थ	लेखक	विधा	उपजीव्य
दूतवाक्यम्	भास	एकांकी	महाभारत
मध्यमव्यायोग	भास	एकांकी	महाभारत
प्रतिमानाटकम्	भास	सात अङ्क	रामायण
प्रतिज्ञायौगन्धरायण	भास	4 अङ्क	उदयनकथाश्रित
स्वप्नवासवदत्तम्	भास	6 अङ्क	उदयन लोककथा
ऊरुभङ्गम्	भास	एकांकी	महाभारत
दूतघटोत्कचम्	भास	एकांकी	महाभारत
कर्णभारम्	भास	एकांकी	महाभारत
बालचरितम्	भास	तीन अङ्क	महाभारत
अभिषेकनाटकम्	भास	6 अङ्क	रामायण

पञ्चरात्रम् भास 3 अङ्क महाभारत

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि महाभारत पर आश्रित और भास द्वारा रचित ग्रन्थ 'दूतवाक्यम्' और 'मध्यमव्यायोग' हैं। 'प्रतिमानाटक' रामायण पर आश्रित है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- मिशन L.T. - सर्वज्ञभूषण, पेज 371,388

60. याज्ञवल्क्यस्मृतौ व्यवहाराध्यायस्य विषयोऽस्ति-

a ऋणादानप्रकरणम् **b दानप्रकरणम्**

c गृहस्थधर्मप्रकरणम् **d साक्षिप्रकरणम्**

अधस्तनेषु समुचितमुत्तरं चिनुत -

(A) a एवं b **(B)** a एवं d

(C) b एवं d **(D)** c एवं d

व्याख्या- * महर्षि याज्ञवल्क्य प्रणीत याज्ञवल्क्यस्मृति में तीन अध्याय हैं- (1) आचाराध्याय (2) व्यवहाराध्याय (3) प्रायश्चित्ताध्याय

* इसमें एक हजार श्लोक हैं जो अनुष्टुप् छन्द में है।
* प्रथम आचाराध्याय है- इसमें चौदह विद्याएँ, धर्मोपादान, आचार के दस सिद्धान्त आदि तेरह प्रकरण हैं।
* द्वितीय व्यवहाराध्याय है, इसमें पच्चीस प्रकरण हैं। व्यवहाराध्याय विशेष ध्यातव्य है।
* व्यवहाराध्याय याज्ञवल्क्यस्मृति का हृदय है।
* इसमें ही सर्वाधिक प्रकरण समाहित हैं। जो क्रमशः इस प्रकार हैं -

1. साधारणव्यवहारमातृकप्रकरणम्
2. असाधारणव्यवहारमातृकप्रकरणम्
3. ऋणादानप्रकरणम्
4. उपनिधिप्रकरणम्
5. साक्षिप्रकरणम्
6. लेख्यप्रकरणम्
7. दिव्यप्रकरणम्
8. दायविभागप्रकरणम्
9. सीमाविवादप्रकरणम्
10. स्वामिपालविवादप्रकरणम्
11. स्वामिविक्रयप्रकरणम्
12. दत्ताप्रदानिकप्रकरणम्
13. क्रीतानुशयप्रकरणम्
14. अभ्युपेत्याशुश्रूषाप्रकरणम्
15. संविद्व्यतिक्रमप्रकरणम्
16. वेतनादानप्रकरणम्
17. द्यूतसमाह्वयप्रकरणम्
18. वाक्पारुष्यप्रकरणम्
19. दण्डपारुष्यप्रकरणम्
20. साहसप्रकरणम्
21. विक्रीयासंप्रदानप्रकरणम्
22. संभूयसमुत्थानप्रकरणम्
23. स्तेयप्रकरणम्
24. स्त्रीसंग्रहणप्रकरणम्
25. प्रकीर्णप्रकरणम्

तृतीय प्रायश्चित्ताध्याय है, इसमें आपद्धर्म, यतिधर्म, प्रायश्चित्त आदि छह प्रकरण हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्यस्मृति के व्यवहाराध्याय में ऋणादानप्रकरण और साक्षिप्रकरण हैं। जबकि दानप्रकरण और गृहस्थधर्मप्रकरण इसमें नहीं हैं।

अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत- याज्ञवल्क्यस्मृति - गङ्गासागर राय, भू. पेज 1-14

61. 'यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेताम्' अस्मिन् मन्त्रांशे 'शुष्मात्' पदस्य अर्थो निर्धार्यताम् -

a बलात् **b पूजनात्**

c पराक्रमात् **d शस्त्रात्**

अधोचितमुत्तरं चिनुत -

(A) a एवं b **(B)** c एवं d

(C) a एवं d **(D)** a एवं c

व्याख्या- * इन्द्रसूक्त ऋग्वेद के दूसरे मण्डल का बारहवाँ सूक्त है।

* इस सूक्त के ऋषि गृत्समद और देवता इन्द्र हैं और छन्द अनुष्टुप् है।
* इन्द्रसूक्त का पहला मन्त्र है-

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां, नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥

(2.12.1)

जिस प्रमुख मनस्वी देव ने उत्पन्न होते ही अपने पराक्रम से देवों को अभिभूत कर लिया, जिसकी शक्ति से द्युलोक और पृथिवी लोक काँप गये, हे मनुष्यों! महान् बल की महिमा से युक्त वह इन्द्र है।

शब्दार्थ - प्रथमः - प्रधान, प्रमुख, **मनस्वान् -** मनस्वी, बुद्धिमान्, **देवः** - देव ने, **जातः एव** उत्पन्न होते हैं।

क्रतुना - पराक्रम से, शक्ति से, कर्म से

शुष्मात् - बल से, शक्ति से, पराक्रम से

रोदसी - द्युलोक - पृथिवीलोक

अभ्यसेताम् - डर गये, काँप गये।

नृम्णस्य - महान् बल की

मह्ना - महिमा से, महत्त्व से

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेताम्' इस मन्त्र के शुष्मात् पद का अर्थ है- बलात्, पराक्रमात्।

(बल से, शक्ति से, पराक्रम से) **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- ऋग्वेद (2.12.1)

62. आत्मा बुद्ध्या समर्त्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥
उपर्युक्तेन श्लोकेन उपदिश्यते-

(A) वर्णोत्पत्तिप्रक्रिया
(B) वर्णानां स्थानम्
(C) वर्णानां प्रयत्नः
(D) वर्णानाम् उच्चारणकालः

व्याख्या- पाणिनि प्रणीत पाणिनीय शिक्षा है जिसमें 60 श्लोक हैं। इसमें वर्णोत्पत्तिप्रक्रिया का इस श्लोक के द्वारा वर्णन किया गया है-

त्रिषष्टिः चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।
प्राकृते-संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा॥3॥

प्राकृत और संस्कृत भाषा में शम्भु के मत में तिरसठ या चौसठ वर्ण कहे गये हैं। स्वयं ब्रह्मा के द्वारा भी यही कहा गया है।

आत्मा बुद्ध्या समर्थ्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥6॥

आत्मा बुद्धि के द्वारा पदार्थों को संकलित कर बोलने की इच्छा से (उच्चारण करने की इच्छा से) मन को प्रेरित करता है। (वही) मन कायाग्नि मारुत अर्थात् प्राणवायु को प्रेरित करता है।

स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः ।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः ॥4॥
अनुस्वारो विसर्गश्च ᳲ क ᳲ पौ चाऽपि पराश्रितौ।
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो ऌकारः प्लुत एव च ॥5॥

स्वर - 21, स्पर्श वर्ण = 25, यादय - 08, यम = 4 अनुस्वार - ः, विसर्ग - ।, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय - 2 हैं। ᳲ क ᳲ फ ये दोनों पराश्रित हैं। दुःस्पृष्ट - 1, प्लुत ऌकार - 1 है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'आत्मा बुद्धया समेर्त्यार्थान् ....' यह श्लोक वर्णोत्पत्तिप्रक्रिया को उपदेशित करता है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- पाणिनीयशिक्षा - (श्लोक 6)

63. 'इह पुष्यमित्रं याजयामः इत्ययं वाक्यांशः' कस्य आचार्यस्य कालनिर्धारणाय विद्वद्भिः उपयुज्यते-

(A) पतञ्जलेः **(B)** कात्यायनस्य
(C) पाणिनेः **(D)** भर्तृहरेः

व्याख्या- महर्षि पतञ्जलि का भाष्य अपने अनुपम वैशिष्ट्य के कारण महाभाष्य कहा जाता है।

पतञ्जलि का जन्मकाल भी विवादग्रस्त है। पाश्चात्त्य विद्वान् और उनके अनुयायी इनका काल ई. पू. 150 वर्ष मानते हैं जो कि पुष्यमित्र का शासन काल माना जाता है।

प्रवृत्तस्याविरामे शासितव्या भवन्ती (लटः पूर्वाचार्यसंज्ञाः)। .... इह पुष्यमित्रं याजयामः।

(म.भा. 3.2.126)

* पतञ्जलि पाणिनि के सैकड़ों वर्षों बाद ही उत्पन्न हुए थे। इनके समय तक पाणिनीय नियमों का प्रचलन हो चुका था।
* शब्दों का साधुत्व दर्शाने के लिए पतञ्जलि ने इष्टियों का आश्रयण लिया है और शास्त्रीय नियमों की अपेक्षा लोकव्यवहार की प्रधानता स्वीकार की है।
* पतञ्जलि शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर इनका जन्म माना जाता है- पतन्ति अञ्जलयो नमस्कार्यतया तस्मिन् सः पतत् + अञ्जलि में अत् = टि का पररूप करने पर यह रूप बनता है।
* अञ्जलेः पतितः - इस विग्रह में भी मयूरव्यंसकादि मानकर निपातन से इत का लोप करके पत् अञ्जलि = पतञ्जलि बनता है।
* इनके महाभाष्य में एक साथ अनेक प्रश्नों और उत्तरों को देखकर विद्वानों ने इन्हें सहस्र जिह्वाओं वाले शेषनाग का अवतार माना है।
* इसीलिये इन्हें फणी, फणिभृत्, शेषाहि, नागनाथ आदि कहा जाता है।
* इन्हें गोणिकापुत्र भी कहा जाता है। यह सम्भवतः माता के नाम के अनुसार है।
* पाणिनि की अष्टाध्यायी के सूत्रों पर कात्यायनादि द्वारा प्रणीत वार्त्तिकों के आधार पर विशिष्ट शैली में लिखा गया व्याख्यान ग्रन्थ महाभाष्य नाम से प्रसिद्ध है।

  सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः।
  स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥
* महाभाष्य का विभाजन आह्निकों में है-
  'अह्ना निर्वृत्तम् आह्निकम्' - इस व्युत्पत्ति से यह प्रतीत होता है कि एक-एक दिन के अध्यापनीय विषय का संग्रह एक-एक आह्निक में हुआ है।

➢ **आचार्य कात्यायन-**

आचार्य पाणिनि ने अपने समय में विद्यमान भाषा का सम्यक्

परिशीलन करके नियमों (सूत्रों) का प्रणयन किया था। उनके समय में भाषा के रूप में संस्कृत प्रयुक्त होती थी।

* अतः पाणिनि के बाद सैकड़ों वर्षों के अन्तराल में जो नवीन शब्द प्रयुक्त होने लगे उनके लिए उन्होंने नियम नहीं बनाये थे। इस कार्य को आचार्य कात्यायन ने किया।
* पाणिनि सुदूर पश्चिम भारत में उत्पन्न हुए थे और महाभाष्यानुसार कात्यायन दक्षिण भारत में।
* पाणिनि के सूत्रों पर समीक्षात्मक और परिशिष्टात्मक रूप में नियम बनाने का सफल प्रयास कात्यायन ने वार्तिक प्रणयन के माध्यम से किया।
* इनका काल पाणिनि से कम से कम 200 वर्षों के बाद ही होना चाहिए। अतः इन्हें भी ईसा पूर्व 2600 से लेकर ई.पू. 3000 वर्षों के मध्य का माना जाता है।
* बड़े खेद की बात है कि आज तक कात्यायन के वार्त्तिकों का स्वतन्त्र तथा प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं मिल सका।
* महाभाष्य के माध्यम से ही वार्तिकों का अध्ययन किया जाता है।
* उसमें कात्यायन के अतिरिक्त सुनाग आदि अन्य आचार्यों के भी वार्तिक उपलब्ध होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'इह पुष्यमित्रं याजयामः' यह वाक्य पतञ्जलि से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- महाभाष्य - जयशंकर लाल त्रिपाठी, भू. पेज 04

64. सांख्यदर्शनानुसारं पञ्चविंशतितत्त्वेषु गणना नास्ति-

(A) रसस्य **(B)** पुद्गलस्य

(C) श्रोत्रस्य **(D)** जलस्य

व्याख्या- सांख्यदर्शन के प्रणेता कपिलमुनि हैं। सांख्यदर्शन का ही प्रकरणग्रन्थ ईश्वरकृष्ण द्वारा प्रणीत सांख्यकारिका है जिसमें 25 तत्त्वों को बताया गया है-

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।।3।

सांख्याभिमत मूल कारणरूप प्रकृति का विकार नहीं, महत् आदि सात तत्त्व (महत्, अहङ्कार एवं पञ्चतन्मात्राएँ) कारण और विकार दोनों हैं।

सोलह पदार्थों का समुदाय तो केवल विकार ही है। पुरुष न किसी का कारण होता है न विकार होता है।

सांख्यशास्त्र में उल्लिखित प्रमुख 25 तत्त्वों को चार भागों में विभाजित किया गया है-

प्रकृति (अविकृति) = मूलप्रकृति (प्रधान या अव्यक्त)
प्रकृति एवं विकृति = महत् (बुद्धि), अहङ्कार, पञ्चतन्मात्राएँ
केवल विकृति = पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, मन, पञ्चमहाभूत
न प्रकृति न विकृति = पुरुष

प्रकृति - 1
↓
महत् - 1
↓
अहङ्कार - 1
↓ ↓ ↓ ↓
(5) पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ (5) पञ्चकर्मेन्द्रियाँ (1) मन (5) पञ्चतन्मात्राएँ
↓ ↓ ↓
(श्रोत्र, नेत्र, घ्राण, त्वक्, रसना) (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ) (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध)
न प्रकृति न विकृति = पुरुष (1) (5) पञ्चमहाभूत
↓
(आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी)

प्रकृति - 1	महत् - 1
अहङ्कार - 1	ज्ञानेन्द्रिय - 5
कर्मेन्द्रिय - 5	मन - 1
पञ्चतन्मात्रा - 5	पुरुष - 1

= 25 तत्त्व

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सांख्यकारिका में पच्चीस तत्त्वों की गणना में 'पुद्गल' सम्मिलित नहीं है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- सांख्यकारिका - (कारिका 03)

65. कौटिलीयमते प्रव्रज्याप्रत्यवसितः प्रज्ञाशौचयुक्तः गूढपुरुषोऽस्ति-

(A) कापटिकः **(B)** गृहपतिकः

(C) वैदेहकः **(D)** उदास्थितः

व्याख्या- कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में पन्द्रह अधिकरण हैं। विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में गूढपुरुष की चर्चा करते हैं-

- **उपधाभिः शुद्धामात्यवर्गो गूढपुरुषानुत्पादयेत् । कापटिकोदास्थितगृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनान्**

सत्रितीक्ष्णरसदभिक्षुकीश्च।

धर्मोपधा आदि उपायों के द्वारा अमात्यवर्ग की परीक्षा कर लेने के अनन्तर राजा गुप्तचरों की नियुक्ति करें।

कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक, तापस, सत्री, तीक्ष्ण, रसद और भिक्षुकी आदि अनेक प्रकार के गुप्तचर होते हैं।

- **परमर्मज्ञः प्रगल्भश्छात्रः कापटिकः।**

  दूसरों के रहस्य को जानने वाला, बड़ा प्रगल्भ और विद्यार्थी की वेष-भूषा में रहने वाला गुप्तचर कापटिक कहलाता है।
- **प्रव्रज्याप्रत्यवसितः प्रज्ञाशौचयुक्त उदास्थितः।**

  बुद्धिमान्, सदाचारी, संन्यासी के वेष में रहने वाले गुप्तचर का नाम उदास्थित है।
- **कर्षको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो गृहपतिकव्यञ्जनः।**

  बुद्धिमान्, पवित्र हृदय, और गरीब किसान के वेष में रहने वाले गुप्तचर को गृहपतिक कहते हैं।
- **वाणिजको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो वैदेहक-व्यञ्जनः।**

  बुद्धिमान्, पवित्र हृदय और गरीब व्यापारी के वेष में रहने वाला गुप्तचर वैदेहक है।
- **मुण्डो जटिलो वा वृत्तिकामस्तापसव्यञ्जनः।**

  जीविका के लिए सिर मुड़ाये या जटाधारण किये हुए राजा का कार्य करने वाला तापस गुप्तचर ही तापस है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि गुप्तचरों में प्रव्रज्या प्रत्यवसितः प्रज्ञाशौचयुक्त 'उदास्थितः' है।

अतः विकल्प 'D' सही है।

स्रोत- कौटिलीय अर्थशास्त्र - वाचस्पति गैरोला, पेज 30-31

66. याज्ञवल्क्यस्मृतेः व्यवहाराध्याये प्रकरणानां क्रमोऽस्ति-

(A) ऋणादान-उपनिधि-साक्षि-लेख्य-दिव्य-सीमाविवाद-दायविभागप्रकरणम्

(B) दिव्य-लेख्य-साक्षि-उपनिधि-ऋणादान-सीमाविवाद-दायविभागप्रकरणम्

(C) ऋणादान-उपनिधि-साक्षि-लेख्य-दिव्य-दायविभाग-सीमाविवादप्रकरणम्

(D) साक्षि-लेख्य-दिव्य-उपनिधि-ऋणादान-सीमाविवाद-दायविभागप्रकरणम्

व्याख्या- * महर्षि याज्ञवल्क्यप्रणीत याज्ञवल्क्यस्मृति है।

* यह शुक्लयजुर्वेद के द्रष्टा थे।

* इसमें वेदाङ्ग और चौदह विद्याओं = चार वेद, छः वेदाङ्ग, पुराण, न्याय-मीमांसा और धर्मशास्त्र की चर्चा हुई है।

* याज्ञवल्क्यस्मृति के सुप्रसिद्ध टीकाकार विश्वरूप, विज्ञानेश्वर, अपरार्क ने वृद्ध याज्ञवल्क्य को अनेक बार उद्धृत किया है।

* याज्ञवल्क्य स्मृति में एक हजार श्लोक हैं, जो अनुष्टुप् छन्द में हैं।

* याज्ञवल्क्यस्मृति तीन अध्यायों में विभक्त है- आचाराध्याय, व्यवहाराध्याय, प्रायश्चित्ताध्याय। व्यवहाराध्याय में क्रमशः प्रकरण हैं-

1. साधारणव्यवहारमातृकप्रकरणम्
2. असाधारणव्यवहारमातृकप्रकरणम्

3. ऋणादानप्रकरणम्	4. उपनिधिप्रकरणम्
5. साक्षिप्रकरणम्	6. लेख्यप्रकरणम्
7. दिव्यप्रकरणम्	8. दायविभागप्रकरणम्
9. सीमाविवादप्रकरणम्	10. स्वामिपालविवादप्रकरणम्
11. स्वामिविक्रियप्रकरणम्	12. दत्ताप्रदानिकप्रकरणम्
13. क्रीतानुशयप्रकरणम्	14. अभ्युपेत्याशुश्रूषाप्रकरणम्
15. संविद्व्यतिक्रमप्रकरणम्	16. वेतनादानप्रकरणम्
17. द्यूतसमाह्वयप्रकरणम्	18. वाक्पारुष्यप्रकरणम्
19. दण्डपारुष्यप्रकरणम्	20. साहसप्रकरणम्
21. विक्रीयासंप्रदानप्रकरणम्	22. संभूयसमुत्थानप्रकरणम्
23. स्तेयप्रकरणम्	24. स्त्रीसंग्रहणप्रकरणम्
25. प्रकीर्णप्रकरणम्	

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्यस्मृति के व्यवहाराध्याय में क्रमशः प्रकरण हैं- ऋणादान-उपनिधि-साक्षि-लेख्य-दिव्य-दायविभाग-सीमाविवाद प्रकरण। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- याज्ञवल्क्यस्मृति- गङ्गासागर राय, भू. पेज 1-14

67. यत्समवायिकारणप्रत्यासन्नमवधृतसामर्थ्यं तदसमवायिकारणम् यथा- तन्तुसंयोगः पटस्यासमवायिकारणम्। तन्तुसंयोगस्य गुणस्य, पटसमवायिकारणेषु तन्तुषु गुणिषु समवेतत्वेन प्रत्यासन्नत्वात्। अनन्यथासिद्ध नियतपूर्वभावित्वेन पटं प्रति कारणत्वाच्च। इति सिद्धान्तानुसारेण तन्तुसंयोगः पटस्य कीदृशं कारणम् भवति?

(A) असमवायिकारणम् **(B)** समवायिकारणम्

(C) संयोगकारणम् **(D)** निमित्तकारणम्

व्याख्या- आचार्य गौतम प्रणीत न्यायदर्शन का प्रकरण ग्रन्थ

तर्कभाषा है जो केशव मिश्र द्वारा रचित है। इसमें तीन कारणों की चर्चा हुई है- समवायि कारण, असमवायि कारण और निमित्त कारण।

1. समवायिकारण- यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्। अतस्तन्तुरेव समवायिकारणं पटस्य न तु तुर्यादि।

जिसमें समवेत होकर कार्य उत्पन्न होता है वह समवायि कारण है। इसलिये तन्तु ही पट के समवायि कारण हैं, तुरी आदि नहीं।

2. असमवायिकारणम्-

यत्समवायिकारणप्रत्यासन्नमवधृतसामर्थ्यं तदसमवायिकारणम्। यथा तन्तुसंयोगः पटस्यासमवायिकारणम् तन्तुसंयोगस्य गुणस्य, पटसमवायिकारणेषु तन्तुषु गुणिषु समवेतत्वेन समवायिकारणे प्रत्यासन्नत्वात् अनन्यथासिद्धनियतपूर्वभावित्वेन पटं प्रति कारणत्वाच्च। एवं तन्तुरूपं पटरूपस्य असमवायिकारणम्।

तन्तुसंयोग पट का असमवायि कारण है, क्योंकि तन्तुसंयोग गुण है, वह पट के समवायि कारण तन्तु नामक गुणों में समवाय सम्बन्ध से रहता है। अतः पट के समवायि कारण में प्रत्यासन्न है और वह अनन्यथासिद्ध पूर्वभावी होने से पट के प्रति कारण भी है।

इसी प्रकार तन्तु का रूप पट के रूप का असमवायि कारण है।

3. निमित्तकारण-

निमित्तकारणं तदुच्यते यन्न समवायिकारणम् नाप्य समवायिकारणम् अथ च कारणम्। यथा वेमादिकं पटस्य निमित्तकारणम्।

जो न समवायि कारण है, न ही असमवायि कारण है, किन्तु कारण है वह निमित्त कारण कहलाता है, जैसे वेमा आदि पट का निमित्त कारण है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'यत्समवायिकारण-प्रत्यासन्नमवधृतसामर्थ्यं तदसमवायिकारणम्।' यह असमवायि कारण है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- तर्कभाषा - श्रीनिवासशास्त्री - 33-39

68. 'गो अग्रम्' इत्यत्र न सम्भवति-

(A) प्रकृतिभावः **(B)** पूर्वरूपम्
(C) अवङादेशः **(D)** संहिताया अभावः

व्याख्या-

सूत्र- प्रकृतिभावविधायक विधिसूत्र

पदपरिचय - सर्वत्र (अव्ययपद), पदान्तस्य (6.1) एङः (6.1), गोः (6.1), अति (7.1), विभाषा (1.1), प्रकृत्या (3.1)

अनुवृत्ति/ अधिकार- 'एङः पदान्तादति' से 'पदान्तात्' की 'एङः' की तथा 'अति' की अनुवृत्ति एवं 'प्रकृत्यान्तः पादमव्ययपरे' से 'प्रकृत्या' की अनुवृत्ति।

सूत्रार्थ- लौकिक एवं वैदिक संस्कृत के प्रयोगों में एङन्त 'गो' शब्द को पदान्त में विकल्प से प्रकृतिभाव होता है।

जैसे- गो + अग्रम् = गोअग्रम् / गोऽग्रम् (गाय का अग्रभाग)

➢ प्रकृतिभाव न होने के पक्ष में अवङ् आदेश होकर गवाग्रम् भी बनता है जो आगे 'अवङ् स्फोटायनस्य' सूत्र में बताया गया है।

➢ एङन्त गो के बाद अग्रम् के अ स्वर आने पर पूर्वरूप सन्धि होकर 'गोऽग्रम्' 'एङः पदान्तादति' से, प्रकृतिभाव के अभाव में बना।

➢ सन्धि के लिये संहिता का होना अनिवार्य है यदि संहिता नहीं होगी पदों में तो सन्धि सम्भव नहीं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि गो अग्रम् प्रकृतिभाव, पूर्वरूप और अवङ् आदेश होता है परन्तु संहिता का अभाव होने से सन्धि होना सम्भव नहीं है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- L.T. मिशन - सर्वज्ञभूषण, पेज 101

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी - आद्याप्रसाद मिश्र, पेज 55-57

69. कथनद्वयमधोलिखितम् एकम् (A) इति अभिकथनम् अपरञ्च (R) इति कारणम् ।

अभिकथनम् (A) - वाल्मीके रामः सीता-वियोगे कारुण्य-आनृशंस्य-शोके-मदनरूप-चतुर्मुखी-सन्तापेन सन्तप्तो भवति।

कारणम् (R) - सर्वेऽपि पुरुषा भार्या-वियोगे सन्तप्ताः भवन्ति।

उपर्युक्तानुसारं समीचीनं विकल्पं चिनुत-

(A) (A) तथा (R) उभौ अपि सत्यम् (R) इति समुचितं कारणमस्ति (A) इत्यस्य।
(B) (A) तथा (R) उभौ अपि सत्यं किन्तु (R) इति उचितं नास्ति (A) इत्यस्य
(C) (A) इति सत्यम् (R) इति असत्यम्
(D) (A) तथा (R) उभौ अपि सत्यम्

व्याख्या- उपर्युक्त कथन (A) में कहा गया है कि वाल्मीकि

के राम सीता वियोग में करुणा से भरे हुये शोक में मदनरूपी चतुर्मुखी सन्ताप से सन्तप्त होते हैं। अर्थात् वाल्मीके रामः सीतावियोगे कारुण्य .... सन्तप्तो भवति।

कथन (R) में कहा गया है कि 'सर्वेऽपि पुरुषा भार्या वियोगे सन्तप्ताः भवन्ति।' अर्थात् सभी पुरुष भार्या अर्थात् पत्नी के वियोग में सन्तप्त होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि कथन (A) और (R) दोनों सही है। किन्तु कथन (A) का कथन (R) उचित कारण नहीं है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

70. दीप्त्या च धैर्येण च यो रराज बालो रविर्भूमिमिवावतीर्णः।
तथातिदीप्तोऽपि निरीक्ष्यमाणो जहार चक्षूंषि यथा शशाङ्कः॥
श्लोकेऽस्मिन् किं छन्दः कश्चात्र अलङ्कारः?

(A) मालिनी वृत्तम्, परिकरालङ्कारः
(B) आर्यावृत्तम् , उत्प्रेक्षालङ्कारः
(C) उपजातिवृत्तम्, उपमालङ्कारः
(D) वंशस्थवृत्तम्, रूपकालङ्कारः

व्याख्या- अश्वघोष कृत बुद्धचरितम् 28 सर्गों का एक महाकाव्य है। भगवत्प्रसूति नामक प्रथम सर्ग में बुद्ध के विषय में कहा गया है-

दीप्त्या च धैर्येण च यो रराज बालो रविर्भूमिमिवावतीर्णः।
तथातिदीप्तोऽपि निरीक्ष्यमाणो जहार चक्षूंषि यथा शशाङ्कः
॥ 1/12॥

तेज एवं धैर्य से वह, भूमि पर आये हुए बाल सूर्य की भाँति, शोभित हुआ और अत्यन्त तेजस्वी होने पर भी, देखे जाने पर, नेत्र चन्द्रमा के समान हर लेता था।

आचार्य मम्मट के अनुसार

उपमा का लक्षण - साधर्म्यमुपमा भेदे।

उपमान और उपमेय का भेद होने पर उनके साधर्म्य का वर्णन उपमा कहलाता है।

उपमा के प्रमुख अंग हैं- उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक शब्द।

जैसे- दीप्त्या च धैर्येण च यो रराज बालो, रविर्भूमिमिवावतीर्णः।

उपर्युक्त उदाहरण में बुद्ध उपमेय है, बालसूर्य उपमान है, तेज साधारणधर्म तथा 'इव' उपमावाचक शब्द है। इस प्रकार इसमें उपमा अलंकार है।

उपजाति छन्द - उपजाति छन्द के भी प्रत्येक चरण में 11 वर्ण होते हैं। इस प्रकार चारों चरणों में कुल 11 x 4 = 44 वर्ण होते हैं।

छन्द लक्षण-

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।
(वृत्तरत्नाकर 3/30)

जिस छन्द के दो चरण इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा के लक्षण से युक्त हों, उसे उपजाति छन्द कहते हैं।

उदाहरण-

तगण तगण जगण गुरु गुरु
ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ।
दीप्त्या च धैर्येण च यो रराज (इन्द्रवज्रा)
ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
बालो रविर्भूमिमिवावतीर्णः।
जगण तगण जगण गुरु गुरु
। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
तथापिदीप्तोऽपि निरीक्ष्यमाणो जहार चक्षूंषि यथा शशाङ्कः।
(उपेन्द्रवज्रा)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'दीप्त्या च धैर्येण च यो रराज ....' इसमें उपमा अलङ्कार और उपजाति छन्द है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- (बुद्धचरितम् 1/12)

71. अधोऽङ्कितेषु केन सह कस्य सम्बन्धः -

(a)	**माध्यमिकाः**	**(i)**	**बाह्यार्थशून्यम्**
(b)	**योगाचाराः**	**(ii)**	**बाह्यार्थप्रत्यक्षम्**
(c)	**सौत्रान्तिकाः**	**(iii)**	**सर्वं शून्यम्**
(d)	**वैभाषिकाः**	**(iv)**	**बाह्यार्थानुमेयम्**

समुचितं विकल्पं चिनुत -

	(a)	**(b)**	**(c)**	**(d)**
(A)	(iii)	(i)	(iv)	(ii)
(B)	(i)	(ii)	(iii)	(iv)
(C)	(iv)	(iii)	(ii)	(i)
(D)	(iii)	(ii)	(iv)	(i)

व्याख्या- बौद्ध दर्शन के सुप्रसिद्ध चार सम्प्रदाय हैं- (1) माध्यमिक (2) योगाचार (3) सौत्रान्तिक (4) वैभाषिक

ते च बौद्धाश्चतुर्विधया भावनया परमपुरुषार्थं कथयन्ति। ते च माध्यमिक-योगाचार-सौत्रान्तिक वैभाषिकसंज्ञाभिः प्रसिद्धा बौद्धा यथाक्रमं सर्वशून्यत्व-बाह्यार्थशून्यत्व-बाह्यार्थानुमेयत्वबाह्यार्थ-प्रत्यक्षत्ववादानातिष्ठन्ते।

* वे बौद्ध लोग चार प्रकार की भावना (दृष्टिकोण) से परम पुरुषार्थ का वर्णन करते हैं।
* ये बौद्ध माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक नाम से प्रसिद्ध हैं।

1. माध्यमिक - सर्वं शून्यत्वं सब कुछ शून्य होना
2. योगाचार - बाह्यार्थशून्यं (बाह्य पदार्थों का शून्य होना)
3. सौत्रान्तिक - बाह्यार्थानुमेयत्वम् (बाह्य पदार्थों का अनुमान से ज्ञात होना)
4. वैभाषिक - बाह्यार्थप्रत्यक्षत्वम् (बाह्य पदार्थों का प्रत्यक्ष से ज्ञान होना।)

भावना चतुष्टय -

सर्वं क्षणिकं क्षणिकं, दुखं दुःखं, स्वलक्षणं स्वलक्षणं, शून्यं-शून्यमिति भावनाचतुष्टयमुपदिष्टं द्रष्टव्यम् ।

चारों भावनाएँ इस प्रकार उपदिष्ट हुई हैं-

1. सब कुछ क्षणिक है क्षणिक
2. सब कुछ दुःख है दुःख
3. सभी का लक्षण अपने आपमें है
4. सब कुछ शून्य है शून्य

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि माध्यमिकाः - सर्वं शून्यम्, योगाचाराः - बाह्यार्थशून्यम्, सौत्रान्तिकाः - बाह्यार्थानुमेयम् वैभाषिकाः - बाह्यार्थप्रत्यक्षम् यह सुमेलित है।

अतः विकल्प 'A' सही है।

स्रोत- सर्वदर्शनसंग्रह - उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 31

72. ससायणभाष्यर्ग्वेदसंहितां सम्पाद्य तस्याः प्रकाशनकार्यं प्रथमं केन वैदेशिकेन कृतमस्ति?

(A) मैक्समूलरेण **(B)** वेबरेण
(C) जैकोबी महोदयेन **(D)** विण्टरनित्समहोदयेन

व्याख्या- * भारतीय वाङ्मय की ओर पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय सर विलियम जोन्स को है।

* यह संस्कृत, अरबी, फारसी के विद्वान् थे। इन्होंने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल की स्थापना की।
* फ्रांस के प्रो. बर्नफ ने कई योग्य संस्कृत प्रेमी विद्वान् तैयार किए, इनमें मैक्समूलर, रोठ और ह्विटनी मुख्य हैं।

* **मैक्समूलर -** मैक्समूलर का जन्म जर्मनी के डेशों नामक स्थान में 6 दिसम्बर 1823 को हुआ था। 19 वर्ष में डाक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि प्राप्त की।
  इन्होंने सर्वप्रथम सायणभाष्य के साथ ऋग्वेद के प्रकाशन की एक योजना बनाई।
  सन् 1849-1875 ई. तक इनका प्रकाशन का कार्य पूरा हुआ।
  यह कार्य 27 वर्षों के घोर परिश्रम के बाद पूर्ण हुआ।
* **वेबर -** डा. वेबर ने यजुर्वेदसंहिता एवं तैत्तिरीयसंहिता का सम्पादन किया है।
* **विन्टरनित्स -** इन्होंने तीन भागों में History of Indian Literature (भारतीय साहित्य का इतिहास) निकाला था। मूल ग्रन्थ जर्मन भाषा में है। इसका अंग्रेजी अनुवाद है जिसके भाग-1 का हिन्दी अनुवाद भी निकला है।
* **विल्सन -** डा. विल्सन ने 1850 ई. में सायणभाष्य के साथ सम्पूर्ण ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित किया है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि ससायणभाष्य ऋग्वेद संहिता का प्रथम बार प्रकाशन मैक्समूलर ने करवाया था।

अतः विकल्प 'A' सही है।

स्रोत- वैदिक साहित्य का इतिहास - पारसनाथ द्विवेदी, पेज 19

73. भोजप्रबन्धानुसारं शिलालेख-लिपिवाचनं कथ्यते-

(A) लिपिपरीक्षा **(B)** शिलापरीक्षा
(C) जतुपरीक्षा **(D)** पाण्डुपरीक्षा

व्याख्या- भोजप्रबन्ध बल्लाल कवि विरचित राजा भोज पर आश्रित दन्तकथाओं का एक संग्रह ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कालिदास आदि अनेक कवियों को किम्वदन्तियों और कल्पनाओं के आधार पर राजा भोज के समकालीन दर्शाया है।

भोजप्रबन्ध की एक कथा में नर्मदा की एक बड़ी झील में धीवरों ने कुछ मिटे हुए अक्षरों वाला एक पत्थर देखा। उस पर लिखे लेख का जतु (लाख) द्वारा परीक्षण कर के शुद्धपाठ ज्ञात किया, इसी प्रक्रिया को भोज प्रबन्ध में जतुपरीक्षा कहा गया है। जैसे-

ततः किमिदं लिखितमित्यवश्यं विचार्यमिति लिपिज्ञानं कार्यम्। जतुपरीक्षयाऽक्षराणि परिज्ञाय पठति।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भोजप्रबन्धानुसार

शिलालेख लिपिवाचन को 'जतुपरीक्षा' कहा जाता है।

अतः विकल्प 'C' सही है।

स्रोत- भोजप्रबन्ध - केदारनाथ, पेज 146

74. अधोलिखितानां ग्रन्थानां रचनाकालदृष्ट्या समुचितं क्रमं चिनुत-

(A) काशिका, वाक्यपदीयम्, सारस्वतव्याकरणम्, प्रदीपः
(B) वाक्यपदीयम्, काशिका, सारस्वतव्याकरणम्, प्रदीपः
(C) वाक्यपदीयम्, काशिका, प्रदीपः, सारस्वतव्याकरणम्
(D) वाक्यपदीयम्, प्रदीपः, काशिका, सारस्वतव्याकरणम्

व्याख्या- (1) जयादित्य और वामन - (सं. 650-700 वि.)

* जयादित्य और वामन दोनों की सम्मिलित रूप से रचित वृत्ति 'काशिका' नाम से प्रसिद्ध है।
* महाभाष्य और भर्तृहरि विरचित ग्रन्थों के बाद काशिकावृत्ति सर्वाधिक समादृत और महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।
* काशिका की प्राचीनतम व्याख्या जिनेन्द्रबुद्धि विरचित 'काशिकाविवरणपञ्जिका' अपर नाम 'न्यास' है।
* जयादित्य और वामन का काल लगभग सं. 650-700 वि. माना जाता है।

(2) वाक्यपदीयम् - महावैयाकरण भर्तृहरि महाभाष्य के टीकाकार, वाक्यपदीय के कर्ता और भागवृत्ति के वृत्तिकार के साथ कतिपय अन्य कृतियों के भी लेखक माने जाते हैं।

भर्तृहरि नाम का एक व्यक्ति था या अनेक इस विषय पर विचार करने के लिए भर्तृहरि के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थों पर पहले विचार करना आवश्यक है।

संस्कृत वाङ्मय में भर्तृहरिविरचित निम्न ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं-

महाभाष्य-दीपिका

वाक्यपदीय - तीनों काण्ड

वाक्यपदीय की स्वोपज्ञवृत्ति प्रथम और द्वितीय काण्ड, नीतिशतक, शृङ्गारशतक और वैराग्यशतक, जैमिनीय मीमांसावृत्ति, वेदान्तसूत्रवृत्ति, शब्दधातु समीक्षा, भट्टिकाव्य, भागवृत्ति।

इनमें से प्रथम तीन ग्रन्थों की परस्पर तुलना करने से विदित हो जाता है कि इन तीनों का कर्ता एक ही व्यक्ति है, वह है महावैयाकरण भर्तृहरि। वाक्यपदीय की रचना वि. सं. 400 से अर्वाचीन नहीं है। वह सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है, अतः वही काल महाभाष्यदीपिका की रचना का भी है।

(3) कैयट कृत महाभाष्य की प्रदीप टीका-

* कैयट कृत महाभाष्य की टीका प्रदीप, प्रदीपभाष्य और महाभाष्यप्रदीप इन विभिन्न तीन नामों से व्यवहृत होती है।
* कैयट ने अपनी टीका के प्रारम्भ में लिखा है कि मैंने यह व्याख्या भर्तृहरि निबद्ध साररूप ग्रन्थसेतु के आश्रय से रची है। यहाँ * सार शब्द के निर्देश से स्पष्ट है कि कैयट का अभिप्राय भर्तृहरि विरचित वाक्यपदीय और प्रकीर्ण काण्ड से है।
* कैयट का काल अधिक से अधिक विक्रम की ग्यारहवीं शती का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है।

(4) सारस्वत-व्याकरणकार (सं. 1150 वि. के लगभग)

* सारस्वतसूत्रों का मूल रचयिता नरेन्द्राचार्य नामक वैयाकरण है।
* विट्ठल ने प्रक्रियाकौमुदी की टीका में नरेन्द्राचार्य को अनेकत्र उद्धृत किया है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कालदृष्टि के अनुसार क्रमशः भर्तृहरि- वाक्यपदीयम् सं.- 400, वामन कृत काशिका सं. 650-700 वि., कैयट कृत प्रदीप टीका- 11वीं शती उत्तरार्द्ध, सारस्वतव्याकरण- नरेन्द्रकृत जिसका समय 1150 वि. के लगभग है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- व्याकरणशास्त्र का इतिहास युधिष्ठिर मीमांसा, भू. पेज 237,171,169,147

75. 'ब्रह्मचर्यं भूमौ शय्या जटाऽजिनधारणमग्निहोत्राभिषेकौ देवतापित्रतिथिपूजा वन्यश्चाहारः' इति कौटिलीयमते कस्य धर्मोऽस्ति?

(A) ब्रह्मचारिणः **(B)** गृहस्थस्य
(C) वानप्रस्थस्य **(D)** परिव्राजकस्य

व्याख्या- कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र जिसमें पन्द्रह अधिकरण, 180 प्रकरण तथा 150 अध्याय हैं।

* प्रथम अधिकरण का नाम है- विनयाधिकारिक। इसमें कुल 21 अध्याय हैं।
* प्रथम अधिकरण में राजा के अनुशासन, शास्त्र शिक्षा, मन्त्रियों तथा पुरोहित के गुण, उनके प्रलोभन, गुप्तचर, सभा, राजदूत आदि का वर्णन है।
* त्रयी स्थापना के अन्तर्गत त्रयी की चर्चा हुई है-

सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी।

साम, ऋक् तथा यजुः इन तीनों वेदों का समन्वित नाम ही त्रयी है।

* **स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं**

प्रतिग्रहश्चेति।

ब्राह्मण का धर्म अध्ययन अध्यापन, यजन याजन और दान देना तथा दान लेना है।

* **क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्राजीवो भूतरक्षणं च।** क्षत्रिय का धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, शस्त्र बल से जीविकोपार्जन करना और प्राणियों की रक्षा करना।

* **वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च।** वैश्य का धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, कृषिकार्य एवं पशुपालन और व्यापार करना है।

* **शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारुकुशीलवकर्म च।** शूद्र का अपना धर्म है कि वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की सेवा करे और शिल्प तथा रंगमञ्चीय कार्य करें।

* **गृहस्थस्य स्वकर्माजीवस्तुल्यैरसमानर्षिभिर्वैवाह्यमृतुगामित्वं देवपित्रतिथिभृत्येषु त्यागः शेषभोजनं च।** गृहस्थ अपनी परम्परा के अनुकूल कार्यों द्वारा जीविकोपार्जन करें, अनुरूप श्रेणी के व्यक्तियों तथा असगोत्र समाज में विवाह, ऋतुगामी हो, देव, पितर, अतिथि और भृत्यजनों को देकर सबसे अन्त में भोजन करें।

* **ब्रह्मचारिणः स्वाध्यायोऽग्निकार्याभिषेकौ भैक्षव्रतत्त्वमाचार्ये प्राणान्तिकी वृत्तिस्तदभावे गुरुपुत्रे सब्रह्मचारिणि वा।**

ब्रह्मचारी का धर्म है कि वह नियमित स्वाध्याय करे, अग्निहोत्र करे, नित्य स्नान करे, गुरु के लिए प्राण तक त्यागने को उद्यत रहे, भिक्षाटन करे, गुरु की अनुपस्थिति में गुरुपुत्र अथवा अपने किसी समान शाखाध्यायी के निकट रहे।

* **वानप्रस्थस्य ब्रह्मचर्यं भूमौ शय्या जटाऽजिनधारणमग्निहोत्राभिषेकौ देवतापित्रतिथिपूजा वन्यश्चाहारः -**

वानप्रस्थी का धर्म है- ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना, भूमि पर शयन करना, जटा मृगचर्म को धारण किये रहना, अग्निहोत्र तथा प्रतिदिन स्नान करना, देव, पितर एवं अभ्यागतों की सेवा-पूजा करना और वन के कन्द मूल फल पर निर्वाह करना।

* **परिव्राजकस्य संयतेन्द्रियत्वमनारम्भो निष्किञ्चनत्वं सङ्गत्यागो भैक्षमनेकत्रारण्यवासो बाह्याभ्यन्तरं च शौचम् ।**

संन्यासी का धर्म है- जितेन्द्रिय होना, वह किसी भी सांसारिक कार्य को न करे, निष्किंचन बना रहे, एकाकी रहे, प्राणरक्षा मात्र के लिए स्वल्प आहार, समाज में न रहे, जंगल में भी एक स्थान पर न रहता रहे, मन, वचन, कर्म से अपना बाह्याभ्यन्तर पवित्र रखे।

* **सर्वेषामहिंसा सत्यं शौचमनसूयाऽऽनृशंस्यं क्षमा च**

प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रम का धर्म है कि वह किसी भी प्रकार की हिंसा न करे, सत्य बोले, पवित्र बना रहे, किसी से ईर्ष्या न करे, दयावान् और क्षमाशील बना रहे।

* **स्वधर्मः स्वर्गायानन्त्याय च। तस्यातिक्रमे लोकः सङ्करादुच्छिद्येत।**

अपने धर्म का पालन करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसका पालन न करने से वर्ण और कर्म में संकरता आ जाती है, जिससे लोक का नाश हो जाता है।

* **तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत् ।**
स्वधर्मं संदधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति॥ (1.3.16)
व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः।
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति॥ (1.3.17)

इसलिए राजा का कर्तव्य है कि वह ब्रह्म प्रजा को धर्म और कर्म मार्ग से भ्रष्ट न होने दे। अपनी प्रजा को धर्म और कर्म में प्रवृत्त रखने वाला राजा लोक और परलोक में सुखी रहता है। पवित्र आर्यमर्यादा में अवस्थित, वर्णाश्रम धर्म में नियमित और त्रयी धर्म से रक्षित प्रजा दुःखी नहीं होती, सदा सुखी रहती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'ब्रह्मचर्यं भूमौ शय्या जटाऽजिनधारणमग्निहोत्राभिषेकौ ....' यह पंक्ति कौटिलीयमते वानप्रस्थधर्म से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- कौटिलीय अर्थशास्त्र - वाचस्पति गैरोला, पेज 11

76. शुक्लयजुर्वेदसंहितायाः कतमोऽध्याय ईशोपनिषद् -

(A) विंशतितम् **(B)** षोडशतमः
(C) चत्वारिंशत्तमः **(D)** एकोनविंशतितमः

व्याख्या- ➤ ईशावास्योपनिषद् शुक्लयजुर्वेद काण्वशाखीय संहिता का चालीसवाँ अध्याय है।

➤ मन्त्रभाग का अंश होने से इसका विशेष महत्त्व है। इसी को सबसे पहला उपनिषद् माना जाता है।

➤ शुक्लयजुर्वेद के प्रथम उनतालीस अध्यायों में कर्मकाण्ड का निरूपण हुआ है। यह उस काण्ड का अन्तिम अध्याय है और इसमें भगवत्तत्वरूप ज्ञानकाण्ड का निरूपण किया गया है।

* इसके पहले मन्त्र में 'ईशावास्यम्' वाक्य आने से इसका नाम

'ईशावास्य' माना गया है।

ऊँ ईशा वास्यमिद ँ् सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन व्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥1॥

अखिल ब्रह्माण्ड में, जो कुछ भी, जडचेतन स्वरूप जगत् है, यह समस्त ईश्वर से व्याप्त है, उस ईश्वर को साथ रखते हुए त्यागपूर्वक इसे भोगते रहो आसक्त मत होओ। धन, भोग्यपदार्थ किसका है अर्थात् किसी का भी नहीं है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ् समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥2॥

जगत् के एकमात्र कर्ता, धर्ता, हर्ता, सर्वशक्तिमान्, सर्वमय परमेश्वर का सतत स्मरण रखते हुए सब कुछ उन्हीं का समझकर उन्हीं की पूजा के लिए शास्त्रनियत कर्तव्याकर्मों का आचरण करते हुए ही सौ वर्षो तक जीने की इच्छा करो।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
ता ँ् स्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥3॥

असुरों की प्रसिद्ध नाना प्रकार की योनियाँ एवं नरकरूप लोक हैं, वे सभी अज्ञान तथा दुःख क्लेश रूप महान् अन्धकार से आच्छादित है, जो कोई भी आत्मा की हत्या करने वाले मनुष्य हों वे मरकर उन्हीं भयङ्कर लोकों को बार-बार प्राप्त होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शुक्लयजुर्वेदसंहिता के चालीसहवें अध्याय में ईशोपनिषद् है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- ईशादि नौ उपनिषद् - गीताप्रेस, पेज 01

77. महाभारतस्य खिलपर्व कथ्यते-

(A) मत्स्यपुराणम् **(B)** स्कन्दपुराणम्
(C) हरिवंशपुराणम् **(D)** पद्मपुराणम्

व्याख्या- वर्तमान महाभारत अठारह पर्वों में विभक्त है। जिसमें अनेक उपपर्व मुख्य घटनाओं के शीर्षक के रूप में हैं।

* यहाँ महाभारत के परिशिष्ट के रूप में स्वतन्त्र ग्रन्थ होने के कारण हरिवंशपुराण को खिलपर्व कहा जाता है।
* इसमें 16374 श्लोक हैं। इसे भी वैशम्पायन ने जनमेजय को सुनाया था।
* यह भी महाभारत के समान अनेक लेखकों की रचना के रूप में है।
* इसका अन्तिम पर्व (भविष्यपर्व) परिशिष्ट है और काल की दृष्टि से बहुत बाद की रचना है।
* इस ग्रन्थ के तीन खण्ड (पर्व) हैं- हरिवंश पर्व, विष्णुपर्व और भविष्यपर्व।
* हरिवंशपर्व में कृष्ण के वंश (वृष्णि, अन्धक) की कथा विस्तार से वर्णित है, इसी के नाम पर पूरे ग्रन्थ का नाम दिया गया है।
* पुराणों की दृष्टि से सृष्टि का वर्णन ध्रुव, दक्ष, वेन और पृथु के आख्यान, सूर्यवंश के वर्णन के प्रसंग में विश्वामित्र और वसिष्ठ की कथा एवं चन्द्रवंश के वर्णनक्रम में उर्वशी पुरूरवा नहुष, ययाति, यदु, वसुदेव तथा कृष्ण की कथाएँ वर्णित हैं।
* विष्णुपर्व सबसे बड़ा भाग है जिसमें महाभारत के नायक कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन है।
* कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न तथा पौत्र अनिरुद्ध के विवाहों का भी विस्तृत विवरण है।
* भागवत में निरूपित कृष्णकथा से कहीं-कहीं विवरणों में पार्थक्य है। अतः प्राचीनतम कृष्णकथा का प्रतिनिधित्व इसमें मिलता है।
* भविष्यपर्व में विविध वृत्तों का पौराणिक शैली में परस्पर असम्बद्ध विवरण है।
* विष्णु के अवतारों का वर्णन, शिव और विष्णु की उपासना का समन्वय एवं शिव के दो उपासकों (हंस तथा डिम्भ) की कृष्ण द्वारा पराजय की कथा के अतिरिक्त अन्त में महाभारत और हरिवंश के माहात्म्य का निरूपण है।
* ध्वन्यालोक में आनन्दवर्धन ने कहा है कि कृष्णद्वैपायन ने महाभारत का हरिवंश के द्वारा समापन करके शान्तरस की पुष्टि की है।
* इस प्रकार हरिवंश को प्राचीन काल से ही महाभारत का अंश माना गया है।
* आदिपर्व के द्वितीयाध्याय में जो महाभारत में 100 पर्व माने गये हैं उनमें हरिवंश भी सम्मिलित हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि महाभारत के हरिवंश पर्व को ही 'खिल पर्व' कहा जाता है।
अतः विकल्प 'C' सही है।

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 159

78. पाणिनीयशिक्षानुसारं शम्भुमते मताः वर्णा सन्ति-

a 61 **b** 62
c 63 **d** 64

अधोलिखितेषु समुचितं विकल्पं चिनुत -

(A) a एवं d **(B)** b एवं c
(C) c एवं d **(D)** a एवं d

याख्या- पाणिनि कृत पाणिनीयशिक्षा में वर्णों से सम्बन्धित श्लोक हैं। इस श्लोक में वर्णों की संख्या बतायी गयी है- जिसमें पूरे श्लोकों की संख्या 60 है।

त्रिषष्टिः चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।
प्राकृते-संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा॥3॥

प्राकृत और संस्कृत भाषा में शम्भु के मत में 63 या 64 वर्ण कहे गये हैं। स्वयं ब्रह्मा के द्वारा भी यही कहा गया है।

स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः ॥4॥
अनुस्वारो विसर्गश्च ॅक ॅपौ चापि पराश्रितौ।
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेय ऌकारः प्लुत एव च ॥5॥

स्वर = 21 हैं	अनुस्वार = 01
स्पर्श वर्ण = 25 हैं	विसर्ग = 01
यादयः = 08 हैं	जिह्वामूलीय = 01
यम = 04 हैं	उपध्मानीय = 01
	(ॅक ॅप ये दोनों पराश्रित हैं)

दुःस्पृष्ट = 01
प्लुत ऌकार = 01

➢ इस तरह = 21+25+8+4+1+1+2+1+1 = 64
➢ जहाँ प्लुत की गिनती नहीं होती है वहाँ वर्णों की कुल संख्या 63 सिद्ध है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पाणिनीयशिक्षानुसार शम्भु के 63 या 64 वर्ण हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- पाणिनीय शिक्षा - (3,4,5 श्लोक)

79. मनुस्मृत्यनुसारं समुचितमस्ति-
(A) आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः
(B) आचार्यो मूर्ति प्रजापतेः
(C) आचार्यो मूर्तिरात्मनः
(D) आचार्यः पृथिव्या मूर्तिः

व्याख्या- आचार्य मनु द्वारा प्रणीत मनुस्मृति जिसमें बारह अध्याय हैं और 2694 श्लोक हैं।

* मनुस्मृति की सबसे प्राचीन टीका मेधातिथि की है। जिसका समय 900 ई. है।
* मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय में धर्म की परिभाषा, धर्म के उपादान आदि का वर्णन किया गया है-

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः, पिता मूर्तिः प्रजापतेः।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु, भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः॥ 2/226॥

आचार्य परमात्मा की मूर्ति है, पिता ब्रह्मा की मूर्ति, माता पृथ्वी की मूर्ति और भाई अपनी ही मूर्ति है।

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥2/225॥

आचार्य, पिता, माता, बड़ा भाई- इनका दुखी होने पर भी मनुष्य और विशेषकर ब्राह्मण कदापि अपमान न करे।

अन्य महत्त्वपूर्ण सूक्तियाँ-

* **न स्नानमाचरेत् भुक्त्वा (4/129)**
  मनु कहते हैं- भोजन करके स्नान न करे।
* **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः (3/56)**
  मनु कहते हैं- जिस कुल में स्त्रियाँ सम्मानित होती हैं, उस कुल से देवगण प्रसन्न होते हैं।
* **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। (2/6)**
  मनु कहते हैं- सम्पूर्ण वेद सभी विद्याओं के मूल हैं और वेदों के ज्ञाता स्मृतिशील हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनुस्मृति के अनुसार 'आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः' यह पंक्ति सही है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- मनुस्मृति (2/226)

80. यथा हिरण्यं शुचि धातुमध्ये मेरुर्गिरीणां सरसां समुद्रः।
तारासु चन्द्रस्तपतां च सूर्यः पुत्रस्तथा ते द्विपदेषु वर्यः॥
.... श्लोकेऽस्मिन् कस्य पुत्रस्य वर्णनमस्ति -
(A) दशरथस्य **(B)** दुष्यन्तस्य
(C) दुर्योधनस्य **(D)** शुद्धोदनस्य

व्याख्या- * अश्वघोष द्वारा विरचित बुद्धचरितम् महाकाव्य जिसमें 28 सर्ग हैं।

* प्रथम सर्ग भगवत्प्रसूतिः (भगवान् का जन्म) नामक सर्ग है।
* प्रथम सर्ग में इक्ष्वाकुवंश के शुद्धोदन नामक राजा हुए।

इक्ष्वाकुवंशार्णवसम्प्रसूतः प्रेमाकरश्चन्द्र इव प्रजानाम्।
शाक्येषु साकल्यगुणाधिवासः शुद्धोदनाख्यो नृपतिर्बभूव ॥1/1॥

इक्ष्वाकुवंश रूपी समुद्र में उत्पन्न, प्रजाओं के लिए चन्द्र सदृश

प्रेम का आकर, सम्पूर्ण गुणों का निधान-शुद्धोदन नामक राजा, शाक्यों में हुआ।

आसीन्महेन्द्रादिसमस्य तस्य पृथ्वीव गुर्वी महिषी नृपस्य।
मायेति नाम्नी शिवरत्नसारा शीलेन कान्त्याऽप्यधिदेवतेव ॥1/2॥

महेन्द्र पर्वत के सदृश उस राजा की कल्याणमय रत्नों से सार वाली, पृथ्वी के समान गौरवशालिनी शील एवं कान्ति से अधिदेवता के तुल्य माया नाम की रानी थी।

यथा हिरण्यं शुचि धातुमध्ये मेरुर्गिरीणां सरसां समुद्रः।
तारासु चन्द्रस्तपतां च सूर्यः पुत्रस्तथा ते द्विपदेषु वर्यः ॥1/37॥

जिस प्रकार धातुओं में शुद्ध स्वर्ण, पर्वतों में सुमेरु, जलाशयों में समुद्र, ताराओं में चन्द्रमा तथा तपाने वालों में में सूर्य श्रेष्ठ है, उसी प्रकार मनुष्यों में आपका पुत्र श्रेष्ठ है।

दीप्त्या च धैर्येण च यो रराज बालो, रविर्भूमिमिवावतीर्णः।
तथातिदीप्तोऽपि निरीक्ष्यमाणो जहार चक्षूंषि यथा शशाङ्कः ॥1/12॥

तेज एवं धैर्य से वह, भूमि पर आये हुए बाल सूर्य की भाँति शोभित हुआ और अत्यन्त तेजस्वी होने पर भी देखे जाने पर नेत्र चन्द्रमा के समान हर लेता था।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'यथा हिरण्यं शुचि धातुमध्ये ....' इस पंक्ति में शुद्धोदन के पुत्र का वर्णन है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- बुद्धचरितम् (1/37)

81. अधस्तनयुग्मानां समीचीनतालिकां चिनुत-

(a)	**श्रीहर्षः**	**(i)**	**हर्षचरितम्**
(b)	**दण्डी**	**(ii)**	**मुद्राराक्षसम्**
(c)	**बाणभट्टः**	**(iii)**	**नैषधीयचरितम्**
(d)	**विशाखदत्तः**	**(iv)**	**दशकुमारचरितम्**

समुचितां तालिकां चिनुत -

(A) a-(ii), b-(iii), c-(iv), d-(i)
(B) a-(iii), b-(iv), c-(i), d-(ii)
(C) a-(iv), b-(i), c-(ii), d-(iii)
(D) a-(i), b-(ii), c-(iii), d-(iv)

व्याख्या-

ग्रन्थकार	**ग्रन्थ**
शूद्रक	मृच्छकटिकम् 10 अङ्क
विशाखदत्त	मुद्राराक्षसम् 7 अङ्क
भवभूति	उत्तररामचरितम् 7 अङ्क
कालिदास	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7 अङ्क
दण्डी	दशकुमारचरितम् 8 उच्छ्वास
बाणभट्ट	हर्षचरितम् 8 उच्छ्वास
श्रीहर्ष	नैषधीयचरितम् 22 सर्ग
सुबन्धु	वासवदत्ता
भारवि	किरातार्जुनीयम् 18 सर्ग
माघ	शिशुपालवधम् 20 सर्ग
भट्टनारायण	वेणीसंहारम् 6 अङ्क
भास	स्वप्नवासवदत्तम् 6 अङ्क
कालिदास	रघुवंशम् 19 सर्ग
कालिदास	कुमारसम्भवम् 17 सर्ग
बिल्हण	विक्रमाङ्कदेवचरितम्
नारायण पण्डित	हितोपदेश
अश्वघोष	बुद्धचरितम्

महत्त्वपूर्ण तथ्य-

बृहत्त्रयी

किरातार्जुनीयम्	शिशुपालधम्	नैषधीयचरितम्
भारवि	माघ	श्रीहर्ष

लघुत्रयी

रघुवंशम्	कुमारसम्भवम्	मेघदूतम्
कालिदास	कालिदास	कालिदास

गद्यबृहत्त्रयी

वासवदत्ता	कादम्बरी	दशकुमारचरितम्
सुबन्धु	बाणभट्ट	दण्डी

उपजीव्यग्रन्थत्रयी

रामायणम्	महाभारतम्	भागवतपुराणम्
वाल्मीकि	वेदव्यास	वेदव्यास

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि श्रीहर्ष - नैषधीयचरितम्,

दण्डी - दशकुमारचरितम्, बाणभट्ट - हर्षचरितम्, विशाखदत्त - मुद्राराक्षसम्। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- L.T. मिशन - सर्वज्ञभूषण, पेज 391-92

82. बौद्धदर्शनानुसारं चतुर्णाम् आर्यसत्यानाम् उचितः क्रमोऽस्ति-

(A) दुःखम्, समुदायः, निरोधः, मार्गः

(B) मार्गः, दुःखम्, निरोधः, समुदायः

(C) समुदायः, दुःखम्, मार्गः, निरोधः

(D) निरोधः, मार्गः, दुःखम्, समुदायः

व्याख्या- * बौद्ध दर्शन भारत एक अत्यन्त प्राचीन नास्तिक दर्शन है।

* **बौद्धधर्म की विशेषताएँ -**

अनीश्वरवादी, पुनर्जन्म में विश्वास, वेद विरोधी, नास्तिक, आत्मवादी, जन्म कारण ईश्वर नहीं

तदिदं सर्वं दुःखं दुःखायतनं दुःखसाधनं चेति भावयित्वा तन्निरोधोपायं तत्त्वज्ञानं संपादयेत्। अत एवोक्तम् दुःखसमुदाय-निरोधमार्गाश्चत्वार आर्यबुद्धस्याभिमतानि तत्त्वानि। तत्र दुःखं प्रसिद्धम्।

यह समूचा संसार दुःख है, दुःख का घर है और दुःख का साधन है। यहीं से दुःख मिलता है। इसीलिए कहा है- दुःख, समुदाय, निरोध और मार्ग।

ये चार तत्त्व आर्य बुद्ध के द्वारा सम्मत है। इनमें दुःख तो प्रसिद्ध है।

बौद्धदर्शन के चार सम्प्रदाय हैं-

(1) माध्यमिक (2) योगाचार (3) सौत्रान्तिक (4) वैभाषिक

भावनाचतुष्टय - भावनाचतुष्टय चार हैं-

1. सब कुछ क्षणिक है क्षणिक
2. सब कुछ दुःख है दुःख
3. सब का लक्षण अपने आप में है
4. सब कुछ शून्य है शून्य

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि बौद्धदर्शन के अनुसार चार आर्य सत्य हैं- दुखम्, समुदायः, निरोधः और मार्गः।

अतः विकल्प 'A' सही है।

स्रोत- सर्वदर्शनसंग्रह - उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 76

83. मनुस्मृतिकारेण 'नारा' इति शब्देन किं गृहीतम्

(A) आपः **(B)** मनुष्यः

(C) पशुः **(D)** पक्षी

व्याख्या- * मनु कृत मनुस्मृति में बारह अध्याय हैं। 2694 श्लोक हैं, प्राचीनतम तथा सर्वाधिक मान्य है।

* इसमें समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र- सभी का समावेश है। अतः सामाजिक व्यवस्था का आधारभूत ग्रन्थ है।
* मनुस्मृति में काम, अर्थ, मोक्ष और धर्मरूप चारों पुरुषार्थों का विशद विवेचन है-

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥1/10॥

जल को नार कहते हैं क्योंकि जल नर (रूप परमात्मा) से उत्पन्न हुआ है। यही जल इस परमात्मा का प्रथम वासस्थान है इस कारण परमात्मा 'नारायण' कहा गया है।

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥1/11॥

लोक और वेद में प्रसिद्ध, अव्यक्त नित्य और सत् असत् का आत्मा ऐसा कारण से उत्पन्न हुआ वह पुरुष 'ब्रह्मा' इस नाम से संसार से विख्यात है।

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥1/9॥

वह बीज सूर्य के समान कान्ति वाला सुवर्ण का अण्डा हो गया और उसमें सब लोकों का कर्ता ब्रह्मा स्वयं उत्पन्न हुआ।

अन्य सूक्तियाँ-

* **आचारः परमो धर्मः (1/108)**
  वेद और स्मृति दोनों में कहा गया है- आचार ही परम धर्म है।
* **नास्तिको वेदनिन्दकः (2/11)**
  जो ब्राह्मण शास्त्र द्वारा धर्म के मूल वेद तथा स्मृति का निरादर करता है वह वेदनिन्दक होने से नास्तिक है।
* **ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत। (4/92)**
  सूर्योदय के पूर्व ब्राह्ममुहूर्त्त में जगकर धर्म और अर्थ की चिन्ता करे।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि 'नारा' शब्द का अर्थ (जल) आपः होता है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- मनुस्मृति (1/10)

84. अधोलिखितेषु केन सह कस्य सम्बन्धः?

(क)	**भट्टोजिदीक्षितः**	**1**	**काशिका**
(ख)	**नरेन्द्राचार्यः**	**2**	**शब्दकौस्तुभः**
(ग)	**वामनः**	**3**	**लघुमञ्जूषा**
(घ)	**नागेशः**	**4**	**सारस्वतव्याकरणम्**

समुचितां तालिकां चिनुत -

	क	ख	ग	घ
(A)	4	3	1	2
(B)	1	4	3	2
(C)	3	2	1	4
(D)	2	4	1	3

व्याख्या- भट्टोजिदीक्षित-

* डा. वेल्वलकर भट्टोजिदीक्षित का काल सन् 1600-1650 (वि.सं.-1657-1707) मानते हैं। अन्य ऐतिहासिक वि. सं. 1637 मानते हैं।

भट्टोजिदीक्षित ने शब्दकौस्तुभ के अतिरिक्त सिद्धान्तकौमुदी और उसकी व्याख्या प्रौढ़मनोरमा लिखी है।

सिद्धान्तकौमुदी के उत्तरकृदन्त के अन्त में शब्दकौस्तुभ का उल्लेख किया है-

इत्थं लौकिकशब्दानां दिङ्मात्रमिह दर्शितम् ।
विस्तरस्तु यथाशास्त्रं दर्शितः शब्दकौस्तुभे॥

➢ **शब्दकौस्तुभ के टीकाकार-**

नागेश - विषमपदी — राघवेन्द्राचार्य - प्रभा
वैद्यनाथ पायगुण्ड - प्रभा — कृष्णमित्र - भावप्रदीप
विद्यानथ शुक्ल - उद्योत — भास्कर दीक्षित- शब्दकौस्तुभदूषण

➢ **सारस्वत-व्याकरणकार (सं. - 1150 वि. के लगभग)**

क्षेमेन्द्रकृत सारस्वतप्रक्रिया के अन्त में लिखा है-

* इति श्रीनरेन्द्राचार्यकृते सारस्वते क्षेमेन्द्रटिप्पनं समाप्तम् ।

इससे प्रतीत होता है कि सारस्वतसूत्रों का मूल रचयिता नरेन्द्राचार्य नामक वैयाकरण है।

* एक नरेन्द्रसेन वैयाकरण 'प्रमाणप्रमेयकलिका' का कर्त्ता है।
* इसके गुरु का नाम कनकसेन और परमगुरु का नाम (गुरु का गुरु) का नाम अजितसेन था।

➢ **जयादित्य और वामन (सं. 650-700वि.)**

* जयादित्य और वामन दोनों की रचित सम्मिलित वृत्ति 'काशिका' नाम से प्रसिद्ध है।
* महाभाष्य और भर्तृहरि विरचित ग्रन्थों के बाद काशिकावृत्ति सर्वाधिक समादृत और महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।
* इसमें बहुत से सूत्रों की वृत्ति और उदाहरण प्राचीन वृत्तियों से संगृहीत हैं।

➢ **नागेशभट्ट -**

* नागेशभट्ट महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम शिवभट्ट और माता का नाम सती था।
* नागेशभट्ट ने हरिदीक्षित से व्याकरण का अध्ययन किया था। हरिदीक्षित भट्टोजिदीक्षित के पौत्र थे।
* महाभाष्यप्रदीपोद्योत में नागेश ने अपने दो ग्रन्थ लघुमञ्जूषा और शब्देन्दुशेखर उद्धृत किये हैं।
* नागेशभट्ट के वृत्तिदाता, प्रयाग के समीपस्थ शृङ्गवेरपुर के राजा रामसिंह थे।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भट्टोजिदीक्षित-शब्दकौस्तुभ, नरेन्द्राचार्य-सारस्वतव्याकरण, वामन-काशिका, नागेश-लघुमञ्जूषा सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- संस्कृत व्याकरण का इतिहास-युधिष्ठिर मीमांसक, 160,169,177,178

85. सूत्रोदाहरणयोः युग्मं यथोचितं मेलयतु -

(क)	**तुमुण्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् -**	**1. पठितुं प्रवीणः**
(ख)	**समानकर्तृकेषु तुमुन् -**	**2. वेला भोक्तुम्**
(ग)	**पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु -**	**3. ज्ञातुम् इच्छामि**
(घ)	**कालसमयवेलासु तुमुन् -**	**4. कृष्णं दर्शको याति**

	क	ख	ग	घ
(A)	1	3	4	2
(B)	4	3	1	2
(C)	2	3	4	1
(D)	4	1	2	3

व्याख्या- * भट्टोजिदीक्षित ने स्वयं सिद्धान्तकौमुदी की प्रौढ़मनोरमा नाम से प्रसिद्ध व्याख्या लिखी है।

* भट्टोजिदीक्षित का काल सन् 1600 से 1650 मानते हैं।
* भट्टोजि दीक्षित ने अष्टाध्यायी की शब्दकौस्तुभ नाम्नी महती वृत्ति लिखी है।

* 'शब्दकौस्तुभ' के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में भट्टोजिदीक्षित ने अपने शब्दों में प्रायः पतञ्जलि, कैयट और हरदत्त के ग्रन्थों से संग्रह है।

* **तुमण्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् (3.3.10)**

एक क्रिया के लिए दूसरी क्रिया समीप में होने पर भविष्यत् काल में धातु परे तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय होते हैं।

उदाहरण- कृष्णं दर्शको याति- कृष्ण को देखने के लिए जाता है। कृष्णं द्रष्टुं याति- कृष्ण को देखने के लिए जाता है।

* **समानकर्तृकेषु तुमुन् (3.3.158)**

इच्छा अर्थ वाली एक कर्तृक धातुओं के उपपद होने पर धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है।

उदाहरण-

1. ज्ञातुम् इच्छामि - जानना चाहता है।
2. इच्छति भोक्तुम् - खाना चाहता है।
3. वष्टि भोक्तुम् - खाना चाहता है।
4. वाञ्छति भोक्तुम् - खाना चाहता है।

* **पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु (3.4.66)**

अलमर्थेषु सामर्थ्य अर्थ वाले परिपूर्णतावाची शब्दों के उपपद रहते धातु से तुमुन् होता है।

उदाहरण- पठितुं प्रवीणः -

पर्याप्तो भोक्तुम् = खाने के लिए पर्याप्त है।

* **कालसमयवेलासु तुमुन् (3.3.167)**

काल, समय, वेला जैसे काल, अर्थवाची शब्दों के उपपद रहते धातुओं से तुमुन् प्रत्यय होता है।

उदाहरण- वेला भोक्तुम् - भोजन के लिए समय

भोक्तुं अनेहा, भोक्तुं कालः, भोक्तुं समयः।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सूत्र और उदाहरण का क्रम इस प्रकार है- तुमुण्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् - कृष्णं दर्शको याति

समानकर्तृकेषु तुमुन् - ज्ञातुम् इच्छामि

पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु - पठितुं प्रवीणः

कालसमयवेलासु तुमुन् - वेला भोक्तुम्

अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत- वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी - गोविन्दाचार्य, पेज 870,874

86. 'प्रत्यर्थम्' इत्यत्र अव्ययीभावसमासो विद्यते-

(A) योग्यतार्थे **(B)** वीप्सार्थे

(C) पदार्थानतिवृत्त्यर्थे **(D)** सादृश्यार्थे

व्याख्या- अव्ययीभाव समास-

सूत्र- अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्धि-अर्थाभाव-अत्यय-असम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चात्-यथा-आनुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्य-अन्तवचनेषु।

'पूर्वपदार्थप्रधानः अव्ययीभावः।' जहाँ पूर्वपद की प्रधानता होती है, वहाँ अव्ययीभाव समास होता है।

सामासिक पद	अर्थ	लौकिक विग्रह
अधिहरि	हरि में (विभक्ति अर्थ में)	हरौ इति
अधिगोपम्	गोप में (विभक्ति अर्थ में)	गोपि इति
उपकृष्णम्	कृष्ण के समीप (समीप अर्थ में)	कृष्णस्य समीपम्
सुमद्रम्	मद्रदेशवासियों की (समृद्धि के अर्थ में)	मद्राणां समृद्धिः
दुर्यवनम्	यवनों की समृद्धि का अभाव (वृद्धि का अभाव अर्थ में)	यवनानां वृद्धिः
निर्मक्षिकम्	मक्खियों का अभाव (अभाव अर्थ में)	मक्षिकाणाम् अभावः
अतिहिमम्	हिम का अत्यय = नाश (अत्यय अर्थ में)	हिमस्य अत्ययः
अतिनिद्रम्	निद्रा इस समय उचित नहीं है (असम्प्रति इस समय उचित नहीं अर्थ में)	निद्रा सम्प्रति न युज्यते
इतिहरि	हरि नाम की प्रसिद्धि (शब्दप्रादुर्भाव)	हरिशब्दस्य प्रकाशः
अनुविष्णु	विष्णु के पीछे (पश्चात् अर्थ में)	विष्णोः पश्चात्
अनुरूपम्	रूप के योग्य यथा के (योग्यता अर्थ में)	रूपस्य योग्यम्
प्रत्यर्थम्	प्रत्येक अर्थ के प्रति (यथा के वीप्सा अर्थ में)	अर्थम् अर्थं प्रति
यथाशक्ति	शक्ति के अनुसार	शक्तिम् अनतिक्रम्य
सहरि	हरि के सदृश	हरेः सादृश्यम्

अनुज्येष्ठम्	ज्येष्ठ के क्रम से (आनुपूर्व्य अर्थ में)	ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण
सचक्रम्	चक्र के साथ एक ही काल में (यौगपद्य)	चक्रेण युगपत्
ससखि	सखा के समान (सादृश्य अर्थात् समान अर्थ में)	सदृशः सख्या
सक्षत्रम्	क्षत्रियों के अनुसार (सम्पत्ति अर्थ में)	क्षत्राणां सम्पत्तिः
सतृणम्	तिनके को भी छोड़े बिना सम्पूर्ण खाता है (साकल्य) (सम्पूर्ण अर्थ में)	तृणम् अपि अपरित्यज्य
साग्नि	अग्निग्रन्थ की समाप्ति तक पढ़ता है	अग्निग्रन्थपर्यन्तम्

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'प्रत्यर्थम्' वीप्सा अर्थ में समास हुआ है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- L.T. मिशन - सर्वज्ञभूषण, पेज 151-152

87. 'स्थूलोऽहं, कृशोऽहं' इत्यत्र शाङ्करभाष्यानुसारं भवति-
(A) विकारः **(B)** अध्यासः
(C) अपवादः **(D)** परिणामः

व्याख्या- * महर्षि बादरायण व्यास प्रणीत ब्रह्मसूत्र है। भगवान् बादरायण मुनि ने ब्रह्मसूत्रों की रचना की। यह स्वल्प कलेवर ग्रन्थ समस्त वेदान्तसिद्धान्तों का आकर है।

* समस्त उपनिषदों का सूत्रों द्वारा ब्रह्म में तात्पर्य से समन्वय होने से इस ग्रन्थ का नाम ब्रह्मसूत्र है।
* इसी को वेदान्तदर्शन भी कहते हैं।
* आचार्य शङ्करमतानुसार सूत्रों और अधिकरणों की संख्या क्रमशः 555 और 191 है।
* ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय और प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं।

अध्यासो नाम अतस्मिंस्तद्बुद्धिरित्यवोचम्। तद्यथा- पुत्रभार्यादिषु विकलेषु सकलेषु वा अहमेव विकलः सकलो वेति बाह्यधर्मानात्मन्यध्यस्यति; तथा देह-धर्मान् स्थूलोऽहं, कृशोऽहं, गौरोऽहं, तिष्ठामि, गच्छामि, लङ्घयामि चेति।

जैसे कि कोई पुत्र, स्त्री आदि के अपूर्ण और पूर्ण होने पर मैं ही अपूर्ण और पूर्ण हूँ, इस प्रकार बाह्यपदार्थों के धर्मों का अपने में अध्यास करता है तथा मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ, मैं गौर हूँ, मैं खड़ा हूँ, मैं जाता हूँ, मैं लाँघता हूँ, इस प्रकार देह के धर्मों का अध्यास करता है। वेदान्तमीमांसा शास्त्र का यह आदिसूत्र है अथवा प्रथम सूत्र है-

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (1.1)

पदच्छेद - अथ, अतः, ब्रह्मजिज्ञासा

सूत्रार्थ - विवेक आदि साधनचतुष्टय रूप सम्पत्तिसिद्धि के अनन्तर कर्मफल के अनित्य और ज्ञान फल मोक्ष के नित्य होने से मुमुक्षु को ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिए।

जन्माद्यस्य यतः ॥2॥

पदच्छेद - जन्मादि, अस्य, यतः।

सूत्रार्थ - (अस्य) इस जगत् की (जन्मादि) उत्पत्ति, स्थिति तथा लय (यतः) जिससे होते हैं, वह ब्रह्म है।

शास्त्रयोनित्वात् ॥3॥

ऋग्वेद आदि शास्त्र का (योनि) कारण होने से ब्रह्म सर्वज्ञ है अथवा ब्रह्म केवल ऋग्वेद आदि शास्त्र प्रमाणक है अर्थात् ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान में ऋग्वेदादि शास्त्र ही प्रमाण है।

शास्त्र - ऋग्वेद आदि

योनि - कारण

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'स्थूलोऽहं, कृशोऽहं यह शाङ्करभाष्यानुसार अध्यास माना गया हैं।

अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य - सत्यानन्दसरस्वती, पेज 17

88. अत्र द्वौ कथनांशौ स्तः -
A - पशुपादप्रकृतिः प्रभागपादः
B - पशुः चतुष्पादयुक्ता भवन्ति। तेषामियं प्रकृतिर्भवति। अतः छन्दस्सु चत्वारः पाद भवन्ति। पद्यो चत्वारः पादाः छन्दनिरूपणे गण्यन्ते।
(A) (a) तथा (b) उभये सत्य कथने (b), (a) अंशस्य उचितमुदाहरणम्
(B) (a) कथनं सत्यम् (b) कथनं तथा न निर्दिशति (a) स्वरूपम्
(C) (a) कथनमसत्यम् (b) कथनं सत्यमस्ति
(D) (a) सत्यमस्ति (b) परिभाषां न प्रस्तौति

व्याख्या- उपर्युक्त कथन A में कहा गया है कि पशुओं के चार पाद अर्थात् चार पैर होते हैं। यह इनकी प्रकृति है।

और कथन B में कहा गया है कि 'पशुः चतुष्पादयुक्ता

भवन्ति' अर्थात् पशुओं के चार पाद अर्थात् पैर होते हैं। (पशु चार पैरों वाले होते हैं।)

जो कि पशुओं का स्वभाव है। ऐसे ही 'छन्दस्सु चत्वारः पादाः भवन्ति' अर्थात् छन्द में भी चार पाद अर्थात् चरण होते हैं। पद्यों में चार चरण होते हैं जो छन्दों में होते हैं। ऐसा छन्दःशास्त्र में निरूपण किया गया है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कथन A और B दोनों सत्य हैं। कथन B, A अंश का उचित उदाहरण है।

अतः विकल्प 'A' सही है।

89. 'प्रवीणः' इति पदं कयोः उदाहरणं वर्तते-

a अर्थसङ्कोचस्य **b अर्थपरिवर्तनस्य**

c अर्थविस्तारस्य **d अर्थहानेः**

अधोलिखितेषु समुचितं विकल्पं चिनुत -

(A) a एवं b **(B)** b एवं c

(C) c एवं d **(D)** a एवं c

व्याख्या- अर्थपरिवर्तन (अर्थविकास) की दिशाएँ

* अर्थपरिवर्तन को विकास सिद्धान्त की दृष्टि से अर्थविकास भी कहा जाता है।
* कहीं पर अर्थ का विस्तार होता है।
* कहीं पर अर्थ में संकोच होता है।
* कहीं पर पुराने अर्थ के स्थान पर नया अर्थ आ जाता है।

1. अर्थविस्तार (Expansion of meaning)
2. अर्थसंकोच (Contraction of meaning)
3. अर्थादेश (Transjerence of meaning)

* इन तीनों के जो उदाहरण मिलते हैं, उन पर विचार करने से ज्ञात होता है कि कुछ स्थानों पर अर्थ अपने मूल अर्थ से उत्कृष्ट हो गया और कहीं पर वह अपने मूल अर्थ से निकृष्ट, अपकृष्ट हो गया है।
* इस दृष्टि से भी इनको दो भागों में रखा जाता है-

(क) अर्थोत्कर्ष (Elevation of Meaning)

(ख) अर्थापकर्ष (Deterioration of meaning)

1. अर्थविस्तार- कुछ शब्द मूलरूप में किसी विशेष या संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होते थे। बाद में उनके अर्थ में विस्तार हो गया-

जैसे- प्रवीण- प्रवीण का अर्थ था- प्रकृष्टो वीणायाम् (वीणावादन में श्रेष्ठ या निपुण)

यह शब्द वीणा-वादन का निपुणता को छोड़कर केवल निपुण या दक्ष अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। इसमें अर्थविस्तार हुआ है।

अन्य उदाहरण- तैल- सबसे पहले तिल का तेल निकला था, उसके आधार पर तेल नाम पड़ा।

गोशाला, गोष्ठ - गायों के रहने के स्थान को गोशाला या गोष्ठ कहते थे।

उसमें बैल, भैंस, बकरी आदि भी बाधते हैं तो गोशाला नाम है। इस प्रकार अर्थ का विस्तार हुआ है।

2. अर्थसंकोच - अर्थविस्तार के विपरीत कुछ शब्दों के अर्थों में संकोच हुआ है।

जैसे- मृग- पशुमात्र के लिए था, अब केवल हिरन अर्थ रह गया।

वारिज, अम्बुज, सरसिज, सरोज, पंकज, नीरज-

इनका शाब्दिक अर्थ है- जल तालाब या कीचड़ में होने वाला। ये शब्द कमल अर्थ में रूढ़ हो गये।

पर्वत- पर्व (गाँठ) वाला। पहाड़ अर्थ में रूढ़ हो गया है। पर्व वाले गन्ने को पर्वत नहीं कहेंगे।

मन्दिर- मन्दिर अर्थ भवन था। यह देवमन्दिर अर्थ में प्रसिद्ध हो गया है।

3. अर्थादेश- अर्थादेश का अर्थ है- एक अर्थ के स्थान पर दूसरे अर्थ का आ जाना। आदेश का अर्थ है- एक को हटाकर दूसरे का आना।

उदाहरण- असुर- मूल अर्थ असु + र - देवता था। बाद में सुर (देवता) का उल्टा अ + सुर (राक्षस) अर्थ हो गया।

वर- मूल अर्थ श्रेष्ठ था। अब केवल दूल्हा अर्थ रह गया है।

सह्- वेद में सह् धातु का अर्थ जीतना था। अब सहन करना अर्थ रह गया है।

मौन- पाषण्ड, मुग्ध, कर्पट-कपड़ा आदि उदाहरण हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'प्रवीणः' पद अर्थविस्तार का उदाहरण है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र - कपिलदेव द्विवेदी, पेज 336,337,340

90. रामायणाश्रितं रचनाद्वयं किमस्ति-

(A) मालविकाग्निमित्रम्, रत्नावली

(B) उत्तररामचरितम्, महावीरचरितम्

(C) प्रतिमानाटकम्, वेणीसंहारम्

(D) मालविकाग्निमित्रम्, स्वप्नवासवदत्तम्

व्याख्या- महावीरचरितम् -

* यह रामायण के छः काण्डों पर (बालकाण्ड से युद्ध काण्ड) आश्रित रामकथा का सार अङ्कों में प्रदर्शन करने वाला नाटक है।
* तदनुसार सीता-विवाह से लेकर राम-राज्याभिषेक तक की घटनाएँ इसमे वर्णित हैं।
* भवभूति के पूर्व रामकथा के इतने विस्तृत प्रसङ्गों को किसी के रूप में प्रस्तुत नहीं किया था, अतः सात अङ्कों में रामकथा की घटनाएँ कसी हुई हैं।
* इस रूपक में राम को महावीर दिखाया गया है किन्तु रावण की कूटनीति की असफलता में राम के पौरुष से अधिक उनका भाग्य काम करता दिखाया गया है।
* वीररस प्रधान इस नाटक में ओजगुणमयी गौडी शैली का प्राचुर्य है।

उत्तररामचरितम् -

* यह भवभूति के रूपकों में श्रेष्ठ है। कवित्व तथा नाट्यकौशल दोनों का प्रकर्ष इसमें प्रकट किया गया है।
* पूरे नाटक में राम का चरित्र शील, सत्य, और शक्ति का उत्स बनकर प्रकाशित हुआ है।
* रामायण के उत्तरकाण्ड के सीता निर्वासन के कथानक पर यह आश्रित है।
* यह सात अङ्कों का नाटक है।
* राम लोकाराधन के लिए स्नेह, दया, सुख की मूर्ति अपनी प्रियतमा सीता का परित्याग कर देते हैं-

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।

(उत्तर 1/12)

* राम का जीवन एकमात्र करुण रस के फलक पर विभिन्न रसों के चित्र अङ्कित करता है-

एको रसः करुण एव निमित्तभेदात् (3/47)

* यह करुण रस प्रधान नाटक है।

➢ **मालविकाग्निमित्रम् -**

* यह कालिदास की रचना है। जिसमें पाँच अङ्क हैं।
* यह ऐतिहासिक नाटक है जिसमें शुङ्गवंशी राजा अग्निमित्र तथा विदर्भराज कुमारी मालविका के विवाह की कथा है।
* इसका नायक अग्निमित्र और नायिका मालविका है।

भास के 13 नाटक हैं -

उदयनकथा मूलक- 1. प्रतिज्ञायौगन्धरायण
2. स्वप्नवासवदत्तम्

रामायणमूलक - 3. प्रतिमानाटक
4. अभिषेकनाटक

महाभारतमूलक - 5. ऊरुभङ्ग
6. दूतवाक्य
7. पञ्चरात्र
8. दूतघटोत्कच
9. कर्णभार
10. मध्यमव्यायोग
11. बालचरित

लोककथा मूलक - 12. अविमारक 13. चारुदत्त

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि रामायण पर आश्रित दो रचनाएँ हैं-

उत्तररामचरितम् और मालविकाग्निमित्रम् है जब कि प्रतिमानाटक भी है परन्तु, वेणीसंहार महाभारत-आश्रित है।

अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास- उमाशङ्कर शर्मा, पेज 426-466

91. सिद्धान्तकौमुदीमाश्रित्यप्रकरणानां समीचीनं क्रमं चिनुत-

(A) कारकम्, परस्मैपदप्रक्रिया, कृदन्तम्, तद्धितम्
(B) कारकम्, तद्धितम्, परस्मैपदप्रक्रिया, कृदन्तम्
(C) परस्मैपदप्रक्रिया, कारकम्, तद्धितम्, कृदन्तम्
(D) परस्मैपदप्रक्रिया, कृदन्तम्, तद्धितम्, कारकम्

व्याख्या- आचार्य भट्टोजिदीक्षित कृत वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी व्याकरणशास्त्र का एक प्रक्रियाग्रन्थ है। जिसमें पाणिनि द्वारा रचित चार हजार सूत्रों की व्याख्या की गयी है। इसमें कात्यायन द्वारा रचित वार्तिकों का भी समावेश है।

इनके प्रमुख प्रकरणों का क्रम निम्नलिखित है-

1. संज्ञाप्रकरणम् 2. परिभाषाप्रकरणम्
3. सन्धिप्रकरणम् 4. षड्लिङ्गप्रकरणम्
5. अव्ययप्रकरणम् 6. स्त्रीलिङ्गप्रकरणम्
7. कारकप्रकरणम् 8. समासप्रकरणम्
9. तद्धितप्रकरणम् 10. तिङन्तप्रकरणम्
11. प्रत्ययान्ततिङन्त (णिच्, सन् आदि) प्रकरणम्
12. आत्मनेपदप्रकरणम्

13. परस्मैपदप्रकरणम्
14. कृदन्तप्रकरणम्
15. वैदिकप्रकरणम्
16. स्वरप्रकरणम्

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार प्रकरणों का क्रम इस प्रकार है-

(1) कारकप्रकरणम् (2) तद्धितप्रकरणम्
(3) परस्मैपदप्रकरणम् (4) कृदन्तप्रकरणम् है।

अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत- वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी (मूलमात्रम्)- गोविन्दाचार्य, पेज भू. 80,147,372,385

92. मृगाक्षीशब्दे विद्यमानः मृग इति शब्दः उदाहरणं विद्यते-
(A) अर्थादिशस्य **(B)** अर्थविस्तारस्य
(C) अर्थसङ्कोचस्य **(D)** अर्थागमस्य

व्याख्या- अर्थपरिवर्तन की दिशाएँ

संसार की वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। भाषा भी परिवर्तनशील है। जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार प्रत्येक भाषा के शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होता रहता है। इस अर्थपरिवर्तन को विकास सिद्धान्त की दृष्टि से अर्थविकास भी कहा जाता है।

यह अर्थ-परिवर्तन तीन प्रकार का होता है-

(1) अर्थविस्तार (2) अर्थसंकोच (3) अर्थादेश

1. अर्थविस्तार- कुछ शब्द मूलरूप से किसी विशेष या संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होते थे। बाद में उनके अर्थ में विस्तार हो गया।

* **कुशल-** कुशल शब्द का अर्थ था- कुशान् लाति (कुशों को लाना)। कुश का अग्र भाग तीक्ष्ण होता है, उससे हाथ में छेद होने या कटने का भय रहता था। अतः कुश लाना चतुरता का सूचक था। यह शब्द धीरे-धीरे कुश लाना छोड़कर चतुरता या निपुणता का सूचक हो गया। इस प्रकार अर्थ में विस्तार हो गया।

अन्य उदाहरण- प्रवीण, गोशाला, महाराज, गवेषणा आदि।

2. अर्थसंकोच- अर्थ विस्तार के विपरीत कुछ शब्दों के अर्थों में संकोच हो गया। उनका विस्तृत अर्थ संकुचित या सीमित हो गया है। सभी वस्तु नाम अर्थ संकोच के उदाहरण हैं। व्युत्पत्ति के आधार पर उनका व्यापक अर्थ है, परन्तु वस्तु नाम होने पर वे उस अर्थ में रूढ़ हो गए हैं-

* **मृग-** पशुमात्र के लिए था। अब केवल हिरन अर्थ रह गया है। अंग्रेजी का Dear भी पशु मात्र का वाचक था, अब 'हिरन' अर्थ रह गया है।

* **वारिज, अम्बुज, सरसिज, सरोज, पंकज, नीरज**
इनका शाब्दिक अर्थ है- जल, तालाब या कीचड़ में होने वाला। परन्तु ये सब कमल अर्थ में रूढ़ हो गए हैं। मछली, कीड़े आदि को नहीं कह सकते हैं।

* **वारिधि, नीरधि, अम्बुधि, तोयधि-** (समुद्र) का अर्थ है- जल धारण करने वाला। ये शब्द समुद्र अर्थ में रूढ़ हो गया।

* **सर्प-** रेंगने वाला। यह साँप अर्थ में रूढ़ हो गया है।

3. अर्थादेश- अर्थादेश का अर्थ है, एक अर्थ के स्थान पर दूसरे अर्थ का आ जाना। आदेश का अर्थ है- एक को हटाकर दूसरे का आना।

अर्थादेश में शब्द का प्राचीन अर्थ लुप्त हो जाता है और नया अर्थ आ जाता है।

जैसे-

असुर- मूल अर्थ असु + र (प्राण शक्ति सम्पन्न) देवता था। बाद में सुर देवता का उल्टा अ + सुर (राक्षस) हो गया।

वर- मूल अर्थ श्रेष्ठ था, अब केवल दूल्हा अर्थ रह गया है।

देवानां प्रियः - देवों का प्रिय अब मूर्ख अर्थ रह गया।

मुग्ध- मूल अर्थ था मूर्ख अब मोहित होना, सौन्दर्य पर मुग्ध होना।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'मृगाक्षी' शब्द में विद्यमान 'मृग' शब्द अर्थसङ्कोच का उदाहरण है।

अतः विकल्प 'C' सही है।

स्रोत- भाषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र - कपिलदेव द्विवेदी, पेज 338

93. अनैकान्तो विरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः।
कालात्ययापदिष्टश्च हेत्वाभासास्तु पञ्चधा॥
इति कस्य दार्शनिकस्य कथनमस्ति?
(A) विश्वनाथपञ्चाननस्य **(B)** अन्नम्भट्टस्य
(C) सदानन्दस्य **(D)** केशवमिश्रस्य

व्याख्या- आचार्य विश्वनाथ पञ्चानन कृत न्यायसिद्धान्तमुक्तावली में पञ्चहेत्वाभास की चर्चा की गयी है-

अनैकान्तो विरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः।
कालात्ययापदिष्टश्च हेत्वाभासास्तु पञ्चधा ॥7॥

अनैकान्त, विरुद्ध, असिद्ध, प्रतिपक्षित एवं कालात्ययापदिष्ट

इस प्रकार हेत्वाभास पाँच प्रकार के होते हैं। (जो केवल हेतु जैसे लगते हैं किन्तु हेतु नहीं होते, वह हेत्वाभास है।)

आद्यः साधारणस्तु स्यादसाधारणकोऽपरः।
तथैवानुपसंहारी त्रिधाऽनैकान्तिको भवेत् ॥72॥

पहला साधारण, दूसरा असाधारण एवं तीसरा अनुपसंहारी भेद से अनैकान्तिक हेत्वाभास तीन प्रकार का होता है।

यः सपक्षे विपक्षे च भवेत् साधारणस्तु सः ॥

जो हेतु सपक्ष एवं विपक्ष में भी होता है, वह साधारण कहलाता है।

यस्तूभयस्माद् व्यावृत्तः स चासाधारणो मतः ॥73॥

जो दोनों सपक्ष एवं विपक्ष से अलग रहे, वह हेतु असाधारण माना जाता है।

तथैवानुपसंहारी केवलान्वयिपक्षकः॥
पर्वतो वह्निमान् सत्वादिति तत्रादिमो भवेत् ॥
पृथ्वी नित्या गन्धवत्त्वादिति स्यादपरस्तथा।
सर्वं तुच्छं प्रमेयत्वादिति तत्रान्तिमो भवेत् ॥

उसी तरह केवलान्वयी पक्ष वाला अनुपसंहारी होता है।

यः साध्यवति नैवाऽस्ति स विरुद्ध उदाहृतः ॥74॥

जो साध्य के अधिकरण में नहीं है, वैसा हेतु विरुद्ध कहलाता है।

आश्रयासिद्धिराद्या स्यात्स्वरूपासिद्धिरप्यथ।
व्याप्यत्वासिद्धिरपरा स्यादसिद्धिरतस्त्रिधा ॥75॥

पहली आश्रयासिद्धि, उसके बाद स्वरूपासिद्धि, तीसरी व्याप्यत्वासिद्धि इस प्रकार असिद्धि तीन प्रकार की होती है।

पक्षासिद्धिर्यत्र पक्षो भवेन्मणिमयो गिरिः।

पक्षसिद्धि वहाँ होती है जहाँ मणिमय गिरि पक्ष होता है।

ह्रदो द्रव्यं धूमवत्त्वादत्रासिद्धिरथापरा ॥76॥

ह्रदो द्रव्यं धूमवत्त्वात् में दूसरी असिद्धि होती है।

व्याप्यत्वासिद्धिरपरा नीलधूमादिके भवेत् ।

नीलधूम आदि में व्याप्यत्वासिद्धि होती है।

विरुद्धयोः परामर्शे हेत्वोः सत्प्रतिपक्षता ॥77॥

परस्पर असमान अधिकरणवाले साध्यों के जो हेतु हैं, उनके साध्य व्याप्यवान् पक्ष तथा साध्याभाव व्याप्यवान् पक्ष, ऐसे दोनों परामर्शों में सत्प्रतिपक्षता होती है और उससे युक्त सत्प्रतिपक्ष होता है।

साध्यशून्यो यत्र पक्षस्त्वसौ बाध उदाहृतः ।
उत्पत्तिकालीनघटे गन्धादिर्यत्र साध्यते ॥78॥

जहाँ पक्ष साध्य से शून्य होता है, वह बाध कहलाता है। जहाँ उत्पत्ति कालीन घट में गन्ध आदि बाधित किया जाता है।

बाध को ही कालात्ययापदिष्ट नाम से जाना जाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि न्यायसिद्धान्तमुक्तावली में पाँच हेत्वाभास बताये गये हैं- 'अनैकान्तो विरुद्धश्चाप्यसिद्धिः प्रतिपक्षितः .....' यह पंक्ति आचार्य विश्वनाथपञ्चानन की है।

अतः विकल्प 'A' सही है।

स्रोत- न्यायसिद्धान्तमुक्तावली - अनुमानोपखण्ड, पेज 44,71

94. अधस्तनेषु वेदान्तानुसारं षट्कसम्पत्तिषु गण्येते-

a श्रवणम् **b मननम्**
c श्रद्धा **d समाधानम्**

समुचितं विकल्पं चिनुत -

(A) a एवं d **(B)** b एवं c
(C) c एवं d **(D)** c एवं a

व्याख्या- आचार्य सदानन्द प्रणीत वेदान्तसार में अनुबन्धचतुष्टय वर्णनोपरान्त साधनचतुष्टय को परिभाषित करते हुए षट्कसम्पत्ति की चर्चा करते हैं-

साधनानि नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रार्थफलभोगविरागशमादिषट्कसम्पत्तिमुमुक्षुत्वानि।

नित्य एवं अनित्यवस्तु का विवेक, इहलौकिक एवं पारलौकिक फल को भोगने के प्रति वैराग्य शम दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा आदि छः प्रकार की सम्पत्ति तथा मोक्षप्राप्ति के प्रति इच्छा ये चार साधन हैं।

ब्रह्म ही नित्य वस्तु है, उसके अतिरिक्त अन्य सभी कुछ अनित्य है, इस प्रकार समझना ही नित्य-अनित्य वस्तु विवेक है।

शमादयस्तु शमदमोपरतितितिक्षासमाधानश्रद्धाख्याः शमस्तावच्छ्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यो मनसो निग्रहः।

शम आदि तो शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा नाम वाले हैं। शम-श्रवण आदि से अतिरिक्त (सांसारिक) विषयों से मन को रोकना ही शम है।

दमो बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम्

बाह्य इन्द्रियों का उन (श्रवणादि) से अतिरिक्त विषयों से रोकना ही दम है।

निवर्तितानामेतेषां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्य उपरमणमुपरतिरथवा विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागः

बाह्यविषयों से रोकी गयी इन (इन्द्रियों) को उस (ब्रह्मादि) से अतिरिक्त विषयों से पूर्णतया अवरुद्ध करना ही उपरति है अथवा शास्त्रोक्त (नित्यादि) कर्मों का विधिपूर्वक त्याग ही उपरति है।

तितिक्षा शीतोष्णादिद्वन्द्वसहिष्णुता।

सर्दी-गर्मी (सुख-दुःख) आदि द्वन्द्वों को सहन करना ही तितिक्षा है।

निगृहीतस्य मनसः श्रवणादौ तदनुगुणविषये च समाधिः समाधानम्

पूर्णतया नियन्त्रित मन का श्रवण आदि तथा उनके अनुकूल विषयों में भली प्रकार लगना ही समाधि है।

गुरूपदिष्ट वेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा

गुरु के द्वारा उपदिष्ट वेदान्त के वाक्यों में विश्वास श्रद्धा है।

मुमुक्षुत्वं मोक्षेच्छा।

मोक्ष की इच्छा ही मुमुक्षुत्व है।

इस प्रकार की विशेषताओं से युक्त हुआ प्रमाता ही अधिकारी है। 'जितेन्द्रिय ही शान्तचित्त रहता है।' इत्यादि श्रुतिवचन भी हैं

*** अनुबन्ध चतुष्टय-** 1. अधिकारी 2. विषय 3. सम्बन्ध 4. प्रयोजन

*** साधनचतुष्टय-** नित्यानित्यवस्तु विवेक, इहामुत्रार्थफलभोगविराग, शमादिषट्कसम्पत्ति, मुमुक्षुत्व

*** षट् कर्म-** नित्यकर्म, नैमित्तिककर्म, प्रायश्चित्तकर्म, उपासना कर्म, काम्यकर्म और निषिद्धकर्म

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि षट्कसम्पत्ति में शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा परिगणित हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार - राकेश शास्त्री, पेज 132

95. अधोलिखितेषु केन सह कस्य सम्बन्धः?

(a)	आख्यातम्	(i)	अदः
(b)	नाम	(ii)	भवति
(c)	निपातः	(iii)	परि
(d)	उपसर्गः	(iv)	नु

समुचितं तालिकां चिनुत -

	(a)	(b)	(c)	(d)
(A)	(iii)	(ii)	(i)	(iv)
(B)	(i)	(iii)	(ii)	(iv)
(C)	(iv)	(iii)	(i)	(ii)
(D)	(ii)	(i)	(iv)	(iii)

व्याख्या- आचार्य यास्क द्वारा प्रणीत निरुक्त है, जिसमें तीन काण्ड एवं बारह अध्याय हैं। यास्क का निरुक्त निघण्टु की व्याख्या है।

अद इति सत्त्वानामुपदेशो गौरश्वः पुरुषो हस्तीति।

भवतीति भावस्य, आस्ते, शेते व्रजति, तिष्ठतीति।

'अदः' अर्थात् अदस् इदम् आदि सर्वनाम पदों के द्वारा सत्त्व अर्थात् द्रव्यों का निर्देश किया जाता है और गौ, अश्व, पुरुष, हस्ति आदि संज्ञावाचक पदों से द्रव्यों का विशेष रूप से निर्देश होता है।

इसी प्रकार भू धातु से भवति पद से यहाँ भू धातु का ग्रहण करना चाहिए भाव अर्थात् क्रिया का सामान्य रूप से तथा आस्ते, शेते, व्रजति, तिष्ठति आदि से (विशेष रूप से क्रिया का निर्देश होता है।)

'अप' इत्युपजनम्। 'परि' इति सर्वतोभावम्।

'अधि' इत्यु परिभावमैश्वर्यं वा।

एवमुच्चावचानर्थान् प्राहुः। त उपेक्षितव्याः ॥3॥

अप उपजन को। परि यह उपसर्ग सर्वतोभाव को 'अधि' यह उपसर्ग उपपरिभाव अथवा ऐश्वर्य को कहता है।

इस प्रकार उपसर्ग भिन्न-भिन्न उच्चावच अर्थों को कहते हैं।

नु इत्येषोऽनेककर्मा। 'इदं नु करिष्यति' इति हेत्वपदेशे। 'कथं नु करिष्यति' इत्यनुपृष्टे। 'न न्वेतदकार्षीत्' इति च।

नु यह (निपात भी चित् के समान) अनेकार्थक है। 'इदं नु करिष्यति' यह जो करेगा, यहाँ हेतु के कथन में 'नु' का प्रयोग है।

षड्भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः।

जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते, विनश्यति इति।

क्रियाओं के छः भेद-

मुख्यरूप से- छः प्रकार के क्रियाओं के भेद विकार होते हैं, यह वार्ष्यायणि आचार्य का मत है-

1. जायते - उत्पन्न होता है।
2. अस्ति - रहता है।
3. विपरिणमते - परिवर्तित होता है।
4. वर्धते - बढ़ता है।
5. अपक्षीयते - क्षीण होता है।
6. विनश्यति - नष्ट होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से होता है कि आख्यातम् - भवति, नाम- अदः, निपात-नु, उपसर्ग-परि से सम्बन्धित है। **अतः**

विकल्प '**D**' सही है।

स्रोत- निरुक्त - छज्जूराम शास्त्री, पेज 25,41,46

96. निम्नाङ्कितेषु समुचितः सम्बन्धो वर्तते-

a हर्षस्य वांसखेडा - ताम्र अभिलेख

b पुलकेशिन् द्वितीयस्य - मन्दसौर अभिलेख

c यशोधर्मण - इलाहाबाद अभिलेख

d रुद्रदामन - गिरनार अभिलेख

अधस्तनेषु समीचीनं विकल्पं चिनुत -

(A) a एवं b **(B)** b एवं c

(C) c एवं d **(D)** a एवं d

व्याख्या- हर्ष का बाँसखेड़ा का ताम्रपत्र

स्थान - बासखेड़ा, जिला शाहजहाँपुर उत्तरप्रदेश

भाषा - संस्कृत

लिपि - उत्तर ब्राह्मी

काल - लगभग 628 ई.

विषय - हर्षवर्धन के पूर्वजों तथा उसकी उपलब्धियों का वर्णन

पुलकेशिन् द्वितीय का एहोल शिलालेख

स्थान - एहोल जिला - बीजापुर

भाषा - संस्कृत

लिपि - दक्षिणी ब्राह्मी

काल - वि. सं. 566 (499ई.)

विषय - पुलकेशिन् द्वितीय तक चालुक्य शासकों का वर्णन, पुलकेशिन् द्वितीय की कीर्ति का उल्लेख

समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ अभिलेख

स्थान - इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश (यह मूलतः कौशाम्बी में था जहाँ से इलाहाबाद किले में लाया गया।)

भाषा - संस्कृत

लिपि - ब्राह्मी

काल - समुद्रगुप्त (लगभग 335-76ई.)

विषय - समुद्रगुप्त का जीवन चरित तथा उपलब्धियों का विकास

रुद्रदामन का जूनागढ़ शिलालेख (गिरनार)

स्थान - जूनागढ़, गुजरात

भाषा - संस्कृत

लिपि - ब्राह्मी

काल - रुद्रदामन के राजत्वकालान्तर्गत 72वाँ वर्ष

विषय - रुद्रदामन के प्रान्तीय शासक सुविशाख द्वारा सुदर्शन बाँध का पुनर्निर्माण, बाँध का पूर्व इतिहास एवं रुद्रदामन की राजनैतिक उपलब्धियाँ का विवरण

* यह अभिलेख काठियावाड़ के जूनागढ़ जिले में गिरिनार पर्वत के कण्ट प्रदेश में घाटी की ओर जाने वाली भाग में शुद्ध संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण है।

* इस अभिलेख का नायक रुद्रदामन है जिसकी उपाधि 'महाक्षत्रप' है। इस अभिलेख से रुद्रदामन के वंश, कृतित्व, व्यक्तित्व और सुदर्शन झील के इतिहास पर प्रकाश पड़ना है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि हर्ष वासखेड़ा का ताम्र अभिलेख पुलकेशिन् द्वितीय का एहोल शिलालेख समुद्रगुप्त का (इलाहाबाद) प्रयाग स्तम्भ रुद्रदामन (गिरनार) जूनागढ़ अभिलेख से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- भारतीय पुरालेखों का अध्ययन-शिवस्वरूप सहाय, पेज 209,246,356,363

97. अधोऽङ्कितेषु योगसूत्रानुसारं योगाङ्गेषु गण्येते-

a स्वाध्यायः **b निरुद्धम्**

c प्रत्यक्षम् **d समाधिः**

समुचितं विकल्पं चिनुत -

(A) a एवं d **(B)** a एवं b

(C) a एवं c **(D)** b एवं d

व्याख्या- * योगदर्शन के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि हैं।

* योग शब्द 'युज् + घञ्' से बना है जिसका अर्थ है - 'समाधि।'

* योग को 'सेश्वरसांख्य' कहा जाता है क्योंकि यह ईश्वरतत्त्व को मानता है।

योगसूत्र में चार पाद हैं-

(1) समाधिपाद (2) साधनपाद (3) विभूतिपाद (4) कैवल्य पाद

* योगदर्शन में पदार्थों (तत्त्वों) की संख्या 26 है।

* योगसूत्र तीन प्रमाण मानता है-

(1) प्रत्यक्ष (2) अनुमान (3) आगम (शब्द)

* **यमनियमाऽऽसनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानस-माधयोऽष्टावङ्गानि (2/29)**

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अङ्ग हैं।

* **अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः (2/30)**
अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम कहे जाते हैं।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः (2/32)

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान नियम कहे जाते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि योगसूत्र के अनुसार योगाङ्गों में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारण, ध्यान, समाधि है। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय नियम के अन्तर्गत आते हैं। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- पातञ्जलयोगदर्शन (2/29,30,32)

98. याज्ञवल्क्यस्मृतेरनुसारं 'लिखितं भुक्तिः साक्षिण श्चेति' किम् ?

(A) प्रमाणम् **(B)** प्रकरणम्
(C) अनुमानम् **(D)** साधनम्

व्याख्या- याज्ञवल्क्यस्मृति के रचनाकार आचार्य याज्ञवल्क्य हैं। तीन भागों में विभाजित याज्ञवल्क्यस्मृति के द्वितीय भाग व्यवहाराध्याय के साक्षिप्रकरण में प्रमाणों को बताते हुये यह कारिका प्रस्तुत करते हैं-

प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्तितम् ।
एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते ॥22॥

(किसी भी वाद के) लिखित, उपभोग और साक्षी ये तीन प्रमाण हैं। इनमें किसी के न होने पर दिव्य प्रमाणों में कोई प्रमाण होता है।

तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः।
धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः ॥68॥
त्र्यवराः साक्षिणो ज्ञेयाः श्रौतस्मार्तक्रियापराः
यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु वा स्मृतः ॥69॥

तपस्वी, दानशीला, कुलीन, सत्यवक्ता, धर्मप्रधान, सरलस्वभाव, पुत्रवान्, धनयुक्त तथा श्रौतस्मार्त क्रिया में रत कम से कम तीन साक्षी होते हैं। ये जाति तथा वर्ण के अनुसार अथवा सभी जाति और वर्ग के लिए होते हैं।

ऋणादान प्रकरण- इस प्रकरण में ऋण से सम्बन्धित श्लोक का वर्णन है -

अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सबन्धके।
वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुष्पञ्चकमन्यथा ॥37॥

बन्धक रखे जाने पर प्रत्येक मास में उसका अस्सीवाँ भाग ब्याज होता है। अन्य स्थिति में (बन्धक न होने पर) वर्ण क्रम (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रम) से दो, तीन, चार और पाँच प्रतिशत वृद्धि होती है।

सन्ततिस्तु पशुस्त्रीणाम् ॥38॥

पशु और स्त्री की वृद्धि ब्याज उसकी सन्तान है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्यस्मृति के अनुसार लिखित, भुक्ति और साक्षी तीन प्रमाण है।

अतः विकल्प 'A' सही है।

स्रोत- याज्ञवल्क्यस्मृति (2/22)

99. गगनारविन्दं सुरभि, अरविन्दत्वात्, सरोजारविन्दवत् इत्यत्र तर्कभाषानुसारं कतमो हेत्वाभासः?

(A) स्वरूपासिद्धः **(B)** विरुद्धः
(C) आश्रयासिद्धः **(D)** व्याप्यत्वासिद्धः

व्याख्या- आचार्य गौतम प्रणीत न्यायदर्शन का प्रकरण ग्रन्थ तर्कभाषा जो आचार्य केशव मिश्र द्वारा प्रणीत है।

तर्कभाषा में पाँच हेत्वाभास का निरूपण किया गया है-

असिद्ध-विरुद्ध-अनैकान्तिकप्रकरणसम-
कालात्ययापदिष्टभेदात् पञ्चैव।

हेत्वाभास- (1) असिद्ध (2) विरुद्ध (3) अनैकान्तिक (4) प्रकरणसम (5) कालात्ययापदिष्ट भेद से पाँच प्रकार का होता है।

1. असिद्ध हेत्वाभास-

तत्र लिङ्गत्वेनानिश्चितो हेतुरसिद्ध तत्रासिद्धस्त्रिविधः। आश्रयासिद्धः, स्वरूपासिद्धः, व्याप्यत्वासिद्धश्चेति।

उसमें लिङ्ग के रूप में निश्चित न होने वाला हेतु असिद्ध हेत्वाभास कहलाता है।

वह असिद्ध तीन प्रकार का होता है-

(1) आश्रयासिद्ध (2) स्वरूपासिद्ध (3) व्याप्यत्वासिद्ध

आश्रयासिद्धो यथा गगनारविन्दं सुरभि, अरविन्दत्वात् सरोजारविन्दवत् । अत्र गगनारविन्दमाश्रयः, स च नास्त्येव।

आश्रयासिद्ध यह है जैसे आकाशकमल सुगन्धित होता है (प्रतिज्ञा), क्योंकि वह कमल (अथवा उसमें कमलत्व) है (हेतु), सरोवर में उत्पन्न कमल के समान उदाहरण। यहाँ आकाशकमल आश्रय है और वहाँ होता ही नहीं।

स्वरूपासिद्धो यथा, अनित्यः शब्दः, चाक्षुषत्वात् घटवत्

अत्र चाक्षुषत्वं हेतुः, स च शब्दे नास्त्येव तस्य श्रावणत्वात्।

स्वरूपासिद्ध यह है, जैसे शब्द, अनित्य है, क्योंकि वह चाक्षुष (चक्षु से ग्राह्य है) है (हेतु), घट के समान (उदाहरण)। यहाँ चाक्षुषत्व हेतु है और वह शब्द में नहीं है क्योंकि शब्द तो श्रोत्र से ग्राह्य होता है।

2. विरुद्ध हेत्वाभास-

साध्यविपर्ययव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः। स यथा शब्दो नित्यः कृतकत्वादात्मवत् ।

साध्य के अभाव विपर्यय से व्याप्त हेतु विरुद्ध हेत्वाभास कहलाता है। वह इस प्रकार है, शब्द नित्य है, क्योंकि वह कृतक (जन्म) है (हेतु) आत्मा (उदाहरण)।

3. अनैकान्तिक हेत्वाभास-

सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः।

स द्विविधः साधारणानैकान्तिकोऽसाधारणानैकान्तिकश्चेति। तत्र पक्षसपक्षविपक्षवृत्तिः साधारणः। यथा शब्दो नित्यः प्रमेयत्वात् व्योमवत्। अत्र हि प्रमेयत्वं हेतुस्तच्च नित्यानित्यवृत्ति।

स यथा- भूर्नित्या गन्धवत्त्वात् गन्धवत्त्वं हि सपक्षान्नित्याद् विपक्षाच्चानित्याद् व्यावृत्तं भूमात्रवृत्ति।

सव्यभिचार हेतु अनैकान्तिक हेत्वाभास कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है - साधारण अनैकान्तिक और असाधारण अनैकान्तिक।

उनमें पक्ष, सपक्ष और विपक्ष में रहने वाले साधारण अनैकान्तिक है, जैसे शब्द नित्य है, क्योंकि वह प्रमेय है, आकाश के समान। यहाँ प्रमेयत्व हेतु है जो नित्य (पक्ष एवं सपक्ष) एवं अनित्य (विपक्ष) दोनों से व्यावृत्त होकर केवल पक्ष में ही रहता है वह साधारण अनैकान्तिक हेत्वाभास है।

जैसे भूमि नित्य है। क्योंकि यह गन्धवाली है। यहाँ गन्धत्व है, वह सपक्ष-नित्य से तथा विपक्ष अनित्य से व्यावृत्त है केवल पृथिवी में रहता है।

4. प्रकरणसम -

प्रकरणसमस्तु स एव यस्य हेतोः साध्यविपरीतसाधकं हेत्वन्तरं विद्यते। स यथा शब्दोऽनित्यो नित्यधर्मरहितत्वात्। शब्दो नित्योऽनित्यधर्मरहितत्वादिति। अयमेव हि सत्प्रतिपक्ष इति चोच्यते।

प्रकरणसम तो वह हेत्वाभास है जिस हेतु के साध्य के विपरीत अर्थ का साधक दूसरा हेतु विद्यमान होता है। वह इस प्रकार है, जैसे शब्द अनित्य है, क्योंकि वह नित्य के धर्म से रहित (हेतु)। शब्द नित्य है, क्योंकि वह अनित्य के धर्म से रहित है। यह प्रकरणसम ही सत्प्रतिपक्ष कहलाता है।

5. कालात्ययापदिष्ट हेत्वाभास-

पक्षे प्रमाणान्तरावधृतसाध्याभावो हेतुर्बाधित-विषयः कालात्ययापदिष्ट इति चोच्यते।

यथा अग्निरनुष्णः कृतकत्वाज्जलवत् ।

जिसके साध्य का अभाव अन्य प्रमाण से निश्चित कर दिया जाता है वह हेतु बाधितविषय तथा कालात्ययापदिष्ट कहलाता है। जैसे अग्नि अनुष्ण है, क्योंकि वह जन्य है, जैसे जल।

यहाँ कृतकत्व हेतु का साध्य अनुष्णत्व है उसका अभाव प्रत्यक्ष से ही निश्चित कर लिया गया है क्योंकि स्पर्शन प्रत्यक्ष से अग्नि में उष्णता की उपलब्धि होती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि गगनारविन्दं सुरभि, अरविन्दत्वात् सरोजारविन्दवत् यह तर्कभाषा के अनुसार आश्रयासिद्ध का उदाहरण है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- तर्कभाषा - श्रीनिवास शास्त्री, पेज 111

100. नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
उपर्युक्त श्लोकेन सम्बन्धोऽस्ति-

(A) वाल्मीकिरामायणस्य **(B)** महाभारतस्य
(C) जयपुराणस्य **(D)** भारतविजयस्य

व्याख्या- * महाभारत महर्षि वेदव्यास द्वारा विरचित महाकाव्य है।

* इस महाकाव्य को 'शतसाहस्रीसंहिता' के नाम से भी जाना जाता है।
* महाभारत का विकास क्रमशः जय, भारत तथा महाभारत इस रूप में तीन विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पृथक्-पृथक् अवसरों पर हुआ है।

➢ **जय -** महाभारत का मूलरूप जय के नाम से प्रसिद्ध था- **जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।** महाभारत (1.62.20)

* महाभारत के मङ्गलश्लोक में नारायण, नर और सरस्वती को नमस्कार करके जय नामक ग्रन्थ के पाठ का स्पष्ट निर्देश है-

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

* वर्तमान महाभारत के आदिपर्व के 65वें अध्याय से जय की सामग्री का आरम्भ हुआ था जिसमें क्षत्रियों की उत्पत्ति का वर्णन है। व्यास के इस ग्रन्थ में 8800 श्लोक थे।

अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च ।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा ॥

* व्यास ने इस ग्रन्थ को वैशम्पायन को सुनाया था। इसमें अधर्म पर धर्म की विजय का निरूपण था।

➢ **भारत-** द्वितीय अवस्था में जय का विस्तार भारत के रूप में हुआ जिसमें 24000 (चौबीस सहस्र) श्लोक हो गये।

* इस ग्रन्थ में उपाख्यानों को सम्मिलित नहीं किया गया था। महाभारत में ही इस ग्रन्थ का संकेत दिया गया है-

चतुर्विंशतिसाहस्त्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः॥

भारत का प्रवचन वैशम्पायन ने जनमेजय के समक्ष नागयज्ञ के अवसर पर किया था।

➢ **महाभारत -** अन्तिम अवस्था में एक लाख से अधिक श्लोकों का महाभारत ग्रन्थ प्रस्तुत हुआ। इसी रूप में यह आज उपलब्ध है।

* भारत को 'महाभारत' के रूप में परिणत करने का अवसर नैमिषारण्य नामक पवित्र स्थान में होने वाला यज्ञ था जिसे शौनक ऋषि ने अनुष्ठित किया था।

* इसके प्रवक्ता सौति नामक ऋषि थे, जिन्होंने वैशम्पायन से सुने हुये भारत नामक ग्रन्थ को पर्याप्त परिवर्धित करके शौनकादि ऋषियों को सुनाया था।

* महाभारत में अध्यात्म, इतिहास, भूगोल, आख्यान, नीतिशास्त्र, आचार-विचार आदि समस्त सांस्कृतिक विषयों को इसमें समाविष्ट किया गया।

* इससे यह भारतवर्ष का विश्वकोश बन गया।

* विशालता और महत्ता ही इसके 'महाभारत' कहे जाने की पृष्ठभूमि में थी-

महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते (1.1.274)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्' यह मङ्गलाचरण महाभारत का है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 147

उत्तरमाला

1-(A)	2-(C)	3-(B)	4-(A)	5-(A)	6-(D)	7-(C)	8-(C)	9-(C)
10-(A)	11-(B)	12-(A)	13-(D)	14-(D)	15-(C)	16-(A)	17-(C)	18-(C)
19-(B)	20-(C)	21-(C)	22-(C)	23-(C)	24-(B)	25-(C)	26-(B)	27-(B)
28-(B)	29-(A)	30-(B)	31-(B)	32-(B)	33-(A)	34-(B)	35-(B)	36-(A)
37-(C)	38-(B)	39-(D)	40-(B)	41-(B)	42-(C)	43-(C)	44-(B)	45-(D)
46-(C)	47-(C)	48-(B)	49-(C)	50-(B)	51-(B)	52-(D)	53-(B)	54-(D)
55-(B)	56-(B)	57-(B)	58-(B)	59-(C)	60-(B)	61-(D)	62-(A)	63-(A)
64-(B)	65-(D)	66-(C)	67-(A)	68-(D)	69-(B)	70-(C)	71-(A)	72-(A)
73-(C)	74-(C)	75-(C)	76-(C)	77-(C)	78-(C)	79-(A)	80-(D)	81-(B)
82-(A)	83-(A)	84-(D)	85-(B)	86-(B)	87-(B)	88-(A)	89-(B)	90-(B)
91-(B)	92-(C)	93-(A)	94-(C)	95-(D)	96-(D)	97-(A)	98-(A)	99-(C)
100-(B)								

2	जून 2019	NTA UGC–NET/JRF संस्कृतम्	प्रश्नपत्रम् II

1. 'नमो अरिहंतानां नमो सवसिधानां ऐरेण महाराजेन..।' इति वाक्यं कस्मिन्नभिलेखे प्राप्यते?
(A) इलाहाबादलेखे (B) ऐहोल-शिलालेखे
(C) गिरनारलेखे (D) हाथीगुम्फा-लेखे

व्याख्या- ➢ **इलाहाबाद लेख-** समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ अभिलेख **स्थान-** इलाहाबाद, उत्तर-प्रदेश (यह मूल रूप से कौशाम्बी में था जहाँ से इलाहाबाद किले में लाया गया)
भाषा- ब्राह्मी
काल- समुद्रगुप्त (लगभग 335-76 ई.)
विषय- समुद्रगुप्त के जीवनचरित एवं उपलब्धियों का वर्णन।इस स्तम्भलेख में समुद्रगुप्त की प्रशस्ति का उल्लेख है तथा यह प्रयाग में है। इसी कारण इसे 'प्रयाग-प्रशस्ति' कहा जाता है। इसके लेखक हरिषेण हैं, इसलिए इसे हरिषेण कृत 'प्रयाग-प्रशस्ति' नाम से भी जाना जाता है।
➢ **प्रत्यन्त सीमावर्ती राज्यों की विजय-** प्रशस्ति की 22वीं पंक्ति में इनका उल्लेख है। ऐसे राज्यों की दो कोटियाँ–राजतन्त्र और गणतन्त्र थीं।
(1) राजतन्त्र- समतट, डवाक, कामरूप, कर्तृपुर एवं नेपाल।
(2) गणतन्त्र- प्रशस्ति में कुल 9 गणतन्त्रों का उल्लेख है। खरपरिक, प्रार्जुन, मालव, यौधेय, अर्जुनायन, काक, सनकानिक, आभीर एवं मद्रक।
➢ **समुद्रगुप्त के सिक्के-** समुद्रगुप्त ने छह प्रकार की स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन किया।
(1) ध्वजधारी या दण्डधारी या गरुड़ प्रकार के सिक्के
(2) धनुर्धारी प्रकार (3) परशुधारी (4) अश्वमेध (5) व्याघ्रनिहन्ता (6) वीणावादन
➢ **एहोल शिलालेख-** पुलकेशिन् द्वितीय का एहोल लेख-
स्थान- एहोल, जिला-बीजापुर
भाषा- संस्कृत
लिपि- दक्षिणी ब्राह्मी
काल- वि॰सं॰ 556 (499ई॰)
विषय- पुलकेशिन् द्वितीय तक चालुक्य शासकों का वर्णन तथा पुलकेशिन् द्वितीय की कीर्ति का उल्लेख।
येनायोजि न वेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः॥
अर्थात् काव्य के क्षेत्र में कालिदास एवं भारवि के समान यशस्वी वह रविकीर्ति विजयी हो, जिस विवेकी के द्वारा जैन मन्दिरों का निर्माण कराया गया, अपना भवन निर्माण आदि नहीं किया गया।
हाथीगुम्फा अभिलेख-
स्थान- हाथीगुम्फा भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि पहाड़ी, जिला-पुरी, उड़ीसा
लिपि- ब्राह्मी
काल- लगभग प्रथम शती ई॰पू॰ का उत्तरार्ध
विषय- चेदिवंशी राजा कलिंगाधिपति खारवेल के जीवन की घटनाओं का क्रमिक विवरण एवं उसकी राजनैतिक उपलब्धियाँ तथा लोकमंगल के कार्यों का उल्लेख
'नमो अरिहंतानां नमो सवसिधानं ऐरेण महाराजेन।'
अर्हतों को नमस्कार। सब सिद्धों को नमस्कार। इस लेख के पढ़ने का प्रयास जेम्स प्रिंसेप, कनिंघम, राजेन्द्रलाल मित्र, भगवान् लाल इन्द्रजी, व्हीलर,फ्लीट, ल्यूडर, राखालदास बनर्जी, काशी प्रसाद, जायसवाल, बेनीमाधव बरुआ, स्टेन कोनो, थामस, मुनि जिनविजय, रामप्रसाद चन्दा आदि ने किया है।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'नमो अरिहंतानां नमो..' यह वाक्य हाथीगुम्फा लेख में प्राप्त होता है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**
स्रोत- प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख (भाग-1)-परमेश्वरी लाल गुप्त, पेज–94

2. ऋक्प्रातिशाख्यानुसारं समानाक्षराणां का संख्या?
(A) षड् (B) अष्ट
(C) पञ्च (D) सप्त

व्याख्या- एक-एक शाखा से सम्बद्ध होने के कारण ही ये ग्रन्थ 'प्रातिशाख्य' कहलाते हैं। (शाखायां शाखायां प्रतिशाखम्, प्रतिशाखं भवं प्रातिशाख्यम्)
शौनक कृत ऋग्वेदप्रातिशाख्य में अठारह पटल हैं।
➢ समानाक्षर संज्ञा- **अष्टौ समानाक्षराण्यादितः (1)**
आदि में आठ अक्षर समानाक्षर हैं।
जैसे- अ, आ, ऋ, ॠ, इ, ई, उ, ऊ।
➢ सन्ध्यक्षर संज्ञा- **ततश्चत्वारि संध्यक्षराण्युत्तराणि (2)**

तत्पश्चात् आगे वाले चार अक्षर संध्यक्षर हैं।
जैसे- ए, ओ, ऐ, औ।

➢ ह्रस्व स्वरस्य उच्चारणकालः **मात्रा ह्रस्वः (27)**
ह्रस्व स्वर का उच्चारण काल एक मात्रा काल वाला होता है।
जैसे- अ, ऋ, इ, उ, ऌ ।

➢ दीर्घस्वरस्य उच्चारणकालः– **द्वे दीर्घः (29)**
दीर्घस्वर वर्ण दो (मात्रा) वाला कहा जाता है।
जैसे- आ, ॠ, ई, ऊ, ए, ओ, ऐ, औ ।

➢ प्लुतस्य **स्वरसंज्ञा उच्चारणकालः**
तिस्रः प्लुत उच्यते स्वरः (30) प्लुत स्वर वर्ण तीन मात्रा वाला कहा जाता है।

➢ रक्तसंज्ञा- **रक्तसंज्ञोऽनुनासिकः (36)**
अनुनासिक वर्ण रक्तसंज्ञक हैं।
जैसे- ङञणनमाः

➢ संयोगसंज्ञा- **संयोगस्तु व्यञ्जनसंन्निपातः (37)**
व्यञ्जन वर्णों का मेल सन्निपात संयोग कहलाता है।
जैसे- कात्स्र्यायन, 'प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषम्' इत्यादि।

➢ प्रगृह्यसंज्ञा- **ओकार आमन्त्रितजः प्रगह्यः (68)**
सम्बोधन आमन्त्रित से उत्पन्न ओकार प्रगृह्य संज्ञक होता है।
जैसे- ओकारः

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि ऋक्प्रातिशाख्यानुसारं समानाक्षरों की संख्या आठ है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- ऋक्प्रातिशाख्यम्-वीरेन्द्रकुमार वर्मा, पेज 43

3. बाष्कलशाखा कस्य वेदस्य विद्यते-
(A) ऋग्वेदस्य **(B) सामवेदस्य**
(C) यजुर्वेदस्य **(D) अथर्ववेदस्य**

व्याख्या- वेद	**शाखा**
ऋग्वेद -	1. शाकल 2. बाष्कल 3. आश्वलायन 4. शांखायन 5. माण्डूकायन
शुक्लयजुर्वेद -	1. माध्यन्दिन (वाजसनेयि) 2. काण्व
कृष्णयजुर्वेद-	1. तैत्तिरीय 2. मैत्रायणी 3. कठ 4. कपिष्ठल
सामवेद-	1. कौथुमीय 2. राणायनीय 3. जैमिनीय
अथर्ववेद-	1. पैप्पलाद 2. तौद 3.मौद 4. शौनकीय 5. जाजल 6.जलद 7. ब्रह्मवद 8. देवदर्श 9.चारणवैद्य

ऋग्वेद के अपर नाम- 1. दशतयी
2. होतृवेद

ऋग्वेद का द्विधा विभाजन

अष्टक क्रम	मण्डलक्रम
अष्टक (8)	मण्डल 10
अध्याय (64)	अनुवाक 85
वर्ग (2024)	सूक्त 1017+11=1028

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बाष्कल शाखा ऋग्वेद की है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 46

4. यजुर्वेदस्य निम्नलिखित भाष्यकारेषु कोऽर्वाचीनतमः?
(A) स्वामिदयानन्दः **(B) रावणः**
(C) उव्वटः **(D) महीधरः**

व्याख्या-स्वामी दयानन्द सरस्वती-

➢ आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती आधुनिक युग में वेदों के पुनरुद्धारक माने जाते हैं।
➢ उन्होंने नैरुक्त प्रक्रिया का आश्रय लेकर वेदों की नई व्याख्या प्रस्तुत की है।
➢ उन्होंने सम्पूर्ण शुक्लयजुर्वेद की संस्कृत और हिन्दी में व्याख्या की है।
➢ ऋग्वेद की व्याख्या मण्डल 7 के 80 सूक्त तक ही कर सके।
➢ वेद को अपौरुषेय की मान्यता प्रदान करते हैं।

रावणः - आचार्य रावण ने ऋग्वेद का पदपाठ प्रस्तुत किया है और ऋग्वेद पर भाष्य भी किया हैं।

उव्वटः - यह नाम उव्वट और उवट दोनों प्राप्त होते हैं
➢ यजुर्वेदभाष्य के अन्त में इन्होंने अपना परिचय भी दिया है। ये आनन्दपुर निवासी वज्रट के पुत्र थे।
➢ राजा भोज के शासनकाल में इन्होंने वेदभाष्य किया।
➢ इनका समय 11वीं शती ई॰ है।

अन्य ग्रन्थ- 1. ऋक्प्रातिशाख्य की टीका 2. यजुः प्रातिशाख्य की टीका 3. ऋक्सार्वानुक्रमणी पर भाष्य 4. ईशोपनिषद् पर भाष्य

महीधरः - ये काशी निवासी नागर ब्राह्मण थे।
➢ इन्होंने यजुर्वेदभाष्य का नाम 'वेददीप' रखा है।
➢ इनका समय 16वीं शती ई॰ का उत्तरार्ध है।
➢ इन्होंने एक तन्त्रग्रन्थ मन्त्रमहोदधि (1588) ई॰ में लिखा है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि यजुर्वेद के अर्वाचीन

भाष्यकार स्वामी दयानन्द हैं। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 18

5. शारिपुत्रप्रकरणमस्ति-
(A) माघप्रणीतम् **(B) श्रीहर्षप्रणीतम्**
(C) अश्वघोषप्रणीतम् **(D) बिल्हणप्रणीतम्**

व्याख्या- अश्वघोष ''आर्यसुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतस्य भिक्षोराचार्यस्य भदन्ताश्वघोषस्य महाकवेर्महावादिनः कृतिरियम्-'' इस वाक्य से यह स्पष्ट होता है कि इनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। ये साकेत (अयोध्याक्षेत्र) के निवासी थे। ये बौद्ध भिक्षु आचार्य थे, जिन्हें भदन्त, महाकवि और महावादी भी कहा जाता था।

रचनायें- अश्वघोष की प्रमाणसिद्ध काव्यकृतियाँ हैं-

1-**बुद्धचरित -** यह मूलतः 28 सर्गों का महाकाव्य था, किन्तु अभी संस्कृत में अधूरा ही प्राप्त है।

2- **सौन्दरनन्द-** 18 सर्गों का पूर्णतः उपलब्ध संस्कृत महाकाव्य

3- **शारिपुत्रप्रकरण-** नौ अङ्कों का रूपक जो अंशतः प्राप्त है।

माघ- *सर्वाधिकारी सुकृताधिकारी श्रीवर्मलाख्य तस्य बभूव राज्ञः असक्तदृष्टिर्विरजा सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा।।*

माघ के पितामह सुप्रभदेव थे, जो राजा वर्मलात के सर्वाधिकारी अर्थात् दीवान थे। वे पुण्यात्मा, अनासक्त तथा सात्त्विक वृत्ति के पुरुष थे।

➢ सुप्रभदेव के पुत्र का नाम दत्तक था, जो उदार, क्षमाशील, कोमल स्वभाव के एवं धर्मपरायण थे, इन्हें लोग सर्वाश्रय भी कहते थे।

➢ माघ का निवासस्थान श्रीमाल या भिन्नमाल नामक नगर में था इनका समय 700ई॰ के आस-पास माना जाता है।

➢ शिशुपालवधम् नामक महाकाव्य के रचयिता महाकवि माघ का संस्कृत महाकवियों में विशेष स्थान है।

➢ विद्वानों ने श्रेष्ठ महाकाव्य का प्रणेता माना है-**'काव्येषु माघः'**

शिशुपालवधम्- यह माघकवि की एकमात्र कृति, 20 सर्गों के महाकाव्य के रूप में है। देवर्षि नारद के द्वारा इन्द्र का सन्देश द्वारकापुरी में कृष्ण को मिलता है, जिसमें शिशुपाल के अत्याचार से जगत् की रक्षा की प्रार्थना है। इसी प्रकार अन्तिम सर्ग में श्रीकृष्ण शिशुपाल का वध कर देते हैं। इस मूल कथानक को माघ ने कलात्मकता और विविध वर्णनों का प्रयोग करके बड़ा बना दिया है, जिसमें किरातार्जुनीय की अपेक्षा, बड़े-बड़े सर्गों में विभक्त 1645 पद्य हैं। पन्द्रहवें सर्ग में 34 प्रक्षिप्त श्लोक अतिरिक्त हैं जिनकी व्याख्या मल्लिनाथ ने नहीं की है। पाँच पद्य कविवंश वर्णन के हैं, उन्हें लगाकर माघ की रचना 1650 पद्यों की है।

श्रीहर्ष- श्रीहर्षं कविराज-राजि मुकुटालङ्कारहीरः सुतम्।
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।।
(नैषध 1/145)

श्रीहर्ष के पिता का नाम श्रीहीर और माता का नाम मामल्ल देवी था। कान्यकुब्ज नरेश जयचन्द्र उनके आश्रयदाता थे।

नैषधीयचरितम्- महाकवि श्रीहर्ष रचित महाकाव्य के रूप में नैषधीयचरित अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें नल और दमयन्ती के परस्पर प्रणय एवं परिणय का कथानक है, जो महाभारत के वनपर्व से संकलित है। यह कथा बाइस सर्गों में निबद्ध है, जो बृहत्त्रयी के अन्तर्गत आती है।

अन्य रचनाएँ- 1. श्रीविजयप्रशस्ति 2. खण्डनखण्डखाद्य 3. गौडोर्वीशिकुलप्रशस्ति 4. अणर्ववर्णन 5. छिन्दप्रशस्ति 6. शिवशक्तिसिद्धि तथा 7. नवसाहसाङ्कचरितचम्पू। इनके अतिरिक्त खण्डनखण्डखाद्य में 'ईश्वराभिसन्धि' का उल्लेख है।

बिल्हण - एको भागः प्रकृतिसुभगं कुङ्कुमं यस्य सूते द्राक्षामन्यः सरस-सरयू-पुण्ड्रकच्छेद-पाण्डुम्। अपनी जन्मभूमि कश्मीर के प्रति बिल्हण की गवपूर्ण ममता थी। काश्मीर की तात्कालिक राजधानी प्रवरपुर (श्रीनगर) से तीन कोश की दूरी पर स्थित उत्तुङ्ग त्यों वाले 'जयवन' नामक स्थान के निकट 'खोनमुख' गाँव में उनका जन्म हुआ। यह स्थान केसर और अंगूर के लिए प्रसिद्ध था।

रचनाएँ- बिल्हण के नाम से तीन रचनाएँ मिलती हैं। विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य के अतिरिक्त कर्णसुन्दरी नामक नाटिका इन्होंने चालुक्य राजसभा में रहकर ही लिखी थी। इनकी तीसरी रचना चौरपञ्चाशिका नामक सुन्दर गीतिकाव्य है।

विक्रमाङ्कदेवचरित- बिल्हण को अमर बनाने वाला 18 सर्गों का ऐतिहासिक महाकाव्य है। कल्याण के चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ के ऐतिहासिक चरित का इसमें वर्णन है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि शारिपुत्रप्रकरण के लेखक अश्वघोष हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास- उमाशंकर शर्मा ऋषि, पेज–228

6. ऋग्वेदसंहितायाः पदपाठकारो निम्नलिखितेषु कोऽस्ति?
(A) गार्ग्यः **(B) शाकल्यः**
(C) शौनकः **(D) यास्कः**

व्याख्या- आचार्य शाकल्य ने ऋग्वेद का पदपाठ किया है। ब्रह्माण्डपुराण में इनको प्रथम शाखाप्रवर्तक कहा गया है। इनके साथ ही रथीतर, बाष्कलि और भरद्वाज को भी शाखाप्रवर्तक कहा गया है।

शाकल्यः प्रथमस्तेषां तस्मादन्यो रथीतरः।
बाष्कलिश्च भरद्वाज इति शाखाप्रवर्तकाः॥

➢ **शौनक-** बृहद्देवता शौनक की कृति है। यह अतिमहत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें 8 अध्यायों में 1200 पद्य हैं। इसमें देवताओं का स्वरूप, उनका स्थान और उनकी विशेषताओं का वर्णन है। इसमें देवों से सम्बद्ध आख्यानों का भी संकलन पद्यों में है। यह देवशास्त्र का प्रामाणिक ग्रन्थ है। कात्यायन ने अपनी 'सर्वानुक्रमणी' में बृहद्देवता का बहुत उपयोग किया है।

➢ **गार्ग्य-** इन्होंने सामवेद का पदपाठ किया है।

➢ **रावण-** आचार्य रावण ने भी ऋग्वेद का पदपाठ प्रस्तुत किया है। कुछ स्थलों पर शाकल्य से पदपाठ भिन्न है। रावण ने ऋग्वेद पर भाष्य भी किया था।

➢ **यास्क-** यास्क ने निरुक्त में कहीं-कहीं शाकल्य के पदपाठ को अस्वीकार भी किया है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि ऋग्वेदसंहिता के पदपाठकार शाकल्य हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 22

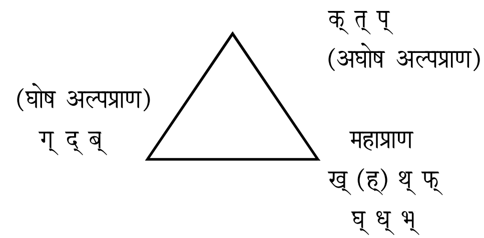
7. ग्रिमनियमानुसारेण तवर्गीयध्वनीनां परिवर्तनक्रमोऽस्ति-
(A) द > ध > ध > थ > थ > त
(B) त > थ > द > ध > ध > त
(C) थ > ध > त > द > ध > द
(D) त > थ > ध > द > द > त

व्याख्या- ग्रिम, ग्रासमान और वर्नर मूल भारोपीय भाषा से सम्बद्ध हैं। इन नियमों में मूल भारोपीय भाषा की ध्वनियों में परिवर्तन का वर्णन है

1. ग्रिम नियम (Grimm's Law):- यह ध्वनि नियम प्रो॰ याकोब ग्रिम (Jacob Grimm 1785-1863) के नाम से प्रसिद्ध है। इस नियम को ध्वनि परिवर्तन जर्मन में लाउत ध्वनि, फेशीबुंग-परिवर्तन, अंग्रेजी में साउन्ड ध्वनि नाम दिया गया था। प्रो॰ मैक्समूलर ने इसे ग्रिम नियम नाम दिया है। प्रो॰ ओटो येस्पर्सन का कथन है कि इस नियम को Rask's Law रास्क नियम नाम दिया जाना चाहिये, क्योंकि यह नियम डैनिश विद्वान् रास्क ने ही सर्वप्रथम प्रामाणिक रूप में अपनी Unddrsogelse पुस्तक में प्रकाशित किया था। प्रो॰ ग्रिम ने 1822ई॰ में जर्मन व्याकरण दायत्श जर्मन, ग्रामातिक-व्याकरण का द्वितीय संस्करण निकाला था। इस नियम की ओर पहले संकेत करने के विषय में प्रो॰ रास्क के अतिरिक्त प्रो॰ ईरे (Ihre) का भी नाम लिया जाता है।

प्रथम वर्ण-परिवर्तन (First sound shifting) :- यह वर्ण परिवर्तन ईसा के जन्म से पूर्व हो चुका था। इसका प्रभाव समान रूप से गाथिक, निम्न जर्मन और अंग्रेजी, डच आदि भाषाओं पर पड़ा है। भारोपीय मूलभाषा की व्यञ्जन ध्वनियाँ संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि में सुरक्षित है। अंग्रेजी का उद्भव निम्न जर्मन से है, अतः इसके द्वारा संस्कृत और अंग्रेजी की तुलना से यह परिवर्तन स्पष्ट हो जाता है। इस वर्ण परिवर्तन में एक ओर संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, स्लावोनिक भाषाएँ हैं, इनमें यह परिवर्तन हुआ है।

वर्ण परिवर्तन का क्रम–



1- ग्रिम नियम के अनुसार मूल भारोपीय भाषा की निम्नलिखित ध्वनियों को अंग्रेजी और जर्मन भाषा में ये ध्वनियाँ हो जाती हैं- प्रथम को द्वितीय 1 को 2, क्रमशः क् त् प् को ह् ख् थ् फ् (चतुर्थ को तृतीय 4 को 3) क्रमशः घ् ध् भ् को ग् द् ब् (तृतीय को प्रथम 3 को। क्रमशः ग् द् ब् को क् त् प्।

2- ग्रासमान नियम- मूल भारोपीय दो अक्षर वाली धातुओं में दो महाप्राण (ह्) ध्वनियाँ थीं। सामान्यतया प्रथम महाप्राण (ह्) ध्वनि हट जाती है। द्वितीय वर्ण में महाप्राण (ह्) ध्वनि हटने पर प्रथम वर्ण में महाप्राण ध्वनि रहती है।

3- वर्नर नियम- यह ग्रिम नियम का संशोधन है। यदि मूल-ग्रिम नियमानुसार प्रथम वर्ण परिवर्तन नियम लगेगा। यदि उदात्त स्वर क् त् प् आदि से पूर्व उदात्त स्वर होगा, तो ग्रिम उदात्त स्वर क् त् प् के बाद होगा तो क् त् प् को ग् द् ब् होगा।

स्पटीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ग्रिम-नियमानुसार तवर्गीयध्वनि क्रम परिवर्तन त, थ, ध, द, द, त। है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-242

8. अधस्तनेषु 'ध्वन्यते इति ध्वनिः' इत्यनेन कोऽभिप्रायः?
(A) व्यञ्जकशब्दार्थौ **(B) व्यञ्जनाशक्तिः**
(C) व्यङ्ग्यार्थः **(D) व्यङ्ग्यकाव्यम्**

व्याख्या- आचार्य आनन्दवर्धन प्रणीत ध्वन्यालोक के प्रथम उद्योत में 'ध्वनि का लक्षण' प्रतिपादित करते हुए कहते हैं-

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥
(ध्वन्या.का. -13)

जहाँ अर्थ अपने को अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके उस प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस काव्यविशेष को विद्वान् लोग 'ध्वनिकाव्य' कहते हैं। **'सूरिभिः कथितः'** इस व्याख्या में 'प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणाः' ऐसा कहते हैं। प्रथम विद्वान् वैयाकरण हैं, क्योंकि व्याकरण सब विद्याओं का मूल है। वे वैयाकरण सुनाई देने वाले वर्णों को ध्वनि कहते हैं। उसी प्रकार उनके मत को मानने वाले काव्यतत्त्वार्थदर्शी अन्य विद्वानों ने भी 1- वाच्य 2- वाचक 3- व्यङ्ग्यार्थ 4- व्यञ्जनाव्यापार 5- काव्य पद से व्यवहार्य काव्य इन पाँचों को ध्वनि कहा है।

* 'ध्वन्यते अनेन इति ध्वनिः' इस व्युत्पत्ति से वाच्य शब्द और वाच्यार्थ को बताते हैं।
* 'ध्वन्यते इति ध्वनिः' इस व्युत्पत्ति से व्यङ्ग्यार्थ को
* 'ध्वननं ध्वनिः' इस व्युत्पत्ति से व्यञ्जना व्यापार को
* 'ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनिः' इस व्युत्पत्ति से पूर्वोक्त ध्वनिचतुष्टय काव्य को ध्वनि कहते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'ध्वन्यते इति ध्वनिः' इसका अभिप्राय व्यङ्ग्यार्थ से है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- ध्वन्यालोक (1/13)- आचार्य विश्वेश्वर, पेज-37-53

9. 'भवाति' रूपमिदं कस्य लकारस्य विद्यते?
(A) लोट्लकारस्य (B) विधिलिङ्लकारस्य
(C) लेट्लकारस्य (D) लुट्लकारस्य

व्याख्या- लेट्लकार अत्यन्त जटिल लकार है। इसीलिए वैदिक काल के बाद लौकिक युग में इसके रूप प्रायः लुप्त हो गए। इस लकार में भू धातु के लेट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन के निम्नलिखित 12 प्रकार के रूप बनते हैं- भवति, भवाति, भाविषति, भाविषाति, भविषति, भविषाति, भाविषत्, भाविषात्, भवत्, भवात्, भविषत् तथा भविषात्। इन्हीं जटिलताओं के कारण ही इस लकार के प्रयोग लौकिक संस्कृत भाषा में नहीं पाये जाते।

'भू' धातु लेट्लकार-

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पु॰	भवाति,भवात्	भवातः	भवान्
मध्यम पु॰	भवासि, भवाः	भवाथः	भवाथ
उत्तम पु॰	भवानि, भवा	भवाव	भवाम

➢ अकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों से तृतीया बहुवचन में भिस् प्रत्यय के स्थान पर ऐस् आदेश विकल्प से होता है। जैसे- देवैः, देवेभिः, प्रियैः, प्रियेभिः, रामैः, रामेभिः इत्यादि।

➢ अन्य रूप- देवासः जनासः, रथासः, ब्राह्मणासः रूप भी वैदिक भाषा में प्राप्त होता है।

➢ **प्रत्यय-** वैदिक भाषा के प्रत्ययों में भी लौकिक संस्कृत के प्रत्ययों से कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं।

➢ **पूर्वकालिक क्रियारूप-** इस प्रकार के रूप लौकिक भाषा में क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय जोड़कर बनाये जाते हैं, परन्तु वैदिक भाषा में 'त्वी', 'त्वाय' तथा त्वा प्रत्यय जोड़कर भी बनाये जाते हैं। जैसे- त्वी जोड़कर- कृत्वी, गत्वी, भूत्वी आदि

➢ **तुमर्थक प्रत्यय-** तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में वैदिक भाषा में से, सेन्, असे, असेन्, क्से, कसेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, तवै, तवेङ् तथा तवेन् शध्यै, शध्यैन् ये 15 प्रत्यय होते हैं।

उदाहरण– से - ✓वच् + से = 'वक्षे' बोलने के लिए
सेन्- ✓इ + सेन् = 'एषे' जाने के लिए
असे - ✓जीव + असे = 'जीवसे' जीने के लिए
असेन् - ✓जीव + असेन् = जीवसे जीने के लिए
(आदि उदात्त)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'भवाति' रूप लेट्लकार से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैदिकसूक्त संग्रह- विजयशङ्कर पाण्डेय, पेज- (व्याकरण) -23

10. अधस्तनेषु वाल्मीकिरामायणस्य काण्डानां समुचितक्रमोऽस्ति
(A) बाल-अयोध्या-सुन्दर-अरण्य-किष्किन्धा-युद्ध-उत्तराणि
(B) बाल-अयोध्या-किष्किन्धा-अरण्य-सुन्दर-युद्ध-उत्तराणि
(C) अयोध्या-बाल-किष्किन्धा-अरण्य-सुन्दर-युद्ध-उत्तराणि
(D) बाल-अयोध्या-अरण्य-किष्किन्धा-सुन्दर-युद्ध-उत्तराणि

व्याख्या- रामायण महाकाव्य की रचना आदिकवि वाल्मीकि ने की थी। रामायण सात काण्डों में विभक्त है- 1-बालकाण्ड 2-अयोध्याकाण्ड 3-अरण्यकाण्ड 4- किष्किन्धाकाण्ड 5- सुन्दरकाण्ड 6- युद्धकाण्ड तथा 7- उत्तरकाण्ड। प्रत्येक काण्ड सर्गों में विभक्त है। सर्गों में रमणीय संस्कृत पद्य हैं, जो अनुष्टुप्, उपजाति, वंशस्थ आदि सुन्दर गेयात्मक छन्दों में निबद्ध हैं।

➢ **बालकाण्ड-** बालकाण्ड में 77 सर्ग हैं। इसके आरम्भ के चार सर्गों में रामायण की रचना की पूर्वपीठिका दी गयी है कि

नारद ने महर्षि वाल्मीकि को रामकथा सुनायी।
अयोध्या में दशरथ द्वारा अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान, राम की बाल्यावस्था, विश्वामित्र द्वारा राम लक्ष्मण को ले जाने की याचना, तारकावध, अहल्या–उद्धार, राम द्वारा धनुर्भङ्ग, राम–सीता विवाह, अयोध्य–प्रस्थान आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

➤ **अयोध्याकाण्ड-** इस काण्ड में 119 सर्ग हैं। अयोध्या के राजप्रासाद की घटनाएँ, भरत की अनुपस्थिति में राम के राज्याभिषेक की तैयारी, मन्थरा के परामर्श से कैकेयी द्वारा दशरथ से राम के वनवास का वर माँगना, राम के वियोग में दशरथ की मृत्यु, भरत का चित्रकूट गमन, आदि घटनायें वर्णित हैं।

➤ **अरण्यकाण्ड-** इस काण्ड में 75 सर्ग हैं। राम-लक्ष्मण-सीता का दण्डकारण्य में निवास, विराध आदि राक्षसों का वध, पञ्चवटी में निवास, रावण का छल से सीता को हर लेना, जटायु की रावण द्वारा हत्या, राम का करुण विलाप, राम की कबन्ध से भेंट, राम का सुग्रीव से मैत्री करने का परामर्श दिया जाना, ये वृत्तान्त वर्णित हैं।

➤ **किष्किन्धाकाण्ड-** इस काण्ड में 67 सर्ग हैं। प्रारम्भ में पम्पा सरोवर में वसन्त ऋतु की छटा देखकर राम का सीता के वियोग में दुःखी होना, हनुमान् द्वारा राम और और सुग्रीव की मैत्री होना राम द्वारा वाली वध, वाली की भार्या तारा का विलाप, सुग्रीव तथा अङ्गद का राज्याभिषेक, राम का प्रस्रवण गिरि पर चतुर्मास यापन, वर्षा वर्णन, शरद्वर्णन आदि का वर्णन है।

➤ **सुन्दरकाण्ड-** इस काण्ड में 68 सर्ग हैं। प्रारम्भ में हनुमान् द्वारा सागर पार करके लङ्का प्रवेश करना, रावण के अन्तःपुर में प्रत्येक स्थल में सीता की खोज, अशोक वन में सीता दर्शन, राम की दी हुई अँगूठी सीता को देना, हनुमान् की पूँछ में आग लगाना, लङ्का दहन आदि का वर्णन है।

➤ **युद्धकाण्ड-** इसमें 128 सर्ग हैं। प्रारम्भ में राम और रावण के बीच युद्ध का वर्णन है, रावण को मारकर राम के अयोध्या लौटने एवं राज्य पाकर प्रजा को प्रसन्न करने की कथा है। नल द्वारा समुद्र पर सेतु बन्धन, इन्द्रजित् का लक्ष्मण द्वारा वध, शक्ति से लक्ष्मण की मूर्च्छा और संजीवन, सीता की अग्निपरीक्षा, अयोध्या आना और राम का राज्याभिषेक आदि वृत्तान्त वर्णित हैं।

➤ **उत्तरकाण्ड-** इसमें 111 सर्ग हैं। प्रारम्भ में बालकाण्ड के समान अनेक इतिहास-पुराणात्मक आख्यान हैं। राम की कथा का अंश कम ही है। सीता का परित्याग, लव-कुश जन्म, शम्बूक वध, अश्वमेध यज्ञ का राम द्वारा अनुष्ठान, सीता का पाताल प्रवेश, लवकुश का राज्याभिषेक, राम का महाप्रस्थान आदि का वर्णन है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि रामायण के सात काण्डों के नाम क्रमशः बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड, उत्तरकाण्ड हैं। **अतः विकल्प 'D' है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 124-127

11. सारनाथ-बौद्धप्रतिमालेखस्य भाषाऽस्ति-

(A) संस्कृतम् **(B) प्राकृतम्**
(C) पालिः **(D) अपभ्रंशः**

व्याख्या ➤ कनिष्क प्रथम कालीन सारनाथ बौद्ध प्रतिमाभिलेख–
स्थान- सारनाथ जिला- वाराणसी, उत्तर प्रदेश
भाषा- प्राकृत, संस्कृत से प्रभावित
लिपि- ब्राह्मी
काल- प्रथम शताब्दी ई॰ उत्तरार्द्ध, सं.- 3=81ई॰
विषय- भिक्षु बल द्वारा विभिन्न लोगों के साथ छत्र और यष्टि की स्थापना, हित और सुख के लिए

➤ **समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ अभिलेख–**
स्थान- इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश (यह मूलतः कौशाम्बी में था, जहाँ से इलाहाबाद किले में लाया गया)
भाषा- संस्कृत
लिपि- ब्राह्मी
काल- समुद्रगुप्त (लगभग-335-76ई॰)
विषय- समुद्रगुप्त का जीवन चरित तथा उपलब्धियों का वर्णन

➤ **पुलकेशिन् द्वितीय का एहोल लेख**
स्थान- एहोल जिला बीजापुर
भाषा- संस्कृत
लिपि- दक्षिणी ब्राह्मी
काल- वि॰स॰556 (499ई॰)
विषय- पुलकेशिन् द्वितीय तक चालुक्य शासकों का वर्णन।

➤ **रुद्रदामन का जूनागढ़ शिलालेख–**
स्थान- जूनागढ़ गुजरात
भाषा- संस्कृत
लिपि- दक्षिणी ब्राह्मी
काल- रुद्रदामन के राजत्व कालान्तर्गत
विषय- रुद्रदामन के प्रान्तीय शासक सुविशाख द्वारा सुदर्शन बाँध का पुनर्निर्माण, बाँध का पूर्व इतिहास एवं रुद्रदामन की राजनैतिक उपलब्धियाँ।

➤ **अशोक अभिलेख- प्रथम शिलालेख**
स्थान- गिरनार, जिला- जूनागढ़ महाराष्ट्र
भाषा- प्राकृत (पालि)

लिपि- ब्राह्मी
काल- अशोक कालीन (लगभग 272-32ई॰पू॰)
विषय- हिंसा और समाज का विरोध, व्यक्तिगत जीवन
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सारनाथ बौद्ध प्रतिमाभिलेख की भाषा प्राकृत है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**
स्रोत- भारतीय पुरालेखों का अध्ययन- शिवस्वरूप सहाय, पेज-223

12. मुद्राराक्षसस्य तृतीयाङ्कस्य नाम अस्ति-
(A) मुद्राप्राप्तिः (B) भूषणविक्रयः
(C) प्रलोभनम् (D) कृतककलहः

व्याख्या- विशाखदत्त का परिचयः–
नाम- विशाखदत्त
पिता का नाम- भास्करदत्त
पितामह- बटेश्वरदत्त
निवासस्थान- बंगाल अथवा बिहार (अनुमान के आधार पर)
उपासक- शिव के
प्रिय छन्द- अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित
प्रिय अलङ्कार- अर्थालङ्कार
रीति- वैदर्भी, किन्तु उग्रता या भयङ्करता का वर्णन करने के लिए गौडी रीति का प्रयोग
समय- अधिकांश विद्वानों के अनुसार चतुर्थ शताब्दी
आश्रयदाता- तैलङ्ग महोदय के अनुसार- अवन्तिवर्मा
रचनाएँ- मुद्राराक्षस, देवीचन्द्रगुप्तम् अभिसारिकवञ्चितकम्
मुद्राराक्षस ही विशाखदत्त की एकमात्र प्रामाणिक रचना है।
*** मुद्राराक्षस का परिचय-**
लेखक - विशाखदत्त
काव्यविधा - नाटक (ऐतिहासिक)
विभाजन - 7 (सात अङ्कों में)
श्लोक संख्या- 169

अङ्क अङ्कों के नाम	**श्लोक संख्या**
प्रथम मुद्रा लाभ	27
द्वितीय राक्षस-विचार	23
तृतीय कृतक-कलह	33
चतुर्थ राक्षस-उद्योग	22
पञ्चम राक्षस-निकार	24
षष्ठ राक्षस-निर्वेद	21
सप्तम राक्षस-निग्रह	19
योग	= 169

गुण- ओज, माधुर्य तथा प्रसाद गुणों का समन्वय।
मुख्य रस- वीर रस
उपजीव्य- विष्णु पुराण तथा श्रीमद्भागवतमहापुराण
नायक- चाणक्य (कौटिल्य, विष्णुगुप्त) कुछ विद्वान् चन्द्रगुप्त को मानते हैं।
नायिका- (नायिकाविहीन नाटक) नायिका का अभाव
प्रतिनायक - राक्षस (सुबुद्धि शर्मा)
कञ्चुकी - 1- जाजलि (मलयकेतु का) 2- वैहीनर (चन्द्रगुप्त का)
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मुद्राराक्षस के तृतीय अङ्क का नाम 'कृतककलह' है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**
स्रोत- मुद्राराक्षस- पुष्पा गुप्ता, पेज-192

13. अधस्तनेषु पुराणस्य पञ्चलक्षणेषु नास्ति-
(A) वंशः (B) मन्वन्तराणि
(C) संसर्गः (D) प्रतिसर्गः

व्याख्या- ➤ पुराण शब्द की व्युत्पत्ति पाणिनि, यास्क तथा स्वयं पुराणों ने भी दी है। 'पुरा भवम्' प्राचीन काल में होने वाला।
➤ पुराण शब्द ऋग्वेद में एक दर्जन से अधिक स्थानों पर मिलता है। यह वहाँ विशेषण है तथा उसका अर्थ है- प्राचीन (पूर्व में होने वाला)।
➤ यास्क के निरुक्त (3/19) के अनुसार पुराण की व्युत्पत्ति है- 'पुरा नवं भवति' (जो प्राचीन होकर भी नया है)
➤ वायुपुराण के अनुसार यह व्युत्पत्ति है- 'पुरा अनति' अर्थात् प्राचीन काल में जो जीवित था।
➤ अथर्ववेद के अनुसार पुराण का आविर्भाव ऋक्, साम, छन्द और यजुष् के साथ ही हुआ था।
'ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह' (11/7/24)
➤ इतिहास तथा पुराण को संयुक्त रूप से नारद ने 'पञ्चम वेद' कहा है- 'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्' (बृहदारण्यकोपनिषद् 2/4/10)
पुराण का लक्षण- प्रमुख पुराणों तथा अमरकोश जैसे प्राचीन ग्रन्थों में पुराण के लक्षण तथा विषयवस्तु के सम्बन्ध में यह श्लोक मिलता है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥
(विष्णुपुराण- 3.6.24, अमरकोश-1.6.5)

सर्ग - विश्व की सृष्टिप्रक्रिया।
प्रतिसर्ग - प्रलय तथा पुनः सृष्टि का वर्णन।
वंश - देवताओं और ऋषियों के वंशों का वर्णन।
मन्वन्तर - प्रत्येक मनु का काल और उस काल की प्रमुख घटनाओं का निरूपण।
वंशानुचरित - सूर्यवंश और चन्द्रवंश में उत्पन्न राजाओं का जीवन-चरित

पुराणों की संख्या- पुराणों का विकास दो प्रकार से हुआ है- महापुराण और उपपुराण
महापुराण प्राचीनतर हैं, जिनकी संख्या अठारह है।
उपपुराणों की भी संख्या अठारह ही है।

महापुराण	**उपपुराण**
ब्रह्मपुराण	सनत्कुमार
पद्मपुराण	नारसिंह
विष्णुपुराण	स्कान्द या शिव
वायुपुराण	शिवधर्म
भागवतपुराण	आश्चर्य
नारदपुराण	नारदीय
मार्कण्डेयपुराण	कापिल
अग्निपुराण	औशनस
भविष्यपुराण	वारुण
ब्रह्मवैवर्तपुराण	कल्कि
लिङ्गपुराण	कालिका
वराहपुराण	माहेश्वर
स्कन्दपुराण	साम्ब
वामनपुराण	सौर (सूर्य)
कूर्मपुराण	पराशर
मत्स्यपुराण	मारीच
गरुडपुराण	भार्गव
ब्रह्माण्डपुराण	नन्द

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पुराण के पञ्चलक्षणों में 'संसर्ग' नहीं आता है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 174

14. पुराणसन्दर्भे सप्तद्वीपेषु गणना नास्ति?
(A) कुशद्वीपः **(B) प्लक्षद्वीपः**
(C) शाकद्वीपः **(D) आम्रद्वीपः**

व्याख्या- भुवनकोष के विषय में प्राचीन मत यही था कि पृथ्वी चार द्वीपों से घिरी है, परन्तु पुराणों के नवीन संस्करण में सात द्वीपों का सिद्धान्त मान लिया गया।
सात द्वीपों के नाम इस प्रकार हैं-
1. जम्बूद्वीप (क्षारसमुद्र या लवणोदधि द्वारा वेष्टित)
2. प्लक्षद्वीप या गोमेदक द्वीप (इक्षुरस समुद्र द्वारा वेष्टित)
3. शाल्मलिद्वीप (सुरासमुद्र के द्वारा वेष्टित)
4. कुशद्वीप (घृतसमुद्र द्वारा वेष्टित)
5. क्रौञ्चद्वीप (दधिसमुद्र द्वारा वेष्टित)
6. शाकद्वीप (क्षीरसमुद्र द्वारा वेष्टित)
7. पुष्करद्वीप (स्वादुजल समुद्र द्वारा वेष्टित)

➢ प्रत्येक द्वीप में सात नदियाँ तथा सात पर्वत होते हैं।
➢ द्वीपों का यह क्रम वायु, विष्णु, भागवत तथा मार्कण्डेय के अनुसार है।
➢ **मत्स्य के अनुसार द्वीपों का क्रम इस प्रकार है-**
1. जम्बूद्वीप 2. शाकद्वीप 3. कुशद्वीप 4. क्रौञ्चद्वीप 5. शाल्मलिद्वीप 6. प्लक्ष या गोमेद द्वीप 7. पुष्कर द्वीप

शाकद्वीप में सात पर्वत- 1. मेरु (उदय पर्वत) 2. जलधार (चन्द्र नाम से भी ख्यात, विष्णुपुराण में जलाधार) 3. दुर्ग शैल (नारद से भी प्रख्यात) 4. श्याम (दुन्दुभि) 5. अस्तगिरि (अपरनाम सोमक)
6. आम्बिकेय (अपर नामसुमनस्) 7. विभ्राज (अपरनाम केशव)

शाकद्वीप की सात नदियाँ-
1. सुकुमारी (मुनितप्ता)
2. कुमारी (तपःसिद्धा नाम से भी प्रख्यात)
3. नन्दा (अपरनाम पावनी)
4. शिविका (द्विविधा नाम भी)
5. इक्षु (अपरनाम कुहू)
6. वेणुका (अपरनाम अमृता)
7. सुकृता (अपरनाम गभस्ति)

शाकद्वीप के सात वर्षों के नाम-
1. उदयवर्ष (उदय पर्वत का प्रदेश)
2. सुकुमारवर्ष (अपर नाम शैशिर, जलधार पर्वत का प्रदेश)
3. कौमार (अपर नाम सुखोदय, नारद पर्वत का प्रदेश)
4. मणिचक (अपर नाम आनन्दक, श्यामपर्वत का प्रदेश)
5. कुसुमोत्कर (अपर नाम असित, सोमक पर्वत का देश)
6. मैनाक (क्षेमक नाम से भी ख्यात, आम्बिकेय पर्वत का देश
7. विभ्राज (ध्रुव नाम से भी ख्यात, विभ्राज पर्वत का देश)

⇒**'कुलपर्वतों की संख्या सात मानी गयी है- जिनके नाम हैं–**
1. महेन्द्र कुलपर्वत 2. मलय कुलपर्वत 3. सह्य कुलपर्वत
4. शुक्तिमान् कुलपर्वत 5. ऋक्ष कुलपर्वत 6. विन्ध्य कुलपर्वत
7. पारियात्र कुलपर्वत

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सप्तद्वीपों में 'आम्रद्वीप' की गणना नहीं होती है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- पुराण विमर्श- बलदेव उपाध्याय, पेज-323

15. कस्य वचः नारिकेलफलसम्मितं कल्पितम्?
(A) विशाखदत्तस्य (B) भारवेः
(C) दण्डिनः (D) बाणभट्टस्य

व्याख्या- भारविकृत किरातार्जुनीयम् महाकाव्य है, जिसमें 18 सर्ग हैं, जो बृहत्त्रयी के अन्तर्गत आता है। किरातार्जुनीयम् की टीका मल्लिनाथकृत 'घण्टापथ' टीका है, जिसमें मल्लिनाथ ने भारवि के विषय में कहा है- **नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः** भारवि की प्रशंसा करते हुए कहा है कि बाह्यरूप से आपाततः अत्यन्त कठिन स्वरूप में प्रतीत होता है, परन्तु अर्थबोध होने पर नारिकेलफल के समान रसगर्भनिर्भर है।

⇒ भारवि के विषय में कुछ उक्तियाँ प्रचलित हैं-

1. 'भारवेरर्थगौरवम्' 2. 'भारवेरिव भारवेः'
3. 'प्रकृतिमधुरा भारविगिरः' (अभिनन्दः)

दण्डी के विषय में उक्ति-

1. दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः (राजशेखरस्य)
2. **उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।

महाकवि कालिदास की विशिष्टता उपमा के कारण है, भारवि का प्रधानगुण अर्थगौरव है, दण्डी की विशिष्टता पदलालित्य के कारण है, तो माघ में तीन गुणों का समन्वित प्रयोग प्रमुख वैशिष्ट्य है। माघ में ये सारी विशिष्टताएँ (उपमा, अर्थगौरव और पदलालित्य) वर्तमान हैं।

⇒ बाणभट्ट के विषय में कुछ उक्तियाँ-

1. वाणी बाणो बभूवेति (गोवर्धन)
2. बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती
3. वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य (धर्मदास)
4. बाणस्तु पञ्चाननः (श्रीचन्द्रदेव)
5. पञ्चबाणस्तु बाणः (जयदेव)

⇒ कालिदास विषयक उक्तियाँ-

1. कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः
2. न कालिदासादपरस्य वाणी (श्रीकृष्ण कवि)
3. काव्येषु माघः कविकालिदासः (घटखर्परस्य)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'नारिकेल-फलसम्मितंःवचः' यह भारवि के लिए प्रयोग किया गया है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 245

16. अधोलिखितेषु वैदिकभाषादृशा साधुप्रयोगो मन्यते-
(A) देवेभिः (B) विश्वा
(C) एमसि (D) उक्ताः सर्वेऽपि साधवः

व्याख्या- अग्निर्होता कविक्रतुः, सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरा गमत्॥ (ऋषि 1.1.5)
उप त्वाग्ने दिवेदिवे, दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥ (ऋ. 1.1.7)
याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम्।
आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः॥
(ऋग्. 1.35.3)

➢ देवा, देवौ दोनों रूप मिलते हैं। बहुवचन में आः और आसः (देवाः, देवासः, जनाः, जनासः, मर्त्याः, मर्त्यासः दो प्रकार के रूप बनते हैं।
➢ तृतीया विभक्ति के एकवचन में एन और एना (देवेन, देवेना) एवं बहुवचन में ऐः और एभिः (देवैः, देवेभिः) रूप बनते हैं।
➢ वैदिक संस्कृत में संज्ञा के अधिकारक उपसर्गों का स्वतन्त्र पृथक् प्रयोग बहुधा मिलता है। जैसे- रोचनात् अधि (1.49.1), मानुषान् अधि (1.48.7) अध्वरान् उप (1.48.11), गिरिभ्यः आ, (6.95.1) उत्तानपदः परि (10.72.3) आदि में है।
➢ वैदिक संस्कृत में अनेक शब्द ऐसे हैं, जिनका प्रयोग लौकिक संस्कृत में नहीं है।
जैसे- विचर्षणी, उक्थ, ऊति, उर्गिया, सीम्, रिक्वन् आदि शब्द वेदों में ही हैं और लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त होते हैं।
➢ वेदों में इव के अर्थ के लिए 'न' का प्रचुर प्रयोग हुआ है। संस्कृत में यह अर्थ प्रयोग नहीं होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि वैदिक-भाषा में देवेभिः, विश्वा, एमसि ये तीनों शब्द साधु हैं।
अतः विकल्प 'D' सही है।

स्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह- हरिदत्तशास्त्री, पेज 57, 59, 106

17. ''सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति''— मन्त्रांशोऽयं कस्मिन् वेदे विद्यते?
(A) ऋग्वेदे (B) यजुर्वेदे
(C) सामवेदे (D) अथर्ववेदे

व्याख्या- अथर्ववेद के बारहवें काण्ड में पृथिवीसूक्त वर्णित है।
सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥
(12.1.1)

सत्य, महत्ता, ऋत, उग्रता (शक्ति), दीक्षा, तपस्या, ब्रह्म और यज्ञ पृथिवी को धारण करते हैं। भूत और भविष्यत् की पत्नी वह पृथ्वी हमारे लोक को (हमारे लिए विस्तृत बना दे)।

⟹ **पृथिवीसूक्त की अन्य महत्त्वपूर्ण सूक्तियाँ -**

(i) यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।

सा नो भूमिर्भूरिधारा पयोदुहामथो उक्षतु वर्चसा (12.1.9) जिस पृथिवी के चारों ओर विचरण करने वाला जल समान भाव से रात-दिन निर्बाध रूप से प्रवाहित होता है, अनेक धाराओं वाली वह पृथिवी में दुग्ध (जल) प्रदान करें तथा हमें तेज से सम्पृक्त करें।

(ii) सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः (12.1.8) वह हमारी पृथिवी माता मुझ पुत्र के लिए दूध प्रदान करें (जैसे माता पुत्र को दूध देती है हमें उसी प्रकार दूध दे)

(iii) माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। (12.1.10)

भूमि माता है, मैं पृथिवी का पुत्र हूँ, पर्जन्य पिता है, वह हमारा पालन पोषण करें।

स्पष्टीकरण - उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि 'सत्यं बृहदृतमग्रं दीक्षा तपो .... पृथिवीं धारयन्ति' यह सूक्ति अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त से उद्धृत है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वैदिकसूक्त संग्रह (12.1.1)- विजयशङ्कर पाण्डेय, पेज 136

18. वानीरकुञ्जोड्डीनशकुनिकोलाहलं शृण्वन्त्याः।
गृहकर्मव्यापृताया वध्वाः सीदन्त्यङ्ग्यस्य॥
काव्यप्रकाशानुसारम् उपर्युक्तमुदाहरणं कस्य?
(A) काक्वाक्षिप्तगुणीभूतव्यङ्ग्स्य
(B) असुन्दरगुणीभूतव्यंग्यस्य
(C) अस्फुटगुणीभूतव्यंग्यस्य
(D) सन्दिग्धप्राधान्यगुणीभूतव्यंग्यस्य

व्याख्या- आचार्य मम्मट प्रणीत काव्यप्रकाश के प्रथम उल्लास में काव्य के तीन भेद बताये गये हैं-

1. उत्तमकाव्य (ध्वनि काव्य) 2. मध्यमकाव्य (गुणीभूतव्यङ्ग्य) 3. अधमकाव्य (अवरकाव्य या चित्रकाव्य)

आचार्य मम्मट गुणीभूतव्यङ्ग्यकाव्य का लक्षण करते हुए कहते हैं-

अतादृशि गुणीभूतव्यङ्ग्यं व्यङ्ग्ये तु मध्यमम्।

वाच्य से अधिक चमत्कारी व्यङ्ग्य अर्थ न होने पर गुणीभूतव्यङ्ग्य नामक दूसरे प्रकार का काव्य मध्यमकाव्य कहा जाता है।

आचार्य मम्मट काव्यप्रकाश के पाचवें उल्लास में गुणीभूतव्यङ्ग्य के आठ भेदों की चर्चा करते हैं-

अगूढमपरस्याङ्गं वाच्यसिद्ध्यङ्गमस्फुटम्।
सन्दिग्धतुल्यप्राधान्ये काक्वाक्षिप्तमसुन्दरम्।
व्यङ्ग्यमेव गुणीभूतव्यङ्ग्यस्याष्टौ भेदाः स्मृताः॥

1. अगूढ़ व्यङ्ग्य 2. इतर का अङ्ग (भूतव्यङ्ग्य) 3. वाच्यसिद्धि का अङ्ग 4. अस्फुट (गूढ़ व्यङ्ग्य) 5. सन्दिग्धप्राधान्य 6. तुल्य प्राधान्य 7. काकु से आक्षिप्त 8. असुन्दर व्यङ्ग्य- इस प्रकार गुणीभूतव्यङ्ग्य के आठ भेद बताये गये हैं।

⟹ **असुन्दर व्यङ्ग्य का उदाहरण-**

वानीरकुञ्जोड्डीनशकुनिकोलाहलं शृण्वन्त्याः
गृहकर्मव्यापृताया वध्वाः सीदन्त्यङ्गानि।।

बेत- वानीर की लताओं के कुञ्ज में उड़ते हुए पक्षियों के कोलाहल को सुनकर घर के काम में लगी हुई वधू के अङ्ग शिथिल हो रहे हैं। यहाँ 'दत्तसंकेत कोई लतागृह में प्रविष्ट हो गया' इस व्यङ्ग्य से बहू के अङ्ग शिथिल हो रहे हैं, यह वाच्य अधिक चमत्कारजनक है। यह असुन्दर गुणीभूतव्यङ्ग्य का उदाहरण है।

⟹ **काक्वाक्षिप्तगुणीभूतव्यङ्ग्य का उदाहरण-**

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्।
दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।।

⟹ **अस्फुटगुणीभूतव्यङ्ग्य का उदाहरण-**

अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टे विच्छेदभीरुता।
नादृष्टेन न दृष्टेन भवता लभ्यते सुखम्।।

⟹ **सन्दिग्ध गुणीभूतव्यङ्ग्य का उदाहरण-**

हरस्तु किञ्चित् परिवृत्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि।।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'वानीरकुञ्जोड्डीनशकुनि..' यह 'असुन्दरगुणीभूतव्यङ्ग्य' का उदाहरण है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- काव्यप्रकाश - आचार्य विश्वेश्वर, पेज-211

19. 'प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्' पंक्तिरियं कस्याः?
(A) त्रय्याः **(B) आन्वीक्षिक्याः**
(C) वार्तायाः **(D) दण्डनीतेः**

व्याख्या- कौटिलीय अर्थशास्त्र में पन्द्रह अधिकरण, एक सौ पचास अध्याय, एक सौ अस्सी प्रकरण और छः हजार श्लोक हैं। सर्वप्रथम आचार्य कौटिल्य ने शुक्राचार्य और बृहस्पति के लिए नमस्कार किया है- 'नमः शुक्रबृहस्पतिभ्याम्' तदनन्तर विद्यासमुद्देश आन्वीक्षकी आदि की चर्चा करते हुए कहते हैं-

'आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः।'
आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति- ये चार विद्याएँ हैं-
⟹ **आन्वीक्षकी का लक्षण-**
प्रदीपः सर्वाविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षकी मता।।
यह आन्वीक्षकी विद्या सर्वदा ही सब विद्याओं का प्रदीप सभी कार्यों का साधन और सब धर्मों का आश्रय मानी गयी है।
⟹ **त्रयी का लक्षण-** 'सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी।' साम, ऋक्, तथा यजु इन तीनों वेदों का समन्वित नाम ही त्रयी है।
⟹ **वार्ता का लक्षण-** 'कृषि पाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता' कृषि, पशुपालन और व्यापार ये वार्ताविद्या के विषय हैं।
⟹ **दण्डनीति का लक्षण-** 'आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः तस्य नीतिर्दण्डनीतिः।' आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता, इन सभी विद्याओं की सुख-समृद्धि दण्ड पर निर्भर है। दण्ड (शासन) को प्रतिपादित करने वाली नीति ही दण्डनीति कहलाती है।
* मनुसम्प्रदाय के अनुयायी आचार्य त्रयी, वार्ता और दण्डनीति, इन विद्याओं को मानते हैं। उनका मत है कि आन्वीक्षकी का समावेश त्रयी के अन्तर्गत हो जाता है। **त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति मानवाः।** त्रयीविशेषो ह्यान्वीक्षकीति
* आचार्य बृहस्पति के अनुयायी विद्वान् केवल दो ही विद्याएँ मानते हैं- वार्ता और दण्डनीति। उनके अनुसार त्रयी तो दुनियादार लोकयात्राविद् लोगों की आजीविका का साधनमात्र है।
वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्हस्पत्याः संवरणमात्रं हि त्रयी लोकयात्राविद इति।
* शुक्राचार्य के अनुयायी विद्वानों ने तो केवल दण्डनीति को ही विद्या माना है, उसी को सम्पूर्ण विद्याओं का स्थान एवं कारण स्वीकार किया है।
दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसाः। तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिबद्धा इति।
चतस्त्र एव विद्या इति कौटिल्यः। ताभिर्धर्मार्थौ यद्विद्यात्तद्विद्यानां विद्यात्वम्। त्रयी, वार्ता, दण्डनीति कौटिल्य चारों विद्याओं को मानते हैं और उनकी यथार्थता धर्म तथा अधर्म के ज्ञान में बताते हैं।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'प्रदीपः सर्वविद्यानामुपाय'.. आन्वीक्षकी का लक्षण है।
अतः विकल्प 'B' सही है।
स्रोत - कौटिलीय अर्थशास्त्र-वाचस्पति गैरोला, पेज 09

20. सत्कार्यवादस्य समर्थने हेतुर्नास्ति-
(A) असदकरणम् **(B) सर्वसम्भवाभावः**
(C) शक्तस्य शक्यकरणम् **(D) सर्वसम्भव-भावः**

व्याख्या- ईश्वरकृष्ण द्वारा प्रणीत सांख्यकारिका की नवीं कारिका में सत्कार्यवाद की विवेचना करते हुए कहते हैं-
असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्॥9॥
कारण-व्यापार के पूर्व भी कार्य (कारण में) विद्यमान रहता है, क्योंकि असत् या अविद्यमान होने पर कार्य की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। कार्य की उत्पत्ति के लिए उसके उपादानकारण का ग्रहण अवश्य करना पड़ता है। अर्थात् कार्य अपने उपादानकारण से नियतरूप से सम्बद्ध होता है, सभी कार्य सभी कारणों से उत्पन्न नहीं होते, जो कारण जिस कार्य को उत्पन्न करने में शक्त या समर्थ है, उससे उसी कार्य की उत्पत्ति होती है और कार्य कारणात्मक अर्थात् कारण से अभिन्न या उसी के स्वरूप का होता है।
⟹ ईश्वरकृष्ण ने सत्कार्यवाद के समर्थन में पाँच हेतुओं को बताते हैं-
1. **असत्अकरणात्-** उत्पत्ति से पहले भी कार्य, कारण में विद्यमान रहता है।
2. **उपादानग्रहणात्-** वस्तु के निर्माण के लिए मूलकारण, उपादान या समवायिकारण कहलाता है।
3. **सर्वसम्भव-अभावात्-** यदि हम सत्कार्यवाद के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान नहीं करते हैं, तो उस स्थिति में प्रत्येक वस्तु से प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति माननी होगी।
जैसे- तेल को रेत, चावल, गेहूँ आदि सभी पदार्थों से प्राप्त होना चाहिये, किन्तु ऐसा नहीं होता। सभी कारणों से सभी कार्यों की उत्पत्ति नहीं होती। अतः उत्पत्ति से पूर्व में भी कार्य को कारण में सत् मानना उचित है।
4- **शक्तस्य शक्यकरणात्-** शक्त अर्थात् कार्यविशेष को उत्पन्न करने की शक्ति रखने वाला कारण ही, शक्य अर्थात् उस कार्य को (जिसे उत्पन्न करने की कारण में शक्ति है) उत्पन्न होता है, बालू में नहीं।
5- **कारणभावात्-** कार्य कारण से अलग न होकर कारण का ही एक रूप होता है। कार्य ही अविकसित रूप में कारण है तथा कारण ही विकसित रूप में कार्य है। जैसे- दही अपने मूलकारण दूध का विकसित रूप ही है और इस दही रूप में आने से पहले वह अपने मूलकारण दूध में सत् था।
6- **शक्तस्य शक्य करणात्**
दही के लिए दूध ही समर्थ कारण है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सत्कार्यवाद के पाँच हेतुओं में सर्वसम्भव भावः हेतु परिगणित नहीं है।

अतः विकल्प 'D' सही है।

स्रोत- सांख्यकारिका (कारिका-9)- राकेश शास्त्री, पेज-29-12।

21. काव्यप्रकाशस्य कस्मिन्नुल्लासे व्यञ्जनायाः स्थापना अभवत्-

(A) सप्तमोल्लासे (B) अष्टमोल्लासे
(C) पञ्चमोल्लासे (D) प्रथमोल्लासे

व्याख्या- आचार्य मम्मट कृत काव्यप्रकाश में दश उल्लास हैं। प्रत्येक उल्लास के नाम निम्नलिखित हैं-

उल्लास संख्या	उल्लासों के नाम
प्रथम	काव्यप्रयोजन, कारण, स्वरूपनिर्णय
द्वितीय	शब्दार्थस्वरूप निर्णय
तृतीय	अर्थव्यञ्जकता निर्णय
चतुर्थ	ध्वनिनिर्णय
पञ्चम	ध्वनिगुणीभूतव्यङ्ग्य, संकीर्ण भेद निर्णय
षष्ठ	शब्दार्थचित्र निरूपण
सप्तम	दोष दर्शन
अष्टम	गुणालङ्कार भेद
नवम	शब्दालङ्कार निर्णय
दशम	अर्थालङ्कार निर्णय

प्रथम उल्लास- प्रथमोल्लास में मङ्गलाचरण, काव्य प्रयोजन, काव्य के हेतु, मम्मट का काव्यलक्षण, काव्यभेद आदि की चर्चा की गयी है।

द्वितीयोल्लास- शब्द के तीन भेद, अर्थ के तीन भेद अभिहितान्वयवाद, अन्विताभिधानवाद, अभिधा-लक्षणा, लक्षणा के लक्षण, भेद आदि का वर्णन किया गया है।

तृतीयोल्लास- अर्थ के भेद, आर्थी व्यञ्जना के भेद आदि का वर्णन किया गया है।

चतुर्थोल्लास- अविवक्षितवाच्य लक्षणामूलध्वनि के दो भेद, रस निरूपण, भरतमुनि के रससूत्र आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

पञ्चमोल्लास- गुणीभूतव्यङ्ग्य के आठ भेद, रस प्रतीति के लिए व्यञ्जना अनिवार्य, व्यञ्जना की अनिवार्यता, व्यञ्जनावादी की ओर से उनका खण्डन आदि का वर्णन किया गया है।

षष्ठ उल्लास - शब्दार्थ चित्र निरूपण आदि का **वर्णन। सप्तम उल्लास -** दोष सामान्य लक्षण, श्रुतिकटु आदि पदगत 16 दोष और उनके उदाहरण। रसदोषों के अपवाद आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

अष्टमोल्लास - गुण तथा अलङ्कारों का भेद,गुणों के भेद, वामनोक्त दस अर्थ गुणों का खण्डन आदि का वर्णन किया गया है।

नवमोल्लास - शब्दालङ्कार का वर्णन, अलङ्कार का लक्षण, अलङ्कारों की संख्या अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि अलङ्कारों का वर्णन प्राप्त होता है।

दशमोल्लास - अलङ्कारों का वर्गीकरण, उपमा, उपमा के भेद, रूपक, रूपक के भेद, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, समासोक्ति, विभावना, विशेषोक्ति आदि अर्थालङ्कारों का वर्णन किया गया है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि व्यञ्जना का निरूपण पञ्चमोल्लास में किया गया है।

अतः विकल्प 'C' सही है।

स्रोत- काव्यप्रकाश- आचार्य विश्वेश्वर, पेज 197, 262

22. कौषीतकिब्राह्मणं केन वेदेन सम्बद्धमस्ति?

(A) शुक्लयजुर्वेदेन (B) कृष्णयजुर्वेदेन
(C) ऋग्वेदेन (D) सामवेदेन

व्याख्या-

वेद	ब्राह्मण	उपनिषद्
ऋग्वेद	1.ऐतरेय 2.शांखायन (कौषीतकि)	1. ऐतरेयोपनिषद् 2.कौषीतकि 3.बाष्कलोपनिषद्
शुक्लयजुर्वेद	1. शतपथ (माध्यन्दिन)	1.ईशावास्योपनिषद् 2. बृहदारण्यक
कृष्णयजुर्वेद	1. तैत्तिरीय 2.मैत्रायणी, 3.कठ,	1.कठोपनिषद् 2. मैत्रायणी 3.तैत्तिरीयोपनिषद्, 4.श्वेताश्वतरोपनिषद्
सामवेद	1. प्रौढ़ 2. षड्विंश, 3. सामविधान,4.आर्षेय, 5. देवताध्याय,6. उपनिषद् 7. संहितोपनिषद्,8. वंश, 9. जैमिनीय	1. छान्दोग्योपनिषद् 2.केनोपनिषद्
अथर्ववेद	1. गोपथ ब्राह्मण	1. प्रश्नोपनिषद् 2. माण्डूक्योपनिषद् 3. मुण्डकोपनिषद्

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कौषीतकिब्राह्मण ऋग्वेद से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 127

23. मनुस्मृतिः कति अध्यायेषु विभक्ताऽस्ति?
(A) दशाध्यायेषु (B) एकादशाध्यायेषु
(C) त्रयोदशाध्यायेषु (D) द्वादशाध्यायेषु

व्याख्या-* मनु कृत मनुस्मृति हिन्दू धर्म का एक प्राचीन धर्मशास्त्र (स्मृति) है। इसे मानव धर्म-शास्त्र, मनुसंहिता आदि नामों से भी जाना जाता है। यह उपदेश के रूप में है, जो मनु द्वारा ऋषियों को दिया गया।

* धर्मशास्त्रीय ग्रन्थकारों के अतिरिक्त शङ्कराचार्य, शबरस्वामी जैसे दार्शनिक भी प्रमाणरूपेण इस ग्रन्थ को उद्धृत करते हैं।
* धर्मशास्त्र के रूप में मनुस्मृति को विश्व की अमूल्य निधि माना जाता है।
* भारत में वेदों के उपरान्त सर्वाधिक मान्यता और प्रचलन मनुस्मृति का है। इसमें चारों वर्णों, चारों आश्रमों, सोलह संस्कारों तथा सृष्ट्युत्पत्ति उत्पत्ति के अतिरिक्त राज्य की व्यवस्था, राज्य के कर्तव्य, भाँति-भाँति के विवादों, सेना के प्रबन्ध आदि उन सभी विषयों पर परामर्श दिया गया है।
* मनु आदिपुरुष थे और उनका यह शास्त्र 'आदिशास्त्र' है।
* मनुस्मृति में कुल बारह अध्याय हैं और 2694 श्लोक हैं।
* मनु पर कई टीकाएँ प्राप्त होती हैं-

1. मेधातिथिकृत भाष्य
2. कुल्लूकभट्ट द्वारा रचित मन्वर्थमुक्तावली टीका
3. नारायणकृत मन्वर्थविवृत्ति टीका
4. राघवानन्दकृत मन्वर्थचन्द्रिका टीका
5. नन्दनकृतनन्दिनी टीका
6. गोविन्दराजकृत मन्वाशयानुसारिणी टीका आदि

⇒ **मनुस्मृति की विषयवस्तु-** मनुस्मृति भारतीय आचारसंहिता का विश्वकोश है, मनुस्मृति में बारह अध्याय दो हजार छः सौ चौरानबे श्लोक हैं। जिनमें सृष्टि की उत्पत्ति, संस्कार, नित्य और नैमित्तिक कर्म, आश्रमधर्म, वर्णधर्म, राजधर्म व प्रायश्चित्त आदि विषयों का उल्लेख है।

1. जगत् की उत्पत्ति, 2. संस्कारविधि, व्रतचर्या, उपचार 3. स्नान, विवाहलक्षण, महायज्ञ, श्राद्धकल्प 4. वृत्तिलक्षण, स्नातक व्रत 5. भक्ष्याभक्ष्य, शौच, अशुद्धि, स्त्रीधर्म 6. गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ, मोक्ष, संन्यास 7. राजधर्म 8. कार्यविनिर्णय, साक्षिप्रश्नविधान 9. स्त्रीपुंसधर्म, विभाग धर्म, धूत, कंटकशोधन, वैश्यचूडोपचार 10. संकीर्णजाति आपद्धर्म 11. प्रायश्चित्त 12. संसारगति, कर्म, कर्मगुणदोष, देशजाति, कुलधर्म, निःश्रेयस्

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनुस्मृति में बारह अध्याय हैं। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- मनुस्मृति- गिरिधर गोपाल शर्मा, भू. पेज 04

24. माध्यन्दिनशाखायाः अपरनाम किं प्रचलितमस्ति?
(A) कौथुमशाखा (B) बौधायनीशाखा
(C) वाजसनेयिशाखा (D) मैत्रायणीशाखा

व्याख्या- ऋग्वेद का अपर नाम 'दशतयी' है।
यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं- (1) शुक्लयजुर्वेद (2) कृष्णयजुर्वेद
शुक्लयजुर्वेद की भी शाखाएँ हैं- (1) माध्यन्दिन या वाजसनेयि (2) काण्वसंहिता

➢ माध्यन्दिनसंहिता का अपरनाम वाजसनेयिसंहिता है।
➢ अथर्ववेद के अपरनाम- आंगिरस वेद, अथर्वाङ्गिरस, ब्रह्मवेद, भृग्वंगिरोवेद, क्षत्रवेद, भैषज्यवेद, छन्दोवेद, महीवेद आदि हैं।
➢ **माध्यन्दिन या वाजसनेयि-** इसमें चालीस अध्याय और 1975 मन्त्र हैं। अतएव यजुर्वेद के सन्दर्भ में केवल दो संख्याएँ रहती हैं- एक अध्याय की और दूसरी मन्त्र की।

जैसे- ईशा वास्यम् (यजुर्वेद 40.1) अर्थात् यह 40वें अध्याय का प्रथम मन्त्र है। शतपथब्राह्मण में यजुर्वेद के अक्षरों की संख्या 2,88000 अर्थात् 8 हजार 36 अक्षरों वाले बृहती छन्द के बराबर। अष्टौ बृहती सहस्राणि (8000×36=2,28000 अक्षराणि)

⇒ **काण्व संहिता-** इसमें भी 40 अध्याय हैं और मन्त्रसंख्या 2086 है; अर्थात् वाजसनेयि शाखा से इसमें 111 मन्त्र अधिक हैं। इसका विभाजन अध्याय, अनुवाक और मन्त्र के रूप में हुआ है। अध्याय 40, अनुवाक 328 और मन्त्र 2086 हैं।

आदित्य पुराण के अनुसार कण्व के पिता बोधायन थे और याज्ञवल्क्य उनके गुरु थे। महर्षि कण्व इस शाखा के प्रवर्तक हैं। आजकल काण्वसंहिता का प्रचार महाराष्ट्र में ही है और माध्यन्दिन का उत्तर भारत में।

⇒ **सामवेदीय शाखा-** सामवेद की तीन शाखाएँ हैं-
1. कौथुमीय (कौथुम) शाखा 2. राणायनीय शाखा
3. जैमिनीय शाखा

अथर्ववेद की शाखाएँ- महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में 'नवधाऽऽथर्वणो वेदः' (महा॰ आह्निक 1) कहकर अथर्ववेद की नौ शाखाओं का उल्लेख किया है-
1. पैप्पलाद 2. तौद 3. मौद 4. शौनकीय 5. जाजल 6. जलद 7. ब्रह्मवद 8. देवदर्श 9. चारणवैद्य

कृष्णयजुर्वेद की शाखाएँ- (1) तैत्तिरीयसंहिता (2) मैत्रायणी संहिता (3) काठकसंहिता (4) कपिष्ठल

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि माध्यन्दिन शाखा का अपर नाम 'वाजसनेयि' है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-65

25. याज्ञवल्क्यस्मृतौ व्यवहाराध्यायः कतमोऽस्ति?

(A) प्रथमः **(B) द्वितीयः**

(C) तृतीयः **(D) चतुर्थः**

व्याख्या- महर्षि याज्ञवल्क्य प्रणीत याज्ञवल्क्यस्मृति तीन अध्यायों में विभक्त है-(1) आचाराध्याय (2) व्यवहाराध्याय (3) प्रायश्चित्ताध्याय

आचाराध्याय- प्रथम आचाराध्याय में 13 प्रकरण हैं।

व्यवहाराध्याय- द्वितीय व्यवहाराध्याय में 25 प्रकरण हैं।

प्रायश्चित्ताध्याय- तृतीय प्रायश्चित्ताध्याय में 5 प्रकरण हैं।

⇒ **याज्ञवल्क्यस्मृति की टीकायें-** याज्ञवल्क्यस्मृति पर मुख्य चार टीकाकारों की टीकाएँ हैं, वे हैं- विश्वरूप, विज्ञानेश्वर, अपरार्क और शूलपाणि।

1. विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा टीका का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।
2. विश्वरूप की बालक्रीडा नाम की टीका गणपतिशास्त्री ने त्रिवेन्द्रम् संस्कृत ग्रन्थमाला में प्रकाशित की है।
3. अपरादित्य की टीका अपरार्क-धर्मशास्त्र-निबन्ध नाम से अभिहित है। यह आनन्दाश्रम प्रेस पूना से प्रकाशित है।
4. शूलपाणि की टीका दीपकलिका है, जो छोटे आकार की है।

⇒ **याज्ञवल्क्यस्मृति की श्लोक संख्या-** याज्ञवल्क्य-स्मृति की श्लोक संख्या के विषय में विश्वरूपाचार्य, विज्ञानेश्वर तथा अपरादित्य का मत एक नहीं है।

विश्वरूपाचार्य के अनुसार याज्ञवल्क्यस्मृति में 1003, विज्ञानेश्वर के मत में 1009 और अपरादित्य की व्याख्या में 1006 श्लोक पाये जाते हैं।

कुछ मूल पुस्तकों में उपलब्ध ''श्लोकानामपि विज्ञेयं सहस्रं चतुरुत्तरम्'' के आधार पर तो मूल श्लोकों की संख्या 1004 प्रतीत होती है। शूलपाणि ने अपनी व्याख्या में 1010 श्लोक माने हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्यस्मृति के द्वितीय अध्याय का नाम 'व्यवहाराध्याय' है।

अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत- याज्ञवल्क्यस्मृति- उमेशचन्द्र पाण्डेय, पेज-6

26. अशोकस्य शहवाजगढीलेखः कस्यां लिप्यां प्राप्यते?

(A) ब्राह्मी **(B) खरोष्ठी**

(C) शारदा **(D) पुष्करी**

व्याख्या-

अशोक के अभिलेख और उनकी लिपि-

अशोक के अभिलेखों को सर्वप्रथम 1750 में टी. फैन्थेलर ने खोजा था। इन्होंने दिल्ली-मेरठ अभिलेख खोजा। अशोक के अभिलेखों को सर्वप्रथम 1837 में कलकत्ता टकसाल के अधिकारी एवं एशियाटिक सोसायटी के सचिव जेम्स प्रिंसेप ने पढ़ा था। इन्होंने दिल्ली-टोपरा अभिलेख को पढ़ा था। इस समय अलेक्जेण्डर कनिंघम इनके सहायक थे। अतः जेम्स प्रिंसेप ने ही पहली बार ब्राह्मी लिपि का सफलतापूर्वक उद्वाचन किया।

डी॰आर॰ भण्डारकर महोदय ने केवल अभिलेखों के ही आधार पर अशोक का इतिहास लिखने का प्रयास किया है।

चापड ही वह एक मात्र अभिलेख लेखक है, जिसका नाम अशोक के अभिलेखों में मिलता है।

लिपि- अशोक के शिलालेखों में कुल चार लिपियों ब्राह्मी, खरोष्ठी अरामाइक एवं यूनानी का प्रयोग हुआ है। अशोक के स्तम्भलेख एवं गुहालेख में केवल ब्राह्मी लिपि का प्रयोग हुआ है।

खरोष्ठी लिपि- शहवाजगढ़ी एवं मानसेहरा अभिलेख।

अरामाइक लिपि- लघमान एवं तक्षशिला अभिलेख।

द्वि-भाषिक लिपि- कन्दहार का अभिलेख। इसमें यूनानी एवं अरामाइक लिपियों का एक साथ प्रयोग हुआ है।

अशोक पहला भारतीय शासक था, जिसने अभिलेखों के सहारे सीधे अपनी प्रजा को सम्बोधित किया।

अशोक के अभिलेखों की भाषा 'प्राकृत' थी, क्योंकि यह आम जन की भाषा थी और अधिकतर लोगों के द्वारा बोली एवं समझी जाती थी।

अशोक ने 37 वर्ष तक शासन किया। उसने शिलालेखों में उसके शासनकाल के 8वें से लेकर 27वें वर्ष की घटनाएँ वर्णित हैं।

अशोक के अभिलेखों का विभाजन तीन प्रकार से हुआ है-

1- शिलालेख 2- स्तम्भलेख 3- गुहालेख

शिलालेख (I) दीर्घ शिलालेख, (II)लघु शिलालेख

दीर्घ शिलालेख- इनको चतुर्दश (14) शिलालेख भी कहते हैं, क्योंकि यह 14 लेखों का समुच्चय है, जो कि 8 स्थानों से प्राप्त हुए हैं।

बृहद् शिलालेख	स्थिति	खोजकर्ता	वर्ष
शहवाजगढ़ी	पाकिस्तान का पेशावर जिला	जनरल कोर्ट	1836
मनसेहरा	पाकिस्तान का हाजरा जिला	कनिंघम कैप्टन ले	1836
कालसी	उत्तराखण्ड का देहरादून जिला	फोरेस्ट	1860
गिरनार	गुजरात के जूनागढ़ में	कर्नल राड	1822
एर्रगुडि	आन्ध्रप्रदेश के कर्नूल जिला	अणुघोष	1929
धौली	ओडिशा का पुरी जिला	किटो	1837
जौगड़	ओडिशा का गंजाम जिला	वाल्टर इलियट	1837
सोपारा	महाराष्ट्र का थाने जिला	वाल्टर इलियट्	1850

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शहवाजगढ़ी के लेख 'खरोष्ठी लिपि' में है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- प्राचीन भारत - सौरभ चौबे, पेज 207

27. अधोऽङ्कितेषु योगदर्शनानुसारेण समुचितः क्रमोऽस्ति-

(A) अस्तेय-अपरिग्रह-सत्य-ब्रह्मचर्य-अहिंसाः

(B) अपरिग्रह-ब्रह्मचर्य-सत्य-अस्तेय-अहिंसाः

(C) अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रहाः

(D) सत्य-अहिंसा-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रहाः

व्याख्या- महर्षि पतञ्जलि मुनि प्रणीत पातञ्जलयोगदर्शन सूत्र में चार पाद हैं-

(i) समाधिपाद- 51 सूत्र
(ii) साधनपाद- 55 सूत्र
(iii) विभूतिपाद- 55 सूत्र
(iv) कैवल्यपाद- 34 सूत्र

= 51 सूत्र

पातञ्जलयोगदर्शन के द्वितीय पाद में पाँच यमों का वर्णन किया गया है- 'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः' (2/30)।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पाँच यम कहे जाते हैं।

1. अहिंसा- अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः (2/35) अहिंसा के प्रतिष्ठित हो जाने पर उस योगी के पास वैरभाव छूट जाता है।

2. सत्य- सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् (2/36) सत्य के प्रतिष्ठत हो जाने पर क्रियाओं और उनके फलों की आश्रयता आ जाती है।

3. अस्तेय- अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्। (2/37) अस्तेय के प्रतिष्ठित हो जाने पर सभी रत्नों की उपस्थित होती है।

4. ब्रह्मचर्य- ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः। (2/38) ब्रह्मचर्य के प्रतिष्ठित हो जाने पर सामर्थ्य लाभ होता है।

5. अपरिग्रह- अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः (2/39) अपरिग्रह के स्थिर होने पर जन्मों तथा उनके प्रकार का सम्यग्ज्ञान होता है।

* पातञ्जलयोगदर्शन के प्रथमपाद में पाँच वृत्तियों की चर्चा की गयी है- प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः।।1/6।।

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं।

⇒ **योग का लक्षण है-** 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' (1/2)

चित्त की वृत्तियों के निरोध को ही योग कहते हैं।

चित्त की पाँच भूमियों या अवस्थाओं का उल्लेख प्राप्त होता है- (1) क्षिप्त (2) मूढ़ (3) विक्षिप्त (4) एकाग्र (5) निरुद्ध

योगदर्शन का पहला सूत्र है- अथ योगानुशासनम्। (1/1) अथ इति अयम् शब्दः = अधिकारार्थः

प्रमाण नामक वृत्ति के भेद हैं- तीन (1) प्रत्यक्ष (2) अनुमान (3) आगम (शब्द) 'प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि' (1/7)

पञ्चक्लेश- अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः

(1) विद्या (2) अस्मिता (3) राग (4) द्वेष (5) अभिनिवेश।

⇒ **अष्टाङ्ग योग-** यमनियमाऽऽसन- प्राणायाम- प्रत्याहार धारणाध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि। (2/29) यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

⇒ **नियम-** शौच-सन्तोष-तपः-स्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि नियमाः। (2/32) शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान नियम कहे जाते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पाँच यम होते हैं- क्रमशः अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहः। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- योगदर्शन-(2/30)- गीताप्रेस, पेज-53

28. 'श्लोकवार्तिकम्' कस्य दर्शनस्य ग्रन्थोऽस्ति?

(A) मीमांसादर्शनस्य **(B) वेदान्तदर्शनस्य**

(C) न्यायदर्शनस्य **(D) सांख्यदर्शनस्य**

व्याख्या- मीमांसादर्शन

महर्षि जैमिनि को 'मीमांसासूत्र' का रचयिता कहा जाता है। मीमांसासूत्र (जैमिनिसूत्र) 12 अध्यायों में विभक्त है। अतः इसे 'द्वादशलक्षणी' भी कहा जाता है।

जैमिनिसूत्रों पर शबरस्वामीकृत विशद भाष्य है, जो 'शाबरभाष्य'

नाम से प्रसिद्ध है।

भाष्यकार के पश्चात् मीमांसादर्शन के व्याख्याकारों की दीर्घ परम्परा में सर्वाधिक अम्लानप्रतिभासम्पन्न कुमारिलभट्ट एवं प्रभाकरगुरु माने जाते हैं।

कुमारिल ने शाबरभाष्य पर अपनी वैदुष्यपूर्ण मौलिक व्याख्या की रचना कर एक प्रकार से भाष्यकार का महत्त्व बढ़ा दिया है। इनके तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं। तीनों ग्रन्थ शाबरभाष्य के भिन्न-भिन्न अंशों पर लिखी हुई व्याख्याएँ हैं- प्रथम ग्रन्थ का नाम 'श्लोकवार्तिक' है। इसमें शाबरभाष्य के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद की टीका है।

द्वितीय ग्रन्थ का नाम- 'तंत्रवार्तिक' है। शाबरभाष्य के प्रथम अध्याय के अवशिष्ट तीन पाद, द्वितीय अध्याय एवं तृतीय अध्याय की गद्यात्मक टीका इसमें की गयी है।

तृतीय ग्रन्थ का नाम- 'टुप्टीका' है। इसमें शेष नौ अध्यायों की संक्षिप्त टीका है।

मीमांसा पर आधारित अन्यग्रन्थ-

मध्वाचार्य की 'जैमिनीयन्यायमाला' है।

जयन्तभट्ट ने 'न्यायमंजरी' लिखी है।

मण्डनमिश्र ने विधिविवेक, भावनाविवेक, विभ्रमविवेक लिखे हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'श्लोकवार्तिक' मीमांसादर्शन से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- अर्थसंग्रह- राजेश्वरशास्त्री मुसलगाँवकर, पेज भू. 19

29. 'न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः' इति केनोक्तम्?

(A) विशाखदत्तेन **(B) दण्डिना**
(C) भासेन **(D) भारविणा**

व्याख्या- भारविकृत एकमात्र ग्रन्थ किरातार्जुनीयम् महाकाव्य, जो बृहत्त्रयी के अन्तर्गत परिगणित है, जिसमें 18 सर्ग हैं। प्रथम सर्ग में युधिष्ठिर द्वारा भेजा गया वनेचर दुर्योधन के राजकार्यों को जानकर द्वैतवन में आया है और युधिष्ठिर से कहता है–

क्रियासु युक्तैर्नृप! चारचक्षुषो न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः॥

(1/4) हे राजन्। किसी कार्य को करने के लिए नियुक्त किए गए सेवकों के द्वारा स्वामी (झूठी तथा प्रिय बातें बताकर) नहीं ठगे जाने चाहिये। इसलिए मैं अप्रिय अथवा प्रिय बाते करूँ, उन्हें आप क्षमा करेंगे, क्योंकि मधुर तथा परिणाम में कल्याण देने वाली वाणी दुर्लभ होती है।

अन्य प्रमुख सूक्तियाँ- * हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः (1/4) मधुर तथा परिणाम में कल्याण देने वाली वाणी दुर्लभ होती है।

न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः (1/2) कल्याण चाहने वाले लोग मिथ्याभूत मधुर वचन बोलने की इच्छा नहीं करते हैं।

वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः (1/8) महापुरुषों के साथ किया गया विरोधभाव भी दुष्टों के संसर्ग की अपेक्षा अच्छा है।

अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (1/23) बलवान् के साथ किया गया वैर विरोध अनर्थपर्यवसायी होता है।

⇒ **विशाखदत्त-** विशाखदत्तकृत मुद्राराक्षस सात अङ्कों का नाटक है।

⇒ **मुद्राराक्षस की प्रमुख सूक्तियाँ-**

न हि खलु सर्वं जानाति।

प्रथम अङ्क में गुप्तचर कहता है, ''सभी लोग सब कुछ नहीं जानते हैं।''

अत्यादरः शङ्कनीयः।

प्रथम अङ्क में चाणक्य के घर जाकर चन्दनदास मन में सोचता है, ''आज अत्यधिक आदर किया जाना शङ्कनीय है।

पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी (2/7)।

राक्षस कहता है, कासपुष्प के अग्रभाग के समान स्त्रियों की बुद्धि ही पुरुषों के शौर्यादि गुणों की जानकारी से पराङ्मुख होती है।

⇒ **दण्डी-** दण्डी कृत ग्रन्थ दशकुमारचरितम् है, जिसमें आठ उच्छ्वास हैं। इसके नायक राजवाहन और नायिका अवन्तिसुन्दरी है।

*** दशकुमारचरितम् की प्रमुख सूक्तियाँ-**

दुष्करसाधनं प्रज्ञा इति

मित्रगुप्त कहता है कि जो कार्य करना कठिन है, उसके करने का उपाय बुद्धि है।

गृहिणः प्रियहिताय दारगुणाः इति

मित्रगुप्त कहता है कि पत्नी के गुण गृहस्थ के प्रिय और हित के लिये होते हैं।

दैव्याः शक्तेः पुरो न बलवती मानवी शक्तिः।

विश्रुत कहता है कि ईश्वरीय ताकत के आगे आदमी की ताकत बली नहीं है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः' यह सूक्ति किरातार्जुनीयम् से उद्धृत है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- किरातार्जुनीयम् (1/4)- श्रीनिवास शर्मा, पेज 04

30. अधस्तनानां केन अभिलेखेन सह कस्य सम्बन्धः? समीचीनां तालिकां चिनुत-

तालिका-I	तालिका-II
(क) रुद्रदाम्नः	1. हाथीगुम्फा
(ख) खारवेलस्य	2. मन्दसौर
(ग) यशोधर्मणः	3. एहोलः
(घ) पुलकेशिनः	4. गिरनारः

	(क)	(ख)	(ग)	(घ)
(A)	4	1	2	3
(B)	1	2	3	4
(C)	4	3	2	1
(D)	3	1	4	2

व्याख्या⇒ खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख-
खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में सर्वप्रथम भारतवर्ष का विवरण मिलता है।
स्थान- हाथीगुम्फा भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि पहाड़ी, जिला-पुरी, उड़ीसा
लिपि- ब्राह्मी
काल- लगभग प्रथम शती ई॰पू॰ का उत्तरार्ध
विषय- चेदिवंशी राजा कलिंगाधिपति खारवेल के जीवन की घटनाओं का क्रमिक विवरण एवं उसकी राजनैतिक उपलब्धियों तथा लोकमंगल के कार्यों का उल्लेख।

⇒ पुलकेशिन् का एहोल शिलालेख-
पुलकेशिन् द्वितीय का एहोल अभिलेख- यह अभिलेख कर्नाटक के बीजापुर में है, जिसकी भाषा संस्कृत है। इसके लेखक रविकीर्ति हैं। रविकीर्ति ने इसमें अपनी तुलना कालिदास एवं भारवि से की है।

⇒ यशोधर्मन् का मन्दसौर अभिलेख- यशोधर्मन् सम्भवतः औलिकर वंश का था। मन्दसौर से इसके दो अभिलेख मिलते हैं। इसने सारे उत्तर भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के उपलक्ष्य में 532 ई॰ में विजय स्तम्भ स्थापित किया।
यशोधर्मन् की मन्दसौर प्रशस्ति का लेखक वासुल था। इसमें लिखा है कि जिस मिहिरकुल ने शिव के अतिरिक्त अन्य किसी के सामने सिर नहीं झुकाया, उससे यशोधर्मन् ने अपनी चरण वन्दना करायी। मन्दसौर प्रशस्ति में उसे 'जनेन्द्र' कहा गया है।

⇒ रुद्रदामन् का जूनागढ़ अभिलेख-
सौराष्ट्र में जूनागढ़ से एक मील पूरब स्थित गिरनार पर्वत के उस प्रस्तरखण्ड पर जिस पर गुप्तवंशीय नरेश स्कन्दगुप्त का अभिलेख है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि **विकल्प 'A' सही है।**
स्रोत- भारतीय पुरालेखों का अध्ययन- पेज 173

31. अधस्तनयुग्मानां समीचीनमेलनतालिकां चिनुत-

तालिका-I	तालिका-II
(क) भारविः	1. बुद्धचरितम्
(ख) कालिदासः	2. रघुवंशम्
(ग) अश्वघोषः	3. किरातार्जुनीयम्
(घ) शूद्रकः	4. मृच्छकटिकम्

	(क)	(ख)	(ग)	(घ)
(A)	3	2	1	4
(B)	2	1	4	3
(C)	1	2	3	4
(D)	4	3	2	1

व्याख्या महाकाव्यों की सूची-

ग्रन्थ	ग्रन्थकार	सर्ग
किरातार्जुनीयम्	भारवि	18सर्ग
बुद्धचरितम्	अश्वघोष	20सर्ग
रघुवंशम्	कालिदास	19सर्ग
कुमारसम्भवम्	कालिदास	17सर्ग
शिशुपालवधम्	माघ	20सर्ग
नैषधीयचरितम्	श्रीहर्ष	22सर्ग
हरविजयम्	रत्नाकर	50सर्ग
जानकीहरणम्	कुमारदास	20से 25सर्ग प्राप्त
भट्टिकाव्यम् (रावणवधम्)	भट्टि	22सर्ग
धर्मशर्माभ्युदयम्	हरिश्चन्द्र	21सर्ग
राघवपाण्डवीयम्	माधवभट्ट	13सर्ग

➢ नाटकों की सूची-

ग्रन्थ	ग्रन्थकार	अङ्क
मृच्छकटिकम्	शूद्रक	10
अभिज्ञानशाकुन्तलम्	कालिदास	07
उत्तररामचरितम्	भवभूति	07
मुद्राराक्षसम्	विशाखदत्त	07
प्रतिमानाटकम्	भास	07
अनर्घराघवम्	मुरारि	07
प्रसन्नराघवम्	जयदेव	07
स्वप्नवासवदत्तम्	भास	06
अभिषेकनाटकम्	भास	06
अविमारकम्	भास	06

वेणीसंहारम्	भट्टनारायण	06
कुन्दमाला	दिङ्नाग	06
मालविकाग्निमित्रम्	कालिदास	05
विक्रमोर्वशीयम् (त्रोटक)	कालिदास	05
रत्नावली (नाटिका)	हर्ष	04
कर्पूरमञ्जरी (सट्टक)	राजशेखर	04
चारुदत्तम्	भास	04
प्रियदर्शिका (नाटिका)	हर्ष	04
प्रतिज्ञायौगन्धरायण	भास	04

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि विकल्प A का जोड़ा सही है। **अतः विकल्प 'A'सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास- उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 243, 208, 229, 490

32. कौटिलीय-अर्थशास्त्रं कति अधिकरणेषु विभक्तमस्ति-
(A) अष्टदशाधिकरणेषु (B) द्वादशाधिकरणेषु
(C) दशाधिकरणेषु (D) पञ्चदशाधिकरणेषु

व्याख्या-

अधिकरण संख्या		**नाम**
1. प्रथम	–	विनयाधिकारिक (राजवृत्ति) निरूपण
2. द्वितीय	–	अध्यक्षों का निरूपण
3. तृतीय	–	धर्मस्थीयम् (न्याय का निरूपण)
4. चतुर्थ	–	कण्टकशोधन
5. पञ्चम	–	योगवृत्तम्
6. षष्ठ	–	मण्डलयोनि (प्रकृतियों का निरूपण)
7. सप्तम	–	षाड्गुण्य (छः गुणों का) निरूपण
8. अष्टम	–	व्यसनाधिकारिकम्(व्यसनों का निरूपण)
9. नवम	–	अभियास्यत्कर्म (आक्रमण का निरूपण)
10. दशम	–	साङ्ग्रामिक (संग्राम का निरूपण)
11. एकादश	–	संघवृत्तम् (संघवृत्त निरूपण)
12. द्वादश	–	आबलीयसं निरूपण
13. त्रयोदश	–	दुर्गलम्भोपायः (दुर्गप्राप्ति निरूपण)
14. चतुर्दश	–	औपनिषदं (औपनिषदिक निरूपण)
15. पञ्चदश	–	तन्त्रयुक्ति का निरूपण

⇒ **गुप्तचरों की नियुक्ति-**
धर्मोपधा आदि उपायों के द्वारा अमात्यवर्ग की परीक्षा कर लेने के अनन्तर राजा गुप्तचरों की नियुक्ति करे।
1. कापटिक 2. उदास्थित 3. गृहपतिक 4. वैदेहक 5. तापस 6. सत्री 7. तीक्ष्ण 8. रसद और 9. भिक्षुक आदि अनेक प्रकार के गुप्तचर होते हैं।

दूत तीन प्रकार के होते हैं-
1- निसृष्टार्थ 2- परिमितार्थ 3- शासनहर
अमात्यसम्पदोपेतो निसृष्टार्थः, पादगुणहीनः परिमितार्थः, अर्धगुणहीनः शासनहरः।

⇒ **दुर्ग-** चतुर्दिशं जनपदान्ते साम्परायिकं दैवकृतं दुर्गं कारयेत् अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमौदकं, प्रास्तरं गुहां वा पार्वतं, निरुदकस्तम्बमिरिणं वा धान्वनं, खञ्जनोदकं स्तम्भगहनं वा वनदुर्गम्।
दुर्ग चार प्रकार के हैं-
1- औदक 2- पार्वत 3- धान्वन और 4- वन दुर्ग।
'प्रतिबन्धः प्रयोगो व्यवहारोऽवस्तारः परिहापणमुपभोगः परिवर्तनमपहारश्चेति कोषक्षयः।'

कोषक्षय के आठ कारण- 1- प्रतिबन्ध 2- प्रयोग 3- व्यवहार 4-अवस्तर 5- परिहायण 6- उपभोग 7- परिवर्तन 8- अपहार

⇒ **लेखक की छः योग्यताएँ-** 1- अर्थक्रम 2- सम्बन्ध 3- परिपूर्णता 4- माधुर्य 5- औदार्य 6- स्पष्टता
अर्थक्रमः सम्बन्धः, परिपूर्णता, माधुर्यमौदार्यं स्पष्टत्वम्, इति लेखसम्पत्।

उपाय- उपायाः सामोपप्रदानभेददण्डाः।
उपाय चार हैं- 1. साम, 2. दान, 3. दण्ड, 4. भेद

⇒ **कौटिल्य के अनुसार आठ प्रकार के विवाह होते हैं-**

1. विवाहपूर्वो व्यवहारः	धर्म विवाह
2. कन्यादानं कन्यामलङ्कृत्य	ब्राह्म विवाह
3. सहधर्मचर्या प्राजापत्यः	प्राजापत्य विवाह
4. गोमिथुनादानादार्षः	आर्ष विवाह
5. अन्तर्वेद्यामृत्विजे दानाद् दैवः	दैव विवाह
6. मिथस्समवायाद् गान्धर्वः	गान्धर्व विवाह
7. शुल्कादानादासुरः	आसुर विवाह

८. प्रसह्यादानाद् राक्षसः राक्षस विवाह

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र पन्द्रह अधिकरणों में विभक्त है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- कौटिलीय अर्थशास्त्र-वाचस्पति गैरोला, पेज 02-07

33. वेदान्तदर्शनानुसारं जगतः प्रपञ्चः किं कथ्यते?
(A) ईश्वरस्य स्वरूपम् **(B) अनन्तसत्ता**
(C) अनादितत्त्वम् **(D) विवर्तः**

व्याख्या ⇒ जगत् प्रपञ्च–

शांकर वेदान्त में ब्रह्म को छोड़कर और सभी पदार्थ 'असत्' हैं। इन पदार्थों का आरोप ब्रह्म पर होता है। ब्रह्म आरोप का 'अधिष्ठान' है। माया की विक्षेप-शक्ति के कारण जो सृष्टि होती है, वह मायिक है या भ्रान्ति है; यह आरोप तत्त्वज्ञान के द्वारा बाधित हो जाता है। ब्रह्म को अधिष्ठान मानकर जितने कार्य जगत् में होते हैं, वे ही नहीं, अपितु समस्त जगत् ही ब्रह्म का विवर्त है।

⇒ **विवर्त का अर्थ-** तत्त्व में अतत्त्वों के भान को ही विवर्त कहते हैं- **'अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा 'विवर्त' इत्युदाहृतः।'**

अर्थात् जब किसी वस्तु में अन्य वस्तु की मिथ्याप्रतीति होती है, तो इस प्रक्रिया को हम विवर्त कहते हैं। जैसे- रस्सी में सर्प की प्रतीति होना, सीपी में चाँदी की भ्रान्ति होना विवर्त है। क्योंकि इन दोनों स्थानों पर रस्सी एवं सीपी अपने स्वरूप का परित्याग किए बिना ही अन्यरूप को ग्रहण कर लेती है। यद्यपि यह रूप भ्रान्ति ही है, फिर भी इसको क्षणिक ही सही, अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता।

⇒ **परिणाम या विकार का अर्थ-** परिणाम में एक तत्त्व से यथार्थरूप में दूसरा तत्त्व अभिव्यक्त होता है-

'सतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा 'विकार' इत्युदीरितः।'

अर्थात् जब वस्तु अपने स्वरूप का परित्याग करके किसी अन्य रूप को ग्रहण कर लेती है, तो उसे विकार के अन्तर्गत मानना होगा जैसे- दूध का दही के रूप में परिवर्तित होना विकार है; क्योंकि दही बनने के बाद उसे पुनः दूध रूप में बनाना असम्भव है। अपने रूप का त्याग करके ही दूध दही बनाता है। इस प्रक्रिया को परिणाम भी कहा जाता है।

अतः स्पष्ट है कि चराचररूप सम्पूर्ण जगत् प्रपञ्च शुद्ध चैतन्यस्वरूप परब्रह्म का विवर्त है, परिणाम नहीं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जगत् का प्रपञ्च 'विवर्त' है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार- सन्तनारायण श्रीवास्तव्य,पेज-115

34. अधोलिखितेषु का वैदिकभाषायाः विशेषता नास्ति?
(A) सानुनासिकस्वराणां प्रयोगः
(B) लेट्लकारस्य प्रयोगः
(C) तुमुन्नर्थे तवैप्रत्ययस्य प्रयोगः
(D) क्त्वार्थे तवेङ्प्रत्ययस्य प्रयोगः

व्याख्या- वैदिक भाषा की प्रमुख विशेषताएँ-

वैदिक भाषा की पदरचना श्लिष्ट– योगात्मक थी। पदरचना में विविधता और अनेकरूपता थी। यह विविधता लौकिक संस्कृत में अत्यन्त कम हो गई।

जैसे- देवौ, देवा, देवाः, देवासः (वैदिक साहित्य में) देवैः, देवेभिः लौकिक संस्कृत में एक-एक रूप रह गये।

* धातुरूपों में लेट् लकार का प्रयोग होता था। संस्कृत में नहीं रहा।

कृत् प्रत्ययों में तुमुन् के अर्थ में से, असे, अध्यै आदि 15 प्रत्यय थे। संस्कृत में तुमुन् ही शेष रहा है।

* वेद में संगीतात्मक स्वर (Accent) की मुख्यता थी। संस्कृत में बलाघातात्मक स्वर हो गया।

* दो स्वरों के मध्य में ड > ळ और ढ > ळ्ह हो जाता था। ईळे > इले, मीळ्हुषे > मीळ्हुषे।

संस्कृत में ये दोनों ध्वनियाँ नहीं हैं, हिन्दी में ळ, ळ्ह के विकसित रूप ड,ढ़ हैं।

* वैदिक संस्कृत में मध्य स्वरागम या स्वरभक्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जैसे- पृथ्वी > पृथिवी, स्वर्ण > सुवर्ण, स्वर् > सुवर् दर्शत > दरशत।

* वैदिक संस्कृत में अनुस्वार के स्थान पर ह्रस्व और दीर्घ ग्वुं - ग्वूं मिलते हैं। ये नासिक्य के साथ कण्ठ्य भी हैं। अल्प प्रयुक्त होने से इनकी गणना पृथक् नहीं की जाती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सानुनासिक स्वरों का प्रयोग, लेट्लकार का प्रयोग, तुमुन् के अर्थ में तवै प्रत्यय का प्रयोग वैदिक संस्कृत में प्रयोग होता है। 'क्त्वार्थे तवेङ्' -इसका प्रयोग नहीं होता है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वैदिकसूक्त संग्रह- विजयशङ्कर पाण्डेय, पेज 14, 21, 04

35. निम्नलिखितेषु दर्शनेषु किं दर्शनं परमात्मनः सृष्टि-कर्तृत्वं न मन्यते?
(A) आर्हतदर्शनम् **(B) न्यायदर्शनम्**
(C) वेदान्तदर्शनम् **(D) योगदर्शनम्**

व्याख्या- भारतवर्ष में मुख्यरूप से नौ दर्शनों की प्रसिद्धि है- छह आस्तिक और तीन नास्तिक। वेद को प्रमाण मानने वाले

दर्शनों को आस्तिक और वेद को प्रमाण न मानने वाले दर्शनों को नास्तिक दर्शन कहा गया है।

आस्तिक दर्शन	नास्तिक दर्शन
1. पूर्वमीमांसा	1. चार्वाक
2. उत्तरमीमांसा	2. बौद्ध
3. साङ्ख्य	3. जैन
4. योग	
5. न्याय	
6. वैशेषिक	

ईश्वर को जगत् का कर्ता मानने के विषय में विभिन्न दर्शनों के विचार/मत निम्नलिखित हैं-

1. आर्हत अथवा जैन दर्शन- जैन दर्शन ईश्वर की सत्ता नहीं मानता। यह ईश्वर के अस्तित्व और जगत्कर्तृत्व का तर्क से खण्डन करता है। इनका कहना है कि कर्म की स्वतन्त्रता ईश्वर की अध्यक्षता के अभाव में भी तत्तत् फल देने में स्वयं कारण मानी जा सकती है, अतः ईश्वर की सत्ता मानना अयुक्त है।

2. न्याय दर्शन- उत्तरकालीन वैशेषिकों और नैयायिकों ने ईश्वर की सत्ता मुक्तकण्ठ से स्वीकार की है एवं उनकी सिद्धि के लिए तर्क भी दिए हैं। वे ईश्वर को जगत् का कर्ता, धर्ता, हर्ता और नियन्ता बताते हैं। ईश्वर सर्वज्ञ हैं, नित्यज्ञानाधिकरण हैं, उनमें ऐश्वर्यादि गुण हैं। सृष्टि और प्रलय उनकी इच्छा से होते हैं।

3. योग दर्शन- योग प्रतिपादित ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक, आशय से सर्वथा अस्पृष्ट पुरुष विशेष है- ''क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।।'' (योगसूत्र 1.24) ईश्वर नित्यमुक्त है। मुक्त पुरुष पूर्वकाल में बद्ध था। प्रकृतिलीन पुरुष की भविष्य में बन्ध की सम्भावना बनी रहती है, किन्तु ईश्वर सदैव मुक्त और ऐश्वर्यवान् है। अतः योग ईश्वर को भी पृथक् रूप स्वीकार करता है।

4. वेदान्तदर्शन- उपनिषदों को प्रमाण मानने वाले वेदान्त दर्शन में ईश्वर को ही जगत् का निमित्तोपादान कारण स्वीकार किया गया है। इसी से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है- ''जन्माद्यस्य यतः।'' (ब्रह्मसूत्र 1.1.2)

5. वैशेषिक दर्शन- कणाद सूत्रों में ईश्वर का स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है, तथापि प्रशस्तपाद से लेकर बाद के सभी वैशेषिकों ने ईश्वर की सत्ता स्पष्ट रूप से स्वीकार की है और कुछ ने ईश्वर सिद्धि के लिए प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं। ईश्वर इस जगत् के निमित्तकारण और परमाणु-उपादान कारण हैं। ईश्वर का कार्य सर्ग के समय अदृष्ट से गति लेकर परमाणुओं में आद्यस्पन्दन के रूप में सञ्चरित कर देना और प्रलय के समय इस गति का अवरोध करके वापस अदृष्ट में सङ्क्रमित कर देना है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आर्हत दर्शन ईश्वर अर्थात् परमात्मा के द्वारा जगत् का कर्तृत्व स्वीकार नहीं करता। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- सर्वदर्शनसंग्रह- उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पृष्ठ 115

36. कर्मकाण्डस्य प्रधानता कस्मिन् दर्शने प्रतिपाद्यते?
(A) न्यायदर्शने **(B) चार्वाकदर्शने**
(C) मीमांसादर्शने **(D) योगदर्शने**

व्याख्या- मीमांसा शब्द की व्युत्पत्ति मान् धातु से जिज्ञासा अर्थ में सन् प्रत्यय करके की जाती है। अतः व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ से जिज्ञासा ही मीमांसा शब्द का वाचक होगा।

मीमांसा दर्शन के सूत्रकार महर्षि जैमिनि ने प्रतिज्ञासूत्र 'अथातो धर्मजिज्ञासा' में जिज्ञासा पद का प्रयोग किया है।

उपनिषद् वाङ्मय में मीमांसा का अर्थ उच्च दार्शनिक विषयों पर विचार विमर्श करने से है।

वस्तुतः इस शास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय कर्मकाण्ड के स्वरूप का निरूपण करना है।

कर्मकाण्ड सम्बन्धी विशद प्रतिपादन ब्राह्मणवाङ्मय में मिलता है। इस प्रकार मीमांसाशास्त्र का आदिस्वरूप कर्मकाण्ड के अनुष्ठानों तथा विधि-निषेध और मन्त्रों के विनियोग से सम्बन्धित विषयों को प्रामाणिक रूप में उपस्थापित कराने वाला रहा होगा।

चार्वाक दर्शन- बृहस्पति के मत को मानने वाले, नास्तिकों के शिरोमणि (प्रधान) चार्वाक का दर्शन है।

➢ चार्वाक का जड़वाद या भौतिकवाद अवैदिक दर्शनों में सर्वाधिक प्राचीन है।

➢ 'बृहस्पति' को चार्वाक दर्शन का प्रथम आचार्य माना जाता है।

➢ यह शब्द चर्व् धातु से बना है, क्योंकि चार्वाक का मत ऊपर से सुन्दर और मीठा प्रतीत होता है।

➢ इस मत का नाम 'लोकायत' भी है, जिसका अर्थ है कि यह मत साधारण निम्नकोटि के मन्दबुद्धि लोगों के लिए है।

➢ चार्वाक मत में प्रत्यक्ष एकमात्र प्रमाण है, अनुमान, शब्द आदि को प्रमाण मानना निराधार है।

➢ चार्वाक के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार महाभूत ही तत्त्व हैं।

➢ चार्वाक का सिद्धान्त (लक्ष्य) है- **यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः?** खाओ, पीओ और मौज करो, यही जीवन का लक्ष्य है। जब तक जीये, सुख से जीये, द्रव्य न हो तो ऋण लेकर घृत पीये, क्योंकि

देह के भस्म हो जाने के बाद फिर उसका आना असम्भव है।

न्यायदर्शन- न्याय तथा वैशेषिक दर्शन परस्पर सम्बद्ध हैं तथा समानतन्त्र कहे जाते हैं।

वैशेषिक में तत्त्वमीमांसा प्रधान है, न्याय में तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा का प्राधान्य है।

वैशेषिक में सप्तपदार्थ तथा परमाणुवाद के विवरण द्वारा तत्त्व निरूपण किया गया है।

न्याय में प्रमा तथा प्रमाण की मीमांसा द्वारा तत्त्व विषयक सम्यक् ज्ञान का निरूपण किया गया है।

न्याय का प्रथम पदार्थ प्रमाण है तथा द्वितीय प्रमेय है।

वैशेषिक केवल दो प्रमाण मानता है- प्रत्यक्ष और अनुमान

न्याय ने प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और उपमान इन चारों को प्रमाण माना है।

योगदर्शन- महर्षि पतञ्जलि योगसूत्र के रचयिता हैं।

भारतीयदर्शन में योग का अत्यधिक महत्त्व है।

योग के कई प्रकार हैं- गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग तथा ध्यानयोग का वर्णन है।

➢ योग शब्द 'युज्' धातु से बनता है, जिसका अर्थ है- समाधि। पतञ्जलि ने योग को 'चित्तवृत्तिनिरोध' बताया है। योग ने ईश्वर की सत्ता स्वीकार की है, अतः इसे 'सेश्वर सांख्य' भी कहा जाता है।

➢ योग शब्द का प्रचलित अर्थ मिलन है, अर्थात् जीवात्मा का परमात्मा से मिलन।

* पातञ्जल योग-सूत्र में चार पाद हैं- प्रथम समाधि पाद है, जिसमें समाधि के रूप एवं भेदों का और चित्त तथा उसकी वृत्तियों का वर्णन है।

* द्वितीय साधनापाद में क्रियायोग, क्लेश, क्लेश दूर करने के साधन योग के बहिरङ्गों आदि का वर्णन है।

* तृतीय विभूतिपाद में योग के अन्तरङ्गों का एवं योगशक्ति से उत्पन्न विभूतियों का वर्णन है।

* अन्तिम चतुर्थ कैवल्यपाद में समाधिसिद्धि तथा कैवल्य आदि का निरूपण है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मीमांसा दर्शन में कर्मकाण्ड का विषय प्रतिपादित है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- अर्थसंग्रह- राजेश्वरशास्त्री मुसलगाँवकर, पेज भू. 08

37. अधोलिखितेषु अर्थविस्तारस्योदाहरणं नास्ति-

(A) गवेषणा **(B) तैलम्**

(C) प्रवीणः **(D) श्राद्धः**

व्याख्या- अर्थविकास या अर्थपरिवर्तन की दिशाएँ- संसार की सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। भाषा भी परिवर्तनशील है। जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार प्रत्येक भाषा के शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होता रहता है। यह **अर्थपरिवर्तन तीन प्रकार का होता है-**

1. कहीं पर अर्थ का विस्तार होता है।
2. कहीं पर अर्थ का संकोच होता है।
3. कहीं पर पुराने अर्थ के स्थान पर नया अर्थ आ जाता है।

(i) अर्थविस्तार (ii) अर्थसंकोच

(iii) अर्थादेश (iv) अर्थोत्कर्ष

(vi) अर्थापकर्ष

⇒ **अर्थविस्तार-**

कुछ शब्द मूलरूप में किसी विशेष या संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होते थे।

कुशल- कुशल शब्द का अर्थ था- कुशान् लाति (कुशों को लाना या लेना) कुश का अग्रभाग तीक्ष्ण होता है, जिससे हाथ में कटने का भय रहता था, अतः कुश लाना चतुरता का सूचक था। यह शब्द धीरे-धीरे कुश लाना अर्थ को छोड़कर चतुरता, निपुणता अर्थ देने लगा।

अन्य उदाहरण- प्रवीण, तैल, गवेषणा, महाराज, गोशाला आदि।

⇒ **अर्थसंकोच-** अर्थविस्तार के विपरीत कुछ शब्दों के अर्थों में संकोच हुआ है। यास्क ने निरुक्त में वस्तुओं के नामकरण पर विचार करते हुए- गो, अश्व, पृथ्वी आदि का उदाहरण देकर बताया है कि इनका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ बहुत विस्तृत है, परन्तु ये किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो गए हैं। 'गच्छतीति गौः' चलने वाले को गो (गाय) कहते हैं। वारिज, अम्बुज, सरसिज, सरोज, पंकज, नीरज- इनका शाब्दिक अर्थ है- जल, तालाब या कीचड़ में होने वाला, परन्तु ये शब्द कमल अर्थ में रूढ़ हो गए हैं।

अन्य उदाहरण- जलद, तोयद, अम्बुद, वारिवाह (बादल), वारिधि, नीरधि, अम्बुधि, तोयधि (समुद्र), सर्प, पर्वत, मृग, सभ्य, श्राद्ध, वेदना, घृणा, समास, उपसर्ग, प्रत्यय, विशेषण, नामकरण आदि।

⇒ **अर्थादेश-** अर्थादेश का अर्थ है- एक अर्थ के स्थान पर दूसरे अर्थ का आ जाना। आदेश का अर्थ है- एक को हटाकर दूसरे को आना। अर्थादेश में शब्द का प्राचीन अर्थ लुप्त हो जाता है और नया अर्थ आ जाता है।

असुर- मूल अर्थ 'असु+र' प्राणशक्तिसम्पन्न 'देवता' था। बाद में सुर (देवता) का उल्टा अ+सुर राक्षस अर्थ हो गया।

वर- मूल अर्थ श्रेष्ठ था और अब केवल दूल्हा अर्थ रह गया है।
सह- वेद में सह् धातु का अर्थ जीतना था। अब सहन करना अर्थ रह गया है।
मौन- मूल अर्थ मुनि कर्म या मुनियों का आचरण था। अब चुप रहना अर्थ रह गया।
अन्य उदाहरण- देवानां प्रियः, बौद्ध बुद्धू, पाषण्ड, आकाशवाणी, साहस, खाद्य-खाद, भद्र-भद्दा, मुग्ध, वाटिका-बाड़ी, कर्पट-कपड़ा आदि।

⇒ **अर्थोत्कर्ष-** अर्थ की दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि अर्थ विकास की जो तीन दिशाएँ बताई गई हैं- उनमें कुछ में शब्दों में अर्थपरिवर्तन से अर्थ में उत्कर्ष आया है और कुछ में अर्थ में अपकर्ष (निकृष्टता)।
उदाहरण- मुग्ध, साहस-साहसी, गोष्ठ-गोष्ठी, सभ्य।

⇒ **अर्थापकर्ष-** इसी प्रकार अर्थपरिवर्तन से कुछ शब्दों के अर्थों में अपकर्ष (हीनता, निकृष्टता) आया है। असुर- ऋग्वेद में देव वाचक था, संस्कृत में राक्षस हो गया।
जुगुप्सा- पालन करना, छिपाना अर्थ था, अब घृणा अर्थ रह गया।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अर्थविस्तार का उदाहरण गवेषणा, तैलम्, प्रवीण है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**
स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 336-338

38. कुन्तकानुसारम् अधस्तनेषु सुकुमारमार्गस्य प्रथमो गुणः वर्तते?
(A) माधुर्यम् **(B) सौन्दर्यम्**
(C) स्वाभाविकम् **(D) लावण्यम्**

व्याख्या- आचार्य राजानक कुन्तक की एकमात्र प्रकृतशास्त्रीय कृति 'वक्रोक्तिजीवितम्' है। आचार्य कुन्तक के प्रकृत ग्रन्थ में कुल चार उन्मेष हैं। जिनमें चतुर्थ उन्मेष अपूर्ण ही रह गया है।
कवि ग्रन्थ की निर्विघ्न परिसमाप्ति हेतु शक्ति के परिस्पन्द मात्र उपकरण वाले, त्रिभुवन में विचित्र कर्म करने वाले परमतत्त्व शिव की वन्दना करता है, तदनन्तर कवीन्द्र वक्त्रेन्दु-लास्यमन्दिर-नर्तकी, सुभाषित विलास रूप अभिनवोज्ज्वला वाग्देवी को प्रणाम कर लोकोत्तरचमत्कारकारि वैचित्र्यसिद्धि के लिए इस काव्यविषयक अलङ्कारग्रन्थ की रचना की घोषणा करता है।

➢ अलङ्कार के ग्रन्थ एवं अलङ्कार्य काव्य के लक्षणों और प्रयोजनों का वर्णन कर काव्य के प्राणभूत शब्द तथा अर्थ की तर्क-युक्त विवेचना की जाती है।
इस प्रकार काव्य तथा साहित्य के अभिनव लक्षण नियत करने के पश्चात् आचार्य कुन्तक कवियों के व्यापार (काव्य) की वक्रता का व्याख्यान करते हैं। सर्वप्रथम वक्रता के छह भेद आचार्य ने माने हैं-
1. वर्णविन्यासवक्रता 2. पदपूर्वार्द्धवक्रता 3. प्रत्ययाश्रितवक्रता 4. वाक्यवक्रता 5. प्रकरणवक्रता 6. प्रबन्धवक्रता।
इस प्रकार काव्य के सामान्य लक्षण को बताकर उसके विशेष लक्षण का विषय बताने के लिए मार्ग-भेद के कारण होने वाले त्रैविध्य का कथन करते हैं-

सम्प्रति तत्र ये मार्गाः कविप्रस्थानहेतवः।
सुकुमारो विचित्रश्च मध्यमश्चोभयात्मकः॥ (1/24)

उस (काव्य) में कवि की प्रवृत्ति के कारणभूत जो सुकुमार-विचित्र और उभयात्मक मध्यम मार्ग सम्भव हैं, उन्हें बताते हैं।

सुकुमार मार्ग का लक्षण-

असमस्तमनोहारिपदविन्यासजीवितम्।
माधुर्यं सुकुमारस्य मार्गस्य प्रथमो गुणः॥ (1/30)

इस प्रकार 'सुकुमार' नामक मार्ग का लक्षण बताकर उसी सुकुमार मार्ग के गुणों को लक्षित करते हैं-
समास (की प्रचुरता से) हीन हृदयहारी पदों के विन्यासरूप प्राण वाला 'माधुर्य' नामक गुण सुकुमार मार्ग का पहला गुण है।

अक्लेशव्यञ्जिताकूतं झगित्यर्थसमर्पणम्।
रसवक्रोक्तिविषयं यत्प्रसादः स कथ्यते॥ (1/31)

इस प्रकार माधुर्य नामक सुकुमार मार्ग के प्रथम एवं प्रधान गुण का कथन कर प्रसाद नामक दूसरे गुण को बताते हैं-
शृङ्गारादि रस एवं (सर्वालङ्कारसामान्य) वक्रोक्तिविषयक अभिप्राय को अनायास ही प्रकट कर देने वाला एवं अर्थ की तुरन्त प्रतीति कराने वाला जो गुण है, वह प्रसाद गुण होता है, ऐसा कहा जाता है।

वर्णविन्यासविच्छित्तिपदसंधानसंपदा।
स्वल्पया बन्धसौन्दर्यं लावण्यमभिधीयते॥ (1/32)

इस प्रकार सुकुमार मार्ग के द्वितीय गुण प्रसाद का कथन कर तृतीय गुण लावण्य को लक्षित करते हैं-
अक्षरों की विचित्र संघटना की शोभा से लक्षित पदों की योजना की अत्यल्प सम्पत्ति से उत्पन्न शोभा द्वारा निष्पन्न वाक्य-रचना का सौन्दर्य 'लावण्य' नामक गुण कहा जाता है।

श्रुतिपेशलताशालि सुस्पर्शमिव चेतसा।
स्वभावमसृणच्छायमाभिजात्यं प्रचक्षते॥ (1/33)

इस प्रकार सुकुमार मार्ग के माधुर्य, प्रसाद तथा लावण्य तीन गुणों का प्रतिपादन कर अब चौथे गुण आभिजात्य का कथन करते हैं-
सुनने में रमणीयता से सम्पन्न एवं हृदय के साथ सुन्दर स्पर्श के समान स्वभावतः स्निग्ध कान्ति से युक्त वस्तु आभिजात्य नामक

गुण कही जाती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कुन्तक के अनुसार सुकुमारमार्ग का प्रथम गुण माधुर्य गुण है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- वक्रोक्तिकाव्यजीवितम् (1/30) राधेश्याम मिश्र, पेज 113

39. पञ्चमहायज्ञेषु किं न गण्यते?

(A) देवयज्ञः **(B) पितृयज्ञः**

(C) ब्रह्मयज्ञः **(D) विष्णुयज्ञः**

व्याख्या- मनु प्रणीत मनुस्मृति में द्वादश अध्याय हैं। स्मृति धर्मशास्त्र है- 'धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः' (2/10)

वेद के वाक्यों ने जिसके करने की आज्ञा दी है, उसी का नाम 'धर्म' है- **'चोदनालक्षणोऽर्थोः धर्मः'**।

वेद का धर्म मूल है- **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**

मनुस्मृति के अनुसार धर्म के उपादान प्रमाण पाँच हैं **-**

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।

आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥ (2.6)

सम्पूर्ण वेद, वेद-शास्त्र जानने वालों के रचे हुए धर्म-शास्त्र-स्मृतियाँ, वेदवेत्ताओं के मन की स्वाभाविक प्रवृत्तिशीलता, वेदवेत्ता साधुओं-शिष्टजनों के मन का सन्तोष, ये सब धर्म के प्रमाण हैं।

⇒ **धर्म का लक्षण-**

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्॥ (2/12)

श्रुति-वेद, स्मृति-धर्मशास्त्र, सदाचार, भद्रपुरुषों का आचार-व्यवहार, जो अपने को प्रिय लगे तथा उचित संकल्प से उत्पन्न अभिकांक्षा या इच्छा ये चार धर्म के मूल कहे गये हैं।

⇒ **पञ्चमहायज्ञ-**

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।

होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ (3/70)

पितरों का तर्पण करना, वेद का पठन-पाठन, ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, होम करना, जीवों को अन्न की बलि देना और नृयज्ञ एवं अतिथि का आदर सत्कार करना, ये ही पञ्चमहायज्ञ हैं।

⇒ **पञ्चयज्ञ-अहुतं च हुतं चैव तथा प्रहुतमेव च।**

ब्राह्मं हुतं प्राशितं च पञ्चयज्ञान्प्रचक्षते॥ (3/73)

अहुत, हुत, प्रहुत, ब्राह्महुत और प्राशित ये पञ्चयज्ञ कहलाते हैं।

⁎ **संस्कारों की संख्या-**

➢ गौतम के अनुसार चालीस संस्कारों और आत्मा के आठ-शील-गुणों का वर्णन किया है।

➢ वैखानस ने अठारह संस्कारों के नाम गिनाये हैं।

➢ अङ्गिरा ने पञ्चीस संस्कार गिनाये हैं।

➢ व्यास ने सोलह संस्कार गिनाये हैं।

⁎ **सोलह संस्कार-** गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह और अन्त्येष्टि।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पञ्चमहायज्ञों में 'विष्णुयज्ञ' परिगणित नहीं है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- श्रौतयज्ञ परिचय- वेणीराम शर्मा गौड़, पेज 4

40. 'उद्भिदा यजेत पशुकामः' इत्यत्र उद्भिद् शब्दो यागस्य नामधेयो भवति-

(A) मत्वर्थलक्षणाभयात् **(B) वाक्यभेदभयात्**

(C) तत्प्रख्यशास्त्रात् **(D) तद्व्यपदेशात्**

व्याख्या-मीमांसा शब्द की व्युत्पत्ति मान् धातु से जिज्ञासा के अर्थ में सन् प्रत्यय करके की जाती है। यह पूजित विचार या पूजित जिज्ञासा के अर्थ में भी प्रसिद्ध है।

* लौगाक्षिभास्कर कृत 'अर्थसंग्रह' है। महर्षि जैमिनि कृत 'मीमांसादर्शन' है; इसका प्रकरणग्रन्थ 'अर्थसंग्रह' है।
* जैमिनि सूत्र 12 अध्यायों में विभक्त है। अतः इसे द्वादशलक्षणी भी कहा जाता है।
* लौगाक्षि इनके वंश (कुल) का नाम था और भास्कर स्वयं का नाम था।
* कीथ के अनुसार इनके पिता का नाम मुद्गल एवं पितामह का नाम रुद्र था।
* अर्थसंग्रह के मङ्गलाचरण में और तर्ककौमुदी के प्रारम्भिक तथा अन्तिम के दो श्लोकों में वासुदेव और रमा इन दो नामों का उल्लेख किया है।

तत्र 'उद्भिदा यजेत पशुकामः'-

चार कारणों में प्रथम 'उद्भिदा यजेत पशुकामः' है। यहाँ मत्वर्थलक्षणा के भय से 'उद्भिद्' शब्द को याग का नामधेय माना जाता है। क्योंकि 'उद्भिदा यजेत' इस वाक्य से फल (पशु) को उद्देश्य करके याग का विधान एवं याग को उद्देश्य करके गुण का विधान नहीं माना जा सकता और मानने पर 'वाक्यभेद' उपस्थित होगा। यदि उद्भिद् शब्द को गुणपरक मानकर प्रमाणान्तर से अप्राप्त याग का विधान करते हैं तो प्रकृत स्थल में 'गुणविशिष्ट कर्मविधि' मानना होगा। ऐसी स्थिति में 'उद्भिदा यजेत पशुकामः' का वाक्यबोध 'उद्भिद्वता यागेन पशुं भावयेत्' होगा और विशिष्ट विधि में मत्वर्थलक्षणा होती ही है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'उद्भिदा यजेत

पशुकामः' यहाँ उद्भिद् शब्द के याग का नामधेय 'मत्वर्थलक्षणाभयात् है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- अर्थसंग्रह- राजेश्वर शास्त्री मुसलगाँवकर, पेज 280

41. अधोलिखितेषु उपन्यासकारं चिनुत-
(A) बाणभट्टः (B) बिल्हणः
(C) दण्डी (D) अम्बिकादत्तव्यासः

व्याख्या⟹ बाणभट्ट- बाणभट्ट संस्कृत गद्य-काव्य के मूर्धाभिषिक्त सम्राट् हैं। बाण ने गद्य में पद्यों से अधिक चमत्कार प्रदर्शन किया है। बाण की रीति पाञ्चाली है। पाञ्चाली की विशेषता है कि उसमें शब्द और अर्थ का समन्वय और सन्तुलन रहता है। 'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।' कादम्बरी बाण की प्रौढ़ और अन्तिम कृति है। इसमें एक काल्पनिक कथा वर्णित है। यह गद्यकाव्य का 'कथा' भेद है।

रचनाएँ- मुख्यरूप से दो ग्रन्थ- हर्षचरित और कादम्बरी

इनके तीन ग्रन्थ और माने जाते हैं- चण्डीशतक, मुकुटताडितक, पार्वतीपरिणय।

हर्षचरित- यह महाकवि बाण की प्रथम रचना है। ऐतिहासिक वृत्त पर आश्रित होने से यह गद्यकाव्य का भेद आख्यायिका है। इसमें 8 उच्छ्वास हैं।

⟹ **दण्डी-** दण्डी भी गद्यकाव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनकी रचना का नाम दशकुमारचरितम् है, जो गद्यकाव्य है, जिसमें कथा और आख्यायिका नामक दोनों गद्य भेदों के लक्षण उपन्यस्त हैं।

अन्य रचनाएँ- अवन्तिसुन्दरीकथा

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ- काव्यादर्श-यह तीन परिच्छेदों का पद्यात्मक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है।

⟹ **बिल्हण-** कश्मीर निवासी बिल्हण ने विक्रमाङ्कदेवचरित नामक महाकाव्य 18 सर्गों में प्रायः 1085 ई॰ में लिखा। इसके अन्तिम सर्ग में कवि ने आत्म-वृत्तान्त भी दिया है।

बिल्हण की तीन रचनाएँ मिलती हैं- **विक्रमाङ्कदेवचरित (महाकाव्य), कर्णसुन्दरी (नाटिका), चौरपञ्चाशिका (गीतिकाव्य)** है। विक्रमाङ्कदेवचरित बिल्हण को अमर बनाने वाला 18 सर्गों का ऐतिहासिक महाकाव्य है।

⟹ **अम्बिकादत्त व्यास-** प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास के प्रणेता अम्बिकादत्त व्यास हैं। व्यास जी ने शिवराजविजय 1870 ई॰ में लिखा, जो काशी से 1901ई॰ में उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ। एक घड़ी (24 मिनट) 100 श्लोकों की रचना करने से व्यास जी को 'घटिकाशतक' की उपाधि दी गयी थी।

सौ प्रश्नों को एक साथ ही सुनकर उन सभी प्रश्नों का उत्तर उसी क्रम में देने के की अद्भुत क्षमता होने के कारण उन्हें 'शतावधान' की उपाधि दी गयी थी।

शिवराजविजय में व्यास जी की चेतना प्राचीन-नवीन दोनों के संगम की है। देशभक्ति, इतिहास, स्वाधीनता तथा धर्मरक्षा की भावनाएँ इसमें समन्वित हैं। यवनों के अत्याचार और शिवाजी के न्यायपूर्ण कार्यों का सूर्योदय दोनों का यथार्थ निरूपण करने में कवि को सफलता मिली है। मुख्य रस 'वीर' है, किन्तु अन्य रसों की भी उचित उद्भावना हुई है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उपन्यासकार अम्बिकादत्त व्यास जी हैं। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 412

42. अधोलिखितेषु भर्तृहरिमतेन ध्वनेः भेदद्वयं चिनुत-
(A) पश्यन्ती, वैखरी (B) प्राकृत, वैखरी
(C) प्राकृतः वैकृतः (D) वैखरी, वैकृतः

व्याख्या- भर्तृहरि प्रणीत 'वाक्यपदीयम्' है। इस ग्रन्थ का नाम वाक्यपदीय रखा, जिसका अर्थ है कि वाक्य और पद के विषय में विचार के लिए आरम्भ ग्रन्थ (वाक्यं च पदं च वाक्यपदे ते अधिकृत्य कृतो ग्रन्थो वाक्यपदीयम्)। इस वाक्यपदीय में तीन काण्ड हैं, इसीलिए इसे त्रिकाण्डी भी कहा जाता है।

* ब्रह्मकाण्ड में 156, वाक्यकाण्ड में 486, पदकाण्ड में लगभग1218 कारिकाएँ प्राप्त होती हैं।
* वाक्यपदीयम् के प्रथमकाण्ड ब्रह्मकाण्ड में प्राकृत, वैकृत दो प्रकार की ध्वनि बतायी गयी है-

स्वभावभेदान्नित्यत्वे ह्रस्वदीर्घप्लुतादिषु।
प्राकृतस्य ध्वनेः कालः शब्दस्येत्युपचर्यते॥ (1/76)

प्राकृत ध्वनि को स्फोट का एक विशेष रूप मान लेने से प्राकृत ध्वनि का ही एकमात्रिक आदि काल ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत में स्थिर रहता है, जो स्फोट के नित्य होने पर भी शब्द में आरोपित है वास्तविक नहीं।

ध्वनि दो प्रकार की है एक प्राकृत और दूसरी वैकृत- 'प्राकृतो वैकृतश्चेति द्विविधो ध्वनिः' जिसमें प्राकृत ध्वनि के बिना सामान्य रूप से या विशेष रूप से स्फोट की प्रतीत नहीं हो सकती। अतः प्राकृत ध्वनि को स्फोट का स्वरूप मानते हैं। वैकृत ध्वनि तो प्राकृत ध्वनि के बाद 'यह वही है' इस प्रतीति का नियामक होता है। अतः स्फोट रूप नहीं है और उसके कालभेद, द्रुत आदि स्फोट में प्रतीति नहीं होते, जिनसे द्रुत आदि वृत्तियों के ग्रहण को रोकने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भर्तृहरि के द्वारा ध्वनि के दो भेद माने गये हैं- प्राकृत ध्वनि और वैकृत ध्वनि।
अतः विकल्प 'C' सही है।

स्रोत- वाक्यपदीयम् (1/76)- सूर्यनारायण शुक्ल, पेज- 85-86

43. अधस्तनानां महाभारतीयपर्वणां समुचितः क्रमोऽस्ति?
(A) शान्तिपर्व, स्त्रीपर्व, अनुशासनपर्व, आश्वमेधिकपर्व
(B) स्त्रीपर्व, शान्तिपर्व, अनुशासनपर्व, आश्वमेधिकपर्व
(C) अनुशासनपर्व, स्त्रीपर्व, आश्वमेधिकपर्व, शान्तिपर्व
(D) आश्वमेधिकपर्व, अनुशासनपर्व, स्त्रीपर्व, शान्तिपर्व

व्याख्या- विश्व-साहित्य में सबसे बड़ा ग्रन्थ 'महाभारत' ही है, जिसमें एक लाख से कुछ अधिक श्लोक हैं, इसे 'शत-साहस्री संहिता' भी कहते हैं। इसे अठारह पर्वों में विभक्त किया गया है, जो पुनः अनेक उपपर्वों तथा अध्यायों में विभक्त है।
महाभारत के लेखक का नाम व्यास, कृष्णद्वैपायन, वेदव्यास है। वे पराशर ऋषि के पुत्र थे। महाभारत के विषय में कहा गया है- जो बातें महाभारत में नहीं हैं, वे भारतवर्ष में नहीं है।
'यन्न भारते तन्न भारते'
⇒ महाभारत के अठारह पर्वों के नाम इस प्रकार हैं-
1- आदिपर्व 2- सभापर्व 3- वनपर्व 4- विराट्पर्व 5- उद्योगपर्व 6- भीष्मपर्व 7- द्रोणपर्व 8- कर्णपर्व 9- शल्यपर्व 10- सौप्तिक पर्व 11- स्त्रीपर्व 12- शान्तिपर्व 13- अनुशासनपर्व 14- आश्वमेधिकपर्व 15- आश्रमवासिकपर्व 16- मौसलपर्व
17- महाप्रस्थानिकपर्व 18- स्वर्गारोहणपर्व।
इसके परिशिष्ट के रूप में 'हरिवंश-पर्व' है, जिसमें भगवान् कृष्ण का जीवनचरित वर्णित है। इस पर्व को मिलाकर ही श्लोक संख्या एक लाख होती है।
इन पर्वों में शान्तिपर्व बहुत बड़ा है (चौदह सहस्र श्लोक)। दूसरा महाप्रस्थानिकपर्व सबसे छोटा (115 श्लोक) हैं।
महाभारत का विकास- महाभारत का विकास क्रमशः जय, भारत तथा महाभारत–इस रूप में विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पृथक् पृथक् अवसरों पर हुआ।
जय- महाभारत का मूलरूप जय के नाम से प्रसिद्ध था। **'जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा'** (महाभारत-1/62/20) महाभारत के मङ्गलश्लोक में नारायण, नर और सरस्वती को नमस्कार करके 'जय' नामक ग्रन्थ के पाठ का स्पष्ट निर्देश है-
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥
जय को बढ़ाने का काम दूसरे लोगों ने किया। व्यास के इस ग्रन्थ में 8800 श्लोक थे।
भारत- द्वितीय अवस्था में जय का विस्तार 'भारत' के रूप में हुआ, जिसमें 24000 श्लोक हो गये।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महाभारतीय पर्वों का क्रम है- स्त्रीपर्व, शान्तिपर्व, अनुशासनपर्व, आश्वमेधिक पर्व।
अतः विकल्प 'B' सही है।
स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 151

44. जीवाजीवाख्ये द्वे तत्त्वे कस्मिन् दर्शने मन्येते?
(A) बौद्धदर्शने (B) सांख्यदर्शने
(C) वेदान्तदर्शने (D) जैनदर्शने

व्याख्या⇒ जैनदर्शन- जैन शब्द 'जिन' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है- विजयी अर्थात् रागद्वेषादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला मुक्त पुरुष, जिसे 'वीतराग' भी कहते हैं। जैन अपने धर्मप्रचारक सिद्धों को तीर्थंकर कहते हैं और इनकी संख्या चौबीस बताते हैं। ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर माने जाते हैं।
तत्त्वमीमांसा - जैन तत्त्वमीमांसा वस्तुवादी और सापेक्षतावादी बहुतत्त्ववाद है, जिसे अनेकान्तवाद कहते हैं। चेतन जीव और अचेतन जीव दो प्रमुख और स्वतन्त्र तत्त्व हैं।
जैन दर्शन के त्रिरत्न- सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चरित्र–मोक्षप्राप्ति के मार्ग माने गये हैं।
⇒ **चार्वाक दर्शन-** चार्वाक के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि, और वायु ये चार महाभूत ही तत्त्व हैं। आकाश का अनुमान होता है, अतः चार्वाक उसे तत्त्व नहीं मानते, वह आवरणभाव मात्र है।
⇒ **सांख्यदर्शन-** महर्षि कपिलमुनि प्रणीत सांख्यदर्शन में पच्चीस तत्त्वों की चर्चा हुई है- प्रकृति, महत् या बुद्धि, अहङ्कार, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, पञ्चतन्मात्राएँ, पञ्चमहाभूत मन और पुरुष = 25
मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥
(सा॰ का॰-03)
⇒ **योगदर्शन-** महर्षि पतञ्जलिकृत योगदर्शन है। इसमें चार पाद हैं- समाधिपाद, साधनापाद, विभूतिपाद, कैवल्यपाद। योग शब्द युज् धातु से बनता है, जिसका अर्थ है- समाधि।
योग सांख्य के पच्चीस तत्त्वों के अतिरिक्त ईश्वर की सत्ता भी स्वीकार करता है। योगदर्शन में तत्त्वों की संख्या 26 मानी गयी है। प्रकृति, महत् (बुद्धि), अहङ्कार, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, पञ्चतन्मात्राएँ, पञ्चमहाभूत, मन, पुरुष और ईश्वर = 26
⇒ **वेदान्तदर्शन-** शङ्कराचार्य कृत वेदान्तदर्शन में दो तत्त्वों की चर्चा की गयी है- ब्रह्म और जीव।

दर्शन	ग्रन्थ	अध्याय	सूत्र	प्रमाण	पदार्थ-तत्त्व
सांख्य	सांख्यसूत्र	6	537	3	25
योग	योगसूत्र	4पाद	195	3	26
न्याय	न्यायसूत्र	5	60-70	4	16
वैशेषिक	वैशेषिकसूत्र		10	370	2 7
पूर्वमीमांसा	मीमांसासूत्र	12	2644	6	-
उत्तरमीमांसा (वेदान्त)	ब्रह्मसूत्र	4	555	6	2

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'जीवाजीवाख्ये द्वे तत्त्वे'- यह जैन दर्शन मानता है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- सर्वदर्शनसंग्रह- उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 124

45. पाणिनीयशिक्षानुसारं कस्य प्राणिनः ध्वनिः एकमात्रिकवर्ण-तुल्यः भवति-

(A) नकुलस्य **(B) शिखिनः**
(C) वायसस्य **(D) चाषस्य**

व्याख्या- * वेदों के गूढ़ एवं वास्तविक अर्थों को जानने के लिए जिन सहायक तत्त्वों की आवश्यकता होती है, उन्हें वेदाङ्ग कहते हैं।

* वेदाङ्ग की संख्या छह है- शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त ज्योतिष, कल्प।

* वेदाङ्ग के विषय में पाणिनीय शिक्षा में निम्न श्लोक प्राप्त होता है-

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥ (41-42)

छन्द - पाद (पैर)
कल्प - हस्त (हाथ)
ज्योतिष - चक्षु (नेत्र)
निरुक्त - श्रोत्र (कान)
शिक्षा- घ्राण (नाक)
व्याकरण - मुख

* वेदाङ्गों में शिक्षा सर्वप्रथम परिगणित है, जिसका अर्थ है- वर्णोच्चारण की शिक्षा देना।

'स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा' अर्थात् जिसमें स्वर वर्ण आदि के उच्चारण की शिक्षा दी जाती है, उसे शिक्षा कहते हैं।

* शिक्षा को वेद का प्राण कहा गया है- 'शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य'। तैत्तिरीयोपनिषद् में शिक्षा के छः अङ्गों का उल्लेख है - वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, सन्तान।

पाणिनीय शिक्षा- पाणिनीय शिक्षा वैदिक और लौकिक दोनों के लिए उपयुक्त है। पाणिनीय शिक्षा में साठ (60) श्लोक हैं। पाणिनीय शिक्षा में वर्णों की संख्या, उच्चारणप्रक्रिया का ध्वनि-शास्त्रीय वर्णन, स्थान और प्रयत्न का विवरण, संवृत, विवृत, घोष, अघोष, पाठक के गुण-दोषों का वर्णन आदि प्राप्त होता है।

चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रं चैव वायसः।
शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वर्धमात्रकम्॥ (पा.शि.-49)

नीलकण्ठ पक्षी एक मात्राकालिक शब्द बोलता है, कौआ द्विमात्रिक शब्द बोलता है, मयूर तीन मात्रा का शब्द बोलता है, नेवला आधी मात्रा का शब्द बोलता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि एक-मात्राकालिक बोलने वाला नीलकण्ठ (चाषः) है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- पाणिनीयशिक्षा - (श्लोक 49)

46. अधोलिखितेषु वेदान्तमते असमीचीनं कथनं चिनुत-

(A) काम्यकर्माणि स्वर्गादिसाधनानि
(B) निषिद्धानि कर्माणि अनिष्टसाधनानि
(C) नित्यानि कर्माणि अनिष्टसाधनानि
(D) नैमित्तिकानि प्रायश्चित्तादीनि कर्माणि पापक्षयादिसाधनानि

व्याख्या- वेदान्त दर्शन- आचार्य बादरायण विरचित 'ब्रह्मसूत्र' इसका आधारग्रन्थ है। इसी का दूसरा नाम 'वेदान्त सूत्र' भी है। ब्रह्मसूत्र पर लिखा गया आचार्य शङ्कर का 'शारीरक-भाष्य' इस दर्शन का अद्भुत ग्रन्थ माना गया है।

इसमें ब्रह्मसूत्रों की अद्वैतवादी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

शङ्कराचार्य को अद्वैतवाद का प्रवर्तक आचार्य माना जाता है। अद्वैतमत को शाङ्करमत या शाङ्करदर्शन भी कहते हैं।

आचार्य शङ्कर का सिद्धान्त अद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्ध है। तदनुसार उन्होंने ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य समस्त जगत् का मिथ्या प्रतिपादित किया (ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या)। उन्होंने मायावाद की स्थापना की।

शङ्कराचार्य के अनुसार सम्पूर्ण दृश्यमान् जगत् ब्रह्म का विवर्तमात्र है। जैसे हमें रज्जु में सर्प की भ्रान्ति हो जाती है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्मतत्त्व में ही हमें जगत् की भ्रान्ति हो रही है। उन्होंने आत्मा को स्वतः सिद्ध माना।

सदानन्दयोगीन्द्र ने अद्वैतवेदान्त पर अत्यन्त सरस शैली में वेदान्तसार नामक प्रकरण ग्रन्थ की रचना की।

वेदान्तसार के मङ्गलाचरण में इन्होंने श्लेष के माध्यम से अपने गुरु अद्वयानन्द को नमन किया है।

अनुबन्धचतुष्टय की चर्चा करते हैं- अधिकारी, विषय, सम्बन्ध और प्रयोजन, तत्पश्चात् छह प्रकार के कर्मों का विवेचन करते हुए कहते हैं-

षड्विधकर्म-

1. काम्यानि स्वर्गादीष्टसाधनानि ज्योतिष्टोमादीनि।
स्वर्गादि कामनाओं के साधनस्वरूप ज्योतिष्टोमयाग आदि काम्यकर्म हैं।

2. निषिद्धानि नरकाद्यनिष्टसाधनानि ब्राह्मणहननादीनि। नरक आदि अनिष्ट के साधनरूप ब्राह्मणहनन आदि निषिद्ध कर्म हैं।

3. नित्यान्यकरणे प्रत्यवायसाधनानि सन्ध्यावन्दनादीनि। जिसके न करने पर भविष्य में दुःख की सम्भावना हो, सन्ध्यावन्दन आदि नित्यकर्म हैं।

4. नैमित्तिकानि पुत्रजन्माद्यनुबन्धीनि जातेष्ट्यादीनि।
पुत्रजन्म के अवसर पर किए जाने वाले जातेष्टि यज्ञ आदि नैमित्तिक कर्म हैं।

5. प्रायश्चित्तानि पापक्षयसाधनानि चान्द्रायणादीनि।
पाप के प्रक्षालन हेतु किए जाने वाले चान्द्रायण व्रत आदि प्रायश्चित्त कर्म हैं।

6. उपासनानि सगुणब्रह्मविषयमानसव्यापाररूपाणि शाण्डिल्य-विद्यादीनि।
मन की वृत्ति को स्थिर करने के लिए सगुण ब्रह्म-विषयक मानसिक व्यापाररूप शाण्डिल्यविद्या आदि उपासना कर्म हैं।

स्पष्टीकरण- विवरण से स्पष्ट है कि वेदान्तानुसार छः कर्म माने गये हैं, जिसमें 'नित्यानि कर्माणि अनिष्टसाधनानि' यह अशुद्ध है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार- राकेश शास्त्री, पेज 127

47. षड्भावविकारा भवन्ति मतमिदं कस्य विद्यते?
(A) वार्ष्यायणेः **(B) शाकपूणेः**
(C) शाकटायनस्य **(D) यास्कस्य**

व्याख्या- यास्क कृत निरुक्त निघण्टु का व्याख्या ग्रन्थ है। मूलग्रन्थ निघण्टु कहलाता है।

'षड्भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः। जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते, विनश्यति इति।'
छह प्रकार की क्रियाओं के भेद (विकार) होते हैं। यह वार्ष्यायणि आचार्य का मत है।

1. जायते - उत्पन्न होता है
2. अस्ति - रहता है
3. विपरिणमते- परिवर्तित होता है
4. वर्धते - बढ़ता है
5. अपक्षीयते - क्षीण होता है
6. विनश्यति - नष्ट होता है।

'इन्द्रियनित्यं वचनमौदुम्बरायणः।'
वचन अर्थात् शब्द इन्द्रिय में नियत है। अर्थात् जब तक वक्ता बोलता है, तब तक उसकी वाक् इन्द्रिय में और जब तक श्रोता सुनता है तब तक उसकी श्रोत्रेन्द्रिय में विद्यमान रहता है। न उसके पहले था और न बाद में रहता है। इसलिए यह अनित्य है, यह औदुम्बरायण का मत है।

न निर्बद्धा उपसर्गा अर्थान्निराहुरिति शाकटायनः। नामाख्यातयोस्तु कर्मोपसंयोगद्योतका भवन्ति।
(नाम तथा आख्यात से) अलग करके गुम्फित किये हुए उपसर्ग, अर्थों को निश्चित रूप से नहीं कहते हैं।
नाम और आख्यात के अर्थ को उनके साथ मिलकर द्योतन करने वाले होते हैं, यह शाकटायन का मत है।

यदि मन्त्रार्थप्रत्ययानर्थकं भवतीति कौत्सः। अनर्थका हि मन्त्राः।
यदि मन्त्रों के अर्थ का बोध कराने के लिए है, तो व्यर्थ है; यह कौत्स का मत है। क्योंकि मन्त्रों का कोई अर्थ नहीं होता है।

उच्चावचाः पदार्था भवन्तीति गार्ग्यः। तद् य एषु पदार्थः प्राहुरिमे तं नामाख्यातयारर्थविकरणम्।
इन उपसर्गों के भी उच्चावच अर्थात् नाना प्रकार के शब्द निरुक्त में नाना प्रकार के इस अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। इसलिए इनका जो अर्थ होता है नाम तथा आख्यात से अलग प्रयुक्त होने पर भी नाम और आख्यात के अर्थ परिवर्तन करने वाले उस अर्थ को ये उपसर्ग कहते ही हैं, यह गार्ग्य का मत है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि षड्भावविकार आचार्य वार्ष्यायणि का मत है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- निरुक्त- कपिलदेव शास्त्री, पेज 23

48. एध् वृद्धौ इत्यस्माद् धातोः 'ऐधिष्ट' इति रूपं निष्पद्यते-
(A) विधिलिङ्लकारे **(B) लुङ्लकारे**
(C) आशीर्लिङ्लकारे **(D) लङ्लकारे**

व्याख्या- **लुङ् लकार**

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ऐधिष्ट	ऐधिषाताम्	ऐधिषत
मध्यमपुरुष	ऐधिष्ठाः	ऐधियाथाम्	ऐधिढ्वम्
उत्तमपुरुष	ऐधिषि	ऐधिष्वहि	ऐधिष्महि

विधिलिङ्लकार			
	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	एधेत	एधेयाताम्	एधेरन्
मध्यमपुरुष	एधेथाः	एधेयाथाम्	एधेध्वम्
उत्तमपुरुष	एधेय	एधेवहि	एधेमहि
आशीर्लिङ्लकार			
	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	एधिषीष्ट	एधिषीयास्ताम्	एधिषीरन्
मध्यमपुरुष	एधिषीष्ठाः	एधिषीयास्थाम्	एधिषीध्वम्
उत्तमपुरुष	एधिषीय	एधिषीवहि	एधिषीमहि
लङ्लकार			
	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ऐधत	ऐधेताम्	ऐधन्त
मध्यमपुरुष	ऐधथाः	ऐधेथाम्	ऐधध्वम्
उत्तमपुरुष	ऐधे	एधावहि	ऐधामहि
ऌङ्लकार			
	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ऐधिष्यत	ऐधिष्येताम्	ऐधिष्यन्त
मध्यमपुरुष	ऐधिष्यथाः	ऐधिष्येथाम्	ऐधिष्यध्वम्
उत्तमपुरुष	ऐधिष्ये	ऐधिष्यावहि	ऐधिष्यामहि

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'एध्-वृद्धौ' धातु से 'ऐधिष्ट' रूप लुङ्लकार प्रथमपुरुष एकवचन में बनता है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी-गोविन्दाचार्य, पेज-495

49. 'मालामतिक्रान्तः- अतिमालः' इत्यत्र समासविधायकं वर्तते?
(A) अत्यादयः क्रान्त्याद्यर्थे द्वितीयया
(B) अवादयः कुष्टाद्यर्थे द्वितीयया
(C) कुगतिप्रादयः
(D) एकविभक्ति चापूर्वनिपाते

व्याख्या- लघुसिद्धान्तकौमुदीकार आचार्य वरदराज तत्पुरुष समास के अन्तर्गत कुछ वार्तिकों को उद्धृत करते हैं-

⇒ **प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया-** यह वार्तिक है। गत आदि अर्थों में वर्तमान प्र आदि निपातों का प्रथमान्त सुबन्त के साथ नित्य समास होता है और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।

प्रादि समास के क्षेत्र को फैलाने के लिए ही यह वार्तिक है।

प्राचार्यः - प्रगत आचार्यः। दूर गया हुआ आचार्य, श्रेष्ठ आचार्य, अपने विषय में दक्ष या आचार्य का भी आचार्य।

⇒ **अत्यादयः क्रान्त्याद्यर्थे द्वितीयया-** क्रान्त अर्थात् पार गया हुआ। लांघ चुका, पारगामी आदि अर्थों में वर्तमान 'अति' आदि निपातों का द्वितीया समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है। उसे तत्पुरुष समास कहा जाता है।

अतिमालः - माला का अतिक्रमण करने वाला, सुगन्ध से माला आदि को मात दे चुका कोई पदार्थ।

मालाम् अतिक्रान्तः- यह लौकिक विग्रह है।

माला अम् अति- अलौकिक विग्रह है।

'अति' इस प्रादि निपात का माला अम् इस सुबन्त के साथ 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके 'माला अति' बनने के बाद 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अति की उपसर्जनसंज्ञा होकर पूर्वप्रयोग हुआ। पुनः ह्रस्व करने के लिए 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' से माला की भी उपसर्जनसंज्ञा हुई और 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से उपसर्जन माला को ह्रस्व होकर अतिमाल बना। सु, रुत्वविसर्ग करके अतिमालः सिद्ध हुआ। इसी तरह 'अतिक्रान्तो' मानुषम् अतिमानुषः, अतिक्रान्तः अर्थम् अत्यर्थः आदि जगहों पर इस वार्तिक से समास किया जा सकता है।

⇒ **अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया-** यह भी वार्तिक है। क्रुष्ट- (कूजित,आहूत)

⇒ **पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या-** ग्लान (खिन्न, दुःखी, थका हुआ)

⇒ **निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या-** क्रान्त (निकला हुआ, पार किया हुआ)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मालामतिक्रान्तः अतिमालः में समास विधायक सूत्र-'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी-गोविन्दाचार्य, पेज-939

50. कौटिल्यमते 'कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या' इति विषयाः सन्ति?
(A) त्रय्याः **(B) दण्डनीतेः**
(C) वार्तायाः **(D) आन्वीक्षक्याः**

व्याख्या- कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में पन्द्रह अधिकरण एक सौ पचास अध्याय, एक सौ अस्सी प्रकरण और छः हजार श्लोक हैं। प्रथम अधिकरण के प्रथम अध्याय में चार प्रकार की विद्या आदि का वर्णन किया गया है।

आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः। आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति ये चार विद्याएँ हैं।

⟹ **आन्वीक्षिकी का लक्षण-**
प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षकी मता।। (1.1.1)
यह आन्वीक्षकी विद्या सर्वदा ही सब विद्याओं की प्रदीप, सभी कार्यों का साधन और सब धर्मों का आश्रय मानी गयी है।
⟹ **त्रयी का लक्षण-** सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयी। साम, ऋक् तथा यजु इन तीनों वेदों का समन्वित नाम ही **'त्रयी'** है। अथर्ववेद और इतिहासवेद ही वेद कहे जाते हैं।
शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दोविचिति (विचिति=विवेक, विचार) और ज्योतिष, ये छह वेदांग हैं।
त्रयी में निरूपित यह धर्म, चारों वर्णों और चारों आश्रमों को अपने-अपने धर्म में स्थिर रखने के कारण लोक का बहुत ही उपकारक है।
ब्राह्मण का धर्म अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ, याजन और दान देना तथा दान लेना है।
'स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति।'
क्षत्रिय का धर्म है- पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, शस्त्रबल से जीविकोपार्जन और प्राणियों की रक्षा करना।
क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शास्त्राजीवो भूतरक्षणं च।
वैश्य का धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, कृषिकार्य एवं पशुपालन और व्यापार करना है।
वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च।
इसी प्रकार शूद्र का अपना धर्म है कि वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की सेवा करें, खेती, पशुपालन तथा व्यापार करें और शिल्प, गायन, वादन एवं चारण, भाट आदि का कार्य करें।
शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारुकुशीलवकर्म च।
⟹ **वार्ता का लक्षण-** कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता।
कृषि, पशुपालन और व्यापार ये वार्ताविद्या के विषय हैं।
⟹ **दण्डनीति का लक्षण-** आन्वीक्षकी त्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः। तस्य नीतिः दण्डनीतिः।
आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता इन सभी विद्याओं की सुख-समृद्धि दण्ड पर निर्भर है। दण्ड को प्रतिपादित करने वाली नीति ही दण्डनीति कहलाती है।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता' यह वार्ता का लक्षण है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**
स्त्रोत- कौटिलीय अर्थशास्त्र- वाचस्पति गैरोला, पेज-12

51. निम्नलिखितेषु को हेत्वाभासो नास्ति-
(A) असिद्धः **(B) विरुद्धः**
(C) अनैकान्तिकः **(D) असत्प्रतिपक्षः**

व्याख्या- केशवमिश्र प्रणीत तर्कभाषा में पाँच हेत्वाभासों का निरूपण करते हुये कहते हैं कि-
असिद्ध-विरुद्ध-अनैकान्तिक-प्रकरणसम-कालात्ययापदिष्ट-भेदात् पञ्चैव।
वह हेत्वाभास पाँच प्रकार के हैं- 1. असिद्ध 2. विरुद्ध 3. अनैकान्तिक 4. प्रकरणसम (सत्प्रतिपक्ष) 5. कालात्ययापदिष्ट (बाधित)।
1. असिद्ध हेत्वाभास- स त्रिविधः- 1 आश्रयासिद्ध 2. स्वरूपासिद्ध 3. व्याप्यत्वासिद्ध–भेदात्।
(i) **आश्रयासिद्धः -** यस्य हेतोराश्रयो नावगम्यते स आश्रयासिद्धः यथा गगनारविन्दं सुरभि, अरविन्दत्वात्, सरोजारविन्दवत्, जिस हेतु का आश्रय सिद्ध न हो, वह हेतु आश्रयासिद्ध होता है। गगनारविन्दं सुरभि, अरविन्दत्वात्।
(ii) **स्वरूपासिद्धः** - स उच्यते यो हेतुराश्रये नावगम्यते
'यथा सामान्यमनित्यं कृतकत्वादिति'
जो हेतु आश्रय में ज्ञात नहीं होता, उसे स्वरूपासिद्ध कहा जाता है।
जैसे- 'सामान्यम् अनित्य' सामान्य जाति अनित्य है। कृतकत्वात् कृतक उत्पन्न होने से।
(iii) **व्याप्यत्वासिद्धः -** व्याप्यत्वासिद्धस्तु स एव यत्र हेतोर्व्याप्तिर्नावगम्यते।
जिस हेतु में व्याप्ति का ज्ञान नहीं होता, वह व्याप्यत्वासिद्ध होता है।
2. विरुद्ध- साध्यविपर्ययव्याप्तो हेतुः विरुद्धः। यथा शब्दो नित्यः कृतकत्वात् इति।
साध्याभाव का व्याप्य हेतु विरुद्ध कहा जाता है।
जैसे- शब्दः नित्यः कृतकत्वात्। शब्द नित्य है कृतक उत्पन्न होने से।
3. अनैकान्तिक- साध्यसंशयहेतुरनैकान्तिकः सव्यभिचार इति वा उच्यते। स द्विविधः साधारणानैकान्तिको असाधारणानैकान्तिकश्चेति।
जो हेतु साध्यसंशय का जनक होता है, उसे अनैकान्तिक या व्यभिचार कहा जाता है। उसके दो भेद होते हैं-
साधारण अनैकान्तिक और असाधारण अनैकान्तिक।
4. प्रकरणसम- (सत्प्रतिपक्ष)- यस्य प्रतिपक्षभूतं हेत्वन्तरं विद्यते स प्रकरणसमः। स एव सत्प्रतिपक्ष इति चोच्यते। तद्यथा-शब्दोऽनित्यो नित्यधर्मानुपलब्धेः, शब्दो नित्योऽनित्य-धर्मानुपलब्धेः इति।
जिस हेतु का प्रतिपक्षभूत अन्य हेतु होता है, वह प्रकरण-सम होता है। उसे सत्प्रतिपक्ष भी कहा जाता है।

यथा- शब्दः अनित्यः नित्यधर्मानुपलब्धेः- शब्द अनित्य है, क्योंकि उसमें नित्यधर्म नित्यत्वनियत धर्म की उपलब्धि नहीं होती।

5. कालात्ययापदिष्ट (बाधित)- यस्य प्रत्यक्षादिप्रमाणेन पक्षे साध्याभावः परिच्छिन्नः स कालात्ययापदिष्टः। स एव बाधितविषय इत्युच्यते।

यथा- अग्निरनुष्णः कृतकत्वाज्जलवत्। जिस हेतु के साध्य का अभाव पक्ष में प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से निश्चित होता है, वह हेतु कालात्ययापदिष्ट होता है। उसे बाधितविषयक भी कहा जाता है।

यथा- अग्निः अनुष्णः कृतकत्वात् जलवत् अग्नि अनुष्णत्व-उष्णस्पर्शाभाव का आश्रय है कृतक कार्य होने से, जल के समान।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हेत्वाभास में असत्प्रतिपक्ष परिगणित नहीं है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- तर्कभाषा- आचार्य विश्वेश्वर, पेज 246

52. अभिनिहितस्वरितो भेदोऽस्ति-
(A) आश्रितस्वरितस्य (B) जात्यस्वरितस्य
(C) तैरोविरामस्वरितस्य (D) स्वतन्त्रस्वरितस्य

व्याख्या- वेदों के अध्ययन में स्वर शास्त्र का विशेष महत्त्व है। क्योंकि वैदिक मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण एवं अर्थबोध के लिए स्वरों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। किसी शब्द के किसी अक्षर को स्वर में पढ़े जाने पर ही उस शब्द के अर्थ का निर्णय होता है। यदि किसी शब्द के अक्षर के स्वर को बदल दिया जाये, तो उसका अर्थ परिवर्तित हो जाता है। यथा- इन्द्रशत्रुः शब्द है। इसमें दो पद हैं- इन्द्र और शत्रु। यदि आप पद को उदात्त समझे तो इसका विग्रह बहुव्रीहि समास में 'इन्द्रः शत्रुः यस्य सः' होगा अर्थात् ''इन्द्र है मारने वाला जिसका।'' यदि अन्तिम पद को उदात्त माना जाये तो इसका विग्रह तत्पुरुष समास में 'इन्द्रस्य शत्रुः' होगा, जिसका अर्थ होगा- इन्द्र को मारने वाला।

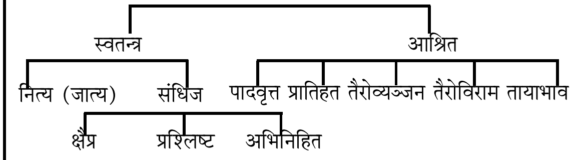
⇒ **स्वर के प्रकार-** वैदिक वाङ्मय में मुख्यतः तीन स्वर मान्य हैं- उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

उदात्त- उच्चैरुदात्तः। कण्ठ, तालु आदि स्थानों के ऊपर के भाग से जिस स्वर का उच्चारण होता है, वह उदात्त कहलाता है।

अनुदात्त- नीचैरनुदात्तः। कण्ठ, तालु आदि स्थानों के नीचे के भाग से उच्चरित स्वर अनुदात्त कहलाता है।

स्वरित- 'समाहारः स्वरितः' उदात्तत्व और अनुदात्तत्व दोनों धर्मों का मेल जिस वर्ण में होता है, वह स्वरित होता है। इस प्रकार स्वरित में उदात्त और अनुदात्त दोनों स्वरों के धर्म का मिश्रण होता है।

स्वरित दो प्रकार का होता है- स्वतन्त्र और आश्रित



स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अभिनिहित स्वर स्वतन्त्र स्वरित का भेद है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

53. ऑन दि सब्लाइम (On the Sublime) **ग्रन्थस्य प्रणेता वर्तते?**
(A) अरस्तू (B) क्रोञ्चे
(C) प्लेटो (D) लान्जाइनस

व्याख्या- अरस्तू का अनुकरण सिद्धान्त एक स्तर पर प्लेटो के अनुकरण सिद्धान्त की प्रतिक्रिया है और दूसरे स्तर पर उसका विकास भी। अरस्तू (384 ई.पूर्व. से 322 ई.पूर्व.) यूनानी दार्शनिक थे। यह प्लेटो के शिष्य व सिकन्दर के गुरु थे। उनका जन्म स्टेगेरिया नामक नगर में हुआ था। अरस्तु ने भौतिकी, अध्यात्म, कविता, नाटक, संगीत, तर्कशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, नीतिशास्त्र सहित कई विषयों पर रचना की।

अरस्तू के प्रमुख ग्रन्थ- हिस्ट्री ऑफ एनिमल्स, पॉएटिक्स, मेटाफिजिक्स, प्रोब्लेम्स, ऑन मेमोरी, ऑन स्लीप, ऑन ड्रीम्स, ऑन दी हेअवेंस, ऑन दी यूनिवर्स, ऑन दी सोल आदि ग्रन्थ हैं।

⇒ **लान्जाइनस-**यह अंग्रेजी (Longinus) ग्रीक परम्परागत रूप से काव्य में 'उदात्त तत्त्व' (On the Sublime) नामक कृति का रचनाकार माना जाता है। लान्जाइनस का असली नाम ज्ञात नहीं है। वह यूनानी काव्यालोचन का शिक्षक था। उसका काल पहली से लेकर तीसरी सदी तक होने का अनुमान है।

⇒ **क्रोन्चे-** जन्म- 25 फरवरी, 1866 इटली

मृत्यु - 20 नवम्बर, 1952 नापोलि इटली

पत्नी- अडेले रॉसी

⇒ **प्लेटो-** जन्म 428/427 या 424/423 ईसा पूर्व एथेंस

मृत्यु- 348/347 ईसापूर्व (उम्र 80) एथेंस

राष्ट्रीयता- यूनानी

किताब- रिपब्लिक

रिपब्लिक प्लेटो द्वारा 380 ईसापूर्व के आस-पास रचित ग्रन्थ है, जिसमें सुकरात के जीवन का वर्णन है। प्लेटो के अनुसार मानव के व्यक्तित्व के तीन आन्तरिक तत्त्व होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'ऑन दि सब्लाइम' यह लांजाइनस की रचना है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- भारतीय पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा आलोचना –योगेन्द्र प्रतापसिंह, पेज 197

54. विश्वनाथकविराजेन प्रतिपादितं काव्यस्वरूपं किम्?
(A) रीतिरात्मा काव्यस्य
(B) वाक्यं रसात्मकं काव्यम्
(C) रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्
(D) काव्यस्यात्मा ध्वनिः

व्याख्या-

ग्रन्थ	ग्रन्थकार	काव्यलक्षण
काव्यप्रकाश	आचार्य मम्मट	तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनःक्वापि।
साहित्यदर्पण	आचार्य विश्वनाथ	वाक्यं रसात्मकं काव्यम्
रसगङ्गाधर	पण्डितराज जगन्नाथ	रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्
काव्यालङ्कारसूत्र	वामन	रीतिरात्मा काव्यस्य
ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धन	काव्यस्यात्मा ध्वनिः
काव्यालङ्कार	भामह	शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्
वक्रोक्तिजीवितम्	कुन्तक	वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्
काव्यादर्श	दण्डी	शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना -पदावली
औचित्यविचारचर्चा	क्षेमेन्द्र	औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं-काव्यस्य जीवितम्
शृङ्गारप्रकाश	भोज	अदोषं गुणवद्काव्यमलङ्कारै-रलङ्कृतम् रसान्वितं कविः-कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विदन्ति

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विश्वनाथ जी का काव्यलक्षण है- 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- साहित्यदर्पण- शालिग्रामशास्त्री, पेज 19

55. यशोधर्मणः मन्दसौरस्तम्भलेखस्य लिपिरस्ति–
(A) देवनागरी **(B) ब्राह्मी**
(C) खरोष्ठी **(D) शारदा**

व्याख्या- यशोधर्मन् छठी शताब्दी के आरम्भिक काल में मालवा के महाराजा थे। छठी शती ई. के द्वितीय चरण में मालवा प्रान्त के स्थानीय शासक के रूप से आगे बढ़कर यशोधर्मन् पूरे उत्तरी भारत पर छा गया। यह लेख मन्दसौर (मध्यप्रदेश) नगर में नदी के बाएँ किनारे पर स्थित महादेव घाट की सीढ़ियों पर लगे एक शिला फलक पर अंकित मिला था। इसे 1885 में पीटर पेटर्सन ने प्रकाशित किया, किन्तु इसे ढूँढ निकालने का श्रेय फ्लीट के एक लिपिक को दिया जाता है, जिसे उन्होंने वहाँ यशोधर्मन् के अभिलेख की प्रतिलिपि करने के लिए भेजा था। तदन्तर फ्लीट ने इसे सम्पादन कर प्रकाशित किया, बाद में उनके पाठ, अनुवाद एवं व्याख्या सम्बन्धी भूलों को लेकर अनेक लेख प्रकाशित हुए हैं। इस लेख की भाषा संस्कृत एवं लिपि ब्राह्मी है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि यशोधर्मण्न् के मन्दसौर के स्तम्भ लेख की लिपि ब्राह्मी है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख (भाग-2)- परमेश्वरीलाल गुप्ता, पेज-102

56. निम्नलिखितेषु कतमं ब्राह्मणं सामवेदीयं नास्ति?
(A) ताण्ड्यब्राह्मण **(B) शतपथब्राह्मण**
(C) षड्विंशब्राह्मण **(D) छान्दोग्यब्राह्मण**

व्याख्या-ब्राह्मण ग्रन्थों के अर्थ में ब्राह्मण शब्द विभिन्न तीन अर्थों को लेकर ब्रह्मन् शब्द से अण् प्रत्यय करके बना है।
(1) वेदमन्त्रों की व्याख्या और विनियोग प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ को ब्राह्मण कहते हैं।
(2) शतपथ के अनुसार यज्ञों की व्याख्या और विवरण प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थों को ब्राह्मण कहते हैं।
(3) जिन वैदिक ग्रन्थों में वैदिक रहस्यों का उद्घाटन किया गया है, उन्हें ब्राह्मण कहते हैं।
ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ एवं यज्ञप्रक्रिया का सर्वाङ्गीण विवेचन है।
चारों वेदों के ब्राह्मण ग्रन्थ निम्नलिखित हैं-
ऋग्वेद के ब्राह्मण- ऋग्वेद से सम्बन्धित दो ब्राह्मण ग्रन्थ हैं - 1. ऐतरेय ब्राह्मण 2. शांखायन ब्राह्मण
शुक्लयजुर्वेदीय-शतपथ ब्राह्मण
कृष्णयजुर्वेदीय- तैत्तिरीय ब्राह्मण
सामवेदीय ब्राह्मण- 1. पञ्चविंश ब्राह्मण 2. षड्विंश ब्राह्मण 3. सामविधान ब्राह्मण 4. आर्षेय ब्राह्मण 5. देवताध्याय ब्राह्मण 6. मन्त्र ब्राह्मण 7. संहितोपनिषद् ब्राह्मण 8. वंश ब्राह्मण 10 जैमिनीय या आर्षेय ब्राह्मण 11. जैमिनीय उपनिषद् या छान्दोग्य ब्राह्मण।
अथर्ववेदीय ब्राह्मण- गोपथ ब्राह्मण

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ताण्ड्य ब्राह्मण,

षड्विंश ब्राह्मण, छान्दोग्य ब्राह्मण सामवेद से सम्बन्धित हैं। जबकि शतपथ ब्राह्मण, शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित है।

अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-130

57. काण्वशतपथब्राह्मणम् केन वेदेन सम्बद्धम् अस्ति?

(A) ऋग्वेदेन (B) अथर्ववेदेन

(C) यजुर्वेदेन (D) सामवेदेन

व्याख्या- यजुर्वेद मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त है- शुक्ल यजुर्वेद तथा कृष्णयजुर्वेद। शुक्लयजुर्वेद की भी दो शाखाएँ हैं। उनकी एक-एक संहिता प्राप्त होती है। माध्यन्दिन या वाजसनेयि संहिता तथा काण्वसंहिता।

सौ अध्याय होने के कारण शतपथ कहा जाता है, जिसकी व्याख्या गणरत्नमहोदधि आदि ने निम्न प्रकार से की है- **शतं पन्थानो मार्गानामाध्याया यस्य तत् शतपथम्** अर्थात् जिसमें सौ अध्याय रूपी मार्ग हैं, उसे शतपथ कहते हैं। काण्व शतपथ में 104 अध्याय हैं, तथापि शत संख्या के महत्त्व के कारण उसे शतपथ ही कहा जाता है। यह माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं में उपलब्ध है। माध्यन्दिन में सौ अध्याय और काण्व में 104 अध्याय हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि काण्वशतपथ ब्राह्मण यजुर्वेद से सम्बद्ध है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज-132

58. अधस्तनयुग्मानां वाल्मीकिरामायणस्योपजीविग्रन्थेषु केन सह कस्य सम्बन्धः? समुचितां तालिकां चिनुत

तालिका-I	तालिका-II
(क) रामायण मञ्जरी	i. विलोमकाव्यम्
(ख) यादवराघवीयम्	ii. चित्रकाव्यम्
(ग) अनर्घराघवम्	iii. महाकाव्यम्
(घ) रामलीलामृतम्	iv. नाटकम्

	(क)	(ख)	(ग)	(घ)
(A)	iii	i	iv	ii
(B)	iii	iv	i	ii
(C)	ii	iv	iii	i
(D)	iv	ii	i	iii

व्याख्या ⇒ **रामायणमञ्जरी-** आचार्य क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों को चार श्रेणी में विभक्त किया गया है, जिसमें रामायणमञ्जरी महाकाव्य है। इस महाकाव्य में रामायण की प्रख्यात कथाओं को संक्षेप रूप में प्रस्तुत किया गया है।

⇒ **यादवराघवीयम्-** वेंकटाध्वरी (16 शतक के पूर्वार्ध) ने यादव-राघवीय नामक लघुकाव्य में विलोम पद्धति से राम और कृष्ण दोनों का एकत्र वर्णन किया है। यह श्लेषकाव्य न होकर विलोम काव्य है, जिसमें साधारण क्रम से पढ़ने पर राम का चरित निकलता है और श्लोक को उलटे क्रम से पढ़ने पर कृष्ण का इसमें 300 श्लोक हैं।

⇒ **अनर्घराघव-** मुरारि की एकमात्र कृति अनर्घराघव प्राप्त होती है। यह सात अङ्कों का नाटक है, इसमें रामायण की कथावस्तु वर्णित है। विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा के लिए दशरथ से राम और लक्ष्मण को माँगते हैं यहाँ से लेकर रामराज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है।

⇒ **रामलीलामृतम्-** यह एक चित्रकाव्य है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रामायणमञ्जरी महाकाव्य, यादवराघवीयम् विलोमकाव्य, अनर्घराघवम् नाटक है रामलीलामृतम् चित्रकाव्य है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास- उमाशंकर शर्मा ऋषि, पेज-532

संस्कृत साहित्य का इतिहास- बलदेव उपाध्याय, पेज-309,223

59. 'यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते' इति केन उद्घोषितम्-

(A) भवभूतिना (B) भासेन

(C) माघेन (D) भट्टनारायणेन

व्याख्या- भवभूति प्रणीत उत्तररामचरितम् के प्रथम अङ्क में नान्दीपाठ के पश्चात् सूत्रधार भवभूति का परिचय देते हुए कहता है-

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते॥ (उ.रा.1.2)

यह देवी सरस्वती वशवर्तिनी के तुल्य जिस ब्रह्म भवभूति का अनुसरण करती है, उसके द्वारा बनाए हुए उत्तररामचरित नाटक का हम अभिनय करेंगे।

* राजशेखर ने निम्न श्लोक के द्वारा भास के नाटकों में स्वप्नवासवदत्तम् को सर्वश्रेष्ठ बताया है-

भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

अर्थात् समालोचकों ने भास के सभी नाटकों की कठोर परीक्षा की, किन्तु समालोचनारूपी अग्नि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक को न जला सकी, अर्थात् स्वप्नवासवदत्तम् निर्दोष नाटक सिद्ध हुआ।

* भारतीय विद्वानों ने महाकवि माघ की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।
स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा॥

जैसे माघ महीने की ठण्डक से पीड़ित बन्दर दुबक कर बैठे रहते हैं और केवल सूर्य की कान्ति का ध्यान करते हैं, वैसे ही कवि लोग माघ की प्रतिभा से अभिभूत होकर काव्य-रचना त्यागकर केवल भारवि का नाम लेते हैं।

* महाकवि भट्टनारायण द्वारा रचित एकमात्र ग्रन्थ वेणीसंहार प्राप्त होता है, जिसमें छह अङ्क हैं। इसके नायक भीम तथा नायिका द्रौपदी हैं। वेणीसंहार का प्रधान रस वीर है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते' यह वाक्य भवभूति के लिए है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- उत्तररामचरितम् (1.2)- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-4

60. अधस्तनीयानां युग्मानां समीचीनां तालिकां चिनुत

तालिका-I	तालिका-II
(क) पाणिनिः	i. वृत्तिः
(ख) कात्यायनः	ii. सूत्रम्
(ग) पतञ्जलिः	iii. वार्तिकम्
(घ) जयादित्यः	iv. इष्टिः

	(क)	(ख)	(ग)	(घ)
(A)	i	ii	iii	iv
(B)	i	iii	ii	iv
(C)	iii	ii	iv	i
(D)	ii	iii	iv	i

व्याख्या- पाणिनि- संस्कृत भाषा के समस्त प्राचीन आर्ष व्याकरणों में एकमात्र पाणिनीय व्याकरण अपने साङ्गोपाङ्ग रूप में सम्प्रति उपलब्ध होने से प्राचीन आर्ष वाङ्मय की एक अनुपम निधि है। पाणिनीय शास्त्र के चार नाम व्यवहृत उपलब्ध होते हैं - अष्टक, अष्टाध्यायी, शब्दानुशासन और वृत्तिसूत्र।

पाणिनि ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त है, अतः उसके अष्टक और अष्टाध्यायी ये दो नाम प्रसिद्ध हुए। अष्टाध्यायी आठ अध्यायों में तथा प्रत्येक अध्याय पादों में विभक्त है। अष्टाध्यायी में लगभग चार हजार सूत्र हैं।

पाणिनीय ग्रन्थ का शब्दानुशासन नाम महाभाष्य के आरम्भ में मिलता है .... **'शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्'।** पाणिनीय ग्रन्थ के वृत्तिसूत्र पद का प्रयोग महाभाष्य आदि अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

कात्यायन- पाणिनीय व्याकरण पर रचे वार्तिकों में कात्यायन के ही वार्तिक को अधिक प्रसिद्धि मिली। महाभाष्य में प्रायः इन्हीं के वार्तिकों का व्याख्यान है। कात्यायन का वार्तिक पाठ,पाणिनीय व्याकरण का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। इसके बिना पाणिनीय व्याकरण अधूरा रहता है।

पतञ्जलि - पतञ्जलि का महाभाष्य कात्यायनीय वार्तिकों के आधार पर ही रचा गया है। कात्यायन का वार्तिक पाठ सम्प्रति स्वतन्त्र रूप में उपलब्ध नहीं होता।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि **विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- व्याकरण महाभाष्य- जयशंकरलाल त्रिपाठी, पेज-4-5

61. ऋग्वेदे वरुणसूक्तस्य (1.2) ऋषिः कः?
(A) शुनःशेपः **(B) मधुच्छन्दाः**
(C) हिरण्यस्तूपः **(D) गौतमः**

व्याख्या-

सूक्त	ऋषि	देवता	मन्त्र संख्या
अग्निसूक्त	मधुच्छन्दा	अग्नि	09
वरुणसूक्त	शुनःशेप	वरुण	21
इन्द्रसूक्त	गृत्समद	इन्द्र	15
विष्णुसूक्त	दीर्घतमा	विष्णु	6
सवितृसूक्त	हिरण्यस्तूप	सविता	11
पुरुषसूक्त	नारायण	पुरुष	16
हिरण्यगर्भसूक्त	हिरण्यगर्भ	क सञ्ज्ञक प्रजापति	10
वाक् सूक्त	वाक्	परमात्मा	8

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि ऋग्वेदीय वरुणसूक्त के ऋषि शुनःशेप हैं। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह-हरिदत्त शास्त्री, पेज-68

62. 'क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः'। इत्यत्र 'अल्पविषया मतिः' इति कस्य कृते प्रयुक्तम्?
(A) विशाखदत्तस्य **(B) भासस्य**
(C) कालिदासस्य **(D) बाणभट्टस्य**

व्याख्या-

⇒ **क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।**
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥ (रघु. 1.2)

प्रस्तुत श्लोक कालिदास विरचित रघुवंशम् के प्रथम सर्ग से उद्धृत है, जिसमें कालिदास अपने विषय में कहते हैं कि कहाँ सूर्य से उत्पन्न वंश और कहाँ अल्प विषय जानने वाली मेरी बुद्धि! दुस्तर समुद्र को अज्ञानता के कारण छोटी नाव से पार करना चाहता हूँ।

⇒ विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस नाटक में सात अङ्क हैं, जिसके नायक चाणक्य चन्द्रगुप्त हैं, एवं इस नाटक में नायिका का अभाव है।

सुलभेष्वर्थलाभेषु परसंवेदने जनः।
क इदं दुष्करं कुर्यादिदानीं शिविना विना॥ (मुद्रा. 1.24)
चाणक्य द्वारा बार-बार राक्षस का परिवार माँगे जाने पर भी चन्दनदास जब अपने जीवन, परिवार व धन की परवाह किये बिना उसे नहीं सौंपता, तब चाणक्य मन-ही-मन उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहता है कि दूसरे की वस्तु दे देने पर, धन की प्राप्ति आसान होने पर अब अर्थात् इस कलियुग में शिवि के अतिरिक्त कौन सा मनुष्य इस कठिन कार्य को कर सकता है?

⟹ महाकवि भास द्वारा रचित प्रतिमानाटक के द्वितीय अङ्क में सीता के विषय में कहते हैं-
सूर्य इव गतो रामः सूर्य दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता॥ (प्रतिमा. 2.7)
सायंकालीन सूर्य के समान राम वन चले गए। सूर्य के पीछे जैसे दिवस चला जाता है, उसी प्रकार राम के पीछे लक्ष्मण चले गए। सूर्य और दिवस की समाप्ति पर छाया नहीं दिखती, उसी प्रकार अब सीता भी दिखाई नहीं पड़ती हैं।

⟹ हर्षचरितम् के प्रथम उच्छ्वास में बाणभट्ट कालिदास के विषय में कहते हैं-
निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥ (हर्षचरितम् 1.16)
नई उकसी हुई मञ्जरी के समान मधुर एवं सरस कालिदास की सूक्तियों में उत्तरमात्र से ही किसे आनन्द नहीं आता।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः', में 'अल्पविषया मतिः' कालिदास के लिए प्रयुक्त है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- रघुवंशम् (1/2)- हरगोविन्द शास्त्री, पेज 02

63. दुर्गेण कस्मिन् ग्रन्थे टीका लिखिता?
(A) बृहद्देवतायाम् **(B) बौधायनगृह्यसूत्रे**
(C) कात्यायनशुल्बसूत्रे **(D) निरुक्ते**

व्याख्या- दुर्गाचार्य द्वारा निरुक्त पर ऋज्वर्थ वृत्ति है। इसमें निरुक्त के प्रत्येक शब्द को उद्धृत करके उसकी व्याख्या की गई है। यह टीका अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण और प्रामाणिक है। निरुक्त के उपलब्ध व्याख्याकारों में दुर्गासिंह अथवा दुर्गाचार्य, समय की दृष्टि से सर्वप्रथम माने जा सकते हैं। दुर्गाचार्य का भाष्य बहुत विस्तृत है तथा अनेक स्थानों पर इस विद्वान् भाष्यकार ने निरुक्त के वाक्यों के एक से अधिक अर्थ प्रस्तुत किए हैं। दुर्ग की टीका के अध्ययन से यह पता चलता है कि दुर्ग के समय में भी निरुक्त के कुछ प्रामादिक पाठ तथा पाठभेद विद्यमान थे।

बृहद्देवता- बृहद्देवता के रचयिता आचार्य शौनक माने गए हैं। यह आठ अध्यायों में विभक्त है, जिसमें 1200 श्लोक हैं। प्रत्येक अध्याय में प्रायः पाँच-पाँच पद्यों का वर्ग है। निरुक्त में की गयी देवता विवेचना को इसमें पल्लवित किया गया है। निरुक्त से इसमें अन्य सामग्री भी ली गयी है। बृहद्देवता निरुक्त पर आश्रित ही नहीं, अपितु उसकी आलोचना भी करती है।

बौधायन गृह्यसूत्र- बौधायन गृह्यसूत्र कृष्णयजुर्वेदीय गृह्यसूत्र है। बौधायन गृह्यसूत्र के रचयिता बोधायन हैं, इनका समय 900 ई.पू. के लगभग माना जाता है। यह बौधायन कल्पसूत्र का एक विशिष्ट अंश है। श्री शामशास्त्री द्वारा सम्पादित इसका संस्करण 1920 ई. में मैसूर से प्रकाशित हुआ।

कात्यायन शुल्बसूत्र- कात्यायन शुल्बसूत्र का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद से है। कात्यायन का समय चतुर्थ शती ई.पू. माना जाता है। इस शुल्बसूत्र को कात्यायन शुल्ब परिशिष्ट या कातीय शुल्ब परिशिष्ट भी कहते हैं। इसमें वेदियों के निर्माण के लिए आवश्यक रेखागणितीय निर्देश है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दुर्ग द्वारा निरुक्त पर टीका लिखी गयी है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज-205

64. आर्हतदर्शने चतुर्विधबन्धेषु परिगणितो नास्ति-
(A) प्रकृतिबन्धः **(B) विषयबन्धः**
(C) स्थितिबन्धः **(D) प्रदेशबन्धः**

व्याख्या- बन्ध-
'मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषायवशाद्योगवशाच्चात्मा सूक्ष्मैकक्षेत्राव-गाहिनामनन्तप्रदेशानां पुद्‌गलानां कर्मबन्ध-योग्यानामादानमुपश्लेषणं यत्करोति स बन्धः' अर्थात् जब मिथ्या-दर्शन, अविरति (आसक्ति) प्रमाद (असावधानी) और कषाय (पाप) के कारण तथा योग के भी कारण आत्मा उन पुद्गलों का आदान अर्थात् आलिङ्गन करती है, जो पुद्गल (शरीर) अपने सूक्ष्म क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, अनन्त सभी स्थानों में निवास करते हैं तथा अपने पूर्वकृत कर्मों के बन्धन में पकने लायक होते हैं; इसी क्रिया का नाम बन्ध है।

बन्धन के भेद-
'बन्धश्चतुर्विध इत्युक्तं, प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधयः' प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभवबन्ध तथा प्रदेशबन्ध के भेद से बन्धन के चार भेद हैं।

➢ **प्रकृतिबन्ध-** प्रकृतिबन्धन आठ प्रकार का होता है, इसे मूल प्रकृति भी कहते हैं तथा द्रव्यों के धर्म और अधर्म नामक कर्मों

के अनुसार इसमें अन्तर भेद भी होता है।

➢ **स्थितबन्ध-** जैसे बकरी, गाय, भैंस आदि के दूध अपने माधुर्य के स्वभाव से किसी निश्चित काल तक च्युत नहीं होते, उसी प्रकार मूल प्रकृतियों में प्रथम तीन ज्ञानवरणादि तथा अन्तराय कुल मिलाकर चार कर्मों का इस सूत्र के अनुसार उत्कृष्ट स्थिति का परिणाम करोड़ों-करोड़ों तीस सागरोपम जैसे काल हैं, इतने समय तक मतवाले (हाथी) की तरह अपने स्वभाव को न छोड़ना स्थितिबन्ध है।

➢ **अनुभवबन्ध-** जैसे बकरी, गाय, भैंस आदि के दूध में तीव्र, मन्द आदि स्वभाव के अनुसार अपने-अपने कार्य करने की विशेष सामर्थ्य की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार कर्म पुद्गलों की अपने कार्य करने की विशेष सामर्थ्य उत्पन्न होती है। यही अनुभवबन्ध है।

➢ **प्रदेशबन्ध-** कर्म के रूप में परिणत पुद्गलों के जो द्वयणुकादि स्कन्ध हैं, जिनके अनन्त स्थान हुआ करते हैं, उनका अपने अवयवों में प्रवेश कर जाना ही प्रदेशबन्ध है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध तथा प्रदेशबन्ध ये बन्ध के अन्तर्गत परिगणित है जबकि विषयबन्ध बन्ध के अन्तर्गत परिगणित नहीं हैं। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- सर्वदर्शनसंग्रह- उमाशंकर शर्मा ऋषि,पेज-137-141

65. स्वेच्छाकेसरिणः स्वच्छस्वच्छायायासितेन्दवः।
त्रायन्तां वो मधुरिपोः प्रपन्नार्तिच्छिदो नखाः॥
इत्यस्मिन् मङ्गलाचरणे ग्रन्थकारेण इष्टदेवस्य कस्य रसाभिव्यञ्जक-स्वरूपस्य स्मरणं कृतम् -

(A) शृङ्गाररसाभिव्यञ्जकस्य
(B) वीररसाभिव्यञ्जकस्य
(C) शान्तरसाभिव्यञ्जकस्य
(D) करुणरसाभिव्यञ्जकस्य

व्याख्या- आनन्दवर्धन ध्वन्यालोक के मंगलाचरण में नृसिंह रूपी विष्णु की स्तुति करते हुए कहते हैं-

स्वेच्छाकेसरिणः स्वच्छस्वच्छायायासितेन्दवः।
त्रायन्तां वो मधुरिपोः प्रपन्नार्तिच्छिदो नखाः॥

स्वयं अपनी इच्छा से सिंह (नृसिंह) रूप धारण किए हुए मधुरिपु विष्णु भगवान् के, अपनी निर्मल कान्ति से चन्द्रमा को लज्जित करने वाले शरणागतों के दुःखनाशन में समर्थ, नख तुम सब की रक्षा करें।

स्पष्टीकरण- ग्रन्थकार ने विघ्नों के नाश और उन पर विजय प्राप्ति के लिए वीर रस के स्थायिभाव उत्साह की विशेष उपयोगिता की दृष्टि से ही ग्रन्थकार ने अपने इष्ट देव के वीररसाभिव्यञ्जक स्वरूप का स्मरण किया है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- ध्वन्यालोक (1.1)- आचार्य विश्वेश्वर, पेज-1

66. पाणिनीयशिक्षायाम् अधमपाठकेषु को न परिगणितः?

(A) गीती **(B) लिखितपाठकः**
(C) पदानि विच्छिद्यपाठकः **(D) शीघ्री**

व्याख्या- महर्षि पाणिनि द्वारा रचित पाणिनीय शिक्षा ऋग्वेद का शिक्षा ग्रन्थ है, जिसमें साठ श्लोक हैं। पाणिनीय शिक्षा में स्वर, व्यञ्जन, अधम पाठक, उत्तम पाठक आदि के लक्षण वर्णित हैं-

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः॥ (पा.शि.32)

गाने की तरह पढ़ने वाला, ज्यादा शीघ्रता से पढ़ने वाला, शिर हिलाकर पढ़ने वाला, अनभ्यस्त अकण्ठस्थीकृत वेदादिशास्त्र को लेखन के आधार पर पढ़ने वाला, अर्थज्ञान के बिना पढ़ने वाला और शुष्ककण्ठत्व-न्यूनप्राणत्वादि दोषयुक्त रूप में पढ़ने वाला ये छह प्रकार के पाठक पाठकों में अधम हैं।

उत्तम पाठक के लक्षण-

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः॥ (पा.शि.33)

मधुरता, वर्णों की स्पष्टता, पद विभाग, सुस्वरता, लययुक्तता ये छह पाठक सम्बन्धी गुण जानने चाहिए।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गीती, लिखित पाठक तथा शीघ्री ये अधम पाठक के लक्षण हैं, जबकि पदानि विच्छिद्य पाठकः' यह अधम पाठक के लक्षण में नहीं है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- पाणिनीय शिक्षा- शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन,पेज-43

67. 'विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतान्।' इति कस्य ग्रन्थस्य वचनमस्ति?

(A) मनुस्मृत्याः **(B) याज्ञवल्क्यस्मृत्याः**
(C) पराशरस्मृत्याः **(D) नारदस्मृत्याः**

व्याख्या-

विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतान्।
ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्युः समांशिनः॥ (याज्ञ.2.114)

उपर्युक्त श्लोक याज्ञवल्क्यस्मृति के व्यवहाराध्याय से उद्धृत है, जिसमें दाय के दो भेद करते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं- यदि पिता सम्पत्ति का विभाग करें, तो उसे अपनी इच्छानुसार पुत्रों में बाँटे।

ज्येष्ठ पुत्र को श्रेष्ठभाग, मझले को मध्यम और सबसे छोटे को कनिष्ठ भाग देकर विभाजन करें; अथवा सबको समान अंश दे। याज्ञवल्क्यस्मृति में लेख्य के दो प्रकार बताए हैं-

यः कश्चिदर्थो निष्णातः स्वरुच्या तु परस्परम्।
लेख्यं तु साक्षिमत्कार्यं तस्मिन्धनिकपूर्वकम्॥ (याज्ञ 2.84)

जब धनी और अधमर्ण ऋण में अपनी इच्छा से परस्पर कोई बात तय हुई हो, तो साक्षियों के सामने उसे लिख देना चाहिए। लेख में धनिक का उल्लेख करें।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतान्, यह पंक्ति याज्ञवल्क्यस्मृति के द्वितीय अध्याय (व्यवहाराध्याय) में वर्णित है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

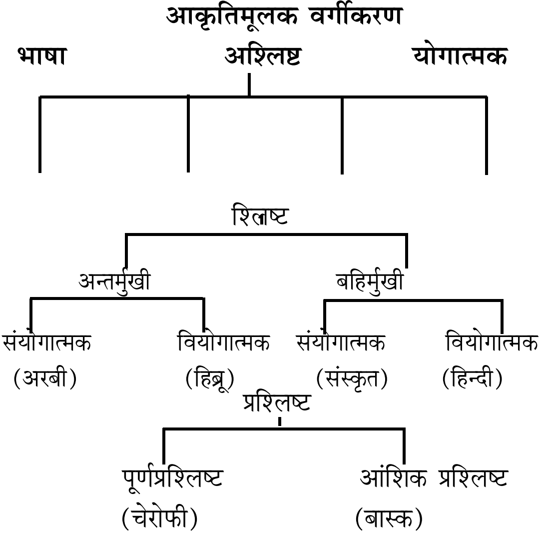
स्रोत- याज्ञवल्क्यस्मृति (2.114)

68. आकृतिमूलकवर्गीकरणे हिन्दीभाषा मन्यते-
(A) प्रश्लिष्ट बहिर्मुखी
(B) श्लिष्ट बहिर्मुखी वियोगात्मिका
(C) श्लिष्ट बहिर्मुखी संयोगात्मिका
(D) श्लिष्टान्त वियोगात्मिका

व्याख्या- विश्व की भाषाओं के दो प्रकार के वर्गीकरण हैं- आकृतिमूलक और पारिवारिक। आकृतिमूलक वर्गीकरण के दो भेद हैं- योगात्मक और अयोगात्मक। योगात्मक के तीन भेद हैं- श्लिष्ट योगात्मक, अश्लिष्ट योगात्मक तथा प्रश्लिष्ट योगात्मक। योगात्मक भाषाएँ प्रकृति और प्रत्यय के संयोग से बनी हुई होती हैं। इस वर्गीकरण का श्रेय 'प्रो. श्लेगल' को है।

आकृतिमूलक वर्गीकरण-

आकृतिमूलक वर्गीकरण का आधार पदों और वाक्यों की रचना है। पद किस प्रकार बनते हैं, वाक्यों की रचना किस प्रकार होती है, इस आधार पर किए जाने वाले वर्गीकरण को आकृतिमूलक कहते हैं। इसे पदरचनात्मक वर्गीकरण भी कहते हैं। इस वर्गीकरण को सिन्टैक्स वाक्यरचना के आधार पर होने से 'वाक्य रचनात्मक' और टाइप के आधार पर होने से 'टिपिकल रूपात्मक' भी कहते हैं।



स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि श्लिष्ट बहिर्मुखी वियोगात्मिका, यह आकृतिमूलक वर्गीकरण से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 357

69. निम्नलिखितेषु ऋग्वेदस्य प्राचीनतमो भाष्यकारः कोऽस्ति?
(A) वेङ्कटमाधव (B) सायण
(C) उव्वट (D) स्कन्दस्वामी

व्याख्या- स्कन्दस्वामी- मन्त्रक्रम से ऋग्वेद के भाष्य करने वाले उपलब्ध भाष्यकारों में स्कन्दस्वामी सबसे प्राचीन भाष्यकार हैं। उनके भाष्य के प्रत्येक अध्याय के अन्त में यह श्लोक उद्धृत है-

बलभीविनिवासस्येतामृगर्थागमसंहृतिम्।
भर्तृध्रुवसुतश्चक्रे स्कन्दस्वामी यथास्मृति॥

ये स्कन्दस्वामी गुजरात की प्रसिद्ध नगरी बलभी के निवासी थे। इनके पिता का नाम भर्तृध्रुव था। ये शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार हरिस्वामी के गुरु थे। स्कन्दस्वामी ने 600-625 ई. के मध्य ऋग्वेद पर भाष्य लिखा था।

वेंकटमाधव- सम्पूर्ण ऋग्वेद पर वेंकटमाधव ने अपना भाष्य लिखा है और वह आज उपलब्ध है। वेंकटमाधव के पितामह का नाम माधव, पिता का नाम वेंकट तथा माता का नाम सुन्दरी था। वेंकटमाधव का समय 13वीं शती से पूर्व है। वेंकटमाधव का भाष्य अभी तक चार स्थानों से प्रकाशित हुआ है। सर्वप्रथम पं.

साम्बशिव शास्त्री के सम्पादकत्व में त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज में दो भागों में क्रमशः 1929ई. तथा 1935ई. में इसका प्रकाशन हुआ।

सायण- वेद के भाष्यकारों में सायण का स्थान सर्वोपरि है। वैदिक साहित्य में उपलब्ध प्रायः सभी ग्रन्थों पर इन्होंने अपना भाष्य लिखा। सायण आन्ध्र प्रान्त के अन्तर्गत तुङ्गभद्रा नदी के दक्षिण तट पर स्थित विजयनगर राज्य के निवासी थे। इनके पिता का नाम मायण तथा माता का नाम श्रीमती या श्रीमायी था। आचार्य सायण का समय 1315ई.से 1387ई. तक है।

उव्वट- यह नाम उव्वट और उवट दोनों प्रकार से लिखा जाता है। यजुर्वेद भाष्य के अन्त में इन्होंने अपना परिचय दिया है। ये आनन्दपुर निवासी वज्रट के पुत्र थे। राजा भोज के शासनकाल में इन्होंने वेदभाष्य किया। इनका समय 11वीं शती ई. है। इन्होंने यजुर्वेद भाष्य के अतिरिक्त निम्नलिखित ग्रन्थ लिखे-

1. ऋक्प्रातिशाख्य की टीका
2. यजुःप्रातिशाख्य की टीका
3. ऋक्सर्वानुक्रमणी पर भाष्य
4. ईशोपनिषद् पर भाष्य।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ऋग्वेद के सबसे प्राचीन भाष्यकार स्कन्दस्वामी हैं। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 22

70. शब्दे व्याकरणे स्वीकारे महाभाष्ये का शङ्का नोत्थापिता?

(A) ल्युडर्थस्य अनुपपन्नतायाः

(B) तत्र भव इत्यस्य अनुपपन्नतायाः

(C) प्रोक्तादीनां तद्धितार्थानाम् अनुपपन्नतायाः

(D) षष्ठ्यर्थस्य अनुपपन्नतायाः

व्याख्या- व्याकरण महाभाष्य के पस्पशाह्निक में व्याकरण को शब्द मानने पर तीन दोष तथा सूत्र मानने पर दो दोष होते हैं-

व्याकरण का अर्थ शब्द मानने पर तीन दोष-

1. ल्युट् प्रत्यय के अर्थ की अनुपपत्ति- 'शब्द पक्ष में' व्याक्रियते शब्दा अनेन इस व्युत्पत्ति में वि+आङ्+कृ+ल्युट् =अन यहाँ करण अर्थ में ल्युट् होता है, किन्तु व्याकरण का अर्थ शब्द मानने पर यह अर्थ उत्पन्न नहीं हो सकता, क्योंकि व्याकरण = शब्द के द्वारा किसी की व्युत्पत्तिव्याकृति नहीं की जाती है। इसके विपरीत शब्द की ही व्याकृति (प्रकृति-प्रत्यय विभागादि-ज्ञान) की जाती है। अतः शब्द व्याकृति का कारण नहीं अपितु कर्म है।

2. 'तत्र भवः' भव अर्थ वाले तद्धित प्रत्यय की 'अनुपपत्ति- व्याकरणे भवो योगः वैयाकरणः' कहा जाता है, परन्तु व्याकरण=शब्द में तो कोई योग नहीं होता है, अपितु एक सूत्र में ही कहीं-कहीं दूसरा योग सूत्र कल्पित कर लिया जाता है।

3. प्रोक्त अर्थ वाले तद्धित प्रत्यय भी नहीं उपपन्न होते हैं, क्योंकि पाणिनिना प्रोक्तम् इस अर्थ में पाणिनीयम् आदि शब्द बनाने के लिए 'तेन प्रोक्तम्' से तद्धित प्रत्यय होते हैं, परन्तु व्याकरण शब्द मानने पर ये प्रत्यय नहीं हो सकते, क्योंकि पाणिनि आदि के द्वारा प्रोक्त शब्द नहीं अपितु सूत्र ही प्रोक्त है।

व्याकरण का अर्थ सूत्र मानने पर दोष-

1. व्याकरणसूत्रम् - यहाँ षष्ठी का अर्थ उपपन्न नहीं हो सकता, क्योंकि षष्ठी का अर्थ सम्बन्ध है और वह दो भिन्न पदार्थों में ही होता है, जैसे राज्ञः पुरुषः। परन्तु जब व्याकरण शब्द का अर्थ सूत्र माना जाता है, तब व्याकरण और सूत्र एक ही हो जाते हैं, दोनों में भेद नहीं है, अतः षष्ठ्यर्थ भेद सम्बन्ध की उपपत्ति नहीं हो सकती।

2. दूसरा दोष यह है कि 'व्याकरणात् शब्दान् प्रतिपद्यामहे' अर्थात् व्याकरण से शब्दों का ज्ञान करते हैं, ऐसा व्यवहार होता है, किन्तु इस सूत्रपक्ष में नहीं हो सकता क्योंकि केवल सूत्र से शब्दों की प्रतिपत्ति का ज्ञान नहीं होता है। उसके लिए तो व्याख्यान की भी आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण, प्रत्युदाहरण, वाक्य का अध्याहार ये सब मिलकर ही व्याख्यान होते हैं। केवल सूत्र का सन्धिविच्छेद कर देना व्याख्यान नहीं है।

अतः व्याकरण का अर्थ सूत्र को मानने पर उक्त दो दोष हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि व्याकरण का अर्थ शब्द मानने पर षष्ठ्यर्थ अनुपपन्नता के विषय में शंका नहीं उठायी गयी। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- व्याकरण महाभाष्य- जयशङ्करलाल त्रिपाठी, पेज 119-123

71. अशोकस्य शाहबाजगढी अभिलेखः कुत्र प्राप्यते?

(A) जूनागढ़ गुजरातप्रान्ते **(B) पेशावर-पाकिस्तानदेशे**

(C) गुर्जरा मध्यप्रदेशे **(D) भावू राजस्थान प्रदेशे**

व्याख्या- अशोक पहला भारतीय शासक था, जिसने अभिलेखों के सहारे सीधे अपनी प्रजा को सम्बोधित किया। अशोक के अभिलेखों की भाषा प्राकृत थी। दक्षिण भारत में अशोक के जो भी अभिलेख मिले हैं, वे अधिकतर दक्षिण के सोने की खानों के आस-पास मिले हैं। अशोक के अभिलेखों का विभाजन तीन वर्गों में किया जा सकता है-

शिलालेख, स्तम्भलेख, और गुहालेख।

शिलालेख
दीर्घशिलालेख — लघुशिलालेख

दीर्घ शिलालेख- इनको चतुर्दश शिलालेख भी कहते हैं, क्योंकि

यह 14 लेखों का समुच्चय है; जो कि आठ स्थानों से प्राप्त हुए हैं।

बृहद् शिलालेख	स्थिति	खोजकर्ता	वर्ष
शाहबाजगढ़ी	पाकिस्तान का पेशावर जिला	जनरलकोर्ट	1836
मानसेहरा	पाकिस्तान का हाजरा जिला	कनिंघम, कैप्टन ले.	
कालसी	उत्तराखण्ड का देहरादून जिला	फोरेस्ट	1860
गिरनार	गुजरात के जूनागढ़ में	कर्नलटाड	1822
एर्दगुडि	आन्ध्रप्रदेश का कर्नूल जिला	अणुघोष	1929
धौली	ओडिशा का पुरी जिला	किटो	1837
जौगड़	ओडिशा का गंजाम जिला	वाल्टर इलियट	1850
सोपारा	महाराष्ट्र का थाने जिला	--	--

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अशोक का शाहबाजगढ़ी अभिलेख पाकिस्तान के पेशावर जिले से जनरल कोर्ट के द्वारा 1836ई. में प्राप्त हुआ। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- प्राचीन भारत- सौरभ चौबे, पेज-208

72. तर्कभाषानुसारम् इन्द्रियार्थसन्निकर्षः कस्य करणम्?
(A) अनुमानस्य **(B) प्रत्यक्षस्य**
(C) उपमानस्य **(D) इन्द्रियस्य**

व्याख्या- आचार्य केशवमिश्र प्रणीत तर्कभाषा न्यायदर्शन का प्रकरण ग्रन्थ है, जिसमें सोलह पदार्थों का विवेचन है। तर्कभाषा में चार प्रकार के प्रमाणों का वर्णन है-

प्रत्यक्ष प्रमाण- साक्षात्कारिप्रमाकरणं प्रत्यक्षम्। साक्षात्कारिणी च प्रमा सैवोच्यते या इन्द्रियजा, अर्थात् साक्षात्कार करने वाली प्रमा का करण प्रत्यक्ष कहलाता और साक्षात्कार करने वाली प्रमा वह है, जो इन्द्रिय से उत्पन्न होती है।

प्रत्यक्ष प्रमा के दो भेद हैं- सविकल्पक तथा निर्विकल्पक और इसका करण तीन प्रकार का है-

(i) कभी इन्द्रिय
(ii) कभी इन्द्रियार्थ–सन्निकर्ष
(iii) कभी ज्ञान।

प्रत्यक्ष प्रमा का द्वितीय करण है। इन्द्रियार्थसन्निकर्ष उसके विषय में कहते हैं- **'यदा निर्विकल्पकानन्तरं सविकल्पकं नामजात्यादियोजनात्मकं डित्थोऽयं, ब्राह्मणोऽयं, श्यामोऽयमेति विशेषणविशेष्यावगाहि ज्ञानमुत्पद्यते, तदेन्द्रियार्थसन्निकर्षः करणम्'** अर्थात् निर्विकल्पक ज्ञान के अनन्तर नाम जाति आदि से विशिष्ट यह डित्थ है, ब्राह्मण है, यह श्याम है, इस प्रकार का विशेषण तथा विशेष्य का ग्रहण करने वाला सविकल्पक ज्ञान उत्पन्न होता है, तब इन्द्रियार्थसन्निकर्ष करण होता है।

इन्द्रिय तथा अर्थ का जो सन्निकर्ष प्रत्यक्ष ज्ञान का निमित्त होता है, वह छः प्रकार का होता है- 1. संयोग 2. संयुक्तसमवाय 3. संयुक्तसमवेत समवाय 4. समवाय 5. समवेत समवाय 6. विशेष्य-विशेषणभाव

अनुमान प्रमाण- 'लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम्। येन हि अनुमीयते तदनुमानम्। लिङ्गपरामर्शेन चानुमीयतेऽतो लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम्' लिङ्गपरामर्श ही अनुमान है, जिससे अनुमिति की जाती है वह अनुमान कहलाता है। लिङ्गपरामर्श से अनुमिति की जाती है, अतः लिङ्गपरामर्श ही अनुमान है।

उपमान प्रमाण- 'अतिदेशवाक्यार्थस्मरणसहकृतं गोसादृश्यविशिष्ट-पिण्डज्ञानमुपमानम्' अतिदेश वाक्य के अर्थ का स्मरण करने के साथ गौ की समानता से युक्त पिण्ड का ज्ञान ही उपमान है।

उपमान प्रमाण में उपमिति प्रमा का करण है। गौ की समानता से युक्त पिण्ड ज्ञान के पश्चात् यह पिण्ड गवय शब्द का वाच्य है। इस प्रकार जो गवय शब्द तथा सञ्ज्ञी वस्तु गोसदृश पिण्ड के सम्बन्ध की प्रतीति होती है, वह उपमिति कहलाती है।

'सञ्ज्ञासञ्ज्ञिसम्बन्धप्रतीतिरुपमितिः' अर्थात् सञ्ज्ञा और सञ्ज्ञी के सम्बन्ध की प्रतीति ही उपमिति है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इन्द्रियार्थसन्निकर्ष प्रत्यक्ष प्रमा का करण है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- तर्कभाषा- आचार्य विश्वेश्वर, पेज 53

73. अनुमितिज्ञाने व्यापार उच्यते?
(A) करणम् **(B) परामर्शः**
(C) व्याप्तिः **(D) हेतुः**

व्याख्या- विश्वनाथपञ्चानन भट्टाचार्य द्वारा रचित न्यायसिद्धान्तमुक्तावली में अनुमान प्रमाण के प्रसंग में अनुमिति का लक्षण करते हुए कहते हैं- अनुमिति में व्याप्ति का ज्ञान ही करण होता है और परामर्श ही व्यापार होता है। जैसे कि जिस पुरुष ने महानस आदि में, धुएँ

आदि में आग की व्याप्ति का ग्रहण किया है अर्थात् धुआँ और आग का व्यभिचाररहित सम्बन्ध जान लिया है, बाद में वही पुरुष कहीं पर्वत आदि में मूल से विच्छेद न हुए धुएँ की रेखा को देख लेता है, उसके बाद धुआँ वह्नि से व्याप्य है इस प्रकार की व्याप्ति का स्मरण उसको हो जाता है और बाद में यह वह्नि से व्याप्य धुएँ वाला है ऐसा ज्ञान हो जाता है। यही ज्ञान परामर्श कहा जाता है। उसके बाद पर्वत वह्नि से युक्त है, ऐसी अनुमिति हो जाती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अनुमिति ज्ञान में परामर्श ही व्यापार होता है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (अनुमानखण्ड-66)- गजाननशास्त्री मुसलगाँवकर, पेज-1

74. अधोलिखितेषु केन्टुम् वर्गे नास्ति

(A) जर्मनभाषा **(B) रूसीभाषा**

(C) फ्रेञ्चभाषा **(D) ग्रीकभाषा**

व्याख्या- भारोपीय परिवार की भाषाओं को ध्वनि के आधार पर दो भागों में विभाजित किया गया है- 1. केन्टुम् वर्ग 2. शतम् वर्ग। इस विभाजन का श्रेय 'प्रो. अस्कोली' को जाता है। यह विभाजन उन्होंने 1870 ई. में किया। भारोपीय परिवार का विभाजन निम्नवत् है-

भारोपीय परिवार

शतम् वर्ग	**केन्टुम् वर्ग**
(1) भारत-ईरानी	(1) ग्रीक
(2) बाल्टो-स्लाविक	(2) केल्टिक
(3) आर्मीनी	(3) जर्मानिक या ट्यूटानिक
(4) अल्बानी	(4) इटालिक
	(5) हिटाइट
	(6) तोखारी

इटालिक या रोमान्स वर्ग का क्षेत्रीय विभाजन इस प्रकार है- 1. इटालियन 2. फ्रेञ्च 3. स्पेनिश 4. रूमानियन 5. पुर्तगाली

बाल्टो-स्लाविक- शतम् वर्ग- रूसी भाषा

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि जर्मन, फ्रेञ्च, ग्रीक, केन्टुम् वर्ग के अन्तर्गत हैं, जबकि रूसी भाषा शतम् वर्ग के अन्तर्गत परिगणित है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-385

75. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः, अत्र 'जिजीविषेत्' पदस्य कोऽर्थः ?

(A) जीवितुमिच्छेत् **(B) जेतुमिच्छेत्**

(C) ज्ञातुमिच्छेत् **(D) प्राप्तुमिच्छेत्**

व्याख्या-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ (ईशो.-2)

उपर्युक्त मन्त्र शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित ईशावास्योपनिषद् से उद्धृत है। प्रस्तुत मन्त्र में श्रुति का यह उपदेश है कि आत्मतत्त्व से अपरिचित व्यक्ति के आत्मोपलब्धि (आत्मज्ञान) के अयोग्य होने के कारण उसके पूर्व चित्तशुद्धय शास्त्र विहित अग्निहोत्र कर्म निष्काम भाव से करें।

मन्त्रार्थ- इस लोक में शास्त्र विहित कर्मों को करते हुए ही सौ वर्ष जीवित रहने की इच्छा करें। जिस प्रकार तुझ मनुष्य में कर्म लिप्त नहीं होता है, इससे भिन्न अन्य कोई मार्ग नहीं है।

पदों के अर्थ-

कुर्वन्नेव- निर्वर्तयन्नेवेह कर्माण्यग्निहोत्रादीनि

जिजीविषेत् - जीवितुमिच्छेत्

शतम् - शतसंख्याकाः समाः संवत्सरान्

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जिजीविषेत् पद का अर्थ जीवितुमिच्छेत् है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- ईशादि नौ उपनिषद्- गीता प्रेस, पेज-28

76. महाभारतोपजीविकाव्यं नास्ति

(A) बृहत्कथामञ्जरी **(B) शिशुपालवधम्**

(C) मध्यमव्यायोग **(D) भारतमञ्जरी**

व्याख्या-

बृहत्कथामञ्जरी- आचार्य क्षेमेन्द्र ने आचार्य गुणाढ्य की बृहत्कथा का अनुवाद इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया। बृहत्कथामञ्जरी में 18 लम्बक अर्थात् अध्याय हैं। इस कथा का नायक वत्सराज उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त है। प्राचीन कथानकों को सरस शैली में क्षेमेन्द्र ने निबद्ध किया है। क्षेमेन्द्र ने सूचित किया है कि उन्हें मूल बृहत्कथा की प्रति उपलब्ध थी।

शिशुपालवधम्- महाकवि माघ द्वारा रचित शिशुपालवध महाकाव्य में 20 सर्ग हैं, जिसका उपजीव्य महाभारत का सभापर्व है। शिशुपालवध महाकाव्य का नायक श्रीकृष्ण तथा प्रतिनायक शिशुपाल है।

मध्यमव्यायोग- महाकवि भास द्वारा मध्यमव्यायोग नामक एकांकी नाटक है। मध्यम पाण्डव भीम के द्वारा घटोत्कच के हाथ से एक ब्राह्मण पुत्र को बचाने का वर्णन है। भीम अपने पुत्र घटोत्कच को

देखकर आनन्दित होता है तथा पत्नी हिडिम्बा से उसका पुनर्मिलन होता है। यह महाभारताश्रित रूपक है।

भारतमञ्जरी- आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा भारतमञ्जरी महाभारत का संक्षिप्त रूपान्तर है। इस रचना के द्वारा क्षेमेन्द्र ने साहित्य जगत् में बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की और उन्हें इसी रचना के कारण 'व्यासदास' की उपाधि दी गयी। इसमें 10892 श्लोक तथा 19 पर्व हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शिशुपालवधम्,मध्यमव्यायोग तथा भारतमञ्जरी महाभारत पर आश्रित हैं, जबकि बृहत्कथामञ्जरी गुणाढ्य की बृहत्कथा पर आश्रित है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशंकर शर्मा ऋषि, पेज-424

77. दर्शयज्ञः कस्यां तिथौ क्रियते

(A) पौर्णमास्याम् **(B) अमावस्याम्**
(C) अष्टम्याम् **(D) चतुर्दश्याम्**

व्याख्या- अथर्ववेद में उल्लेख है कि सर्वप्रथम अथर्वा ऋषि ने ही यज्ञपद्धति का आविष्कार किया और उसका प्रचार किया। अंगिरस् ऋषियों ने यज्ञ की उपयोगिता आदि पर मनन-चिन्तन किया और उसके फलस्वरूप अन्न आदि प्राप्त किया।

* ऐतरेय ब्राह्मण में समस्त श्रौतयज्ञों को पाँच भागों में बाँटा गया है- 1. अग्निहोत्र 2. दर्शपौर्णमास 3. चातुर्मास्य 4. पशु 5. सोम दर्शपौर्णमास यज्ञ दो यज्ञों का सम्मिलित रूप है- दर्शयज्ञ तथा पौर्णमास यज्ञ।

दर्शयज्ञ अमावस्या तथा पौर्णमास यज्ञ पूर्णिमा को किया जाता है। दर्शयज्ञ (अमावस्या) में अग्नि के लिए पुरोडाश और इन्द्र के लिए दही तथा दूध के बने द्रव्य की आहुतियाँ दी जाती हैं। पौर्णमास यज्ञ (पूर्णिमा) में अग्नि और सोम के लिए घी और पुरोडाश (पिसे हुए चावल का पूआ) की आहुति दी जाती है।

स्पष्टीकरण- विवेचन से स्पष्ट है कि दर्शयज्ञ अमावस्या तिथि को किया जाता है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- श्रौतयज्ञ परिचय-वेणीरामशर्मा गौड़, पेज-8

78. 'यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्' मन्त्रांशोऽयं कस्य सूक्तस्य विद्यते?

(A) सूर्यसूक्तस्य **(B) वरुणसूक्तस्य**
(C) अग्निसूक्तस्य **(D) इन्द्रसूक्तस्य**

व्याख्या ⇒ इन्द्रसूक्त-

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥
(ऋ. 2.12.1)

उपर्युक्त मन्त्र ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के 12वें सूक्त से उद्धृत, है जिसे इन्द्रसूक्त के नाम से जाना जाता है। इस सूक्त के ऋषि गृत्समद तथा देवता इन्द्र हैं। मन्त्र में प्रयुक्त छन्द त्रिष्टुप् है।

मन्त्रार्थ- हे मनुष्यों! अथवा हे असुरों! जो उत्पन्न होते ही सब देवताओं में प्रमुख परम मनस्वी हुआ, दिव्य गुणों से युक्त होते हुए जिसने यज्ञ से या वृत्र के वध आदि कर्मों से अन्य देवताओं को अलंकृत किया, या अन्य देवताओं की शक्ति का अतिक्रमण किया, जिसके शारीरिक बल से द्युलोक, पृथिवी लोक डरते थे, या काँपते थे, महती सेना के महत्त्व से युक्त वही इन्द्र है।

⇒ सूर्यसूक्त-

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥
(ऋ. 1.115.1)

उपर्युक्त ऋचा ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 115वें सूक्त के रूप में उद्धृत है, जिसे सूर्यसूक्त के रूप में जाना जाता है, इस सूक्त के ऋषि कुत्स तथा देवता सूर्य हैं। मन्त्र में प्रयुक्त छन्द त्रिष्टुप् है।

मन्त्रार्थ- किरणों का या देवताओं का समूह रूप, आश्चर्यजनक और मित्र, वरुण एवं अग्नि का अर्थात् सम्पूर्ण संसार का चक्षु अर्थात् प्रकाशक वह सूर्य देवता उदय हुआ है। उदय होने के बाद उसने द्युलोक, पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोक को सब ओर से प्रकाश से भर दिया है। वह सूर्य जङ्गम अर्थात् गतिशील और तस्थुष अर्थात् स्थावर संसार की आत्मा है। सूर्य उदय होने पर स्थावर और जङ्गम की संसार में वृद्धि होती है।

⇒ वरुण सूक्त-

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्।
मिनीमसि द्यविद्यवि॥ (ऋ.1.25.1)

उपर्युक्त मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 25वें सूक्त के रूप में उद्धृत है जिसे वरुण सूक्त के रूप में जाना जाता है। इस सूक्त के ऋषि शुनःशेप तथा देवता वरुण हैं। मन्त्र में प्रयुक्त छन्द गायत्री है।

मन्त्रार्थ- हे वरुण देव! जिस प्रकार संसार में प्रजाजन कभी प्रमाद करते हैं, उसी प्रकार हम भी आपके नियमों का जो कुछ भी प्रतिदिन प्रमाद से उल्लंघन करते हैं, हमारे प्रमादों का परिमार्जन करके उन नियमों को पूर्ण बनाइए।

अग्निसूक्त- अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ (ऋ. 1.1.1)

यजमान की कामनाओं को पूरा करने वाले यज्ञ के पुरोहित, दान आदि गुणों से सम्पन्न, देवताओं के ऋत्विक् और होता एवं रत्नों अर्थात् यज्ञ के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ पदार्थों को धारण करने वाले अग्नि देवता की मैं ऋषि स्तुति करता हूँ।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि 'यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्,' मन्त्र इन्द्र सूक्त से उद्धृत है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह (2.12.1)- हरिदत्त शास्त्री, पेज-177

79. भावनायां लिङ्गादिज्ञानं करणं भवति -
(A) भावनोत्पादकत्वेन
(B) शब्दभावनानिवर्तकत्वेन
(C) आर्थीभावनोत्पादकत्वेन
(D) शब्दभावनाभाव्यनिर्वर्तकत्वेन

व्याख्या- लौगाक्षिभास्कर प्रणीत अर्थसंग्रह मीमांसा का प्रकरण ग्रन्थ है, जिसमें भावना का लक्षण निम्नवत् है-
'भावना नाम भवितुर्भवनानुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः'
उत्पन्न होने वाली की उत्पत्ति में अनुकूल, उत्पत्ति का कारणभूत जो उत्पादयिता का व्यापारविशेष होता है, उसका नाम भावना है। भावना के दो भेद हैं- शाब्दीभावना तथा आर्थीभावना।
⇒ **शाब्दीभावना- 'तत्र पुरुषप्रवृत्त्यनुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः शाब्दीभावना'**– अर्थात् उनमें भावयिता का पुरुष में प्रवृत्ति उत्पन्न करने वाला व्यापारविशेष शाब्दी भावना है।
शाब्दी भावना वैदिक वाक्य में प्रयोजक पुरुष का अभाव होने के कारण लिङ्गादिशब्दनिष्ठ होती है। इसीलिए 'शाब्दीभावना' इस नाम का व्यवहार किया जाता है। शाब्दी भावना के तीन अंश होते हैं– साध्य, साधन तथा इतिकर्त्तव्यता, साधन की आकांक्षा होने पर लिङ्ग आदि का ज्ञान करण के रूप में अन्वित होता है, किन्तु उसका करणत्व भावनोत्पादक के रूप में नहीं है, क्योंकि उसके लिङ्गादिज्ञान के पहले भी शब्द में उसकी सत्ता रहती है किन्तु भावना का प्रकाशक होने से अथवा शाब्दी भावना के भाव्य का सम्पादक होने से ही लिङ्गादिज्ञान शाब्दीभावना का हेतु है-
'किन्तु भावनाज्ञापकत्वेन शब्दभावनाभाव्यनिर्वर्तकत्वेन वा'।
⇒ **आर्थी भावना- 'प्रयोजनेच्छाजनितक्रियाविषयव्यापार आर्थीभावना'**
अर्थात् प्रयोजन विषयक इच्छा से उत्पन्न क्रिया विषयक व्यापार आर्थी भावना है।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भावना में लिङ्गादि ज्ञान करण में शब्दभावनाभाव्यनिर्वर्तकत्वेन है।
अतः विकल्प 'D' सही है।

स्रोत- अर्थसंग्रह- वाचस्पति उपाध्याय, पेज-25

80. अधोलिखितेषु खकारस्य बाह्यप्रयत्नविषयकम् उपयुक्तं विकल्पं चिनुत-
(A) विवारः श्वासः अघोषः अल्पप्राणः
(B) संवारः नादः घोषः अल्पप्राणः
(C) विवारः श्वासः अघोषः महाप्राणः
(D) संवारः नादः घोषः महाप्राणः

व्याख्या- यत्न या प्रयत्न दो प्रकार के होते हैं- आभ्यन्तर प्रयत्न तथा बाह्य प्रयत्न। आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार के होते हैं-
1. स्पृष्ट 2. ईषत्स्पृष्ट 3. विवृत 4. ईषत्विवृत 5. संवृत
बाह्यप्रयत्न के 11 भेद होते हैं-
1. विवार 2. संवार 3. श्वास 4. नाद 5. घोष 6. अघोष 7. अल्पप्राण 8. महाप्राण 9. उदात्त 10. अनुदात्त 11. स्वरित।
बाह्यप्रयत्न का प्रत्याहारों के आधार पर विभाजन निम्नवत् है-

विवार,श्वास,अघोष	संवार,नाद,घोष	अल्पप्राण	महाप्राण	उदात्त अनुदात्त स्वरित
क ख श	ग घ ङ य	क ग ङ य	ख घ श	अ ए
च छ ष	ज झ ञ व	च ज ञ व	छ झ ख	इ ओ
ट ठ स	ड ढ ण र	ट ड ण र	ठ ढ स	उ ऐ
त थ	द ध न ल	त द न ल	थ ध ह	ॠ औ
प फ	ब भ म	प ब म	फ भ	ऌ

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि खकार का उच्चारण विवार, श्वास, अघोष तथा महाप्राण है।
अतः विकल्प 'C' सही है।

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी- गीताप्रेस- पेज-13

81. बौद्धदर्शन पञ्चविधस्कन्धेषु परिगणितो नास्ति-
(A) विज्ञानम् **(B) वेदना**
(C) सञ्ज्ञा **(D) विशेषणम्**

व्याख्या- बौद्धदर्शन में चित्त और उसके विकारों को पञ्चस्कन्ध के नाम से जाना जाता है। पञ्चस्कन्ध हैं-
'सोऽयं चित्तचैत्तात्मकः स्कन्धः पञ्चविधो रूप-विज्ञान-वेदना सञ्ज्ञा संस्कारसञ्ज्ञकः' चित्त और चित्त के विकारों में यह स्कन्ध अर्थात् अमूर्त तत्त्व पाँच प्रकार का है- 1. रूप स्कन्ध 2. विज्ञान स्कन्ध 3. वेदना स्कन्ध 4. सञ्ज्ञा स्कन्ध और 5. संस्कार स्कन्ध
रूपस्कन्ध- विषयों के साथ इन्द्रियों का नाम रूपस्कन्ध है, जिसकी व्युत्पत्तियाँ हैं, जिनमें विषयों का निरूपण होता है और जो निरूपित होते हैं।
विज्ञान स्कन्ध- आलयविज्ञान और प्रवृत्तिविज्ञान का प्रवाह विज्ञान स्कन्ध है।

वेदना स्कन्ध- पहले कहे गए इन दोनों स्कन्धों के सम्बन्ध से उत्पन्न सुख-दुःख आदि प्रतीतियों का प्रवाह वेदना सम्बन्ध है।
सञ्ज्ञा स्कन्ध- गौ इत्यादि शब्दों को व्यक्त करने वाले ज्ञानों का प्रवाह सञ्ज्ञा स्कन्ध है।
संस्कार स्कन्ध- वेदनास्कन्ध पर आधारित रागद्वेषादि क्लेश, मद मानादि उपक्लेश तथा धर्म-अधर्म को संस्कार स्कन्ध कहते हैं।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि पञ्चस्कन्धों में विज्ञान, वेदना तथा सञ्ज्ञा आते हैं, जबकि विशेषणम् पञ्चस्कन्ध में नहीं आता। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- सर्वदर्शनसंग्रह- उमाशंकर शर्मा ऋषि, पेज-75

82. 'दीर्घाज्जसि च' इत्यनेन भवति -
(A) पूर्वसवर्णदीर्घः (B) पूर्वसवर्णदीर्घस्य निषेधः
(C) वृद्धिः एकादेशः (D) गुणादेशस्याभावः

व्याख्या- दीर्घाज्जसि च (6.1.101)-
'दीर्घाज्जसि च' पूर्वसवर्णदीर्घनिषेधक विधिसूत्र है। संहिता के विषय में दीर्घवर्ण से उत्तर इच् वर्ण या जस् प्रत्यय परे रहते पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता है।
उदाहरण- कुमारी जस् (अस्) -यण् प्राप्त हुआ
'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' ने यण् का बाध किया, परन्तु 'दीर्घाज्जसि च' सूत्र के द्वारा पूर्वसवर्ण दीर्घ का निषेध होकर कुमार्यः बना।
प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (6.1.102)
'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' पूर्वसवर्णदीर्घ विधायक विधिसूत्र है। अक् प्रत्याहार से प्रथमा और द्वितीया विभक्ति सम्बन्धी अच् के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होता है।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'दीर्घाज्जसि च' इस सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ का निषेध होता है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- अष्टाध्यायी (6.1.101)- ईश्वरचन्द्र, पेज- 692

83. 'सर्पिषो नाथनम्' इह षष्ठी विभक्तिर्भवति -
(A) कर्मणः शेषत्वेन विवक्षायाम्
(B) करणस्य शेषत्वेन विवक्षायाम्
(C) सम्बन्धस्य सम्बन्धत्वेन विवक्षायाम्
(D) अधिकरणस्य शेषत्वेन विवक्षायाम्

व्याख्या- आशिषि नाथः (2.3.55)-
आशीर्वाद अर्थ में नाथ् धातु के कर्म में सम्बन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।
उदाहरण- सर्पिषो नाथनम् - घी सम्बन्धी इच्छा, इस वाक्य में नाथ् धातु के कर्म सर्पिष् में सम्बन्ध की विवक्षा होने पर सर्पिषः में षष्ठी विभक्ति 'आशिषि नाथः' सूत्र से हुई। सूत्र में आशिषि पद का प्रयोग इसलिए किया गया है, क्योंकि नाथ् धातु का आशिष् से भिन्न अर्थात् याचना के अर्थ में उसके कर्म में द्वितीया विभक्ति ही होती है।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सर्पिषो नाथनम् में षष्ठी विभक्ति का विधान कर्म की शेषत्व की विवक्षा में हुआ है।
अतः विकल्प 'A' सही है।
स्रोत- सिद्धान्तकौमुदी (कारकप्रकरण) (2.3.55)- राममुनि पाण्डेय, पेज-115

84. अलङ्कारसम्प्रदायस्य प्रवर्तकाचार्यः कः?
(A) वामनः (B) भरतः
(C) भामह (D) रुद्रटः

व्याख्या-

सम्प्रदाय	प्रवर्तकआचार्य	काल	ग्रन्थ
रस सम्प्रदाय	आचार्य भरतमुनि	ई.पू.द्वितीय शताब्दी	नाट्यशास्त्र
अलङ्कार सम्प्रदाय	आचार्य भामह	500ई.	काव्यालङ्कार
रीति सम्प्रदाय	आचार्य वामन	800-850ई.	काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति
ध्वनि सम्प्रदाय	आचार्य आनन्दवर्धन	नवम शताब्दी उत्तरार्ध	ध्वन्यालोक
वक्रोक्ति सम्प्रदाय	आचार्य कुन्तक	11वीं शताब्दी पूर्वार्ध	वक्रोक्ति-जीवितम्
औचित्य सम्प्रदाय	आचार्य क्षेमेन्द्र	11वीं शताब्दी उत्तरार्ध	औचित्य-विचारचर्चा

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अलङ्कार सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशंकर शर्मा ऋषि, पेज-578

85. निम्नलिखितेषु केन ज्योतिशशास्त्रमाधृत्य ऋग्वेदस्य कालो निर्धारितः?
(A) वेबरमहोदयेन
(B) मैक्डानल
(C) बालगंगाधरतिलकमहोदयेन
(D) विल्सनमहोदयेन

व्याख्या- बालगंगाधर तिलक-
आचार्य बालगंगाधर तिलक ने ज्योतिषीय गणना के आधार पर ऋग्वेद का रचनाकाल छह हजार ई.पू. से चार हजार ई.पू. माना है। उन्होंने विभिन्न नक्षत्रों में वसन्त सम्पात के आधार पर तिथि निर्धारित की है। उन्होंने वैदिक काल को चार भागों में विभक्त किया

है और विभिन्न स्तरों में वैदिक साहित्य के अङ्गों का उल्लेख है।

(1) अदिति काल 6 हजार से 4 हजार ई.पू.

(2) मृगशिरा काल 4 हजार से 2500 ई.पू.

(3) कृत्तिका काल 2500 से 1400 ई.पू.

(4) सूत्र काल 1400 से 500 ई.पू.

ए0 वेबर- जर्मन विद्वान् प्रो. ए बेवर ने कहा है वेदों का समय निश्चित नहीं किया जा सकता। वे उस तिथि के बने हुए हैं, जहाँ तक पहुँचने के लिए हमारे पास उपयुक्त साधन नहीं है। प्रो. बेवर यह भी कहते हैं कि वेदों के समय को कम-से-कम 1200 ई.पू. या 1500 ई.पू. के बाद का कथमपि स्वीकार नहीं किया जा सकता।

मैक्डानल- 1300 ई.पू. ऋग्वेद की रचना का प्रारम्भ माना है, जो बोगाजकोई अभिलेख के आधार पर माना है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बालगंगाधर तिलक ने ऋग्वेद का काल निर्धारण ज्योतिषशास्त्र के आधार पर किया है।

अतः विकल्प 'C' सही है।

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-39

86. चक्षुषा घटरूपत्वग्रहणे कः सन्निकर्षः ?

(A) समवायः

(B) संयुक्तसमवायः

(C) संयुक्तसमवेतसमवायः

(D) विशेषणविशेष्यभावः

व्याख्या- प्रत्यक्ष ज्ञान का हेतु इन्द्रिय और पदार्थ का सन्निकर्ष-संयोग सन्निकर्ष, संयुक्तसमवायसन्निकर्ष, संयुक्तसमवेतसमवाय सन्निकर्ष, समवाय सन्निकर्ष, समवेतसमवायसन्निकर्ष और विशेषण विशेष्य भावरूप से सन्निकर्ष के छः प्रकार होते हैं।

संयोग सन्निकर्ष- चक्षुषा घट प्रत्यक्षजनने संयोगः सन्निकर्षः। अर्थात् नेत्र से घट का प्रत्यक्ष होने में संयोग नामक सन्निकर्ष होता है।

संयुक्तसमवायसन्निकर्ष-

घटरूपप्रत्यक्षजनने संयुक्तसमवायः सन्निकर्षः चक्षुः संयुक्ते घटे रूपस्य समवायात् अर्थात्घट के रूप का प्रत्यक्ष करने में संयुक्तसमवाय नाम सन्निकर्ष है, क्योंकि नेत्र से संयुक्त घट में रूप समवायसम्बन्ध से स्थित रहता है।

संयुक्तसमवेतसमवाय सन्निकर्ष-

रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसमवायः सन्निकर्षः। चक्षुः संयुक्ते घटे रूपं समवेतं, तत्र रूपत्वस्य समवायात् अर्थात् रूपत्व जाति के प्रत्यक्ष में संयुक्त समवेत समवाय नामक सन्निकर्ष होता है, क्योंकि चक्षु से संयुक्त घट में रूप समवेत है तथा उसमें रूपत्व समवाय सम्बन्ध से स्थित है।

समवायसन्निकर्ष-

श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः सम्बन्धः। कर्णविवर वर्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वाच्छब्दस्याकाशगुणत्वाद् गुणगुणिनोश्च समवायात् अर्थात् कर्ण विवर में स्थित आकाश ही श्रोत्र होने से तथा आकाश का गुण शब्द होने के कारण एवं गुण-गुणी का समवाय सम्बन्ध होने से श्रोत्र द्वारा शब्द का साक्षात्कार करने से समवाय सन्निकर्ष है।

समवेत-समवाय सन्निकर्ष-

शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवायः सन्निकर्षः, श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात्। अर्थात् श्रोत्र में समवेत रूप में विद्यमान शब्द में शब्दत्व जाति के समवाय सम्बन्ध से स्थित रहने के कारण शब्दत्व के साक्षात्कार में समवेत समवाय नामक सन्निकर्ष होता है।

विशेषणविशेष्यभाव सन्निकर्ष-

अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावः सन्निकर्षः। घटाऽभाववद्भूतलमित्यत्र चक्षुः संयुक्ते भूतले घटाऽभावस्य विशेषणत्वात् अर्थात् भूतल घट के अभाव वाला है। यहाँ नेत्र से संयुक्त भूतल में घट का अभाव विशेषण है। अतः अभाव का प्रत्यक्ष करने में विशेषण विशेष्यभाव सन्निकर्ष होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि चक्षु से घटरूपत्व में संयुक्त समवेत समवाय सन्निकर्ष है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- तर्कसंग्रह- आद्याप्रसाद मिश्र, पेज 47

87. प्र + एजते = प्रेजते इत्यत्र एकारो भवति

(A) आद्गुणः सूत्रेण गुणत्वात्

(B) वृद्धिरेचि सूत्रेण वृद्धित्वात्

(C) एङि पररूपम् सूत्रेण पररूपत्वात्

(D) एङः पदान्तादति सूत्रेण पूर्वरूपत्वात्

व्याख्या- 'प्र + एजते' इस पद में आद्गुणः सूत्र से गुण की प्राप्ति थी, परन्तु उसे बाधकर वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि प्राप्त हुई, उसे भी बाधकर 'एङि पररूपम्' सूत्र से अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर पररूप एकदेश होता है। यहाँ पर अवर्णान्त उपसर्ग है- प्र और एङादि धातु परे है- एजते। पूर्व में प्र का अ और परे है एजते का ए, दोनों के स्थान पर परसवर्ण ए ही हुआ- प्र + ए + जते = प्रेजते प्रयोग सिद्ध हुआ।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्र + एजते में एकार 'एङि पररूपम्' सूत्र से पररूप हुआ।

अतः विकल्प 'C' सही है।

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी- गोविन्दाचार्य, पेज-61

88. मनुस्मृत्यनुसारं कति पाकयज्ञाः -
(A) चत्वारः **(B) पञ्च**
(C) षट् **(D) दश**

व्याख्या- धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ के अन्तर्गत परिगणित मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय में चार प्रकार के पाकयज्ञों का वर्णन है-

ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ (मनु.2.86)

जो विधियज्ञ सहित चार पाकयज्ञ (वैश्वदेव, होम,बलिकर्म, नित्यश्राद्ध और अतिथिभोजन) हैं। वे सब जपयज्ञ की सोलहवीं कला के योग्य भी नहीं हैं।

* मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में क्षत्रियों के पाँच कर्म बताए गए हैं-

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥ (मनु.1.89)

प्रजा की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना और विषयों में न लगना ये क्षत्रियों के कर्म संक्षेप में बताये गये हैं।

* **अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा**
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ (मनु.1.88)

पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, ये छः कर्म ब्राह्मणों के हैं।

* **काम से उत्पन्न दोषों की संख्या दस है-**

मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥ (मनु.7.47)

मृगया, जुआ खेलना, दिन में सोना, पराया दोष कहना, स्त्रियों में आसक्ति, मद्यपान, बजाना, नाचना, गाना और वृथा घूमना, ये दश दोष 'काम' से उत्पन्न होते हैं।

स्पष्टीकरण- विवेचन से स्पष्ट है कि मनुस्मृति के अनुसार पाकयज्ञों की संख्या चार है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- मनुस्मृति (2.86)- गिरिधर गोपालशर्मा,पेज-92

89. वेदान्तसारमतेन कर्मेन्द्रियाणामुत्पत्तिः भवति-
(A) आकाशादीनां रजोंऽशेभ्यः समस्तेभ्यः
(B) आकाशादीनां रजोंऽशेभ्योः व्यस्तेभ्यः
(C) आकाशादीनां सत्त्वांशेभ्यो व्यस्तेभ्यः
(D) आकाशादीनां सत्त्वांशेभ्यो समस्तेभ्यः

व्याख्या- सदानन्द प्रणीत वेदान्तसार में कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति के विषय में निम्न वर्णन प्राप्त होता है-

'कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थाख्यानि' वाक् (वाणी), पाणि (हाथ), पाद (पैर), पायु (गुदा) और उपस्थ (जननेन्द्रिय) ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। इन कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति आकाश आदि रजो अंश से क्रमशः अलग-अलग होती है-

'एतानि पुनराकाशादीनां रजोंऽशेभ्यो व्यस्तेभ्यः पृथक् पृथक् क्रमेणोत्पद्यन्ते'। अर्थात् इन आकाश आदि सूक्ष्मभूतों के रजोगुणांश से ये क्रमशः अलग-अलग उत्पन्न होती है।

* **ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति-**

'एतानि आकाशादीनां सात्त्विकांशेभ्यो व्यस्तेभ्यः पृथक् पृथक् क्रमेणोत्पद्यन्ते' अर्थात् आकाश आदि सूक्ष्मभूतों में रहने वाले सत्त्वगुण के अंश से अलग-अलग क्रमानुसार उत्पन्न होती है। ज्ञानेन्द्रियों की संख्या पाँच है- श्रोत्र (कान), त्वक् (त्वचा), चक्षु (आँख), जिह्वा (जीभ या रसना) घ्राण (नाक)।

* **बुद्धि, मन की उत्पत्ति-**

'एते पुनराकाशादिगतसात्विकांशेभ्यो मिलितेभ्यो उत्पद्यन्ते' मन और बुद्धि आकाशादि सूक्ष्मभूतों में रहने वाले सत्त्वगुण के सामूहिक अंश से उत्पन्न होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति आकाश आदि के रजो अंश के सामूहिक अंश से अलग-अलग होती है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार- सन्तनारायण श्रीवास्तव, पेज-69

90. 'अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखमिति' केनोक्तम्?
(A) बाणभट्टेन **(B) माघेन**
(C) शूद्रकेण **(D) भारविणा**

व्याख्या- महाकवि शूद्रक प्रणीत मृच्छकटिकम् के प्रथम अङ्क में गरीबी (दरिद्रता) के विषय में चारुदत्त कहता है-

द्रारिद्र्यान्मरणाद्वा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम्।
अल्पक्लेशं मरणं, दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्॥ (मृच्छ.1.11)

निर्धनता और मृत्यु में से मृत्यु मुझे अच्छी लगती है, निर्धनता नहीं मृत्यु में थोड़ा कष्ट है, किन्तु निर्धनता कभी न समाप्त होने वाला दुःख है। महाकवि माघ द्वारा रचित शिशुपालवध के प्रथम सर्ग में माघ 'विद्वानों (सत्पुरुषों) के आगमन से लाभ होता है,' का वर्णन करते हैं-

'गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः' (शिशु.1.14)

भागवान् श्रीकृष्ण ने पूजनीय नारद महामुनि की यथाविधि पूजा की ठीक ही है, सत्पुरुष, पुण्यकर्म नहीं करने वालों के यहाँ जाना नहीं चाहते। बाणभट्ट विरचित कादम्बरी के शुकनासोपदेश में विषयभोगरूपी मृगतृष्णा के विषय में निम्न वर्णन प्राप्त होता है-

'इन्द्रियहरिणहारिणी च सततदुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका' (कादम्बरी)

इन्द्रियरूपी हरिणों का हरण करने वाली यह विषयभोगरूपी मृगतृष्णा परिणाम में सदा दुःख देने वाली होती है।

⇒ महाकवि भारवि प्रणीत किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग में मायावी पुरुषों के विषय में निम्न वर्णन प्राप्त होता है-

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधान् असंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः॥

(किरात.1.30)

जो मायावियों के प्रति मायावी नहीं होते हैं, वे मन्दबुद्धि पराजय को प्राप्त होते हैं। धूर्त लोग ऐसे लोगों के आत्मीय बनकर उन्हें वैसे ही मार डालते हैं, जैसे तीक्ष्ण बाण कवचहीन शरीर वालों में प्रवेश करके उन्हें मार डालते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि- 'अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्', यह पंक्ति शूद्रक द्वारा रचित मृच्छकटिकम् के प्रथम अङ्क से उद्धृत है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- मृच्छकटिकम् (1.11) - रमाशंकर त्रिपाठी, पेज-31

91. 'रुदति प्राव्राजीत्' अत्र रुदति पदे सप्तमी विभक्तिः अस्ति-
(A) निर्धारणे
(B) सामीप्ये अधिकरणे
(C) अनादराधिक्ये भावलक्षणे
(D) कर्मप्रवचनीययोगे

व्याख्या- षष्ठी चानादरे (2.3.38)-
अनादराधिक्ये भावलक्षणे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः।
अनादर के आधिक्य होने पर जिसकी क्रिया से दूसरी क्रिया लक्षित हो उससे षष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे-
'रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत्' रोते हुए को छोड़कर संन्यास ले लिया। इस वाक्य में रोदन (रोने की क्रिया) क्रिया से प्रव्रजन क्रिया लक्षित होती है और अनादर अर्थ में भी प्रतीत होती है। अतः 'षष्ठी चानादरे' सूत्र से रुदत् शब्द सप्तमी विभक्ति में रुदति और षष्ठी विभक्ति एकवचन में रुदतः बना।

⇒ **यतश्च निर्धारणम्** (2.3.41)-
'जातिगुणक्रियासंज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणं यतस्ततः षष्ठीसप्तम्यौ स्तः'- अर्थात् जाति, गुण, क्रिया और सञ्ज्ञा के द्वारा किसी समुदाय से एक भाग को पृथक् किया जाता है तो उस समुदाय वाचक शब्द से षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति होती है।

जाति द्वारा निर्धारण का उदाहरण-
नृणां नृषु वा द्विजः श्रेष्ठः - मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है।

गुण द्वारा निर्धारण का उदाहरण-
गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा-गायों में काली गाय बहुत दूध देती है।

क्रिया के द्वारा निर्धारण का उदाहरण-
गच्छतां गच्छत्सु वा धावञ्छीघ्रः- चलने वालों में दौड़ने वाला श्रेष्ठ होता है।

सञ्ज्ञा द्वारा निर्धारण का उदाहरण- छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः- छात्रों में मैत्र पटु अर्थात् कुशल है। कर्मप्रवचनीय योग में द्वितीया, तृतीया एवं पञ्चमी विभक्ति का विधान होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रुदति प्राव्राजीत् यहाँ 'रुदति' इस पद में सप्तमी विभक्ति का विधान 'अनादराधिक्ये भावलक्षणे' से हुआ। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत-सिद्धान्तकौमुदी (कारकप्रकरण)-राममुनि पाण्डेय, पेज-100

92. अरस्तूविरचितं पुस्तकमस्ति -

(A) दि रिपब्लिक	**(B) आन द सब्लाइम**
(C) पॉएटिक्स	**(D) टेल ऑफ टू सीरीज**

व्याख्या- 'पॉएटिक्स' अरस्तू द्वारा लगभग 350 ई.पू. में लिखी गयी साहित्य चिन्तन और सिद्धान्त सम्बन्धी पुस्तक है। यह नाट्य सिद्धान्त सम्बन्धी विश्व की सर्वाधिक प्राचीन उपलब्ध पुस्तक है। यह पाश्चात्य साहित्य सिद्धान्तों का विस्तृत परिचय देने वाली पहली पुस्तक है। इसमें अरस्तू ने काव्य के अर्थ में ग्रीक काव्य और नाटक दोनों को शामिल किया है। उन्होंने काव्य में प्रणीत काव्य और महाकाव्य दोनों को शामिल किया है।

⇒ 'दि रिपब्लिक' पुस्तक प्लेटो द्वारा 380 ईसा पूर्व के आस-पास रचित ग्रन्थ है, जिसमें सुकरात की वार्ताएँ वर्णित हैं। इन वार्ताओं में न्याय, नगर तथा न्यायप्रिय मानव की चर्चा है। यह प्लेटो की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है।

⇒ 'लान्जाइनस' एक महान् समीक्षक के रूप में परिचित हैं। उनके नाम पर 'आन द सब्लाइम' नामक एक ही रचना का उल्लेख मिलता है। उनके जीवन तथा रचनात्मकता पर प्रकाश डालने वाले प्रमाण सन्देहास्पद हैं।

⇒ **टेल ऑफ टू सीरीज–** फ्रांसीसी क्रान्ति के पहले और दौरान पेरिस और लन्दन की पृष्ठभूमि में रचित 1859ई. में चार्ल्स डिकेन्स द्वारा लिखित उपन्यास है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अरस्तू द्वारा रचित 'पॉएटिक्स' है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा आलोचना - योगेन्द्र प्रतापसिंह, पेज 197

93. तर्कसंग्रहानुसारं पदार्थाः कति सन्ति?

(A) सप्त	**(B) षोडश**
(C) नव	**(D) दश**

व्याख्या- आचार्य अन्नंभट्ट प्रणीत तर्कसंग्रह न्याय-वैशेषिक का प्रकरण ग्रन्थ है, जिसमें सात पदार्थों का वर्णन है-

'द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवायाभावाः सप्तपदार्थाः'
अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय एवं अभाव ये सात पदार्थ हैं।
तर्कसंग्रह के अनुसार द्रव्य की संख्या नौ है-
तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नौ द्रव्य हैं।
* केशवमिश्र प्रणीत, तर्कभाषा में सोलह पदार्थों का वर्णन है- प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल जाति, निग्रहस्थान।
* तर्कसंग्रह के अनुसार कर्म के पाँच भेद हैं-
उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण, गमन।
सामान्य के दो भेद हैं। पर तथा अपर।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तर्कसंग्रह के अनुसार पदार्थों की संख्या सात है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**
स्रोत- तर्कसंग्रह- अनितासेन गुप्ता, पेज-27

94. मनुमते अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चाऽस्ति?
(A) अविधा **(B) अतिभोजनम्**
(C) उच्छिष्टभोजनम् **(D) अवशिष्टभोजनम्**

व्याख्या- मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय में अतिभोजन के दोषों में निम्नवत् वर्णन प्राप्त होता है-
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥ (मनु.2.57)
अधिक भोजन करना, आरोग्य, आयु, स्वर्ग, पुण्य का नाशक और लोकनिन्दित है, इसलिए उसे त्याग दें।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं' का कारण अतिभोजन है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**
स्रोत- मनुस्मृति (2.57)- गिरिधरगोपाल शर्मा, पेज-82

95. कुरुचरः इत्यत्र 'चरेष्टः' सूत्रेण ट प्रत्ययो विधीयते
(A) अधिकरणे उपपदे **(B) सुबन्ते उपपदे**
(C) कर्मण्युपपदे **(D) उपसर्गे उपपदे**

व्याख्या- चरेष्टः 3.2.16
अधिकरण के उपपद होने पर 'चर्' धातु से 'ट' प्रत्यय होता है।
कुरुचरः- कुरुषु यह अधिकरण उपपद में है। अतः चर् धातु से 'ट' प्रत्यय होकर अनुबन्ध लोप। 'उपपदमतिङ्' से उपपद समास होकर सुप् विभक्ति का 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से लुक् होकर 'कुरुचर् + अ' बना। वर्णसम्मेलन होने पर कुरुचर बना। सु विभक्ति एवं उसका रुत्व और विसर्ग करके 'कुरुचरः' सिद्ध हुआ।
स्पष्टीकरण - उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कुरुचरः में 'ट' प्रत्यय का विधान अधिकरण उपपद अर्थ में हुआ है।
अतः विकल्प 'A' सही है।
स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी- गोविन्दाचार्य, पेज-790

96. त्रिविक्रमभट्टप्रणीतं चम्पूकाव्यमस्ति
(A) नलचम्पू **(B) राजचम्पू**
(C) रामायणचम्पू **(D) जीवन्धरचम्पू**

व्याख्या-

ग्रन्थ	**ग्रन्थकार**	**काल**
नलचम्पू	त्रिविक्रमभट्ट	915 ई. लगभग
मदालसाचम्पू	त्रिविक्रमभट्ट	915 ई. लगभग
जीवन्धरचम्पू	हरिश्चन्द्र	897 ई. पश्चात्
रामायणचम्पू	राजा भोज	1005-1054 ई.
यशस्तिलकचम्पू	सोमदेव सूरि	959 ई.
भारतचम्पू	अनन्तभट्ट	1500 ई.
भागवतचम्पू	अनन्तभट्ट	1500 ई.
भरतेश्वराभ्युदयचम्पू	आशाधर सूरि	1243 ई.
पुरुदेवचम्पू	अर्हदास	13वीं शती उत्तरार्ध
यतिराजविजयचम्पू	अहोबल सूरि	14वीं शती उत्तरार्ध

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि त्रिविक्रमभट्ट द्वारा प्रणीत नलचम्पू है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**
स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशंकर शर्मा,पेज-415

97. सवितर्का समापत्तिः उच्यते-
(A) शब्दार्थज्ञानविकल्पैः सङ्कीर्णा
(B) स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा
(C) श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्य विषया
(D) उक्तेषु त्रिषु न कापि

व्याख्या- महर्षि पतञ्जलिकृत पातञ्जलयोगदर्शन के समाधिपाद में समापत्ति का लक्षण निम्नवत् है-
क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः (योगसूत्र 1.41)
श्रेष्ठ मणि के समान क्षीणवृत्तियों वाले तथा ग्रहीता, ग्रहण और ग्राह्य विषयों में स्थित होने वाला चित्त का उनके आकार को ग्रहण कर लेना समापत्ति है-
सवितर्का और निर्वितर्का के भेद से समापत्ति के दो भेद हैं-
तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः (योगसूत्र 1.42)

उनमें से शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्पों से मिली-जुली हुई समापत्ति सवितर्का समापत्ति है।
निर्वितर्का समापत्ति है।

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का।
(योगसूत्र.1.43)

स्मृति की निवृत्ति हो जाने पर अपने ज्ञानात्मक रूप से शून्य जैसी केवल अर्थ को ही प्रकाशित करने वाली निर्वितर्का समापत्ति होती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शब्दार्थ ज्ञानविकल्पैः सङ्कीर्णा सवितर्का समापत्ति कही जाती है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- पातञ्जलयोगदर्शनम् (समाधिपाद/42) गीताप्रेस, पेज-32

98. 'न हि रसादृते कश्चिदर्थः' प्रवर्तते इति केनोक्तम् -
(A) भामहेन (B) भरतेन
(C) विश्वनाथेन (D) मम्मटेन

व्याख्या- रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र में 36 अध्याय हैं, जिसमें रस, भाव एवं नाट्य के अङ्कों आदि का विवेचन है।
नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में रस निरूपण के विषय में निम्न वर्णन प्राप्त होता है-

न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्त्तते।
तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः॥ (नाट्यशास्त्र 6.32)

रस के बिना अन्य नाट्याङ्ग रूप अर्थ की प्रवृत्ति नहीं होती। विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारी भावों के संयोग से रस निष्पन्न होता है।
अलङ्कार सम्प्रदाय के प्रर्वतक आचार्य भामह के काव्यालङ्कार में काव्य लक्षण निम्नवत् है-

'शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद्‌द्विधा' (काव्यालङ्कार1.16)

शब्द और अर्थ दोनों मिलकर काव्य कहलाते हैं, उसके दो भेद होते हैं- गद्य और पद्य।

* रसवादी आचार्य विश्वनाथ द्वारा रचित साहित्यदर्पण के प्रथम परिच्छेद में काव्य का लक्षण निम्नवत् है-

'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' (सा.दा.1.3) रसात्मक वाक्य ही काव्य है।

* समन्वयवादी आचार्य मम्मट के काव्यप्रकाश के प्रथम उल्लास में काव्य का लक्षण निम्नवत् है-

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि' (काव्य प्रकाश सूत्र-1)

दोषों से रहित गुणों से युक्त यदि कहीं पर अलङ्कार न भी हो, तो शब्द और अर्थ की समष्टि काव्य है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते' मत आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में वर्णित है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- नाट्यशास्त्र (षष्ठ अध्याय)- ब्रजमोहन चतुर्वेदी, पेज-182

99. चार्वाकदर्शनस्य कृते किम् अपरनाम प्रचलितमस्ति?
(A) ब्रह्मदर्शनम् (B) परलोकदर्शनम्
(C) ऐहलौकिकदर्शनम् (D) लोकायतदर्शनम्

व्याख्या- माधवाचार्य विरचित सर्वदर्शनसंग्रह के चार्वाक दर्शन प्रकरण में चार्वाक दर्शन के लिए 'लोकायतम्' इस शब्द का प्रयोग किया गया है-

'चार्वाकमतस्य 'लोकायतम्' इत्यन्वर्थम् अपरं नामधेयम्'।

सभी लोग नीतिशास्त्र और कामशास्त्र के अनुसार अर्थ और काम को ही पुरुषार्थ समझते हैं, परलोक की बात स्वीकार नहीं करते तथा चार्वाक मत का अनुसरण करते हैं। इसलिए चार्वाक मत का दूसरा नाम अर्थ के अनुकूल ही है लोकायत। लोक अर्थात् संसार में, 'आयत' अर्थात् व्याप्त या फैला हुआ।

* चार्वाक दर्शन केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को मानता है।
* चार्वाक दर्शन ईश्वर की सत्ता को नहीं मानता है।
* चार्वाक दर्शन में चार प्रकार के भूत तत्त्व हैं- पृथ्वी, जल, तेज और वायु।

चार्वाक दर्शन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण तथ्य-
त्रयो वेदस्य कर्तारः भण्डधूर्तनिशाचराः
लोकसिद्धो राजा परमेश्वरः
भूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि चार्वाक दर्शन का अपर नाम लोकायत दर्शन है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- सर्वदर्शनङ्ग्रह - उमाशंकर शर्मा ऋषि, पेज-3

100. यस्य हलः इत्यत्र यस्य इत्यनेन ग्रहणं भवति
(A) केवल यकारस्य
(B) अकारसहितं यकारस्य
(C) यत् प्रातिपदिकेन निष्पन्नस्य षष्ठ्यन्तस्य
(D) उक्तेषु न कस्यापि

व्याख्या- यस्य हलः (6.4.49)-
सूत्रार्थ आर्धधातुक परे रहते हल् (व्यञ्जन) से उत्तर य का लोप होता है। यस्य अर्थात् सस्वर यकार अर्थात् अकार सहित यकार का ही लोप होता है। हलः अर्थात् हल् से उत्तर यकार का लोप होता है।

यस्य इति संघातग्रहणम्- सूत्र में पठित यस्य यकारोत्तरवर्त्ती अकार उच्चारणार्थ नहीं है, किन्तु यकार और अकार दोनों के लोप के लिए 'य' ऐसे समूह का निर्देश किया गया है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'यस्य हलः' सूत्र में यस्य पद से अकार सहित यकार का ग्रहण किया गया है।
अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत- अष्टाध्यायी (6.4.49) - ईश्वरचन्द्र, पेज-793

उत्तरमाला

1-(D)	2-(B)	3-(A)	4-(A)	5-(C)	6-(B)	7-(D)	8-(C)	9-(C)
10-(D)	11-(B)	12-(D)	13-(C)	14-(D)	15-(B)	16-(D)	17-(D)	18-(B)
19-(B)	20-(D)	21-(C)	22-(C)	23-(D)	24-(C)	25-(B)	26-(B)	27-(C)
28-(A)	29-(D)	30-(A)	31-(A)	32-(D)	33-(D)	34-(D)	35-(A)	36-(C)
37-(D)	38-(A)	39-(D)	40-(A)	41-(D)	42-(C)	43-(B)	44-(D)	45-(D)
46-(C)	47-(A)	48-(B)	49-(A)	50-(C)	51-(D)	52-(D)	53-(D)	54-(B)
55-(B)	56-(B)	57-(C)	58-(A)	59-(A)	60-(D)	61-(A)	62-(C)	63-(D)
64-(B)	65-(B)	66-(C)	67-(B)	68-(B)	69-(D)	70-(D)	71-(B)	72-(B)
73-(B)	74-(B)	75-(A)	76-(A)	77-(B)	78-(D)	79-(D)	80-(C)	81-(D)
82-(B)	83-(A)	84-(C)	85-(C)	86-(C)	87-(C)	88-(A)	89-(B)	90-(C)
91-(C)	92-(C)	93-(A)	94-(B)	95-(A)	96-(A)	97-(A)	98-(B)	99-(D)
100-(B)								

3	दिसम्बर 2018	NTA UGC–NET/JRF संस्कृतम्	प्रश्नपत्रम् II

1. माण्डूकायनी शाखा कस्य वेदस्य विद्यते–
(A) यजुर्वेदस्य (B) अथर्ववेदस्य
(C) ऋग्वेदस्य (D) सामवेदस्य

व्याख्या- 1- ऋग्वेद की शाखाएँ- चरणव्यूह के अनुसार ऋग्वेद की प्रमुख पाँच शाखाएँ हैं-

(i) शाकल- सम्प्रति ऋग्वेद की यही शाखा प्रचलित है। यही शाखा उपलब्ध भी है।

(ii) बाष्कल- यह शाखा अनुपलब्ध है। इस शाखा में 1025 सूक्त थे।

(iii) आश्वलायन- यह संहिता और इसका ब्राह्मण सम्प्रति अनुपलब्ध है। इस शाखा के श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र ही उपलब्ध हैं।

(iv) शांखायन- यह शाखा अनुपलब्ध है। इसके ब्राह्मण, आरण्यक, श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं।

(v) माण्डूकायन- यह शाखा सम्प्रति अप्राप्य है।

2- यजुर्वेद की शाखाएँ- यजुर्वेद मुख्यतः दो भागों में विभक्त है- (i) शुक्ल यजुर्वेद, (ii) कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं, उनकी एक-एक संहिता उपलब्ध है-

(क) माध्यन्दिन या वाजसनेयि संहिता

(ख) काण्व संहिता

कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखाएँ उपलब्ध हैं-

(i) तैत्तिरीय (ii) मैत्रायणी

(iii) काठक (कठ) (iv) कपिष्ठल-कठ शाखा

3- सामवेद की शाखाएँ-

(क) कौथुमीय (कौथुम) (ख) राणायनीय (ग) जैमिनीय

4- अथर्ववेद की शाखाएँ- पतञ्जलि ने महाभाष्य में और सायण ने अथर्ववेद-भाष्यभूमिका में अथर्ववेद की 9 शाखाओं का उल्लेख किया है-

(i) पैप्पलाद (ii) तौद (iii) मौद
(iv) शौनकीय (v) जाजल (vi) जलद
(vii) ब्रह्मवद (viii) देवदर्श (ix) चारणवैद्य

इनमें से केवल दो शाखाएँ उपलब्ध हैं- शौनकीय, पैप्पलाद

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि माण्डूकायनी MeKe$ÿeJeo keâe nw **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-46

2. साङ्ख्यरीत्या मोक्षप्राप्तिः कस्मादङ्गीक्रियते–
(A) ज्ञानात् (B) धर्मात्
(C) ऐश्वर्यात् (D) वैराग्यात्

व्याख्या- आचार्य ईश्वरकृष्णकृत साङ्ख्यकारिका की द्वितीय कारिका में मोक्ष-प्राप्ति का प्रशस्यतर उपाय व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ के विज्ञान को बताया है- **''तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्।''** (का.2) साङ्ख्यशास्त्र द्वारा निरूपित पचीस पदार्थो के तत्त्वज्ञान से सत्त्वपुरुषान्यता अर्थात् प्रकृति और पुरुष की भिन्नता का ज्ञान होता है, यही ज्ञान मोक्ष का कारण बनता है।

44वीं कारिका में बताया गया है कि किस कारण का कौन सा कार्य होता है-

धर्मेण गमनमूर्ध्वं, गमनमधस्ताद् भवत्यधर्मेण।

ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः।। (का.44)

अर्थात् धर्म से ऊपर की ओर स्वर्गादि लोकों में गमन होता है, और अधर्म से नीचे की ओर भूतल पर तिर्यक् योनियों में गमन होता है। विवेकख्यातिरूप तत्त्वज्ञान से अपवर्ग अर्थात् मोक्ष होता है तथा इसके विपरीत अज्ञान से बन्धन माना जाता है।

स्पष्टीकरण- स्पष्ट है कि साङ्ख्यमतानुसार ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति मानी गई है ज्ञानेन चापवर्गः। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- साङ्ख्यकारिका- (कारिका 2,44)

3. 'खलु कृत्वा'–निरुक्तानुसारं 'खलु' पदं विद्यते-
(A) प्रतिषेधार्थे (B) पदपूरणार्थे
(C) समुच्चयार्थे (D) निश्चयार्थे

व्याख्या- आचार्य यास्क निरुक्त के प्रथम अध्याय के द्वितीय पाद में निपातों के वर्णन में कुछ निषेधार्थक निपातों का उल्लेख करते हैं।

*** मा-** यह निपात प्रतिषेध अर्थात् निषेध अर्थ में आता है। जैसे-

मा कार्षीः- मत कर। **मा हार्षीः-** मत हरण कर।

* **खलु-** यह निपात भी निषेधार्थक ही है। **जैसे-खलु कृत्वा-न करके। खलु कृतम् -** नहीं किया। यह निपात पदपूर्ति के लिए भी प्रयुक्त होता है। जैसे- **एवं खलु। तद् बभूव-** वह बात इस प्रकार हुई थी।

* **न-** यह निपात लौकिक संस्कृत में निषेधार्थ में आता है और वेद में उपमा और निषेध अर्थ में भी आता है। प्रतिषेध अर्थ में जो न आता है उसकी पहचान यह है कि निषेध्य वस्तु के आगे उसको रखते हैं और उपमार्थक 'न' का प्रयोग जिससे उपमा दी जाती है उससे ठीक बाद आता है।

(i) नेन्द्रं देवममंसत- आदित्य की किरणों ने इन्द्र को अपना दीपयिता नहीं माना-प्रतिषेधार्थक।

(ii) दुर्मदासो न सुरायाम्- सुरा पी लेने पर दुर्मदों की भाँति लड़ने लगे- उपमार्थक।

* **पदपूरणार्थक अन्य निपात-** उ, सीम्, इत् इत्यादि।

* **समुच्चयार्थक निपात-** वा,त्व च, आ, इत्यादि।

* **निश्चयार्थक निपात-** किल

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'खलु कृत्वा' में 'खलु' निपात निषेधार्थक है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- निरुक्त- छज्जूराम- शास्त्री, पेज-20

4. तर्कसङ्ग्रहदीपिकानुसारं 'तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकः' कः -

(A) हेतुः (B) परामर्शः
(C) व्यापारः (D) उपनयः

व्याख्या- तर्कसङ्ग्रहकार अन्नम्भट्ट ने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द प्रमाणों के निरूपण के प्रसङ्ग में प्रत्यक्षप्रमाण के पश्चात् अनुमान प्रमाण के द्विविध भेदों का उल्लेख किया है- 1. स्वार्थानुमान और 2. परार्थानुमान **(अनुमानं द्विविधं-स्वार्थं परार्थं च।)** परार्थानुमान के निरूपण में अन्नम्भट्ट ने पञ्चावयव वाक्य की चर्चा की है-

''यत्तु स्वयं धूमादग्निमनुमायं परं प्रति बोधयितुं पञ्चावयववाक्यं प्रयुज्यते तत्परार्थानुमानम्।'' अर्थात् जो स्वयं धूम से अग्नि का अनुमान करके दूसरे व्यक्ति को समझाने के लिए पाँच अवयवों वाले वाक्य का प्रयोग किया जाता है, वह परार्थानुमान होता है।

पञ्चावयव में कौन से पाँच अवयव होते हैं, इस पर कहते हैं- **'प्रतिज्ञा-हेतूदाहरणोपनयनिगमनानि पञ्चावयवाः।'** दीपिका टीका में स्वयं अन्नम्भट्ट इन पाँचों को परिभाषित करते हैं-

1. **साध्यवत्तया पक्षवचनं प्रतिज्ञा** अर्थात् साध्यविशिष्ट पक्षबोधक वचन प्रतिज्ञा है। **पर्वतो वह्निमान्** यह प्रतिज्ञा वाक्य है।

2. **पञ्चम्यन्तं लिङ्गप्रतिपादकं वचनं हेतुः** तृतीया अथवा पञ्चमी विभक्ति वाला लिङ्गप्रतिपादक वाक्य हेतु कहलाता है। **धूमवत्त्वात** यह हेतुवाक्य है।

3. **व्याप्तिप्रतिपादकमुदाहरणम्** व्याप्तिप्रतिपादक दृष्टान्तवचन उदाहरण होता है। **यो यो धूमवान् स सोऽग्निमान्-** यह उदाहरणवाक्य है।

4- **पक्षधर्मताज्ञानार्थमुपनयः** व्याप्तिविशिष्टत्वरूप से हेतु की पक्षधर्मता का प्रतिपादक वाक्य उपनय कहलाता है। **तथा च अयम् -** यह उपनयवाक्य है।

5. **अबाधितत्वादिकं निगमनप्रयोजनम्-** साध्य का अबाधितत्वप्रतिपादक वचन निगमन कहलाता है। **तस्मात्तथा-** यह निगमनवाक्य है।

स्वार्थानुमिति और परार्थानुमिति- इन दोनों का लिङ्गपरामर्श ही कारण होता है, इस कारण से लिङ्गपरामर्श ही अनुमान है। **(स्वार्थानुमितिपरार्थानुमित्योर्लिङ्गपरामर्श एव करणम्। तस्माल्लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम्)**

व्यापारवान् कारण ही 'करण' होता है- **'व्यापारवत्कारणं करणम्।'**

व्यापार क्या है- इसके उत्तर में दीपिका टीकाकार अन्नम्भट्ट कहते हैं- **'तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनको व्यापारः'** अर्थात् जो कारण से जन्य हो एवं उसके दूसरे जन्य का जनक हो, वह व्यापार कहा जाता है। जैसे- चाक का घूमना चाक का जन्य अर्थात् कार्य होता हुआ, चाकजन्य घट का जनक है, क्योंकि उसके घूमे बिना घट बन ही नहीं सकता, अतः यह घूमना चाक का व्यापार हुआ।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **'तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकः** यह व्यापार का लक्षण है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- तर्कसङ्ग्रह- गोविन्दाचार्य, पेज-188-90

5. 'व्रीहीनवहन्ती' ति कस्य विधेरुदाहरणम् अर्थसङ्ग्रहदिशा–

(A) नियमविधेः (B) आर्थी-परिसङ्ख्याविधेः
(C) श्रौती-परिसङ्ख्याविधेः (D) अपूर्वविधेः

व्याख्या- लौगाक्षिभास्कर कृत अर्थसङ्ग्रह नामक प्रकरणग्रन्थ में नियमविधि का लक्षण इस प्रकार किया है- **'नाना साधनसाध्यक्रियायामेकसाधनप्राप्तौ अप्राप्तस्य अपरसाधनस्य प्रापको विधिर्नियमविधिः।**

अर्थात् विविध साधनों से सिद्ध होने वाली क्रिया के अनुष्ठान में एक साधन के प्राप्त रहने पर अप्राप्त दूसरे साधन की प्राप्ति कराने वाली विधि को 'नियमविधि' कहते हैं।

अत्यन्त अप्राप्त पदार्थ का विधान करने वाली विधि को 'अपूर्वविधि' कहते हैं।

पदार्थ की पाक्षिक अप्राप्ति होने पर तद्विधायक वाक्य को नियमविधि तथा जहाँ दोनों पदार्थों की एक काल में प्राप्ति हो, वहाँ दोनों में से एक पदार्थ को निवृत्ति कराने वाली विधि को 'परिसङ्ख्याविधि' कहते हैं।

जैसा कि लौगाक्षिभास्कर ने तन्त्रवार्तिककार कुमारिलभट्ट का वचन उद्धृत किया है-

विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति।
तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ परिसङ्ख्येति गीयते॥

उपर्युक्त श्लोक को अर्थसङ्ग्रहकार ने सरल शब्दों में इस प्रकार बताया है-

1. **'प्रमाणान्तरेणाप्राप्तस्य प्रापको विधिरपूर्वविधिः'** अर्थात् प्रमाणान्तर से अप्राप्त पदार्थ के प्रापक वाक्य को अपूर्वविधि कहते हैं। जैसे- 'यजेत स्वर्गकामः।' इत्यादि। प्रकृति में प्रमाणान्तर से स्वर्गप्राप्ति हेतु अप्राप्त याग का विधान किया गया है। अतः यह अपूर्व विधि है।

2. **'पक्षेऽप्राप्तस्य प्रापको विधिर्नियमविधिः।'** पक्ष में अप्राप्त के प्रापक विधि को नियमविधि कहते हैं; जैसे- **''व्रीहीनवहन्ति''।** प्रकृत उदाहरण दर्शपूर्णमास प्रकरण का है। पुरोडाश तैयार करने हेतु व्रीहि (चावल) का अवहनन 'नखविदलन' से भी हो सकता है, परन्तु 'नखविदलन' क्रिया का परित्याग करके 'अवहनन' के द्वारा किया जाना चाहिए, यह नियम 'व्रीहीनवहन्ति' विधि द्वारा किया जाता है। इसीलिए इसे 'नियमविधि' की सञ्ज्ञा दी गई है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'व्रीहीनवहन्ति' नियमविधि का उदाहरण है, **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- अर्थसङ्ग्रह- राजेश्वरशास्त्रिमुसलगाँवकर, पेज-263

6. 'मानवश्रौतसूत्रम्' केन वेदेन सह सम्बद्धम् विद्यते–
(A) ऋग्वेदेन (B) अथर्ववेदेन
(C) सामवेदेन (D) कृष्णयजुर्वेदेन

व्याख्या- वेदों के छः अङ्गों में 'कल्प' वेदाङ्ग को वेदपुरुष का 'हाथ' बताया गया है- **'हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते'** (पा.शि.)

कल्पसूत्रों के चार भेद हैं-

(i) श्रौतसूत्र (ii) गृह्यसूत्र (iii) धर्मसूत्र (iv) शुल्बसूत्र

श्रौतसूत्रों में वेदों में वर्णित बड़े यज्ञ-याग-इष्टियों का विस्तृत विवेचन और वर्णन है।

श्रौतसूत्रों का वेदों के अनुसार वर्गीकरण-

1. **ऋग्वेद-** (i) आश्वलायन (ii) शांखायन श्रौतसूत्र

2- **(क) शुक्ल यजुर्वेद-** कात्यायन श्रौतसूत्र

(ख) कृष्ण यजुर्वेद- (i) बौधायन (ii) वाधूल (iii) मानव (मैत्रायणीय) (iv) भारद्वाज (v) आपस्तम्ब (vi) काठक (vii) सत्याषाढ (हिरण्यकेशी) (viii) वैखानस (ix) वाराह

3- **सामवेद-** (i) आर्षेय (मशक) कल्प (ii) क्षुद्रकल्प (iii) जैमिनीय श्रौतसूत्र (iv) लाट्यायन श्रौतसूत्र (v) द्राह्यायण श्रौतसूत्र

4- **अथर्ववेद-** वैतान श्रौतसूत्र।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मानव श्रौतसूत्र कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्धित है, **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-215-16

7. पुरुषस्यास्तित्वं साङ्ख्यरीत्या कस्माद् हेतोः–
(A) त्रैगुण्यात् (B) अधिष्ठानात्
(C) भेदानां परिमाणात् (D) विषयत्वात्

व्याख्या- आचार्य ईश्वरकृष्ण ने अपने साङ्ख्यशास्त्रीय ग्रन्थ साङ्ख्यकारिका में 17वीं कारिका में पाँच हेतुओं से पुरुष का अस्तित्व सिद्ध किया है-

सङ्घातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च॥ (का.17)

अर्थात् पुरुष (आत्मा) का अस्तित्व है, क्योंकि-

1. **सङ्घातपरार्थत्वात्-** क्योंकि जड़ वस्तुओं के सङ्घात अपने से भिन्न दूसरे के लिए होते हैं।

2. **त्रिगुणादिविपर्ययात्-** जडवर्ग में रहने वाले त्रिगुणत्व का अभाव भी किसी में होता है।

3. **अधिष्ठानात्-** सुखदुःखमोहात्मक जडवर्ग को अधिष्ठित करने वाला कोई अधिष्ठाता होता है।

4. **भोक्तृभावात्-** सुखदुःखादि भोग्यपदार्थों का कोई भोक्ता होता है।

5. कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च- जडवर्ग से भिन्न आत्मरूप कैवल्य को प्राप्त करने के लिए महर्षियों और शास्त्रों की प्रवृत्ति होती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पुरुष का अस्तित्व उपर्युक्त पाँच कारणों से सिद्ध होता है; **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- साङ्ख्यकारिक- (का. 17) सन्तनारायण श्रीवास्तव्य, पेज-

8. शब्दनित्यत्वे वार्त्तिककृतः किं प्रमाणम्–

(A) सर्वे सर्वपदादेशाः दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः

(B) तदशिष्यं सञ्ज्ञाप्रमाणत्वात्

(C) पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्

(D) सिद्धन्तु नित्यशब्दत्वात्

व्याख्या- 'सिद्धं तु नित्यशब्दत्वात्' प्रकृत वार्तिक को महाभाष्यकार पतञ्जलि ने तृतीय आह्निक में 'वृद्धिरादैच्' सूत्र के भाष्य में उद्धृत किया है। इस वार्तिक का अर्थ है कि शब्द नित्य होता है अतः 'वृद्धिरादैच्' सूत्र में सञ्ज्ञा सञ्ज्ञी में अन्योन्याश्रय दोष नहीं होगा। वार्तिककार कात्यायन ने शब्द के नित्यत्व की सिद्धि के लिए उपर्युक्त वार्तिक लिखा है।

'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्'।।6.3.109।। पृषोदर-पृषद् उदरं यस्य तत् पृषोदरम्। पृषोदर आदि शब्द जिस रूप में उच्चारित किये गये हैं, वे उसी रूप में साधु हैं। पाणिनि ने पृषोदरादिगण में कुछ शब्द गिनाए हैं जिन्हें व्याकरण शास्त्र के अनुसार ठीक-ठीक सिद्ध नहीं किया जा सकता अतः उन्हें एक गण में रखकर यथावत् साधु मान लिया गया है। श्मशानं शवानां शयनम् इति, दक्षिणतारम्, दक्षिणतीरम्, वाग्वादः, वाड्वालिः आदि।

तदशिष्यं सञ्ज्ञा प्रमाणत्वात्।। 1.2.53।। जिसका शासन किया जा सके उसे शिष्य कहा जाता है। 'अशिष्य' अर्थात् जिसका शासन न किया जा सके। तत् पद के द्वारा प्रासङ्गिक युक्तवद्भाव का निर्देश किया गया है। 'सञ्ज्ञाप्रमाण' का अर्थ है 'लोकव्यवहार' पाणिनि जी का कहना है कि उपर्युक्त युक्तवद्भाव अर्थात् लिङ्ग और वचन का शासन नहीं किया जा सकता क्योंकि वह लोकव्यवहार के अधीन है। जैसे- 'दारा' शब्द स्त्रीवाची है परन्तु लोक में पुँल्लिङ्ग व बहुवचनान्त प्रयुक्त होता है- दाराः।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **विकल्प D सही है।**

स्रोत- व्याकरण महाभाष्य-(तृतीय आह्निक) चारुदेव शास्त्री, पेज- 132

9. 'अखण्डेषु कारणेषु फलावचः' इत्यनेन कस्यालङ्कारस्य लक्षणं प्रोक्तमाचार्यमम्मटेन–

(A) सङ्करस्य (B) समासोक्तेः

(C) विभावनायाः (D) विशेषोक्तेः

व्याख्या- आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश के दशम उल्लास में अर्थालङ्कारों का निरूपण किया है।

1. विशेषोक्ति- ''विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः'' कारणों के मिलने पर भी जहाँ कार्य का कथन नहीं होता वहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार होता है। जैसे- **निद्रानिवृत्तावुदिते द्युरत्ने सखीजने द्वारपदं पराप्ते।**

श्लथीकृताश्लेषरसे भुजङ्गे

चचाल नालिङ्गनतोऽङ्गना सा।। (का.475)

निद्रा की निवृत्ति हो जाने पर, सूर्य उदित होने पर, सखियों के द्वारस्थान पर आ जाने पर, प्रेमी के द्वारा आलिङ्गन के आनन्द को शिथिल कर देने पर भी वह अङ्गना आलिङ्गन से नहीं हटी। विशेषोक्ति **तीन** प्रकार की होती है- **अनुक्तनिमित्ता, उक्तनिमित्ता, अचिन्त्यनिमित्ता।**

2. सङ्कर-''अविश्रान्तिजुषामात्मन्यङ्गाङ्गित्वं तु सङ्करः'' अनेक अलङ्कारों की एक वाक्य में स्थिति होने पर संसृष्टि तथा सङ्कर दो अलङ्कार माने जाते हैं।

जहाँ अनेक अलङ्कार परस्पर निरपेक्ष रूप से स्थित होते हैं वहाँ संसृष्टि अलङ्कार होता है- **''सेष्टा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिह स्थितिः।''**

जहाँ अनेक अलङ्कारों की सापेक्ष स्थिति होती है वहाँ सङ्करालङ्कार माना जाता है। यह तीन प्रकार का होता है- 1. अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर 2. सन्देहसङ्कर 3. एकाश्रयानुप्रवेशसङ्कर

उदाहरण-

आत्ते सीमन्तरत्ने मरकतिनि हृते हेमताटङ्कपत्रे

लुप्तायां मेखलायां झटिति मणितुलाकोटियुग्मे गृहीते।

शोणं बिम्बोष्ठकान्त्या त्वदरिमृगदृशामित्वरीणामरण्ये

राजन्! गुञ्जाफलानां स्रज इति शबरा नैव हारं हरन्ति।।

हे राजन्! तुम्हारे डर से जङ्गलों में भागती हुई शत्रुओं की स्त्रियों के मरकतमणियों से युक्त शिरोभूषण छीन लेने पर, सोने के बने ताटङ्कपत्र निकाल लेने पर, करधनी तोड़ लेने पर और मणिजटित नूपुरों को ले लेने पर भी बिम्बासदृश ओष्ठ की कान्ति से लाल हो रहे शुभ्रमोतियों के हार को- ''यह घुँघुचियों की माला है''- ऐसा समझकर भील नहीं छीनते।

3. समासोक्ति-''परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः।'' श्लेषयुक्त भेदक विशेषणों द्वारा अप्रकृत के व्यवहार का कथन समासोक्ति कहलाता है। समासेन संक्षेपेण उक्तिः समासोक्तिः। उदाहरण-

लब्ध्वा तव बाहुस्पर्श यस्याः स कोऽप्युल्लासः।

जयलक्ष्मीस्तव विरहे न खलूज्ज्वला दुर्बला ननु सा।।

यहाँ 'जयलक्ष्मी' शब्द केवल अप्रकृत कान्ता-रूपी अर्थ का वाचक नहीं है अपितु श्लेषयुक्त विशेषणों के द्वारा जयलक्ष्मी शब्द नायिका का बोधक भी होता है।

4. विभावना- ''क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना।'' कारण का निषेध होने पर भी फल की उत्पत्ति का वर्णन होने पर विभावनालङ्कार होता है।

कुसुमितलताभिरहताऽप्यधत्त रुजमलिकुलैरदष्टापि।
परिवर्त्तते स्म नलिनीलहरीभिरलोलिताप्यघूर्णत सा॥
(का. 474)

खिली हुई लताओं से ताडित न होने पर भी वह नायिका पीड़ा को प्राप्त हो रही थी, भ्रमर कुल से न काटे जाने पर भी तड़प रही थी और कमलिनियों से युक्त लहरों के चक्कर में पड़े बिना भी चक्कर खा रही थी।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **विकल्प D सही है।**

स्रोत- काव्यप्रकाश- आचार्य विश्वेश्वर, पेज 498

10. 'अग्निष्टोमाख्यः' सोमयागः कदा अनुष्ठीयते–
(A) शरदि (B) वसन्ते
(C) ग्रीष्मे (D) प्रावृषि

व्याख्या- अग्निष्टोम सोमयाग का एक प्रकार है। सोमलता द्वारा जो यज्ञ किया जाता है उसे सोमयाग कहते हैं। यह वसन्त ऋतु में होता है। यद्यपि यह यज्ञ एक ही दिन में पूर्ण होता है, तथापि अपने अङ्ग के साथ पाँच दिनों में सुसम्पन्न होता है। इस यज्ञ में सोलह ऋत्विक् होते हैं (कात्यायन श्रौतसूत्र 7/1/7) जो कि चार गणों में विभक्त होते हैं- अध्वर्यु, ब्रह्मा, होता, उद्गाता। प्रत्येक गण में चार-चार ऋत्विक् होते हैं।

* **सोमयाग के 7 भेद होते हैं-** अग्निष्टोम (ज्योतिष्टोम), अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम।

* अग्निष्टोम साम में जिस यज्ञ की समाप्ति हो और उसके बाद अन्य साम न पढ़ा जाए उसे 'अग्निष्टोम कहते हैं।

* उक्थ्य साम, षोडशी साम, वाजपेय साम, अतिरात्र साम और आप्तोर्याम नामक साम पढ़कर जिन यज्ञों की समाप्ति होती है, वे यज्ञ क्रम में से उक्थ्य आदि नामों से कहे जाते हैं।

* अग्निष्टोम साम के अनन्तर षोडशी साम जिस यज्ञ में पढ़ा जाता है। वह 'अत्यग्निष्टोम' कहा जाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'अग्निष्टोम' नामक सोमयाग वसन्त ऋतु में किया जाता है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- यज्ञ माहात्म्य- वेणीराम शर्मा गौड, पेज-109

11. 'सच्चिदानन्दानन्ताद्वयं ब्रह्म' इत्यादिना वेदान्तसारे किं लक्षितम्–
(A) अवस्तु (B) वस्तु
(C) अज्ञानम् (D) अधिकारी

व्याख्या- सदानन्दयोगीन्द्र प्रणीत वेदान्तदर्शन के प्रकरणग्रन्थ वेदान्तसार में साधनचतुष्टय अर्थात् (i) अधिकारी (ii) विषय (iii) सम्बन्ध, और (iv) प्रयोजन, वस्तु, अवस्तु, अज्ञान आदि का निरूपण किया है।

1. वस्तु- ''वस्तु सच्चिदानन्दानन्ताद्वयं ब्रह्म'' अर्थात् सच्चिदानन्द, अनन्त और अद्वैत ब्रह्म वस्तु है तथा अज्ञान आदि से लेकर सम्पूर्ण जडप्रपञ्च अवस्तु है।

2. अवस्तु- ''अज्ञानादिसकलजडसमूहोऽवस्तु'' अर्थात् अज्ञान आदि से लेकर समस्त जडप्रपञ्च अवस्तु है।

3. अज्ञानम्- ''अज्ञानं तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चिदिति वदन्त्यहमज्ञ इत्याद्यनुभवात्...।'' अर्थात् अज्ञान तो सत् और असत् दोनों से विलक्षण होने से अनिर्वचनीय, त्रिगुणात्मक, ज्ञान का विरोधी तथा भावरूप होने से 'यत्किञ्चित्'- ऐसा कहते हैं। 'मैं अज्ञानी हूँ', इत्यादि अनुभव से।

4. अधिकारी-''अधिकारी तु विधिवदधीतवेदवेदाङ्गत्वेना....'' अर्थात् अधिकारी तो वह जिज्ञासु प्रमाता है जिसने वेद-वेदाङ्गों का विधिपूर्वक अध्ययन करके, सम्पूर्ण वेदों के अभिप्राय को भलीभाँति जान लिया है। इस जन्म अथवा पूर्वजन्म में काम्य और निषिद्ध कर्मों का त्यागकर, नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त और उपासना कर्मों के अनुष्ठान से, सम्पूर्ण पापों से मुक्त, अत्यन्त निर्मल अन्तःकरण वाला होकर, साधन चतुष्टय से सम्पन्न हो।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'सच्चिदानन्दानन्ताद्वयं ब्रह्म' इत्यादि से 'वस्तु' का लक्षण किया गया है।

अतः विकल्प B सही है।

स्रोत- वेदान्तसार- राकेश शास्त्री, पेज-149

12. पाणिनीयशिक्षानुसारेण विसर्गस्य रूपपरिवर्तनं (गतिः) कतिविधम् भवति–
(A) सप्तविधम् (B) नवविधम्
(C) अष्टविधम् (D) त्रिविधम्

व्याख्या- महर्षि पाणिनि प्रणीत 'पाणिनीय शिक्षा' में विसर्ग की आठ गतियाँ बताई गई हैं-

ओभावश्च विवृत्तिश्च षशसा रेफ एव च।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः॥ (पा.शि.14)

अर्थात् विसर्गात्मक ऊष्मा के आठ स्वरूप उपलब्ध होते हैं-
1. ओकार- शिवो वन्द्यः
2. विवृत्ति- विसर्ग के स्थान में अन्ततोगत्वा आदेश के रूप में आये यकारादि वर्णों का लोप हो जाने पर ('लोपः शाकल्यस्य' आदि नियमों से) तथा अन्य कारणों से भी स्वरों के बीच सन्धि का अभाव 'विवृत्ति' है।
3. षकार - रामष्षष्ठः 4. शकार - हरिश्शेते
5. सकार - कस्कः 6. रेफ - अहर्पतिः
7. जिह्वामूलीय - क ≍ करोति 8. उपध्मानीय - प ≍ पचति

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विसर्ग की आठ गतियाँ होती हैं। **अतः विकल्प C सही है।**
स्रोत- पाणिनीय शिक्षा, श्लोक-14

13. फललक्षणा निम्नलिखितासु लक्षणासु कस्याः पर्याया विद्यते–
(A) गौणीलक्षणायाः (B) रूढिवतीलक्षणायाः
(C) प्रयोजनवतीलक्षणायाः (D) शुद्धालक्षणायाः

व्याख्या- आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण के द्वितीय परिच्छेद में शब्दशक्ति विवेचन के प्रसङ्ग में लक्षणा के रूढिवती, प्रयोजनवती आदि भेद, तत्पश्चात् प्रयोजनवती लक्षणा के उपादानवती, लक्षणलक्षणा आदि भेद प्रभेद बतलाए हैं। प्रयोजनवती लक्षणा को फललक्षणा भी कहा है- **''व्यङ्ग्यस्य गूढागूढत्वाद् द्विधा स्युः फललक्षणाः। (कारिका 10)**
अर्थात् व्यङ्ग्य के गूढ और अगूढ होने के कारण फललक्षणा वाली अर्थात् प्रयोजनवती लक्षणाएँ पुनः दो प्रकार की होती हैं।
आचार्य विश्वनाथ ने लक्षणा के 80 भेद बताएँ हैं (एवमशीतिप्रकारा लक्षणाः) जबकि आचार्य मम्मट ने 6 भेद बताएँ हैं (लक्षणा तेन षड्विधा- काव्यप्रकाश)
* लक्षणा को **त्रिस्थूणा** कहा गया है क्योंकि इसके तीन प्रमुख आधार स्तम्भ हैं-
(i) मुख्यार्थबाध
(ii) मुख्यार्थ के साथ लक्ष्यार्थ का योग होना
(iii) रूढ़ि अथवा प्रयोजन का लक्ष्यार्थ- हेतु बनना
* अलङ्कारशास्त्र में लक्षणा को 'गौणीवृत्ति' अथवा 'भक्ति' भी कहा गया है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **विकल्प C सही है।**
स्रोत- साहित्यदर्पण- अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पेज-175

14. ''कथाप्रसङ्गेषु मिथः सखीमुखात्तृणेऽपि तन्व्या नलनामनि श्रुते'' अत्र नलपदस्यार्थोऽस्ति-
(A) शत्रुः (B) नृपः
(C) अग्निः (D) तृणम्

व्याख्या- श्रीहर्ष विरचित नैषधीयचरितम् में 22 सर्ग हैं, यह श्रृङ्गाररस प्रधान महाकाव्य है। इसमें नल दमयन्ती के प्रणय और विवाह की कथा वर्णित है। प्रश्नोक्त पद्यांश प्रथम सर्ग से उद्धृत है। पद्य का अर्थ इस प्रकार है-

कथाप्रसङ्गेषु मिथः सखीमुखात्तृणेऽपि तन्व्या नलनामनि श्रुते।
द्रुतं विधूयान्यदभूयतानया मुदा तदाकर्णनसज्जकर्णया।। 1.35

मिथः - परस्पर, आपस में **कथाप्रसङ्गेषु-** वार्तालाप के दौरान
सखीमुखात्- सखियों के मुख से **नलनामनि-** नल नामक
तृणे अपि - तृण के भी **श्रुते -** सुनने पर
अनया - यह **तन्व्या -** कृशाङ्गी
द्रुतम् - तुरन्त **अन्यद् -** अन्य कार्य
विधूय - छोड़कर **मुदा -** हर्ष से
तदाकर्णनसज्जकर्णया- उसके कीर्तन सुनने के लिए तत्पर कानों वाली
अभूयत - हो जाती थी।

नैषधीयचरितम् के कुछ अन्य शब्दार्थ-
1. **विनिद्ररोमा-** रोमाञ्चित, विनिद्राणि रोमाणि यस्याः, विनिद्ररोमा 'विनिद्ररोमाजनि शृण्वती नलम्'' (1.34)
2. **अनागसे-** निरपराध के लिए, 'अनागसे शंसति बालचापलम्'। (1.25)
3. **पार्विकशर्वरीश्वरः-** पूर्णिमा का चन्द्रमा, पर्वणि भवः पार्विकः, पार्विकश्चासौ शर्वरीश्वरः चन्द्रमाः, न शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः। (1.20)
4. **वेधसा-** ब्रह्मा के द्वारा, 'पुरेदमूर्ध्वं भवतीति वेधसा।' (1.18)
5. **चिकुराः-** केश,'द्विफालबद्धाश्चिकुराः शिरःस्थितम्।' (1.16)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रश्नोक्त पद्यांश में 'नल' शब्द का अर्थ 'तृण' है। **अतः विकल्प D सही है।**
स्रोत- नैषधीयचरितम् (1.35)

15. साहित्यदर्पणानुसारं रसस्य किं विशेषणं न साधु–
(A) लोकानुभूतिः (B) ब्रह्मास्वादसहोदरः
(C) अभिन्नः (D) स्वप्रकाशः

व्याख्या- आचार्य विश्वनाथ प्रणीत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में 10 परिच्छेद हैं, तृतीय परिच्छेद में रसनिरूपण करते हुए रस का

स्वरूप तथा आस्वादन का प्रकार बतलाया है-

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः॥2॥
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः॥3॥

उपर्युक्त श्लोकों में विश्वनाथ जी ने रस के विशेषण दिए हैं-

1. अखण्ड 2. अद्वितीय 3. स्वयम्प्रकाश
4. आनन्दस्वरूप 5. चिन्मय 6. वेद्यान्तर स्पर्शशून्य अर्थात् रससाक्षात्कार के समय अन्य विषयों के स्पर्श से शून्य
7. ब्रह्मास्वादसहोदर 8. अलौकिक चमत्कार रूपी प्राण (सार) वाला 9. स्वाकारवत् 10. अभिन्न

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रस के विशेषणों में से 'लोकानुभूति' रस का विशेषण नहीं है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- साहित्यदर्पण- शालिग्राम शास्त्री, पेज-48

16. तस्मादकृतकं शास्त्रं स्मृतिं च सनिबन्धनाम्।
आश्रित्यारभ्यते शिष्टैः शब्दानामनुशासनम्॥
वाक्यपदीयस्यास्यां कारिकायाम् 'अकृतकं शास्त्रम्' इति किम्?

(A) ब्रह्मसूत्रम् (B) व्याकरणशास्त्रम्
(C) मीमांसाशास्त्रम् (D) अपौरुषेयं शास्त्रम्

व्याख्या- महावैयाकरण भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड की 43वीं कारिका में वेदों को 'अकृतकं शास्त्रम्' कहा है।

अन्वयः - तस्मात् अकृतकम् शास्त्रम् सनिबन्धनाम् स्मृतिम् च आश्रित्य शिष्टैः शब्दानाम् अनुशासनम् आरभ्यते।।

तस्मात् - इस कारण
अकृतकम् - अकृत्रिम, अपौरुषेय
शास्त्रम् - ऋग्वेदादि शास्त्र
च - और
सनिबन्धनाम् - सनिमित्तक
स्मृतिम् - साङ्गोपाङ्गरूप स्मृति को
आश्रित्य - आश्रय करके
शिष्टैः - वेदादि शास्त्रज्ञ महर्षियों के द्वारा
शब्दानाम् अनुशासनम् - लौकिक और वैदिक साधु शब्दों का उपदेश
आरभ्यते - किया जाता रहा है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'अकृतकं शास्त्रम्' का अर्थ 'अपौरुषेयं शास्त्रम्' है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- वाक्यपदीयम्- जयदत्त उप्रेती, पेज-31

17. 'तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकः' तर्कसङ्ग्रहे कः प्रोक्तः—

(A) प्रागभावः (B) प्रध्वंसाभावः
(C) अन्योन्याभावः (D) अत्यन्ताभावः

व्याख्या- तर्कसङ्ग्रह नामक न्यायवैशेषिकशास्त्र से सम्बद्ध प्रकरणग्रन्थ में अन्नम्भट्ट ने वैशेषिक दर्शन में मान्य सप्तपदार्थों का निरूपण किया है- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। इनमें से अभाव नामक पदार्थ चार प्रकार का होता है-

1. प्रागभाव- (अनादिः सान्तः प्रागभावः) जिसका आदि नहीं है और अन्त है। यह कार्योत्पत्ति के बाद होता है।

2. प्रध्वंसाभाव- (सादिरनन्तः प्रध्वंसः) जिसका आदि है किन्तु अन्त नहीं। यह कार्योत्पत्ति के बाद होता है।

3. अत्यन्ताभाव- (त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकः) भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में होने वाले और संसर्गयुक्त प्रतियोगिता जिसमें है। जैसे- भूतल में घट नहीं है।

4. अन्योन्याभाव- (तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकः) तादात्म्य- सम्बन्ध से युक्त प्रतियोगिता वाले अभाव को अन्योन्याभाव कहा जाता है। जैसे- घट पट नहीं है और पट घट नहीं है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रश्नोक्त लक्षण अन्योन्याभाव का है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- तर्कसङ्ग्रह- गोविन्दाचार्य, पेज- 288

18. ''सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः'' उक्तिरियं कुत्र प्राप्यते—

(A) किरातार्जुनीये (B) रघुवंशे
(C) मेघदूते (D) मालविकाग्निमित्रे

व्याख्या- 1. रघुवंशम्- कालिदास रचित 19 सर्गों वाला, लघुत्रयी में परिगणित, 31 रघुवंशी राजाओं के वर्णन से युक्त, वीर रसप्रधान सुप्रसिद्ध महाकाव्य है।

प्रमुख सूक्तियाँ-

1. हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा।। (1.10)
2. सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।(1.18)
3. प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।। (1.79)
4. स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः।।(2.4)

5. तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते।। (11.1)

2. किरातार्जुनीयम्- भारवि रचित 18 सर्गों का वीररसप्रधान, बृहत्त्रयी में परिगणित महाकाव्य है। इसमें किरातरूपी शिव और अर्जुन के युद्ध व पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति का वर्णन मुख्यरूप से है।

प्रमुख सूक्तियाँ-

1. हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः। (1.4)
2. वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः। (1.8)
3. अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता। (1.23)
4. विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः। (1.37)
5. सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। (2.30)

3. मेघदूतम्- कालिदासरचित विप्रलम्भशृङ्गार से परिपूर्ण, लघुत्रयी में परिगणित खण्डकाव्य है। इसप्रकार मल्लिनाथ की 'संजीवनी' टीका सुप्रद्धित है। सम्पूर्ण ग्रन्थ मन्दाक्रान्ता छन्द में रचित है। 50 से अधिक संस्कृत टीकाएँ प्राप्त होती है।

कुछ प्रमुख सूक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

1. कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु। (पूर्वमेघ-5 कामार्त स्वभाव से ही चेतन एवं अचेतन के विषय में अविवेकी हो जाते हैं)

2. याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा। (पूर्वमेघ-6) (उच्चगुण वाले व्यक्ति से निष्फल याचना भी श्रेष्ठ है किन्तु नीच से सफल याचना भी श्रेष्ठ नहीं)

3. रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय। (पूर्वमेघ-20) सभी रिक्त पदार्थ हल्के और पूर्ण पदार्थ गौरवयुक्त होते हैं।

4. कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः सङ्गमात्किञ्चिदूनः। (उत्तरमेघ-40) (मित्र द्वारा लाया गया प्रियतम का सन्देश प्रिय मिलन से कुछ ही कम होता है।)

4. मालविकाग्निमित्रम्- कालिदास प्रणीत, शृङ्गार रसप्रधान, 5 अङ्कों का नाटक है। इसमें मालविका और अग्निमित्र के प्रणय और विवाह का वर्णन है। कुछ प्रमुख सूक्तियाँ-

1. पुराणमित्येव न साधु सर्वम्। (1.2)
(प्राचीन है- इतने मात्र से ही सब कुछ अच्छा नहीं होता।)

2. कार्यसिद्धिपथः सूक्ष्मः स्नेहेनाप्युपलभ्यते। (4.6)

3. नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम्। (1.4)

स्पष्टीकरण - उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि प्रश्नोक्त सूक्ति रघुवंशम् की है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- रघुवंशम् (1/8)

19. कतिविधास्तुष्टयः साङ्ख्ये परिगणिताः–

(A) अष्टौ (B) सप्त
(C) नव (D) तिस्रः

व्याख्या- आचार्य ईश्वरकृष्ण ने अपने सांख्यशास्त्रीय ग्रन्थ सांख्यकारिका की 47वीं कारिका में विपर्यय (अविद्या), अशक्ति, तुष्टि तथा सिद्धि के भेदों को गिनाया है-

पञ्चविपर्ययभेदा भवन्त्यशक्तिश्च करणवैकल्यात्।
अष्टाविंशतिभेदा तुष्टिर्नवधाऽष्टधा सिद्धिः॥ (का.47)

अर्थात् **1-** विपर्यय अर्थात् अविद्या के पाँच भेद होते हैं- (i) अविद्या (ii) अस्मिता (iii) राग (iv) द्वेष (v) अभिनिवेश

2- इन्द्रिय विकलता से उत्पन्न अशक्ति के 11 भेद, नौ तुष्टियों की विपर्ययरूप नौ तुष्टियाँ, आठ सिद्धियों की विपर्ययरूप आठ असिद्धियाँ = 28 भेद

3- तुष्टि के 9 भेद होते हैं- (i) प्रकृति, (ii) उपादान, (iii) काल और (iv) भाग्य-चार आध्यात्मिक तुष्टियाँ शब्दादि विषयों से वैराग्य होने पर पाँच बाह्य तुष्टियाँ = (v) पार (vi) सुपार (vii) पारापार (viii) अनुत्तमाम्भस् (ix) उत्तमाम्भस् ।

4- सिद्धि के 8 भेद- अध्ययन, शब्द, ऊह, सुहृत्प्राप्ति और दान-ये पाँच सिद्धियाँ तथा दुःखत्रय की विघातरूप तीन और सिद्धियाँ।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि तुष्टियाँ नौ प्रकार की होती हैं। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- साङ्ख्यकारिका- सन्तनारायण श्रीवास्तव्य, पेज-271

20. 'शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यः' इति लक्षणलक्षिता चित्तवृत्तिः का योगदर्शनानुसारेण –

(A) विपर्ययः (B) निद्रा
(C) प्रमाणम् (D) विकल्पः

व्याख्या- महर्षि पतञ्जलि प्रणीत 'योगदर्शन' भारतीय आस्तिक षड्दर्शनों में अन्यतम है। इसमें चार पाद हैं- 1. समाधिपाद 2. साधनपाद 3. विभूतिपाद 4. कैवल्यपाद।

1. विपर्यय- विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्॥ अर्थात् जो उस वस्तु के स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं है, ऐसा मिथ्याज्ञान विपर्यय कहलाता है।

2. निद्रा- अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा- अभाव के ज्ञान का अवलम्बन करने वाली वृत्ति निद्रा है। (सूत्र 10)

3. प्रमाण- प्रमाणवृत्ति तीन प्रकार की होती है- **प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि॥** (सूत्र 7)

4. विकल्प- शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः॥ (सूत्र 9) अर्थात् जो ज्ञान शब्दजनित ज्ञान के साथ-साथ होने वाला है और जिसका विषय वास्तव में नहीं है, वह विकल्प है

5. स्मृति- अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः॥ (सूत्र 11) अर्थात् अनुभव किये हुए विषय का न छिपना अर्थात् प्रकट हो जाना स्मृति है। उपर्युक्त पाँचों चित्त की वृत्तियाँ हैं।

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्त की वृत्तियाँ असंख्य होती हैं। अतः उनको पाँच श्रेणियों में बाँटा गया है-

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः॥ (सूत्र 5)

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः॥ (सूत्र 6)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **विकल्प D सही है।**

स्रोत- पातञ्जलयोगदर्शन - सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव - पेज 38

21. 'ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति' उक्तिरियं कुत्र प्राप्यते –

(A) हर्षचरिते (B) मालविकाग्निमित्रे
(C) उत्तररामचरिते (D) नैषधीयचरिते

व्याख्या- 1. हर्षचरित- यह बाणभट्ट की प्रथम रचना मानी जाती है। इस आख्यायिका में आठ उच्छ्वास हैं। प्रथम दो उच्छ्वासों में हर्ष ने अपने वंश का वर्णन किया है और आगे के 6 उच्छ्वासों में हर्ष के पूर्वजों का वर्णन करते हुए हर्ष जन्म से लेकर राज्यश्री के मिलने तक का वर्णन है। यह ग्रन्थ अपूर्ण है। इसकी कुछ प्रसिद्ध सूक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

* **मरणाच्च मे जीवितमेवास्मिन्समये साहसम्।** (पञ्चमोच्छ्वास) (मरने से बढ़कर साहस का काम मेरा जीवित रहना है।
* **परिवर्तमानः एकः कालः शैलानिवानन्तः।** (5/2) (एकाकी कालचक्र जब परिवर्तित होता है तो अनेक महापुरुषों को समान समय में ही बिना किसी लगाव के समाप्त कर डालता है।)
* **नियतिर्विधाय पुंसां प्रथमं सुखमुपरि दारुणं दुःखम्।** (5/1)

(नियति प्रारम्भ में मनुष्यों को सुख प्रदान करके फिर वज्र के सदृश कठोर दुःख प्रदान करने लगती है।)

2. मालविकाग्निमित्रम्- कालिदास प्रणीत, शृङ्गाररसप्रधान 5 अङ्कों का नाटक है। इसमें कुल 96 श्लोक। इसमें मालविका और अग्निमित्र के प्रणय और विवाह का वर्णन है। अग्निमित्र धीरललित कोटि का नायक है। इसकी कुछ प्रसिद्ध उक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

* **पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥ (1-2)**
* **कार्यसिद्धिपथः सूक्ष्मः स्नेहेनाप्युपलभ्यते। (4.6)**
* **श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था
संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां
धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव॥ (1.16)**
* **नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम्। (1.4)**

3. उत्तररामचरित- यह भवभूति विरचित 7 अङ्कों का करुणरसप्रधान नाटक है। इसके उपजीव्य वाल्मीकिरामायण का उत्तरकाण्ड (सर्ग 42-97) और पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय 1-68 तक माने जाते हैं। सप्तम अङ्क में गर्भाङ्क की योजना, विदूषक रहित नाटक, तृतीय अङ्क में छायाङ्क की योजना इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। कुछ प्रमुख सूक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

* **अपिग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्। (1/28)**
* **तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः। (1/13)**
* **ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति। (1/10)**
* **सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम्॥ (1/41)**
* **गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः। (4/11)**
* **नैषधीयचरितम्-** श्रीहर्ष विरचित 22 सर्गों का शृङ्गारप्रधान, वैदर्भी रीति- संवलित, बृहत्त्रयी में परिगणित सुप्रसिद्ध महाकाव्य है। इसमें नल-दमयन्ती की प्रणयकथा वर्णित है।

कुछ प्रमुख सूक्तियाँ-

* **क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग्जनः। (1/102)**
* **आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः। (5/103)**
* **कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते। (3/17)**
* **झटिति पराशयवेदिनो हि विज्ञाः। (4/118)**
* **भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः। (17/70)**

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **विकल्प C सही है।**

स्रोत- उत्तररामचरितम् (1.10)

22. 'राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् '– अत्र 'दीदिविम् ' पदस्य कोऽर्थः?

(A) इन्द्रम् (B) प्रकाशमानम्
(C) द्युलोकम् (D) पुनर्जायमानम्

व्याख्या- उपर्युक्त मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त का आठवाँ मन्त्र है। अग्निसूक्त के ऋषि मधुच्छन्दा, देवता- अग्नि, छन्द-गायत्री है। गायत्री छन्द चौबीस वर्णों का होता है।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे॥

राजन्तम्- प्रकाशित होते हुए, अध्वराणां-हिंसारहित यज्ञों के गोपाम्- रक्षक, ऋतस्य-सत्य कर्मफलों के, दीदिविम्-पुनःपुनः प्रकाशमान,

वर्धमानम्-बढ़ने वाले, स्वे-अपने, दमे-यज्ञशाला में।
दीदिविम्- यङ्लुगन्त 'दिव्' धातु से 'कि' प्रत्यय
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'दीदिविम्' का अर्थ 'प्रकाशमानम्' है **अतः विकल्प B सही है।**
स्रोत- ऋक्सूक्तसङ्ग्रह - हरिदत्त शास्त्री, पेज-60

23. कस्माद् हेतोः प्रधानस्यानुपलब्धिः सांख्यरीत्या?
(A) समानाभिहारात् (B) सौक्ष्म्यात्
(C) अतिदूरात् (D) मनोऽनवस्थानात्

व्याख्या- आचार्य ईश्वरकृष्ण ने अपने साङ्ख्यशास्त्रीय ग्रन्थ साङ्ख्यकारिका की 7वीं कारिका में यह बताया है कि किन कारणों से विद्यमान होने पर भी वस्तुओं का प्रत्यक्षज्ञान नहीं होता है, वे कारण हैं-

1. अत्यधिक दूर होने से [अतिदूरात्]
2. अत्यधिक समीप होने से [सामीप्यात्]
3. इन्द्रिय के नाश होने से [इन्द्रियघातात्]
4. मन की अस्थिरता से [मनः अनवस्थानात्]
5. सूक्ष्म होने से [सौक्ष्म्यात्]
6. किसी व्यवधान के आ जाने से [व्यवधानात्]
7. किसी के द्वारा अभिभूत हो जाने से [अभिभवात्]
8. समानजातीय वस्तु में मिल जाने से [समानाभिहारात्]

इस प्रश्न पर कि उपर्युक्त कारणों में से कौन सा कारण है जिससे प्रधान-पुरुष आदि का प्रत्यक्ष नहीं हो पाता, 8वीं कारिका में बतलाया है-

सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः।
महदादि तच्च कार्यं प्रकृतिसरूपं विरूपं च ॥ (का. 8)

अर्थात् उन प्रधान पुरुषादि का अप्रत्यक्ष होना, सूक्ष्म (निरवयव) होने के कारण है, उनके अभाव के कारण नहीं है, क्योंकि अपने कार्यरूप लिङ्ग से उनकी उपलब्धि होती है अर्थात् अनुमान से उनकी उपलब्धि होती है, और वे कार्य हैं महत्तत्त्वादि, जिनका प्रकृति के साथ सारूप्य (साधर्म्य) भी है और वैरूप्य भी।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रधान के अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण (सौक्ष्म्यात्) उसकी उपलब्धि प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा सम्भव नहीं हो पाती अपितु उसके कार्यरूप लिङ्ग से उसकी अनुमिति होती है। **अतः विकल्प B सही है।**
स्रोत- सांख्यकारिका - (का ॰ 8)

24. तर्कभाषारीत्या अभावात्मककार्यस्य कारणं कीदृशम्भवति?
(A) निमित्तकारणम् (B) असमवायिकारणम्
(C) समवाय्यसमवायिकारणम् (D) समवायिकारणम्

व्याख्या- * विश्व में दो प्रकार के कार्य माने गये हैं- 1. भावात्मक या भावकार्य; जैसे- घट-पट-आदि कार्य और 2. अभावात्मक कार्य
* न्याय वैशेषिक के अनुसार भावकार्य वे कहे जा सकते हैं, जिनमें सत्ता नामक सामान्य रहती है। द्रव्य, गुण तथा कर्म में ही सत्ता जाति रहती है। अतः भावकार्य का अर्थ है द्रव्य, गुण तथा कर्म के रूप में होने वाले कार्य।
* न्याय वैशेषिक मत में अभाव भी एक पदार्थ है जो कि अभावात्मक है। अभाव चार प्रकार का है- प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव। इनमें से केवल प्रध्वंसाभाव ही कार्यरूप है, अन्य नहीं।
* समवायि, असमवायि तथा निमित्त यह तीन प्रकार का कारण भावात्मक कार्यों का ही होता है।
* जो अभावात्मक कार्य अर्थात् प्रध्वंसाभाव है उसका तो केवल निमित्त कारण ही होता है।
* जैसा तर्कभाषाकार आचार्य केशवमिश्र ने कारण निरूपण के प्रसंग में इस प्रकार कहा है-
''तदेतद् भावानामेव त्रिविधं कारणम्। अभावस्य तु निमित्तमात्रं तस्य क्वचिदप्यसमवायात्। समवायस्य भावद्वयधर्मत्वात्।''
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अभावात्मक कार्य का कारण निमित्त कारण होता है **अतः विकल्प A सही है।**
स्रोत- तर्कभाषा- श्रीनिवास शास्त्री, पेज-43-44

25. साहित्यदर्पणानुसारं रसास्वादने को हेतुः?
(A) काव्यपाठः (B) पात्राणि
(C) सहृदयता (D) सत्त्वोद्रेकः

व्याख्या- आचार्य विश्वनाथ ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ साहित्यदर्पण के तृतीय परिच्छेद में रसनिरूपण करने के साथ ही रसास्वादन का हेतु भी बतलाया है-

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः॥
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः॥ (कारिका 3/2-3)

* अर्थात् सत्त्व का उद्रेक होने के कारण, कुछ प्रमाताओं (सहृदयों)

द्वारा अखण्ड (अद्वितीय) स्वयंप्रकाशस्वरूप, आनन्दमय, अनुभूयमान अन्य विषय के संस्पर्श से शून्य, ब्रह्मास्वादसहोदर अलौकिक चमत्कार से अनुप्राणित इस रस का, अपने आकार की ही भाँति अभिन्नरूप से आस्वादन किया जाता है।

* रजोगुण तथा तमोगुण से अस्पृष्ट मन को यहाँ सत्त्व कहा गया है।

* इस सत्त्व के उद्रेक का अर्थ है- रजोगुण एवं तमोगुण को अभिभूत कर उसका प्रकाशित होना।

* इस सत्त्वोद्रेक का कारण होता है- 'उसी प्रकार के अलौकिक काव्यार्थ का अनुशीलन।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'सत्त्वोद्रेक' ही रसास्वादन में हेतु है **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- साहित्यदर्पण- अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पृष्ठ-218

26. जहदजहल्लक्षणायाः वेदान्ते किमपरं नाम प्रयुक्तम्?

(A) भागलक्षणा (B) सारोपालक्षणा

(C) जहल्लक्षणा (D) अजहल्लक्षणा

व्याख्या- मुख्यार्थ का बाध होने पर उससे युक्त अर्थान्तर का ग्रहण जिस शक्ति से होता है, उसे लक्षणा कहते हैं, जो अर्थान्तर गृहीत होता है वह लक्ष्यार्थ तथा जिस पद में लक्षणा होती है, उसे लाक्षणिक पद कहते हैं।

यह लक्षणा तीन प्रकार की होती है- 1. जहल्लक्षणा, 2. अजहल्लक्षणा, 3. जहदजहल्लक्षणा।

➢ **जहल्लक्षणा-** वाच्यार्थ का पूर्णरूप से परित्याग हो जाने पर उससे संबद्ध दूसरे अर्थ का बोध कराने वाली शब्द की वृत्ति को जहल्लक्षणा कहते हैं। जैसे- **'गङ्गायां घोषः'** इसमें गङ्गा शब्द अपने प्रवाहरूप मुख्य अर्थ का बाध हो जाने पर उसका परित्याग कर उससे सम्बद्ध गङ्गातट रूप अर्थान्तर का बोध कराता है। घोष अर्थात् गाँव या बस्ती का आधार गङ्गा की धारा या प्रवाह तो हो नहीं सकता इसलिए उसका बाध या परित्याग हो जाता है। तदनन्तर गङ्गा से सम्बद्ध तट रूप अर्थ लिया जाता है।

➢ **अजहल्लक्षणा-** अजहल्लक्षणा वह लक्षणा है जिसमें वाच्यार्थ या मुख्यार्थ का परित्याग किये बिना उससे सम्बद्ध अर्थ का बोध या ग्रहण हो जाता है। इसको **उपादान लक्षणा** भी कहते हैं, क्योंकि वाच्यार्थ से अतिरिक्त अर्थ का उपादान या ग्रहण इस लक्षणा के द्वारा किया जाता है। जैसे- **'कुन्ताः प्रविशन्ति'।** कुन्त अर्थात् भालों का तो प्रविशन्ति क्रिया के साथ अन्वय बनता नहीं, क्योंकि प्रवेश क्रिया को जीवित पदार्थ ही कर सकता है। भाले तो जड़ पदार्थ हैं। अतः 'कुन्ताः' का 'कुन्तधारिणः' अर्थात् 'भाले वाले पुरुष' ऐसा अर्थ लक्षणा से ग्रहण किया गया।

➢ **जहदजहल्लक्षणा-** तीसरी लक्षणा जहदजहल्लक्षणा इसलिए कही जाती है, क्योंकि इसमें मुख्य अर्थ या वाच्यार्थ का अंशतः तो त्याग होता है, परन्तु अंशतः त्याग नहीं (अजहत्) होता है। दूसरे शब्दों में, इस लक्षणा में वाच्यार्थ का पूर्णतः त्याग न होकर एक ही अंश या भाग का त्याग होता है। इसी से इसका दूसरा नाम **'भागत्याग लक्षणा'** और संक्षिप्त नाम केवल **'भागलक्षणा' है,** जैसा कि वेदान्तसार में दिये गये **'तत्त्वमसि'** वाक्य के अर्थ बोध में अपेक्षित इस लक्षणा को इसी नाम से निर्दिष्ट करने से स्पष्ट है। पूर्ण अर्थ के एक भाग का ग्रहण करने से भी इसका भागलक्षणा नाम माना जा सकता है। जैसे- **सोऽयं देवदत्तः आदि।**

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जहदजहल्लक्षणा को वेदान्त में 'भागलक्षणा' या 'भागत्यागलक्षणा' भी कहते हैं। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार - राकेश शास्त्री, पेज 235

27. अधोऽङ्कितेषु केन सह कस्य सम्बन्धः?

समुचितां तालिकां चिनुत -

(a)	अयोगात्मकभाषा	(i)	संस्कृत भाषा
(b)	श्लिष्टयोगात्मकभाषा	(ii)	तुर्की
(c)	प्रश्लिष्टयोगात्मकभाषा	(iii)	तिब्बती भाषा
(d)	अश्लिष्टयोगात्मकभाषा	(iv)	चेरोफी

Options

(A) (a) (iv), (b) (iii), (c) (ii), (d) (i)

(B) (a) (ii), (b) (i), (c) (iv), (d) (iii)

(C) (a) (i), (b) (ii), (c) (iii), (d) (iv)

(D) (a) (iii), (b) (i), (c) (iv), (d) (ii)

व्याख्या- विश्व की भाषाओं के दो प्रकार के वर्गीकरण हैं- आकृतिमूलक और पारिवारिक। आकृतिमूलक वर्गीकरण के दो भेद हैं- योगात्मक और अयोगात्मक। अयोगात्मक भेद एक ही प्रकार का है। योगात्मक के तीन भेद हैं- 1. श्लिष्ट, 2. अश्लिष्ट, 3. प्रश्लिष्ट। योगात्मक भाषाएँ प्रकृति और प्रत्यय के संयोग से बनी हुई होती हैं।

आकृतिकमूलक वर्गीकरण-

1. अयोगात्मक भाषाएँ- अयोगात्मक उन भाषाओं को कहते हैं, जिनमें प्रकृति और प्रत्यय या अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व का

संयोग नहीं होता है। प्रत्येक शब्द स्वतंत्र होता है। इसमें प्रत्येक शब्द प्रकृति या मूल के तुल्य होता है, अतः इसे Root (धातु,मूल) Language कहते हैं। इन भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय जैसी चीज नहीं होती। इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाली भाषाएँ है- चीनी, तिब्बती आदि।

2. योगात्मक भाषाएँ- योगात्मक भाषाएँ उनको कहते हैं, जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का संयोग रहता है। प्रकृति (अर्थतत्त्व) और प्रत्यय (सम्बन्धतत्त्व) का संयोग विभिन्न प्रकार से हो सकता है, अतः योगात्मक भाषाओं को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है- (1) अश्लिष्ट (2) श्लिष्ट (3) प्रश्लिष्ट

(क) अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ- अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय इस प्रकार जुड़ा हुआ होता है कि दोनों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसके चार भाग किये गये हैं- (1) पूर्वयोगात्मक (2) मध्ययोगात्मक (3) अन्तयोगात्मक (4) पूर्वान्तयोगात्मक इस वर्ग की भाषाओं में- 'काफिर, सन्थाली, तुर्की, मफोर' आदि प्रमुख हैं।

(ख) श्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ- श्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय घनिष्ठता से मिले होते हैं। दोनों इस प्रकार मिले होते हैं कि प्रकृति और प्रत्यय को अलग-अलग बताना संभव नहीं होता है। इसके दो भाग किये गये हैं और दोनों के पुनः दो-दो भाग हैं-

(1) अन्तर्मुखी श्लिष्ट- अन्तर्मुखी श्लिष्ट के दो भेद- (क) संयोगात्मक अन्तर्मुखी (ख) वियोगात्मक अन्तर्मुखी

(2) बहिर्मुखी श्लिष्ट- बहिर्मुखी श्लिष्ट के दो भेद- (क) संयोगात्मक बहिर्मुखी (ख) वियोगात्मक बहिर्मुखी।

इस वर्ग की प्रमुख भाषाओं में हैं- अरबी, हिब्रू, संस्कृत तथा हिन्दी।

(ग) प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ- प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय इतने अधिक घनिष्ठ रूप से मिले होते हैं कि दोनों को न अलग पहचाना जा सकता है और न दोनों को एक-दूसरे से अलग किया जा सकता है। इसके दो भेद किये गये-

(1) पूर्ण प्रश्लिष्ट योगात्मक (2) आंशिक प्रश्लिष्ट योगात्मक।

इस वर्ग की भाषाएँ हैं- चेरोकी, बास्क

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तिब्बती भाषा अयोगात्मक भाषा है, संस्कृत, श्लिष्ट योगात्मक, चेरोकी प्रश्लिष्ट योगात्मक तथा तुर्की अश्लिष्ट योगात्मक है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान - भोलानाथ तिवारी, पेज 96-99

28. अजहत्स्वार्था लक्षणा का भवति?
(A) लक्षणलक्षणा (B) फललक्षणा
(C) उपादानलक्षणा (D) साध्यवसानिका

व्याख्या- महाकवि विश्वनाथ अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में अभिधा शक्ति का निरूपण करने के बाद लक्षणा का विवेचन करते हुए कहते हैं-

मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययाऽन्योऽर्थः प्रतीयते।
रूढेः प्रयोजनाद्वाऽसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता॥ (2/5)

अर्थ- मुख्यार्थ के बाधित होने पर रूढि अथवा प्रयोजन के बल पर जिस शब्दशक्ति के द्वारा उस (मुख्यार्थ) से संयुक्त अर्थ की प्रतीति होती है, वही लक्षणा है। यह अर्पित अर्थात् आरोपित शब्दशक्ति है (न कि अभिधा के समान स्वाभाविक शक्ति)।

उपादान लक्षणा- साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ग्रन्थ के द्वितीय परिच्छेद की कारिका संख्या 6 में उपादान लक्षणा की विवेचना करते हुए कहते हैं-

मुख्यार्थस्येतराक्षेपो वाक्यार्थेऽन्वयसिद्धये।
स्यादात्मनोऽप्युपादानादेषोपादानलक्षणा॥ (2/6)

अर्थ- जब वाक्यार्थ में अपने अन्वय की सिद्धि के लिए, मुख्यार्थ अन्य अर्थ का आक्षेप (ग्रहण) कर लेता है तब अपना भी अस्तित्व बने रहने के कारण इसे उपादान लक्षणा कहते हैं। इसी को वैयाकरण 'अजहत्स्वार्था लक्षणा' कहते हैं। जैसे- काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम् । अजहल्लक्षणा का लक्षणा है जिसमें मुख्यार्थ का बिना परित्याग किए उससे सम्बद्ध अर्थ का बोध हो जाता है।

रूढि में उपादान लक्षणा का उदाहरण है- **श्वेतो धावति** (श्वेतवर्ण अश्व दौड़ रहा है)। प्रयोजन में इसका उदाहरण है- **कुन्ताः प्रविशन्ति** (अर्थात् कुन्तधारी) योद्धा प्रवेश कर रहे हैं। प्रथम उदाहरण में प्रयोजन के अभाववश रूढि (मात्र) है। दूसरे सन्दर्भ में कुन्तादि का अत्यन्त गहन होना प्रयोजन व्यक्त करता है और यहाँ मुख्यार्थ का अपना भी उपादान बना हुआ है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अजहत्स्वार्थालक्षणा को ही 'उपादान लक्षणा' कहते हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- साहित्यदर्पण - राजेन्द्र मिश्र, पेज 157

29. 'तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्याया आत्मानम् अन्विष्यात्' इत्युक्तिः कस्याम् उपनिषदि प्राप्यते?
(A) केनोपनिषदि (B) श्वेताश्वतरोपनिषदि
(C) प्रश्नोपनिषदि (D) मुण्डकोपनिषदि

व्याख्या- प्रश्नोपनिषद्- प्रश्नोपनिषद् अथर्ववेद के पिप्पलाद शाखीय ब्राह्मण भाग के अन्तर्गत है। इस उपनिषद् में पिप्पलाद ऋषि ने सुकेशा आदि छः प्रश्नों का क्रम से उत्तर दिया है, इसलिए इसका नाम प्रश्नोपनिषद् हो गया।

'तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययाऽऽत्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते'। (1/10)

प्रस्तुत पंक्ति प्रश्नोपनिषद् के प्रश्न एक के दसवें खण्ड से उद्धृत है-

अर्थ- तपस्या के साथ ब्रह्मचर्यपूर्वक (और) श्रद्धा से युक्त होकर अध्यात्म विद्या के द्वारा परमात्मा की खोज करके (जीवन सार्थक) करते हैं।

'अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः'।

(प्र.प.13)

अर्थ- दिन और रात का जोड़ा ही प्रजापति है उसका दिन ही प्राण है और रात्रि ही रवि है।

कठोपनिषद्- कठोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की कठशाखा के अन्तर्गत है। इसमें नचिकेता और यम के संवादरूप में परमात्मा के रहस्यमय तत्त्व का बड़ा ही उपयोगी और विशद वर्णन है। इसमें दो अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में तीन-तीन वल्लियां हैं।

कठोपनिषद् की प्रमुख सूक्तियाँ

'मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन' (2/1/11)

अर्थ- (शुद्ध) मन से ही यह परमात्मतत्त्व प्राप्त किये जाने योग्य है, इस जगत् में (एक परमात्मा के अतिरिक्त) नाना (भिन्न-भिन्न भाव) कुछ भी नहीं है।

'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'। (1/3/14)

अर्थ- (हे मनुष्यों) उठो, जागो (सावधान हो जाओ और) श्रेष्ठ महापुरुषों को पाकर उनके पास जाकर (उनके द्वारा) उस परब्रह्म परमेश्वर को जान लो।

'ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि'

(1/3/13)

अर्थ- उस मान को ज्ञानस्वरूप बुद्धि में विलीन करें, ज्ञान रूप बुद्धि को महान् आत्मा में विलीन करें, और उसको शान्त स्वरूप परमपुरुष परमात्मा में विलीन करें।

केनोपनिषद्- यह उपनिषद् सामवेद के 'तलवकार ब्राह्मण' के अन्तर्गत है। तलवकार को 'जैमिनीय उपनिषद्' भी कहते हैं। इस उपनिषद् में सबसे पहले केन शब्द आया है, इसी से इसका नाम केनोपनिषद् पड़ गया।

केनोपनिषद् की सूक्तियाँ

*** 'आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्'।**

(के.उ. खण्ड 2/4)

अर्थ- अन्तर्यामी परमात्मा से, परमात्मा को जानने की शक्ति (ज्ञान) प्राप्त करता है, (और उस) विद्या (ज्ञान से) अमृतरूप परब्रह्म पुरुषोत्तम को प्राप्त होता है।

*** 'यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते'।**

(1.1.8)

अर्थ- जो प्राण के द्वारा चेष्टायुक्त नहीं होता, (बल्कि) जिससे प्राण चेष्टायुक्त होता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् की सूक्तियाँ

*** ''पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्''।** (3/3/15)

अर्थ- जो अब से पहले हो चुका है, जो भविष्य में होने वाला है यह परम् पुरुष परमात्मा ही है।

*** ''नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः''।** (3.3.18)

अर्थ- नौ द्वार वाले, शरीर रूपी नगर में अन्तर्यामी रूप से हृदय में स्थित वह प्रकाशमान परमेश्वर बाह्य जगत् में भी लीला कर रहा है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत यह उक्ति- तपसा ब्रह्मचर्येण...! प्रश्नोपनिषद् से उद्धृत है। **अतः विकल्प (C) सही है।**

स्रोत- ईशादि नौ उपनिषद् - पेज 180

30. साङ्ख्यदर्शनेऽन्तःकरणं किमात्मकम्?

(A) मनोबुद्धी एव (B) बुद्धिरेव

(C) बुद्ध्यहङ्कारमनांसि (D) बुद्ध्यहङ्कारावेव

व्याख्या

ईश्वरकृष्ण विरचित सांख्यदर्शन के प्रकरणग्रन्थ सांख्यकारिका में तेरह प्रकार के करण बताये हैं- पांच कर्मेन्द्रियाँ, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा तीन अन्तःकरण। सांख्यकारिका की 33वीं कारिका में अंतःकरण के स्वरूप की विवेचना करते हुए कहते हैं-

''अन्तःकरणं त्रिविधं दशधा बाह्यं त्रयस्य विषयाख्यम्।
साम्प्रतकालं बाह्यं त्रिकालमाभ्यन्तरं करणम्।'' (सा.-का.-33)

अर्थ- अन्तःकरण तीन प्रकार के हैं, और बाह्यकरण दस प्रकार के हैं जो विषयों को (ग्रहण करके) अन्तःकरणत्रय के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। बाह्यकरण केवल वर्तमान काल के पदार्थों को अपना विषय बनाते हैं, जबकि आन्तरिक करण (भूत, वर्तमान और भविष्य इन) त्रैकालिक पदार्थों को अपना विषय बनाते हैं।

सांख्यकारिका की वाचस्पतिमिश्र कृत टीका सांख्यतत्त्वकौमुदी में अन्तःकरण की व्याख्या करते हुए कहा गया-

''अन्तःकरणं त्रिविधम् बुद्धिरहङ्कारो मनः इति,
शरीराभ्यन्तरवर्तित्वादन्तःकरणम् ।''

अर्थ- अन्तःकरण के तीन भेद हैं- बुद्धि, अहङ्कार और मन (स्थूल) शरीर के भीतर निवास करने के कारण वह अन्तःकरण है। बाह्यकरण दस प्रकार के हैं, वे त्रिविध अन्तःकरण

के प्रति विषयों का आख्यान (कथन) करते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अन्तःकरण के स्वरूप में मन, बुद्धि और अहङ्कार को शामिल किया जाता है। **अतः विकल्प (C) सही है।**

31. 'रीतिरात्मा काव्यस्य' मतमिदं कस्य विद्यते?

(A) वामनस्य (B) रुद्रटस्य

(C) भामहस्य (D) कुन्तकस्य

व्याख्या- काल विभाग के क्रम मे काव्यशास्त्र में अनेक सम्प्रदायों का जन्म हुआ। इन सम्प्रदायों की स्थापना काव्यात्मभूत तत्त्व के विषय में मतभेद के कारण हुई है। जो लोग रस को काव्य की आत्मा मानते हैं वे रस सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं। जो अलङ्कारों को काव्य की आत्मा मानते हैं वे अलङ्कार सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं। इसी प्रकार रीति को काव्य की आत्मा मानने वाले, ध्वनि को काव्य की आत्मा मानने वाले, वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा मानने वाले अलग-अलग सम्प्रदाय स्थापित हुए।

1. रस सम्प्रदाय- सबसे मुख्य तथा प्राचीन सम्प्रदाय रस सम्प्रदाय है। 'रस सम्प्रदाय के संस्थापक भरतमुनि हैं।' भरतमुनि का **'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः'** यह प्रसिद्ध रससूत्र ही रससिद्धांत का प्राणभूत है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में रसों का और सातवें अध्याय में भावों का बहुत विस्तार के साथ विवेचन किया है। यही रस सिद्धांत का आधार है। भरतमुनि के रस सिद्धांत के व्याख्याकार के रूप में भट्टनायक, भट्टलोल्लट, शङ्कुक, अभिनवगुप्त आदि आचार्य बहुत प्रसिद्ध हैं।

2. अलङ्कारसम्प्रदाय- आचार्य भामह इस अलङ्कार सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। उद्भट, दण्डी, रुद्रट, प्रतिहारेन्दुराज, जयदेव आदि अनेक आचार्य इस अलङ्कार सम्प्रदाय के अन्तर्गत आ जाते हैं। अलङ्कार सम्प्रदाय के अनुयायी भी रस की सत्ता मानते हैं, किन्तु उसे प्रधानता नहीं देते हैं। उनके मत में काव्य का प्राणभूत जीवनाधायक तत्व अलङ्कार ही है। अलङ्कारविहीन काव्य की कल्पना वैसी ही है जैसे उष्णताविहीन अग्नि की कल्पना।

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती॥

अलङ्कारसम्प्रदायवादी, काव्य में अलङ्कारों को ही प्रधान मानते हैं और इसका अन्तर्भाव रसवदलङ्कारों में करते हैं। रसवत्, प्रेम, ऊर्जस्विन् और समाहित चार प्रकार के रसवदलङ्कार माने जाते हैं।

3. रीति सम्प्रदाय- वामन ने काव्य में अलङ्कार की प्रधानता के स्थान पर रीति की प्रधानता का प्रतिपादन किया। 'रीतिरात्मा काव्यस्य' यह उनका प्रमुख सिद्धांत है। इसलिए उन्हें रीतिसम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। रीति की विवेचना करते हुए उन्होंने कहा- **''विशिष्टपदरचना रीतिः''** इस प्रकार इस सिद्धांत में 'गुण' और रीति का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए रीतिसम्प्रदाय को 'गुणसम्प्रदाय' के नाम से भी जाना जाता है।

4. वक्रोक्ति सम्प्रदाय- कुन्तक ने काव्य में रीति की प्रधानता को समाप्त कर वक्रोक्ति की प्रधानता की स्थापना की। वामन ने भी **'सा दृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः'** लिखकर काव्य में वक्रोक्ति का स्थान माना है। कुन्तक ने वक्रोक्ति को जो गौरव प्रदान किया है वह उन आचार्यों ने नहीं किया है। इसलिए कुन्तक ही इस सम्प्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं। उन्होंने इस वक्रोक्ति सिद्धान्त के ऊपर वक्रोक्तिजीवित नामक अपने विशाल एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की। वामन की वैदर्भी रीति को कुन्तक **सुकुमार मार्ग** कहते हैं। इसी प्रकार गौड़ी रीति को **विचित्रमार्ग** तथा **पाञ्चाली रीति** को **मध्यममार्ग** के नाम से कहते हैं।

5. ध्वनि सम्प्रदाय- इस सम्प्रदाय के संस्थापक आनन्दवर्धनाचार्य माने जाते हैं। **'काव्यस्यात्मा ध्वनिः'** काव्य की आत्मा ध्वनि है। इन सभी सम्प्रदायों में ध्वनि सम्प्रदाय सबसे अधिक प्रबल एवं महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय रहा है।

ध्वनि सिद्धान्त के विरोध में वैयाकरण, साहित्यिक, वेदान्ती, मीमांसक, नैयायिक सभी ने आवाज उठाई, किन्तु अन्त में काव्यप्रकाशकार मम्मट ने बड़ी प्रबल युक्तियों द्वारा उन सबका खण्डन करके ध्वनि सिद्धांत की पुनः स्थापना की। इसलिए उनको **ध्वनिप्रतिष्ठापक परमाचार्य** कहा जाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि **'रीतिरात्मा काव्यस्य'** इस मत के प्रवर्तक वामन हैं। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- काव्यप्रकाश - आचार्य विश्वेश्वर, भू. पेज- 17

32. ग्रिमनियमानुसारेण प्रथमवर्णपरिवर्तने तवर्गीय-ध्वनीनां कः परिवर्तनक्रमोऽस्ति?

(A) त→थ, द→त, ध→द

(B) त→य, द→त, ध→द

(C) त→द, द→थ, थ→द

(D) त→थ, ध→त, द→थ

व्याख्या- ग्रिमनियम का संक्षिप्त इतिहास- यह ध्वनि नियम प्रो. याकोब ग्रिम के नाम से प्रसिद्ध है। इस नियम को ध्वनि परिवर्तन (जर्मन में लाउत ध्वनि, फेशींबुंग-परिवर्तन, अंग्रेजी में Sound Shifting, साउण्ड=ध्वनि, शिफ्टिंग=परिवर्तन नाम दिया गया। प्रो. मैक्समूलर ने इसे ग्रिम

नियम नाम दिया है। प्रो. ओटो येस्पर्सन का कहना है कि इस नियम को **रास्क-नियम** नाम दिया जाना चाहिये क्योंकि यह नियम डैनिश विद्वान् रास्क ने ही सर्वप्रथम प्रामाणिक रूप में अपनी पुस्तक **(Undersogelse)** में प्रकाशित किया था।

ध्वनि नियम- विभिन्न भाषाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसमें समय-समय पर कुछ परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन भाषा की परिवर्तनशीलता के कारण होते हैं। इन व्यापक परिवर्तनों को नियम की सीमा में बांधने का प्रयत्न किया गया है।

ग्रिम नियम- ग्रिम नियम के अनुसार मूल भारोपीय भाषा की निम्नलिखित ध्वनियों को अंग्रेजी और जर्मन भाषा में ध्वनियाँ हो जाती हैं- (प्रथम को द्वितीय, 1 को 2) क्रमशः क् त् प् को ह् (ख्) थ्, फ् (चतुर्थ को तृतीय 4 को 3) क्रमशः घ्, ध्, भ् को ग् द् ब् । (तृतीय को प्रथम 3 को 1) क्रमशः ग् द् ब् को क् त् प् ।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि- त को थ, द को त तथा ध को द होगा। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान - भोलानाथ तिवारी, पेज 364-65

33. अधस्तनेषु किं मेलनं समुचितम्?

(A) आ मुक्तेः - आङ्मर्यादाभिविध्योः

(B) दम्पती - स्त्रियां संज्ञायाम्

(C) घृतगन्धि - वोपसर्जनात्

(D) मुहूर्तसुखम् - यस्य चायामः

व्याख्या-

➢ **आङ्मर्यादाऽभिविध्योः** (2/1/12)

अर्थ- मर्यादा और अभिविधि अर्थों में विद्यमान आङ् अव्यय का पञ्चम्यन्त समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है और वह अव्ययीभाव कहलाता है। यथा- आ मुक्तेः संसारः।

मुक्ति होने तक संसार है। यहाँ मर्यादा अर्थगम्य है। **'आमुक्तेः'** लौकिक विग्रह और 'आमुक्ति+ङसि' अलौकिक विग्रह। **'आङ् मर्यादाभिविध्योः'** सूत्र से विकल्प से समास होने पर प्रातिपदिक संज्ञा, सुप् का लुक्, प्रथमानिर्दिष्ट आ की उपसर्जनसंज्ञा और उसका पूर्व प्रयोग करके **'आमुक्ति'** बना। **'एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक'** मानकर सुप्रत्यय अव्यय होने के कारण उसका **'अव्ययादाप्सुपः'** से **'लुक्'** होने पर आमुक्ति सिद्ध हो जाता है। समास न होने के पक्ष में वाक्य ही रह जाता है- **'आ मुक्तेः'।** यहां पर **'आङ्मर्यादावचने'** सूत्र से **आङ्** की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने पर **'पञ्चम्यपाङ्परिभिः'** से पञ्चमी होकर **'आ मुक्तेः'** बना।

➢ **स्त्रियां संज्ञायाम्**

अर्थ- संज्ञा के विषय में बहुव्रीहि समास में यदि अन्य पदार्थ स्त्रीवाच्य हो तो दन्त शब्द को दतृ समासान्त आदेश होता है। यथा- अय इव दन्ताः यस्याः सा- **अयोदती**।

➢ **यस्य चायामः**

अर्थ- जिसकी दीर्घता 'अनु' शब्द से द्योतित होती हो, ऐसे लक्षणवाची शब्द के साथ अनु का विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है। यथा- **अनुगङ्गम्। गङ्गायाः अनु।**

➢ **वोपसर्जनस्य**

अर्थ- जिसमें सब अवयव उपसर्जन हैं उस बहुव्रीहि समास के अवयवभूत सह शब्द को स आदेश विकल्प से होता है, उत्तरपद परे रहते। यथा- **'सपुत्रः' सहपुत्रः** बहुव्रीहि के सभी पद उपसर्जन होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि **'आङ्मर्यादाऽभिविध्योः'** सूत्र से **'आ मुक्तेः'** में अव्ययीभाव समास हुआ। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- भैमीव्याख्या (भाग-चार), पेज 45

34. 'मौद' शाखा केन वेदेन सह सम्बद्धा वर्तते?

(A) सामवेदेन (B) ऋग्वेदेन

(C) अथर्ववेदेन (D) कृष्णयजुर्वेदेन

व्याख्या-

- हमारे वैदिक साहित्य में चार वेद हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।
- इन चारों वेदों की अलग-अलग शाखायें प्राप्त होती हैं जो इस प्रकार हैं-

वेद		**शाखाएँ**
ऋग्वेद-	–	शाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शांखायन, माण्डूकायन।
शुक्ल यजुर्वेद	–	माध्यन्दिन (वाजसनेयीशाखा) काण्व शाखा
कृष्ण यजुर्वेद	–	तैत्तिरीय शाखा, मैत्रायणी शाखा कठ शाखा, कपिष्ठल शाखा
सामवेद-	–	तलवकार, सात्युग्र,कौथुमीय शाखा, राणायनीय दुर्वासस, भागुरि, गौलण्डि, शाखा, जैमिनीय शाखा, औप-गौर्गुलजि ममन्यव, कारडि, सावर्णि, गार्ग्य, वार्षगण्य और दैवन्त्य।
अथर्ववेद	–	पैप्पलाद, तौद, मौद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, देवदर्श, चारणवैद्य। इनमें दो शाखा ही प्राप्त है-पैप्पलाद, शौनकीय।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मौद शाखा अथर्ववेद से सम्बद्ध है। **अतः विकल्प (C) सही है।**

स्रोत- अथर्ववेद (भाग-1)- आचार्य वेदान्त तीर्थ, पेज-7

35. 'स्वच्छजलवत् सहसैव..... सर्वत्र विहितस्थितिः' इत्यादिना काव्यप्रकाशकृता को गुणो मतः?

(A) माधुर्यगुणः (B) समाधिगुणः
(C) ओजोगुणः (D) प्रसादगुणः

व्याख्या- आचार्य मम्मट कृत काव्यप्रकाश के अष्टम उल्लास में गुणों के विषय में बताते हुए कहते हैं-

काव्यगुण- 'ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥'
(का.प्र. 8.66)

अनुवाद- जो आत्मा के शौर्यादि धर्म के समान काव्य में अंगीभूत प्रधान रस के उत्कर्षाधायक धर्म हैं और अचल स्थिति अर्थात् नियत रूप से रहने वाले हैं, वे गुण कहे जाते हैं।

गुण के प्रकार- 'आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम्॥' (का.प्र.- 8.68)

चित्त की द्रुति का कारण आह्लादकत्व आनन्द स्वरूपता ही माधुर्य गुण है और शृङ्गार रस में रहता है।

वह माधुर्यगुण, करुण, विप्रलम्भशृङ्गार और शान्तरस में उत्तरोत्तर चमत्कारजनक होता है।

''करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्''

ओजगुण- 'दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितिः'॥ (का.प्र. 8.69)

चित्त के विस्तार का हेतुभूत दीप्ति ही ओजगुण है और उसकी स्थिति वीररस में होती है।

ओज सामान्यतः वीररस में रहता है किन्तु बीभत्स और रौद्र रसों में क्रमशः उसका आधिक्य उत्तरोत्तर चमत्कारजनक रहता है। **''बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च''**

प्रसाद गुण- 'शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः॥' (का.प्र. 8.70)

'व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः॥'

सूखे ईंधन में अग्नि के समान तथा स्वच्छ वस्त्र में जल के समान जो गुण सहसा चित्त में व्याप्त हो जाता है उसे प्रसाद गुण कहते हैं।

इसकी स्थिति सर्वत्र है अर्थात् यह सभी रसों तथा सभी रचनाओं में रहता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'स्वच्छजलवत्सहसैव... सर्वत्र विहितस्थितिः' में प्रसाद गुण है। **अतः विकल्प (D) सही है।**

स्रोत- काव्यप्रकाश (अष्टम उल्लास)- विश्वेश्वर, पेज- 390

36. अधोऽङ्कितेषु समासप्रकरणानुसारं केन सह कस्य सम्बन्धः?

(क) हंसौ (i) जातेश्च
(ख) ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः (ii) पुमान् स्त्रिया
(ग) शूद्राभार्यः (iii) न निर्धारणे
(ग) नृणां द्विजः श्रेष्ठः (iv) वर्णानामानुपूर्व्येण

	क	ख	ग	घ
(A)	(ii)	(iv)	(i)	(iii)
(B)	(iii)	(iv)	(ii)	(i)
(C)	(i)	(iv)	(ii)	(iii)
(D)	(iv)	(i)	(iii)	(ii)

व्याख्या- जातेश्च- जातिवाची शब्द से विहित स्त्रीप्रत्ययान्त भाषितपुंस्क तथा ऊङ्- प्रत्यय रहित जो शब्द, उसको भी पुंवद्भाव नहीं होता है। यथा- **'शूद्राभार्यः'। शूद्र जाति की स्त्री भार्या है जिसकी ऐसा पुरुष। 'शूद्राभार्या यस्य सः'** लौकिक विग्रह और **'शूद्रा+सु भार्या+सु'** अलौकिक विग्रह में अनेकमन्यपदार्थे सूत्र से बहुव्रीहि समास होने पर **'जातेश्च'** सूत्र के द्वारा **'शूद्राभार्यः'** सिद्ध हो जाता है।

पुमान् स्त्रिया- स्त्रीवाचक शब्द के साथ पुरुषवाचक शब्द का कथन होने पर पुरुषवाचक शब्द का शेष होता है, यदि उन शब्दों में स्त्रीत्वकृत और पुंस्त्वकृत विशेषता का ही भेद हो और अन्य मूल प्रकृति समान ही हो। यथा- **'हंसी च हंसश्च हंसौ'। हंसी और हंस। हंसी च हंसश्च लौकिक विग्रह** में **'पुमान् स्त्रिया'** सूत्र के द्वारा स्त्रीवाचक हंसी की निवृत्ति और पुंवाचक हंस शब्द का शेष होता है। अर्थगत द्वित्त्व के कारण हंस शब्द से द्विवचन औ-प्रत्यय होने पर 'हंसौ' सिद्ध हो जाता है।

न निर्धारणे (2/2/10)- निर्धारण अर्थ में विहित जो षष्ठी, तदन्त सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ तत्पुरुष समास नहीं होता है। यथा- **'नृणां द्विजः श्रेष्ठः'** है। **मनुष्यों में द्विज श्रेष्ठ है।** यहाँ पर जाति के आधार पर द्विज को श्रेष्ठ बताया जा रहा है। अतः **'यतश्चनिर्धारणम्'** सूत्र से निर्धारण अर्थ में षष्ठी होकर **'नृणाम्'** बना। निर्धारणार्थ में षष्ठी होने के कारण **'नृणां द्विजः'** में प्राप्त षष्ठी समास का 'न निर्धारणे' सूत्र से निषेध होने के कारण वाक्य ही रह जाता है- **'नृणां द्विजः श्रेष्ठः'**

वर्णानामानुपूर्व्येण- वर्णों का उसके क्रम से ही पूर्वनिपात

होता है। यहाँ पर वर्ण शब्द अकारादि का बोधक न होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि का बोधक है। 'आनुपूर्व्य' शब्द का अर्थ है- क्रम। श्रुति और स्मृतियों के प्रमाण से एवं सृष्टि क्रम के अनुसार भी वर्ण क्रम है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। अमरकोशकार ने भी यही क्रम लिखा है- ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः। यथा-

'ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः'। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च विट् च शूद्रश्च लौकिक विग्रह और ब्राह्मण+सु क्षत्रिय+सु विश्+सु शूद्र+सु अलौकिक विग्रह में **'चार्थे द्वन्द्वः'** से द्वन्द्वसमास होने पर

'वर्णानामानुपूर्व्येण' वार्तिक से **ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः** प्रयोग सिद्ध हुआ।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि **'जातेश्च'** सूत्र से **शूद्राभार्यः, पुमान् स्त्रिया सूत्र से हंसौ, न निर्धारणे** सूत्र से **नृणां द्विजः श्रेष्ठः** तथा **वर्णानामानुपूर्व्येण 'वार्तिक'** से ब्राह्मणक्षत्रियविट्छूद्राः प्रयोग सिद्ध होगा। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- भैमीव्याख्या (भाग-चार), पेज 240,238,83

37. 'सारङ्गी' इत्यत्र स्त्रियां ङीष्-प्रत्यय विधायकं सूत्रम् किमस्ति ?
(A) अन्यतो ङीष्
(B) वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः
(C) जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्
(D) षिद्गौरादिभ्यश्च

व्याख्या- ♦ अन्यतो ङीष् (4.1.40)- 'तोपधभिन्नाद् वर्णवाचिनोऽनुदात्तान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष्' अर्थात् तोपध से भिन्न किन्तु जिसके अन्त में अनुदात्त स्वर है ऐसा जो वर्णवाची शब्द, तदन्त अनुपसर्जन अदन्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होता है स्त्रीत्वविवक्षा में।

उदाहरण- **सारङ्गी (सारंग वर्णवाली), कल्माषी (कालुष्य वर्ण वाली)।**

♦ सारङ्गी वर्णवाली। वर्णवाची सारङ्ग शब्द अनुपसर्जन, तोपध भिन्न व अनुदात्तान्त है। अतः 'अन्यतो ङीष्' सूत्र से ङीष् होने पर 'यस्येति च' से गकारोत्तरवर्ती अकार का लोप होकर सारङ्गी बनने के बाद स्वादि कार्य होता है। इसके रूप नदी शब्द के समान ही हुआ करते हैं।

♦ **षिद्गौरादिभ्यश्च (4.1.41)- षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च ङीष् स्यात्** अर्थात् जिस शब्द में षकार की इत्सञ्ज्ञा हो गयी हो ऐसे शब्दों से और गौर आदि गणपठित शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा होने पर ङीष् प्रत्यय होता है। उदाहरण- **नर्तकी, गौरी, गार्ग्यायणी आदि।**

♦ **वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः** (4.1.39)- जिसके अन्त में अनुदात्त स्वर है तथा जिसकी उपधा में तकार है ऐसा जो वर्णवाची शब्द, तदन्त अनुपसर्जन अदन्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय तथा तकार को नकार आदेश ये दोनों कार्य विकल्प से होते हैं। स्त्रीत्व की विवक्षा में।

उदाहरण- एनी एता, रोहिणी-रोहिता, आदि।

♦ **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (4.1.63)-** जो नित्य स्त्रीलिङ्ग न हो और जिसकी उपधा में यकार भी न हो ऐसे जातिवाचक प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है। उदाहरण- तटी, वृषली आदि।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सारङ्गी में अन्यतो ङीष् (4.1.40) सूत्र से ङीष् प्रत्यय होगा। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- भैमीव्याख्या (भाग-6), पेज 24,32,36,69

38. तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि' इत्युद्धरणं वर्तते-
(A) कठोपनिषदि (B) ईशोपनिषदि
(C) बृहदारण्यकोपनिषदि (D) तैत्तिरीयोपनिषदि

व्याख्या- ईशावास्योपनिषद्- यह ईशावास्योपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद काण्वशाखीय संहिता का चालीसवाँ अध्याय है। शुक्लयजुर्वेद के प्रथम उनतालीस अध्यायों में कर्मकाण्ड का निरूपण हुआ है और 40वें अध्याय में परमतत्त्व रूप ज्ञानकाण्ड का निरूपण किया गया है।

ईशोपनिषद् की सूक्तियाँ- 'तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि' (श्लोक-16)

अर्थ- इस तेज को (समेट लीजिए या अपने तेज में मिला लीजिये) जो आपका अतिशय कल्याणमय दिव्य स्वरूप है उस आपके दिव्य स्वरूप की मैं आपकी कृपा से ध्यान के द्वारा देख रहा हूँ।

मा गृधः कस्य स्विद्धनम् । (श्लोक-1)

अर्थ- इसमें आसक्त मत हो क्योंकि धन-भोग्य-पदार्थ, किसका है अर्थात् किसी का भी नहीं।

कठोपनिषद्- कठोपनिषद् उपनिषदों में बहुत प्रसिद्ध है यह कृष्णयजुर्वेद की कठशाखा के अन्तर्गत है। इसमें नचिकेता और यम के संवादरूप में परमात्मा के रहस्यमय तंत्र का बड़ा ही उपयोगी और विशद वर्णन है। इसमें दो अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में तीन-तीन वल्लियाँ हैं।

प्रमुख सूक्तियाँ-

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ (1/2/18)

अर्थ- अजन्मा नित्य सदा एकरस रहने वाला और पुरातन है अर्थात् क्षय और वृद्धि से रहित है, शरीर के नाश किये जाने पर भी इसका नाश नहीं किया जा सकता।

'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' (1/3/14)

अर्थ- हे मनुष्यों! उठो जागो सावधान हो जाओ और श्रेष्ठ महापुरुषों को पाकर उनके पास जाकर उनके द्वारा उस परब्रह्म परमेश्वर को जान लो।

तैत्तिरीयोपनिषद्- यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा के अन्तर्गत तैत्तिरीय आरण्यक का अङ्ग है। तैत्तिरीय आरण्यक के दस अध्याय हैं। उनमें से सातवें, आठवें और नवें अध्यायों को ही तैत्तरीय उपनिषद् कहा जाता है।

प्रमुख सूक्तियाँ- ''तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः।'' (तै. 2-1)

अर्थ- निश्चय ही सर्वत्र प्रसिद्ध उस परमात्मा से पहले-पहल आकाश तत्त्व उत्पन्न हुआ।

♦ **''आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः।''**

अर्थ- आचार्य के लिए दक्षिणा के रूप में वाञ्छित धन लाकर दो फिर उसकी आज्ञा से गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके सन्तान परम्परा को चालू रखो, उसका उच्छेद न करना।

♦ **बृहदारण्यकोपनिषद् की प्रमुख सूक्तियाँ- ''असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमय।''**

अर्थ- मुझे असत् से सत् की ओर ले जाओ। यहाँ मृत्यु ही असत् है और अमृत् सत् है।

♦ **''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।''**

अर्थ- यह आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और ध्यान किये जाने योग्य है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रश्नगत (तेजो यत्ते रूपं.....) यह उद्धरण ईशावास्योपनिषद् से लिया गया है। **अतः विकल्प (B) सही है।**

स्रोत- ईशादि नौ उपनिषद्, गीता प्रेस, पेज 42

39. 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' अस्य मन्त्रस्य द्रष्टा ऋषिः कः?

(A) दीर्घतमा (B) मधुच्छन्दा

(C) वसिष्ठः (D) कुत्स आङ्गिरसः

व्याख्या- ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 115वें सूक्त के पहले मन्त्र में ऋषि कुत्स आङ्गिरस् त्रिष्टुप् छन्द में देवता सूर्य की स्तुति करते हुए कहते हैं-

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (ऋ. 1.115.1)

सूर्य जंगम और स्थावर दोनों की आत्मा है।

♦ ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के पहले सूक्त के पाँचवें मन्त्र में ऋषि- मधुच्छन्दा गायत्री छन्द में अग्नि देवता की स्तुति करते हुए कहते हैं- **'अग्निर्होता कविक्रतुः, सत्यश्चित्रश्रवस्तमः'।** (ऋ.1.1.5)

हे अग्नि ! तुम होता, अशेषबुद्धिसम्पन्न या सिद्ध कर्मा, सत्यपरायण, अतिशय कीर्ति से युक्त और दीप्तिमान् हो।

♦ ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के 12वें सूक्त के सातवें मंत्र में ऋषि गृत्समद त्रिष्टुप् छन्द में इन्द्र देवता की स्तुति करते हुए कहते हैं-

'यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता'।

(ऋ. 2.12.7)

जो सूर्य और उषा को उत्पन्न करते हैं और जो जल प्रेरित करते हैं।

♦ अथर्ववेद के पहले मण्डल के उन्तीसवें सूक्त के पहले मन्त्र में ऋषि अनुष्टुप् छन्द में ब्रह्मणस्पति देवता की स्तुति करते हुए कहते हैं-

'तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेभि राष्ट्राय वर्धय।'

उसी मणि के द्वारा तु हमें देश के हित के निमित्त विस्तृत करे। (अथर्व. 1.29.1)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' मन्त्र के द्रष्टा ऋषि कुत्स आङ्गिरस हैं। **अतः विकल्प (D) सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह- हरिदत्त शास्त्री, पेज- 146

40. वेदे 'सूनरी' कस्याः विशेषणम्?

(A) उषसः (B) सरस्वत्याः

(C) अपालायाः (D) घोषायाः

व्याख्या- ऋग्वेद के पहले मण्डल के 48वें सूक्त में ऋषि प्रस्कण्व उषा देवता की स्तुति करते हुए कहते हैं-

- **'आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती'।** (ऋ. 1.48.5)
  सबका पालन करती हुई उषा देवी सुन्दरी युवती स्त्री के समान प्रतिदिन आती है।
- **विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी।'** (ऋ. 1.48.8)
  यह सुन्दरी उषा सबके लिए प्रकाश उत्पन्न करती है।

कुछ प्रमुख देवता के विशेषण :-

देवता		**विशेषण**
उषस्	–	मघोनी, हिरण्यवर्णा, ऋतावरी, पुराणी, सुभगा, सूनरी, सूनृतावती, अमर्त्या, अन्तिवामा इत्यादि।
अग्नि	–	ऋत्विक्, होता, पुरोहित, रत्नधातमम्, गृहपति, दमूनस्, घृतलोम, सहस्राक्ष, असुर इत्यादि।
विष्णु	–	उरुक्रम, उरुगाय, कुचर, वृष्णः, त्रिविक्रम, भीम इत्यादि।
इन्द्र	–	वृत्रहा, सुशिप्र, वज्रबाहु, हिरण्यबाहु, मरुत्वान्, अच्युतच्युत इत्यादि।
सोम	–	मौज्जवत, वृत्रहन्तम्, सहस्रधार, पवमान, महिष्ठ, इन्द्रपति इत्यादि।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'सूनरी' विशेषण उषस् देवता का है। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्त संग्रह- हरिदत्त शास्त्री, पेज- 123

41. 'नित्यज्ञानाधिकरणत्वम्' इति तर्कसंग्रहदीपिकायां कस्य लक्षणं प्रोक्तम्?

(A) मनसः (B) ईश्वरस्य
(C) परमाणोः (D) जीवात्मनः

व्याख्या- आचार्य अन्नंभट्ट ने वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तों को आधार बनाकर सूत्ररूप में अत्यन्त सरल एवं लघुग्रन्थ तर्कसङ्ग्रह की रचना की। तर्कसङ्ग्रहकार ने अपने ग्रन्थ में सात पदार्थों का नाम उल्लेख किया। वे इसप्रकार हैं- द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवाय-अभावाः सप्तपदार्थाः। आचार्य अन्नंभट्ट ने सप्त पदार्थों की व्याख्या के क्रम में सर्वप्रथम द्रव्य पदार्थ का उल्लेख करते हुए- पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन कुल नौ द्रव्य को ही स्वीकार किया।

नौ द्रव्यों की विवेचना के क्रम में ग्रन्थकार ने दिशा का लक्षण करने के पश्चात् आत्मा का लक्षण बताते हुए कहते हैं- **''ज्ञानाधिकरणमात्मा। स द्विविधो- जीवात्मा परमात्मा चेति।''**

अर्थ- ज्ञान का अधिकरण आत्मा है और जीवात्मा एवं परमात्मा इस रूप में वह दो प्रकार का होता है। जबकि उन दोनों में परमात्मा सभी का स्वामी (ईश्वर), सर्वज्ञ एवं एक है। जीवात्मा प्रत्येक शरीर में भिन्न है, किन्तु (वह भी) सर्वव्यापक एवं नित्य है।

*** तर्कसङ्ग्रहदीपिका के अनुसार ज्ञान का अधिकरण ईश्वर को बताया गया है-**

''नित्यज्ञानाधिकरणत्वमीश्वरत्वम्'' - (त.सं.दी.)

*** तर्कसङ्ग्रह के अनुसार मन का लक्षण-**

सुखदुःखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः। तच्च प्रत्यात्मनियतत्त्वादनन्तं परमाणुरूपं नित्यं च।

अर्थ- सुख आदि की उपलब्धि का साधन इन्द्रिय ही मन है और वह प्रत्येक आत्मा के साथ नियम से रहने के कारण अनन्त, परमाणु-रूप और नित्य बताया गया है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रश्नगत **नित्यज्ञानाधिकरणत्त्वम्** लक्षण **'ईश्वर'** का है। **अतः विकल्प (B) सही है।**

स्रोत- तर्कसंग्रह - आद्याप्रसाद, पेज 28

42. निरुक्ते कति पदजातानि उपदिष्टानि?

(A) त्रीणि (B) षट्
(C) चत्वारि (D) पञ्च

व्याख्या- आचार्य यास्क ने अपने ग्रन्थ निरुक्त में लोक और वेद में चार प्रकार पदों का वर्णन किया है-

''चत्वारि पदजातानि, नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्च''

अर्थ- नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात ये चार पद जातियाँ शब्दों के भेद हैं।

नाम और आख्यात का लक्षण- निरुक्तकार ने 'नाम' और 'आख्यात' का लक्षण करते हुए कहा-

'भावप्रधानमाख्यातम्, सत्त्वप्रधानानि नामानि'।

अर्थ- भाव- क्रिया है मुख्य जिसमें वह आख्यात है। सत्त्व-द्रव्य है प्रधान जिसमें वे नाम कहलाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ क्रिया प्रधान हो और कारकादि गौण हो, वह

आख्यात है एवं जहाँ सत्त्व अर्थात् लिङ्ग संख्या वचनादि जिसका अनुगमन करे ऐसा सत्त्व-द्रव्य प्रधान हो और क्रिया गौण हो, वह नाम कहलाता है।

उपसर्ग निरूपण- नाम, आख्यात से अलग हुए प्र, परा, अप, सम्, आदि उपसर्ग स्वतंत्र अर्थों को नहीं कहते हैं। ऐसा शाकटायन आचार्य का कहना है।

''न निर्बद्धा उपसर्गा अर्थान्निराहुरिति शाकटायनः।''

नाम और आख्यात के अर्थ के साथ मिलकर ही ये उपसर्ग द्योतक हैं- नामाख्यात के विशेषार्थ के प्रकाशक हैं। स्वतंत्रतया इनका कोई अर्थ नहीं-

''नामाख्यातयोस्तु कर्मोपसंयोगद्योतका भवन्ति।''

आचार्य गार्ग्य का कहना है कि- **''उच्चावचाः पदार्था भवन्तीति गार्ग्यः।''**

अर्थ- इन उपसर्गों के अर्थ अनेक प्रकार के हुआ करते हैं ऐसा मत गार्ग्य आचार्य का है अर्थात् स्वतंत्र रूप से भी उपसर्ग सार्थक ही हैं, निरर्थक नहीं।

निपात- आचार्य यास्क निपात का लक्षण निरूपित करते हुए कहते हैं- **''उच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्ति।''**

अर्थ- अनेकविध अर्थों में ये गिरते हैं- इनके अनेक अर्थ हैं, इसलिए ये निपात नाम से कहे जाते हैं।

''अप्युपमार्थेऽपि कर्मोपसङ्ग्रहार्थेऽपि पदपूरणाः।''

अर्थ- इन निपातों में कुछ तो उपमार्थ में प्रयुक्त होते हैं- कुछ अर्थोपसंग्रह में और कुछ केवल पदपूर्ति के लिए ही प्रयुक्त होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निरुक्त में चार प्रकार के पद बताये गये हैं। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- निरुक्तम् - छज्जूराम शास्त्री, पेज- 3

43. 'गौतमधर्मसूत्रम्' केन वेदेन सह सम्बद्धम् विद्यते?

(A) अथर्ववेदेन (B) कृष्णयजुर्वेदेन
(C) ऋग्वेदेन (D) सामवेदेन

व्याख्या-

- धर्मसूत्र आचार संहिता से सम्बद्ध ग्रन्थ है।
- धर्मसूत्र स्मृतियों के पूर्व रूप हैं।
- समाज को शान्ति और स्थिरता प्रदान करना धर्मसूत्रों का उद्देश्य है।
- कर निर्धारण, कर के प्रकार, कर का उपयोग, सम्पत्ति विभाजन तथा स्त्रीधन का स्वरूप धर्मसूत्रों में प्राप्त होता है।
- सामवेद का एक ही धर्मसूत्र प्राप्त होता है- गौतमधर्मसूत्र।

वेद	-	धर्मसूत्र
सामवेद	-	गौतम धर्मसूत्र
ऋग्वेद	-	वसिष्ठ धर्मसूत्र, विष्णु धर्मसूत्र
यजुर्वेद	-	बौधायन, वैखानस, आपस्तम्ब, विष्णु, हारीत, हिरण्यकेशी, शंख।
अथर्ववेद	-	कोई धर्मसूत्र प्राप्त नहीं है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि गौतम धर्मसूत्र सामवेद का है। **अतः विकल्प (D) सही है।**

स्रोत- संस्कृतसाहित्य का इतिहास-उमाशङ्करशर्मा 'ऋषि', पेज- 91

44. महाभाष्ये व्याकरणस्य आनुषङ्गिकप्रयोजनेषु ''विभक्तिं कुर्वन्ति'' इत्यस्य क्रमोऽस्ति-

(A) सप्तमः (B) षष्ठः
(C) दशमः (D) पञ्चमः

व्याख्या- व्याकरण अध्ययन के पाँच मुख्य प्रयोजन- महर्षि पतञ्जलि महाभाष्य के प्रथम आह्निक पस्पशाह्निक में व्याकरणाध्ययन के पाँच प्रयोजन बताते हैं-

''रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजनम्''

अर्थात् 1. रक्षा 2. ऊह, 3. आगम, 4. लघु और 5. असन्देह ये पाँच मुख्य प्रयोजन हैं।

व्याकरणाध्ययन के तेरह आनुषङ्गिक (गौण) प्रयोजन- व्याकरण के पाँच मुख्य प्रयोजन बताने के बाद महर्षि पतञ्जलि तेरह आनुषङ्गिक प्रयोजनों की चर्चा करते हैं- 1. तेऽसुराः 2. दुष्टःशब्दः 3. यदधीतम् 4. यस्तु प्रयुङ्क्ते 5. अविद्वांसः 6. विभक्तिं कुर्वन्ति 7. यो वा इमाम् 8. चत्वारि 9. उत त्वः 10. सक्तुमिव 11. सारस्वतीम् 12. दशम्यां पुत्रस्य 13. सुदेवो असि वरुण इति।

अर्थ- 1. वे असुर 2. दोषयुक्त शब्द 3. जिसे पढ़ा 4. जो प्रयुक्त करता है 5. अविद्वान् लोग 6. विभक्ति का प्रयोग करते हैं 7. जो इस वेद रूप वाणी को 8. चार 9. एक कोई 10. सत्तुओं के समान 11. सरस्वती देवी सम्बन्धी 12. दशवीं रात्रि के बाद 13. हे वरुण ! सुदेव हो।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्याकरण महाभाष्य में तेरह आनुषङ्गिक प्रयोजनों में विभक्तिं, कुर्वन्ति, छठें (षष्ठः) क्रम पर है। **अतः विकल्प (B) सही है।**

45. 'मशककल्पसूत्रम्' कस्य वेदस्य वर्तते?

(A) अथर्ववेदस्य (B) ऋग्वेदस्य
(C) सामवेदस्य (D) कृष्णयजुर्वेदस्य

व्याख्या- ♦ कल्पसूत्र- कल्पसूत्र ग्रन्थ का तात्पर्य प्रयोगविधि के यथार्थ प्रतिपादक ग्रन्थों से है।

- जिनसे सिद्ध प्रयोग का ज्ञान हो, वह कल्प है।
- जिन ग्रन्थों में यज्ञ-सम्बन्धी विधियों का समर्थन या प्रतिपादन किया जाता है उन्हें 'कल्प' कहते हैं।
- जिन ग्रन्थों में वैदिक कर्मों का सांगोपांग विवेचन किया जाता है उन्हें 'कल्प' कहते हैं।
- कल्पसूत्र के चार भेद हैं- श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, शुल्बसूत्र।
- मशककल्पसूत्र एवं द्राह्यायन श्रौतसूत्र सामवेद से सम्बन्धित हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'मशककल्पसूत्रम्' ये सामवेदीय श्रौतसूत्र है। **अतः विकल्प (C) सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज- 219

46. भरतमुनिना रसस्य संख्या कियती स्वीकृता?
(A) षट् (B) दश
(C) अष्टौ (D) नव

व्याख्या- भरतमुनि और धनञ्जय के अनुसार नाट्य में आठ रस स्वीकृत हैं- **अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः**

नाट्यशास्त्र के छठवें अध्याय में भरतमुनि ने कहा है-

शृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः। (6/15)

नाट्य में स्वीकृत रस आठ हैं-
1. शृङ्गार 2. हास्य 3. करुण 4. रौद्र 5. वीर
6. भयानक 7. बीभत्स रस 8. अद्भुत रस।

- मम्मट ने काव्यप्रकाश में आठ नाट्यरसों का विवेचन करने के पश्चात् शान्त को नवाँ रस माना है- **''शान्तोऽपि नवमो रसः''**
- रुद्रट ने काव्यालंकार में 'प्रेयान्' नामक दसवें रस की उद्भावना की है-
- रूपगोस्वामी ने मधुर नामक भक्तिरस को प्रधान रस माना है- **''मधुराख्यो भक्तिरसः''**
- आचार्य विश्वनाथ ने नव रस के अतिरिक्त वात्सल्य नामक एक अन्य रस को स्वीकार किया है- **'स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।' (सा.द. 3/251)**
- एक अन्य परवर्ती लेखक विश्वनाथ चक्रवर्ती ने मधुर को भक्तिरसराज कहा है।
- रस संख्या के विषय में भोज का अपना अलग मत है, उन्होंने अग्निपुराणोक्त नौ रसों के अतिरिक्त प्रेयान्, उदात्त और उद्धत्त तीन रस अधिक मानते हुए कुल 12 रस मानते हैं-

शृङ्गारवीरकरुणरौद्राद्भुतभयानकाः।
बीभत्सहास्यप्रेयांसः शान्तोदात्तोद्धताः।।
(अग्निपुराण)

- रामचन्द्र गुणचन्द्र नव रसों के अतिरिक्त लौल्य, स्नेह, व्यसन, दुःख और सुख आदि अन्य रस मानते हैं।
- एक परवर्ती लेखक भानुदत्त ने रसतरंगिणी में 'मायारस' का उल्लेख किया है।
- एक जैन लेखक ने लज्जा स्थायिभाव वाला 'व्रीडनक रस' भी माना है।
- इस प्रकार गम्भीरतापूर्वक विचार विमर्श के पश्चात् रसवादी आचार्यों ने काव्य, नाटक और संगीत में आठ अथवा नव रस ही मानते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भरतमुनि अपने नाट्यशास्त्र के छठवें अध्याय में रसों की संख्या आठ ही मानते हैं। **अतः विकल्प (C) सही है।**

स्रोत- नाट्यशास्त्र - ब्रजमोहन चतुर्वेदी, पेज 157

47. उभयप्राप्तौ कर्मणि इति कारकसूत्रस्योदाहरणं किम्?
(A) आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन
(B) अधिकरणवाचिनश्च
(C) कृत्यानां कर्तरि वा
(D) कर्तृकर्मणोः कृति

व्याख्या-1. उभयप्राप्तौ कर्मणि (2.3.66)-
उभयोः प्राप्तिः यस्मिन् कृति तत्र कर्मण्येव षष्ठी स्यात्।

अर्थ- कृदन्त के योग में कर्ता और कर्म दोनों में षष्ठी विभक्ति होने पर केवल कर्म में ही षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे- **आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन** (जो ग्वाला नहीं है, उसके द्वारा गाय का दोहन आश्चर्यजनक है)

इस वाक्य में कृदन्त अदोह (दुह् + घञ्) के योग में **'कर्तृकर्मणोः कृति'** सूत्र से कर्ता अगोप और कर्म 'गो' दोनों में षष्ठी विभक्ति प्राप्त है लेकिन **'उभयप्राप्तौ कर्मणि'** सूत्र से कर्म गो में ही षष्ठी विभक्ति का नियम होने से **'गो'** में ही षष्ठी विभक्ति होकर **'गवाम्'** बना।

2. अधिकरणवाचिनश्च- (2.3.68)
क्तस्ययोगे षष्ठी स्यात्। इदमेषामासितम्।

अर्थ- अधिकरणवाचक क्त प्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे- **'इदम् एषाम् आसितम्'** (यह इनका आसन है)।

आस् धातु से **'क्त'** प्रत्यय जोड़कर **'आसितम्'** बनता है। अधिकरण वाचक **'क्त'** प्रत्ययान्त **'आसितम्'** के योग में

अनुक्त कर्ता 'इदम्' **'अधिकरणवाचिनश्च'** सूत्र से षष्ठी विभक्ति होकर **'एषाम्'** बना।

3. **कृत्यानां कर्तरि वा (2.3.71)-** कृत् प्रत्ययों के योग में षष्ठी विभक्ति विकल्प से होती है। जैसे- **मया मम वा सेव्यो हरिः (मेरे द्वारा हरि की सेवा की जानी चाहिये)**

यहां सेव् धातु से ण्यत् प्रत्यय लगाकर सेव्यः बना। ण्यत् कृत्य प्रत्यय के अन्तर्गत आता है। हरि कर्म है और यह उक्त है, अतः उक्त कर्म से प्रथमा विभक्ति होती है। कर्ता **'अस्मद्'** शब्द अनुक्त है। उसमें **'कर्तृकर्मणोः कृति'** सूत्र से नित्य षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी। लेकिन उसको बाध करके **'कृत्यानां कर्तरि वा'** सूत्र से विकल्प से षष्ठी विभक्ति करने पर मम बना। अनुक्त कर्ता से **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** सूत्र से तृतीया विभक्ति होकर **'मया'** भी बना।

4. **कर्तृकर्मणोः कृति (2.3.65)-** कृद्योगे कर्तरि कर्मणि च षष्ठी स्यात्।

अर्थ- कृत्प्रत्ययान्त के योग में अनुक्त (अनभिहित) कर्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे- **'कृष्णस्य कृतिः'**

इस वाक्य में कृत् प्रत्ययान्त कृति (कृ + क्तिन्) के कर्ता कारक कृष्ण में **'कर्तृकर्मणोः कृति'** सूत्र से षष्ठी विभक्ति होकर **'कृष्णस्य'** बना।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' इस सूत्र का उदाहरण- आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन है। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- अष्टाध्यायी - ईश्वरचन्द्र, पेज 216

48. ''वागर्थाविव'' इत्यत्र कतमः समासः?
(A) केवलसमासः (B) अव्ययीभावसमासः
(C) द्विगुसमासः (D) कर्मधारयसमासः

व्याख्या- आचार्य वरदराज लघुसिद्धान्तकौमुदी के समास प्रकरण के अन्तर्गत केवल समास के प्रसङ्ग में एक वार्तिक उद्धृत करते हैं-

''इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च''

अर्थ- समर्थ शब्द का इव शब्द के साथ समास होता है तथा अन्तर्वर्तिनी विभक्ति का लोप भी नहीं होता।

रघुवंश महाकाव्य के मंगलाचरण में प्रकृत वार्तिक का उदाहरण वागर्थाविव के रूप में है। वागर्थाविव **(वाणी और अर्थ की तरह)** **'वागर्थौ इव'** यह लौकिक विग्रह और **'वागर्थ औ इव'** यह अलौकिक विग्रह है। अलौकिक विग्रह में समास करने के लिए वार्तिक लगा- **'इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च'।** इसके द्वारा समास होने के बाद **'वागर्थ औ इव'** की प्रातिपदिक संज्ञा हो गई और बीच में विद्यमान औ विभक्ति का **'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः'** से **'लुक्'** प्राप्त हुआ तो इसी वार्तिक के द्वारा उसके अलुक् का विधान होकर **'वागर्थौ इव'** बना। औकार के स्थान पर **'एचोऽयवायावः' से 'आव्'** आदेश होकर **'वागर्थाविव'** बन जाता है। जीमूतस्येव, भूतपूर्वम्, अधमर्णः आदि उदाहरण भी केवल समास के हैं।

अव्ययीभाव समास के उदाहरण-

यथाशक्ति - शक्तिमनतिक्रम्य
सुमद्रम् - मद्राणां समृद्धिः
निर्मक्षिकम् - मक्षिकाणाम् अभावः

द्विगु समास के उदाहरण-

1. अष्टाध्यायी 2. चतुरङ्गुलम्
3. चतुर्युगम् 4. त्रिभुवनम्
5. त्रिलोकी

कर्मधारय समास के उदाहरण-

1. जम्बूपादपः 2. परमराजः
3. कृष्णसर्पः 4. नीलोत्पलम्

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वागर्थाविव में केवल समास है। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- भैमीव्याख्या - (भाग-4), पेज 14

49. 'लोकेऽधिको हरिः' इत्यत्र सप्तमीविभक्तौ को नियमः?
(A) यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी
(B) अधिरीश्वरे
(C) तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः इति सूत्रनिर्देशात्
(D) सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये

व्याख्या-

तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः (5.2.45), यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी (2.3.9)

अधिकशब्देन योगे **'सप्तमीपञ्चम्याविष्येते', 'तदस्मिन्नधिकम्', 'यस्मादधिकम्' इति च सूत्रनिर्देशात्।** अर्थात् सूत्रकार ने **'तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः'** सूत्र में अधिक शब्द के योग में सप्तम्यन्त **'अस्मिन्'** शब्द का प्रयोग किया है और **'यस्माद् अधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी'** सूत्र में अधिक शब्द के योग में पञ्चम्यन्त **'यस्मात्'** का प्रयोग किया है। इन सूत्रों के निर्देश से यह विदित होता है कि अधिक शब्द के योग में सप्तमी और पञ्चमी विभक्तियाँ भी होती हैं।

'लोके लोकाद्वा अधिको हरिः' (हरि लोक से बढ़कर हैं) उपर्युक्त ज्ञापन से अधिक शब्द के योग में सप्तमी और पञ्चमी दोनों का होना सिद्ध होने से सप्तमी होने पर **'लोके'** और पञ्चमी होने पर **'लोकाद्'** बन जाता है। इस तरह **'लोके अधिको हरिः'** और **'लोकाद् अधिको हरिः'** ये दोनों वाक्य सिद्ध हो जाते हैं।

अधिरीश्वरे- स्वस्वामिसम्बन्धेऽधिकर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञः स्यात्।

अर्थ- स्वस्वामिभाव सम्बन्ध में अधि शब्द की कर्म प्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है।

सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये (2.3.7)- शक्तिद्वयमध्ये यौ कालाध्वानौ ताभ्यामेते स्तः।

अर्थ- दो कारकों (शक्तियों) के मध्य में जो कालवाचक और मार्गवाचक शब्द हैं उनसे 'सप्तमी' और 'पञ्चमी' विभक्ति होती है।

जैसे- अद्यभुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहाद् वा भोक्ता (यह आज खाकर के दो दिन के बाद खायेगा)।

इस वाक्य में एक ही कर्ता की दो शक्तियों के मध्य कालवाचक शब्द '**द्व्यह**' है। '**सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये**' सूत्र से द्व्यह में सप्तमी विभक्ति होकर '**द्व्यहे**' बनेगा और पञ्चमी विभक्ति होकर '**द्व्यहाद्**' बनेगा।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोकेऽधिकोहरिः इस वाक्य में सप्तमी विभक्ति '**तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः**' सूत्र से होगी। **अतः विकल्प (C) सही है।**

50. एध् धातोः लङ्लकारे उत्तमपुरुषबहुवचनस्य किं रूपं भवति?

(A) एधामहि (B) ऐधेमहि

(C) एधामहै (D) ऐधामहि

व्याख्या-

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
	एध् धातु लङ्लकार		
प्रथम पुरुष	ऐधत	ऐधेताम्	ऐधन्त
मध्यम पुरुष	ऐधथाः	ऐधेथाम्	ऐधध्वम्
उत्तम पुरुष	ऐधे	ऐधावहि	ऐधामहि
	लोट् लकार		
	एधताम्	एधेताम्	एधन्ताम्
	एधस्व	एधेथाम्	एधध्वम्
	एधै	एधावहै	एधामहै
	विधिलिङ् लकार		
	एधेत	एधेयाताम्	एधेरन्
	एधेथाः	एधेयाथाम्	एधेध्वम्
	एधेय	एधेवहि	एधेमहि
	लुङ् लकार		
	एधिष्ट	ऐधिषाताम्	एधिषत
	ऐधिष्ठाः	ऐधिषाथाम्	ऐधिढ्वम्
	ऐधिषि	ऐधिष्वहि	ऐधिष्महि

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि एध् धातु लङ्लकार उत्तमपुरुष बहुवचन का रूप '**ऐधामहि**' होगा। **अतः विकल्प (D) सही है।**

स्रोत- धातुरूपनन्दिनी - जनार्दन हेगडे, पेज 2,3

51. 'सत्या विशुद्धिस्तत्रोक्ता विद्यैवैकपदागमा' वाक्यपदीयस्य अस्यां कारिकायां 'विद्यैवैकपदागमा' इत्यनेन पदेन किं स्वरूपा विद्या लक्ष्यते?

(A) अर्थरूपा (B) शब्दरूपा

(C) प्रणवरूपा (D) वर्णरूपा

व्याख्या- वाक्यपदीयम् के ब्रह्मकाण्ड में दर्शनों के वेदमूलक होने पर भी सबमें आग्रह के कारण एकता न होने से ब्रह्मप्राप्ति के सच्चा मार्ग का प्रतिपादन करते हुए आचार्य भर्तृहरि कहते हैं-

सत्या विशुद्धिस्तत्रोक्ता विद्यैवैकपदागमा।
युक्ता प्रणवरूपेण सर्ववादाविरोधिनी॥ (वाक्य 1.9)

अर्थ- जो रागद्वेष आदि से रहित विशिष्ट शुद्धिवाली है और एक प्रणव (ॐकार) ही जिसे व्यक्त कर सकता है वह ब्रह्मरूपा एकत्वबोधिका विद्या ही सत्य है। वही विद्या सत्य अर्थ प्रकाशित करने के कारण वेद में वर्णित है क्योंकि जितने परमाणुकारणवाद, प्रधानकारणवाद आदि वाद हैं इन सबसे कोई विरोध भी नहीं है अतः वही वेद का परम सिद्धान्त है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'सत्या विशुद्धिस्तत्रोक्ता विद्यैवैकपदागमा' पंक्ति से प्रणवरूपा के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वाक्यपदीयम् (1.9)

52. अज्ञानस्य समष्ट्योपहितं चैतन्यं वेदान्ते किमुच्यते?

(A) प्राज्ञः (B) वैश्वानरः

(C) ईश्वरः (D) विराट्

व्याख्या- योगीन्द्र सदानन्द वेदान्तसार नामक प्रकरणग्रन्थ में अज्ञान निरूपण के प्रसङ्ग में समष्टि एवं व्यष्टि अज्ञान के इन दो रूपों की चर्चा करते हैं।

'इदमज्ञानं समष्टिव्यष्ट्यभिप्रायेणैकमनेकमिति च व्यवह्रियते'।

- वेदान्तदर्शन विशुद्धसत्त्वप्रधान अज्ञान की इस समष्टि उत्कृष्ट उपाधियुक्त चैतन्य को 'ईश्वर' इस नाम से सम्बोधित करता है।

'एतदुपहितं चैतन्यं..... ईश्वर इति च व्यपदिश्यते।'

- उत्कृष्ट उपाधियुक्त होने से यह समष्टि विशुद्धतत्त्वप्रधान गुणयुक्त है। इस उपाधि से युक्त चैतन्य सम्पूर्ण अज्ञान का प्रकाशक होने से सब कुछ जानने वाला, सबका ईश्वर, सबको नियन्त्रित करने वाला आदि गुणों से युक्त अव्यक्त, अन्तर्यामी, संसार का कारणरूप ईश्वर इत्यादि नामों से कहा जाता है।

- ईश्वर की यह समष्टि सम्पूर्ण विश्वप्रपञ्च का कारण होने से 'कारणशरीर' है। **'ईश्वरस्य इयं समष्टि अखिलकारणत्वात् कारणशरीरम्'।**
- ईश्वर को आनन्द की प्रचुरता एवं कोश के समान आच्छादक होने से 'आनन्दमयकोश' कहा जाता है।
  'आनन्दप्राचुरत्वात् कोशवदाच्छादकत्वात् च आनन्दमयकोशः'।
- सभी कुछ ईश्वर में विलीन होने से **'सुषुप्ति'।** इसी कारण स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरप्रपञ्च का **'लयस्थान'** भी कहा जाता है-
  ''सर्वोपरमत्वात्सुषुप्ति अतएव स्थूल सूक्ष्मप्रपञ्च 'लयस्थानम्' इति च उच्यते''
- वेदान्त के सृष्टिक्रम में ब्रह्म के पश्चात् ईश्वर का ही स्थान है।
- अज्ञान की यह व्यष्टि निकृष्ट उपाधि से युक्त होने के कारण मलिनसत्त्वप्रधान होती है। इस उपाधि से युक्त चैतन्य अल्पज्ञता एवं अशक्तता आदि गुणों वाला होने से व्यष्टिगत एक ही अज्ञान का प्रकाशक होने के कारण 'प्राज्ञ' इस प्रकार कहा जाता है।
- वेदान्त में ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, अन्तर्यामी, अव्यक्त एवं जगत् का कारण कहा गया है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से सुस्पष्ट है कि अज्ञान की समष्टि उपहित चैतन्य को 'ईश्वर' कहा जाता है।

अतः विकल्प (C) सही है।

स्रोत- वेदान्तसार - राकेश शास्त्री, पेज 154

53. 'केवलाघो भवति केवलादी'- अस्य मन्त्रस्य द्रष्टा कः?

(A) कण्वः (B) गविष्ठिरः
(C) भिक्षुराङ्गिरसः (D) ब्रह्मा

व्याख्या-

- **मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।**
  नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥ (ऋग्वेद- 10.117.6)
  उपर्युक्त मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल के 117वें सूक्त के रूप में उद्धृत है जिसके देवता अग्नि तथा द्रष्टा ऋषि भिक्षु आंगिरस हैं एवं त्रिष्टुप् छन्द का प्रयोग है।
  अर्थ- जिसका मन उदार नहीं है उसका भोजन वृथा है। उसका भोजन उसकी मृत्यु के समान है। जो न तो देवता को देता है और न मित्र को देता है और स्वयं भोजन करता है वह केवल पाप ही खाता है।
- **उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।**
  नमो भरन्त एमसि॥ (ऋग्वेद 1.1.7)
  उपर्युक्त मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त के रूप में उद्धृत है जिसके देवता अग्नि तथा ऋषि मधुच्छन्दा हैं इस मन्त्र में गायत्री छन्द का प्रयोग है।
  अर्थ- हे अग्निदेव! हम यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले प्रतिदिन और दिन रात उत्तम बुद्धि से नमस्कार करते हुए तुम्हारे समीप आते हैं।
- **प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः।**
  सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान्॥ (ऋग्वेद 10.34.1)
  उपर्युक्त मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल के 34वें सूक्त के रूप में उद्धृत है, जिसे अक्षसूक्त के नाम से जाना जाता है जिसके ऋषि कवष ऐलूष एवं देवता अक्षकृषि प्रशंसा एवं मन्त्र त्रिष्टुप् छन्द का प्रयोग है।
- **एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।**
  पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥
  (ऋग्वेद 10.90.3)
  उपर्युक्त मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल के 90वें सूक्त के रूप में उद्धृत है जिसे पुरुषसूक्त के नाम से जाना जाता है। इस मन्त्र के ऋषि नारायण एवं देवता पुरुष तथा छन्द अनुष्टुप् है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि 'केवलाघो भवति केवलादी' ऋग्वेद के दशम मण्डल से उद्धृत है जिसके द्रष्टा ऋषि भिक्षु आङ्गिरस हैं।

अतः विकल्प (C) सही है।

स्रोत- ऋग्वेद (10.117.6)

54. साङ्ख्यदर्शने कैवल्यं कस्य मन्यते?

(A) अहङ्कारस्य **(B) महतः**
(C) पुरुषस्य **(D) प्रधानस्य**

व्याख्या-

- सांख्यकारिका में आचार्य ईश्वरकृष्ण कैवल्य के सन्दर्भ में एक कारिका उद्धृत करते हैं-
  प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ।
  ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं...कैवल्यमाप्नोति॥
  (का. 68)

शरीर प्राप्त होने पर, भोग एवं अपवर्ग- दोनों ही प्रयोजनों (पुरुषार्थों) के पूर्व से ही सिद्ध हुए रहने के कारण प्रकृति के निवृत्त हो जाने से पुरुष ऐकान्तिक और आत्यन्तिक मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

- वाचस्पति मिश्र कृत 'तत्त्वकौमुदी' टीका में भी कहा गया है- 'ऐकान्तिकम् = अवश्यम्भावि, आत्यन्तिकम् = अविनाशि, इत्युभयं कैवल्यम् = दुःखत्रयविगमं प्राप्नोति पुरुषः'' प्रकृति के प्रवृत्तहीन होने पर वह पुरुष ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक कैवल्य प्राप्त कर लेता है।
- **''पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च''**
  (का. 17)
  पुरुष की सत्ता सिद्धि के प्रसङ्ग में कैवल्य का मोक्ष के लिए प्रवृत्ति होने के कारण पुरुष की पृथक् सत्ता सिद्ध होती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सांख्यदर्शन में कैवल्य की प्राप्ति पुरुष को ही होती है।
अतः विकल्प (C) सही है।

55. 'रि च' इत्यनेन सूत्रेण किं कार्यं भवति?
(A) उपधायाः दीर्घः रेफस्य च लोपः
(B) पूर्वस्वरस्य दीर्घः रादौ प्रत्यये परे
(C) रेफस्य लोपः रादौ प्रत्यये परे
(D) तासस्त्योः सस्य लोपः रादौ प्रत्यये परे

व्याख्या- रि च (7.4.51)- तासि प्रत्यय और अस् धातु के सकार का लोप होता है रादि (रेफ आदि में हो, ऐसे) प्रत्यय के परे होने पर। जैसे- भवितासि- मध्यमपुरुष के एकवचन में सिप् आता है, अनुबन्ध लोप। तासि, अनुबन्धलोप, इद् का आगम, गुण, अवादेश, वर्णसम्मेलन के बाद- भवितास् सि में तास् के सकार का तासस्त्योर्लोपः से लोप होकर भवितासि सिद्ध हो जाता है।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'रि च' (7.4.51) सूत्र से सकार का लोप होता है। **अतः विकल्प (D) सही है।**
स्रोत- अष्टाध्यायी - ईश्वरचन्द्र - पेज 975

56. अधस्तनेषु उचितसम्बन्धयुतं विकल्पं चिनुत-
(A) वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम्- **इन्द्रसूक्तम्**
(B) ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश - **वरुण सूक्त।**
(C) यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः - **अग्निसूक्तम्**
(D) यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति- **पर्जन्यसूक्तम्**

व्याख्या-

- **वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम्।**
  गीर्भिर्वरुण सीमहि॥ (ऋग्वेद 1.25.3)
  उपर्युक्त मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 25वें सूक्त से उद्धृत है। इस मंत्र के द्रष्टा ऋषि शुनःशेप तथा देवता वरुण हैं एवं छन्द गायत्री है। इस सूक्त को वरुणसूक्त के नाम से जाना जाता है।
- **ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्**
  वृषा मही रोदसी आ विवेश।
  मही मित्रस्य वरुणस्य माया
  चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा॥ (ऋग्वेद 3.61.7)
  उपर्युक्त मंत्र ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के 61वें सूक्त के रूप में उद्धृत है जिसके देवता उषस् तथा ऋषि विश्वामित्र हैं एवं छन्द त्रिष्टुप् है यह मन्त्र उषस्सूक्त में है।
- **यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य**
  यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
  युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः
  सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः॥ (ऋग्वेद 2.12.6)
  उपर्युक्त मंत्र ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के बारहवें सूक्त के रूप में उद्धृत है जिसके देवता इन्द्र तथा ऋषि गृत्समद हैं एवं त्रिष्टुप् छन्द का प्रयोग है इस सूक्त को इन्द्रसूक्त के रूप में जाना जाता है।
- **यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति**
  यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति।
  यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः
  स नः पर्जन्यः महि शर्म यच्छ॥ (ऋग्वेद 5.83.5)
  उपर्युक्त मंत्र ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के 83वें सूक्त के रूप में उद्धृत है इस मंत्र के देवता पर्जन्य तथा ऋषि अत्रि हैं एवं छन्द त्रिष्टुप् है। इस सूक्त को पर्जन्यसूक्त के नाम से जाना जाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति मंत्र' पर्जन्य सूक्त से है जिसका क्रम सुमेलित है शेष के क्रम सुमेलित नहीं है। **अतः विकल्प (D) सही है।**
स्रोत- वैदिकसूक्तसंग्रह - विजयशङ्कर पाण्डेय, पेज 160

57. काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति सिद्धान्तः प्रधानतया केन प्रतिपादितः?

(A) अभिनवगुप्तेन (B) भरतमुनिना
(C) मम्मटेन (D) आनन्दवर्धनेन

व्याख्या-

- आचार्य आनन्दवर्धन प्रणीत ध्वन्यालोक में काव्य की आत्मा ध्वनि को मानते हुए कहते हैं-
'काव्यस्यात्मा ध्वनिः' (ध्वन्यालोक 1.1) अर्थात् काव्य की आत्मा ध्वनि है।
- ध्वन्यालोक में चार उद्योत हैं।
- ध्वन्यालोक में ध्वनि के प्रथमतया दो भेद हैं-
वाच्यार्थ तथा प्रतीयमानार्थ
- आचार्य भरतमुनि रससम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य हैं इनके द्वारा रचित नाट्यशास्त्र नामक ग्रन्थ है जिसमें 36 अध्याय हैं। नाट्यशास्त्र में अलङ्कार के चार प्रकारों का वर्णन है।
- आचार्य मम्मट को **समन्वयवादी** आचार्य कहा जाता है। इन्हें 'ध्वनि का प्रतिष्ठापक परमाचार्य' भी कहा जाता है। इनके द्वारा रचित काव्यप्रकाश नामक ग्रन्थ काव्यशास्त्रीयग्रन्थ है।
- आचार्य कुन्तक काव्य की आत्मा वक्रोक्ति को मानते हैं-
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते''
- आचार्य विश्वनाथ काव्य की आत्मा रस को मानते हैं-
'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'
- आचार्य वामन काव्य की आत्मा रीति को मानते हैं-
'रीतिरात्मा काव्यस्य'

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि काव्य की आत्मा ध्वनि है यह सिद्धान्त आचार्य आनन्दवर्धन का है। **अतः विकल्प (D) सही है।**

स्रोत- काव्यप्रकाश - आचार्य विश्वेश्वर, भू. पेज 18

58. 'अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगणयात्मनः' रघुवंशे इयमुक्तिः कस्य-

(A) कौत्सस्य (B) सिंहस्य
(C) वसिष्ठस्य (D) अरुन्धत्याः

व्याख्या-

- रघुवंश महाकाव्य महाकवि कालिदास द्वारा रचित है। इसमें **19 सर्ग** हैं इसकी गणना **लघुत्रयी** में की जाती है। पुत्रप्राप्ति के लिए कामधेनु की पुत्री नन्दिनी नामक गाय की सेवा करने विषयक वार्ता को बताते हुए महर्षि वसिष्ठ नन्दिनी गाय को देखकर राजा दिलीप से कहते हैं-
अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगणयात्मनः।
उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत्॥
हे महाराज! आप अपने पुत्रप्राप्ति रूप कार्य की सिद्धि को निकट आई हुई समझें। क्योंकि यह 'सामने आयी हुयी' कल्याणमूर्ति नन्दिनी नाम लेते ही उपस्थित हुई है।
(रघु. 1.87)
- रघुवंशम् के द्वितीय सर्ग में नन्दिनी गाय की सेवा करते हुए राजा दिलीप से कुम्भोदर नामक सिंह कहता है-
स त्वं, निवर्त्तस्व विहाय लज्जां
गुरोर्भवान्दर्शितशिष्यभक्तिः।
शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्षं
न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति॥ (रघु. 2.40)
तुम लज्जा को छोड़कर वापस जाओ तुमने गुरु के सम्बन्ध में शिष्यों के योग्य भक्ति दिखला दी और जो रक्षा करने योग्य वस्तु शस्त्र से रक्षा करने के योग्य नहीं होती वह नष्ट होती हुई भी शस्त्रधारी की कीर्ति को नष्ट नहीं कर सकती है।
- रघुवंशम् के पञ्चम सर्ग में दान के निमित्त राजा रघु के यहाँ पधारे वरतन्तु के शिष्य कौत्स राजा रघु से कहते हैं-
सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन्नाथे
कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम्।
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः
कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा॥ (रघु. 5.13)
हे राजन् ! सब विषयों में हम लोगों का कुशल है यह जानो, तुम्हारे ऐसे राजा के रहने पर प्रजाओं को दुःख कहाँ से है क्योंकि सूर्य के प्रकाशमान होने पर अन्धकार समूह लोगों की दृष्टि को ढँकने के लिए किसी प्रकार से भी समर्थ नहीं होता है।
- रघुवंशम् के द्वितीय सर्ग में नन्दिनी गाय राजा दिलीप से कहती है-
भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च
प्रीताऽस्मि ते पुत्र! वरं वृणीष्व।
न केवलानां पयसां प्रसूतिम्
अवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम्॥ (रघु. 2.63)
हे पुत्र वसिष्ठ महर्षि के विषय में भक्ति से और मेरे विषय में दया रखने से मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। इसलिए तू वर माँगो और मुझे केवल दूध देने वाली गाय मत समझो प्रसन्न होने

पर अभिलाषाओं को पूरी करने वाली जानो।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगणयात्मनः' यह वचन वसिष्ठ ने राजा दिलीप से कहा। **अतः विकल्प (C) सही है।**

स्रोत- रघुवंशमहाकाव्यम् - हरगोविन्द मिश्र, पेज 29

59. कस्याम् उपनिषदि 'भृगुवल्ली' उपदिष्टा?

(A) तैत्तिरीयोपनिषदि (B) केनोपनिषदि

(C) ऐतरेयोपनिषदि (D) बृहदारण्यकोपनिषदि

व्याख्या-

➢ **तैत्तिरीयोपनिषद्-** यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा के अन्तर्गत तैत्तिरीय आरण्यक का अङ्ग है। तैत्तिरीय आरण्यक में दस अध्याय हैं, उनमें से सातवें आठवें और नवें अध्यायों को ही तैत्तिरीय उपनिषद् कहा जाता है। इस उपनिषद् में तीन वल्लियाँ हैं- शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली, भृगुवल्ली।

➢ **केनोपनिषद्-** यह उपनिषद् सामवेद की जैमिनीय शाखा से सम्बद्ध है।

- इसे तवलकारोपनिषद् भी कहते हैं। इसमें चार खण्ड हैं- प्रथम दो खण्ड पद्यात्मक तथा शेष दो गद्यात्मक।
- प्रथम खण्ड में उपास्य ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म में अन्तर बताया गया है।
- द्वितीय खण्ड में ब्रह्म के रहस्यमय स्वरूप का विवेचन है।
- तृतीय और चतुर्थ खण्डों में 'उमा हैमवती आख्यान' द्वारा परब्रह्म की सर्वशक्तिमत्ता का विवेचन है।

➢ **ऐतरेयोपनिषद्-** ऐतरेय आरण्यक के द्वितीय अध्याय के चतुर्थ खण्ड से लेकर षष्ठ खण्ड तक का नाम 'ऐतरेय उपनिषद्' है। इसमें तीन अध्याय हैं। परमात्मा के ईक्षण से सृष्टि का उल्लेख, पुनर्जन्म के सिद्धान्त एवं 'प्रज्ञान ब्रह्म' का वर्णन है।

➢ **बृहदारण्यकोपनिषद्-** यह शतपथ ब्राह्मण के 41वें काण्ड का अन्तिम भाग है। यह शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध है। इसमें 6 अध्याय हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि 'भृगुवल्ली' तैत्तिरीय उपनिषद् के अन्तर्गत है। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 179

60. अधस्तनेषु किं मेलनं सत्यमस्ति-

(A) त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति - सक्तुमिव

(B) म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः - दुष्टः शब्दः

(C) प्रायश्चित्तीया मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम् - सारस्वतीम्

(D) न चान्तरेण व्याकरणं कृतस्तद्धिता वा शक्या विज्ञातुम् - सुदेवोऽसि

व्याख्या-

- महर्षि पतञ्जलि महाभाष्य के पस्पशाह्निक में व्याकरणशास्त्र के पाँच मुख्य प्रयोजन तथा तेरह गौण प्रयोजनों का उल्लेख करते हैं-

पाँच मुख्य प्रयोजन- 'रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः' प्रयोजनम् अर्थात् रक्षा, ऊह, आगम, लघु, असन्देह ये पाँच व्याकरणशास्त्र के मुख्य प्रयोजन हैं।

तेरह गौण प्रयोजन- 1. तेऽसुराः, 2. दुष्टःशब्दः 3. यदधीतम्, 4. यस्तु प्रयुङ्क्ते, 5. अविद्वांसः, 6. विभक्तिं कुर्वन्ति, 7. यो वा इमाम्, 8. चत्वारि 9. उत त्वः, 10. सक्तुमिव, 11. सारस्वतीम्, 12. दशम्यां पुत्रस्य, 13. सुदेवो असि वरुण इति।

- **सक्तुमिव-** सक्तुमिव तितउना पुनन्तो... जैसे सत्तू को चलनी से छानते हैं ऐसे ही जब ज्ञानी लोग अपने प्रकृष्ट ज्ञान के बल से वाणी का व्याकरण (विश्लेषण, प्रकृतिप्रत्यय विभाग) करते हैं उस अवस्था में समान दर्शन वाले आपस में सायुज्य का अनुभव करते हैं कल्याणमयी लक्ष्मी इनकी वाणी में निहित होती है।

'सक्तुः - सचतेर्दुर्धावो भवति। कसतेर्वा विपरीताद् विकसितो भवति। तितउ-परिपवनं भवति' सक्तु सच् धातु से निष्पन्न होता है, इसका अर्थ धोना (साफ करना) या कठिन होता है। हो सकता है कि सक्तु कस् धातु के आद्यन्त विपर्यय करने से बना हो, खिला सा होता है। तितउ का अर्थ है चलनी।

- **दुष्टः शब्दः-** 'दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो.....' स्वर और वर्ण की दृष्टि से अशुद्ध उच्चारण किया हुआ दोषयुक्त शब्द अपने विवक्षित अर्थ को नहीं कहता है। वह वाणीरूप वज्र उस यजमान को मार देता है। जैसे 'इन्द्रशत्रु' में स्वरदोष के कारण वृत्रासुर मारा गया। हम दोषयुक्त शब्दों का प्रयोग न करें इसलिए हमें व्याकरण पढ़ना चाहिए।
- **सारस्वतीम्-** 'प्रायश्चित्तीया मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम्' सारस्वतीम्। प्रायश्चित्त के निमित्त सरस्वती देवता के लिए इष्टि याग करें। 'हम प्रायश्चित्त के योग्य न हों इसलिए हमें व्याकरण पढ़ना चाहिए।
- **सुदेवो असि-** सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः। अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव।

हे वरुण! तुम सुदेव हो क्योंकि तुम्हारी सात नदियाँ लौहप्रतिमा के समान तालु में प्रकाशित होती हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'प्रायश्चित्तीया मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम्' यह व्याकरण के गौण प्रयोजन सारस्वतीम् के अन्तर्गत है। **अतः विकल्प (C) सही है।**

स्रोत- महाभाष्य - जयशंकरलाल त्रिपाठी, पेज 29

61. अधोऽङ्कितेषु समुचितं विकल्पं चिनुत-

(A) वैभाषिकाः - तत्र बोधात्मको जीवः। अबोधात्मकस्त्वजीवः
(B) योगाचाराः - हीनयानम्
(C) माध्यमिकाः - महायानम्
(D) सौत्रान्तिकाः - तज्ज्ञानं पञ्चविधं मतिश्रुतावधिमनःपर्याय-केवलभेदेन

व्याख्या-

- माधवाचार्य विरचित सर्वदर्शनसंग्रह नामक ग्रन्थ के 'आर्हतदर्शन' नामक प्रकरण में जैनतत्त्वमीमांसा के अन्तर्गत जीव और अजीव नामक दो तत्त्व बताये गये हैं-

  जीव- 'तत्र बोधात्मको जीवः' उनमें ज्ञान के रूप में जीव है।

  अजीव- 'अबोधात्मस्त्वजीवः' - अज्ञान के रूप में अजीव है।

- बौद्धदर्शन के सुप्रसिद्ध चार सम्प्रदाय हैं-

  (i) माध्यमिक (शून्यवाद)- यह मत नागार्जुन से सम्बद्ध है। माध्यमिक और योगाचार महायान शाखा से सम्बद्ध है। पूर्ण असत् या पूर्ण सत् को अस्वीकार कर दोनों की सोपाधिक सत्ता मानने वाला, मध्यमार्ग का अवलम्बन करने वाला।

  (ii) योगाचार- योग और आचार का समन्वय करने वाला। योग के द्वारा मानसिक सत्ता (आलय विज्ञान) को स्वीकार करके बाह्य पदार्थों से विश्वास हटा देना।

  (iii) सौत्रान्तिक- सुत्तपिटक से सम्बद्ध, इसके बहुत से ग्रन्थ सुत्तान्त नाम से विख्यात हैं।

  (iv) वैभाषिक- विभाषा (अभिधर्म महाविभाषा) नामक ग्रन्थ में इनके सिद्धान्त प्रतिपादित हैं, इसलिए इनका नाम वैभाषिक पड़ा।

  * सर्वदर्शनसंग्रह के आर्हतदर्शन के अन्तर्गत सम्यक् ज्ञान और उसके पाँच आलयों का वर्णन किया गया है-

    तज्ज्ञानं पञ्चविधं मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलभेदेन' वह सम्यक् ज्ञान 1. मति 2. श्रुत 3. अवधि 4. मनःपर्याय 5. केवल - इन भेदों के कारण पाँच प्रकार का है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि माध्यमिक बौद्धों का सम्बन्ध महायान शाखा से है। **अतः विकल्प (C) सही है।**

स्रोत- सर्वदर्शनसंग्रह - उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पेज 32

62. आग्निवेश्यगृह्यसूत्रम् कस्य वेदस्य वर्तते-

(A) कृष्णयजुर्वेदस्य (B) सामवेदस्य
(C) ऋग्वेदस्य (D) अथर्ववेदस्य

व्याख्या-

- गृह्यसूत्रों का सम्बन्ध गृहस्थ जीवन से है। गृहस्थ जीवन से सम्बद्ध सभी संस्कार इसमें संगृहीत हैं। जीवन से सम्बद्ध सभी सोलह संस्कार गृह्यसूत्र के अन्तर्गत आते हैं। संस्कारों की सभी विधियों का उल्लेख इस सूत्र में प्राप्त होता है। चारों वेदों से सम्बद्ध गृह्यसूत्रों का वर्णन निम्नवत् है-
- **ऋग्वेद के गृह्यसूत्र-** ऋग्वेद के तीन गृह्यसूत्र हैं-
  * आश्वलायन गृह्यसूत्र
  * शांखायन गृह्यसूत्र
  * कौषीतकि गृह्यसूत्र
- **शुक्लयजुर्वेद के गृह्यसूत्र-**
  पारस्कर गृह्यसूत्र
- **कृष्णयजुर्वेद के गृह्यसूत्र-**

(i) बौधायन गृह्यसूत्र (ii) मानव गृह्यसूत्र
(iii) भारद्वाज गृह्यसूत्र (iv) आपस्तम्ब गृह्यसूत्र
(v) काठक गृह्यसूत्र (vi) आग्निवेश्य गृह्यसूत्र
(vii) हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र (viii) वाराह गृह्यसूत्र
(ix) वैखानस गृह्यसूत्र (x) चारायणीय गृह्यसूत्र
(xi) बैजवाप गृह्यसूत्र

- **सामवेद के गृह्यसूत्र-**

(i) गोभिल गृह्यसूत्र (ii) कौथुम गृह्यसूत्र
(iii) खादिर गृह्यसूत्र (iv) द्राह्यायण गृह्यसूत्र
(v) जैमिनीय गृह्यसूत्र

- **अथर्ववेद का गृह्यसूत्र-**

(i) कौशिक गृह्यसूत्र

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आग्निवेश्य गृह्यसूत्र कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्धित हैं। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 231

63. अर्थशास्त्रस्य चतुर्थमधिकरणं वर्तते-
(A) धर्मस्थीयम् (B) षाड्गुण्यम्
(C) योगवृत्तम् (D) कण्टकशोधनम्

व्याख्या- अर्थशास्त्र आचार्य कौटिल्य की रचना है, जिसमें 15 अधिकरण हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र में पुरुषार्थचतुष्टय, राजा एवं राजा के स्वरूप, दण्ड आदि के विषय वर्णित हैं-

प्रथम अधिकरण	-	विनयाधिकारिक प्रकरण
द्वितीय अधिकरण	-	अध्यक्षप्रचार
तृतीय अधिकरण	-	धर्मस्थीय
चतुर्थ अधिकरण	**-**	**कण्टकशोधन**
पंचम अधिकरण	-	योगवृत्त
षष्ठ अधिकरण	-	मण्डलयोनि
सप्तम अधिकरण	-	षाड्गुण्य
अष्टम अधिकरण	-	व्यसनाधिकारिक
नवम अधिकरण	-	अभियास्यत्कर्म
दशम अधिकरण	-	साङ्ग्रामिक
एकादश अधिकरण	-	वृत्तसंघ
द्वादश अधिकरण	-	आबलीयस
त्रयोदश अधिकरण	-	दुर्गलम्भोपाय
चतुर्दश अधिकरण	-	औपनिषदिक
पञ्चदश अधिकरण	-	तन्त्रयुक्ति

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र का चतुर्थ अधिकरण 'कण्टकशोधनम् ' है, अतः विकल्प (D) सही है।

64. 'शोणो धावति' इति उदाहरणे वेदान्तरीत्या का लक्षणा?
(A) जहल्लक्षणा (B) साध्यवसानालक्षणा
(C) अजहल्लक्षणा (D) भागलक्षणा

व्याख्या- वेदान्त के अनुसार लक्षणा तीन प्रकार की होती है-

1. जहल्लक्षणा- 'वाच्यार्थमशेषतः परित्यज्य तत्सम्बन्धिन्यर्थान्तरे वृत्तिर्जहल्लक्षणा' अर्थात् वाच्यार्थ का पूर्णरूप से परित्याग करके वाच्यार्थ से सम्बद्ध किसी दूसरे अर्थ का बोध कराने वाली वृत्ति जहल्लक्षणा कहलाती है। इसे **'लक्षणलक्षणा'** भी कहते हैं। उदाहरण- **गङ्गायां घोषः** इस वाक्य में गङ्गाशब्द अपने वाच्यार्थ का पूर्णतया परित्याग करके अपने से सम्बद्ध गंगातटरूप अर्थान्तर का लक्षणा से बोध कराता है।

2. अजहल्लक्षणा- वाच्यार्थापरित्यागेन तत्सम्बन्धिनी वृत्तिरजहल्लक्षणा अर्थात् वाच्यार्थ का बिना परित्याग किए हुए वाच्यार्थ से सम्बद्ध अर्थ का बोध कराने वाली वृत्ति अजहल्लक्षणा कहलाती है। इस लक्षणा को **'उपादान लक्षणा'** भी कहते हैं। उदाहरण- **'शोणो धावति'** अर्थात् लाल दौड़ रहा है। इस उदाहरण में शोणवर्ण जड़ होने के कारण धावति क्रिया के कर्त्ता रूप से वाक्यार्थ में अन्वित नहीं हो सकता है इसलिए वाक्यार्थ में अपने अन्वय की सिद्धि के लिए 'शोण' शब्द अपने वाच्यार्थ का बिना परित्याग किए हुए अपने से सम्बद्ध शोणवर्ण वाला 'अश्व' इस अर्थान्तर का लक्षणा से बोध कराता है।

3. जहदजहल्लक्षणा-
वाच्यार्थैकदेशपरित्यागेनैकदेशवृत्तिर्जहदजहल्लक्षणा अर्थात् वाच्यार्थ के एक अंश का परित्याग करके अवशिष्ट अंश का बोध कराने वाली जहदजहल्लक्षणा कहलाती है। इस वृत्ति के द्वारा वाच्यार्थ के एक भाग का परित्याग कर दिया जाता है और एक भाग को ग्रहण कर लिया जाता है। एक भाग का परित्याग करने के कारण भागत्याग तथा भागमात्र को ग्रहण करने से भागलक्षणा भी कहते हैं जैसे – सोऽयं देवदत्तः तत्त्वमसि।

स्पष्टीकरण- विवेचन से स्पष्ट है कि 'शोणो धावति' इस उदाहरण में अजहल्लक्षणा है। **अतः विकल्प (C) सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार- सन्तनारायण श्रीवास्तव्य, पेज 127

65. नीतिमञ्जरीप्रतिपाद्यविषयाः केन सम्बद्धाः?
(A) अथर्ववेदेन (B) ऋग्वेदेन
(C) कृष्णयजुर्वेदेन (D) सामवेदेन

व्याख्या- अनुक्रमणी साहित्य से ही सम्बद्ध नीतिमञ्जरी नामक ग्रन्थ प्रख्यात है। इसमें ऋग्वेद के अष्टक क्रम से, उसके समस्त आख्यानों एवं उनसे संकेतित नीति और उपदेशों का अत्यन्त रोचक ढंग से प्रस्तुतीकरण है। **द्या द्विवेद** ने अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से ऋग्वेद का अध्ययन करके यह ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ के भाष्य में षड्गुरुशिष्य की ऋग्वेदभाषा से पर्याप्त सहायता ली गई है। बृहद्देवता में भी ऋग्वैदिक आख्यान है पर नीतिमञ्जरी की विशेषता यह है कि इसमें उन आख्यानों से मिलती व्यावहारिक शिक्षा को भी आख्यान के साथ ही श्लोक में निबद्ध कर दिया है।

ऋग्वेद से सम्बन्धित अन्य ग्रन्थ-

शब्दावृत्त्यनुक्रमणी, छन्दोऽनुक्रमणी, देवतानुक्रमणी, मन्त्रार्थानुक्रमणी, नामानुक्रमणी, गूढार्थपदानुक्रमणी, विभक्त्यर्थनुक्रमणी, समयानुक्रमणी, इतिहासानुक्रमणी, गलित प्रदीप, ऋक्पदवर्णानुक्रमणी।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नीतिमञ्जरी ऋग्वेद से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प (B) सही है।**

66. तं राजा प्रणयन् सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते अत्र त्रिवर्गस्याभिप्रायः कः?
(A) ब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यश्च (B) भूः भुवः स्वश्च
(C) साम दामं भेदश्च (D) धर्मः अर्थः कामश्च

व्याख्या-

- मनुस्मृति के सप्तम अध्याय में राजा द्वारा दिए गए दण्ड के विषय में निम्न वर्णन प्राप्त होता है-

तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते॥
(मनु. 7.27)

यदि राजा भलीभाँति विचार कर दण्ड देता है तो धर्म, अर्थ और काम की वृद्धि होती है और जो राजा, कामी और अनुचित दण्ड देने वाला होता है तो वह उसी दण्ड से मारा जाता है।

- ♦ मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में ब्रह्मा के द्वारा चारों वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन प्राप्त होता है-

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत्॥
(मनु. 1.31)

ब्रह्मा ने लोकों की वृद्धि के लिए मुख, बाहु, जंघा और चरण से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनको क्रम से बनाया।

- ♦ वेदान्त में लोकों की संख्या 14 है जिनमें भूः भुवः स्वः से ऊपर के लोक हैं। 14 लोकों के नाम हैं- भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तप, सत्यम्, अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल।
- ♦ कौटिलीय अर्थशास्त्र में साम, दाम, भेद, दण्ड ये चार उपाय हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि तं राजा प्रणयन् सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते में त्रिवर्ग से अभिप्राय धर्म, अर्थ, काम है। **अतः विकल्प (D) सही है।**

स्रोत- मनुस्मृति - गिरिधर गोपाल शर्मा, पेज 158

67. अर्थसंग्रहरीत्या शाब्दीभावनाया लक्षणं किम् ?
(A) भवितुर्भवनानुकूलो भावकव्यापारविशेषः
(B) भवितुर्भवनानुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः
(C) प्रयोजनेच्छाजनित क्रियाविषयव्यापारः
(D) पुरुषप्रवृत्त्यनुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः

व्याख्या-लौगाक्षिभास्कर कृत अर्थसंग्रह मीमांसादर्शन का एक प्रकरण ग्रन्थ है जिसमें धर्म का लक्षण, विधि का लक्षण आदि का वर्णन है। अर्थसंग्रह के अनुसार भावना का लक्षण है-

'भावना नाम भवितुर्भवनानुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः' उत्पन्न होने वाले का भावानुकूल उत्पत्ति में कारणभूत जो प्रयोजक का व्यापार विशेष होता है वह भावना है।

भावना के दो भेद हैं- शाब्दीभावना व आर्थीभावना

- ♦ **शाब्दीभावना- 'तत्र पुरुषप्रवृत्त्यनुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः'** शाब्दीभावना अर्थात् प्रयोज्य पुरुष की प्रवृत्ति के अनुकूल प्रयोजक के व्यापारविशेष को शाब्दीभावना कहते हैं। शाब्दी, लिङ् अंश के द्वारा कही जाती है। 'सा च लिङंशेनोच्यते'। शाब्दीभावना के तीन अंश होते हैं- साध्य, साधन, इतिकर्तव्यता।
- ♦ **आर्थीभावना- प्रयोजनेच्छाजनितक्रिया-विषय व्यापारः** आर्थीभावना अर्थात् स्वर्ग आदि प्रयोजन को लक्ष्य करके याग आदि क्रिया को सम्पादित करने का पुरुष में जो मानसिक व्यापार उत्पन्न होता है उसे आर्थीभावना कहते हैं। आर्थीभावना आख्यात अंश के द्वारा कही जाती है 'सा चाख्यातत्वांशेनोच्यते।' आर्थीभावना के तीन अंश होते है- साध्य, साधन, इतिकर्तव्यता।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'पुरुष प्रवृत्त्यनुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः' शाब्दी भावना का लक्षण है। **अतः विकल्प (D) सही है।**

स्रोत- अर्थसंग्रह - ग़जानन शास्त्री मुसलगाँवकर, पेज 30

68. रुद्रदाम्नः गिरनारलेखः कस्यां भाषायां विद्यते?
(A) संस्कृतभाषायाम् (B) पालिभाषायाम्
(C) अपभ्रंशभाषायाम् (D) प्राकृतभाषायाम्

व्याख्या- रुद्रदामन् का गिरनार लेख- गुजरात के जूनागढ़ से प्रायः 2 किलोमीटर की दूरी पर पूर्व गिरिनार नामक पहाड़ी की एक शिला के पश्चिमी मुख पर ऊपर की ओर कार्दमवंशीय प्रथम रुद्रदामा नामधारी शक राज का यह लेख अंकित है।

- ♦ इसी शिला पर सम्राट् अशोक के 14 शिला-प्रज्ञापन एवं गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्त के भी लेख-द्वय उत्कीर्ण हैं।
- ♦ गिरिनार जूनागढ़ का प्राचीन नाम है।
- ♦ लेख की भाषा संस्कृत है, यत्र-तत्र प्राकृत का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।
- ♦ इसकी लिपि पश्चिमोत्तर प्रदेश की कुषाण-कालीन ब्राह्मी है।
- ♦ यह मौर्यौत्तरकाल में मथुरा, तक्षशिला और सुराष्ट्र में विकसित हुई।

प्राकृत भाषा- अशोक के अभिलेखों को सबसे पहले 1750 में टी. फैन्थैलर ने खोजा था।

- ♦ अशोक के अभिलेखों को सर्वप्रथम 1837 में एशियाटिक सोसायटी के सचिव जेम्स प्रिन्सेप ने पढ़ा था।
- ♦ अशोक पहला भारतीय शासक था जिसने अभिलेखों के सहारे सीधे अपनी प्रजा को सम्बोधित किया।

- अशोक के अभिलेखों की भाषा 'प्राकृत' थी।
- यह सामान्य जन की भाषा थी।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रुद्रदामन् का गिरनार अभिलेख संस्कृत भाषा में है। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- भारतीय अभिलेखशास्त्र, पुरालिपिशास्त्र एवं कालक्रमपद्धति अमिता शर्मा, पेज 61

69. वाग्ग्मी इत्यत्र को मत्वर्थीयप्रत्ययः-
(A) ग्मिनि (B) विनि
(C) मिनि (D) इनिः

याख्या- ग्मिनि प्रत्ययः- वाचो ग्मिनिः (5.2.124)- वाच् इस प्रथमान्त वाच् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में 'ग्मिनिँ' प्रत्यय होता है।

वाग्ग्मी, प्रशस्त वाणी वाला, बोलने में चतुर।

'प्रशस्ता वागस्त्यस्य' विग्रह करके 'वाच् + सुँ' इस स्थिति में 'वाचो ग्मिनिः' सूत्र से ग्मिनि प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिक संज्ञा सुप् का लुक् करके - 'वाच् + ग्मिन्'

चकार को 'चोः कुः' से कुत्व होकर ककार बना, 'झलां जशोऽन्ते' से जश्त्व होकर गकार हुआ - वाग्ग्मिन् बना।

सु आदि कार्य पुनः अनुबन्धलोप होकर - 'वाग्ग्मी' रूप सिद्ध होता है।

* **विनि प्रत्ययः -** अस्मायामेधास्रजोविनिः (5.2.121)- असन्त (अस् शब्द जिसके अन्त में है, यथा- यशस् आदि) माया, मेधा और स्रज् - इन प्रथमान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में तद्धित सञ्ज्ञक विनि प्रत्यय होता है।

उदाहरण- यशस् + विनि = यशस्वी, मया + विनि = मायावी, मेधा + विनि = मेधावी, स्रज् + विनि = स्रग्वी - ये प्रयोग सिद्ध होते हैं।

* **इनि प्रत्ययः-** अतइनिठनौ (5.2.115)- प्रथमान्त अदन्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में तद्धितसञ्ज्ञक इनि और ठन् प्रत्यय विकल्प से होता है।

उदाहरण- दण्ड + इनि = दण्डिन् 'दण्डी' (दण्ड वाला)
धन + इनि = धनिन् (धनी) धन वाला
छत्र + इनि = छत्रिम् (छत्री) छाता वाला

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्यान से स्पष्ट है कि 'वाग्ग्मी' पद में 'ग्मिनि' मत्वर्थीय प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- भैमीव्याख्या, भाग पाँच - भीमसेन शास्त्री, पेज 318

70. कथाप्रसङ्गेन जनैरुदाहृतादनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः। तवाभिधानाद् व्यथते नताननः स दुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः॥ अत्र कोऽलङ्कारः-
(A) लुप्तोपमा (B) मालोपमा
(C) श्लिष्टोपमा (D) उत्प्रेक्षा

व्याख्या- भारवि प्रणीत किरातार्जुनीयम् महाकाव्य में 18 सर्ग हैं जिसकी गणना संस्कृत बृहत्त्रयी में होती है। महाकाव्य के नायक अर्जुन तथा प्रधान रस वीर है।

किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग में दुर्योधन अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करके नतमस्तक होकर दुःखी हो उठता है। इस प्रसंग को वनेचर युधिष्ठिर के समक्ष सर्प से उपमा देते हुए कहता है-

कथाप्रसङ्गेन जनैरुदाहृताद
नुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः।
तवाभिधानाद् व्यथते नताननः
स दुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः॥ (किराता.1.24)

वार्तालाप में प्रसंगवश आप लोगों के सम्बन्ध में चर्चा चलने पर अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करके जैसे श्रेष्ठ विष वैद्यों द्वारा उच्चारण किए गये गरुड और वासुकि के नामों से युक्त अत्यन्त दुःसह मंत्र से गरुड के पादविक्षेप का स्मरण कर नीचा मुख किए सर्प व्यथित होता है, वैसे ही नीचा मुख किए हुए दुःखित होता है।

इस श्लोक के दो-दो अर्थ हैं एक दुर्योधन पक्ष में और दूसरा सर्पपक्ष में-

1. कथाप्रसङ्गेन जनैः-
 दुर्योधनपक्ष में- बातचीत के प्रसङ्ग में लोगों के द्वारा
 सर्प पक्ष में- विषवैद्यों में श्रेष्ठ लोगों के द्वारा।
2. तवाभिधानात्-
 दुर्योधनपक्ष में- आप (युधिष्ठिर) के नाम से।
 सर्पपक्ष में- वासुकि और गरुड़ के नाम से
3. अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः-
 दुर्योधन पक्ष में- इन्द्र के पुत्र अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करके।

सर्पपक्ष में- स्मरण कर लिया गया है इन्द्र के सूनु (अनुज) अर्थात् विष्णु के पक्षी।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इस श्लोक के श्लिष्ट दो-दो अर्थ उपमा के द्वारा निर्देशित हैं। अतः श्लेषानुप्राणित (श्लिष्टोपमा) अलङ्कार है। **अतः विकल्प (C) सही है।**

स्रोत- किरातार्जुनीयम् - रामसेवक दुबे, पेज 103

71. 'तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा' पंक्तिरियं कुत्र प्राप्यते?
(A) ऋग्वेदे (B) ईशोपनिषदि
(C) शुक्लयजुर्वेदे (D) मुण्डकोपनिषदि

व्याख्या-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे...।

अर्थ- उन परमेश्वर से ही ऋग्वेद की ऋचाएँ, सामवेद के **''तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा''** मन्त्र और यजुर्वेद की श्रुतियाँ एवं यज्ञादि कर्मों की दीक्षा उत्पन्न हुए हैं। यह सूक्ति अथर्ववेद की

शौनकी शाखा के अन्तर्गत 'मुण्डकोपनिषद्' के द्वितीय मुण्डक के प्रथम खण्ड का छठवाँ मन्त्र है, मुण्डकोपनिषद् में कुल तीन मुण्डक एवं प्रत्येक मुण्डक में दो-दो मन्त्र हैं, प्रथम मुण्डक के प्रथम खण्ड में 9 मन्त्र हैं, द्वितीय खण्ड में 13 मन्त्र हैं, द्वितीय मुण्डक के प्रथम खण्ड में 10 एवं द्वितीय खण्ड में 11 मन्त्र हैं, तृतीय मुण्डक के प्रथम खण्ड में 10 एवं द्वितीय खण्ड में 11 मन्त्र हैं। अतः कुल मन्त्रों की संख्या 64 है।

जिस यज्ञ में सब कुछ अर्थात् सबका आत्मरूप पुरुष आहुत कर दिया जाता है।

ऋग्वेद- वैदिक साहित्य का सबसे प्राचीन व प्रथम ग्रन्थ का नाम ऋग्वेद है, ऋग्वेद में विभिन्न देवों की स्तुति वाले मन्त्र हैं। अतः इसे ऋग्वेद कहते हैं, ऋग्वेद में कुल सूक्तों की संख्या 1028 है, जिसमें 11 बालखिल्य सूक्त माने जाते हैं। इसमें मन्त्रों की संख्या 10580 - 1/4 है, कहीं कहीं मन्त्रों की संख्या 10552 भी मानी गयी है।

* **ईशावास्योपनिषद्-** यह उपनिषद् शुक्लयजुर्वेद काण्व शाखीय संहिता का चालीसवाँ अध्याय है, इसी को पहला उपनिषद् माना जाता है। शुक्ल यजुर्वेद के प्रथम (39) उनतालीस अध्यायों में कर्मकाण्ड का निरूपण हुआ है, इस अन्तिम 40वें अध्याय में भगवत्तत्वरूप ज्ञानकाण्ड का निरूपण किया गया है, इस उपनिषद् में कुल (18) अष्टादश मन्त्र हैं।

सूक्ति- हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।

अर्थ- सत्य स्वरूप आप सर्वेश्वर का श्रीमुख, ज्योतिर्मय सूर्यमण्डल रूप पात्र से ढँका हुआ है।

* **शुक्लयजुर्वेद-** इस वेद की दो शाखाएँ हैं- माध्यन्दिन या वाजसनेयि संहिता तथा काण्वसंहिता, माध्यन्दिन शाखा में चालीस (40) अध्याय 303 अनुवाक तथा 1975 मन्त्र हैं।

काण्व शाखा का विभाजन अध्याय और अनुवाक के रूप में हुआ है। काण्व शाखा में 40 अध्याय 328 अनुवाक और 2086 मन्त्र प्राप्त होते हैं।

सूक्ति- ॐ इषे त्वोर्ज्जे त्वा वाय वस्थ देवो वः।

अर्थ- हे शमी वृक्ष की शाखा! वर्षा के लिए तुम्हें और अन्न या बल के लिए तुम्हें काटता हूँ।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा' यह पंक्ति मुण्डकोपनिषद् में प्राप्त होती है। **अतः विकल्प (D) सही है।**

72. मनुस्मृतौ 'सर्वतेजोमयो हि सः' अस्मिन् श्लोकांशे सः पदेन कः प्रोक्तः?

(A) सूर्यः (B) नृपः
(C) प्राज्ञः (D) गुरुः

व्याख्या- मनु प्रणीत मनुस्मृति धर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थ है जिसमें बारह अध्याय तथा 2694 श्लोक हैं। मनुस्मृति में संस्कार, विवाह, राजधर्म, धर्म, दुर्ग आदि विषयक वर्णन प्राप्त होते हैं।

मनुस्मृति के सप्तम अध्याय में राजा के विषय में वर्णन प्राप्त होता है-

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः॥

(मनु. 7.11)

जिसकी प्रसन्नता में बहुत सी लक्ष्मी बसती है अर्थात् प्रसन्न होने पर बहुत सी धन सम्पत्ति देता है, जिसके पराक्रम में विजय और जिसके कोप में मृत्यु होती है ऐसा वह राजा सब तेजों की मूर्ति है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त श्लोक के वर्णन से स्पष्ट है कि 'सर्वतेजोमयो हि सः' में सः पद राजा के लिए प्रयुक्त हुआ है। **अतः विकल्प (B) सही है।**

स्रोत- मनुस्मृति -शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन, पेज 303

73. ऋग्वेदप्रातिशाख्ये कियन्ति समानाक्षराणि उक्तानि?

(A) दश (B) पञ्चविंशतिः
(C) चत्वारि (D) अष्टौ

व्याख्या- ऋग्वेद प्रातिशाख्य महर्षि शौनक की रचना है जिसमें 18 पटल हैं। ऋग्वेद प्रातिशाख्य में सञ्ज्ञा, परिभाषा, स्वर, सन्धि, उच्चारणदोष, छन्द आदि का विवेचन है।

♦ **समानाक्षर सञ्ज्ञा-** अष्टौ समानाक्षराण्यादितः अर्थात् आदि (प्रारम्भ) के आठ अक्षर समानाक्षर सञ्ज्ञक होते हैं। आठ अक्षर हैं- **अ, आ, ऋ, ॠ, इ, ई, उ, ऊ** समानाक्षर सञ्ज्ञा का प्रयोजन समान स्थान वाले दो समानाक्षर एक दीर्घ-स्वर वर्ण को प्राप्त हो जाते हैं।

♦ **सन्ध्यक्षर सञ्ज्ञा-** ततश्चत्वारि संध्यक्षराण्युत्तराणि- सन्ध्यक्षर के आगे वाले चार अक्षर सन्ध्यक्षर सञ्ज्ञक होते हैं। चार अक्षर हैं- **ए, ओ, ऐ, औ।**

♦ **अघोष सञ्ज्ञा-** अन्त्याः सप्त तेषामघोषाः अर्थात् ऊष्म वर्णों में अन्तिम सात वर्ण अघोष सञ्ज्ञक होते हैं। अघोष सञ्ज्ञक वर्ण हैं- **श, ष, स, अः, ᳲक, ᳲप, अं।**

♦ **सोष्म सञ्ज्ञा-** युग्मौ सोष्माणौ अर्थात् प्रत्येक वर्ग में सम वर्ण सोष्म सञ्ज्ञक होते हैं। सोष्म सञ्ज्ञक हैं- **खघ, छझ, ठढ, थध, फभ।**

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि समानाक्षर सञ्ज्ञक वर्णों की संख्या आठ है। **अतः विकल्प (D) सही है।**

स्रोत- ऋग्वेदप्रातिशाख्यम्, पेज 42

74. 'महदरण्यम्' इत्यर्थे स्त्रीप्रत्यये किं भवति?

(A) अरण्या (B) अरण्यानी
(C) महारण्या (D) महारण्यानी

व्याख्या- द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातु–लाचार्याणामानुक् (4.1.49)

इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य इन बारह शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय एवं इनको ही आनुक् का आगम भी होता है।

महद् अरण्यम् अरण्यानी (बड़ा जंगल)

अरण्य शब्द से 'हिमारण्ययोर्महत्त्वे' के अनुसार महत्त्व अर्थ में 'इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवनमातुलाचार्याणामानुक्' से आनुक् आगम और ङीष् प्रत्यय।

सवर्ण दीर्घ करके - अरण्यानी

सु आदि कार्य फिर 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्' से लोप होकर अरण्यानी रूप सिद्ध हुआ।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महद् अरण्यम् इस पद में ङीष् प्रत्यय होकर अरण्यानी रूप बनेगा। **अतः विकल्प (B) सही है।**

स्रोत- भैमीव्याख्या (भाग 6) भीमसेन शास्त्री, पेज 52,53

75. तर्कसंग्रहरीत्या मनः कीदृक्?

(A) एकमनित्यं परमाणुरूपञ्च
(B) अनन्तं परमाणुरूपं नित्यञ्च
(C) एकं विभु नित्यञ्च
(D) अनन्तं विभु नित्यञ्च

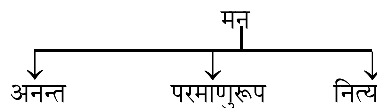
व्याख्या-

आचार्य अन्नंभट्टकृत तर्कसंग्रह न्याय-वैशेषिक का एक प्रकरण ग्रन्थ है जिसमें सात पदार्थों का वर्णन है- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव।

द्रव्य नामक पदार्थ के नौ भेद हैं- पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन।

तर्कसंग्रह के अनुसार मन का लक्षण-

'सुखाद्युपलब्धि साधनमिन्द्रियं मनः। तच्च प्रत्यात्मनियतत्वादनन्तं परमाणुरूपं नित्यं च' अर्थात् सुख, दुःख आदि की प्राप्ति के साधन इन्द्रिय को मन कहते हैं। वह प्रत्येक आत्मा में निश्चित रूप से विद्यमान होने से अनन्त है। परमाणुरूप में है और नित्य भी है।



- वैशेषिक दर्शन की नौ द्रव्य परम्परा में मन की अन्तिम द्रव्य के रूप में गणना की गयी है। इसे अन्तरिन्द्रिय भी कहते हैं।
- विद्वानों ने मन का निर्वचन **'मन्यते ज्ञायते अनेन इति मनः'** किया है।
- दीपिका टीका में अन्नम्भट्ट ने कहा है- **सुखेति 'स्पर्शरहितत्वे सति क्रियात्वम्'** अर्थात् जो स्पर्शरहित रहते हुए भी क्रियावान् रहता है, उसे 'मन' कहते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'मन' नामक नौवाँ द्रव्य अनन्त, परमाणुरूप तथा नित्य है। **अतः विकल्प (B) सही है।**

स्रोत- तर्कसंग्रह - गोविन्दाचार्य, पेज 76

76. 'शिशुपालवधस्य' सर्गसंख्या काऽस्ति?

(A) विंशतिः (B) एकविंशतिः
(C) सप्तविंशतिः (D) पञ्चविंशतिः

व्याख्या- शिशुपालवध का सामान्य परिचय-

- महाकवि 'माघ' विरचित शिशुपालवधम् 20 सर्गों तथा 1650 श्लोकों वाला महाकाव्य है।
- इसकी गणना बृहत्त्रयी के अन्तर्गत होती है।
- यह वीर रस प्रधान महाकाव्य है। इसमें वंशस्थ, अनुष्टुप्, उपजाति (कुल प्रयुक्त छन्द 25) हैं।
- इसका अपरनाम श्र्यङ्कमहाकाव्य (श्रीपदाङ्कमहाकाव्य) है।
- उपजीव्य ग्रन्थ महाभारत का सभापर्व (सर्ग 33 से 45 तक) तथा श्रीमद्भागवत पुराण (10वाँ स्कन्ध, 74वाँ अध्याय) है।
- श्रीकृष्ण धीरोदात्त नायक हैं तथा सत्यभामा/रुक्मणी नायिका हैं।
- श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगत् (वंशस्थ छन्द), वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण है।
- माघ के पितामह सुप्रभदेव, पिता-दत्तक (सर्वाश्रय) माता-ब्राह्मी, निवास- श्रीभिन्नमाल (भीनमाल), राजस्थान (आबूपर्वत तथा लूनानदी के बीच स्थित) है।
- उपाधि- घण्टामाघ, सर्वाश्रय है।
- 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः', 'मेघे माघे गतं वयः', नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते- ये प्रशस्तियाँ हैं।
- शिशुपालवध का प्रारम्भ नारद द्वारा भेजे गये इन्द्र के सन्देश से तथा अन्त शिशुपाल का कृष्ण द्वारा वध से होता है।

संस्कृत वाङ्मय के कुछ महत्त्वपूर्ण महाकाव्य-

महाकाव्य	रचनाकार	सर्ग एवं श्लोक
रघुवंशम्	कालिदास	19 सर्ग/ 1569 श्लोक लगभग
किरातार्जुनीयम्	भारवि	18 सर्ग/ 1030 श्लोक
शिशुपालवधम्	माघ,	20 सर्ग/ 1650 श्लोक
नैषधीयचरितम्	श्रीहर्ष,	22 सर्ग/ 2830 श्लोक लगभग
भट्टिकाव्य (रावणवधम्)	भट्टि	22 सर्ग/ 1624 श्लोक लगभग
हरविजयम्	रत्नाकर	50 सर्ग/ 4321 श्लोक (सबसे बड़ा महाकाव्य)
राघवपाण्डवीयम्	कविराज (माधवभट्ट)	13 सर्ग/ 6682 श्लोक

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि **विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास- उमाशङ्कर शर्मा, पेज- 262

77. 'मा नो वधाय हत्नवे जिहीलानस्य रीरधः' अत्र स्तूयमानो देवः कः?

(A) रुद्रः (B) भिन्नः
(C) वरुणः (D) अग्निः

व्याख्या- ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 25वें सूक्त के दूसरे मन्त्र में ऋषि शुनःशेप गायत्री छन्द में वरुण देवता की स्तुति करते हुए कहते हैं-

- **''मा नो वधाय हत्नवे जिहीलानस्य रीरधः''**
  हे वरुण देवता! अनादर कर और घातक बनकर तुम हमारा वध नहीं करना। (ऋ. 1.25.2)
- **अतो विश्वानि अद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति**
  ज्ञानी मनुष्य वरुण की कृपा से वर्तमान और भविष्य सारी अद्भुत घटनाओं को देखते हैं। (1.25.11)
- ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त में ऋषि मधुच्छन्दा गायत्री छन्द में अग्नि देवता की स्तुति करते हुए कहते हैं-
  ''अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे''
  अग्नि के अनुग्रह से यजमान को धन मिलता है, और वह धन अनुदिन बढ़ता है। (ऋ. 1.1.3)
  स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव
  जिस तरह पुत्र पिता को आसानी से पा जाता है उसी तरह हम भी तुम्हें पा सकें। (ऋ. 1.1.9)
- ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के बारहवें सूक्त में ऋषि गृत्समद त्रिष्टुप् छन्द के द्वारा इन्द्र देवता की स्तुति करते हुए कहते हैं-
  यो जिगीवाँल्लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः
  जो लक्ष्य जीतकर व्याध की तरह शत्रु के सारे धन ग्रहण करते हैं वे ही इन्द्र हैं। (ऋ. 2.12.4)
  यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः।
  जो सूर्य और उषा को उत्पन्न करते हैं और जो जल प्रेरित करते हैं वही इन्द्र हैं। (ऋ. 2.12.7)
- ऋग्वेद के दसवें मण्डल के इकहत्तरवें सूक्त में ऋषि बृहस्पति ने त्रिष्टुप् छन्द के द्वारा परब्रह्म ज्ञान देवता की स्तुति करते हुए कहते हैं-
- **यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति** (ऋ. 10.71.6)
  जो विद्वान् मित्र को छोड़ देता है, उसकी वाणी से कोई फल नहीं।
- **अत्राह त्वं विजहुर्वेद्याभिरोहब्राह्मणो विचरन्त्युत्वे।**
  कोई-कोई स्तोतज्ञ (ब्राह्मण) वेदार्थ ज्ञात होकर विचरण करते हैं। (ऋ. 10.71.8)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मा नो वधाय..... इस मन्त्र में वरुण देवता की स्तुति की गयी है। **अतः विकल्प (C) सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्त संग्रह (1.25.2)

78. काव्यमीमांसानुसारं काव्यकविः कतिधा भवति?

(A) चतुर्धा (B) त्रिधा
(C) पञ्चधा (D) अष्टधा

व्याख्या- राजशेखर काव्यमीमांसा के प्रथम अधिकरण के काव्यपाककल्प नामक पंचम अध्याय में कवियों के विषय में बताते हैं-

कविः- ''प्रतिभाव्युत्पत्तिमांश्च कविः कविरित्युच्यते।''
प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति से युक्त कवि ही कवि कहा जाता है।

कवि के प्रकार- 'स च त्रिधा' अर्थात् कवि तीन प्रकार के होते हैं- 1. शास्त्रकवि 2. काव्यकवि 3. उभयकवि

1. शास्त्रकवि- 'तत्र त्रिधा शास्त्रकविः' शास्त्रकवि तीन प्रकार के होते हैं-

(i) जो शास्त्र का निर्माण करता है- 'यः शास्त्रं विधत्ते'।

(ii) जो शास्त्र में काव्य को निविष्ट करता है- 'यश्च शास्त्रे काव्यं संविधत्ते'।

(iii) जो काव्य में शास्त्र का सन्निवेश करता है- 'योऽपि काव्ये शास्त्रार्थं निधत्ते'।

2. काव्यकवि- 'काव्यकविः पुनरष्टधा'- काव्यकवि भी आठ प्रकार के हैं- 1. रचनाकवि 2. शब्दकवि 3. अर्थकवि 4. अलङ्कारकवि 5. उक्तिकवि 6. रसकवि 7. मार्गकवि 8. शास्त्रार्थकवि।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि काव्य कवि आठ प्रकार के होते हैं। **अतः विकल्प (D) सही है।**

स्रोत- काव्यमीमांसा - गंगासागर राय, पेज 37

79. जातिवाच्ये सति हस्त शब्दस्य मत्वर्थीयः कः प्रयोगः?

(A) हस्तवान् (B) हस्ती
(C) हस्तालुः (D) हस्तिकः

व्याख्या- 'हस्ताज्जातौ' (5.2.133) 'हस्त' इस प्रातिपदिक से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय होता है, जाति वाच्य होने पर।

- हस्ती = हाथी। संस्कृत में हाथी की सूँड को 'हस्त' भी कहते हैं।
- 'हस्तः अस्य अस्ति'- ऐसा विग्रह करके 'हस्त सु' इस स्थिति में ''हस्ताज्जातौ'' सूत्र से 'इनि' प्रत्यय होने पर अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिक संज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकार लोप होकर 'हस्तिन्' शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर 'हस्ती' सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर हस्तित्व जाति का बोध हो रहा है।
- इस सूत्र में 'जातौ' पद का प्रयोग होने से जातिवाच्य होने पर ही यह प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता है। जैसे- पुरुष व्यक्तिवाची में 'इनि' प्रत्यय नहीं हुआ अपितु 'मतुप्' होकर 'हस्तवान्' हो जाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'हस्त' इस प्रातिपदिक से जातिवाच्य होने पर मत्वर्थीय 'इनि' प्रत्यय से 'हस्ती' शब्द सिद्ध होगा। **अतः विकल्प (B) सही है।**

स्रोत- वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी-गोविन्दाचार्य पेज 901

80. ''बुध-युध-नश-जनेङ्-प्रु-द्रु-स्रुभ्यो णेः'' इति नियमेन शुद्धः प्रयोगः कः?

(A) बोधयति पद्मम् (B) बोध्यते काष्ठानि
(C) बोधयते पद्मम् (D) वेदम् अध्यापयते

व्याख्या- भट्टोजिदीक्षित सिद्धान्तकौमुदी में परस्मैपद प्रक्रिया प्रकरण में एक सूत्र उद्धृत करते हैं-

सूत्र- बुध-युध-नश-जनेङ्-प्रु-द्रु-स्रुभ्यो णेः (1.3.86)

सूत्रार्थ- णिजन्त बुध्, युध्, नश्, जन्, इङ्, प्रु, द्रु, स्रु धातुओं से परस्मैपद होता है।

उदाहरण-

i. बोधयति पद्मम् (सूर्य) कमल को खिलाता है।

यहाँ भ्वादि और दिवादि में पठित 'बुध अवगमने' धातु से णिच् होने के बाद 'बोधि' धातु बन जाती है। इससे 'णिचश्च' सूत्र से उभयपद प्राप्त होने पर 'बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः' से केवल परस्मैपद का विधान होने पर लट्, तिप्, शप्, गुण अयादेश होकर 'बोधयति' सिद्ध हो जाता है।

ii. योधयति काष्ठानि (लकड़ियों से टकराता है)
iii. नाशयति दुःखम् (श्रीहरि दुःखों का नाश करते हैं)
iv. जनयति सुखम् (श्रीहरि सुख उत्पन्न करते हैं)
v. अध्यापयति वेदम् (वेद पढ़ाता है)
vi. प्रावयति, द्रावयति, स्रावयति आदि इसी सूत्र के उदाहरण हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत सूत्र परस्मैपद का विधान करता है, अतः 'बोधयति पद्मम्' यही प्रयोग परस्मैपद होने से सही है। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी (पञ्चम भाग)-गोविन्दाचार्य, पेज-445

81. भाषाविज्ञानानुसारेण भारोपीयपरिवारस्य भाषा नास्ति-

(A) मय (B) तोखारी
(C) इटालिक (D) आर्मीनी

व्याख्या-

- भारोपीय शब्द भारत + यूरोपीय का संक्षिप्त रूप है।
- यह Indo European का अनुवाद है।
- भारोपीय में भारतवर्ष से लेकर यूरोप तक फैली हुई भाषाओं का संग्रह है।
- भारोपीय परिवार की भाषाओं को ध्वनि के आधार पर दो भागों में विभक्त किया जाता है- (क) केन्टुम् (ख) शतम्।
- इस विभाजन का श्रेय प्रो. अस्कोली (Ascoly) को है।
- भारोपीय परिवार को केन्टुम् और शतम् वर्ग के आधार पर इस प्रकार बाँटा जाता है-

शतम् वर्ग	केन्टुम् वर्ग
1. भारत-ईरानी (आर्य)	1. ग्रीक
2. बाल्टो-स्लाविक	2. केल्टिक
3. आर्मीनी	3. जर्मनिक (ट्यूटानिक)
4. अल्बानी (इलीरी)	4. इटैलिक
	5. हिटाइट
	6. तोखारी

- ♦ मय भाषा अमेरिकी परिवार की है जो मध्य अमेरिका में बोली जाती है।
- ♦ अमेरिकी परिवार में लगभग 1000 भाषाएँ मानी जाती हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि तोखारी, इटालिक, आर्मीनी ये भारोपीय भाषाएँ हैं जबकि 'मय' अमेरिकी परिवार की भाषा है। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- भाषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 410

82. हर्षचरितम् कति उच्छ्वासेषु विभक्तम्?
(A) सप्तसु (B) अष्टसु
(C) चतुर्षु (D) दशसु

व्याख्या- हर्षचरितम् का सामान्य परिचय-
हर्षचरित महाकवि बाणभट्ट विरचित ऐतिहासिक कथानक पर आश्रित पहला गद्यकाव्य है।
- ♦ बाणभट्ट के दो प्रसिद्ध गद्यकाव्य हैं- 1. कादम्बरी (कथा) दो भाग। 2. हर्षचरितम् (आख्यायिका) आठ उच्छ्वासों में विभक्त एक आख्यायिका है।
- ♦ हर्षचरित में दो कथानक हैं- 1. बाणभट्ट की आत्मकथा (वंश वर्णन) 2. हर्ष का जीवन परिचय।
- ♦ प्रथम तीन उच्छ्वासों में बाणभट्ट के पूर्वजों का वर्णन, शेष पाँच उच्छ्वासों में हर्ष का सम्पूर्ण जीवन वृत्तान्त है।
- ♦ हर्षचरित का उपजीव्य ग्रन्थ इतिहास प्रसिद्ध है।

बाणभट्ट का वंश वर्णन-
वत्स कुबेर पाशुपत अर्थपति (इनके 11 पुत्र)
चित्रभानु बाणभट्ट (पुलिनभट्ट/पुलिन्दभट्ट/भूषणभट्ट)

संस्कृत वाङ्मय के कुछ गद्यकाव्य-

गद्यकाव्य	रचनाकार	विभाजन
दशकुमारचरितम्	दण्डी	दश उच्छ्वास
वासवदत्ता (कथा)	सुबन्धु	एकांकी
कादम्बरी (कथा)	बाणभट्ट	दो भागों में
हर्षचरितम् (आख्यायिका)	बाणभट्ट	आठ उच्छ्वास
शिवराजविजय	अम्बिकादत्त व्यास	3 विराम 12 निःश्वास
गद्यचिन्तामणि	वादीभसिंह	ग्यारह लम्भक

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हर्षचरितम् में आठ उच्छ्वास हैं। **अतः विकल्प (B) सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पेज- 396

83. 'शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः। स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति॥ अत्र 'तत्' पदेन किं द्योतते?
(A) शमः (B) तपः
(C) धनम् (D) तेजः

व्याख्या- महाकवि कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के द्वितीय अङ्क के सातवें श्लोक में राजा दुष्यन्त अपने सेनापति भद्रसेन से कहता है-

'शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति।।'

शब्दार्थ- शमप्रधानेषु = शान्तिप्रधान, तपोधनेषु = तपस्वियों में, दाहात्मकं = जला देने वाला, गूढं = गुप्त, तेजः = तेज, हि = क्योंकि, स्पर्शानुकूलाः = स्पर्श के योग्य, सूर्यकान्ताः इव = सूर्यकान्तमणि के समान, तत् = उस (तेज)

अनुवाद- शान्तिप्रधान तपस्वियों में जला देने वाला गुप्त तेज रहता है। क्योंकि स्पर्श के योग्य सूर्यकान्त मणियों के तुल्य (वे) अन्य तेज से तिरस्कृत होने पर उस (तेज) को प्रकट करते हैं। (अभि. 2.7)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'तत्' शब्द से 'तेज' का अर्थ द्योतित हो रहा है। **अतः विकल्प (D) सही है।**

स्रोत- अभिज्ञानशाकुन्तलम् - कपिलदेव द्विवेदी, पेज-108

84. तर्कसंग्रहरीत्या 'आद्यस्यन्दना समवायिकारणं' किम्भवति?
(A) द्रव्यत्वम् (B) द्रवत्वम्
(C) गुरुत्वम् (D) स्नेहः

व्याख्या- न्यायवैशेषिक के प्रकरणग्रन्थ तर्कसंग्रह में आचार्य अन्नम्भट्ट द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव, इन सात पदार्थों की चर्चा करते हैं। जिनमें पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा, मन इन नौ द्रव्यों को बताने के बाद रूप, रस, गन्ध इत्यादि 24 गुणों का वर्णन करते हैं।

द्रवत्वम्- आद्यस्यन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वम्। अर्थात् प्रथम बहना का असमवायिकारण (ही) द्रवत्व है।

पृथकत्व- पृथग् व्यवहारासाधारणकारणं पृथक्त्वम्। पृथक् व्यवहार के असाधारण कारण को पृथकत्व कहा गया है।

गुरुत्व- आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम्। प्रथम गिरने का असमवायिकारण ही गुरुत्व है।

स्नेह- चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः। चूर्ण आदि को

पिण्ड बना देने के कारण रूप गुण को स्नेह कहा जाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि तर्कसंग्रहरीत्या आद्यस्यन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वम् है। **अतः विकल्प (B) सही है।**

स्रोत- तर्कसंग्रह - राकेश शास्त्री, पेज.-168

85. ''मेदश्छेदकृशोदरं लघुभवत्युत्थानयोग्यं वपुः'' इत्येवं कस्य वैशिष्ट्यं प्रतिपादितम् ?

(A) मृगयायाः (B) पर्यटनस्य

(C) तपश्चर्यायाः (D) पादपसिञ्चनस्य

व्याख्या- प्रस्तुत पंक्ति महाकवि कालिदास द्वारा विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् के द्वितीय अङ्क के पाँचवें श्लोक से उद्धृत है। द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में ''राजा दुष्यन्त और विदूषक मृगया (शिकार) खेलने राजा दुष्यन्त नहीं जायेंगे, क्योंकि माधव्य ने आज विश्राम करने की इच्छा व्यक्त की है।''– यह बात सुनकर सेनापति भद्रसेन महाराज दुष्यन्त के मृगया (शिकार) के लिए उत्साहित करते हुए शिकार करने का लाभ बताते हुए कहता है-

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः।।

अनुवाद- (मृगया से) शरीर, चर्बी कम होने से घटे हुए पेट वाला, चुस्त और उत्साह के योग्य हो जाता है। जीवों के भय और क्रोध की अवस्था में क्षुब्ध मन का भी ज्ञान होता है। यह धनुर्धारियों के लिए बड़े ही गौरव की बात है कि चंचल लक्ष्य पर (उनके) बाण सफल होते हैं। शिकार खेलने की व्यर्थ ही लोग व्यसन कहते हैं। इतना मनोरंजन और कहाँ?

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि 'मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः' में मृगया का वैशिष्ट्य प्रतिपादित है। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- अभिज्ञानशाकुन्तलम् - कपिलदेव द्विवेदी, पेज-104

86. पण्डितराजजगन्नाथानुसारं निम्नलिखितेषु को न रसदोषः?

(A) स्थायिव्यभिचारिणां शब्दवाच्यत्वम्

(B) रसस्य व्यङ्ग्यत्वम्

(C) विच्छिन्नरसस्य पुनर्दीपनम्

(D) समबलप्रबलप्रतिकूलरसाङ्गानां निबन्धनम्

व्याख्या- पण्डितराज जगन्नाथ रसगङ्गाधर के प्रथम आनन में रसदोषों की चर्चा करते हैं-

1. **वमन दोष-** ''व्यङ्ग्ययस्य वाच्यीकरणे सामान्यतो वमनाख्यदोषस्य वक्ष्यमाणत्वात्।'' व्यङ्ग्य को वाच्य बना देने पर 'वमन' नामक दोष होता है।

2. **निरर्थकत्व दोष-** 'आस्वाद्यताऽवच्छेदकरूपेण प्रत्ययाजनकतया, रसस्थले वाच्यवृत्तेः कापेयककल्पत्वेन विशेषदोषत्वाच्च' रस शृङ्गारादि पदों से रसों को वाच्य बना देने पर 'निरर्थकत्व' नामक विशेष दोष भी होता है।

3. **शब्दवाच्यत्व दोष-** 'स्थायिव्यभिचारिणामपि शब्दवाच्यत्वं दोषः' स्थायिभावों और व्यभिचारिभावों का भी नामोल्लेखपूर्वक वर्णन करना शब्दवाच्यत्व दोष होता है।

4. **''विभावानुभावयोरसम्यक् प्रत्यये, विलम्बेन प्रत्यये वा, न रसास्वाद इति तयोर्दोषित्वम्''** विभावों और अनुभावों की अच्छी तरह प्रतीति न होना, अथवा विलम्ब से प्रतीति होना दोष है।

5. **''समबल-प्रबल-प्रतिकूलरसाङ्गानां निबन्धनन्तु प्रकृतरसपोष-प्रातीपिकमिति दोषः''** जहाँ जिस रस का वर्णन करना कवि को इष्ट हो उस प्रस्तुत रस के विरोधी रसों के समबल अथवा प्रबल अङ्गों का वर्णन करना दोष है।

6. **''प्रबन्धे प्रकृतस्य रसस्य प्रसङ्गान्तरेण विच्छिन्नस्य पुनर्दीपने सामाजिकानां न सामग्र्येण रसास्वाद इति विच्छिन्नदीपनं दोषः।''** किसी भी प्रबन्ध में जिस रस का वर्णन चल रहा हो, उसका यदि एक बार किसी भी प्रसङ्गान्तर से विच्छेद हो जाय, तब पुनः आगे उसका दीपन करने से विच्छिन्न कथा को दुबारा उठाने से 'विच्छिन्नदीपन' नामक दोष होता है।

7. **''तथा तत्तद्रसप्रस्तावनानर्हेऽवसरे प्रस्तावः, विच्छेदानर्हे च विच्छेदः''** इसी तरह जहाँ जिस रस का प्रस्ताव नहीं करना चाहिए वहाँ उस रस का प्रस्ताव करना, और जहाँ जिस रस का विच्छेद नहीं करना चाहिए वहाँ उस रस का विच्छेद कर देना दोष है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि 'रसस्य व्यङ्ग्यत्वम्' यह रस दोष नहीं है। **अतः विकल्प (B) सही है।**

स्रोत- रसगङ्गाधर - मदनमोहन झा, पेज 206,208

87. साध्यशून्यः पक्षो मुक्तावल्यां क उदाहृतः?

(A) बाधः (B) व्याप्यत्वासिद्धः

(C) सत्प्रतिपक्षः (D) अनैकान्तिकः

व्याख्या- श्री विश्वनाथ पञ्चानन प्रणीत न्यायसिद्धान्तमुक्तावली के अनुमानखण्ड में 'बाध' को परिभाषित करते हैं-

- **बाध- ''साध्यशून्यो यत्र पक्षस्त्वसौ बाध उदाहृतः''** जहाँ पक्ष साध्य से शून्य होता है, वह बाध कहलाता है। पक्ष का अर्थ है- पक्षतावच्छेक से विशिष्ट। (का. 78)
- **असिद्धि- आश्रयासिद्धिराद्या स्यात् स्वरूपासिद्धिरप्यथ। व्याप्यत्वासिद्धिरपरा स्यादसिद्धिरतस्त्रिधा॥** पहली आश्रयासिद्धि, उसके बाद स्वरूपासिद्धि, तीसरी

व्याप्यत्वासिद्धि इस कारण असिद्धि तीन प्रकार की होती है।

➢ **अनैकान्तिक- 'साधारणाद्यन्यतमत्वमनैकान्तिकत्वम्'** साधारणत्व, असाधारणत्व, अनुपसंहारित्व में से किसी एक का होना अनैकान्तिकत्व है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'साध्यशून्यः पक्षः' मुक्तावली में 'बाध' की परिभाषा है।

अतः विकल्प (A) सही है।

स्रोत- न्यायसिद्धान्तमुक्तावली - महानन्द झा, पेज 160

88. याज्ञवल्क्यस्मृत्यनुसारं किं स्त्रीधनं नास्ति?

(A) अध्यग्नि (B) आधिवेदनिकम्

(C) अन्वाधेयकम् (D) सामान्यार्थः

व्याख्या- याज्ञवल्क्यस्मृति के रचयिता 'याज्ञवल्क्य' वैदिक ऋषि हैं, वे शुक्लयजुर्वेद के द्रष्टा थे।

- याज्ञवल्क्यस्मृति के सुप्रसिद्ध टीकाकार विश्वरूप, विज्ञानेश्वर और अपरार्क हैं।
- के.पी. जायसवाल ने इस स्मृति का समय 150 ई. से 200 ई. के मध्य निश्चित किया है।
- पी.वी. काणे ने इसका समय ईसापूर्व प्रथम शताब्दी तथा ईसा के पश्चात् तृतीय शताब्दी के बीच का निर्धारित किया है।
- याज्ञवल्क्यस्मृति अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है।
- इसमें लगभग एक हजार श्लोक हैं।
- याज्ञवल्क्यस्मृति तीन भागों में विभक्त है।
- प्रथम आचाराध्याय है, इसमें चौदह विद्याएँ, धर्मोपादान, आचार के दस सिद्धान्त आदि तेरह प्रकरण हैं।
- द्वितीय व्यवहाराध्याय- इसमें पच्चीस प्रकरण हैं।
- तृतीय प्रायश्चित्ताध्याय इसमें आपद्धर्म, यतिधर्म, प्रायश्चित्त आदि छह प्रकरण हैं।
- याज्ञवल्क्य के द्वितीय भाग व्यवहाराध्याय के 143वें श्लोक में स्त्रीधन की चर्चा की गयी है।

स्त्रीधन- 'पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् ।
आधिवेदनिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम्॥

पिता, माता, पति और भाई द्वारा दिया गया धन, विवाह के समय अग्नि के समीप धन तथा दूसरा विवाह करते समय प्रथम पत्नी के परितोषार्थ उसे दिया गया धन इत्यादि स्त्रीधन कहे गये हैं। (याज्ञ.1.43)

- **'बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च।'**
स्त्री के माता-पिता के बन्धुओं द्वारा दिया गया धन, परिणय के शुल्क के रूप में दिया गया धन, विवाह के बाद पति तथा पितृकुल से प्राप्त धन भी स्त्री-धन होता है।

'अतीतायामप्रजसि बान्धवास्तदवाप्नुयुः॥' (याज्ञ.144)

ऐसी स्त्रीधन वाली स्त्री के बिना संतान के मर जाने पर उसके बन्धु पति आदि उस स्त्रीधन को प्राप्त करते हैं

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अध्यग्नि, आधिवेदनिकम् तथा अन्वाधेयकम् ये तीनों स्त्रीधन हैं जबकि सामान्यार्थः स्त्रीधन नहीं है। **अतः विकल्प (D) सही है।**

स्रोत- याज्ञवल्क्यस्मृति- गंगासागर राय, पेज-284

89. 'अग्निष्टोमाख्ये' सोमयागे कति शस्त्राणि भवन्ति?

(A) द्वादश (B) पञ्चदश

(C) एकादश (D) अष्ट

व्याख्या- चारों वेदों में यज्ञ का बहुत अधिक महत्त्व बताया गया है। यह वह विधि है जिसके द्वारा प्राकृतिक संतुलन बना रहता है। प्रकृति में एक नैसर्गिक चक्र की व्यवस्था है, प्रत्येक पदार्थ पुनः अपने स्थान पर पहुँचता है। ऋग्वेद और यजुर्वेद के द्वारा वर्षचक्ररूपी यज्ञ में वसन्त ऋतु घी है, ग्रीष्म ऋतु समिधा और शरद् ऋतु हव्य है।

* यजुर्वेद में यज्ञ को सृष्टिचक्र का नाभि कहा है।
* अथर्वा ऋषि यज्ञ के प्रवर्तक माने गये हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में समस्त श्रौतयज्ञों को पाँच भागों में विभक्त किया गया है- (i) अग्निहोत्र (ii) दर्शपौर्णमास (iii) चातुर्मास्य (iv) पशु (v) सोम।

श्रौत और स्मार्त 21 याग ये हैं-

(क)पाकयज्ञ- ये गृह्ययाग हैं, ये सात हैं- (1) औपासन होम (2) वैश्वदेव (3) पार्वण (4) अष्टका (5) मासिक श्राद्ध (6) श्रवणा (7) शूलगव।

(ख) हविर्याग- ये श्रौतयाग हैं, ये सात हैं- (1) अग्निहोत्र (2) दर्श-पौर्णमास (3) आग्रयण (4) चातुर्मास्य (5) पशुबन्ध (6) सौत्रामणि (7) पितृयज्ञ।

(ग) सोमयाग- ये श्रौतयाग हैं; ये सात हैं- (1) अग्निष्टोम (2) अत्यग्निष्टोम (3) उक्थ्य (4) षोडशी (5) वाजपेय (6) अतिरात्र (7) अप्तोर्याम।

सोमयाग के अन्तर्गत ही अग्निष्टोम को बताया गया है यह श्रौतयाग हैं- अग्निष्टोम यज्ञायज्ञा वो अग्नये (ऋ. 6.48.1 और साम. 35)। ऋचा पर सामगान 'अग्निष्टोम' कहलाता है।

''द्वादशाग्निष्टोमस्य शस्त्राणि'' (ता.ब्रा. 6.3.3) अर्थात् अग्निष्टोम के बारह शस्त्र हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सोमयाग के अन्तर्गत अग्निष्टोम के 12 शस्त्र हैं। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- श्रौतयज्ञ परिचय - श्रीवेणीराम शर्मा गौड़, पेज- 30

90. 'प्रतिहर्ता' ऋत्विक् कस्य गणस्य विद्यते?

(A) ब्रह्मगणस्य (B) उद्गातृगणस्य
(C) होतृगणस्य (D) अध्वर्युगणस्य

व्याख्या- मुख्यतः ऋत्विक् चार गणों में विभक्त हैं- (1) अध्वर्युगण (2) ब्रह्मगण (3) होतृगण (4) उद्गातृगण।

प्रत्येक गण में चार-चार ऋत्विक् होते हैं। जो इस प्रकार से हैं-

अध्वर्युगण	ब्रह्मगण	होतृगण	उद्गातृगण
(i) अध्वर्यु	(i) ब्रह्मा	(i) होता	(i) उद्गाता
(ii) प्रतिप्रस्थाता	(ii) ब्राह्मणाच्छंसी	(ii) मैत्रावरुण	(ii) प्रस्तोता
(iii) नेष्टा	(iii) आग्नीध्र	(iii) अच्छावाक	(iii) प्रतिहर्ता
(iv) उन्नेता	(iv) पोता	(iv) ग्रावस्तुत	(iv) सुब्रह्मण्य

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'प्रतिहर्ता' उद्गातृगण से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प (B) सही है।**

स्रोत- श्रौतयज्ञ परिचय - श्रीवेणीराम शर्मा गौड़, पेज- 28

91. 'जन्माद्यस्य यतः' इत्यस्मिन् सूत्रे 'यतः' पदेन किमभिधीयते?

(A) प्रकृतिः (B) जगत्
(C) ब्रह्मः (D) सृष्टिः

व्याख्या-

- बादरायण प्रणीत ब्रह्मसूत्र वेदान्त प्रस्थानत्रयी में अन्यतम ग्रन्थ है। प्रस्थानत्रयी में उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र आते हैं। ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय, प्रत्येक अध्याय में 4-4 पाद और कुल 555 सूत्र हैं।
- ब्रह्मसूत्र के प्रथम सूत्र 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।' (1.1.1) में ब्रह्मविषयक जिज्ञासा का अधिकार बतलाकर द्वितीय सूत्र में ब्रह्म का लक्षण (स्वरूप) बतलाया गया है- जन्माद्यस्य यतः (1.1.2)
  अर्थात् (अस्य) इस जगत् की (जन्मादि) उत्पत्ति, स्थिति और लय (यतः) जिससे होते हैं, वह ब्रह्म है।
- शाङ्करभाष्य में कहा गया है कि 'यतः' पद से इस जगत् के उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण का निर्देश किया गया है- ''यतः इति कारण-निर्देशः। अस्य जगतः नामरूपाभ्यां..... मनसाप्यचिन्त्यरचनारूपस्य जन्मस्थितिभङ्गं यतः सर्वज्ञात्सर्वशक्तेः कारणाद्भवति तद्ब्रह्म इति वाक्यशेषः।'' अर्थात् 'यतः'- यह शब्द कारण का निर्देशक है। जो नाम – रूप से अभिव्यक्त हुआ है तथा अनेक कर्ता और भोक्ताओं से संयुक्त है, मन से भी अचिन्त्य रचना, रूप वाले इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय जिस सर्वज्ञ, शक्तिमान् कारण से होते हैं 'वह ब्रह्म है' यह वाक्यशेष है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'जन्माद्यस्य यतः' सूत्र में 'यतः' पद 'ब्रह्म' के लिए आया है।

अतः विकल्प (C) सही है।

स्रोत- ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य-स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, पेज-34-35

92. अधोऽङ्कितेषु केन सह कस्य सम्बन्धः? समुचितां तालिकां चिनुत-

(A) अचोऽन्त्यादि (i) प्रगृह्यः
(B) इ इन्द्रः (ii) उपधा
(C) कृत्तद्धितसमासाश्च (iii) टि
(D) अन्त्यादलः पूर्वो वर्णः (iv) प्रातिपदिकम्

(A) (a) (i) (b) (ii) (c) (iv) (d) (iii)
(B) (a) (iv) (b) (ii) (c) (iii) (d) (i)
(C) (a) (ii) (b) (i) (c) (iii) (d) (iv)
(D) (a) (iii) (b) (i) (c) (iv) (d) (ii)

व्याख्या- महर्षि पाणिनि द्वारा विरचित अष्टाध्यायी में 8 अध्याय तथा प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद हैं। इस प्रकार अष्टाध्यायी में कुल 32 पाद एवं लगभग 4000 सूत्र हैं।

अष्टाध्यायी के ही 1275 सूत्रों को सरल से सरल शब्दों में समझाने और पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए- भट्टोजिदीक्षित के शिष्य वरदराजाचार्यजी ने लघुसिद्धान्त कौमुदी की रचना की। इसके कुछ प्रमुख सूत्र इस प्रकार हैं-

(i) अचोऽन्त्यादि टि (1.1.64)- 'अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात्'।

अचों के मध्य जो अन्त्य अच्, वह जिसके आदि में हो, वह समुदाय 'टि' संज्ञक होता है। जैसे- 'ज्ञान' में 'अकार' की और 'मनस्' में 'अस्' की टि संज्ञा हो जाती है।

(ii) निपात् एकाजनाङ् (1.1.14)- 'एकोऽज् निपात् आङ्वर्जः प्रगृह्यः स्यात्।' आङ् को छोड़कर मात्र एक अच् वाला निपात प्रगृह्य संज्ञक होता है। जैसे- इ इन्द्रः, उ उमेशः।

(iii) कृत्तद्धितसमासाश्च (1.2.46)- 'कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा स्युः'। कृदन्त, तद्धितान्त और समास भी प्रातिपदिक संज्ञक होते हैं।

कृदन्त- जो धातु के बाद लगते हैं। जैसे- कारकः

तद्धितान्त- सुबन्त शब्दों से लगते हैं। जैसे- शालीयः

समासान्त- अनेक पदों का एकपद होना- जैसे रामः+हरिः+श्यामः- रामहरिश्यामाः।

(iv) अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा (1.1.65)- 'अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः। वर्णों के समुदाय में से जो अन्तिम वर्ण हो, उससे पूर्व के वर्ण की यह उपधा संज्ञा होती है। जैसे- राम के 'मकार' की उपधा संज्ञा हुई है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **विकल्प (D) सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी-गोविन्द प्रसाद शर्मा, पेज- 61,76,131,175

93. 'सन्निहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा' इत्यनेन योगाङ्गनियमेषु कः?
(A) सन्तोषः (B) ईश्वरप्रणिधानम्
(C) शौचम् (D) तपः

व्याख्या- महर्षि पतञ्जलि पातञ्जलयोगदर्शन के द्वितीय साधनपाद में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इन अष्टाङ्गयोग की चर्चा करते हुए अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह पाँच यम बताते हैं।

पाँच यमों को बताने के बाद पाँच नियमों को बताते हैं-

नियम- शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः (2/32)

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान- ये पाँच 'नियम' कहे जाते हैं।

योगसूत्र के व्यासभाष्य में भाष्यकार शौचादि सभी पाँचों नियमों को परिभाषित करते हैं।

(i) शौच- शौच मृज्जलादिजनितं मेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यम्। आभ्यन्तरं चित्तमलानामाक्षालनम्।

मिट्टी और जल से होने वाला तथा पवित्र भोजनादि बाहरी 'शौच' है। चित्त के दोषों का धोना भीतरी 'शौच' है।

(ii) सन्तोष- सन्तोषः सन्निहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा

विद्यमान साधनों से अधिक साधनों का संग्रह करने की अनिच्छा संतोष है।

(iii) तपः- तपो द्वन्द्वसहनं व्रतानि चैषां यथायोगं कृच्छ्रचान्द्रायण सान्तपनादीनि।

द्वन्द्वों को सहना तप या तपस्या है। बुभुक्षा, पिपासा, सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्व हैं। शरीर की अनुकूलता के अनुसार कृच्छ्र, चान्द्रायण तथा सान्तपन इत्यादि व्रत भी तप हैं।

(iv) स्वाध्याय- 'स्वाध्यायो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं प्रणवजपो वा'

मोक्षशास्त्रों का अध्ययन अथवा ओङ्कार का जप 'स्वाध्याय है।

(v) ईश्वरप्रणिधान- ''ईश्वरप्रणिधानं तस्मिन् परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम्''

परमगुरु ईश्वर के प्रति सभी कर्मों का अर्पण करना 'ईश्वरप्रणिधान' है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'सन्निहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा' यह व्यासभाष्य में सन्तोष नामक योगाङ्गनियम की परिभाषा है। **अतः विकल्प (A) सही है।**

स्रोत- पातञ्जल योगदर्शन-सतीश आर्य, पेज 385-386

94. ''वेः शब्दकर्मणः' इति सूत्रस्योदाहणम्भवति-
(A) चित्तं विकरोति कामः (B) स्वरान् विकुरुते
(C) शत्रुमधिकुरुते (D) छात्राः विकुर्वते

व्याख्या- भट्टोजिदीक्षित सिद्धान्तकौमुदी में आत्मनेपदप्रक्रिया प्रकरण के अन्तर्गत धातुओं की आत्मनेपद की प्रक्रिया को बताते हुए पाणिनीयसूत्र को उद्धृत करते हैं-

- वेः शब्दकर्मणः (1.3.34) वेः परस्मात् शब्द कर्मकात् कृ धातोरात्मनेपदं भवति।

  उदाहरण- स्वरान् विकुरुते।
- यहाँ 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु है और उच्चारण करना अर्थ है। अतः ''वेः शब्दकर्मणः'' सूत्र से आत्मने पद होकर विकुरुते बन गया है।
- अकर्मकाच्च (1.3.35) वेः परस्मात् अकर्मकात् 'कृ' धातोरात्मनेपदं भवति।

  सूत्रार्थ- 'वि' से परे अकर्मक 'कृ' धातु से आत्मनेपद होता है।

  उदाहरण- छात्राः विकुर्वते। (छात्रगण विकार को प्राप्त होते हैं)

  यहाँ पर 'वि' उपसर्ग भी है और अकर्मकता भी। अतः वि+कृ धातु से ''अकर्मकाच्च'' सूत्र से आत्मनेपद होकर प्रथमपुरुष बहुवचन में 'विकुर्वते' सिद्ध हुआ।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ''वेः शब्दकर्मणः' सूत्र का उदाहरण 'स्वरान् विकुरुते' होगा। **अतः विकल्प (B) सही है।**

स्रोत- वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (भाग-5), गोविन्दाचार्य, पेज 397

95. 'दण्डिकः' इत्यस्मिन् पदे कः तद्धितप्रत्ययः?
(A) इक् (B) ठन्
(C) छत्र् (D) ठक्

व्याख्या- आचार्य भट्टोजिदीक्षित सिद्धान्तकौमुदी के मत्वर्थीय तद्धितप्रकरण के अन्तर्गत पाणिनीय सूत्र उद्धृत करते हैं-

सूत्र- अत इनिँठनौ (5.2.115)

सूत्रार्थ- प्रथमान्त अदन्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में तद्धितसंज्ञक इनिँ और ठन् प्रत्यय विकल्प से हों।

- दण्ड अस्य अस्ति इति दण्डिकः दण्डी वा (दण्ड वाला)
- 'दण्ड' शब्द अदन्त प्रातिपदिक है अतः 'दण्ड सु' इस प्रथमान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में ''अत इनिँठनौ'' सूत्र से 'इनि' और 'ठन्' प्रत्यय हो जाते हैं।
- दण्ड + ठन् = दण्डिकः
- 'ठन्' प्रत्यय के पक्ष में नकार और अकार अनुबन्धों का लोप, सुब्लुक्, 'ठस्येकः' से ठकार को इक् आदेश एवं 'यस्येति च' सूत्र से लोप कर विभक्ति लाने से 'दण्डिकः' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।
- दण्ड + इनिँ = दण्डिन् (दण्डी)
- इनिँ पक्ष में अनुबन्ध इकार का लोप एवं सुब्लुक् करने से - दण्ड + इन्

- 'यस्येति च' सूत्र से लोप होकर 'दण्डिन्' शब्द निष्पन्न होता है। प्रथमा के एकवचन में सुँ विभक्ति लाने पर ''सौ च'' से उपधा दीर्घ, हल्ङ्यादिलोप तथा पदान्त नकार का भी 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य'। से लोप करने पर 'दण्डी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि दण्ड + ठन् प्रत्यय होने पर ''दण्डिकः'' प्रयोग सिद्ध होगा।

अतः विकल्प (B) सही है।

स्रोत- वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (भाग-3), गोविन्दाचार्य, पेज 881

96. 'मनसा हरिं व्रजति' इत्यत्र 'गत्यर्थकर्मणी...' इत्यादि सूत्रेण कर्मणि चतुर्थी कथन्न भवति-

(A) व्रजधातोः गत्यर्थाभावात्
(B) गत्यर्थकर्मणोऽभावात्
(C) अध्ववाचिकर्मत्वात्
(D) चेष्टायाः प्रतीत्यभावात्

व्याख्या- आचार्य भट्टोजिदीक्षित वैयाकरणसिद्धान्त कौमुदी कारक प्रकरण चतुर्थी विभक्ति के अन्तर्गत एक सूत्र उद्धृत करते हैं-

''गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि''

यदि गति शारीरिक व्यापार मुक्त हो और कर्म मार्गवाची न हो तो गत्यर्थक धातुओं के कर्म में द्वितीया और चतुर्थी होती है।

जैसे- ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति। (गाँव को जाता है)

वहाँ पर गत्यर्थक 'गम्' धातु का प्रयोग है और यह गमन चेष्टायुक्त है। ग्राम मार्गवाची नहीं है और यह गच्छति का कर्म भी है। अतः 'ग्राम' शब्द से ''गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि'' सूत्र के द्वारा चतुर्थी होने पर 'ग्रामाय गच्छति' वाक्य बनता है और द्वितीया होने पर 'ग्रामं गच्छति'। इस प्रकार 'ग्राम' में चतुर्थी एवं द्वितीया दोनों विभक्तियाँ पर्यायेण होती हैं।

- मनसा हरिं व्रजति (मन से हरि की शरण में जाता है) इस वाक्य में मन से शरण ग्रहण होने के कारण शारीरिक व्यापार नहीं है, अतः उपर्युक्त सूत्र की प्राप्ति हुयी, अपितु 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति कर्म होकर 'मनसा हरिं व्रजति' वाक्य सिद्ध हो जाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'चेष्टायाः प्रतीत्यभावात्' 'मनसा हरिं व्रजति' इस प्रयोग में चतुर्थी नहीं हुई। **अतः विकल्प (D) सही है।**

स्रोत- वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (भाग-2), गोविन्दाचार्य, पेज 276

97. ''त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञो अध्ययनं दानम् इति''- इत्युक्तिः कस्याम् उपनिषदि लभ्यते?

(A) तैत्तिरीयोपनिषदि (B) छान्दोग्योपनिषदि
(C) बृहदारण्यकोपनिषदि (D) ऐतरेयोपनिषदि

व्याख्या- छान्दोग्योपनिषद्- यह सामवेदीय उपनिषद् है, इसमें आठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में अनेक खण्ड हैं।

रैक्व द्वारा अध्यात्म शिक्षा, सत्यकाम जाबाल की कथा, महर्षि आरुणि द्वारा अपने पुत्र श्वेतकेतु को अद्वैतवाद का उपदेश, ऋषि सनत्कुमार द्वारा नारद को उपदेश आदि विषय प्रतिपादित हैं।

छान्दोग्य की प्रमुख सूक्तियाँ-

- ''त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति''
धर्म के तीन स्कन्ध (आधारस्तम्भ) हैं- यज्ञ, अध्ययन और दान। (छान्दोग्य 2.23.1)
- ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' (3.14.1)
यह सारा जगत् निश्चय ब्रह्म ही है।
- ''तत्त्वमसि (6.16.3)
वही (ब्रह्म) तू है।
- ''ओङ्कार एवेदं सर्वम् (3.14.1)
ओङ्कार ही यह सब कुछ है।

➢ **तैत्तिरीयोपनिषद्-** कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयशाखा से सम्बद्ध है। इस उपनिषद् में तीन वल्लियाँ हैं- 1. शीक्षावल्ली 2. ब्रह्मानन्दवल्ली 3. भृगुवल्ली।

सूक्तियाँ- सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म (2.1.1)
ब्रह्म सत्य ज्ञान और अनन्त है।

- अन्नं न निन्द्यात् (3.7.1) अन्न की निन्दा न करें।
- रसो वै सः (2.7.1) वह रस ही है।

➢ **बृहदारण्यकोपनिषद्-** यह शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध है। इसमें 6 अध्याय है।

सूक्तियाँ- असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मुझे असत्य से सत् की ओर ले जाओ। मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाओ। (1.3.28)

- अहं ब्रह्मास्मि
मैं ब्रह्म हूँ। (1.4.10)
- नेह नानास्ति किञ्चन (4.4.19)
ब्रह्म को मन से ही देखना चाहिए, इसमें नाना कुछ भी नहीं है।
- नेति नेति (4.5.3)

➢ **ऐतरेयोपनिषद्-** यह ऋग्वेद से सम्बद्ध उपनिषद् है। इसमें तीन अध्याय हैं।

सूक्तियाँ- परोक्षप्रिया इव हि देवाः (ऐतरेय 1.3.14)
देवगण परोक्षप्रिय ही होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ''त्रयो धर्मस्कन्धाः...'' यह सूक्ति छान्दोग्योपनिषद् में है। **अतः विकल्प (B) सही है।**
स्रोत- ईशादि नौ उपनिषद्

98. अथर्ववेदीयकृषिसूक्तस्य द्रष्टा ऋषिः कः?
(A) मधुच्छन्दा (B) भिक्षुः
(C) विश्वामित्रः (D) बुधः

व्याख्या-
- **अथर्ववेद का अर्थ-** 'अथर्वों का वेद' अर्थात् अभिचार मन्त्रों से सम्बन्धित ज्ञान।
- अथर्ववेद योग-साधना, चित्तवृत्तिनिरोध, ब्रह्म की प्राप्ति आदि विषयों से सम्बद्ध वेद माना जाता है।
- अथर्ववेद को 'साहित्य समाज का दर्पण' कहा जाता है।
- अथर्ववेद में समाज से सम्बन्धित रीति-रिवाज, जादू-टोना, कर्मकाण्ड आदि का भी वर्णन प्राप्त होता है।
- अथर्ववेद को 'आंगिरस वेद' तथा 'अथर्वाङ्गिरस वेद' भी कहते हैं। इसमें मंत्रों की संख्या 1772 है। अथर्ववेद की 9 शाखाओं का उल्लेख मिलता है।

अथर्ववेदीय कुछ प्रमुख सूक्त

सूक्त	ऋषि	देवता	मन्त्र
कृषिसूक्त	विश्वामित्र	सीता	09
पृथ्वीसूक्त	अथर्वा	भूमि	63
कालसूक्त	भृगु	काल	10
राष्ट्राभिवर्धनसूक्त	वशिष्ठ	ब्रह्मणस्पति	06
विवाहसूक्त	सावित्री	सूर्य, आत्मा, सोम, विवाह	64
रोहितसूक्त	ब्रह्मा	अध्यात्म, रोहित, अग्नि, मरुत, आदित्य	60

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अथर्ववेदीय कृषिसूक्त के द्रष्टा ऋषि विश्वामित्र हैं। **अतः विकल्प (C) सही है।**
स्रोत- अथर्ववेद- (भाग-1), पेज-126

99. अधोङ्कितेषु समुचितं विकल्पं चिनुत-
(A) जीवाजीवास्रवबन्धसम्वरनिर्जरमोक्षास्तत्त्वानि- सौत्रान्तिकाः
(B) भावनाभिर्भावितानि पञ्चभिः पञ्चधाक्रमात्, महाव्रतानि- व्यासभाष्यम्
(C) तत्र जीवा द्विविधाः संसारिणो मुक्ताश्च- आर्हताः
(D) स्यान्नास्ति चावक्तव्यः- वैभाषिकाः

व्याख्या-
- माधवाचार्य कृत सर्वदर्शनसंग्रह के आर्हत दर्शन के प्रकरण में जैनदार्शनिकों के सात तत्त्वों का उल्लेख किया गया है- 'जीवाजीवास्रवबन्धसम्वरनिर्जरमोक्षास्तत्त्वानि'
जैन दार्शनिक सात तत्त्वों का वर्णन करते हैं- 1. जीव 2. अजीव 3. आस्रव 4. बन्ध 5. संवर 6. निर्जरा और 7. मोक्ष- ये सात तत्त्व हैं।
- जैन दर्शन के सप्तभङ्गीनय को सर्वदर्शनसंग्रह में इस प्रकार वर्णन किया गया है-
  1. स्यादस्ति- किसी प्रकार है।
  2. स्यान्नास्ति- किसी प्रकार नहीं है।
  3. स्यादस्ति च नास्ति च- किसी प्रकार है और नहीं है।
  4. स्यादवक्तव्यः- किसी प्रकार अवर्णनीय है।
  5. स्यादस्ति चावक्तव्यः- किसी प्रकार है और अवर्णनीय है।
  6. स्यान्नास्ति चावक्तव्यः- किसी प्रकार नहीं है, और अवर्णनीय है।
  7. स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः- किसी प्रकार है, नहीं हैं और अवर्णनीय है।
- आर्हतदर्शन में जैनों के पञ्चमहाव्रतों की चर्चा की गयी है-
भावनाभिर्भावितानि पञ्चभिः पञ्चधा क्रमात् ।
महाव्रतानि लोकस्य साधयन्त्यव्ययं पदम् ॥
पाँच भावनाओं के द्वारा पाँच प्रकार से क्रमशः भावित ये अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह- पञ्च महाव्रत संसार के अक्षय (स्थायी) पद की सिद्धि करते हैं।
- आर्हतदर्शन में जीव दो प्रकार के बताये गये हैं-
''तत्र जीवा द्विविधाः संसारिणो मुक्ताश्च''
जीव दो प्रकार के हैं- संसारी और मुक्त।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'तत्र 'जीवा द्विविधाः संसारिणो मुक्ताश्च' यह कथन आर्हतदर्शन का है। **अतः विकल्प (C) सही है।**
स्रोत- सर्वदर्शनसंग्रह-उमाशंकर शर्मा ऋषि, पेज 146,135,130

100. योगदर्शने सर्वा चित्तभूमयः काः?
(A) निद्रा, तन्द्रा, प्रमादः, मोदः, दुःखम्
(B) क्षिप्तम्, मूढम्, विक्षिप्तम्, एकाग्रम्, निरुद्धम्
(C) क्षिप्तम्, प्रक्षिप्तम्, मूढम्, विमूढम्, सम्मूढम्
(D) स्मृतिः, विस्मृतिः, निरुद्धम्, एकाग्रम्, मोहः

व्याख्या- महर्षि पतञ्जलि योगसूत्र में ''अथ योगानुशासनम्'' इस प्रथम सूत्र के द्वारा ग्रन्थ का प्रारम्भ करते हैं। यहाँ 'अथ' शब्द अधिकार वाचक है- 'अर्थत्ययमधिकारार्थः....' इसी सूत्र के व्यासभाष्य में भाष्यकार चित्त की पाँच भूमियों (अवस्थाओं) की चर्चा करते हैं-

पाँच चित्तभूमियाँ- 'क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं, निरुद्धमिति चित्तभूमयः' क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध-चित्त की ये पाँच भूमियाँ होती हैं।

पाँच चित्तवृत्तियाँ- 'प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः'

1. प्रमाण 2. विपर्यय 3. विकल्प 4. निद्रा 5. स्मृति। ये पाँच प्रकार की चित्तवृत्तियाँ होती हैं। (1/6)

पञ्चक्लेश- 'अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।'

1. अविद्या 2. अस्मिता 3. राग 4. द्वेष 5. अभिनिवेश। ये पाँच प्रकार के क्लेश होते हैं।

अष्टाङ्गयोग- 'यमनियमाऽऽसनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि'। (2/29)

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। ये आठ प्रकार के योग के अङ्ग बताये गये हैं।

पाँच यम- 'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः'

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। ये पाँच प्रकार के यम बताये गये हैं। (2/30)

पाँच नियम- 'शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः'। (2/32) शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान। ये पाँच नियम कहे जाते हैं।

संयम- 'त्रयमेकत्र संयमः।'

धारणा, ध्यान, समाधि ये तीन प्रकार संयम के बताये गये हैं। (3/4)

क्रियायोग- 'तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।'

तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान ये तीन प्रकार क्रियायोग के बताये गये हैं। (2/1)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध- ये पाँच चित्तभूमियाँ हैं। **अतः विकल्प (B) सही है।**

स्रोत- पातञ्जलयोगदर्शन - सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, पेज- 01, 06

उत्तरमाला

1.C	2.A	3.A	4.C	5.A	6.D	7.B	8.D	9.D
10.B	11.B	12.C	13.C	14.D	15.A	16.D	17.C	18.B
19.C	20.D	21.C	22.B	23.B	24.A	25.D	26.A	27.D
28.C	29.C	30.C	31.A	32.A	33.A	34.C	35.D	36.A
37.A	38.B	39.D	40.A	41.B	42.C	43.D	44.B	45.C
46.C	47.A	48.A	49.C	50.D	51.C	52.C	53.C	54.C
55.D	56.D	57.D	58.C	59.A	60.C	61.C	62.A	63.D
64.C	65.B	66.D	67.D	68.A	69.A	70.C	71.D	72.B
73.D	74.B	75.B	76.A	77.C	78.D	79.B	80.A	81.A
82.B	83.D	84.B	85.A	86.B	87.A	88.D	89.A	90.B
91.C	92.D	93.A	94.B	95.B	96.D	97.B	98.C	99.C
100.B								

4	जुलाई 2018	NTA UGC–NET/JRF संस्कृतम्	प्रश्नपत्रम् II

1. शांखायन-शाखायाः सम्बन्धः वर्तते?
(A) अथर्ववेदेन (B) ऋग्वेदेन
(C) सामवेदेन (D) कृष्णयजुर्वेदेन

व्याख्या-

वेद -	**शाखायें**
ऋग्वेद-	(1) शाकल (2) बाष्कल (3) आश्वलायन (4) शांखायन (5) माण्डूकायन
शुक्लयजुर्वेद-	(1) माध्यन्दिन या वाजसनेयि शाखा (2) काण्व शाखा
कृष्णयजुर्वेद-	(1) तैत्तिरीय शाखा (2) मैत्रायणी शाखा (3) कठ शाखा (4) कपिष्ठल शाखा
सामवेद-	(1) कौथुमीय (2) राणायनीय (3) जैमिनीय शाखा
अथर्ववेद-	(1) पैप्पलाद (2) तौद (3) मौद (4) शौनकीय (5) जाजल (6) जलद (7) ब्रह्मवद (8) देवदर्श (9) चारणवैद्य

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शांखायन शाखा का सम्बन्ध ऋग्वेद से है। **अतः विकल्प B सही है।**
स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 09

2. 'द्राह्यायणश्रौतसूत्रम्' कस्य वेदस्य विद्यते?
(A) अथर्ववेदस्य (B) कृष्णयजुर्वेदस्य
(C) ऋग्वेदस्य (D) सामवेदस्य

व्याख्या-
वेद श्रौतसूत्र वर्ण्य विषय

ऋग्वेद- (1) आश्वलायन श्रौतसूत्र,लेखक- आश्वलायन,अध्याय-12
(2) शांखायन श्रौतसूत्र, लेखक-सुयज्ञशांखायन, अध्याय-18
शुक्लयजुर्वेद (1) कात्यायन श्रौतसूत्र, लेखक-कात्यायन, अध्याय-30
कृष्णयजुर्वेद (1) बौधायन श्रौतसूत्र, लेखक-बौधायन, अध्याय-30
(2) आपस्तम्ब श्रौतसूत्र, लेखक-आपस्तम्ब, अध्याय-30
(3) सत्याषाढ या हिरण्यकेशी प्रश्न (अध्याय)-24
(4) वैखानस श्रौतसूत्र, लेखक- विखनस, अध्याय-32
(5) भारद्वाज श्रौतसूत्र, लेखक-भारद्वाज, प्रश्न (अध्याय)-15
(6) वाधूल श्रौतसूत्र, लेखक- वाधूल, प्रपाठक (अध्याय)-15
(7) वाराह श्रौतसूत्र, लेखक- वाराह, अध्याय-3 (संबद्ध मैत्रायणी शाखा)
(8) मानव श्रौतसूत्र (मैत्रायणी शाखा), 5 भाग 11 अध्याय
सामवेद (1) आर्षेय कल्प या मशक कल्पसूत्र, रचयिता- मशक ऋषि भाग-दो (1-आर्षेयकल्प, 2-क्षुद्रकल्प), अध्याय-11
(2) लाट्यायन श्रौतसूत्र, प्रपाठक (अध्याय)-10, सूत्र-2641
(3) द्राह्यायण श्रौतसूत्र (अन्यनाम-छान्दोग्य सूत्र, प्रधान सूत्र और वशिष्ठ सूत्र), पटल (अध्याय)-31
(4) जैमिनीय श्रौतसूत्र, रचयिता- जैमिनि मुनि, खण्ड-3,अध्याय-18
अथर्ववेद (1) वैतान श्रौतसूत्र, अध्याय-8, कंडिकाएँ-43

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि द्राह्यायण श्रौतसूत्र का संबन्ध सामवेद से है। **अतः विकल्प D सही है।**
स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 10

3. एतद्वचो जरितर्मापिमृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि- इति मन्त्रांशो वर्तते?
(A) पुरूरवा-उर्वशीसूक्ते (B) सरमा-पणिसूक्ते
(C) विश्वामित्र-नदीसूक्ते (D) यम-यमीसूक्ते

व्याख्या- पुरूरवा-उर्वशी संवाद- ऋषि-पुरूरवा और उर्वशी, छन्द-त्रिष्टुप् देवता-पुरूरवा ऐल, उर्वशी, स्वर-धैवत।
इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायुं चिन्तयन्त धुनयः।। (3)
*** विश्वामित्र-नदीसूक्ते-** एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि। उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते।।
नोट- वेद- ऋग्वेद, सूक्त त्रयस्त्रिंशत्, मण्डलम्- तृतीय, छन्द- त्रिष्टुप्- अनुष्टुप्, ऋषि-विश्वामित्र गाथिन्, देवता-नदी।
*** यम-यमी संवाद सूक्तः-** उशन्ति घाते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य। नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः।। (3)

नोट- देवता-यम, वैवस्वती यमी, ऋषि-वैवस्वती, यमः वैवस्वतः, स्वर-धैवत।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि दिया गया मन्त्र विश्वामित्र-नदी संवाद सूक्त से लिया गया है।

अतः विकल्प C सही है।

स्रोत- ऋग्वेद (3.33.8) - सत्यवीर शास्त्री, पेज 413

4. अधस्तनेषु उचितं सम्बन्धयुतं विकल्पं चिनुत?

(A) यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य- इन्द्रदेवता

(B) राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्- विष्णुसूक्तम्

(C) विश्वं प्रतीची सप्रथः उदस्थात्- सवितृसूक्तम्

(D) अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् - रुद्रदेवता

व्याख्या- यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः। युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः (मन्त्र.6)

अनुवाद- जो समृद्धशाली व्यक्ति को प्रेरणा देने वाला है, जो निर्धन को प्रेरणा देने वाला है, जो याचना करने वाले और स्तुति करने वाले ब्राह्मण को प्रेरणा देने वाला है और सुन्दर ठोड़ी वाला, जो व्याभिषव करने के लिए पत्थरों को उद्यत किये हुए सोमरस को निचोड़ने वाले यजमान की रक्षा करता है, हे असुरों! वही इन्द्र है।

(2) राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।
वर्धमानं स्वे दमे।। (अग्नि सू.-8)

अनुवाद- प्रकाशमान होते हुए, हिंसारहित यज्ञों के रक्षक, सत्यकर्मफलों को पुनः-पुनः प्रकाशित करने वाले और अपने गृह यज्ञशाला में बढ़ने वाले (अग्नि के समीप हम जाते हैं)।

(3) अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वान्तः समुद्रे।।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि।। (वाक् सू.-7)

अनुवाद- इस ब्रह्म के शिरःस्थानीय द्युलोक को अथवा इस ब्रह्म के सिर पर आकाश को मैं उत्पन्न करती हूँ समुद्र अर्थात् परमात्मा में जो अणु अर्थात् व्यापनशील बुद्धियाँ हैं, उनमें मेरा ही कारण है। अथवा समुद्रों में, जलों में मैं ही कारणरूप से विद्यमान हूँ। अथवा समुद्र या अन्तरिक्ष और जलशरीर देवों में कारण हूँ। इसलिए सम्पूर्ण भुवनों अर्थात् पञ्चमहाभूतों में प्रविष्ट होकर मैं ही उनको विविध रूपसे व्याप्त किये हुए हूँ और इस द्युलोक को मैं सर्वत्र व्यापक होते हुए अपने कारणभूत शरीर से स्पर्श कर रही हूँ।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि दिये गये विकल्पों में विकल्प A में सूक्त एवं देवता उचित रूप से संबद्ध है।

अतः विकल्प A सही है।

स्रोत- ऋग्वेद (2.12.6)-सत्यवीर शास्त्री, पेज 323

5. यो वाघते ददाति सूनरं वसु-अत्र 'वाघते' पदस्य कोऽर्थः?

(A) यज्ञकर्त्रे (B) राज्ञे

(C) बाधकाय (D) सूर्याय

व्याख्या-

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के चालीसवें सूक्त में कण्व ऋषि बृहस्पति देवता की स्तुति करते हुये इस मन्त्र को उद्धृत करते हैं-

यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः।
तस्मा इलां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम्।। (1.40.4)

अनुवाद- जो मनुष्य ऋत्विक् के ग्रहण योग्य धन दान करता है, वह अक्षय अन्न प्राप्त करता है। उसके लिए हम लोग इला के पास याचना करते हैं। इडा सुवीरा है, वह शत्रु का हनन करती है। उन्हें कोई नहीं मार सकता।

सायणभाष्य में 'वाघते' पद के विषय में बताया गया है-

यः यजमानः वाघते ऋत्विजे सूनरं सुष्ठु नेतव्यं वसु धनं ददाति।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि वाघते पद का अर्थ यज्ञकर्त्रे है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- ऋग्वेद (1.40.4)

6. नामाख्याताभ्यां वियुक्ताः अपि उपसर्गाः वाचकाः भवन्तीति कः मन्यते?

(A) वार्ष्यायणिः (B) शाकटायनः

(C) गार्ग्यः (D) कौत्सः

व्याख्या-

यास्क विरचित निरुक्त में पदों का चार प्रकार से विभाजन किया गया है- नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात।

➢ **आख्यात-** 'भावप्रधानमाख्यातम्' भवतीति भावः अर्थात् भाव या क्रिया की जिसमें प्रधानता होती है उसे 'आख्यात' पद कहते हैं। जैसे- आस्ते, शेते, व्रजति, तिष्ठतीति।

➢ **नाम-** 'सत्त्वप्रधानानि नामानि' सत्त्व अर्थात् द्रव्य की प्रधानता जिसमें होती है उसे नाम पद कहते हैं। जैसे गौरश्वः पुरुषो हस्तीति।

➢ **उपसर्ग-** उपसर्गों की संख्या 22 है इन उपसर्गों का अपना अर्थ होता है या नहीं इस विषय में दो मत पाए जाते हैं प्रथम पक्ष उपसर्गों को द्योतक मानता है।

➢ द्योतक पक्ष में **'न निर्बद्धा उपसर्गा अर्थान्निराहुरिति शाकटायनः नामाख्यातयोस्तु कर्मोपसंयोगद्योतका भवन्ति'** अर्थात् नाम और आख्यात से अलग करके वाक्य में प्रयुक्त किए हुए उपसर्ग अर्थों को निश्चित रूप से नहीं कहते हैं। नाम और

आख्यात के अर्थ को उनके साथ मिलकर द्योतन करने वाले होते हैं, यह शाकटायन का मत है। द्योतक पक्ष में उपसर्गों का अपना अर्थ नहीं होता है वे जिसके साथ मिलते हैं उसके अर्थ में विशेषता का बोध कराते हैं।

➢ द्योतक पक्ष का खण्डन करते हुए आचार्य गार्ग्य उपसर्गों को वाचक मानते हैं **'उच्चावचाः पदार्था भवन्तीति गार्ग्यः'** अर्थात् इन उपसर्गों के भी उच्चावच अर्थात् नाना प्रकार के शब्द नाना प्रकार के इस अर्थ में प्रयुक्त होते हैं इसलिए इनका जो अर्थ होता है वह नाम तथा आख्यात से अलग प्रयुक्त होने पर भी नाम तथा आख्यात के अर्थ में परिवर्तन करने वाले उस अर्थ को उपसर्ग कहते ही हैं – यह गार्ग्य का मत है। इस पक्ष में उपसर्गों का अपना अर्थ होता है और वे उस अर्थ के वाचक होते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि नाम और आख्यात से अलग होने पर भी उपसर्ग वाचक (अपने अर्थ को कहने वाले) होते हैं यह मत गार्ग्य का है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि नामाख्याताभ्यां वियुक्तः गार्ग्यः मन्यन्ते। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- निरुक्त - छज्जूराम शास्त्री, पेज 11

7. वेदेष्वेव प्रयुज्यते प्रत्ययः?

(A) अध्यै (B) तुमुन्
(C) क्त्वा (D) क्त

व्याख्या-

तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में इस प्रत्यय के अतिरिक्त से, सेन्, असेन्, क्से, क्सेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवेङ्, तवेन् ये 15 प्रत्यय किये जाते हैं। से, सेन् असेन् (आने के लिए) असे, असेन्, जीवसे (जीने के लिए) क्से क्सेन् श्रियसे (आश्रय पाने के लिए) अध्यै, अध्यैन्, उपाचरध्यै (आचरण करने के लिए। कध्यै, कध्यैन्- आहुवध्यै (आवाहन के लिए) शध्यै, शध्यैन्- पिबध्यै (पीने के लिए)। तवै-पातवै (पिलाने के लिए)। तवेङ् -सूतवे (उत्पन्न करने के लिए) गन्तवे (जाने के लिए)।

तुमुन् प्रत्यय- पठ्+तुमुन्- पठितुम्, गम्+तुमुन् गन्तुम्, भव्+तुमुन-भवितुम् आदि।

क्त्वा प्रत्यय- गम्+क्त्वा-गत्वा, पठ्+क्त्वा- पठित्वा, भू+क्त्वा-भूत्वा, पा+क्त्वा-पीत्वा आदि।

क्त प्रत्यय- पठ्+क्त- पठितः, लिख्+क्त- लिखितः, गम्+क्त-गतः आदि।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'अध्यै' प्रत्यय केवल वेद में प्रयुक्त होता है और तुमुन्, क्त्वा और क्त प्रत्यय लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त होते हैं। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह- हरिदत्त शास्त्री, भू. पेज 32

8. 'यस्मान्न ऋते विजयन्ते' इत्यत्र 'यस्मात्' पदेन कः ग्रह्यते?

(A) विष्णुः (B) रुद्रः
(C) इन्द्रः (D) वरुणः

व्याख्या-

ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के बारहवें सूक्त में ऋषि गृत्समद इन्द्र देवता की स्तुति करते हुये यह मन्त्र उद्धृत करते हैं-

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः॥
(2.12.9)

अर्थ- जिस इन्द्र के बिना मनुष्य विजय को प्राप्त नहीं करते, युद्ध करते हुये सैनिक अपनी रक्षा के लिए जिसका आह्वान करते हैंः जो सम्पूर्ण जगत् का प्रतिनिधि या रक्षक है, जो क्षयरहित पर्वतों का भी विनाश करने वाला है अथवा अचल को भी बनाने वाला है, हे असुरों! वही इन्द्र है।

सायणभाष्य- यस्मादृते जनासो जनाः न विजयन्ते विजयं न प्राप्नुवन्ति। अतः युध्यमानाः युद्धं कुर्वाणा जना अवसे स्वरक्षणाय यमिन्द्रं हवन्ते आह्वयन्ति।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'यस्मान्न ऋते...' मन्त्र में 'यस्मात्' पद का अर्थ 'इन्द्र' है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह (2.12.9)- हरिदत्त शास्त्री, पेज 186

9. 'ऋग्वेदस्य' कस्मिन् मण्डले 'विश्वामित्रनदीसंवादसूक्तम्' विद्यते?

(A) द्वितीये (B) दशमे
(C) तृतीये (D) अष्टमे

व्याख्या-

मण्डल	सूक्त	संवाद
1. ऋग्.10	95	पुरूरवा-उर्वशी संवाद
2. ऋग्. 10	10	यम-यमी संवाद
3. ऋग्. 10	108	सरमा-पणि संवाद
4. ऋग्. 3	33	विश्वामित्र- नदी संवाद
5. ऋग्. 1	165	इन्द्र-मरुत् संवाद
6. ऋग्. 1	179	अगस्त्य-लोपामुद्रा संवाद
7. ऋग्. 7	83	वशिष्ठ-सुदास संवाद
8. ऋग्. 10	86	इन्द्र-इन्द्राणी वृषाकपि संवाद

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि ऋग्वेद के तृतीय मण्डल में विश्वामित्रनदी संवाद सूक्त है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 57

10. परिशिष्टभागमतिरिच्य निरुक्ते कति अध्यायाः सन्ति?

(A) सप्त (B) द्वादश

(C) पञ्च (D) चतुर्दश

व्याख्या-

यास्क के निरुक्त में कुल 12 अध्याय हैं। अन्त में परिशिष्ट के रूप में 2 अध्याय हैं। इस प्रकार यह 14 अध्यायों में विभक्त है। किन्तु प्रश्न में परिशिष्ट को छोड़कर अध्यायों की संख्या पूछी गई है। अतः प्रश्नानुसार उत्तर 2 (द्वादश अध्यायः) सही है।

निरुक्त का वर्ण्य विषय अध्यायवार

अध्याय 1- निघण्टु नाम, आख्यात आदि चार पदविभाग, शब्दनित्यता का विवेचन, षड्भाव-विकार, उपसर्गों का अर्थ विवेचन, सभी नाम धातुज हैं – इसका प्रतिपादन, मन्त्रों की सार्थकता का प्रतिपादन, अर्थज्ञान का महत्त्व।

अध्याय 2 और 3- नैघण्टुककाण्ड। अध्याय 2 के प्रारंभ में निर्वचन और वर्ण परिवर्तन आदि से संबद्ध भाषाशास्त्रीय विवेचन।

अध्याय 4 से 6- नैगम काण्ड या ऐकपदिक काण्ड। इन तीन काण्डों में वेदों के निघंटु में पठित कठिन शब्दों की सोदाहरण व्याख्या।

अध्याय 7 से 12- दैवतकाण्ड। इन अध्यायों में देवतावाचक शब्दों की विस्तृत व्याख्या। द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी- स्थानीय देवों का विवेचन।

अध्याय 13 और 14- इनमें निर्वचन-प्रक्रिया, सृष्टि-उत्पत्ति तथा दार्शनिक महत्त्व के अनेक विषयों का विवेचन है।

➢ **निघण्टु और निरुक्त-** यास्क का निरुक्त वस्तुतः निघंटु ग्रन्थ की व्याख्या या भाष्य है। निघण्टु वैदिक शब्दों का संकलन है। इसमें 5 अध्याय हैं तथा कुल संग्रहीत शब्दों की संख्या 1768 है। निघण्टु में अध्यायवार शब्दों की संख्या- प्रथम अध्याय- 414 शब्द, द्वितीय अध्याय- 514 शब्द, तृतीय अध्याय-410 शब्द, चतुर्थ अध्याय- 279 शब्द तथा पञ्चम अध्याय-151 शब्द। निघंटु के रचयिता प्रजापति कश्यप हैं।

➢ **निरुक्त के टीकाकार-** निरुक्त की सम्प्रति 3 टीकाएँ उपलब्ध हैं- 1- दुर्गाचार्य की टीका- ऋज्वर्थ-वृत्ति

2- स्कन्द माहेश्वर की टीका लाहौर से प्रकाशित हुई

3- वररुचि की टीका- निरुक्त-निचय।

निरुक्त के प्रतिपाद्य विषयः-

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च, द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्॥

संक्षेप में निरुक्त के प्रतिपाद्य विषय 5 बताए गये हैं-

(1) वर्णागम-विचार (2) वर्ण विपर्यय-विचार, (3) वर्ण विकार-विचार, (4) वर्णनाश- विचार, (5) धातुओं का अनेक अर्थों में प्रयोग।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि परिशिष्ट भाग को छोड़कर निरुक्त में बारह अध्याय हैं। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 204

11. 'प्रचोदयात्' इति कस्मिन् लकारे रूपमस्ति?

(A) लिङ् (B) लोट्

(C) लृट् (D) लेट्

व्याख्या-

ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के बासठवें सूक्त के दसवें मन्त्र में विश्वामित्र ऋषि सवितृ देवता की स्तुति के सन्दर्भ में इस मन्त्र का उल्लेख करते हैं-

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। (ऋ. 3.62.10)

जो सविता हम लोगों की बुद्धि को प्रेरित करता है, सम्पूर्ण श्रुतियों में प्रसिद्ध उस द्योतमान जगत्स्रष्टा परमेश्वर के संभजनीय पर ब्रह्मात्मक तेज का हम लोग ध्यान करते हैं।

सायणभाष्य में भी प्रचोदयात् के विषय में कहा गया है कि

प्रचोदयात् चोदयतेर्लेटि आडागमः यद्वृत्तयोगादनिघातः आगमस्यानुदात्तत्वे णिचः स्वरः।

उपर्युक्त पंक्ति से यह सिद्ध होता है कि 'प्रचोदयात्' में लेट्लकार का प्रयोग हुआ है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'प्रचोदयात्' शब्द में लेट्लकार का प्रयोग किया गया। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- ऋग्वेद (3.62.10)- राम गोविन्द त्रिवेदी, पेज 346

12. 'स जातो अत्यरिच्यत'-इत्यत्र 'स' पदेन कः गृह्यते?

(A) इन्द्रः (B) पुरुषः

(C) प्रजापतिः (D) विष्णुः

व्याख्या-

इन्द्रः - ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के 12वें सूक्त इन्द्रसूक्त के प्रथम मंत्र– 'नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः.....।।' (महती सेना के महत्त्व से युक्त वह ही इन्द्र है।) इसी प्रकार सायणभाष्य में भी लिखा है- ''नृम्णस्य सेनालक्षणस्य बलस्य मह्न महत्त्वेन युक्तः स इन्द्रो, नाहमिति।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि इस मन्त्रांश में सः पद का अर्थ 'इन्द्र' है।

पुरुषः ऋग्वेद के 10/90 सूक्त 5वें मन्त्र – 'स जातो अत्यरिच्यत.....।।' (अर्थात् उस आदि पुरुष से विराट् (ब्राह्मण देह, व्यक्त जगत्) उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण देह का आश्रय लेकर उससे पुरुष (जीवात्मा) उत्पन्न हुआ। वह उत्पन्न होते ही सबसे आगे बढ़ गया अर्थात् पशु, पक्षी, मनुष्य आदि के रूप में चेतनता को प्राप्त करके अन्य जगत् से बढ़कर था। पश्चात् उस पुरुष ने भूमि और शरीरों को बनाया।

इसी प्रकार सायण भाष्य में लिखा है-''स जातो विराट्पुरुषोऽत्यरिच्यत अतिरिक्तोऽभूत्।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि यहाँ सः पद आदि पुरुष का सूचक है।

हिरण्यगर्भ (प्रजापतिः- ऋग्वेद के 10वें मण्डल 121वें सूक्त के मंत्र संख्या 1 के मंत्रांश ''स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां......।।'' (वह (प्रजापति) पृथ्वी और द्युलोक को धारण किये हुए हैं।) सायणभाष्य में लिखा है- ''स हिरण्यगर्भः पृथिवीं विस्तीर्णां द्यां दिवमुत......।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रस्तुत मन्त्रांश में 'सः' पद हिरण्यगर्भ (प्रजापति) का द्योतक है।

विष्णुः ऋग्वेद के 9वें मण्डल 154वें सूक्त के 5वें मन्त्र के मंत्रांश- 'उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था' (परम पराक्रम वाले अथवा महान् दुर्गों वाले सर्वव्यापक विष्णु के परम स्थान में मधुर अमृत का स्रोत है। इस प्रकार से वह विष्णु निश्चय ही सबका बन्धु है। अतः स्पष्ट है कि प्रस्तुत मंत्रांश में सः पद विष्णु का द्योतक है।

अग्निः - ऋग्वेद के मण्डल 1, सूक्त संख्या 1 के मन्त्र संख्या 2, के ''मंत्रांश स देवाँ एह वक्षति।।'' (वह (अग्नि) इस यज्ञ में (हविष) देवताओं को प्राप्त करावे। इस मंत्रांश में 'सः' पद अग्नि का द्योतक है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि- 'स जातो अत्यरिच्यत' इस मंत्राश में 'सः' पद पुरुष का वाचक है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह (ऋग्वेद 10.90.5)-हरिदत्त शास्त्री, पेज 396

13. Vedic Grammar- **इत्याख्यस्य ग्रन्थस्य प्रणेता वैदेशिको विद्वान् कः?**

(A) एच.टी. कोलब्रुक (B) एफ॰मैक्समूलरः
(C) ए. मैकडानलः (D) एच. विल्सनः

व्याख्या- (1) एच.टी. कोलब्रुक- एच.टी. कोलब्रुक ने 1805ई. में एशियाटिक रिसर्चेज में On the vedas वेद विषयक लेख लिखकर पाश्चात्त्य जगत् का ध्यान वेदों की ओर आकृष्ट किया।

(2) एफ. मैक्समूलरः- मैक्समूलर ने सर्वप्रथम सायण भाष्य सहित ऋग्वेद का संपादन 1849 से 1875 के मध्य लगभग 27 वर्षों में किया। इन्होंने ऋग्वेद के प्रसिद्ध सूक्तों के अनुवाद एवं व्याख्या पर एक संकलन Vedic Hymns निकाला। इसके अलावा History of the Ancient Sanskrit Literature नामक वैदिक साहित्य का इतिहास पर एक पुस्तक का प्रकाशन 1859 ई. में किया।

(3) ए. मैकडॉनल- मैकडॉनल ने वैदिक व्याकरण पर दो ग्रन्थ लिखे- (क) Vedic Grammar (ख) Vedic Grammar for Students तथा लौकिक संस्कृत व्याकरण पर एक ग्रन्थ- Sanskrit Grammar for Students दिया। मैकडानल वस्तुतः वैदिक संस्कृत के पाणिनि हैं। मैकडॉनल ने Vedic Mythology (वैदिक देवशास्त्र) ग्रन्थ 1897 में प्रकाशित किया। वैदिक साहित्य का इतिहास पर एक ग्रन्थ History of Sanskrit Literature सन् 1900 में प्रकाशित हुआ।

(4) एच. विल्सन- एच. विल्सन ने सबसे पहले पूरे ऋग्वेद का अंग्रेज़ी में अनुवाद 1850 हमें प्रकाशित किया। यह सायण भाष्य पर आधारित है।

स्पष्टीकरण- उपरोक्त व्याख्या के आधार पर मैकडॉनल के Vedic Grammar प्रणेता हैं। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 36

14. सामवेदीयाः षड्ज-मध्यम-पञ्चमस्वराः कतमे त्रैस्वर्यस्वरे अन्तर्भवन्ति?

(A) अनुदात्ते (B) स्वरिते
(C) प्रचये (D) उदात्ते

व्याख्या-

मूल स्वर तीन हैं- उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। इनमें से उदात्त स्वर उच्च ध्वनि या तीव्र स्वर के लिए था, अनुदात्त निम्न या हल्के स्वर के लिए और स्वरित इन दोनों के मध्यगत स्वर के लिए था। इन तीन मूल स्वरों के आधार पर ही षड्ज आदि लौकिक स्वरों का विकास हुआ। नारदीय शिक्षा और पाणिनीय शिक्षा के अनुसार उदात्त आदि से इन लौकिक स्वरों का विकास हुआ।

उदात्ते निषादगान्धारौ अनुदात्ते ऋषभधैवतौ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यम-पंचमाः॥ (पा.शि. 12)

मूलस्वर	लौकिक स्वर
(1) उदात्त	निषाद, गान्धार
(2) अनुदात्त	ऋषभ, धैवत
(3) स्वरित	षड्ज, मध्यम, पञ्चम

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सामवेदीय षड्ज-

मध्यम- पञ्चमस्वराः स्वरिते अन्तर्भवन्ति। **अतः विकल्प B सही है।**
स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 93

15. बृहती-छन्दसि अक्षराणां संख्या विद्यते?
(A) 48 (B) 28
(C) 36 (D) 32

व्याख्या-

छन्दस् (छन्द) शब्द छद् (ढँकना) धातु से बना है। यास्क ने निरुक्त (7.12) में छन्दस् का निर्वचन दिया है। 'छन्दांसि छादनात्' अर्थात् छन्द भावों को आच्छादित करके उसे समष्टि रूप प्रदान करता है। कात्यायन ने सर्वानुक्रमणी (12.6) में छन्द का लक्षण दिया है- ''यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः'' जिसमें वर्णों या अक्षरों की संख्या निर्धारित होती है उसे छन्द कहते हैं। ऋग्वेद में 20 छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनमें से केवल 7 छन्द ही मुख्य रूप से प्रयुक्त हैं –

प्रमुख छन्द एवं उनके अक्षरों की संख्याः-

क्रम स०	छन्द	अक्षर	
1.	गायत्री	24	छन्द में अक्षरों का कम या अधिक होना- इसके लिए ये पारिभाषिक शब्द हैं
2.	उष्णिक्	28	एक अक्षर कम-निचृत्।
3.	अनुष्टुप्	32	एक अक्षर अधिक-भुरिक्।
4.	बृहती	36	दो अक्षर अधिक-स्वराट् जैसे- दो अक्षर कम-विराट् गायत्री के 3 पाद में 24 अक्षर होते हैं। 23 अक्षर होने पर- निचृत्
5.	पंक्ति	40	गायत्री। 25 अक्षर होने पर- भुरिक् गायत्री। 22 अक्षर होने पर- विराट्
6.	त्रिष्टुप्	44	गायत्री। 26 अक्षर होने पर- स्वराट् गायत्री।
7.	जगती	48	

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'बृहती' छन्द में अक्षरों की संख्या 36 होती है। **अतः विकल्प C सही है।**
स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 203

16. दर्शपौर्णमासेष्टियागे अनुयाजानां संख्या विद्यते?
(A) पञ्च (B) त्रयः
(C) एकादश (D) अष्ट

व्याख्या-

दर्शपौर्णमास यागः- दर्शपौर्णमास नाम के याग अमावस्या और पूर्णिमा को क्रमानुसार करना चाहिये। अमावस्या और पूर्णिमा में अनुष्ठान होने से ही इन कर्मों का दर्शपौर्णमास यह नाम पड़ा। यद्यपि 'दर्शपौर्णमासौ' यहाँ पर द्विवचन ही सर्वत्र पाया जाता है। पूर्णमासी के दिन अग्नि के लिए आठ कपालों में संस्कृत पुरोडाश का याग, अग्नीषोम के लिये घृत का उपांशुयाग और अग्नीषोम के लिए एकादश कपाल पुरोडाशयाग– ये तीन याग होते हैं। अमावस्या के दिन अग्नि के लिए पुरोडाशयाग एक, इन्द्र के लिए दधियाग दूसरा और इन्द्र के लिए दुग्ध का याग तीसरा– यों तीन याग होते हैं। दोनों में मिलाकर कुल छः याग होते हैं-

दर्शपौर्णमास याग के पदार्थः- पाँच प्रयाज, दो आज्यभाग, अन्वाहार्य, दक्षिणा, तीन अनुयाज, प्रधान याग, शंयुवाक, व्यूहन, सूक्त-वाक्, पत्नीसंयाज, दक्षिणाग्निहोम, बहिर्होम, प्रणीताविमोक आदि विष्णुक्रमादि, यजमान कर्म, व्रतविसर्ग, ब्राह्मणभोजन आदि। ये दर्शपौर्णमास जीवनभर करने चाहिये। यदि जीवनभर करने की शक्ति ना हो तो तीस वर्ष तक करके बन्द कर दें।

प्रयाज- जिनसे देवताओं का प्रकृष्ट रूप से यजन होता है वे प्रयाज कहलाते हैं।

अन्वाहार्य- यज्ञ में हुए दोषों को जो दूर करता है वह अन्वाहार्य है- ऋत्विक् के भोजन योग्य भात।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि दर्शपौर्णमास याग में तीन अनुयाजों की संख्या प्राप्त होती है। **अतः विकल्प B सही है।**
स्रोत- श्रौतयज्ञ परिचय- वेणीराम शर्मा गौड़, पेज 8-14

17. वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वयाः- इत्यत्र 'नु' विद्यते?
(A) उपमार्थीयः (B) हेत्वपदेशार्थीयः
(C) अनुप्रश्नार्थीयः (D) अवकुत्सार्थीयः

व्याख्या-

निरुक्तकार आचार्य यास्क ने चतुर्विध पदों का उल्लेख किया है- ''चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्च'' [निरुक्त1.1] अर्थात् चार प्रकार के पद होते हैं– नाम अर्थात् सञ्ज्ञा, आख्यात अर्थात् क्रियापद, उपसर्ग और निपात अर्थात् अव्यय। इनमें से निपात विविध अर्थों में प्रयुक्त हुआ करते हैं [उच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्ति। निरुक्त 1.2] इसीलिए इन्हें निपात कहा गया। इनमें से कुछ निपात उपमार्थक होते हैं, जैसे- इव, न, चित्, नु। कुछ अर्थोपसंग्रह में प्रयुक्त होते हैं,जैसे- च, आ, वा, उ, हि इत्यादि। कुछ निपात पादपूर्ति के लिए प्रयोग में आते हैं, जैसे- सीम्, इत्, उ इत्यादि। किन्तु ये सभी निपात अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। जैसे कि 'नु' अनेकार्थक है [नु

इत्येषोऽनेककर्मा।।1.2।।]। यह निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है-

1. हेत्वपदेश अर्थात् हेतुकथन- इदं नु करिष्यति (इस कारण इस कार्य को करेगा।)

2. अनुप्रश्न अर्थात् किसी बात पर सन्देह व्यक्त करते हुए प्रश्न करना, जैसे- कथं नु करिष्यति? अरे! तू कहता तो है कि वह इस कार्य को करेगा, पर करेगा कैसे?- यही अनुप्रश्न है। इसी अर्थ में 'ननु' भी आता है।

3. उपमा अर्थ में- ''वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वयाः'' हे इन्द्र! वृक्ष की शाखाओं की भाँति तेरी रक्षाएँ चारों ओर फैली हैं। यहाँ नु उपमार्थक है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रश्नगत 'नु' निपात उपमार्थक है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- निरुक्तम् - आचार्य विश्वेश्वर, पेज 47

18. 'नियतवाचोयुक्तयो नियतानुपूर्व्या भवन्ति'- इति कथनं वर्तते?

(A) शाकटायनस्य (B) औदुम्बरायणस्य
(C) गार्ग्यस्य (D) कौत्सस्य

व्याख्या-

आचार्य यास्क ने निरुक्त के प्रथम अध्याय के पञ्चम पाद में निरुक्तशास्त्र के प्रयोजन के विषय में चर्चा की है। उन्होंने बताया कि इस निरुक्त के बिना मन्त्रों का अर्थज्ञान नहीं होता। अर्थ को जाने बिना मनुष्य को स्वर और व्याकरण प्रक्रिया का यथावत् ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए यह निरुक्त व्याकरण का ज्ञान कराने वाला और वेदार्थ ज्ञान में सहायक है। [अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते। अर्थमप्रतियतो नात्यन्तं स्वरसंस्कारोद्देशः। तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्यं स्वार्थसाधकं च ।। 1.5] इस पर प्रतिपक्षी आचार्य कौत्स ने कहा कि यदि यह निरुक्त मन्त्रों के अर्थज्ञान के लिए है तो यह व्यर्थ ही है क्योंकि मन्त्र तो निरर्थक होते हैं। [यदि मन्त्रार्थप्रत्ययाय, अनर्थकं भवति इति कौत्सः। अनर्थका हि मन्त्राः।। 1.5] तब कौत्स ने यह सिद्ध करने के लिए कि मन्त्र निरर्थक होते हैं, विविध तर्क दिए। जिनमें से पहला तर्क दिया कि मन्त्र निश्चित शब्दों की रचना वाले और निश्चित क्रम वाले होते हैं [नियतवाचोयुक्तयो नियतानुपूर्व्या भवन्ति। 1.5] अर्थात् लौकिक भाषा की तरह इन मन्त्रों में हम जरा भी उलटफेर नहीं कर सकते और न इनके शब्दों की जगह इनके पर्याय रख सकते हैं। ''अग्न आयाहि वीतये'' में ''आगच्छ विभावसो!'' पर्याय और क्रम नहीं बदल सकते।

2. औदुम्बरायणः शब्द के नित्यत्व और अनित्यत्व के सम्बन्ध में यास्क ने इनका मत उद्धृत किया है। ये शब्द को अनित्य मानते हैं और कहते हैं कि शब्द उच्चारण के पश्चात् नष्ट हो जाता है- ''इन्द्रियनित्यं वचनमौदुम्बरायणः।''

3. शाकटायनः ''न निर्बद्धा उपसर्गा अर्थान्निराहुरिति शाकटायनः'' अर्थात् नाम और आख्यात से अलग हुए उपसर्ग स्वतन्त्र अर्थों को नहीं कहते- ऐसा शाकटायन आचार्य का मत है।

4. गार्ग्यः ''उच्चावचाः पदार्था भवन्ति इति गार्ग्यः।'' उपसर्गों के अनेक प्रकार के अर्थ हुआ करते हैं अर्थात् स्वतन्त्ररूप से भी उपसर्ग सार्थक हैं- यह गार्ग्य का मत है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रश्नगत उद्धरण कौत्स का वचन है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- निरुक्तम् - आचार्य विश्वेश्वर, पेज 98

19. ऋक्संहितायाः समुपलब्धभाष्येषु प्रथमो भाष्यकारः विद्यते?

(A) सायणः (B) आनन्दतीर्थः
(C) स्कन्दस्वामी (D) वेङ्कटमाधवः

व्याख्या-

(1) **सायणः-** सायण के पिता- मायण

माता	-	श्रीमती
बड़े भाई-	-	माधव
छोटे भाई-	-	भोगनाथ
गुरु-	-	श्रीकण्ठ
मृत्यु-	-	1387ई.

इन्होंने सर्वप्रथम कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीयसंहिता पर भाष्य लिखा। तदनंतर ऋग्वेद की शाकल संहिता, शुक्लयजुर्वेद की काण्व संहिता, सामवेद की कौथुम-संहिता ओर अथर्ववेद की शौनक संहिता पर भाष्यों की रचना की।

(2) आनन्दतीर्थः- काल-1255 से 1335, अपर नाम- मध्व। इन्होंने ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 40 सूक्तों पर भाष्य लिखा। इन्होंने वेद का प्रतिपाद्य नारायण को माना।

(3) स्कन्दस्वामी- निवासी- गुजरात की राजधानी वलभी पिता-भर्तृध्रुव। ऋग्वेद के भाष्यकारों में स्कन्दस्वामी सबसे प्राचीन हैं। स्कन्दस्वामी ने 600 से 625 के मध्य ऋग्वेद पर भाष्य लिखा। स्कन्दस्वामी का यह भाष्य केवल चतुर्थ अष्टक तक ही प्राप्त है। इसके अतिरिक्त इन्होंने यास्क के निरुक्त पर टीका भी लिखी।

(4) वेङ्कटमाधवः- पितामह- माधव, पिता- वेङ्कट, नाना-

भवगोल, माता- सुन्दरी, भाई- संकर्षण, पुत्र- वेङ्कट तथा गोविन्द। साम्बशिव शास्त्री ने इनका समय 1050-1150ई. के मध्य माना। इनका भाष्य अत्यन्त संक्षिप्त है। इसमें मन्त्रों के पदों की ही व्याख्या है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ऋक्संहिता के उपलब्ध भाष्यों में प्रथम भाष्यकार स्कन्दस्वामी जी हैं। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 22

20. ऋक्प्रातिशाख्यस्य पटलसंख्या कियती?

(A) 16 (B) 14
(C) 12 (D) 18

व्याख्या-

वर्तमान में उपलब्ध प्रातिशाख्य ग्रन्थों की संख्या 5 है-

(1) ऋक्प्रातिशाख्य (2) अथर्ववेदप्रातिशाख्य
(3) तैत्तिरीयप्रातिशाख्य (3) सामप्रातिशाख्य
(5) वाजसनेयिप्रातिशाख्य

(1) ऋक्प्रातिशाख्य- रचियता- महर्षि शौनक, काल- 800ई.पू.-600ई.पू. के मध्य ऋक्प्रातिशाख्य में कुल तीन अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में 6 पटल हैं। इस प्रकार कुल 18 पटल हैं। प्रत्येक पटल वर्गों में विभाजित है। प्रत्येक वर्ग में सामान्यतः 5 श्लोक हैं।

(2) तैत्तिरीयप्रातिशाख्य- कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध यह प्रातिशाख्य 2 खण्डों में विभक्त है। प्रत्येक खण्ड में 12 अध्याय और कुल 24 अध्याय हैं।

(3) वाजसनेयिप्रातिशाख्य- शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयि संहिता से संबद्ध वाजसनेयि प्रातिशाख्य है। इस प्रातिशाख्य की रचना महर्षि शौनक के शिष्य कात्यायन ने की है। वाजसनेयि प्रातिशाख्य में कुल 18 अध्याय तथा प्रत्येक अध्याय में 169 सूत्र हैं।

(4) अथर्ववेदप्रातिशाख्य- अथर्ववेद से संबद्ध दो प्रातिशाख्य ग्रन्थ प्रकाशित हैं- एक विश्वबन्धुशास्त्री द्वारा पंजाब विश्वविद्यालय ग्रन्थमाला से 1923 ई. में प्रकाशित हुआ, दूसरा ग्रन्थ डॉ. ह्विटनी द्वारा 1862 ई. में शौनकीया चतुरध्यायिका के नाम से प्रकाशित है। इसमें कुल 4 अध्याय हैं।

(5) सामप्रातिशाख्य- सामवेद से सम्बद्ध तीन प्रातिशाख्य प्रकाशित हैं।

(क) सामतन्त्र, इसके रचयिता औद्व्रजि हैं।

(ख) पुष्पसूत्र, इसकी रचना पुष्प ऋषि द्वारा की गई। सामवेदीय सर्वानुक्रमणी के अनुसार पुष्पसूत्र की रचना वररुचि ने की। इसमें कुल 10 प्रपाठक या अध्याय हैं।

(ग) ऋक्तन्त्र, इसके रचयिता आचार्य शाकटायन हैं। इसमें कुल 5 प्रपाठक और 200 सूत्र हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ऋक्प्रातिशाख्य में पटलों की संख्या 18 है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास (खण्ड 2), पेज 13

21. अथर्ववेदेन सम्बद्धा शिक्षा का वर्तते?

(A) लोमशी शिक्षा (B) माण्डूकी शिक्षा
(C) गौतमी शिक्षा (D) केशवी शिक्षा

व्याख्या-

वेदों से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ

वेद	**शिक्षाग्रन्थ**
ऋग्वेद	पाणिनीय शिक्षा, स्वराङ्कुशा, षोडशश्लोकी, शैशिरीय, आपिशलि शिक्षा
यजुर्वेद (शुक्लयजु.)	याज्ञवल्क्य शिक्षा, वासिष्ठी शिक्षा, कात्यायनी, पाराशरी, माध्यन्दिनी शिक्षा आदि।
कृष्णयजुर्वेद	भारद्वाज शिक्षा, व्यास शिक्षा, शम्भु शिक्षा, कोहलीय, सर्वसम्मत, आरण्य, सिद्धान्त शिक्षा आदि।
सामवेद	गौतमी शिक्षा, लोमशी शिक्षा, नारदीय शिक्षा
अथर्ववेद	माण्डूकी शिक्षा

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अथर्ववेद की माण्डूकी शिक्षा है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास (द्वितीय खण्ड), भू. पेज 55

22. 'शिवसंकल्पसूक्तम्' माध्यन्दिनसंहितायां कस्मिन् अध्याये समुपलभ्यते?

(A) षोडशे (B) चतुस्त्रिंशे
(C) एकत्रिंशे (D) चत्वारिंशे

व्याख्या-

यजुर्वेदीय माध्यन्दिनसंहिता का अध्यायवार वर्ण्यविषय

अध्याय	**वर्ण्य विषय**
1 और 2	इसमें दर्श और पौर्णमास से संबद्ध यज्ञों का वर्णन है।
3	अग्निहोत्र और चातुर्मास्य इष्टियों का वर्णन

4-8	अग्निष्टोम और सोमयाग का वर्णन
9-10	इसमें वाजपेय और राजसूय यज्ञों का वर्णन है।
11-18	इसमें अग्निचयन और विविध प्रकार की वेदियों के निर्माण से संबद्ध मन्त्र हैं।
19-21	सौत्रामणी याग का विधान
22-25	अश्वमेध यज्ञ का विस्तृत वर्णन (अध्याय 24 जन्तु विज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसमें सैकड़ों पशु-पक्षियों का उल्लेख है।)
26-29	इन अध्यायों को खिल अध्याय कहते हैं। इनमें पूर्वोक्त यागों से संबद्ध नवीन मंत्र हैं।
30	इसमें पुरुषमेध का वर्णन।
31	इसे पुरुषसूक्त और विष्णुसूक्त भी कहते हैं। इसमें विराट् पुरुष के स्वरूप का वर्णन है।
32	इसमें विराट् पुरुष के दार्शनिक और आध्यात्मिक स्वरूप का वर्णन है।
33	सर्वमेध सूक्त
34	इसमें प्रारंभ के 6मन्त्र 'शिवसंकल्प उपनिषद्' कहे जाते हैं।
35	इसमें पितृमेध का वर्णन है।
36-38	इनमें प्रवर्ग्यनामक यज्ञ से संबद्ध मंत्र हैं।
39	इसमें अन्त्येष्टि से संबद्ध मन्त्र हैं, इसे प्रायश्चित्ताध्याय भी कहते हैं।
40	इसे ईशोपनिषद् और ईशावास्योपनिषद् कहते हैं। यह अध्याय यजुर्वेद का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अध्याय है। इसे उपनिषदों में प्रथम स्थान प्राप्त है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शिवसंकल्पसूक्त माध्यन्दिन संहिता के 34वें अध्याय (चतुस्त्रिंशे) में है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 75

23. भर्तृहरिदिशा को ब्रह्मामृतमश्नुते?

(A) शब्द प्रवृत्तितत्त्वज्ञः
(B) पञ्चविंशतितत्त्वज्ञः
(C) प्रमाणादिषोडशपदार्थ निष्णातः
(D) याज्ञिकः

व्याख्या- आचार्य भर्तृहरि ने वाक्यपदीयम् के ब्रह्मकाण्ड में बतलाया है कि शब्द का सम्यक् ज्ञान ही ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय है और शब्द के तत्त्व का ज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति का साधन है।

तस्माद्यः शब्दसंस्कारः सा सिद्धिः परमात्मनः।
तस्य प्रवृत्तितत्त्वज्ञः तद्ब्रह्मामृतमश्नुते॥ (कारिका 133)

अर्थात् शब्द की प्रवृत्ति (षड्भावविकार रूपी) को जो भलीभाँति जानता है वही उपनिषद् में वर्णित अमृत ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

2. पञ्चविंशतितत्त्वज्ञः- साङ्ख्यशास्त्र में 25 तत्त्वों का वर्णन मिलता है। इन 25 तत्त्वों के सम्यक् ज्ञान से पुरुष को कैवल्य प्राप्त होता है- यह साङ्ख्यमत है।

3. प्रमाणादिषोडशपदार्थ निष्णातः- न्यायशास्त्र के अनुसार प्रमाणादि 16 पदार्थों के सम्यक् ज्ञान से निःश्रेयस् की प्राप्ति होती है- यह गौतम ऋषि प्रणीत न्यायसूत्र के प्रथम सूत्र में कहा गया है (प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्त-सिद्धान्तावयवतर्क-निर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः।।)। अतः यह न्यायशास्त्र का मत है।

4. याज्ञिकः- पूर्वमीमांसक यज्ञ को ही धर्म मानते हैं और उसी से कल्याण की प्राप्ति बतलाते हैं।

'यागादिरेव धर्मः' (अर्थसङ्ग्रह, लौगाक्षिभास्कर)।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भर्तृहरि के मत में शब्दप्रवृत्तितत्त्वज्ञ ब्रह्मामृत को प्राप्त करता है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- वाक्यपदीयम् (1.133)-जयदत्त उप्रेती, पेज 89

24. परेषामसमाख्येयं मणिरूप्यादिविज्ञानं भर्तृहरिदिशा कस्माज्जायते?

(A) शाब्दात् (B) अनुमानाद्
(C) अभ्यासाद् (D) उपमानात्

व्याख्या-

वाक्यपदीयकार महावैयाकरण भर्तृहरि पाँच प्रमाण मानते हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, अभ्यास और अदृष्ट। इनमें से अभ्यास नामक प्रमाण को भर्तृहरि पृथक् प्रमाण इसलिए मानते हैं क्योंकि मणि आदि के मूल्यों के तारतम्य का जो ज्ञान है वह दूसरों को बताया नहीं जा सकता किन्तु अभ्यास से ही होता है-

परेषामसमाख्येयमभ्यासादेव जायते।
मणिरूप्यादिविज्ञानं तद्विदां नानुमानिकम्॥ (कारिका35)

अर्थात् लौकिक मणि और गिन्नी आदि के मूल्य के तारतम्य का

ज्ञान जानकार स्वर्णकारों को ही होता है। वे इसे चाहने पर भी नहीं बता सकते। क्योंकि किसी वस्तु की विशेषता का ज्ञान तो अभ्यास से ही होता है। इस अभ्यास से होने वाले ज्ञान को अनुमान नहीं कहा जा सकता।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मणिरूप्यादि का मूल्यज्ञान इत्यादि भर्तृहरि के मत में 'अभ्यास' नामक प्रमाण से होता है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- वाक्यपदीयम् (कारिका 35)-जयदत्त उप्रेती, पेज 25

25. 'एध्' धातोः लुङ्लकारे प्रथमपुरुषबहुवचने कः प्रयोगः?

(A) ऐधन्त (B) ऐधिष्ट

(C) ऐधिषत (D) ऐधत

व्याख्या-

एध् लङ्लकार		
एकव०	**द्विव०**	**बहुव०**
प्र०पु०- ऐधत	ऐधेताम्	ऐधन्त
म०पु०- ऐधथाः	ऐधेथाम्	ऐधध्वम्
उ०पु०- ऐधे	ऐधावहि	ऐधामहि
लुङ्लकार		
ऐधिष्ट	ऐधिषाताम्	ऐधिषत
ऐधिष्ठाः	ऐधियाथाम्	ऐधिढ्वम्
ऐधिषि	ऐधिष्वहि	ऐधिष्महि
लट्लकार		
एधते	एधेते	एधन्ते
एधसे	एधेथे	एधध्वे
एधे	एधावहे	एधामहे
लृट्लकार		
एधिष्यते	एधिष्येते	एधिष्यन्ते
एधिष्यसे	एधिष्येथे	एधिष्यध्वे
एधिष्ये	एधिष्यावहे	एधिष्यामहे

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त धातु रूपों को देखने से स्पष्ट होता है कि 'एध्' धातोः लुङ्लकारे प्र॰पु॰बहुवचनरूपम् 'ऐधिषत' भवति। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी - गोविन्दाचार्य, पेज 495

26. 'लोटो लङ्वत्' इति सूत्रप्रवृत्तिः कस्मिन् प्रयोगे जाता?

(A) अभवः (B) भवाम

(C) भवेताम् (D) अभविष्यत्

व्याख्या- लोटो लङ्वत्॥3।4।85॥ प्रकृत सूत्र कहता है कि लोट् लकार लङ् के समान होता है। लङ्लकार में ङकार की इत्सञ्ज्ञा होने से यह ङित् है, इसी प्रकार लोट्लकार टित् है। अतः जो कार्य लङ् में ङित् होने से स्वतः प्रवृत्त नहीं हो रहे थे अतः पाणिनि ने यह सूत्र बनाया। लोट्लकार को भी लङ् की भाँति ङित् माना जाए जिससे ङित् मानकर होने वाले सभी कार्य प्रवृत्त हो जाएँ।

1. अभवः- भू धातु से 'अनद्यतने लङ्' से लङ्लकार, अडागम, अनुबन्धलोप, उसके स्थान पर मध्यमपुरुष का एकवचन सिप् आदेश, अनुबन्धलोप, सार्वधातुक सञ्ज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होकर 'अभव+सि' बना। इकार का 'इतश्च' से लोप होकर 'अभवस्' बना। सकार का रुत्वविसर्ग होकर 'अभवः' सिद्ध हुआ।

2. भवाम- भू धातु से लोट्लकार, उसके स्थान पर उत्तमपुरुष बहुवचन मस् आया 'आडुत्तमस्य पिच्च' से आट् का आगम हुआ- 'भू+आ मस्' बना। सार्वधातुक संज्ञा, शप्, गुण, अवादेश होकर 'भव आमस्' बना। 'भव+आमस्' में 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घादेश होकर 'भवामस्' बना, सकार का 'नित्यं ङितः' से लोप हुआ, 'भवाम' सिद्ध हुआ। लोट्लकार का रूप होने से ये सभी कार्य "लोटो लङ्वत्" सूत्र के बल से होते हैं।

3. भवेताम्- भू धातु, विधिलिङ्लकार, प्रथमपुरुष द्विवचन में भू+तस्। 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' से 'भू+ताम्', सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, धातु को गुण, अवादेश-'भव+ताम्', यासुट् का आगम- 'भव+यास्+ताम्'- "अतो येयः" से यास् = इम्, 'भव+इय्+ताम्', गुण='भवेय ताम्' 'लोपो वयोर्वलि' से यलोप=भवेताम्।

4. अभविष्यत्- भू धातु लृङ्लकार, प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'लोटो लङ्वत्' सूत्र 'भवाम' प्रयोग में प्रयुक्त होता है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी (3.4.85) - गोविन्दाचार्य, पेज 401

27. 'महद् यशो यस्य सः' इति विग्रहे बहुव्रीहिसमासे कः प्रयोगः?

(A) महायशः (B) महायशसः

(C) महायशाः (D) महायशष्कः

व्याख्या-

लौकिक विग्रह- महद् यशः यस्य सः = महायशस्को महायशाः (बड़े यश वाला) अलौकिक विग्रह- महत् सुँ यशस् सुँ।

यहाँ दोनों पद अन्य पदार्थ को विशिष्ट कर रहे हैं अतः 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से इन का बहुव्रीहि समास हो जाता है।

समास में विशेषण का पूर्वनिपात, समास की प्रातिपदिक सञ्ज्ञा तथा 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिक के अवयव सुँपों का लुक करने पर- महत्+यशस्।

पुनः ''आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः'' सूत्र द्वारा महत् के तकार को आकार आदेश होकर सवर्णदीर्घ हो जाता है- महा-यशस्। इस बहुव्रीहिसमास से किसी सूत्र द्वारा किसी समासान्त का विधान नहीं किया गया अतः यह शेषबहुव्रीहि है।

* इस शेषबहुव्रीहि से प्रकृत 'शेषाद्विभाषा' सूत्र द्वारा विकल्प से समासान्त कप् प्रत्यय हो जाता है।

कप् पक्ष में 'महायशस्+क' इस स्थिति में 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' सूत्र द्वारा पदसञ्ज्ञा के कारण 'ससजुषो रुः' से पदान्त सकार को रुँ आदेश तथा 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से रेफ् को विसर्ग आदेश हो जाता है- महायशः+क।

'सोऽपदादौ' से विसर्ग को सकार आदेश करने पर-'महायशस्क'। अब विशेष्यानुसार विभक्ति लाकर 'महायशस्कः' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

* जिस पक्ष में समासान्त कप् प्रत्यय नहीं होता वहाँ विभक्ति लाकर पुंलिङ्ग में 'वेधस्' शब्द की तरह प्रक्रिया होती है।

महायस्+सुँ- 'यहाँ अत्वसन्तस्य चाऽधातोः' से उपधादीर्घ, हल्ङ्याब्भ्यो॰ से अपृक्त सकार का लोप तथा प्रकृति के सकार को रुत्वविसर्ग करने पर 'महायशाः' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार 'महायशस्कः' तथा महायशाः ये दो प्रयोग निष्पन्न होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'महद् यशो यस्य सः महायशाः' तथा 'महायशस्कः' का विग्रह हुआ।

अतः विकल्प C सही है।

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी - गोविन्दाचार्य, पेज 967

28. 'कुगतिप्रादयः' इति समासविधायकसूत्रस्य किमुदाहरणं नास्ति?

(A) पटपटाकृत्य (B) कुम्भकारः
(C) सुपुरुषः (D) हस्तेकृत्य

व्याख्या-'कुगतिप्रादयः' (2.2.18)- समर्थ सुबन्त शब्दों के साथ कुशब्द, गतिसञ्ज्ञक शब्द और प्र आदि का समास होता है।

पटपटाकृत्य- पटत् कृत्वा इस शब्द में पटत् से 'अव्यक्तानु-करणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्' सूत्र से डाच् प्रत्यय की विवक्षा में डाचि बहुलं द्वे भवतः से द्वित्व फिर टिलोप पररूप आदि कार्य तब 'पटपटा कृत्वा' – बना कृत्वा के योग में पटपटा की 'ऊर्यादिच्विडाचश्च' से गतिसञ्ज्ञा करने के बाद 'कुगति प्रादयः' इस सूत्र से समास होता है।

सुपुरुषः- 'शोभनः पुरुषः' लौकिक विग्रह तथा सु पुरुष सु अलौकिक विग्रह इस स्थिति में 'कुगति प्रादयः' से प्रादि सु के साथ समर्थ सुबन्त 'पुरुष सु' का समास हुआ।

हस्तेकृत्य- हस्ते कृत्वा में एकारान्त अव्यय हस्ते की **नित्यं हस्ते पाणावुपयमने (1.4.77)** इस सूत्र से गतिसञ्ज्ञा होने के बाद कुगतिप्रादयः इस सूत्र से समास होता है।

कुम्भकारः- 'कुम्भं करोति' लौकिक विग्रह तथ 'कुम्भ अम् कृ' इस अलौकिक विग्रह में कुम्भ शब्द से 'उपपदमतिङ्' (2.2.19) सूत्र से उपपद समास होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पटापटाकृत्य, सुपुरुषः तथा हस्ते कृत्य में कुगतिप्रादयः (2.2.18) से नित्य समास जबकि कुम्भकारः इस उदाहरण में 'उपपदमतिङ्' (2.2.19) से उपपद समास होता है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी - गोविन्दाचार्य, पेज 935

29. 'प्रगृह्यम्' इत्यत्र कः कृत्यप्रत्ययः?

(A) ण्यत् (B) यत्
(C) क्यप् (D) तव्यत्

व्याख्या-प्रगृह्यम् (प्रगृह्यते इति) प्र उपसर्गपूर्वक ग्रह धातु से **पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च**।। 3।1।119।। सूत्र से क्यप् प्रत्यय हुआ। तत्पश्चात् **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छ-तिभृज्जतीनां ङिति च**।।6.1.16।। सूत्र से ग्रह् के र् को सम्प्रसारण होकर ऋ हुआ = प्रगृह् + क्यप्। क्यप् के ककार की 'लशक्वतद्धिते' से और पकार की हलन्त्यम् से इत्सञ्ज्ञा होकर 'तस्य लोपः' से लोप हुआ- 'प्रगृह्य' बना, 'सामान्ये नपुंसकम्' से नपुंसकलिङ्ग की विवक्षा में प्रगृह्यम् रूप सिद्ध होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हुआ कि 'प्रगृह्यम्' में क्यप् नामक कृत्य प्रत्यय है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- अष्टाध्यायी (3.1.119)- ईश्वरचन्द्र, पेज 297

30. 'विद्वांसः सन्ति अस्मिन्' इति विग्रहे को मत्वर्थीयः प्रयोगः?

(A) विद्वद्वान (B) विदुष्मान्
(C) विद्वत्वान् (D) विद्वन्मान्

व्याख्या-तसौ मत्वर्थे (1.4.19)

तान्त-सान्तौ भसञ्ज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे। गरुत्मान्।

वसोः सम्प्रसारणम्- विदुष्मान्।

मतुँप् के अर्थ वाला कोई प्रत्यय परे हो तो तकारान्त और सकारान्त प्रातिपदिक भसंज्ञक हो जाते हैं।

जैसे- विद्वांसः सन्त्यस्य अस्मिन् वा विदुष्मान् (जिसके विद्वान् लोग हैं ऐसा वंश आदि अथवा जिसमें विद्वान् हैं ऐसा देश, प्रदेश आदि। विद्वस् + जस् - से सन्त्यस्य या सन्त्यस्मिन् अर्थों में 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुँप्' सूत्र से मतुँप् प्रत्यय होकर सुँब्लुक् करने से- विद्वस् + मत् 'तसौ मत्वर्थे' से पदसंज्ञा की अपवादभसंज्ञा के हो जाने से 'वसु-स्रंसु-ध्वंस्वनडुहां दः' द्वारा सकार को पदमूलक दत्व नहीं होता। पुनः 'वसोः सम्प्रसारणम्' से वसु के वकार की सम्प्रसारणम् उकार तथा 'सम्प्रसारणाच्च' से पूर्वरूप एकादेश करने पर
'विदुस् मत्' अन्त में 'आदेशप्रत्यययोः' से सकार को मूर्धन्य षकार का आदेशकर पूर्ववत् विभक्तिकार्य करने से 'विदुष्मान्' प्रयोग सिद्ध होता है।
इसी प्रकार- वपुष्मान्, आयुष्मान्, चक्षुष्मान्, ज्योतिष्मान्, धनुष्मान् आदि में भसंज्ञा के कारण रुँत्व नहीं होता।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि विदुष्मान् 'विद्वांसः सन्ति अस्मिन् मत्वर्थीय तद्धित प्रत्यय है। **अतः विकल्प B सही है।**
स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी - गोविन्दाचार्य, पेज 112

31. या स्वयमेवाध्यापिका सा किमुच्यते?
(A) उपाध्यायानी (B) उपाध्याया
(C) आचार्यानी (D) आचार्याणी

व्याख्या-
महर्षि पाणिनि अष्टाध्यायी के चतुर्थ अध्याय में स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ङीष्' प्रत्यय का विधान करने के लिए एक सूत्र लिखते हैं- ''इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमाऽरण्य-यव-यवन-मातुलाऽऽचार्याणाम् आनुँक्'' (4.1.49)
इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य- इन सभी बारह प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय तथा इन प्रातिपदिकों को 'आनुँक्' का आगम भी हो जाता है। जैसे- इन्द्राणी, वरुणानी, भवानी आदि।
इसी सूत्र में कात्यायन ने एक वार्तिक लिखा-
''मातुलोपाध्याययोरानुँग्वा''
मातुल और उपाध्याय इन दो प्रातिपदिकों से पुंयोग में स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय तो नित्य होता है परन्तु आनुँक् का आगम विकल्प से।
जैसे- (i) मातुलस्य स्त्री (पत्नी) मातुलानी (यहाँ ङीष् प्रत्यय के साथ आनुँक् का आगम हुआ है)
(ii) मातुलस्य स्त्री मातुली (यहाँ ङीष् प्रत्यय हुआ परन्तु आनुँक् का आगम नहीं हुआ)
इसी प्रकार- उपाध्यायस्य स्त्री =
(i) उपाध्याय+आनुँक्+ङीष्=उपाध्यायानी (उपाध्याय की पत्नी)
(ii) उपाध्याय+ङीष्= उपाध्यायी (उपाध्याय की पत्नी)
यहाँ प्रथम उदाहरण में आनुँक् का आगम हुआ है, दूसरे में नहीं।
विशेष नियम- यदि 'उपाध्यायस्य स्त्री' इसप्रकार पुंयोग विवक्षित न होगा अर्थात् कोई स्त्री स्वयं अध्यापिका होगी तो वहाँ ङीष् का विकल्प होगा अर्थात् टाप् प्रत्यय भी हो सकता है किन्तु आनुँक् की प्रवृत्ति नहीं होगी।
या तु स्वयमेव अध्यापिका तत्र वा ङीष् वाच्यः (सि.कौ.)
उपाध्याय + ङीष् = उपाध्यायी (स्वयं अध्यापिका)
उपाध्याय + टाप् = उपाध्याया (स्वयं अध्यापिका)
''आचार्यादणत्वं च'' आचार्य प्रातिपदिक से परे आनुँक् (आन्) के नकार को णकार नहीं होता।
जैसे- आचार्यस्य स्त्री = आचार्यानी (आचार्य की पत्नी)
यदि कोई स्त्री स्वयं व्याख्यायी' पण्डिता अध्यापिका होगी तो पुंयोग के अभाव में ''इन्द्र-वरुण-भव..'' सूत्र से ङीष् प्रत्यय और आनुक् न होकर ''अजाद्यतष्टाप्'' से टाप् प्रत्यय ही होगा। आचार्य + टाप् = आचार्या (स्वयं आचार्या)
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'या स्वयमेव अध्यापिका सा उपाध्याया अथवा आचार्या।
अतः विकल्प B सही है।
स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी - (भैमी व्याख्या, खण्ड 6), पेज 55

32. 'वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः' इत्यात्मनेपदविधायकसूत्रस्य सर्गार्थक-'क्रमधातोरुदाहरणं' चिनुत।
(A) अध्ययनाय क्रमते (B) ऋचि क्रमते बुद्धिः
(C) क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि (D) आक्रमते सूर्यः

व्याख्या-
वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः (1.3.38):- वृत्ति का अर्थ है- बिना व्यवधान के चलना। सर्ग का अर्थ है- उत्साह। तायन का अर्थ है- विस्तार। वृत्ति, सर्ग और तायन अर्थ गम्यमान होने पर क्रम धातु से आत्मनेपद होता है।
उदाहरण- (1) ऋचि क्रमते बुद्धिः-......वृत्ति अर्थ गम्यमान होने के कारण क्रम धातु से 'वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः' से आत्मनेपद होकर 'क्रमते' सिद्ध होता है। ऋग्वेद में इसकी बुद्धि का प्रतिबन्ध नहीं होता अर्थात् ऋग्वेद के अध्ययन में यह आगे चलता ही रहता है यहाँ अप्रतिबन्ध होने के कारण वृत्ति अर्थ है।
(2) अध्ययनाय क्रमते, उत्सहते- पढ़ने के लिए सदा उत्साहित रहता है। उत्साह को सर्ग कहते हैं। सर्ग अर्थ गम्यमान होने के

कारण क्रम् धातु से 'वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः' सूत्र से आत्मनेपद होकर क्रमते सिद्ध होता है।

(3) क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि- इस व्यक्ति में शास्त्र निरन्तर बढ़ते रहते हैं वृद्धि को तायन कहते हैं। 'तायृ सन्तानपालनयोः' धातु से तायन बना है सन्तान का अर्थ निरन्तर बढ़ते रहना है। तायन अर्थ गम्यमान होने के कारण क्रम् धातु से 'वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः' सूत्र से आत्मनेपद होकर क्रमते सिद्ध होता है।

आङ् उद्गमने (1.3.40)- ऊपर उठना अर्थ गम्यमान होने पर आङ् उपसर्ग से परे क्रम् धातु से आत्मनेपद होता है।

उदाहरण- आक्रमते सूर्यः- सूर्य ऊपर उठता है उदित होता है। यहाँ पर आङ्पूर्वक क्रम धातु है और ऊपर उठना अर्थ भी अतः आङ् उद्गमने सूत्र से आत्मनेपद का विधान हुआ।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'अध्ययनाय क्रमते' इस उदाहरण में 'वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः' सूत्र से सर्ग अर्थ में आत्मनेपद का विधान है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- अष्टाध्यायी (1.3.38) - ईश्वरचन्द्र, पेज 92

33. 'बोधयति पदम्' इत्यत्र परस्मैपदविधायकं किमस्ति पाणिनिसूत्रम्?

(A) विभाषाऽकर्मकात्
(B) निगरणचलनार्थेभ्यश्च
(C) बुध-युध-नश-जनेङ्-प्रु-द्रु-स्रुभ्यो-णेः
(D) अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्

व्याख्या-

अकर्मक उप उपसर्गपूर्वक 'रम्' धातु से परस्मैपद विकल्प से होता है। उदा॰- यावद् भुक्तम् उपरमति अपरमते वा (प्रत्येक भोजन से निवृत्त होता है)। अध्ययनाद् उपरमति उपरमते वा (अध्ययन से बचता है)।

निगरणचलनार्थेभ्यश्च- निगरण (निगलना) तथा चलन (चलना) अर्थ वाली ण्यन्त धातुओं से परस्मैपद होता है।

उदा॰- निगारयति, आशयति, भोजयति (भोजन कराता है)। चलयति, चोपयति (धीरे-धीरे चलता है), कम्पयति (कँपाता है)। 'चलयति' में 'घटादयो मितः' से मित् सञ्ज्ञा और 'मितां ह्रस्वः' से ह्रस्व होता है। ण्यन्त 'अद' (भक्षणार्थक) धातु से परस्मैपद नहीं होता है- जैसे- देवदत्तः अत्ति, देवदत्तेन अदायते।

बुधयुधनशजनेङ्प्रद्रुस्रुभ्यो णेः- बुध, युध, नश्, जन्, इङ्, प्रु, द्रु तथा स्रु इन ण्यन्त धातुओं से परस्मैपद होता है। उदा॰- पद्मं बोधयति (कमल को खिलाता है)। काष्ठानि योधयति। दुखं नाशयति (दुख का नाश करता है) सुखं जनयति (सुख को उत्पन्न करता है)।

अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्- अणौ= अण्यन्त अवस्था में चिन्तवत् =चेतन कर्तृकात् = कर्त्ता वाला। जो धातु अण्यन्त अवस्था में अकर्मक हो तथा साथ ही चेतन कर्त्ता वाला हो तो उससे ण्यन्त अवस्था में परस्मैपद होता है।

जैसे- (अण्यन्ते) आस्ते देवदत्तः (ण्यन्ते) आसयति देवतत्तः यहाँ देवदत्त (कर्त्ता) चेतन है तथा 'आस्' धातु अण्यन्त अवस्था में अकर्मक है। अतः णिजन्त दशा में परस्मैपद हो गया। इसी प्रकार 'शाययति' बनता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'बोधयति पद्मम्' यहाँ परस्मैपद विधायक सूत्र 'बुध-युधनशजनेङ्प्रद्रुस्रुभ्यो णेः' है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- अष्टाध्यायी (1.3.86) - ईश्वरचन्द्र, पेज 104

34. अधोलिखितानां केन सह कस्य सम्बन्धः इति समीचीनां तालिकां चिनुत।

(क)	अपवर्गे तृतीया	(i)	ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते।
(ख)	तथायुक्तं चाऽनीप्सितम्	(ii)	प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति।
(ग)	धारेरुत्तमर्णः	(iii)	क्रोशेन अनुवाकोऽधीतः।
(घ)	प्रतिनिधि-प्रतिदाने च यस्मात्	(iv)	भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः

Options

	(क)	**(ख)**	**(ग)**	**(घ)**
(A)	(iii)	(i)	(iv)	(ii)
(B)	(iii)	(ii)	(iv)	(i)
(C)	(ii)	(iii)	(i)	(iv)
(D)	(iv)	(ii)	(iii)	(i)

व्याख्या-

1- तथायुक्तं चानीप्सितम्:- ईप्सिततम के समान क्रिया से युक्त 'अनीप्सित' की भी कर्मसञ्ज्ञा होती है। कुछ पदार्थ कर्त्ता द्वारा अनीप्सित होते हुए भी क्रिया से ईप्सित के समान संयुक्त होते हैं। क्रिया से सटे हुए ऐसे अनीप्सित पदार्थों की भी ''तथायुक्तं चानीप्सितम्'' सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। यथा- 'ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते' (भात खाता हुआ विष खाता है।) इस वाक्य में कर्त्ता को खाने में ओदन (भात) ईप्सिततम है। विष कर्त्ता के लिए अनीप्सित अर्थात् द्वेष्य है लेकिन ओदन के साथ अनीप्सित विष की भी 'तथायुक्तं चानीप्सितम्' सूत्र से कर्मसंज्ञा तथा ''कर्मणि द्वितीया'' से द्वितीया विभक्ति हुई। इसी प्रकार 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' में भी तृण की कर्म संज्ञा हुई।

2- अपवर्गे तृतीया- अपवर्ग का अर्थ है क्रिया की समाप्ति होने पर फल की भी प्राप्ति। फल की प्राप्ति अर्थ के द्योतित होने पर काल और मार्गवाची शब्दों से अत्यन्त संयोग में तृतीया विभक्ति होती है। यथा- 'अह्ना क्रोशेन वा अनुवाकोऽधीतः' (दिन भर या कोश भर में अनुवाक पढ़ लिया।) इस वाक्य में दिन भर या कोश भर में अनुवाक पढ़ लिया गया और उसे याद भी कर लिया गया। अतः 'अपवर्गे तृतीया' सूत्र से कालवाचक 'अह्ना' (दिन) और मार्गवाचक 'क्रोशेन' में (कोश में) तृतीया विभक्ति हुई।

3- धारेरुत्तमर्णः- 'णिजन्त' 'धृ' धातु के योग में 'उत्तमर्ण' (महाजन) की सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा- भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः। (भक्त के लिए हरि मोक्ष के ऋणी हैं) इस वाक्य में णिजन्त 'धृ' धातु के योग में उत्तमर्ण भक्त की ''धारेरुत्तमर्णः'' सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा तथा ''चतुर्थी सम्प्रदाने'' सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होकर 'भक्ताय' बना।

4- प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्- प्रतिनिधि और प्रतिदान के अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञक प्रति के योग में जिसका प्रतिनिधित्व हो तथा जिससे प्रतिदान अर्थात् कोई चीज बदली जाय उससे पञ्चमी विभक्ति होती है।

यथा- ''प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति'' (प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि हैं) यहाँ 'प्रतिनिधि' अर्थ में 'प्रति' की 'प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः' सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई और 'प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्' सूत्र से प्रतिनिधि के अर्थ में प्रयुक्त प्रति के योग में कृष्णात् में पंचमी विभक्ति हुई। इसी प्रकार 'तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्' में भी तिलेभ्यः में पञ्चमी विभक्ति हुई।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि दिये गये विकल्पों में **विकल्प A सही है।**

स्रोत- कारकप्रकरण - राममुनि पाण्डेय, पेज 60,30, 68, 90

35. ''पराजेरसोढः'' इत्यनेन सूत्रेण कतमं कारकं भवति?

(A) अधिकरणम् (B) सम्प्रदानम्
(C) अपादानम् (D) करणम्

व्याख्या-1- अधिकरणम्- ''आधारोऽधिकरणम्'' आधार की अधिकरण संज्ञा होती है अर्थात् कर्त्ता और कर्म के द्वारा उसमें रहने वाले क्रिया के आधारभूत कारक की अधिकरण संज्ञा होती है। अर्थात् जो क्रिया का आधार हो उस कारक की अधिकरण संज्ञा हो।

2- सम्प्रदानम्- ''कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्''
दान के कर्म से जिसको चाहता है, उस की सम्प्रदान संज्ञा होती है। 'सम्यक् प्रदीयते अस्मै इति सम्प्रदानम्' इस व्युत्पत्ति में 'दा' धातु से दो उपसर्ग लगे हैं सम् और प्र। जिसे कोई वस्तु दी जाए और पुनः वापस न लिया जाए वह सम्प्रदान है।

3- अपादानम्- ''ध्रुवमपायेऽपादानम्''- अपाय (अलग होने) के अर्थ में ध्रुव (स्थिर) की अपादान संज्ञा होती है।

4- पराजेरसोढः- 'परा' (उपसर्ग) पूर्वक 'जि' धातु के योग में असह्य वस्तु की 'अपादान' संज्ञा होती है।
जैसे- 'अध्ययनात्पराजयते।' (अध्ययन से हार मान रहा है।)- जब किसी के लिए अध्ययन असह्य या कष्टकर हो गया है तो उपर्युक्त नियम से पराजयते के योग में अध्ययन की अपादान संज्ञा होती है और उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। इस उदाहरण का भाव है- अध्ययन से थक गया है।

5- करणम् ''साधकतमं करणम्''- क्रिया की सिद्धि में जो कारक सबसे अधिक सहायक होता है उसकी करण संज्ञा होती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'पराजेरसोढः' सूत्र से 'अपादान' कारक होता है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- कारकप्रकरण - राममुनि पाण्डेय, पेज 82

36. ''प्रातिपदिकम्'' इति संज्ञा केन सूत्रेण विधीयते?

(A) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा
(B) प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु
(C) ङ्याप्प्रातिपदिकात्
(D) अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्

व्याख्या-महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में प्रातिपदिकसञ्ज्ञा-विधायक दो सूत्रों का उल्लेख किया है-
1- अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्।। 1.।2।45।।
2- कृत्तद्धितसमासाश्च।। 1।2।46।।

1-अर्थवद ...अर्थवान्, धातुभिन्न, प्रत्ययभिन्न शब्द की प्रातिपदिकसञ्ज्ञा होती है। जैसे- 'पुरुष' शब्द अर्थवान् है, धातुभिन्न है, प्रत्ययभिन्न है अतः इसकी प्रातिपदिक संज्ञा है।

2- कृत्तद्धितसमासाश्च- कृदन्त, तद्धितान्त और समासयुक्त शब्दों की भी प्रातिपदिकसञ्ज्ञा होती है। जैसे- 'कृ+ण्वुल्' इस दशा में 'कारक' शब्द निष्पन्न होता है। ण्वुल् एक कृत् प्रत्यय है अतः 'कारक' शब्द कृदन्त होने से प्रातिपदिकसञ्ज्ञक हुआ।
'शाला+छ'- 'शालीय' तद्धित प्रत्ययान्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा हुई। इसी प्रकार औपगवः, वाचस्पत्यम् इत्यादि तद्धितान्त होने से प्रातिपदिकसञ्ज्ञक होते हैं।
राज्ञः पुरुषः- राजपुरुषः यहाँ समास होकर 'राजपुरुष' समस्तपद बना। इसकी प्रातिपदिक संज्ञा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से हुई।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' प्रातिपदिक संज्ञा का विधान करता है।

अतः विकल्प 'D' सही है।

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी - गोविन्दाचार्य, पेज 129

37. निम्नाङ्कितेषु 'प्रगृह्यम्' इति संज्ञाविधायकं सूत्रं किमस्ति?

(A) ओत्　(B) तरप्तमपौ घः

(C) तृतीयासमासे　(D) आद्यन्तवदेकस्मिन्

व्याख्या-

➢ **ओत्** (1.1.15)

अनुवृत्ति- निपातः, प्रगृह्यम्। अर्थ- 'येन विधिस्तदन्तस्य' के द्वारा तदन्तविधि होने से ओत् का अर्थ ओकारान्त (निपात) है। ओकारान्त निपात छः ही हैं। ओ, आहो, उताहो, हो, अहो व अथो। इनमें 'ओ' की प्रगृह्यसंज्ञा 'निपात एकाजनाङ्' से हो जाती है। शेष पाँच की प्रगृह्यसंज्ञा में प्रस्तुत सूत्र की उपयोगिता है।

सूत्रार्थ- ओकारान्त निपात की प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

उदाहरण- उताहो अनिष्टम्। उताहो असत्यम्। अहो अद्या शीतम् नो इदानीम्। अधो इति। अहो आश्चर्यम्। अहो ईशा।

➢ **आद्यन्तवदेकस्मिन्-** (1.120)

पद - आद्यन्तवत् अव्यय, एकस्मिन् (7.1) **सूत्रार्थ-** एक में भी आदिवत् तथा अन्तवत् कार्य होते हैं। उदाहरण- औपगवः, आभ्याम्।

➢ **तरप्तमपौ घः (1.121)**

पद- तरप्तमपौ (1.2) घः (1.1)

सूत्रार्थ- तरप् तथा तमप् - ये दो प्रत्यय घसंज्ञक होते हैं।

उदाहरण- कुमारितरा, कुमारितमाः, ब्राह्मणितरा, ब्राह्मणितमा।

➢ **तृतीया समासे (1.1.29)**

पद- तृतीया समासे (1.1)

अनुवृत्ति- सर्वादीनि-सर्वनामानि

अर्थ- तृतीया समासे का अर्थ है- तृतीया तत्पुरुष समास। इस सूत्र की प्रवृत्ति प्रतिपदोक्त तृतीया समास में ही होती है। 'कर्तृकरणे कृता बहुलम् आदि की दशा में यह निषेध नहीं होता है।

सूत्रार्थ- तृतीया तत्पुरुष समास में सर्वादिगण पठित शब्दों की सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है।

उदाहरण- मासपूर्वाय, द्व्यहपूर्वाय।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्रगृह्य संज्ञा विधायक सूत्र 'ओत्' है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी - गोविन्दाचार्य, पेज 77

38. 'ब्राह्मणेनावश्यं शब्दा ज्ञेयाः' कथनमिदं पतञ्जलिना कस्य व्याकरणप्रयोजनस्य विषये कृतम्?

(A) रक्षाविषये　(B) ऊहविषये

(C) आगमविषये　(D) लघुविषये

व्याख्या- महर्षि पतञ्जलि महाभाष्य पस्पशाह्निक में **'कानि पुनः शब्दानुशासनस्य प्रयोजनानि'** के द्वारा शब्दानुशासन (व्याकरण शास्त्र) के अध्ययन के प्रयोजन कौन-कौन से हैं? इसकी चर्चा करते हैं।

व्याकरण के पाँच प्रयोजन-''रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्''

1. रक्षा 2. ऊह 3. आगम 4. लघु और 5. असन्देह ये व्याकरण के पाँच मुख्य प्रयोजन हैं।

1. रक्षा 'रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्। लोपागमवर्णविकारज्ञो हि सम्यक् वेदान् परिपालयिष्यति इति।

वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए। क्योंकि वर्णादि के लोप, आगम और वर्णविकार इनको जानने वाला वैयाकरण ही वेदों की रक्षा सम्यक् रूप से कर सकता है।

2. ऊहः खल्वपीति- न सर्वैर्लिङ्गैर्न च सर्वाभिर्विभक्तिभिर्वेदे मन्त्रा निगदिताः। ते चावश्यं यज्ञगतेन पुरुषेण यथायथं विपरिणमयितव्याः तन्नावैयाकरणः शक्नोति यथायथं विपरिणमयितुम्। तस्माद् अध्येयं व्याकरणम्।

अपेक्षित परिवर्तन- ऊह भी व्याकरणाध्ययन का प्रयोजन है। वेद में मन्त्र सभी लिङ्गों और सभी विभक्तियों के साथ नहीं पढ़े गये है। यज्ञकार्य में प्रवृत्त पुरुष के उन मन्त्रों के अर्थानुसार उचित रीति से अवश्य बदल लेना चाहिए। परन्तु अवैयाकरण उन मन्त्रों के अपेक्षित लिङ्ग और विभक्ति के साथ नहीं बदल सकता इसलिए विपरिणाम की सामर्थ्य प्राप्ति के लिए व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए।

3. आगमः 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च'। प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्। प्रधाने च कृत्तो यत्नः फलवान् भवति।' वेदवचन भी व्याकरणाध्ययन का प्रयोजन है। मन्त्र कहता है- 'ब्राह्मणों को निष्कारण छः अङ्गों वाले वेद का अध्ययन करना चाहिए। छह वेदाङ्गों में व्याकरण ही प्रमुख अङ्ग है और प्रधान के विषयों में किया गया प्रयत्न सफल होता है।

4. लघु- ''लघ्वर्थं चाध्येयं व्याकरणम्। ब्राह्मणेन अवश्यं शब्दा ज्ञेयाः। न चान्तरेण व्याकरणं लघुनोपायेन शब्दाः शक्या विज्ञातुम्।'' लाघव के लिए भी व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए। ''ब्राह्मण को शब्दों का ज्ञान अवश्य करना चाहिए।'' व्याकरण के अतिरिक्त

किसी अन्य उपाय द्वारा लाघव से शब्दों का ज्ञान करना सम्भव नहीं है।

5. असन्देह- असन्देहार्थं चाध्येयं व्याकरणम्। याज्ञिकाः पठन्ति- ''स्थूलपृषतीमाग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत इति।'' असन्देह= (सन्देह के प्रागभाव) के लिए भी व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए। याज्ञिक यह पढ़ते हैं कि- 'अग्नि और वरुण देवताओं वाली अर्थात् उनके उद्देश्यवाली, स्थूलपृषती अनड्वाही (गाय) का आलम्भन समर्पण करें। यहाँ 'स्थूलपृषती' पदार्थ में बहुव्रीहि और तत्पुरुष समास को लेकर सन्देह होता है; जो अवैयाकरण निश्चित नहीं कर सकता।

स्पष्टीकरण- ''ब्राह्मणेन अवश्यं शब्दाः ....ज्ञेयाः'' यह वचन 'लघु' व्याकरण प्रयोजन के सन्दर्भ में कहा गया है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- व्याकरणमहाभाष्यम् (पस्पशाह्निक)-मधुसूदन मिश्र, पेज 10

39. पतञ्जलिमतानुसारं शब्दः कः?

(A) अर्थरूपम्

(B) यद् इङ्गितं चेष्टितम्

(C) यद्भिन्नेष्वभिन्नं,छिन्नेष्वच्छिन्नम्

(D) प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः

व्याख्या- महर्षि पतञ्जलि महाभाष्य पस्पशाह्निक में सर्वप्रथम 'अथ शब्दानुशासनम्' अब शब्दानुशासन प्रारम्भ किया जाता है। अब प्रश्न होता है कि 'केषां शब्दानाम्' किन शब्दों का अनुशासन प्रारम्भ किया जा रहा है। तो उत्तर मिलता है ''लौकिकानां वैदिकानां च'' लौकिक और वैदिक शब्दों का अनुशासन प्रारम्भ किया जा रहा है। इसी सन्दर्भ में सहज जिज्ञासा होती है कि-गौः इत्यत्र कः शब्दः? यह गाय है, इस ज्ञान में 'शब्द' क्या है? इसके उत्तर में महर्षि पतञ्जलि का उत्तर है कि- स्फोटरूप शब्द- ''येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति, सः शब्दः'' ध्वनियों से अभिव्यक्त होने वाले जिसके द्वारा सास्ना (गले में लटकने वाली खाल) पूँछ, ककुद् (कन्धे के ऊपर निकला हुआ मांसपिण्ड) खुर और विषाण (सींग) से युक्त गोरूप पशु का सम्यक् ज्ञान होता है, वह स्फोटरूप शब्द है।

ध्वनिरूप शब्द- ''प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्दः'' लोकव्यवहार में पदार्थबोधक के रूप में प्रसिद्ध अर्थात् पदार्थ की प्रतीति कराने वाली ध्वनि को शब्द कहा जाता है।

स्पष्टीकरण- इस प्रकार स्पष्ट है कि महर्षि पतञ्जलि के अनुसार 'प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः' यह ध्वनिरूप शब्द का लक्षण है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- महाभाष्य (पस्पशाह्निक)-जयशंकर लाल त्रिपाठी, पेज 19

40. पाणिनीयशिक्षानुसारं स्वराणां संख्या का?

(A) विंशतिः (B) एकविंशतिः

(C) अष्टादश (D) पञ्चविंशतिः

व्याख्या- ऋग्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ संख्या में अधिक नहीं हैं, केवल चार पाँच ही हैं वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें पाणिनीय शिक्षा सर्वाधिक लोकप्रिय है। पाणिनि के मत के अनुकूल शिक्षा को बताने के बाद वाणी के अर्थात् वैदिक और लौकिक संस्कृत के वर्णों के उच्चारण के प्रकारों को स्पष्ट करते हैं। इसके बाद वर्णों की चर्चा करते हुए कहते हैं-

त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा॥3॥

प्राकृत और संस्कृत भाषा में ब्रह्मा जी के द्वारा स्वयं बताये गए वर्ण सम्भावित रूप में तिरसठ या चौसठ माने गये हैं।

स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः॥4॥
अनुस्वारो विसर्गश्च-ᳵ कᳵ पौ चाऽपि पराश्रितौ।
दुस्स्पृष्टश्चेति विज्ञेयो ऌकारः प्लुत एव च ॥5॥

स्वर बीस और एक (इक्कीस), स्पर्श पच्चीस, यकारादि (अन्तःस्थ और ऊष्म) वर्ण आठ, यम वर्ण चार, अनुस्वार (एक) विसर्ग (एक) क ख परक तथा प फ परक जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय वर्ण दो, दुस्स्पृष्टता को प्राप्त लुप्त ऌकार (एक) जानना चाहिए। इस प्रकार तिरसठ वर्ण होते हैं। अनुस्वार के मतभेद से ह्रस्व और दीर्घ का अनुस्वार- रङ्ग रूप में दो संख्या लेने पर। चौसठ वर्ण होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पाणिनीय शिक्षा के अनुसार स्वर वर्ण इक्कीस बताये गये हैं। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- पाणिनीय शिक्षा-(श्लोक 4)-शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन, पेज 07

41. 'समीकरणम्' कस्य दिशा वर्तते?

(A) ध्वनिपरिवर्तनस्य (B) रूपपरिवर्तनस्य

(C) अर्थपरिवर्तनस्य (D) वाक्यपरिवर्तनस्य

व्याख्या- ध्वनिपरिवर्तन- परिवर्तन सृष्टि का नियम है। विश्व की प्रत्येक वस्तु में निरंतर परिवर्तन होता रहा है, हो रहा है और होता रहेगा। भाषा का प्रमुख तत्त्व ध्वनि है। वक्ता की ध्वनि पर दो प्रकार का प्रभाव पड़ता है- 1. आभ्यंतर 2. बाह्य। वक्ता और श्रोता से सम्बद्ध कारणों को आभ्यंतर कारण कहते हैं- जैसे- प्रयत्नलाघव, मुख-सुख, अज्ञान, शीघ्रभाषण आदि। इसके अतिरिक्त अन्य कारणों को बाह्यकारण कहते हैं। ये कारण बाहर से ध्वनि को

प्रभावित करते हैं। जैसे - सामाजिक, राजनीतिक, भौगोलिक आदि कारण।

ध्वनिपरिवर्तन की दिशाएँ- ध्वनि परिवर्तनों का मुख्य कारण प्रयत्नलाघव या मुख सुख है।

1. समीकरण- जब दो विषम ध्वनियाँ एकत्र होती हैं तो एक ध्वनि दूसरी को प्रभावित करके अपने सदृश बना लेती है। यह समीकरण दो प्रकार का होता है- (क) पुरोगामी समीकरण (ख) पश्चगामी समीकरण।

3. आगम- उच्चारण की सुविधा के लिए शब्दों के आदि, मध्य या अन्त में कुछ ध्वनियाँ जोड़ दी जाती हैं, इन्हें आगम कहते हैं।

2. विषमीकरण- यह समीकरण का उल्टा है। इसमें दो समध्वनियों में से एक ध्वनि विषम रूप से धारण करती है।

4. लोप- कभी-कभी मुखसुख, प्रयत्नलाघव या उच्चारण में शीघ्रता स्वराघात आदि के कारण कुछ ध्वनियों का लोप हो जाता है।

5. समाक्षरलोप- जहाँ पर दो समान ध्वनियाँ एक के बाद दूसरी आती है वहाँ एक का लोप कर दिया जाता है।

6. वर्णविपर्यय 7. महाप्राणीकरण 8. अल्पप्राणीकरण 9. घोषीकरण 10. अघोषीकरण 11. अनुनासिकीकरण 12. ऊष्मीकरण 13. सन्धिकार्य 14. मात्राभेद।

2. रूपपरिवर्तन की दिशाएँ- रूपपरिवर्तन सामान्यतः दो दिशाओं में होता है- (i) सरलीकरण हेतु समरूपता (ii) संदेह निवारणार्थ नए रूपों की उत्पत्ति। संक्षेप में रूपपरिवर्तन के निम्नलिखित कारण हैं- (क) सरलीकरण (ख) नवीनता की अभिरुचि (ग) सादृश्य (घ) अज्ञता (च) बल।

3. अर्थपरिवर्तन- जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार प्रत्येक भाषा के शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होता रहता है। यह अर्थ परिवर्तन तीन प्रकार का होता है- (i) कहीं पर अर्थ का विस्तार होता है। (ii) कहीं पर अर्थ में संकोच होता है। (iii) कहीं पर पुराने अर्थ के स्थान पर नया अर्थ आ जाता है। इन्हें ये नाम दिये गये हैं- (क) अर्थविस्तार (ख) अर्थसंकोच (ग) अर्थादेश।

4. वाक्यपरिवर्तन- विकास क्रम के अनुसार विश्व की प्रत्येक भाषा में परिवर्तन होते हैं। भाषा में परिवर्तन के कारण वाक्यों के पठन और प्रयोग में भी परिवर्तन होता है। वाक्यपरिवर्तन की प्रमुख दिशाएँ ये हैं- (क) पदक्रम में परिवर्तन (ख) अन्वय में परिवर्तन (ग) अधिक पद प्रयोग (घ) पद या प्रत्यय का लोप (च) कोष्ठ और डैश का प्रयोग (छ) आदरार्थक बहुवचन (ज) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कथन (झ) कारक के लिए अर्धविराम।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समीकरण ध्वनिपरिवर्तन की दिशा में होता है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 233

42. हिब्रूभाषा कस्य भाषापरिवारस्य भाषाऽस्ति?

(A) चीनीपरिवारस्य (B) भारोपीयपरिवारस्य

(C) सूडानीपरिवारस्य (D) सामी-हामीपरिवारस्य

व्याख्या-

विश्व की भाषाओं के परिवारों की संख्या के विषय में पर्याप्त मतभेद है। जर्मन विद्वान् 'विल्हेल्म फॉन हुम्बोल्ट' ने इनकी संख्या 13 मानी हैं। फ्रीडरिश म्यूलर आदि विद्वान् इनकी संख्या 100 के लगभग मानते हैं। निर्विवाद रूप से स्वीकृत प्रमुख 18 भाषापरिवारों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है-

(क) यूरेशिया (यूरोप- एशिया) भूखण्डः- (1) भारोपीय परिवार, (2) द्रविड़ परिवार, (3) बुरुशस्की परिवार, (4) काकेशी परिवार (5) यूराल अल्ताई परिवार, (6) चीनी परिवार (7) जापानी कोरियाई परिवार (8) अत्युत्तरी (हाइपरबोरी) परिवार, (9) बास्क परिवार (10) सामी-हामी परिवार

(ख) अफ्रीकी भूखण्डः- (1) सूडानी परिवार, (2) बान्तू परिवार, (3) होतेन्तोत-बुशमैनी परिवार।

(ग) प्रशान्त महासागरी भूखण्डः- (1) मलय पोलिनेशियाई परिवार (2) पापुई परिवार, (3) आस्ट्रेलियन परिवार, (4) दक्षिण पूर्व एशियाई परिवार।

(घ) अमेरिकी भूखण्डः- (1) अमेरिकी परिवार।

(1) चीनी परिवारः- क्षेत्र- सम्पूर्ण चीन, बर्मा, स्याम, तिब्बत। प्रमुख भाषाएँ:- (1) चीनी (2) थाई या स्यामी (3) ब्राह्मी या बर्मी (4) तिब्बती (5) अनामी

(2) भारोपीय परिवार- भारोपीय परिवार में भारतवर्ष से लेकर यूरोप तक फैली हुई भाषाओं का संग्रह है। इस परिवार की दस शाखाएँ हैं- (1) भारत-ईरानी (आर्य) (क) भारतीय (ख) ईरानी (2) बाल्टो-स्लाविक- (क) बाल्टिक (ख) स्लाविक

(3)- आर्मीनी, (4) अल्बानी (इलीरी), (5) ग्रीक (हेलेनिक), (6) केल्टिक, (7) जर्मानिक, (8) इटालिक, (9) हिटाइट (हित्ती), (10) तोखारी। भारोपीय परिवार की भाषाओं को ध्वनि के आधार पर दो भागों में विभक्त किया जाता है- (क) केन्टुम् (ख) शतम् उपरिलिखित भारोपीय परिवार की दस शाखाओं में प्रथम चार परिवार शतम् वर्ग में तथा शेष छह केन्टुम् वर्ग में आते हैं।

ईरानी-भारती चैव, बाल्टी- सुस्लाविकी तथा।
आर्मीनी अल्बनी चैताः, शतम्- वर्गे समाश्रिताः॥
इटालिकी च ग्रीकी च, जर्मानिक् केल्टिकी तथा।
हित्ती तोखारिकी चैताः, केन्टुम् वर्गे प्रकीर्तिताः॥

(3) सूडानी परिवार- क्षेत्र - अफ्रीका में भूमध्य रेखा के उत्तर में पश्चिम से पूर्व तक। इसके उत्तर में हामी परिवार है और दक्षिण में बान्तू परिवार।

प्रमुख भाषाएँ- (क) वुले (ख) मन-फू (ग) कनूरी (घ) नीलोटिक (ङ) बन्तूइड (च) हौसा, कुलभाषाएँ- 435

(4) सामी-हामी परिवार- क्षेत्र-(क) सामी- (एशिया में) अरब, ईराक, फिलिस्तीन, सीरिया (अफ्रीका में) मिस्र, इथियोपिया, तुनिसिया, अल्जीरिया, मोरक्को। (ख) हामी- (अफ्रीका में) लीबिया, सोमाली लैण्ड, इथियोपिया।

प्रमुख भाषाएँ- सामी- अक्कदियन, कनानित, अरमाइक, अरबी, एबीसीनियन, हिब्रू।

हामी - लीबियन, मेरोइटिक, एथियोपिक (कुशीत) मिश्री सामी, हामी परिवार की भाषाएँ श्लिष्ट योगात्मक और अन्तर्मुखी हैं। इसमें सम्बन्धतत्त्व अधिकतर धातु के अन्दर ही स्वरों के परिवर्तन से सूचित किए जाते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हिब्रू भाषा सामी-हामी परिवार के अन्तर्गत आती है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 402

43. संस्कृत भाषायाः यूरोपीयभाषाभिः सम्बन्धः सर्वप्रथमं केनोद्घाटितः?
(A) मैक्समूलर महोदयेन,
(B) विन्टरनित्जमहोदयेन
(C) सर विलियमजोन्स महोदयेन
(D) वेबर महोदयेन

व्याख्या- सर विलियम जोन्स ने 1786 ई॰ में संस्कृत भाषा का अध्ययन करते समय संस्कृत की लैटिन और ग्रीक से अनेक अंशों में समानता प्राप्त की और इनके तुलनात्मक अध्ययन पर बल दिया। इस प्रकार संस्कृत भाषा तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की मूल बनी। सर विलियम जोन्स द्वारा डाली हुई नींव ही आज विकसित, पुष्पित और पल्लवित होकर भाषाविज्ञान के रूप में प्रसिद्ध है। इस प्रकार सर विलियम जोन्स ने ही सर्वप्रथम संस्कृत और यूरोपीय भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध के रहस्य का उद्घाटन किया। सर विलियम जोन्स हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस थे। इन्होंने 1786 ई॰ में 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' की स्थापना की थी। इसके उद्घाटन भाषण में इन्होंने संस्कृतभाषा का महत्त्व बताते हुए कहा था कि ''यह ग्रीक से अधिक पूर्ण, लैटिन से अधिक विस्तृत एवं दोनों से अधिक परिष्कृत है। ग्रीक और इसकी आश्चर्यजनक समानता है।'' (Otto Jesperson: Language, p. 33.) जोन्स की इस घोषणा के फलस्वरूप पाश्चात्त्य विद्वानों का तुलनात्मक भाषाविज्ञान की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। सर जोन्स तुलनात्मक भाषाविज्ञान के जन्मदाता के रूप में विख्यात हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है, कि **विकल्प C सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 4

44. बान्तू परिवारः कस्य खण्डस्य भाषापरिवारोऽस्ति?
(A) यूरेशियाखण्डस्य
(B) अफ्रीकाखण्डस्य
(C) प्रशान्तमहासागरीयखण्डस्य
(D) अमेरिकाखण्डस्य

व्याख्या-

विश्व भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण के अनुसार 18 भेद बताये गये हैं। इन 18 भाषापरिवारों को चार भूखण्डों के अन्तर्गत रखा गया है-

1- यूरेशिया (यूरोप-एशिया) भूखण्डः- यूरेशिया भूखण्ड के अन्तर्गत 10 (दस) भाषा परिवारों को रखा है।

1. भारोपीय (भारत-यूरोपीय परिवार 2. द्रविड़ परिवार 3. बुरुशस्की परिवार 4. काकेशी परिवार 5. यूराल-अल्ताई परिवार 6. चीनी परिवार 7. जापानी-कोरियाई परिवार 8. अत्युत्तरी (हाइपरबोरी) परिवार 9. बास्क परिवार 10. सामी-हामी परिवार

2- अफ्रीका भूखण्ड- अफ्रीका भूखण्ड के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन (3) परिवार आते हैं। 1. सूडानी परिवार 2. बान्तू परिवार 3. होतेन्तोत- बुशमैनी परिवार।

3- प्रशान्त महासागरीय भूखण्ड- प्रशान्त महासागरीय भूखण्ड के अन्तर्गत चार (4) भाषा परिवारों की गणना की जाती है-
(i) मलय-पोलिनेशियाई परिवार। (ii) पापुई परिवार।
(iii) आस्ट्रेलियन परिवार। (iv) दक्षिण-पूर्व एशियाई परिवार।

4- अमेरिका भूखण्डः- अमेरिका भूखण्ड के अन्तर्गत केवल एक भाषा परिवार की गणना की जाती है- (1) अमेरिकी परिवार।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'बान्तू परिवार' अफ्रीका भूखण्ड का भाषापरिवार है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 372

45. अर्थसङ्ग्रहे प्रत्ययस्य लिङंशेन कीदृशी भावना प्रोक्ता?

(A) शाब्दी (B) आर्थी
(C) शाब्दी आर्थी च (D) स्वर्गभावना

व्याख्या-''भावना नाम भवितुर्भवनानुकूलो भावयितुर्व्यापार विशेषः।'' सा द्विधा। शाब्दी भावना आर्थी भावना चेति। अर्थ- उत्पत्तिशील की उत्पत्ति में कारणभूत जो उत्पादयिता का मानसिक व्यापारविशेष होता है उसे भावना कहा जाता है। भावना दो प्रकार की होती है- शाब्दीभावना
(2) आर्थीभावना

➢ **शाब्दीभावनाः- तत्र पुरुषप्रवृत्त्यनुकूलो भावयितुर्व्यापार-विशेषः शाब्दीभावना। सा च लिङशेनोच्यते।**

अर्थ- प्रयोजक के उस व्यापार विशेष को, जो प्रयोज्य पुरुष की प्रवृत्ति को उत्पन्न करने वाला होता है, शाब्दी भावना कहा जाता है। शाब्दी भावना का बोध 'लिङ्' अंश से होता है। प्रयोजक पुरुष जब 'लिङ्' अंश को सुनता है तब वह यह समझता है कि यह प्रयोजक पुरुष मुझे कर्म में प्रवृत्त करना चाहता है अतः इस प्रयोजकवृद्ध में मेरी प्रवृत्ति को उत्पन्न करने वाला व्यापार है। यही व्यापार लिङ्-वाच्य शाब्दी भावना है, क्योंकि नियमतः जिस शब्द से जिस अर्थ का बोध होता है वह अर्थ उसी शब्द का वाच्य होता है, जैसे- 'गामानय' यहाँ 'गो' शब्द का अर्थ 'गोत्व' इसीलिए होता है।

➢ **आर्थीभावना- ''प्रयोजनेच्छाजनितक्रियाविषयव्यापार आर्थीभावना''। सा च आख्यातत्वांशेनोच्यते।**

अर्थ- स्वर्ग आदि प्रयोजन को लक्ष्य करके याग आदि क्रिया को अनुष्ठित करने का पुरुष में जो मानसिक व्यापार (कर्म) उत्पन्न होता है उसे आर्थीभावना कहते हैं। आर्थीभावना आख्यातत्व अंश का वाच्य होती है, क्योंकि आख्यातसामान्य व्यापार अर्थात् क्रिया का वाचक होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि लिङ् अंश के द्वारा शाब्दीभावना कही जाती है, जबकि आख्यात अंश के द्वारा आर्थीभावना। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- अर्थसंग्रह - राजेश्वरशास्त्री मुसलगाँवकर, पेज 30

46. अर्थसंग्रहानुसारं 'शब्दसामर्थ्यम्' इत्यनेन कतमं प्रमाणं लक्षितम्?

(A) श्रुतिः (B) प्रकरणम्
(C) लिङ्गम् (D) वाक्यम्

व्याख्या- जैमिनिकृत मीमांसादर्शन का प्रकरण ग्रन्थ अर्थसंग्रह है जिसके प्रणेता लौगाक्षिभास्कर हैं। 'अथातो धर्मजिज्ञासा' से प्रारम्भ होता हुआ भावना आदि को बताते हैं तत्पश्चात् चार विधियाँ उत्पत्ति विधि, विनियोगविधि, प्रयोगविधि और अधिकारविधि, को बताते हैं। विनियोगविधि के अन्तर्गत छह प्रमाण हैं- श्रुति, लिङ्ग, वाक्य, प्रकरण, स्थान और सामाख्या श्रुति की चर्चा करते हुए कहते हैं कि-

➢ **श्रुतिः- तत्र निरपेक्षो रवः श्रुतिः। सा च त्रिविधा- विधात्री, अभिधात्री विनियोक्त्री च।**

प्रमाणान्तर की अपेक्षा किये बिना जो शब्द पदार्थ के विनियोग में समर्थ होता है उस शब्द को 'श्रुति' कहते हैं।

श्रुति के तीन भेद हैं-

विधान करने वाली - विधात्री
अभिधान करने वाली - अभिधात्री
विनियोग करने वाली - विनियोक्त्री

➢ **लिङ्ग-** शब्दसामर्थ्यं लिङ्गम् - शब्दसामर्थ्य को ही लिङ्ग कहते हैं।
➢ **वाक्य-** समभिव्याहारो वाक्यम्- समभिव्याहार अर्थात् सहोच्चारण को वाक्य कहते हैं।
➢ **प्रकरण-** उभयाकाङ्क्षा प्रकरणम्। दो वाक्यों की परस्पर आकाङ्क्षा को प्रकरण कहते हैं।
➢ **स्थान-** देशसामान्यं स्थानम्। देश की समानता को स्थान कहते हैं।
➢ **समाख्या-** समाख्या यौगिकः शब्दः। यौगिक शब्दों को समाख्या कहते हैं। समाख्या के दो भेद- वैदिकी समाख्या, लौकिकी समाख्या

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'शब्दसामर्थ्यं लिङ्गम्'। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- अर्थसंग्रह - राजेश्वरशास्त्री मुसलगाँवकर, पेज 121

47. तर्कसङ्ग्रहदीपिकानुसारं स्पर्शानुमेयः कः पदार्थः?

(A) आकाशम् (B) मनः
(C) आत्मा (D) वायुः

व्याख्या- अन्नंभट्ट विरचित तर्कसंग्रह अत्यन्त लोकप्रिय रचना है जो प्रारंभिक स्तर पर न्याय-वैशेषिक दर्शन की मूल अवधारणाओं से परिचित कराती है। इनके द्वारा रचित तर्कसंग्रह की स्वोपज्ञ टीका तर्कसंग्रहदीपिका है जिसे न्याय-वैशेषिक दर्शन का अग्रिम सोपान माना जा सकता है।

* द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय तथा अभाव ये सात पदार्थ तर्कसंग्रह के प्रतिपाद्य विषय हैं। तर्कसंग्रहदीपिका में तर्कसंग्रह के प्रतिपाद्य विषय का विश्लेषण करते हुए न्याय तथा वैशेषिक दर्शनों के अन्य उपयोगी विषयों का भी प्रतिपादन किया गया है। तर्कसंग्रहदीपिका में अन्नंभट्ट ने पृथ्वी, जल, वायु,

आकाश, आदि नौ द्रव्यों का लक्षण बताया है। वायु का लक्षण बताते हुए कहते हैं-

वायुः- वायुं लक्षयति रूपरहितेति। आकाशादावतिव्याप्ति-वारणाय स्पर्शवानिति। पृथिव्यादावतिव्यप्तिवारणाय रूपरहितेति। स्पर्शानुमेयो वायुः। रूपरहित आदि से वायु का लक्षण करते हैं। आकाशादि में अतिव्याप्ति को रोकने के लिए 'स्पर्शवान्' कहा। पृथिवी आदि में अतिव्याप्ति को रोकने के लिए 'रूपरहित' कहा है। वायु का स्पर्श से अनुमान होता है। (स्पर्शानुमेयो वायुः)।

आकाशः- शब्दगुणकमिति। नन्वाकाशमपि किं पृथिव्यादिवन्नाना नेत्याह- तच्चैकमिति।

अर्थ- आकाश का लक्षण करते हुए कहते हैं- शब्द गुण वाला द्रव्य आकाश है। पृथिवी आदि के समान क्या आकाश भी अनेक (भेद वाला) है? नहीं वह एक ही है, क्योंकि भेद में प्रमाण का अभाव है।

मनः- मन का लक्षण करते हुए तर्कसंग्रहदीपिका में कहा गया है- ''स्पर्शरहित होते हुए क्रिया वाला होना मन का लक्षण है। (स्पर्शरहितत्वे सति क्रियावत्त्वं मनसो लक्षणम्)। मन का विभाजन करते हुए कहते हैं- एक-एक आत्मा का एक-एक मन होने से आत्मा के अनेक होने के कारण मन भी अनेक हैं। (एकैकस्यात्मन एकैकं मन आवश्यकम् इत्यात्मनोऽनैकत्वान्मनसोऽप्यनेकत्वमित्यर्थः)

आत्मा- ज्ञानाधिकरणमात्मा। स द्विविधः जीवात्मा परमात्मा चेति। अर्थः- जो द्रव्य ज्ञान का अधिकरण है वह आत्मा है। वह दो प्रकार का है-(1) जीवात्मा तथा (2) परमात्मा। उनमें परमात्मा ईश्वर है, सर्वज्ञ है तथा एक ही है। जीवात्मा प्रतिशरीर भिन्न, सर्वव्यापक तथा नित्य है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तर्कसंग्रहदीपिका के अनुसार स्पर्शानुमेय पदार्थ वायु है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- तर्कसंग्रह - गोविन्दाचार्य, पेज 89

48. तर्कसङ्ग्रहानुसारम् आत्मनो विशेषगुणः कः?

(A) वेगसंस्कारः (B) स्थितिस्थापकः संस्कारः
(C) प्रत्यत्नः (D) शब्दः

व्याख्या- तर्कसंग्रह अन्नंभट्ट विरचित लोकप्रिय ग्रन्थ है। जो प्रारंभिक स्तर पर न्यायवैशेषिक दर्शन की मूल अवधारणाओं से परिचय कराती है। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय तथा अभाव ये सात पदार्थ तर्कसंग्रह के प्रतिपाद्य विषय हैं। तर्कसंग्रह में इनका संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

तर्कसंग्रह में आत्मा के गुणों का विवेचन करते हुए कहते हैं- **''बुद्ध्यादयोऽष्टावात्ममात्रविशेषगुणाः। बुद्धीच्छाप्रयत्ना द्विविधाः नित्या अनित्याश्च। नित्या ईश्वरस्य अनित्या जीवस्य।''**

अर्थः- बुद्धि आदि आठ गुण केवल आत्मा में रहने वाले विशेष गुण हैं। बुद्धि, इच्छा तथा प्रयत्न दो प्रकार के होते हैं- (1) नित्य तथा (2) अनित्य। नित्य ईश्वर के तथा अनित्य जीव के होते हैं। तर्कसंग्रह में गुणों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है-

(i) सामान्य तथा (ii) विशेष गुण।

सामान्य गुणः- संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, (नैमित्तिक) असांसिद्धिक द्रवत्व, गुरुत्व, स्थितिस्थापक तथा वेग ये सामान्य गुण हैं।

विशेष गुणः- बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, स्नेह, सांसिद्धिक द्रवत्व, धर्म तथा अधर्म (अदृष्ट), भावना नामक संस्कार तथा शब्द ये विशेष गुण हैं। इन विशेष गुणों में से बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म तथा अधर्म ये आठ गुण दूसरे वर्ग में आते हैं और केवल आत्मा में रहते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि दिये गये विकल्पों में 'शब्द' आत्मा का विशेष गुण है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- तर्कसंग्रह - गोविन्दाचार्य, पेज 266

49. तर्कभाषानुसारम् आत्मा कीदृशः?

(A) सर्वस्मिन् एकोऽणुश्च
(B) विभुरनित्यश्च
(C) देहेन्द्रियाद्यनतिरिक्तः
(D) प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च

व्याख्या- न्यायदर्शन के प्रकरण ग्रन्थ तर्कभाषा में आचार्य केशव मिश्र ने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन चार प्रमाणों का विवेचन करने के बाद द्वादश प्रमेयों का वर्णन करते हैं- 'आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्' इति सूत्रम्।

1- आत्मा, 2- शरीर, 3- इन्द्रिय, 4- अर्थ, 5- बुद्धि, 6- मन, 7- प्रवृत्ति, 8- दोष, 9- प्रेत्यभाव, 10- फल, 11- दुःख और 12- अपवर्ग ये 12 प्रमेय हैं। इन 12 प्रमेयों में प्रथम प्रमेय आत्मा की परिभाषा करते हुए केशव मिश्र कहते हैं-

आत्मा- ''आत्मत्वसामान्यवानात्मा। स च देहेन्द्रियादिव्यतिरिक्तः प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च। स च मानसप्रत्यक्षः।''

अर्थः- 'आत्मत्व' सामान्य (जाति) जिसमें रहता है वह आत्मा (कहलाता) है। वह देह, इन्द्रिय आदि से पृथक् है। प्रत्येक शरीर में अलग-अलग, नित्य और विभु (व्यापक) है। और यह मानस प्रत्यक्ष का विषय है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आत्मा 'प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च'। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- तर्कभाषा - श्रीनिवास शास्त्री, पेज 175

50. साध्यशून्यो यत्र पक्षः सः कीदृशो हेत्वाभासः?
(A) बाधः (B) आश्रयासिद्धः
(C) असाधारणोऽनैकान्तिकः (D) विरुद्धः

व्याख्या- श्रीविश्वनाथपञ्चाननभट्टाचार्य प्रणीत न्यायसिद्धान्तमुक्तावली में हेत्वाभास की चर्चा की गई है-

अनैकान्तो विरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः।
कालात्ययापदिष्टश्च हेत्वाभासास्तु पञ्चधा।।

अनैकान्त, विरुद्ध, असिद्ध, प्रतिपक्षित एवं कालात्ययापदिष्ट- इस प्रकार हेत्वाभास पाँच प्रकार के होते हैं।

आद्यः साधारणस्तु स्यादसाधारणकोऽपरः।
तथैवानुपसंहारी त्रिधाऽनैकान्तिको भवेत्।।

पहला साधारण, दूसरा असाधारण, तीसरा अनुपसंहारी भेद से अनैकान्तिक हेत्वाभास तीन प्रकार का होता है।

असाधारण अनैकान्तिक- यस्तूभयस्माद् व्यावृत्तः स चासाधारणो मतः। जो दोनों (सपक्ष एवं विपक्ष) से अलग रहे, वह हेतु 'असाधारण' माना जाता है।

विरुद्ध हेत्वाभास- यः साध्यवति नैवाऽस्ति स विरुद्ध उदाहृतः। जो साध्य के अधिकरण में नहीं है, वैसा हेतु विरुद्ध कहलाता है।

आश्रयासिद्ध- पक्षासिद्धिर्यत्र पक्षो भवेन्मणिमयो गिरिः। पक्षासिद्धि वहाँ होती है जहाँ मणिमय गिरि पक्ष होता है। ह्रदो द्रव्यं धूमवत्वात् में दूसरी असिद्धि होती है।

बाध- **साध्यशून्यो यत्र पक्षस्त्वसौ बाध उदाहृतः।**
उत्पत्तिकालीनघटे गन्धादिर्यत्र साध्यते।।

जहाँ पक्ष साध्य से शून्य होता है, वह बाध कहलाता है, जहाँ उत्पत्तिकालीन घट में गन्ध आदि साधित किया जाता है।

नोट- बाध को ही कालात्ययापदिष्ट हेत्वाभास भी कहते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'साध्यशून्यो यत्र पक्षः' यह बाध हेत्वाभास का लक्षण है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (का. 78) (अनुमानोपमानखण्ड)-गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर, पेज 71

51. तर्कभाषारीत्या समवायस्य प्रत्यक्षग्राह्यत्वे इन्द्रियार्थसन्निकर्षः कः?
(A) संयोगः
(B) संयुक्तसमवायः
(C) विशेषण- विशेष्यभावः
(D) संयुक्तसमवेतसमवायः

व्याख्या- आचार्य केशव मिश्र प्रणीत तर्कभाषा में प्रत्यक्ष प्रमाण को परिभाषित करते हैं इसी क्रम में षोढा सन्निकर्ष का लक्षण करते हैं। षोढा सन्निकर्ष की संख्या छः है-

(1) संयोग सन्निकर्ष- तत्र यदा चक्षुषा घटविषयं ज्ञानं जन्यते तदा चक्षुरिन्द्रियं घटोऽर्थः। अनयोः सन्निकर्षः संयोग एव। जब चक्षु द्वारा घट आदि विषय का ज्ञान होता है। तब चक्षु इन्द्रिय घट विषय है। इन दोनों का सन्निकर्ष संयोग ही है।

उदा॰ (1) चक्षुषा घटविषयं ज्ञानं जन्यते – चक्षु से घट का ज्ञान।
(2) मनसाऽन्तरिन्द्रियेण यदात्मविषयकज्ञानं जन्यते। मन से आत्मा का ज्ञान।

(2) सयुक्तसमवायसन्निकर्ष- यदा चक्षुरादिना घटगतरूपादिकं गृह्यते, घटे श्यामं रूपमस्तीति, तदा चक्षुरिन्द्रियं, घटरूपमर्थः अनयोः सन्निकर्षः सयुक्तसमवाय एव।
जब चक्षु आदि से घट में रहने वाले रूप आदि का ग्रहण होता है कि 'घट' श्याम रूप है, तब चक्षु इन्द्रिय है, घट का रूप विषय है इन दोनों का सन्निकर्ष संयुक्त समवाय ही है।

उदा॰- (1) चक्षु से घट रूप का ज्ञान, (2) मन से आत्मा में समेवत सुखादि का ज्ञान।

(3) संयुक्त समवेतसमवाय सन्निकर्ष- 'यदा पुनश्चक्षुषा घटरूपसमवेतं रूपत्वादिसामान्यं गृह्यते, तदा चक्षुरिन्द्रिय रूपत्वादिसामान्यमर्थः अनयोः सन्निकर्षः सयुक्तं समवेतसमवाय एव।'
जब चक्षु के द्वारा घट के रूप में समवेत रूपत्व आदि सामान्य का ग्रहण होता है तब चक्षु इन्द्रिय है इन दोनों का सन्निकर्ष संयुक्त समवेतसमवाय ही है।

उदा॰- चक्षु से घटरूप में समवेत रूपत्व का ज्ञान

(4) समवायः सन्निकर्ष- ''यदा श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दो गृह्यते तदा श्रोत्रमिन्द्रियं शब्दोऽर्थः अनयोः सन्निकर्षः समवाय एव।
जब श्रोत्रेन्द्रिय शब्द से ग्रहण होता है तब श्रोत्र इन्द्रिय है, शब्द अर्थ है इन दोनों का सन्निकर्ष समवाय ही है।

उदा॰- श्रोत्रेन्द्रिय से शब्द का ग्रहण

(5) समवेतसमवायसन्निकर्षः- 'यदा पुनः शब्दसमवेतं शब्दत्वादिकं सामान्यं श्रोत्रेन्द्रियेण गृह्यते तदा श्रोत्रेन्द्रियं, शब्दत्वादि सामान्यमर्थः। अनयोः, सन्निकर्षः समवेत समवाय एव।
जब शब्द में समवेत शब्दत्व आदि जाति का श्रोत्र इन्द्रिय से ग्रहण किया जाता है तब श्रोत्र इन्द्रिय है, शब्दत्व जाति विषय है, इन दोनों का सन्निकर्ष समवेत समवाय है।

उदा॰- श्रोत्र इन्द्रिय से शब्द में समवेत शब्दत्व का ज्ञान।

(6) विशेषण विशेष्यभाव सन्निकर्षः- "यदा चक्षुषा संयुक्ते भूतले घटाभावो गृह्यते" इह भूतले घटो नास्ति इति तदा विशेष्य विशेषणभावः सम्बन्धः।
जब चक्षु से संयुक्त भूमि पर 'यहाँ भूतल पर घट नहीं है' इस प्रकार भूतल पर घट का अभाव का ग्रहण होता है तब विशेष्य विशेषण भाव सन्निकर्ष हुआ करता है।
उदा॰- चक्षु से संयुक्त भूतल में घटाभाव का ग्रहण
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि समवाय का प्रत्यक्ष ग्रहण संयुक्तसमवायसन्निकर्ष द्वारा होता है। **अतः विकल्प B सही है।**
स्रोत- तर्कभाषा - श्रीनिवास शास्त्री, पेज 64

52. वेदान्तसारानुसारं 'सगुणब्रह्मविषयमानसव्यापाररूपाणि' कर्माणि निम्नलिखितेषु कानि भवन्ति?
(A) काम्यकर्माणि (B) नित्यकर्माणि
(C) उपासनाकर्माणि (D) साध्यकर्माणि

व्याख्या- आचार्य सदानन्द योगीन्द्र द्वारा प्रणीत वेदान्तदर्शन का प्रकरण ग्रन्थ वेदान्तसार है। वेदान्तसार के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण, अनुबन्ध चतुष्टय के अन्तर्गत कर्मों को बताया गया है, उसी का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है-
1- काम्य कर्म- काम्यानि स्वर्गादीष्टसाधनानि ज्योतिष्टोमादीनि।
स्वर्ग आदि कामनाओं के साधनस्वरूप ज्योतिष्टोमयाग आदि काम्यकर्म हैं।
2- निषिद्ध कर्म- निषिद्धानि नरकाद्यनिष्टसाधनानि ब्राह्मणहननादीनि।
नरक आदि अनिष्ट के साधनरूप ब्राह्मणहनन आदि निषिद्ध कर्म हैं।
3- नित्यकर्म- नित्यान्यकरणे प्रत्यवायसाधनानि सन्ध्यावन्दनादीनि।
जिनके न करने पर पाप होता हो वे सन्ध्यावन्दन आदि नित्यकर्म हैं।
4- नैमित्तिक कर्म- नैमित्तिकानि पुत्रजन्माद्यनुबन्धीनि जातेष्ट्यादीनि।
पुत्रजन्म के अवसर पर किए जाने वाले जातेष्टियज्ञ आदि नैमित्तिककर्म हैं।
5- प्रायश्चित्त कर्म- प्रायश्चित्तानि पापक्षयसाधनानि चान्द्रायणादीनि।
पाप के प्रक्षालन हेतु किये जाने वाले चान्द्रायणव्रत आदि प्रायश्चित्त कर्म हैं।
6- उपासना कर्म- उपासनानि सगुणब्रह्मविषयमानसव्यापाररूपाणि शाण्डिल्यविद्यादीनि।
मन की वृत्ति को स्थिर करने के लिए सगुण ब्रह्मविषयक मानसिकव्यापाररूप शाण्डिल्यविद्या आदि उपासना कर्म हैं।
*** एतेषां नित्यादीनां बुद्धिशुद्धिः परं प्रयोजनमुपासनानां तु चित्तैकाग्रयम्।**
इन कर्मों में नित्य आदि कर्मों के अनुष्ठान का मुख्यप्रयोजन बुद्धि की शुद्धि करना है जबकि उपासनाकर्मों का परमप्रयोजन चित्त को एकाग्र करना है।
नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानां त्ववान्तरफलं पितृलोकसत्यलोकप्राप्तिः "कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोक" इत्यादि-श्रुतेः।
नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त एवं उपासना कर्मों का गौणफल तो पितृलोक एवं सत्यलोक की प्राप्ति ही है। "कर्म द्वारा पितृलोक एवं विद्या द्वारा सत्यलोक की प्राप्ति होती है" इत्यादि श्रुतिवचन भी है।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'सगुणब्रह्मविषयमानसव्यापार-' उपासना कर्म का लक्षण है।
अतः विकल्प C सही है।
स्रोत- वेदान्तसार - सन्तनारायण श्रीवास्तव्य, पेज 14

53. 'जीवब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयम् इत्ययम् अनुबन्धः कतमः?
(A) अधिकारी (B) विषयः
(C) सम्बन्धः (D) प्रयोजनम्

व्याख्या- सदानन्द प्रणीत वेदान्तसार में अनुबन्धों की संख्या चार है- **अधिकारी- अधिकारी तु विधिवदधीतवेदवेदाङ्गत्वेनापात- तोऽधिगत ..... साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता'** अर्थात् जिसने इस जन्म में अथवा अन्य जन्म में वेद और वेदाङ्गों का विधिपूर्वक अध्ययन करके... साधनचतुष्टय से सम्पन्न प्रमाता पुरुष अधिकारी है।
विषय- 'विषयो जीवब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयं तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात्'। जीव और ब्रह्म की एकता अर्थात् अभेद जो शुद्धचैतन्यरूप है और इस शास्त्र का प्रमेय है, समस्त वेदान्तवाक्यों का तात्पर्य जीव और ब्रह्म की आत्यन्तिक एकता ही है।
सम्बन्ध- 'सम्बन्धस्तु तदैक्यप्रमेयस्य तत्प्रतिपादकोपनिषत्प्रमाणस्य च बोध्यबोधकभावलक्षणः'। अर्थात् जीव और ब्रह्म की एकता रूप प्रमेय का और उसका प्रतिपादन करने वाले उपनिषद् रूपी प्रमाण का परस्पर बोध्य बोधक भाव ही इस शास्त्र का सम्बन्ध है।
प्रयोजन- 'प्रयोजनं तु तदैक्यप्रमेयगताज्ञाननिवृत्तिः स्वस्वरूपानन्दा-वाप्तिश्च'। जीव और ब्रह्म की एकता रूप प्रमेय के सम्बन्ध में जो अज्ञान है उसकी निवृत्ति होना और अपने वास्तविक स्वरूप आनन्द की प्राप्ति होना वेदान्त का प्रयोजन है।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि 'जीवब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयम्' विषयानुबन्ध का लक्षण है।
अतः विकल्प B सही है।

स्रोत- वेदान्तसार - सन्तनारायण श्रीवास्तव्य, पेज 30

54. समष्ट्यज्ञानोपहितं चैतन्यं किं भवति?

(A) जीवः (B) ईश्वरः
(C) ब्रह्म (D) प्राज्ञः

व्याख्या- सदानन्द योगीन्द्र ने वेदान्तसार में अज्ञान का निरूपण करते हुए यह बतलाया है कि अज्ञान एक होने पर भी श्रुति आदि में समष्टि के अभिप्राय से एक और व्यष्टि के अभिप्राय से अनेक कहा जाता है। **(इदमज्ञानं समष्टिव्यष्टियभिप्रायेणैकमने- कमिति च व्यवह्रियते।)**

इनमें से जो समष्टिरूप अज्ञान है वह विशुद्धसत्त्वप्रधान है। अज्ञान की इस समष्टिरूप उपाधि से उपहित चैतन्य को सर्वज्ञता, सर्वेश्वरता, सर्वनियन्तृता आदि से सम्पन्न अव्यक्त, अन्तर्यामी, जगत् का कारण तथा ईश्वर भी कहा जाता है। समस्त अज्ञानों का वह अवभासक है क्योंकि 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' ऐसी श्रुति प्राप्त होती है। **(इयं समष्टिरुत्कृष्टोपाधितया विशुद्धसत्त्वप्रधाना। एतदुपहितं चैतन्यं सर्वज्ञत्वसर्वेश्वरत्वसर्वनियन्तृत्वादिगुणकम- व्यक्तमन्तर्यामी जगत्कारणमीश्वर इति च व्यपदिश्यते, सकलाज्ञानावभासकत्वात्।)**

अद्वैत के अनुसार एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है, जीव तथा ईश्वर दोनों ही कल्पित हैं। कल्पित का तात्पर्य उपाधि के भेद से अज्ञान द्वारा कल्पित से है। जैसे स्वच्छ स्फटिक गुलाब के फूल के अत्यन्त पास रखा रहने पर लाल दिखाई देता है, ठीक उसी प्रकार शुद्ध ब्रह्म ही विविध उपाधिवश ईश्वर के रूप में तथा जीव के रूप में जाना जाता है।

जो व्यष्टिरूप अज्ञान है वह निकृष्टोपाधि होने के कारण मलिनसत्त्वप्रधान है। इस अज्ञानव्यष्टि से उपहित (ढँका हुआ) चैतन्य (जो कि जीव है) अल्पज्ञत्व, अनीश्वरत्वादि गुणों से युक्त होने से 'प्राज्ञ' कहलाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि समष्ट्यज्ञान से उपहित चैतन्य 'ईश्वर' कहलाता है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार - सन्तनारायण श्रीवास्तव्य, पेज 42

55. 'अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा' किमुच्यते?

(A) विकारः (B) विवर्तः
(C) शब्दः (D) अनुपहितचैतन्यम्

व्याख्या- महर्षि बादरायण द्वारा प्रणीत वेदान्तदर्शन का प्रकरणग्रन्थ सदानन्द योगीन्द्र द्वारा रचित वेदान्तसार है। इसमें अध्यारोप विषयक सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन एवं अद्वैत का प्रतिपादन करने के पश्चात् ग्रन्थकार इसी के द्वितीय पक्ष 'अपवाद' को स्पष्ट करते हैं।

''सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदीरितः।
अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त्त इत्युदाहृतः''।।49।।

'अपने मूलरूप का परित्याग करके अन्यरूप को ग्रहण करना ही 'विकार' इसप्रकार कहा गया है।
जैसे- दूध का दही रूप में परिवर्तित हो जाना।
* अपने रूप को बिना छोड़े अन्य वस्तु की मिथ्या प्रतीति 'विवर्त' कहलाता है। जैसे- रज्जु का सर्प रूप में प्रतीत होना।

शब्द- शब्द का तत्त्व आकाश है तमोगुण की प्रधानता से युक्त और विक्षेपशक्ति सम्पन्न अज्ञान से उपहित चैतन्य से आकाश उत्पन्न होता है।

अनुपहित चैतन्य- अज्ञान से उपहित चैतन्य ईश्वर और प्राज्ञ का आधारभूत जो अनुपहित चैतन्य होता है इसको तुरीय (चतुर्थ) कहा जाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदाहृतः।' यह विवर्त का लक्षण है।

अतः विकल्प B सही है।

स्रोत- वेदान्तसार - सन्तनारायण श्रीवास्तव्य, पेज 115

56. 'ब्रह्मसूत्रम्' इत्यस्य ग्रन्थस्य रचयिता कोऽस्ति?

(A) बादरायणः (B) पाराशरः
(C) शङ्कराचार्यः (D) जैमिनिः

व्याख्या-

बादरायणः- आचार्य बादरायण का समय 400 ई.पू. के लगभग निर्धारित किया जाता है। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'ब्रह्मसूत्र' में वेदान्त दर्शन के सिद्धान्तों को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। इस दृष्टि से इन्हें वेदान्तदर्शन का संस्थापक अथवा प्रणेता आचार्य भी कहा जाता है। भारतीय परम्परा महर्षि बादरायण तथा महर्षि पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास को एक ही स्वीकार करती है। ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय, सोलह पाद, एक सौ बानवे अधिकरणों में पाँच सौ पचपन सूत्र हैं। ब्रह्मसूत्र को ही उत्तरमीमांसा, बादरायणसूत्र, ब्रह्ममीमांसा, वेदान्तसूत्र, व्याससूत्र तथा शारीरक सूत्र के नाम से भी जाना जाता है।

आचार्य जैमिनि- आचार्य जैमिनि कृष्णद्वैपायन व्यास के सामवेदीय शिष्य थे। इन्होंने 'पूर्वमीमांसादर्शन' के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जैमिनिसूत्र' की संरचना की। इन्होंने सामवेद की राणायनीय नामक शाखा के जैमिनीय नामक नवम भेद की संरचना की। इसी प्रकार जैमिनीय ब्राह्मण तथा जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण नामक सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों का भी इन्होंने प्रणयन किया।

इसके अलावा इन्होंने जैमिनिसूत्र, जैमिनिनिघण्टु, 'जैमिनिपुराण','ज्येष्ठमाहात्म्य' 'जैमिनिभागवत', 'जैमिनिभारत', 'जैमिनिगृह्यसूत्र' तथा 'जैमिनिस्मृति' इत्यादि ग्रन्थों की भी संरचना की। आचार्य जैमिनि द्वारा विरचित 'जैमिनिसूत्र' पूर्वमीमांसा' अथवा 'कर्ममीमांसा' नाम से भी प्रसिद्ध है।

शङ्कराचार्यः- शङ्कराचार्य को अद्वैतवाद का प्रवर्तक आचार्य माना जाता है। अद्वैतमत को शाङ्करमत या शाङ्करदर्शन भी कहते हैं। ब्रह्मसूत्र पर उपलब्ध भाष्यों में सर्वाधिक प्राचीन शाङ्करभाष्य माना जाता है। शङ्कराचार्य का जन्म केरल प्रदेश की पूर्णा नदी के तटवर्ती ग्राम कालडी में वैशाख शुक्ल 5 को 788 ई॰ में हुआ। इनके पिता का नाम शिवगुरु तथा माता का नाम सुभद्रा था। शङ्कराचार्य ने वेदान्तसूत्र पर भाष्य लिखा। इसके अलावा इन्होंने उपनिषद्भाष्य, गीताभाष्य, विष्णुसहस्रनामभाष्य, सनत्सुजातीयभाष्य, हस्तामलकभाष्य, ललितात्रिशतीभाष्य, विवेकचूडामणि, प्रबोधसुधाकर, उपदेशसाहस्री, अपरोक्षानुभूति, शतश्लोकी, दशश्लोकी, मनीषापञ्चक आदि की रचना की।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण के आधार पर स्पष्ट है कि ब्रह्मसूत्र के रचनाकार बादरायण हैं। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार - राकेश शास्त्री, भू. पेज 04

57. 'शारीरक' इति नाम्ना किं भाष्यं प्रसिद्धमस्ति?

(A) सांख्यकारिकाभाष्यम् (B) मीमांसाभाष्यम्
(C) ब्रह्मसूत्रभाष्यम् (D) उपनिषद्भाष्यम्

व्याख्या- ब्रह्मसूत्रभाष्यम्- बादरायण रचित ब्रह्मसूत्र वेदान्तदर्शन का आधार ग्रन्थ है। यह प्रस्थानत्रयी में अन्यतम है- 1. उपनिषद् 2. ब्रह्मसूत्र 3. गीता। ब्रह्मसूत्र की महत्ता के कारण अनेक आचार्यों ने अपने-अपने मतानुसार इस पर भाष्य किये जिनमें से प्रमुख भाष्यों का विवरण निम्नलिखित है-

भाष्यकार	भाष्य का नाम	मत
1. शङ्कराचार्य	शारीरकभाष्य	केवलाद्वैत
2. भास्कर	भास्करभाष्य	भेदाभेद
3. रामानुज	श्रीभाष्य	विशिष्टाद्वैत
4. मध्व	पूर्णप्रज्ञभाष्य	द्वैत
5. निम्बार्क	वेदान्तपारिजात	द्वैताद्वैत
6. श्रीकण्ठ	शैवभाष्य	शैवविशिष्टाद्वैत
7. श्रीपति	श्रीधरभाष्य	वीर शैवविशिष्टाद्वैत
8. वल्लभाचार्य	अणुभाष्य	शुद्धाद्वैत
9. विज्ञानभिक्षु	विज्ञानामृत	अविभागाद्वैत
10. बलदेव	गोविन्दभाष्य	अचिन्त्य भेदाभेद

इन सभी भाष्यों में शंकराचार्य विरचित शारीरकभाष्य की कोई तुलना नहीं है। 'शारीरक' यानी इस शीर्यमाण कुत्सित शरीर में जो विशुद्ध चेतन आत्मा है। जो कि वस्तुतः परमात्मा से अभिन्न है- उसका विशदरूप से वर्णन करने वाला व्याख्या ग्रन्थ

शीर्यते रोगादिना इति शरीरम् (शृ +ईरन्), तस्मिन् शरीरे भवः शारीरम् (शरीर+अण्, शारीरम् एव शारीरकम्

शङ्कराचार्य जी ने प्रमुख उपनिषदों पर भी महत्त्वपूर्ण भाष्य किये।

* आचार्य वाचस्पति मिश्र ने साङ्ख्यकारिका पर साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी नामक टीका लिखी। गौडपादाचार्य द्वारा विरचित साङ्ख्यकारिका का भाष्य गौडपादभाष्य नाम से प्रसिद्ध है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शारीरकभाष्य ब्रह्मसूत्र पर है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार - राकेश शास्त्री, भू. पेज 04

58. 'दृष्टवदानुश्रविकः' इत्यस्मिन् सांख्यकारिकाप्रयोगे 'आनुश्रविकः' इत्यस्य पदस्य कोऽर्थः?

(A) श्रुतिः (B) स्मृतिः
(C) वेदाङ्गम् (D) पुराणम्

व्याख्या- आचार्य ईश्वरकृष्ण कृत साङ्ख्यकारिका की प्रथम कारिका में त्रिविध दुःखों की ऐकान्तिक और आत्यन्तिक निवृत्ति में दृष्ट उपायों को अनुपयोगी बताया। तत्पश्चात् द्वितीय कारिका में 'आनुश्रविक' अर्थात् वैदिक उपायों को भी दृष्ट उपायों के तुल्य बताकर उन्हें भी दुःखत्रय की ऐकान्तिक और आत्यन्तिक निवृत्ति में असमर्थ बताया-

दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।
तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्॥2॥

उपर्युक्त कारिका में आनुश्रविक पद वेद अर्थात् श्रुति के लिए आया है। 'आनुश्रविक' शब्द का निर्वचन साङ्ख्यतत्त्वकौमुदीकार आचार्य वाचस्पति मिश्र जी ने इस प्रकार किया है-

''गुरुपाठादनुश्रूयते इत्यनुश्रवो वेदः। एतदुक्तं भवति- श्रूयते एव परं न केनापि क्रियते। तत्र भव आनुश्रविकः, तत्र प्राप्तो ज्ञात इति यावत्।''

अर्थात् गुरु के द्वारा किए जाने वाले उच्चारण के अनन्तर जो सुना जाता है अर्थात् श्रवणेन्द्रिय का विषय बनता है, वह अनुश्रव अर्थात् वेद है। इसी कारण वेद को श्रुति भी कहा जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि जो गुरुपरम्परा से केवल सुना जाता है, रामायणादि के समान किसी व्यक्ति-विशेष के द्वारा निर्मित नहीं किया गया। उसमें होने वाला, अर्थात् अनुश्रव (वेद) में प्राप्त होने वाला, अर्थात् ज्ञात होने वाला 'आनुश्रविक' है।

वेद के अन्य पर्यायवाची- श्रुति, आम्नाय, छन्द, ब्रह्म, निगम आदि

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'आनुश्रविक' पद 'श्रुति' के लिए आया है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- सांख्यकारिका (कारिका 2)- राकेश शास्त्री, पेज 05

59. अव्यक्तं कीदृशं भवति?

(A) सक्रियम् (B) निष्क्रियम्
(C) आश्रितम् (D) सावयवम्

व्याख्या- महर्षि कपिलमुनि प्रणीत 'सांख्यदर्शन' के प्रकरणग्रन्थ महर्षि ईश्वरकृष्ण द्वारा रचित सांख्यकारिका ग्रन्थ है जिसमें व्यक्त तथा अव्यक्त के विषय में बताया गया है। प्रस्तुत विकल्प में सक्रियम्, आश्रितम्, तथा सावयवम् व्यक्त का लक्षण है अतः निष्क्रियम् अव्यक्त का लक्षण है।

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥10॥

व्यक्त	अव्यक्त
हेतुमत्	कारणरहित
अनित्यम्	नित्य
अव्यापी	व्यापक
सक्रियम्	निष्क्रियम्
अनेकम्	एकम्
आश्रितम्	अनाश्रितम्
लिङ्गम्	लिङ्गरहित
सावयवम्	निरवयव
परतन्त्रम्	स्वतन्त्रम्

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि निष्क्रियम् अव्यक्त का धर्म है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- सांख्यकारिका (कारिका 10)- राकेश शास्त्री, पेज 37

60. व्यक्तस्य च प्रधानस्य च कः समानधर्मः?

(A) त्रिगुणत्वम् (B) सक्रियत्वम्
(C) हेतुमत्वम् (D) लिङ्गत्वम्

व्याख्या- कपिलमुनि प्रणीत 'सांख्यदर्शन' का प्रकरण ग्रन्थ ईश्वरकृष्ण द्वारा रचित 'सांख्यकारिका' है। जिसमें व्यक्त तथा प्रधान अर्थात् अव्यक्त के समान धर्म और दोनों के विपरीत धर्म बताये गये हैं।

'त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं, तद्विपरीतस्तथा च पुमान्'॥ 11॥
(सा॰का॰ 11)

व्यक्त तथा प्रधान के समान धर्म		पुरुष (विपरीत)
त्रिगुणम्	–	गुणरहितता
अविवेकि	–	विवेकित्व
विषयः	–	अविषयत्व
सामान्यम्	–	असामान्यत्व
अचेतनम्	–	चेतनत्व
प्रसवधर्मि	–	अप्रसवधर्मित्व

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विकल्प A 'त्रिगुणत्वम्' व्यक्त तथा प्रधान दोनों का समान धर्म है इसके विपरीत सक्रियत्व, हेतुत्वम् तथा लिङ्गम् धर्म है।

अतः विकल्प A सही है।

स्रोत- सांख्यकारिका (कारिका 11)- राकेश शास्त्री, पेज 38

61. सांख्यदर्शनानुसारं ''त्रैगुण्यविपर्ययात्'' किं सिध्यति?

(A) अव्यक्तस्यनित्यत्वम् (B) पुरुषबहुत्वम्
(C) व्यक्तस्यत्रिगुणात्मकत्वम् (D) अव्यक्तस्यकारणत्वम्

व्याख्या- ईश्वरकृष्ण अपनी कृति सांख्यकारिका में पुरुष की सत्ता सिद्ध करने के बाद सांख्य के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त 'पुरुष-बहुत्व' के सिद्धान्त प्रतिपादित करने के लिए निम्न कारिका प्रस्तुत करते हैं-

''जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव''।।का.18।।

उपर्युक्त कारिका द्वारा पुरुषबहुत्व की सत्ता सिद्ध करने के लिए ग्रन्थकार ने तीन हेतु बताये हैं-

अर्थ- जन्म, मरण और इन्द्रियों की व्याख्या होने के कारण और एक साथ प्रवृत्ति का अभाव होने से तथा तीनों गुणों के भेद के कारण ही पुरुषों की अनेकता सिद्ध होती है।

जन्ममरणकरणानां- पुरुष अर्थात् आत्मा अनेक हैं, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का जन्म और मरण अलग-अलग समय में होता है। यदि पुरुष एक होता तो सभी का एक साथ जन्म और एक साथ मरण होता किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता। इसलिए जन्म- मरण की अलग-अलग व्यवस्थाओं के कारण पुरुष की अनेकता सिद्ध होती है।

अयुगपत्प्रवृत्तेः- यदि एक ही पुरुष की सत्ता सभी शरीरों में स्वीकार की जाए तो उनकी सभी क्रियाएँ एक साथ होनी चाहिए। जैसे- एक के बैठने पर सभी बैठे, एक के चलने पर सभी शरीर चले, किन्तु व्यवहार में इस प्रकार की, एक साथ आचरण करने की प्रवृत्ति नहीं देखी जाती है। प्रत्येक शरीर की एक ही समय में अलग-अलग क्रियाएँ होती हैं। अतः पुरुष (आत्मा) एक नहीं अनेक हैं।

त्रैगुण्यविपर्ययात्- पुरुषबहुत्व को सिद्ध करने के लिए कारिका के अन्त में तृतीय तर्क का उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि इस संसार में भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले लोग हैं और यह स्वभाव परिवर्तन उनमें स्थित सत्व, रजस् और तमोगुण की भिन्नता अर्थात् न्यूनाधिक्य के कारण होता है। जैसे ऊर्ध्वतेजस् योगी में सत्त्वगुण की अधिकता होती है। सामान्य व्यक्ति में रजोगुण प्रभावी रहता है, किन्तु पशु-पक्षी एवं आलसी व्यक्ति में तमोगुण का बाहुल्य होता है। यदि प्रत्येक शरीर में एक पुरुष की सत्ता होती तो प्राणियों में इस प्रकार इन तीन गुणों का वैषम्य नहीं होता और वे सब एक स्वभाव वाले होंगे, किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं है। इसलिए प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न पुरुषों की सत्ता स्वीकार करना उचित है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सांख्य दर्शन के अनुसार 'त्रैगुण्यविपर्ययात्' पुरुष की बहुलता सिद्ध करता है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- सांख्यकारिका (कारिका 18)- राकेश शास्त्री, पेज 59

62. अधस्तनानां केन सह कस्य सम्बन्धः? समीचीनां तालिकां चिनुत-

(क) मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्	(i) स्वाध्यायात्
(ख) इष्टदेवतासम्प्रयोगः	(ii) यमाः
(ग) अनुभूतविषयासम्प्रमोषः	(iii) विपर्ययः
(घ) सार्वभौमा महाव्रतम्	(iv) स्मृतिः

Options

	(क)	(ख)	(ग)	(घ)
(A)	(iii)	(i)	(iv)	(ii)
(B)	(i)	(iii)	(ii)	(iv)
(C)	(ii)	(i)	(iii)	(iv)
(D)	(iv)	(ii)	(i)	(iii)

व्याख्या- महर्षि पतञ्जलि योगसूत्र के प्रथमपाद समाधिपाद में प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति इन पाँच प्रकार की वृत्तियों की चर्चा करते हैं जिसमें विपर्यय और स्मृति वृत्तियों का लक्षण इस प्रकार है-

1. **विपर्यय-** विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् (1.8)
   शेष वस्तु से भिन्न रूप में प्रतिष्ठित मिथ्याज्ञान 'विपर्यय' कहा जाता है।
2. **स्मृति-** अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः (1.11)
   अनुभूतविषय की चित्त में उपस्थिति (अस्तेय) 'स्मृति' नामक वृत्ति कहलाती है।
3. **सार्वभौम महाव्रत-** जातिदेशकालसमयानवच्छिन्ना सार्वभौमा-महाव्रतम् (2.31)
   जाति, देश, काल और आचार परम्परा से सीमित न होते हुए ये सार्वभौम (यम) महाव्रत कहे जाते हैं।
4. **स्वाध्यायात्-** स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः (2.44)
   स्वाध्याय के स्थिर होने से इष्ट देवताओं का सम्पर्क होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **विकल्प A सही है।**

स्रोत- पातञ्जलयोगदर्शनम् - सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, पेज 36-45

63. ''यथा मधुकरराजं मक्षिका उत्पतन्तमनूत्पतन्ति, निविशमानमनुनिविशन्ते तथेन्द्रियाणि चित्तनिरोधे निरुद्धानीत्येषः...।''
एषा व्याख्या कस्य योगाङ्गस्य, व्यासभाष्यानुसारेण?

(A) प्रत्याहारस्य (B) धारणायाः
(C) ध्यानस्य (D) ब्रह्मचर्यस्य

व्याख्या- महर्षि पतञ्जलि योगसूत्र के द्वितीयपाद साधनपाद में योग के आठ अङ्गों की चर्चा करते हैं-

*** अष्टाङ्गयोग- ''यमनियमाऽऽसन प्राणायाम प्रत्याहार-धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि'' (2.29)**

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि- ये आठ योग के अङ्ग हैं।

यम नियमादि की व्यवस्था के बाद यथावसर 'प्रत्याहार योगाङ्ग की चर्चा करते हैं-

*** प्रत्याहार- स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः** (2।54)

अपने विषयों के साथ सन्निकर्ष न होने पर इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप का अनुसरण सा कर लेना 'प्रत्याहार' है। इस सूत्र की व्याख्या में व्यासभाष्य में भाष्यकार लिखते हैं-

''यथा मधुकरराजं मक्षिका उत्पतन्तम् अनूत्पतन्ति, निविशमानमनुनिविशन्ते तथेन्द्रियाणि चित्तनिरोधे निरुद्धानीत्येषः प्रत्याहारः''

जैसे- मधुमक्खियाँ उड़ते हुए मधुमक्खियों के राजा के पीछे उड़ जाती हैं और बैठते हुए उस मधुमक्खियों के राजा के पीछे बैठ जाती हैं, वैसे ही इन्द्रियाँ भी चित्त का निरोध होने पर निरुद्ध हो जाती है। यही 'प्रत्याहार' है।

*** धारणा- देशबन्धचित्तस्य धारणा (3/1)**

चित्त का सात्विक वृत्ति को किसी बाहरी या भीतरी प्रदेश में लगाना 'धारणा' है।

*** ध्यान- तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम् (3/2)**
एक विषय में ज्ञान की एकतानता ही ध्यान है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रश्नोक्त व्यासभाष्य की पंक्तियाँ प्रत्याहार योगाङ्ग के विषय में कही गयी हैं। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- पातञ्जलयोगदर्शनम् (2/54)-सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, पेज 314

64. योगदर्शनस्य व्यासभाष्यानुसारेण चित्तभूमीनां समुचितः क्रमोऽस्ति-
(A) क्षिप्तम्, विक्षिप्तम्, मूढम्, एकाग्रम्, निरुद्धम्।
(B) क्षिप्तम्, मूढम्, विक्षिप्तम्, एकाग्रम्, निरुद्धम्।
(C) विक्षिप्तम्, मूढम्, एकाग्रम्, क्षिप्तम्, निरुद्धम्।
(D) निरुद्धम्, मूढम्, विक्षिप्तम्, क्षिप्तम्, एकाग्रम्।

व्याख्या- महर्षि पतञ्जलि पातञ्जलयोगदर्शन के समाधिपाद में ''अथ योगानुशासनम्'' अब योगशास्त्र आरम्भ हुआ। इस सूत्र के व्यासभाष्य में भाष्यकार कहते हैं- अथेत्ययमधिकारार्थः.... योगः समाधिः......क्षिप्तं, मूढं, विक्षिप्तमेकाग्रं, निरुद्धमिति चित्तभूमयः।

चित्त की पाँच भूमियाँ- चित्त की पाँच भूमियाँ बतायी गयी हैं- 1. क्षिप्त 2. मूढ 3. विक्षिप्त 4. एकाग्र और 5. निरुद्ध-ये पाँच चित्त की भूमियाँ या अवस्थायें हैं।

(1) **क्षिप्तम्- रजसा विषयेष्वेव वृत्तिमत्-** रजोगुण के उद्रेक के कारण विषयों में ही व्यापृत रहने वाली चित्तकी अवस्था क्षिप्त भूमि है।

(2) **मूढम्- तमसा निद्रादिवृत्तिमत् -** तमोगुण के उद्रेक के कारण मूर्च्छादि व्यापारवान् चित्त की स्थिति मूढ भूमि कही जाती है।

(3) **विक्षिप्तम्- क्षिप्ताद्विशिष्टं विक्षिप्तं सत्त्वाधिक्येन समादधदपि चित्तं रजोमात्रयाऽन्तराऽन्तरा विषयान्तरवृत्तिमद्-** क्षिप्तादि भूमि से कुछ बेहतर या अच्छी भूमि इसमे सत्त्वगुणाधिक्य रहता है इसमें किञ्चित्कालपर्यन्त समाधि लगने पर रजोगुण के जोर मारते रहने के कारण बीच-बीच में अन्य विषयों की ओर चित्त दौड़ जाता है। चित्त की यह अवस्था इसकी 'विक्षिप्त' नामक भूमि कही जाती है।

4. एकाग्रम्- ''एकस्मिन्नेव विषयेऽग्रं शिखा यस्य चित्त दीपस्येत्येकाग्रं....''
इस अवस्था में चित्त की सात्त्विक वृत्ति किसी एक विषय की ओर लगी रहती है, रजोगुण और तमोगुण दबे रहते हैं, अतः उस एक विषय की ओर अग्र या उन्मुख वृत्ति वाली अवस्था को 'एकाग्रभूमि' कहते हैं।

5. निरुद्धम्- ''निरुद्धं च निरुद्धसकलवृत्तिकं संस्कारमात्रशेषम् इत्यर्थः'' जिस अवस्था में चित्त की तामस और राजसी वृत्तियों के साथ-साथ सात्त्विक वृत्तियों का भी निरोध हो जाता है। केवल संस्कारमात्र चित्त में रहते हैं, उसे 'निरुद्धभूमि' कहते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि चित्त की पाँच भूमियों का सही क्रम विकल्प B में उल्लिखित है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- पातञ्जलयोगदर्शनम् - सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, पेज 01

65. जैनदर्शनानुसारेण निम्नाङ्कितस्य सप्तभङ्गिन्यायस्य समुचितः क्रमः कोऽस्ति?
(A) स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति च वक्तव्यः, स्यान्नास्ति चावक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः।
(B) स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति चावक्तव्यः, स्यान्नास्ति चावक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यम् ।
(C) स्यादस्ति च नास्ति चावक्तयः, स्यान्नास्ति चावक्तव्यः, स्यात् अस्ति, स्यादस्ति चावक्तव्यः, स्याद्वक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति।
(D) स्यादस्ति, स्याद्वक्तव्यः, स्यादस्ति चावक्तव्यः, स्यादास्ति च नास्ति च, स्यान्नास्ति चावक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः।

व्याख्या- जैनदर्शन के स्याद्वाद को 'सप्तभङ्गीनय' भी कहते हैं। ये सात भङ्ग इस प्रकार हैं-
1. स्याद् अस्ति- सापेक्षतया वस्तु है।
2. स्यात् नास्ति- सापेक्षतया वस्तु नहीं है।
3. स्याद् अस्ति च नास्ति च - सापेक्षतया वस्तु है और नहीं है।
4. स्याद् अवक्तव्यम्- सापेक्षतया वस्तु अवक्तव्य है।
5. स्याद् अस्ति च अवक्तव्यम्- सापेक्षतया वस्तु है और अवक्तव्य है।
6. स्याद् नास्ति च अवक्तव्यम्- सापेक्षतया वस्तु नहीं है और अवक्तव्य है।
7. स्याद् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यम्- सापेक्षतया वस्तु है, नहीं है और अवक्तव्य भी है।

* जैन दर्शन के अनुसार किसी वस्तु का ज्ञान उसके द्रव्य, रूप, देश और काल की दृष्टि से किया जाता है। वस्तु की अपने द्रव्य, रूप, देश और काल की दृष्टि से सत्ता है किन्तु अन्य द्रव्य, रूप, देश और काल की दृष्टि से सत्ता नहीं है। ज्ञान की इस सापेक्षता के प्रकाशन के लिए प्रत्येक न्यायवाक्य के पूर्व 'स्यात्' पद का प्रयोग किया जाता है।

* प्रथम भङ्ग 'स्यात् अस्ति' को यदि घड़े के विषय में प्रयुक्त करें तो इसका अर्थ है- सापेक्षतया घड़ा है अर्थात् मिट्टी का बना हुआ, गोल आकार का घड़ा, इस कमरे में, इस समय विद्यमान है किन्तु द्वितीय भङ्ग 'स्यात् नास्ति' के अनुसार सापेक्षतया घड़ा नहीं है- अर्थात् घड़ा पीतल का नहीं है, चौकोर नहीं है, उस कमरे में नहीं है और अन्य समय में नहीं है। इस वाक्य में घड़े के अस्तित्व का निषेध है। तृतीय भङ्ग 'स्यात् अस्ति नास्ति' का अर्थ है, सापेक्षतया घड़ा है भी और नहीं भी है, अर्थात् घड़ा मिट्टी का है पीतल का नहीं है, गोल है चौकोर नहीं, इस कमरे में है उस कमरे में नहीं, इस समय है अन्य समय में नहीं। इस वाक्य में घड़े के अस्तित्व का विधान और निषेध दोनों हैं।

* चतुर्थ भङ्ग 'स्यात् अवक्तव्यम्' का अर्थ है कि वस्तु में यद्यपि अस्तित्व और नास्तित्व दोनों एक साथ विद्यमान रहते हैं तथापि भाषा की सीमा के कारण हम इन दोनों का विधान एक साथ नहीं कर सकते। यहाँ अवक्तव्यम् का अर्थ है कि युगपत् निर्वचन की अशक्यता।

* शेष तीन भङ्ग चतुर्थ भङ्ग को क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय भङ्ग के साथ मिला देने से बनते हैं। जैन न्याय के अनुसार नय के ये सात भङ्ग या प्रकार होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **विकल्प B सही है।**

स्रोत- सर्वदर्शनसंग्रह - उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 146

66. अधोलिखितानां केन सह कस्य सम्बन्धः?
समीचीनां तालिकां चिनुत।

(क) माध्यमिकाः	(i) बाह्यार्थानुमेयत्वम्
(ख) योगाचाराः	(ii) सर्वशून्यत्वम्
(ग) सौत्रान्तिकाः	(iii) बाह्यार्थप्रत्यक्षत्वम्
(घ) वैभाषिकाः	(iv) बाह्यार्थशून्यत्वम्

Options

	(क)	(ख)	(ग)	(घ)
(A)	(iii)	(i)	(ii)	(iv)
(B)	(iv)	(i)	(iii)	(ii)
(C)	(ii)	(iv)	(i)	(iii)
(D)	(i)	(iii)	(iv)	(ii)

व्याख्या- बौद्ध लोग चार प्रकार की भावना (दृष्टिकोण) से परम पुरुषार्थ का वर्णन करते हैं- 1. माध्यमिक, 2. योगाचार, 3. सौत्रान्तिक और 4. वैभाषिक

4- **माध्यमिक या शून्यवाद-** यह मत नागार्जुन (दूसरी शती ई.) से सम्बद्ध है जिनके माध्यमिक शास्त्र के अनुसार संसार असत् या शून्य है (सर्वशून्यत्वम्)। द्रष्टा, दृश्य, दर्शन सभी स्वप्न के समान भ्रम हैं। फिर भी शून्य का अभिप्राय ऐसा सत् है जो चतुष्कोटि (सत्, असत्, सदसत्, असन्नासत्) से विलक्षण, अनिर्वचनीय है। व्यावहारिक वस्तुएँ सभी शून्य या असत् हैं किन्तु उनकी पृष्ठभूमि में ऐसी सत्ता है जो अनौपाधिक और अविकृत है। माध्यमिक-कारिका में कहा गया है-

न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्।
चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदुः॥

* स्मरणीय है कि शंकराचार्य ने अनुभयात्मक के अलावा सभी को स्वीकार कर ब्रह्म की शक्ति माया को कोटित्रयशून्य कहा है जिसके फलस्वरूप उन्हें प्रच्छन्न बौद्ध की सञ्ज्ञा कुछ लोग दिया करते हैं।

योगाचार- दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, असंग आदि आचार्य इस मत के पोषक रहे हैं। इसके अनुसार बाह्य अर्थ तो शून्य है किन्तु चित्त जो सभी वस्तुओं का ज्ञाता है, कभी भी असत् नहीं हो सकता अन्यथा हमारे ज्ञान भी असत् हो जाएँगे। इसी कारण सर्व दर्शनसङ्ग्रहकार माधवाचार्य ने इनका सिद्धान्त 'बाह्यार्थशून्यत्वं' बताया है।

सौत्रान्तिक- माध्यमिक और योगाचार सम्प्रदाय जहाँ महायान के हैं, सौत्रान्तिक और वैभाषिक हीनयान के भेद हैं। सौत्रान्तिक मतानुसार मानसिक और बाह्य दोनों पदार्थ सत् हैं यद्यपि बाह्य पदार्थों के प्रत्यक्ष के लिए विषय, चित्त, इन्द्रियाँ तथा सहायक तत्त्वों जैसे प्रकाश आकार- इन चार वस्तुओं की आवश्यकता होती है।

वैभाषिक- बाह्य वस्तुओं को अनुमेय न मानकर ये पूर्णतया प्रत्यक्षगम्य मानते हैं क्योंकि जब तक उनका प्रत्यक्ष न हो, उनकी सत्ता किसी दूसरे साधन से सिद्ध नहीं हो सकती; इसीलिए इनका सिद्धान्त 'बाह्यार्थप्रत्यक्षत्वम्' कहा जाता है। विभाषा या अभिधर्ममहाविभाषा नामक ग्रन्थ में इनके सिद्धान्त प्रतिपादित हैं इसलिए इनका 'वैभाषिक' नाम पड़ा।

माध्यमिक और योगाचार, बौद्धों के महायान सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं और सौत्रान्तिक तथा वैभाषिक हीनयान के भेद हैं।

स्पष्टीकरण- इस प्रकार स्पष्ट है कि-

(i) माध्यमिक- सर्वशून्यत्वम्
(ii) योगाचार - बाह्यार्थशून्यत्वम्
(iii) सौत्रान्तिक - बाह्यार्थनुमेयत्वम्
(iv) वैभाषिक - बाह्यार्थप्रत्यक्षत्वम्

अतः विकल्प C सही है।

स्रोत- सर्वदर्शनसंग्रह - उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि', पेज 31

67. अधस्तनयुग्मानां समीचीनां तालिकां चिनुत-

(क) हर्षचरितम्	(i) शूद्रकः
(ख) मुद्राराक्षसम्	(ii) दण्डी
(ग) दशकुमारचरितम्	(iii) विशाखदत्तः
(घ) मृच्छकटिकम्	(iv) बाणभट्टः

Options

	(क)	(ख)	(ग)	(घ)
(A)	(iv)	(iii)	(ii)	(i)
(B)	(iii)	(ii)	(i)	(iv)
(C)	(ii)	(iv)	(iii)	(i)
(D)	(i)	(ii)	(iv)	(iii)

व्याख्या- शूद्रक- मृच्छकटिक नाटक के लेखक के विषय में बहुत विवाद है। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने इस विषय में पर्याप्त विवेचन किया है, परन्तु अभी तक कोई निश्चित मत निर्धारित नहीं हो सका है। शूद्रक के समय के विषय में भी पर्याप्त मतभेद है- भास ने चार अंकों में 'चारुदत्त' नामक नाटक लिखा जो कि अपूर्ण माना गया। इसी में शूद्रक ने 6 अंक जोड़कर 10 अंकों का मृच्छकटिक नाटक लिखा। अतः शूद्रक भास के परवर्ती हुए। भास का समय 5वीं शताब्दी ई.पू. है अतः शूद्रक 5वीं ई.पू. के बाद हुए। इसी प्रकार वामन (775ई. के लगभग) ने शूद्रक के प्रबन्ध (नाटक) का उल्लेख किया है-

''शूद्रकादिरचितेषु प्रबन्धेष्वस्य भूयान् प्रपञ्चो दृश्यते।''

अतः स्पष्ट है कि शूद्रक का समय 750 ई. के बाद का नहीं हो सकता।

1- मृच्छकटिकम्- मृच्छकटिकम् नाटक शूद्रककृत 10 अंकों का एक प्रकरण ग्रन्थ है। इसका नायक चारुदत्त नाम का एक निर्धन ब्राह्मण तथा नायिका वसन्तसेना नाम की एक गणिका है। इसमें 'पालक' नामक राजा को मारकर आर्यक के राजा होने का वर्णन है। इसमें नाटकीयता के साथ काव्य का भी समन्वय है। इसमें शृंगार (सम्भोग शृंगार) रस अंगी है और हास्य, करुण, भय, अद्‌भुत आदि अंग रस हैं।

इसमें दो प्रणय कथाएँ और एक राजनीतिक कथा परस्पर संश्लिष्ट एवं अविभाज्य रूप से प्रस्तुत की गई है- (i) चारुदत्त और वसन्तसेना। (ii) शर्विलक और मदनिका की प्रणय कथा।

(2) दशकुमारचरितम्- दशकुमारचरितम् दण्डी द्वारा विरचित एक गद्यकाव्य है। इसका वर्तमान स्वरूप तीन भागों में विभाजित है- 1. पञ्च उच्छ्‌वासात्मक पूर्वपीठिका 2. अष्ट उच्छ्‌वासात्मक दशकुमारचरित और 3. उत्तरपीठिका। 10 राजकुमारों द्वारा अपने-अपने पर्यटनों, विचित्र अनुभवों तथा पराक्रमों का मनोरञ्जनात्मक वर्णन है।

(3) मुद्राराक्षसम्- विशाखदत्तरचित मुद्राराक्षस 7 अंको का राजनीति विषयक नाटक है। इसमें मुद्रा (अंगूठी) द्वारा नन्द वंश के मुख्य मंत्री राक्षस को वश में करने का वर्णन है। अतः इसका नाम मुद्राराक्षस पड़ा। विशाखदत्त ने परंपरागत राजा (चन्द्रगुप्त) को नायक न मानकर प्रधानामात्य (चाणक्य) को नायक बनाया है। मुद्राराक्षस में नायिका और विदूषक का अभाव, रक्तपात के बिना वीर रस का वर्णन, शृंगार और हास्य रस का अभाव है।

मुद्राराक्षस के अलावा विशाखदत्त के नाम से दो अन्य रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है। 1. देवीचन्द्रगुप्तम्, 2. अभिसारिकवंचितक या अभिसारिकाबन्धितक।

(4) हर्षचरितम्- हर्षचरितम् महाकवि बाणभट्ट की प्रथम रचना है। यह ऐतिहासिक वृत्त पर आधारित होने से गद्यकाव्य का भेद आख्यायिका है। इसमें 8 उच्छ्‌वास हैं। प्रथम दो उच्छ्‌वासों में हर्ष ने अपने वंश का वर्णन किया है और आगे के 6 उच्छ्‌वासों में हर्ष के पूर्वजों का वर्णन करते हुए हर्ष के जन्म से लेकर राज्यश्री के मिलने तक का वर्णन है।

हर्षचरित के अतिरिक्त बाणभट्ट की दो अन्य रचनाएँ कादम्बरी (कथा) तथा चण्डीशतक (दुर्गा की स्तुति का काव्य) भी प्राप्त होती हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि दिये गये विकल्पों में **विकल्प A सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि', पेज 396, 504, 318, 491

68. अभिज्ञानशाकुन्तले शकुन्तलायाः प्रतिकूलदैवशमनार्थं कण्वः कुत्र गतः?

(A) काशीतीर्थम् (B) प्रयागतीर्थम्
(C) काञ्चीतीर्थम् (D) सोमतीर्थम्

व्याख्या- ''इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः।''

जब राजा दुष्यंत हिरण का पीछा करते हुए जंगल में महर्षि कण्व के आश्रम के समीप पहुँचते हैं तो कण्व के शिष्य वैखानस से पूछते हैं कि क्या महर्षि कण्व आश्रम में हैं तो वैखानस जवाब देता है कि- अभी ही अपनी पुत्री शकुन्तला को अतिथि सत्कार के लिए नियुक्त करके उसके प्रतिकूल भाग्य को शान्त करने के लिए सोमतीर्थ को गये हुए हैं।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नामक नाटक में कुल सात (7) अंक हैं। इसके प्रथम अंक में यह जानकारी दी गई है कि कण्व शकुन्तला के प्रतिकूल भाग्य को शान्त करने के लिए सोमतीर्थ गये हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि प्रश्न में दिये गये चार विकल्पों में **विकल्प D सही है।**

स्रोत- अभिज्ञानशाकुन्तलम् (प्रथमोऽङ्कः)-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 31

69. ''उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी'' अभिज्ञानशाकुन्तले इयमुक्तिर्भवति-

(A) मारीचस्य (B) शारद्वतस्य

(C) कण्वस्य (D) शार्ङ्गरवस्य

व्याख्या-

* कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तलम् न केवल भारतवर्ष अपितु विश्व का सर्वोत्तम नाटक रत्न है। इसमें कुल सात अङ्क हैं।
* कालिदास को भारत का शेक्सपियर भी कहा जाता है।
* अभिज्ञानशाकुन्तलम् शृंगार रस प्रधान नाटक है।
* इसका नायक दुष्यन्त धीरोदात्त प्रकृति का है।
* नायिका शकुन्तला राजर्षि विश्वामित्र और मेनका अप्सरा की पुत्री है। जन्म से परित्यक्त शकुन्तला का पालन-पोषण कण्व ऋषि ने किया है।
* अभिज्ञानशाकुन्तलम् के अन्य प्रमुख पात्रों में कण्व अथवा कश्यप ऋषि, विदूषक, अनसूया और प्रियंवदा (शकुन्तला की सहेलियाँ), शार्ङ्गरव और शारद्वत, महर्षि मारीच आदि हैं।

प्रमुख उक्तियाँ (कण्व का कथन)

(1) पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः-

अर्थ- गृहस्थ लोग नवीन (पहली बार) पुत्री वियोग से कितना अधिक दुःखित होते होंगे।

(2) 'सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्-

अर्थ- वह यह शकुन्तला (सम्प्रति) अपने पतिगृह को जा रही है, तुम सब अपनी स्वीकृति दो।

(3) 'वाष्पं कुरु स्थिरतया विरतानुबन्धम्' (काश्यप)

अर्थ- नेत्रों की दर्शनशक्ति को रोकने वाले अश्रु (प्रवाह) को धैर्यपूर्वक रोको।

(4) 'मार्गे पदानि खलु ते विषमी भवन्ति'

अर्थ- इस मार्ग में तुम्हारे पैर वस्तुतः लड़खड़ा रहे हैं।

(5) 'सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते'-

अर्थ- पुत्र के समान पाला गया यह हरिण तुम्हारे मार्ग को नहीं छोड़ रहा है।

शार्ङ्गरव का कथन -

(1)- 'जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव'-

अर्थ- लोगों (भीड़) से संकुल (युक्त) इस राजगृह को अग्नि से घिरे हुए घर के समान समझ रहा हूँ।

(2)- ''चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः''-

अर्थ- प्रजापति चिरकाल के पश्चात् निन्दा के पात्र नहीं हुए।

(3)- ''शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया।''-

अर्थ- और शकुन्तला शरीरधारिणी सत्क्रिया (पूजा) है।

(4)- ''किं कृतकार्यद्वेषो धर्मं प्रति विमुखता कृतावज्ञा?'' (5.18)

अर्थ- क्या आप अपने किये हुए कार्य से घृणा करते हैं? या धर्म के प्रति विमुख हो रहे हैं अथवा किये हुए (कार्य) का निरादर कर रहे हैं।

शारद्वत का कथन- (1) 'स्थाने भवान् पुरप्रवेशादित्थंभूतः संवृत्तः।'-

अर्थ- यह उचित ही है कि आप नगर में प्रवेश करने से इस प्रकार के हो गये हैं।

(2)- ''अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम्।''

अर्थ- नहाया हुआ (व्यक्ति) तेल लगाये हुए को, पवित्र (व्यक्ति) अपवित्र को, जागा हुआ (व्यक्ति) सोये हुए को (समझता है)।

(3) ''उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोन्मुखी।''

अर्थ- क्योंकि पत्नी पर (पति की) सब प्रकार की प्रभुता (अधिकार) स्वीकार की गई है।

मारीच का कथन- (1)- ''तत्कोटिमत्कुलिशमाभरणं मघोनः''-

अर्थ- वह वज्र इन्द्र का आभूषण हो गया है।

(2)- ''दुष्यन्त इत्यभिहितो भुवनस्य भर्ता।''-

अर्थ- यह दुष्यन्त इस नाम से प्रसिद्ध पृथ्वी का स्वामी है।

(2) ''आशीरन्या न ते योग्या पौलोमी सदृशी भव।''-

अर्थ- तुम इन्द्राणी के समान होओ, अन्य कोई आशीर्वाद तुम्हारे योग्य नहीं है।

(3)- ''श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम्''- अर्थ- (सौभाग्य से) श्रद्धा, धन और विधि ये तीनों यहाँ एकत्र हो गए हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'उपपन्ना हि दारेषु....।' उक्ति शारद्वत ने कही है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- अभिज्ञानशाकुन्तलम् (5/26)-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 294

70. मेघदूते अस्याः नद्याः उल्लेखो नास्ति?

(A) तुङ्गभद्रा (B) रेवा

(C) गन्धवती (D) गम्भीरा

व्याख्या- मेघदूतम् कालिदास प्रणीत प्रसिद्ध खण्डकाव्य या गीतिकाव्य है।
मेघदूतम् दो भागों -(1) पूर्वमेघ (2) उत्तरमेघ में विभक्त है।
* इसका प्रधानरस विप्रलम्भशृंगार है तथा छन्द मन्दाक्रान्ता है।
* मेघदूत की रीति वैदर्भी रीति मेघदूतम् का उपजीव्य- ब्रह्मवैवर्तपुराण तथा वाल्मीकि रामायण
* नायक- यक्ष (हेममाली), नायिका- यक्षिणी (विशालाक्षी)
* मैक्समूलर ने मेघदूतम् का जर्मन भाषा में पद्यानुवाद और श्वेट्ज ने जर्मनभाषा में गद्यानुवाद किया।
* डॉ॰ कीथ ने मेघदूत को शोकगीत (Elegy) कहा है।
मेघदूतम् में कुल 115 पद्य हैं। पूर्वमेघ में 63 पद्य और उत्तरमेघ में 52 पद्य
* मेघदूतम् का नायक 'यक्ष' धीरललित नायक है तथा नायिका यक्षिणी स्वकीया एवं पद्मिनी है।
* मेघदूतम् में वर्णित प्रमुख नदियाँ- रेवा, वेत्रवती, निर्विन्ध्या, सिन्धु, शिप्रा, गन्धवती, गम्भीरा, चर्मण्वती, सरस्वती, (गङ्गा) जाह्नवी, यमुना तथा मानसरोवर

(1) ''रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम्।''
अर्थ- तुम आगे बढ़ोगे तो तुम्हें चट्टानों के कारण ऊबड़-खाबड़ विन्ध्याचल की तलहटी में बिखरी हुई अर्थात् सभी ओर बह रही नर्मदा (रेवा) नदी दिखाई देगी।

(2) ''धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्याः।''
अर्थ- वही समीप ही एक छोटी नदी बहती है। जिसका नाम गन्धवती है। यहाँ जब युवतियाँ स्नान करती हैं तो उनके शरीर में लगे हुए सुगंधित द्रव्य जल में घुल जाते हैं। वहाँ जल विहार करती हुई युवतियों के स्नान करने से महकता हुआ और कमल की गंध से बसी हुई इस नदी की ओर से आने वाला पवन महाकाल के मन्दिर के उपवन को बारंबार झुला रहा होगा।

(3) ''गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने।''
अर्थ- वहाँ से आगे चलने पर तुम्हें गम्भीरा नदी मिलेगी। उस नदी के निर्मल जल पर तुम्हारे सहज सलोने शरीर की परछाई स्पष्ट दिखाई देगी।

मेघदूतम् में वर्णित पर्वतः- रामगिरि, आम्रकूट, विन्ध्य, नीचगिरि, देवगिरि, हिमालय, क्रौञ्चपर्वत, कैलाश।

मेघदूतम् में वर्णित प्रमुख नगरः- मालदेश, दशार्ण, विदिशा, उज्जयिनी, विशाला, अवन्ति, दशपुर, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, कनखल, अलका।

मेघदूतम् में वर्णित मेघमार्गः- रामगिरि-मालदेश-आम्रकूट-विन्ध्य-नर्मदा-दशार्ण- विदिशा-वेत्रवती-नीचैर्गिरि-उज्जयिनी- निर्विन्ध्या-अवन्ति-सिन्धु-शिप्रा-गन्धवती-गम्भीरा-देवगिरि-चर्मण्वती-दशपुर-कुरुक्षेत्र- सरस्वती- कनखल-हिमालय-गङ्गा- क्रौञ्च-कैलाश-मानसरोवर-अलकापुरी।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तुङ्गभद्रा नदी का उल्लेख मेघदूतम् में नहीं हुआ है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- मेघदूतम् , दयाशंकर शास्त्री, पूर्वमेघ, श्लोक 20,37,45-पेज 89,123,139

71. ''सुलभेष्वर्थलाभेषु परसंवेदने जनः।
क इदं दुष्करं कुर्यादिदानीं शिविना विना॥
एषा उक्तिः कं लक्षयति?

(A) चाणक्यम् (B) राक्षसम्
(C) चन्दनदासम् (D) भागुरायणम्

व्याख्या- प्रश्नगत श्लोक विशाखदत्त विरचित मुद्राराक्षस नाटक के प्रथम अङ्क से उद्धृत है। चाणक्य द्वारा बार-बार राक्षस का परिवार माँगे जाने पर भी चन्दनदास जब अपने जीवन, परिवार व धन की परवाह किये बिना उसे नहीं सौंपता तब चाणक्य मन ही मन उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता है-

सुलभेष्वर्थलाभेषु परसंवेदने जनः।
क इदं दुष्करं कुर्यादिदानीं शिविना विना॥1.24

अर्थात् दूसरे की वस्तु दे देने पर धन की प्राप्ति आसान होने पर अब अर्थात् इस कलियुग में महाराज शिवि के अतिरिक्त कौन-सा मनुष्य इस कठिन कार्य को कर सकता है?

राक्षस का परिवार चन्द्रगुप्त को सौंप देने मात्र से ही विविध प्रकार की राजकीय कृपा प्राप्त हो सकती है- इस बात को जानते हुए भी चन्दनदास शरणागत आये हुए राक्षस के परिवार की रक्षा करने के लिए अपना सर्वस्व देने के लिए तत्पर है। राजा शिवि ने तो ऐसा श्रेष्ठ कार्य सतयुग में किया था परन्तु चन्दनदास ने तो यह कार्य कलियुग में करके उनके यश को लघु कर दिया है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि चाणक्य का उपर्युक्त कथन चन्दनदास को लक्ष्य करके है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- मुद्राराक्षसम् (1/24) - पुष्पा गुप्ता, पेज 61

72. मृच्छकटिके विदूषकस्य नाम भवति-

(A) आर्यकः (B) मैत्रेयः
(C) शर्विलकः (D) संस्थानकः

व्याख्या- शूद्रककृत मृच्छकटिकम् नाटक 10 अङ्कों का एक प्रकरण ग्रन्थ है। इसका नायक चारुदत्त नाम का एक निर्धन ब्राह्मण था तथा नायिका वसन्तसेना नाम की एक गणिका है। इसमें

चारुदत्त और वसन्तसेना के प्रेम का वर्णन है। साथ ही इसमें 'पालक' नामक राजा को मारकर आर्यक के राजा होने का वर्णन है।

मृच्छकटिकम् नाटक के प्रमुख पात्र- चारुदत्त (नायक), मैत्रेय (चारुदत्त का मित्र), शकार (प्रतिनायक), संवाहक (चारुदत्त का भूतपूर्व सेवक), शर्विलक (एक साहसी ब्राह्मण), वसन्तसेना (नायिका), रदनिका (चारुदत्त की परिचारिका), चेटी (वसन्तसेना की दासी), धूता (चारुदत्त की पत्नी)।

संस्कृत नाटकों में विदूषक

नाटक	लेखक	विदूषक
1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्	कालिदास	माढव्य/माधव्य
2. विक्रमोर्वशीयम्	कालिदास	माणवक
3. मालविकाग्निमित्रम्	कालिदास	गौतम
4. मृच्छकटिकम्	शूद्रक	मैत्रेय
5. रत्नावली	श्रीहर्ष	वसन्तक
6. स्वप्नवासवदत्तम्	भास	वसन्तक
7. मालतीमाधवम्	भवभूति	विदूषक का अभाव
8. महावीरचरितम्	भवभूति	विदूषक का अभाव
9. उत्तररामचरितम्	भवभूति	विदूषक का अभाव
10.मुद्राराक्षसम्	विशाखदत्त	विदूषक का अभाव

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मृच्छकटिक के विदूषक का नाम 'मैत्रेय' है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- मृच्छकटिकम् - रमाशंकर त्रिपाठी, पेज 13

73. ''निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथाः तथाद्रियन्ते न बुधाः सुधामपि।'' इति कस्य कथा अत्र उल्लिखिता?

(A) दुष्यन्तस्य (B) रघोः

(C) रामचन्द्रस्य (D) नलस्य

व्याख्या- महाकवि श्रीहर्ष द्वारा विरचित बृहत्त्रयी के अन्तर्गत परिगणित 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में महाराज नल की कथा का वर्णन किया गया है-

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथाः तथादि्यन्ते न बुधाः सुधामपि।

नलः सितच्छत्रितकीर्तिमण्डलः स राशिरासीन्महसां महोज्ज्वलः॥ (नैषध.1.1)

जिस पृथ्वीपालक की कथाओं का भलीभाँति आस्वादन कर विद्वान् लोग अमृत का भी वैसा (राजा नल के कथा के समान) आदर नहीं करते। अपने यश-समूह को शुभ्र छत्र बनाने वाले तथा बड़े उत्सव वाले वे नल तेजों की राशि हुए।

अन्य सूक्तियाँ (1) आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः।(नैषध॰ 05/103)

अर्थ- कुटिल जनों के प्रति सरलता नीति नहीं होती

(2) क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग्जनः? (नैषध॰1/102)

अर्थ- भाग्यशाली जन कहाँ सुख प्राप्त नहीं करता है?

(3) न्याय्यमुपेक्षते हि कः (नैषध॰9/46)

दमयन्ती के कहने पर कि नल ने उसका पाणिग्रहण न किया तो वह फाँसी लगाकर मर जायेगी ये सुनकर नल कहता है कि मृत्यु के बाद भी इन्द्र उसका ग्रहण कर लेगें- न्याय से प्राप्त वस्तु की कौन उपेक्षा करता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत सूक्ति में राजा नल के कथा का वर्णन है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- नैषधीयचरितम् (1/1) - सुरेन्द्रदेव शास्त्री, पेज 01

74. किरातार्जुनीयस्य प्रधानो रसोऽस्ति-

(A) शृङ्गारः (B) वीरः

(C) शान्तः (D) अद्‌भुतः

व्याख्या- महाकवि भारवि प्रणीत 'किरातार्जुनीयम्' 18 सर्गों का वीर रस प्रधान महाकाव्य है। इसका उपजीव्य महाभारत का वनपर्व है। इस महाकाव्य में अर्जुन द्वारा भगवान् शिव की तपस्या से पाशुपतास्त्र की प्राप्ति का वर्णन है।

भारवि के काव्य में (किरातार्जुनीयम् में) प्रधान रस के रूप में 'वीर' रस का प्रयोग किया गया है। वीर रस की अभिव्यक्ति काव्य के प्रथम सर्ग से ही प्रारंभ हो जाती है। जब द्रौपदी युधिष्ठिर के उत्साह को प्रबोधित करने और शत्रुओं से प्रतिशोध लेने के लिए ओज से भरे शब्दों को कहती है-

अबन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।

अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः॥

अर्थ- अनिष्फल क्रोध करने वाले और शत्रुओं का विनाश करने वाले व्यक्ति के वश में प्राणी स्वयं ही हो जाते हैं। व्यक्ति के क्रोध से हीन होने पर उसका न तो मित्रगण ही आदर करते हैं और न ही उससे शत्रु भय करते हैं।

संस्कृत ग्रन्थों के अंगी रस

अभिज्ञानशाकुन्तलम्	शृङ्गाररस	जानकीहरणम्	शृङ्गाररस
मेघदूतम्	विप्रलम्भशृङ्गार	शिवराजविजय	वीररस
उत्तररामचरितम्	करुणरस	नागानन्द	शान्तरस/वीररस
शिशुपालवधम्	वीररस	प्रबोधचन्द्रोदय	करुण/वीर
रघुवंशम्	वीररस	महाभारतम्	शान्तरस
बुद्धचरितम्	शान्तरस	गीतगोविन्दम्	शृङ्गाररस
रावणवध (भट्टिकाव्य)	वीररस	रत्नावली	शृङ्गाररस

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि किरातार्जुनीयम् का प्रधान रस वीर है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'- पेज 244

75. वेणीसंहारे दुर्योधनस्य कञ्चुकी भवति-

(A) विनयन्धरः (B) जयन्धरः

(C) रुधिरप्रियः (D) सुन्दरकः

व्याख्या- भट्टनारायण प्रणीत वेणीसंहारम् महाभारत पर आधारित वीर रस प्रधान नाटक है। इस नाटक में कुल 6 अंक हैं। वेणीसंहारम् नाटक के नायक भीम धीरोद्धत नायक हैं, नायिका द्रौपदी तथा प्रतिनायक दुर्योधन है। वेणीसंहारम् की प्रस्तावना में भट्टनारायण ने अपने को 'मृगराजलक्ष्मा' (मृगराज या सिंह की उपाधिवाला) कहा है। भट्टनारायण गौडी रीति और ओजगुण के कवि हैं-

ओजः संसूचकैः शब्दैर्युद्धोत्साहप्रकाशकैः।

वेण्यामुज्जृम्भयन् गौडी भट्टनारायणो वभूः।।

वेणीसंहारम् के प्रमुख पात्र- भीम, युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल सहदेव, कृष्ण (अर्जुन के सारथि), धृतराष्ट्र, दुर्योधन, कर्ण, संजय (धृतराष्ट्र के सारथि), जयन्धर, विनयन्धर, द्रौपदी, बुद्धिमती, भानुमती (दुर्योधन की पत्नी)।

संस्कृत नाटकों में कञ्चुकी -

नाटक	कञ्चुकी	नाटक	कञ्चुकी
प्रतिज्ञायौगन्धरायण	बादरायण	उत्तररामचरितम्	गृष्टि
दूतवाक्यम्	बादरायण	रत्नावली	बाभ्रव्य
स्वप्नवासवदत्तम्	बादरायण	वेणीसंहारम्	जयन्धर (युधिष्ठिर का)
अभिज्ञानशाकुन्तलम्	वातायन		विनयन्धर (दुर्योधन का)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वेणीसंहार में दुर्योधन का कञ्चुकी 'विनयन्धर' है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- वेणीसंहारम् - रमाशंकर त्रिपाठी, पेज 27

76. ''अर्पणं स्वस्यवाक्यार्थे परस्यान्वयसिद्धये। उपलक्षणहेतुत्वादेषा.....।। साहित्यदर्पणानुसारतः रिक्त स्थानं पूरयत।

(A) लक्षण-लक्षणा (B) उपादान लक्षणा

(C) सारोपा लक्षणा (D) साध्यवसाना लक्षणा

व्याख्या- श्री विश्वनाथ कविराज ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में लक्षणा के बारे में बताते हुए लिखा है-

''मुख्यार्थबाधे तद् युक्तो ययाऽन्योऽर्थः प्रतीयते।
रुढेः प्रयोजनाद्वाऽसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता।।''

अभिधा शक्ति के द्वारा जिसका बोधन किया जाए वह मुख्यार्थ कहलाता है, इसका (मुख्यार्थ) का अन्वय अनुपपन्न होने पर, रूढ़ि (प्रसिद्धि) के कारण अथवा किसी विशेष प्रयोजन का सूचन करने के लिए मुख्यार्थ से संबद्ध अन्य अर्थ का ज्ञान जिस शक्ति के द्वारा होता है, उसे लक्षणा कहते हैं। यह शक्ति 'अर्पित' अर्थात् कल्पित है।

उपादान लक्षणाः-

''मुख्यार्थस्येतराक्षेपो वाक्यार्थेऽन्वयसिद्धये।
स्यादात्मनोऽप्युपादानादेषोपादानलक्षणा।।''

वाक्यार्थ में, अङ्गरूप से अपने अन्वय की सिद्धि के लिए, जहाँ मुख्य अर्थ अन्य अर्थ का आक्षेप कराता है वहाँ 'आत्मा' अर्थात् मुख्यार्थ के भी बने रहने से, उस लक्षणा को ''उपादान लक्षणा' कहते हैं। यथा- 'श्वेतो धावति' इस उदाहरण में श्वेत (वर्ण) जड़ होने के कारण दौड़ने में कर्ता होकर अन्वित नहीं हो सकता, अतः वाक्यार्थ में अपने अन्वय की सिद्धि के लिए 'श्वेत' शब्द श्वेत रंग वाले अश्वादि का आक्षेप कराता है। यह 'रूढ़ि' में उपादान है- 'कुन्ताः प्रविशन्ति' (भाले प्रवेश कर रहे हैं) यहाँ पर कुन्त शब्द कुन्त (भाला) धारण करने वाले 'पुरुषों' का आक्षेप कराता है।

लक्षण-लक्षणा –

''अर्पणं स्वस्य वाक्यार्थे परस्यान्वयसिद्धये।
उपलक्षणहेतुत्वादेषा लक्षणलक्षणा।।''

वाक्यार्थ में मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ के अन्वय बोध के लिए जहाँ कोई शब्द अपने स्वरूप का समर्पण कर दे अर्थात् मुख्यार्थ का परित्यागकर लक्ष्य अर्थ का उपलक्षण मात्र बन जाय उस लक्षणा को लक्षण-लक्षणा कहते हैं, क्योंकि यह उपलक्षण का ही हेतु होती है, इसमें मुख्यार्थ का वाक्य में अन्वय नहीं होता। इसका रूढ़ि और प्रयोजन में क्रम से उदाहरण है- 'कलिङ्गः साहसिकः' और 'गङ्गायां घोषः'। इन उदाहरणों में क्रम से पुरुष और तट के अन्वय को सिद्ध करने के लिए कलिङ्ग और गङ्गाशब्द अपने स्वरूप का समर्पण करते हैं। (इसी लक्षण-लक्षणा को जहत्स्वार्थवृत्ति भी कहते हैं)

सारोपा और साध्यवसाना-लक्षणा -

''विषयस्यानिगीर्णस्यान्यतादात्म्यप्रतीतिकृत्।
सारोपा स्यान्निगीर्णस्य मता साध्यवसानिका।।''

अनाच्छादित स्वरूप विषय (उपमेय) का अन्य (उपमान) के साथ अभेदज्ञान कराने वाली लक्षणा को 'सारोपा' कहते हैं और निगीर्ण स्वरूप (आच्छादित) विषय का विषयी के साथ अभेद ज्ञान कराने वाली लक्षणा को 'साध्यवसाना' कहते हैं।

रूढि में सारोपा उपादान लक्षणा का उदाहरण-'अश्वः श्वेतो धावति'। प्रयोजन में सारोपा लक्षणा का उदाहरण- 'एते कुन्ताः प्रविशन्तिः'

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि दिये गये श्लोक में रिक्तस्थान लक्षण-लक्षणा द्वारा पूरित होगा। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- साहित्यदर्पण (1/7) - शालिग्राम शास्त्री, पेज 32

77. अधस्तनयुग्मानां समीचीनतालिकां चिनुत-

(क) आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्। (i) रत्नावली
(ख) अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्। (ii) मुद्राराक्षसम्
(ग) गजेन्द्राश्च नरेन्द्राश्चप्रायः सीदन्ति दुःखिताः। (iii) अभिज्ञानशाकुन्तलम्
(घ) आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः। (iv) मृच्छकटिकम्

Options

	(क)	(ख)	(ग)	(घ)
(A)	(ii)	(iii)	(iv)	(i)
(B)	(iii)	(iv)	(ii)	(i)
(C)	(iv)	(ii)	(i)	(iii)
(D)	(i)	(ii)	(iii)	(iv)

व्याख्या- (1) ''आशङ्कसे यद्ग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्।'' प्रस्तुत श्लोकांश अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अंक से उद्धृत है। जब राजा दुष्यंत प्रियंवदा से शकुन्तला के बारे में बात करता है तो प्रियंवदा कहती है- हे आर्य धर्म के आचरण में भी यह परवश है। पिता का तो इसे अनुरूप वर को देने का संकल्प है। तब दुष्यंत स्वयं से यह बात कहता है- आशङ्कसे यदग्निं....। (तू जिसके अग्नि होने की आशंका कर रहा है वह तो स्पर्शयोग्य रत्न है)।

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कुछ महत्त्वपूर्ण सूक्तियाँ-

(i) 'अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते'- दुष्यन्त (द्वितीय अङ्क) (कामभाव के कृतार्थ न होने पर भी एक-दूसरे की अभिलाषा प्रीति को बढ़ाती ही है)।

(ii) अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेत्-दुष्यन्त (षष्ठ अंक) (अचेतन पदार्थ तो सचमुच ही गुण को नहीं पहचान सकता)।

(iii) अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्- शाङ्र्गरव (पञ्चम अंक)। (जिसके हृदय के विषय में ज्ञान नहीं है उनसे प्रेम करना अपना ही शत्रु बन जाना है।)

(iv) गुणवते कन्यका प्रतिपादनीया- अनुसूया (चतुर्थ अंक) (गुणवान् वर को कन्या देनी चाहिए)।

मृच्छकटिकम् की सूक्तियाँ-

(i) ''अल्पक्लेशं मरणं, दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्''। (चारुदत्त) प्रस्तुत श्लोकांश शूद्रककृत मृच्छकटिकम् के प्रथम अङ्क से लिया गया है। जब विदूषक चारुदत्त से पूछता है- हे मित्र, मृत्यु और निर्धनता में से तुम्हें कौन-सी वस्तु अच्छी लगती है। इसी का जवाब देते हुए चारुदत्त कहता है- मृत्यु में थोड़ा कष्ट है, किन्तु निर्धनता कभी न समाप्त होने वाला दुःख है।)

(ii) ''कालात्यये मधुकराः करिणः कपोलम्'' (चारुदत्त) (जिस प्रकार (मद का) समय व्यतीत हो जाने पर भ्रमण करते हुए और जिसकी घनी मदराशि सूख गई, ऐसे हाथी के कपोल को त्याग देते हैं)।

(iii) 'धृतः शरीरेण मृतः स जीवति' (चारुदत्त) (वह तो शरीर धारण किये हुए भी मृतक के समान जीवन व्यतीत करता है।)

मुद्राराक्षस की प्रमुख सूक्तियाँ-

(i) ''गजेन्द्राश्च नरेन्द्राश्च प्रायः सीदन्ति दुःखिताः'' प्रस्तुत श्लोकांश विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस नामक नाटक से लिया गया है। (स्वयं राज्यतन्त्रादि भार से घिर कर राजसुख का भोग कर रहे राजा लोग तथा मत्त हस्ती स्वभाव से बलशाली होकर भी प्रायः दुखित एवं खिन्न रहा करते हैं।

रत्नावली की सूक्तियाँ-

1. ''आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः'' प्रस्तुत श्लोकांश महाकवि हर्ष विरचित नाटक रत्नावली के प्रथम अङ्क से लिया गया है। प्रस्तुत श्लोक में सूत्रधार नदी से (नदी द्वारा पुत्री के विवाह की चिन्ता के विषय में) कहता है-''अनुकूल भाग्य दूसरे द्वीप से की जा रही जलनिधि के बीच से तथा दिशाओं के अन्तिम छोर से भी इष्टवस्तु को शीघ्र लाकर मिला देता है।''

अन्य सूक्तिः- (i) ''आभाति मकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरिव'' (राजा) कामदेव के समीप में अवस्थित (वासवदत्ता), पुष्पमय होने के कारण सुकुमार, मध्यभाग में क्षीण, कामदेव के समीप धनुर्लतासी प्रतीत हो रही है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दिये गये विकल्पों में **विकल्प B सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पेज 244

78. ''लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमयाः बन्धनपाशाः'' इति हर्षचरिते कस्य मनसि समजायत?

(A) राज्यवर्धनस्य (B) प्रभाकरवर्धनस्य
(C) कुरङ्गकस्य (D) हर्षवर्धनस्य

व्याख्या- महाकवि बाणभट्ट द्वारा रचित 'हर्षचरितम्' आख्यायिका ग्रन्थ के पञ्चम उच्छ्वास में हर्षवर्धन की कथा का वर्णन है।

''लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमयाः बन्धनपाशाः'' एक समय रात के चौथे प्रहर में जब पौ फटने को हुई तो हर्ष ने स्वप्न में देखा कि सभी दिशाओं को अपने ज्वालापुञ्ज से पिञ्जरित करती हुई दुर्निवार वनाग्नि से एक शेर जल रहा है और अपने बच्चों को छोड़कर उसी वन की अग्नि में शेरनी छलांग मार कूद रही है। उनके मन में यह विचार आया- 'सचमुच संसार में स्नेह के बन्धनपाश लोहे से भी बढ़कर कठोर होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि हर्षवर्धन के मन में यह विचार आया कि सचमुच संसार में स्नेह के बन्धनपाश लोहे से भी बढ़कर कठोर होते हैं। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- हर्षचरितम् - शिवनाथ पाण्डेय, पेज 06

79. ''श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्''- इति वार्ता केन सम्बद्धा?

(A) माघेन (B) भारविणा
(C) श्रीहर्षेण (D) कालिदासेन

व्याख्या- श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं.....। प्रस्तुत पंक्ति महाकवि श्रीहर्ष प्रणीत महाकाव्य नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग के अंतिम श्लोक की है। जिसमें श्रीहर्ष अपने माता-पिता (मामल्लदेवी और श्रीहीर) तथा अपने जन्म के वृत्तान्त के साथ नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग का समापन करते हैं।

श्रीहर्षः- श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरःसुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम् ।
तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तन्फले शृङ्गारभंग्या महा-
काव्येचारुणि नैषधीयचरिते सर्गोऽयमादिर्गतः।।

अर्थः- कविराज समूह के मुकुट के आभूषण रूप हीरे श्रीहीर तथा मामल्लदेवी ने इन्द्रियों के समूह को जीतने वाले जिस श्रीहर्ष नाम के पुत्र को उत्पन्न किया। उसके चिन्तामणि मन्त्र की उपासना के फलस्वरूप शृङ्गाररस की रचना से मनोहर नैषधीयचरित नामक महाकाव्य में प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

➢ **भारविः-** महाकवि भारवि प्रणीत किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग के अंतिम श्लोक की अंतिम पंक्ति में भारवि कहते हैं-

'दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः।'

अर्थः- सूर्य की भाँति राज्यलक्ष्मी (कान्ति) फिर से प्राप्त हो। इसमें 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग हुआ है।

➢ **माघः-** महाकवि माघ प्रणीत शिशुपालवधम् प्रथम सर्ग के अंतिम श्लोक की पंक्ति में माघ कहते हैं-

'तस्मिन्नुत्पतिते पुरः सुरमुनाविन्दोः श्रियं बिभ्रति।'

अर्थः- नारद महामुनि इस प्रकार कहकर आकाश में जाकर चन्द्रमा की शोभा धारण करने लगे।

प्रस्तुत श्लोक में श्री शब्द का प्रयोग हुआ है।

➢ **कालिदासः-** महाकवि कालिदास रघुवंशम् महाकाव्य के प्रथम सर्ग के अंतिम श्लोक में कहते हैं-

निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्णशाला मध्यास्य प्रयतपरिग्रहद्वितीयः।
तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां संविष्टः कुशशयने निशां निनाय।।

अर्थः- अपनी धर्मपत्नी सुदक्षिणा के साथ उस राजा दिलीप ने कुलपति महर्षि वसिष्ठ से बताई गई पर्णशाला में जाकर कुश आसन पर सोते हुए वसिष्ठ के शिष्यों के अध्ययन से सूचित अन्त वाली रात्रि को बिताया।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्रीहीरः सुषुवे...। का सम्बन्ध 'श्रीहर्ष' से है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- नैषधीयचरितम् (1/145)-सुरेन्द्रदेव शास्त्री, पेज 287

80. ''स बाल आसीद् वपुषा चतुर्भुजो मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः।'' इति शिशुपालवधस्य पद्यांशः केन सम्बद्धः?

(A) शिशुपालेन (B) श्रीकृष्णेन
(C) नारदेन (D) रावणेन

व्याख्या- प्रस्तुत पद्यांश में नारदमुनि श्रीकृष्ण को शिशुपाल के विषय में बताते हुए कहते हैं कि-

**''स बाल आसीद्वपुषा चतुर्भुजो मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः।
युवा कराक्रान्तमहीभृदुच्चकैरसंशयं सम्प्रति तेजसा रविः॥''**
(शिशु.1/70)

अर्थः- यह शिशुपाल बाल्यावस्था में ही चार भुजा वाला अर्थात् विष्णु के सदृश था और मुख से पूर्ण चन्द्रमा के समान था अतएव तीन नेत्र वाला शंकर जी की तरह था। अब इस समय तारुण्यावस्था में और राजाओं से कर लेने वाला हुआ है। सूर्य पक्ष में (कर किरणों से आक्रांत व्याप्त है महीभुज पर्वत जिसके) ऐसा यह निःसंशय सूर्य है।

* प्रस्तुत श्लोक में कवि श्रीकृष्ण का निरूपण करते हुए कहते हैं-

''स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपदलाञ्छनच्छविः।
विदिद्युते वाडवजातवेदसःशिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः''
।।20।।

अर्थः- पीताम्बर धारण किये श्यामवर्ण श्रीकृष्ण वडवाग्नि की ज्वाला से युक्त समुद्र की सी शोभा को प्राप्त हुए।

* प्रस्तुत पद्य में कवि नारद की तुलना शरद्कालीन मेघ से करते हुए कहते हैं-

''विहङ्गराजाङ्गरुहैरिवायतैर्हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः।

कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकैर्घनं घनान्ते तडितां गणैरिव।।7।।''

अर्थः- सुवर्ण के यज्ञोपवीत को धारण करने वाले नारद बिजली की रेखा से युक्त शरत् कालीन मेघ की शोभा को प्राप्त हुए।

* प्रस्तुत श्लोक में नारद रावण द्वारा स्वर्ग की, की गई दुर्दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं-

''पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः।

विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः।।51।।''

अर्थः- रावण ने इन्द्र के साथ विरोध कर अमरावती पर बार-बार चढ़ाई की नन्दनवन को तहस-नहस कर डाला। रत्नों को चुराया। अप्सराओं को हरण किया। इस प्रकार प्रतिदिन स्वर्ग में भी अशान्ति मचाए रहा करता था।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रश्न में दिये गये पद्यांश 'स बाल आसीद्वपुषा...।'- का सम्बन्ध शिशुपाल से है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- शिशुपालवधम् (1/70) - तारिणीश झा, पेज 146

81. ''वैदेहिबन्धोर्हृदयं विदद्रे'' रघुवंशस्य अस्मिन् पद्यांशे 'वैदेहिबन्धुः' भवति-

(A) लक्ष्मणः (B) भरतः
(C) रामः (D) रघुः

व्याख्या- रघुवंशम् जो कि कविकुलगुरु कालिदासकृत सुप्रसिद्ध 19 सर्गों का महाकाव्य है, इसके चौदहवें सर्ग में श्रीराम अपने भद्रमुख नामक गुप्तचर से यह पूँछते हैं कि प्रजा मेरे विषय में क्या कहती है? तो पहले तो वह चुप रहा किन्तु राम के आग्रहपूर्वक पूँछे जाने पर उसने सीता सम्बन्धित लोकापवाद की बात बताई जिससे श्रीराम का हृदय उसी तरह फट गया जैसे घन की चोट से तपाया हुआ लोहा फट जाता है-

कलत्रनिन्दागुरुणा किलैवमभ्याहतं कीर्तिविपर्ययेण।

अयोघनेनाय इवाभितप्तं वैदेहिबन्धोर्हृदयं विदद्रे।। 14.33।।

टीकाकार मल्लिनाथ ने वैदिहिबन्धोः का अर्थ 'वैदेहिबल्लभस्य' अर्थ किया है। वैदेही अर्थात् सीता का जो बन्धु अर्थात् सुहृत् है वह राम।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'वैदेहिबन्धु' का अर्थ 'राम' है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- रघुवंशम् (14/33) - हरगोविन्द मिश्र, पेज 354

82. काव्यमीमांसोक्तकथानुसारं पुरा पुत्रीयन्ती सरस्वती कुत्र तपस्यामास?

(A) विन्ध्यगिरौ (B) तुषारगिरौ
(C) सह्यगिरौ (D) मेरुगिरौ

व्याख्या- श्री राजशेखर ने अपने ग्रन्थ काव्यमीमांसा के तृतीय अध्याय- 'काव्यपुरुषोत्पत्तिः' में सरस्वती-पुत्र, काव्य-पुरुष की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहा है- एक बार शिष्यों ने बृहस्पति से कथाप्रसंग में पूछा कि आपके गुरु सरस्वती-पुत्र, काव्यपुरुष कैसे हैं। तब बृहस्पति ने उनसे कहा- (''पुरा पुत्रीयन्ती सरस्वती तुषारगिरौ तपस्यामास। प्रीतेन मनसा तां विरिञ्चिः प्रोवाच-पुत्रं ते सृजामि।'') प्राचीन काल में सरस्वती ने पुत्र की इच्छा से हिमालय (तुषारगिरौ) पर तपस्या की। प्रसन्नमना ब्रह्मा ने उनसे कहा- तेरे लिए मैं पुत्र की रचना करता हूँ। तदनन्तर देवी ने काव्य-पुरुष को उत्पन्न किया।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि देवी सरस्वती ने पुत्रप्राप्ति की इच्छा से 'तुषारगिरि' (हिमालय) पर तपस्या की। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- हिन्दी काव्यमीमांसा (काव्यपुरुषोत्पत्ति)-गंगासागर राय, पेज 12

83. जगन्नाथमते काव्यं कतिविधं भवति-

(A) द्विविधम् (B) त्रिविधम्
(C) चतुर्विधम् (D) पञ्चविधम्

व्याख्या- पण्डितराज जगन्नाथ अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ रसगङ्गाधर के प्रथम आनन में काव्य के चार भेदों को बताते हुए कहते हैं- ''तच्चोत्तमोत्तमोत्तममध्यमाधमभेदाच्चतुर्धा।''

1-उत्तमोत्तम, 2-उत्तम, 3- मध्यम और 4- अधम

1- **उत्तमोत्तम-** जिसमें शब्द और अर्थ (वाच्य, लक्ष्य, व्यङ्ग्य) दोनों अपने को गौण (अप्रधान) बनाकर किसी चमत्कारजनक अर्थ को अभिव्यक्त करें, व्यञ्जनावृत्ति द्वारा समझावें उसे उत्तमोत्तम काव्य कहते हैं। ''शब्दार्थौ यत्र गुणीभावितात्मानौ कमप्यर्थमभिव्यङ्क्तस्तदाद्यम्।।''

2- **उत्तम-** जिस काव्य में व्यंग्य अप्रधान होकर ही चमत्कार का कारण हो, वह द्वितीय 'उत्तम' नामक काव्य कहलाता है।

''यत्र व्यङ्ग्यमप्रधानमेव सच्चमत्कारकारणं तद् द्वितीयम्।''

3- **मध्यम-** जहाँ वाच्य अर्थ का चमत्कार व्यंग्य अर्थ के चमत्कार के अधिकरण में न रहे अर्थात् जिस काव्य में व्यंग्य अर्थ का चमत्कार लघु अंश में रहकर भी व्यापक वाच्य अर्थ के चमत्कार में अन्तर्युक्त हो जाने से स्पष्टतया अनुभूत न हो, वह मध्यम नामक काव्य कहलाता है।

''यत्र व्यङ्ग्यचमत्कारासमानाधिकरणो वाच्य चमत्कारस्तत्तृतीयम्।''

4- अधम- जिस काव्य में वाच्य अर्थ के चमत्कार से परिपोषित होकर शब्द का चमत्कार प्रधान हो उसको अधम काव्य कहते हैं। इस काव्य में भी कुछ न कुछ व्यंग्य अवश्य रहता है, परन्तु वह रहकर भी चमत्कार जनक न होने से अविवक्षित रहता है अतः उसकी प्रधानता नहीं रहती ऐसा समझना चाहिए।

''यत्रार्थ चमत्कृत्युपस्कृता शब्दचमत्कृतिः प्रधानं, तदधमं चतुर्थम्।''

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्य के चार प्रकारों का उल्लेख किया। (उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम और अधम) अतः दिये गये विकल्पों में **विकल्प C सही है।**

स्रोत- रसगङ्गाधर - मदनमोहन झा, पेज 37

84. ''त्रयः समुदिताः, न तु व्यस्ताः''- इति काव्यप्रकाशे प्रथमे उल्लासे किम् अधिकृत्य उल्लिखितम्?

(A) काव्यलक्षणम् (B) काव्यभेदम्
(C) काव्य-हेतुम् (D) काव्यफलम्

व्याख्या- आचार्य मम्मट काव्यप्रकाश के प्रथम उल्लास में काव्यहेतु को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि शक्ति, लोकव्यवहार तथा काव्यनिर्माण का अभ्यास ये तीनों मिलकर काव्य उद्भव के कारण हैं न कि अलग-अलग। उसी प्रंसग में काव्यहेतु को परिभाषित करते हैं-

➢ **काव्यहेतु-** शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इतिहेतुस्तदुद्भवे।।

कवि में रहने वाली उसकी स्वाभाविक प्रतिभारूप (1) शक्ति, (2)-लोक (व्यवहार) शास्त्र तथा काव्य आदि के पर्यालोचनसे उत्पन्न निपुणता और (3)- काव्य (की रचनाशैली तथा आलोचनापद्धति) को जानने वाले (गुरु) की शिक्षा के अनुसार (काव्यनिर्माण का) अभ्यास ये (तीनों मिलकर समष्टि रूप से उस (काव्य) के विकास (उद्भव) के कारण हैं। **(त्रयः समुदिताः, न तु व्यस्ताः, तस्य काव्यस्योद्भवे निर्माणे समुल्लासे च हेतुर्न तु हेतवः)॥**

यहाँ ग्रन्थकार ने शक्ति, लोकव्यवहार, शास्त्र एवं काव्य आदि के पर्यालोचन से उत्पन्न व्युत्पत्ति तथा काव्य की रचनाशैली और गुण-दोषों के जानने वाले विद्वानों की शिक्षा के अनुसार अभ्यास इन तीनों की समष्टि को काव्य-निर्माण की योग्यता प्राप्त करने का कारण माना है।

काव्यलक्षण- दोषों से रहित, गुण-युक्त और (साधारणतः अंलकार सहित) परन्तु कहीं-कहीं अलङ्कारः रहित शब्द और अर्थ (दोनों की समष्टि) काव्य कहलाती है। **(तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि)।** 'क्वापि' इस पद से (ग्रन्थकार) यह कहते हैं कि (साधारणतः) सब जगह अलङ्कार सहित (शब्द तथा अर्थ होने चाहिए) परन्तु कहीं (जहाँ व्यङ्ग्य या रसादि की स्थिति विद्यमान हो वहाँ) स्पष्ट रूप अलङ्कार की सत्ता न होने पर भी काव्यत्व की हानि नहीं होती है। **(सर्वत्रसालङ्कारौ क्वाचित् स्फुटालंकारविरहेऽपि काव्यत्वहानिः)**

काव्यभेदम्:- काव्यप्रकाशकार काव्य के तीन मुख्य भेदों - (1) ध्वनि काव्य (2) गुणीभूतव्यङ्ग्य-काव्य और (3) चित्रकाव्य का उल्लेख करते हैं-

1- ध्वनि काव्य- ''इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।।''

वाच्य (अर्थ) की अपेक्षा व्यङ्ग्य (अर्थ) के अधिक चमत्कार युक्त होने पर (इदं) काव्य उत्तम होता है, और विद्वानों ने उसको 'ध्वनि' (काव्य नाम से) कहा है।

2- गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य- ''अतादृशि गुणीभूतव्यङ्ग्यं व्यङ्ग्ये तु मध्यमम्।।''

उस प्रकार के (अर्थात् वाच्य से अधिक चमत्कारी) व्यङ्ग्य (अर्थ) न होने पर गुणीभूत व्यङ्ग्य (नामक दूसरे प्रकार का काव्य) होता है जो मध्यम काव्य कहा जाता है।

3- चित्र-काव्य- ''शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यङ्ग्यं त्ववरं स्मृतम्।।''

व्यङ्ग्य (अर्थ) से रहित 'शब्दचित्र' तथा अर्थचित्र (दो प्रकार) अधम (काव्य) कहा गया है।

चित्रमिति गुणालङ्कारयुक्तम्। अव्यङ्गमितिस्फुटप्रतीयमानार्थरहितम्। अवरम् अधमम्।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'त्रयः समुदिताः न तु व्यस्ताः' यह काव्यप्रकाश के प्रथम उल्लास में काव्यहेतु के सन्दर्भ में आया है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- काव्यप्रकाश (1.3)-सीताराम दोतोलिया, पेज 41-43

85. काव्यप्रकाशे उपमानोपमेययोः अभेदे अयमलङ्कारः भवति-

(A) रूपकम् (B) उपमा
(C) उत्प्रेक्षा (D) श्लेषः

व्याख्या- आचार्य मम्मट काव्यप्रकाश के नवमोल्लास में शब्दालङ्कार रूप दसवें में अर्थालङ्कारों की चर्चा करते हैं, जिसमें 5 शब्दालंकार, 61 अर्थालङ्कार और 1 उभयालङ्कार कुल मिलाकर 67 प्रकार के अलङ्कारों का निरूपण किया गया है।

1- उपमा अलङ्कार- ''साधर्म्यमुपमा भेदे।''

(उपमान तथा उपमेय का) भेद होने पर (उनके) साधर्म्य (का

वर्णन) उपमा (कहलाता) है। यह उपमा दो प्रकार की होती है- 1- पूर्णोपमा और 2- लुप्तोपमा (पूर्णा लुप्ता च)। उपमान, उपमेय, साधारणधर्म और उपमावाचक (इव आदि पद इन चारों) का ग्रहण होने पर पूर्णा (उपमा) तथा (उन चारों में से) एक या दो या तीन का लोप होने पर लुप्ता (उपमा) होती है।

2- रूपक अलङ्कार- ''तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।'' उपमान और उपमेय का (जिनका भेद प्रसिद्ध है उनका सादृश्यातिशयवश) जो अभेद (वर्णन) है वह रूपक (अलङ्कार) है। **यथा- ज्योत्स्नाभस्मच्छुरणधवला बिभ्रती तारकास्थी-न्यन्तर्द्धानव्यसनरसिका रात्रिकापालिकीयम्।**

द्वीपाद् द्वीपं भ्रमति दधती चन्द्रमुद्राकपाले

न्यस्तं सिद्धाञ्जनपरिमलं लाञ्छनस्यच्छलेन॥

इस उदाहरण में रात्रि के ऊपर कापालिकी का आरोप किया गया है। यही प्रधान रूपक है।

3- उत्प्रेक्षा अलङ्कार- ''सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।''

प्रकृत (अर्थात् वर्ण्य उपमेय) की सम (अर्थात् उपमान) के साथ सम्भावना (अर्थात् उत्कटकोटिक सन्देह) उत्प्रेक्षा कहलाती है। **यथा- लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।**

असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता॥

(वर्षाकाल की रात्रि के समय) अन्धकार अङ्गों को लीप-सा रहा है, आकाश काजल की वृष्टि-सी कर रहा है और दुष्ट पुरुष की सेवा के समान दृष्टि विफल-सी हो गई है।

4. श्लेष अलङ्कार- ''वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृशः।

श्लिष्यन्ति शब्दाः, श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा॥''

अर्थभेद से भिन्न-भिन्न शब्द जब एक साथ उच्चारण के विषय होने से एक रूप (श्लिष्ट) प्रतीत होते हैं वह श्लेष अलङ्कार है तथा वह अक्षर आदि भेदों से आठ प्रकार का होता है।

1-वर्णश्लेष, 2- पदश्लेष, 3- लिङ्गश्लेष, 4-वचनश्लेष, 5- भाषाश्लेष, 6- प्रकृतिश्लेष, 7- प्रत्ययश्लेष, 8- विभक्तिश्लेष।

उदाहरण- पृथुकार्त्तस्वरपात्रं भूषितनिःशेषपरिजनं देव।

विलसत्करेणुगहनं सम्प्रति सममावयोः सदनम्॥

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उपमान और उपमेय का सादृश्यातिशयवश जो अभेद वर्णन होता है वहाँ रूपक अलङ्कार होता है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- काव्यप्रकाश (सू. 139)-सीताराम दोतोलिया, पेज 445

86. आसु का नाट्यवृत्तिर्नभवति-

(A) अभिधा (B) आरभटी

(C) सात्त्वती (D) भारती

व्याख्या- शब्द अपने अर्थ को प्रकट कैसे करता है? इस सन्दर्भ में 'शब्दब्रह्म' की स्थापना करने वाले वाक्यपदीयकार आचार्य भर्तृहरि ने अत्यन्त वैज्ञानिक विवेचन करते हुए बताया कि शब्द के भीतर अर्थ प्रकाशन की एक विलक्षण शक्ति निहित होती है। उसी शक्ति से वह अपने अर्थ का प्रकाशन करता है। ये शक्तियाँ तीन प्रकार की हैं- अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना।

अभिधा- अभिधा से वाच्य अथवा मुख्यार्थ का प्रकाशन करने वाला शब्द 'वाचक' कहा जाता है। जैसे- गौः शब्द। इसका एक निश्चित अर्थ है- सास्नादिमान् पशुविशेष।

लक्षणा- लक्षणा शक्ति से लक्ष्य अर्थ को बताने वाला शब्द 'लाक्षणिक' कहा जाता है। जैसे- संसद ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास कर दिया। यहाँ पर संसद अपने मुख्यार्थ (संसद-भवन) को छोड़कर सांसदभूत सदस्यों का बोध करायेगी। मुख्यार्थ से जुड़े इसी अर्थ को लक्ष्यार्थ कहते हैं।

व्यञ्जना- व्यङ्ग्य अर्थ को प्रकाशित करने वाला शब्द 'व्यञ्जक' कहा जाता है। जैसे- गतोऽस्तमर्कः (सूर्यास्त हो गया) कहने पर सुनने वाले विविधश्रोता विविध अर्थों की प्रतीति करते हैं। जैसे- चोर को चोरी करने का, प्रणयीयुगल को संकेत स्थान पर पहुँचने का, बच्चे को दादी से कहानी सुनने का अभिप्राय अपने-अपने वैशिष्ट्य के कारण प्रतीत होता है। इन अतिरिक्त अभिप्रायों को ही व्यङ्ग्यार्थ कहते हैं।

वृत्ति

साहित्यदर्पणकार श्री विश्वनाथ कविराज ने नाटक की चार वृत्तियों का वर्णन अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में किया है।

''शृंगारे कैशिकी, वीरे सात्वत्यारभटी पुनः।

रसे रौद्रे च बीभत्से, वृत्तिः सर्वत्र भारती।।

शृंगार रस में विशेषतः कैशिकी वृत्ति और वीर, रौद्र तथा वीभत्स रस में सात्वती तथा आरभटी वृत्ति उपयुक्त है। किन्तु भारती वृत्ति सर्वत्र उपयुक्त हो सकती है। ये चार वृत्तियाँ सम्पूर्ण नाटक की उपजीव्य हैं। इस प्रकार ये चार नाट्य वृत्तियाँ- (कैशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती) आचार्य विश्वनाथ ने बताईं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि दिये गये विकल्पों में तीन-आरभटी, सात्वती और भारती ये नाट्य वृत्तियाँ हैं और अभिधा शब्दशक्ति के अन्तर्गत आती हैं। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- साहित्यदर्पण (6/122) - शालिग्रामशास्त्री, पेज 199

87. ''भम धम्मिअ-'' इत्यादिश्लोकः ध्वन्यालोके प्रथमे उद्द्योते अस्य उदाहरणं भवति-
(A) वाच्ये प्रतिषेधे विधिरूपस्य
(B) वाच्ये विधिरूपे प्रतिषेधरूपस्य
(C) वाच्ये विधिरूपेऽनुभयरूपस्य
(D) वाच्ये प्रतिषेधेऽनुभयरूपस्य

व्याख्या- आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक के प्रथम उद्द्योत में प्रतीयमान अर्थ के वर्णन में मुख्यतः 5 प्रकार के प्रतीयमान अर्थ के भेद बताये हैं-

1- वाच्य के विधिरूप होने पर प्रतीयमान का निषेधरूप होना। जैसे- भम धम्मिअ वीसत्थो सो सुणओ अज्ज मारिओ देण।
गोलाणइकच्छकुडंगवासिणा दरिअसीहेण।।
(भ्रम धार्मिक विस्रब्धः स शुनकोऽद्य मारितस्तेन।
गोदानदीकच्छकुञ्जवासिना दृप्तसिंहेन।।)

पण्डित जी महाराज! गोदावरी के किनारे कुञ्ज में रहने वाले मदमत्त सिंह ने आज उस कुत्ते को मार डाला है, अब आप निश्चिन्त होकर घूमिये।

यहाँ इस श्लोक का वाच्यार्थ तो विधिरूप है कि 'निश्चिन्त होकर घूमो।'' किन्तु प्रतीयमान अर्थ वस्तुतः निषेधरूप है कि इस स्थान पर कभी मत आइयेगा, नहीं तो कुत्ते की जगह सिंह से भेंट होगी।

2- प्रतिषेधरूप वाच्यार्थ होने पर प्रतीयमान का विधिरूप होना। जैसे- श्वश्रूरत्र निमज्जति अत्राहं दिवसकं प्रलोकय।
मा पथिक रात्र्यन्धक शय्यायां मम निमंक्ष्यसि।।

हे पथिक! दिन में अच्छी तरह देख लो, यहाँ सासजी सोती हैं और यहाँ मैं सोती हूँ रात में रतौंधीग्रस्त होकर कहीं मेरी खाट पर न गिर पड़ना।

3- वाच्य विधिरूप होने पर प्रतीयमानार्थ का अनुभयरूप होना, अर्थात् विधि और निषेध दोनों से भिन्न होना। जैसे-
व्रज ममैवैकस्या भवतु निःश्वास रोदितव्यानि।
मा तवापि तया विना दाक्षिण्यहतस्य जनिषत।।

तुम जाओ, मैं अकेली ही इन निःश्वास और रोने को भोगूँ (सो अच्छा है) कहीं दाक्षिण्य के चक्कर में पड़कर, उसके बिना तुम्हें भी यह सब न भोगना पड़े।

4- प्रतिषेधरूप वाच्य के होने पर प्रतीयमान का अनुभयरूप होना। जैसे- प्रार्थये तावत्प्रसीद निवर्तस्व मुखशशिज्योत्स्ना। विलुप्ततमोनिवहे। अभिसारिकाणां विघ्नं करोएयन्यासामपि हताशे।

5.वाच्य और प्रतीयमान का विषय भेद होने से व्यङ्ग्यार्थ का वाच्यार्थ से अत्यन्त भिन्न होना। जैसे-
कस्य वा न भवति रोषो दृष्ट्वा प्रियायाः सव्रणमधरम्।
सभ्रमरपद्माघ्रायिणि वारितवामे सहस्वेदानीम्।।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है 'भम धम्मिअ..' इत्यादि श्लोक वाच्य के विधिरूप होने पर प्रतीयमानार्थ के निषेधरूप होने के उदाहरण रूप में ध्वन्यालोककार के द्वारा उद्धृत किया गया है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- ध्वन्यालोक (1/4)- आचार्य विश्वेश्वर, पेज 13

88. दशरूपकतः रिक्तस्थानं पूरयत-''आनन्दनिस्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः। योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नमः...॥
(A) काव्यपराङ्मुखाय (B) नाट्यपराङ्मुखाय
(C) शास्त्रपराङ्मुखाय (D) स्वादुपराङ्मुखाय

व्याख्या- प्राचीन भारतीय परंपरा के अनुसार विघ्नों के विनाश तथा उससे होने वाली ग्रन्थ की समाप्ति के लिए दशरूपककार आचार्य धनञ्जय ने श्लोकों - (1) नमस्तस्यै गणेशाय यत्कण्ठः...।। तथा (2) दशरूपानुकारेण यस्य माद्यन्ति.....। से अपने इष्टदेव गणेश एवं विष्णु को नमस्कार करते हुए मङ्गलाचरण किया। दशरूपक के इस प्रथम प्रकाश में मङ्गल से आरंभ करके ग्रन्थ का प्रयोजन (फल) बताते हुए कहते हैं-

आनन्दनिस्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः।
योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नमः स्वादुपराङ्मुखाय॥6॥

जो अल्पबुद्धि वाले सज्जन (व्यक्ति) आनन्द को प्रवाहित करने वाले रूपकों के (अध्ययन या उनके अभिनय के दर्शन) का फल भी, इतिहास आदि (ग्रन्थों के अध्ययन) के समान, एकमात्र (धर्म आदि का) ज्ञान ही बतलाते हैं, रसास्वाद से विमुख उन जन को नमस्कार है (अर्थात् ऐसे लोग प्रणाम करने लायक हैं)।।

उपर्युक्त श्लोक के द्वारा धनञ्जय ने यह दिखलाया है कि-(सहृदय व्यक्तियों के द्वारा) स्वयं अनुभव किया जाने वाला, परमानन्द स्वरूप, रसास्वादन दशरूपकों का फल है न कि इतिहास आदि की तरह केवल त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ तथा काम) आदि का ज्ञान। (रसास्वाद से विमुख जन को नमस्कार है''- इस कथन में) 'नमः' यह कथन उपहासपूर्वक कहा गया हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि दिये गये रिक्त स्थान पर स्वादुपराङ्मुखाय होगा।

अतः विकल्प D सही है।

स्रोत- दशरूपक (1/5) - रमाशंकर त्रिपाठी, पेज 05

89. ''कटुकौषधवच्छास्त्रमविद्याव्याधिनाशनम्।'' इत्युक्तिः एषु कस्मिन् अलङ्कारग्रन्थेऽस्ति-
(A) साहित्यदर्पणे (B) वक्रोक्तिजीविते
(C) रसगङ्गाधरे (D) काव्यप्रकाशे

व्याख्या- काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ वक्रोक्तिजीवितम् राजानक कुन्तक की एकमात्र रचना है। इसमें चार उन्मेष हैं।
चतुर्वर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम्' इस प्रथमोन्मेष की पाँचवीं कारिका के व्याख्यान में यह उक्ति आचार्य कुन्तक द्वारा कही गयी है-

'कटुकौषधवच्छास्त्रमविद्याव्याधिनाशनम्।' (17)

अर्थात् शास्त्र कड़वी ओषधी के समान अविद्यारूपी व्याधि का नाश करने वाला होता है।

'आह्लाद्यमृतवत्काव्यमविवेकगदापहम्' (1.7)

काव्य आह्लादि अमृतरस के समान अविवेक रूपी रोग का विनाश करता है।

➢ आचार्य कुन्तक वक्रोक्तिजीवितम् के प्रथम उन्मेष की सातवीं कारिका में काव्य का लक्षण करते हुए कहते हैं-

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि। बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि॥7॥

अर्थात् शास्त्रादि प्रसिद्ध शब्द तथा अर्थ के उपनिबन्धन से भिन्न कविव्यापार से शोभित काव्यतत्त्वज्ञों को आनन्दित करने वाले काव्य में विशेष रूप से स्थित सहभाव से युक्त शब्द तथा अर्थ दोनों मिलकर काव्य होता है।

➢ काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ साहित्यदर्पण आचार्य विश्वनाथ की रचना है जिसमें दस परिच्छेद हैं। काव्यप्रयोजन (पुरुषार्थचतुष्टय) के सन्दर्भ में कहते हैं- कटुकौषधोपशमनीयस्य रोगस्य सितशर्करारोगशमनीयत्वे कस्य वा रोगिणः सितशर्कराप्रवृत्तिः साधीयसी न स्यात्?'
अर्थात् जब कड़वी कसैली औषध से होने वाली रोगशान्ति मीठी खांड (शर्करा) से ही हो सकती हो, तब भला कौन ऐसा होगा जो अपने ताप शमन के लिए मीठी खांड (काव्य) के प्रति लालायित न हो उठे?

➢ **आचार्य विश्वनाथ का काव्य प्रयोजन है-**

चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते।। (सा.द.1.2)

अर्थात् काव्य एक ऐसी वस्तु है जिससे अल्पबुद्धि मानव को, बिना किसी कष्टसाधना के, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति हुआ करती है।

➢ आचार्य मम्मट द्वारा विरचित काव्यप्रकाश भी काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है। जिसमें दस उल्लास हैं। आचार्य मम्मट द्वारा प्रतिपादित काव्यप्रयोजन है-

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥
(काव्यप्रकाश 1.3)

कवि में रहने वाली उसकी स्वाभाविक प्रतिभारूप शक्ति, लोकव्यवहार, शास्त्र तथा काव्य आदि के पर्यालोचन से उत्पन्न निपुणता और काव्य को शिक्षा को जानने वाले अभ्यास ये तीनों मिलकर उस काव्य के उद्भव के कारण हैं।
पण्डितराज जगन्नाथ द्वारा रचित रसगंगाधर में चार आनन हैं। पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार काव्य का लक्षण है -

रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। (का॰1)

रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द 'काव्य' है।
स्पष्टीकरण- 'कटुकौषधवच्छास्त्रमविद्याव्याधिनाशनम्' यह पंक्ति आचार्य कुन्तक द्वारा रचित वक्रोक्तिजीवितम् नामक ग्रन्थ से है। **अतः विकल्प B सही है।**
स्रोत- वक्रोक्तिजीवितम् (1/7) - राधेश्याम मिश्र, पेज 15

90. एषु किं काण्डं रामायणे नास्ति?
(A) किष्किन्धाकाण्डम् (B) सीताकाण्डम्
(C) बालकाण्डम् (D) युद्धकाण्डम्

व्याख्या- रामायण महर्षि वाल्मीकि की कृति है, इसमें 24000 श्लोक हैं अतः इसे 'चतुर्विंशतिसाहस्री संहिता' भी कहते हैं। रामायण में मुख्यतः अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है। वाल्मीकिरामायण को आदिकाव्य की संज्ञा दी जाती है, इसे 'आर्षकाव्य' भी कहा जाता है। वाल्मीकिरामायण में कुल सात काण्ड तथा 645 सर्ग हैं जिनका विवरण निम्न है-

काण्ड का नाम तथा सर्ग संख्या-

काण्ड का नाम	सर्ग संख्या
1- बालकाण्ड	77
2- अयोध्याकाण्ड	119
3- अरण्यकाण्ड	75
4- किष्किन्धाकाण्ड	67
5- सुन्दरकाण्ड	68
6- युद्धकाण्ड	128
7- उत्तरकाण्ड	111
कुल सर्ग	645

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दिये गये विकल्पों में सीताकाण्ड रामायण में नहीं है। **अतः विकल्प B सही है।**
स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पेज 122

91. अस्य महापुराणेषु गणना नास्ति?

(A) पद्मपुराणस्य (B) ब्रह्मपुराणस्य
(C) विष्णुपुराणस्य (D) आदित्यपुराणस्य

व्याख्या- पुराणों का विकास दो रूपों में हुआ है महापुराण तथा उपपुराण। महापुराण प्राचीनतर हैं, जिनकी संख्या अठारह है। इस विषय में एक संग्रहश्लोक मिलता है-

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्।।

अर्थात् ''म'' से दो पुराण मत्स्य तथा मार्कण्डेय, भ से दो पुराण- भविष्य तथा भागवत, ब्र-से तीन पुराण- ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, तथा ब्रह्मवैवर्त, व से चारपुराण- विष्णु, वामन, वराह तथा वायु। पुनः अ से अग्नि, ना से नारद, प से पद्म, लिं से लिङ्ग, ग से गरुड, क से कूर्म और स्क स्कन्द ये 18 पुराण पृथक् - पृथक् हैं।

*** उपपुराण-** उपपुराणों की संख्या 18 है- सनत्कुमार, नारसिंह, स्कान्द (या शिव), शिव-धर्म, आश्चर्य, नारदीय, कपिल, औशनस, वारुण, कल्कि, कालिका, माहेश्वर, साम्ब, सौर (सूर्य), पाराशर, मारीच, भार्गव तथा नन्द।

महापुराण	उपपुराण
1. ब्रह्मपुराण	1. सनत्कुमार
2. पद्मपुराण	2. नारसिंह
3. विष्णुपुराण	3. स्कान्द या शिव
4. वायुपुराण	4. शिवधर्म
5. भागवतपुराण	5. आश्चर्य
6. नारदपुराण	6. नारदीय
7. मार्कण्डेयपुराण	7. कपिल/कापिल
8. अग्निपुराण	8. औशनस
9. भविष्यपुराण	9. वारुण
10. ब्रह्मवैवर्तपुराण	10. कल्कि
11. लिङ्गपुराण	11. कालिका
12. वराहपुराण	12. माहेश्वर
13. स्कन्दपुराण	13. साम्ब
14. वामनपुराण	14. सौर (सूर्य)
15. कूर्मपुराण	15. पाराशर
16. मत्स्यपुराण	16. मारीच
17. गरुडपुराण	17. भार्गव
18. ब्रह्माण्डपुराण	18. नन्द

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पुराणों में आदित्य पुराण की गणना नहीं होती है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशंकर शर्मा, पेज 176

92. एषु किम् उपपुराणं न भवति?

(A) कूर्मपुराणम् (B) साम्बपुराणम्
(C) नृसिंहपुराणम् (D) एकाम्रपुराणम्

व्याख्या- पुराण- इतिहास तथा पुराण को प्राचीन साहित्य में समान स्तर पर रखा गया है। वैदिक साहित्य के अतिरिक्त महाभारत में भी कहा गया है- 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।' अर्थात् वेद के अर्थ का पल्लवन इतिहास और पुराण के द्वारा करना चाहिये।

➢ **पुराण का लक्षणः-**

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

सर्ग– विश्व की सृष्टि की प्रक्रिया
प्रतिसर्ग– प्रलय तथा पुनः सृष्टि का वर्णन
वंश– देवताओं और ऋषियों के वंशों का वर्णन
मन्वन्तर– प्रत्येक मनु का काल और उस काल की प्रमुख घटनाओं का निरूपण
वंशानुचरित– सूर्यवंश और चन्द्रवंश में उत्पन्न राजाओं का जीवन चरित

पुराणों की संख्या– पुराणों का विभाजन दो रूप से हुआ है- पुराण और महापुराण। महापुराण और उपपुराणों की संख्या अठारह है।

महापुराण- 1- ब्रह्मपुराण (आदिपुराण), 2- पद्मपुराण, 3- विष्णुपुराण, 4- वायुपुराण, 5- भागवतपुराण, 6- नारद (बृहन्नारदीय) पुराण, 7- मार्कण्डेयपुराण, 8- अग्निपुराण, 9- भविष्यपुराण, 10- ब्रह्मवैवर्तपुराण, 11- लिङ्गपुराण, 12- वराहपुराण, 13- स्कन्दपुराण, 14- वामनपुराण, 15-कूर्मपुराण 16- मत्स्यपुराण, 17- गरुडपुराण, 18- ब्रह्माण्डपुराण।

उपपुराण- 1- सनत्कुमार, 2- नृसिंह (नारसिंह), 3- स्कान्द (या शिव), 4- शिवधर्म, 5- आश्चर्य, 6- नारदीय, 7- कपिल, 8- औशनस, 9- वरुण, 10- कल्कि, 11- कालिका, 12-माहेश्वर, 13- साम्ब, 14- सौर (सूर्य), 15- पाराशर, 16- मारीच, 17- भार्गव, 18- नन्द।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महापुराण में 'कूर्मपुराण' की गणना होती है जबकि उपपुराण में नृसिंह, साम्ब पुराण, एकाम्रपुराण आता है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशंकर शर्मा , पेज 177

93. एषु किं पर्व महाभारते नास्ति-
(A) मौसलपर्व (B) कुन्तीपर्व
(C) शान्तिपर्व (D) उद्योगपर्व

व्याख्या- महाभारत के रचयिता कृष्णद्वैपायन वेदव्यास हैं। इनके पिता का नाम पराशर ऋषि तथा माता का नाम सत्यवती था। विश्व वाङ्मय का सर्वाधिक विशाल ग्रन्थ महाभारत है। इसमें एक लाख से अधिक श्लोक हैं। इसे 'शतसाहस्री संहिता' भी कहते हैं। यह अट्ठारह पर्वों में विभक्त है। इसका सबसे बड़ा पर्व शांतिपर्व (14 हज़ार श्लोक) है तथा सबसे छोटा पर्व महाप्रस्थानिक (115 श्लोक) है। अट्ठारह पर्वों के अलावा अन्त में इसके परिशिष्ट के रूप में 'हरिवंश पर्व' में कृष्ण जीवनचरित वर्णित है, इसे मिलाकर श्लोकों की संख्या एक लाख होती है।

महाभारत के 18 पर्व उनके अध्याय तथा श्लोक संख्याः-

क्रम पर्व	अध्याय	श्लोक
1. आदिपर्व	233	9000
2. सभापर्व	81	
3. वनपर्व	315	
4. विराटपर्व	72	2700
5. उद्योगपर्व	196	7100
6. भीष्मपर्व	122	6100
7. द्रोणपर्व	202	10,000
8. कर्णपर्व		
9. शल्यपर्व	65	3700
10. सौप्तिकपर्व	18	810
11. स्त्रीपर्व	27	820
12. शान्तिपर्व	365	14723
13. अनुशासनपर्व	168	10000
14. आश्वमेधिकपर्व	92	4250
15 आश्रमवासिकपर्व	39	110
16 मौसलपर्व	304	
17 महाप्रस्थानिकपर्व	3115	
18 स्वर्गारोहणपर्व	5	220

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि महाभारत के अठारह पर्वों के अन्तर्गत कुन्तीपर्व सम्मिलित नहीं है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पेज 145

94. कौटिलीयार्थशास्त्रे सर्वविद्यानां प्रदीपः सर्वकर्मणाम् उपायः, सर्वधर्माणामाश्रयः भवति-
(A) आन्वीक्षिकी (B) त्रयी
(C) वार्ता (D) दण्डनीतिः

व्याख्या- आचार्य कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में पन्द्रह अधिकरण, एक सौ पचास अध्याय, एक सौ अस्सी प्रकरण और छह हजार श्लोक हैं।

➢ आचार्य कौटिल्य चार विद्याओं को मानते हैं- आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः। (1) आन्वीक्षिकी (2) त्रयी (3) वार्ता (4) दण्डनीति।

1- चार विद्याओं में सर्वप्रथम आन्वीक्षिकी का लक्षण प्रस्तुत करते हैं- **प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।**
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता॥

यह आन्वीक्षिकी विद्या सर्वदा ही सब विद्याओं का प्रदीप, सभी कार्यों का साधन और धर्मों का आश्रय मानी गई है।

2- त्रयी स्थापना- सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी। साम, ऋक् यजुः इन तीनों वेदों का समन्वित नाम ही त्रयी है।

3- वार्ता- कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता।
कृषि, पशुपालन और व्यापार, ये वार्ता विद्या के विषय हैं।

4- दण्डनीति- आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः।
आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता इन सभी विद्याओं की सुख समृद्धि दण्ड पर निर्भर है। दण्ड को प्रतिपादित करने वाली नीति ही दण्डनीति कहलाती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि आन्वीक्षिकी का लक्षण 'प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् ......' है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- कौटिलीय अर्थशास्त्र - श्री वाचस्पति गैरोला, पेज 9

95. मनुसंहितानुसारं राज्ञः सचिवानां संख्या भवति-
(A) 10-12 (B) 7-8
(C) 3-4 (D) 5-6

व्याख्या- मनु के अनुसार सात या आठ मन्त्रियों की मन्त्रिपरिषद् होती है, अतएव राजा सात या आठ मन्त्रियों की नियुक्ति करता है। मनु के अनुसार ये मन्त्री वंशक्रमनुगत, शास्त्रज्ञाता, शूरवीर, शास्त्र विद्या में प्रवीण, उत्तम वंश में उत्पन्न और भलीभाँति परीक्षा करके नियुक्त किए गए हों।

मौलाञ्छास्त्रविदः शूराँल्लँब्धलक्षान् कुलोद्भवान्।
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्॥

(मनु. 7.54)

मनु ने राजा के लिए चिन्तनीय 6 गुणों को बताया है- सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय।

सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा।। (7.160)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनु ने 7 या 8 सचिवों की परिषद् मानी है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्त्रोत- मनुस्मृति (7/54)-गिरिधर गोपाल शर्मा, पेज 170-171

96. ''तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।
अन्तःसञ्ज्ञा भवन्त्येते सुख-दुःखसमन्विताः।।
इति मनुवचनं केन सम्बद्धम्?

(A) उद्भिदेन (B) अण्डजेन
(C) जरायुजेन (D) स्वेदजेन

व्याख्या- आचार्य मनु ने मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में सृष्ट्युत्पत्ति के अन्तर्गत उद्भिज्ज, अण्डज, जरायुज और स्वेदज प्राणियों के विषय में चर्चा की है।

1- उद्भिज्ज- बीज से पृथ्वी को फोड़कर अथवा टहनी लगाने से जो सब वृक्ष उगते हैं उनको उद्भिज्ज कहते हैं। फल पक जाने पर जो सूख जाते हैं और जिनमें बहुत से फल और फूल लगते हैं उन्हें 'ओषधि' कहते हैं। जिनमें फूल न लगें किन्तु फल लगें उन्हें वनस्पति कहते हैं। जिनमें फूल और फल दोनों लगे उन्हें वृक्ष कहते हैं। अनके प्रकार के गुच्छ, गुल्म, तृण लता और प्रतान, बीज बोने या टहनी लगाने से उग आते हैं। ये सभी पूर्वजन्म के कर्म के कारण बहुत से तमोगुण से घिरे हुए हैं, सुख-दुःख से युक्त हैं और इनके भीतर चेतना है-

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।
अन्तःसञ्ज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः।।
मनु.1.49।।

2- अण्डज- पक्षी, साँप, मगरमच्छ, मछली और कछुए अण्डज हैं और जितने ऐसे जीव, जल और स्थल में पैदा होते हैं वे सब भी अण्डज हैं।

अण्डजाः पक्षिणः सर्पाः नक्राः मत्स्याश्च कच्छपाः।
यानि चैव प्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च।। मनु.1.44।।

3- जरायुज- पशु, मृग, ऊपर नीचे दोनों ओर दाँत वाले, राक्षस, पिशाच और मनुष्य ये सब जरायुज हैं। जरायु गर्भावरण की त्वचा को कहते हैं, उसी से सब उत्पन्न होते हैं-

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः।
रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः।। (मनु. 1.43)

4- स्वेदज- डाँस, मच्छर, जूँ, मक्खी, खटमल और अन्य ऐसे ही जीव जो गरमी से उत्पन्न होते हैं वे स्वेदज हैं। ये प्राणियों के पसीने आदि मलिन द्रव्यों से उत्पन्न होते हैं-

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम्।
ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम्।।1.45।।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रश्नगत मनु का कथन उद्भिदों से सम्बद्ध है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्त्रोत- मनुस्मृति (1/49)- गिरिधर गोपाल शर्मा, पेज 29

97. श्रीमद्भगवद्गीतायां कर्मयोगः कतमोऽध्यायः?

(A) द्वितीयोऽध्यायः (B) तृतीयोऽध्यायः
(C) चतुर्थोऽध्यायः (D) पञ्चमोऽध्यायः

व्याख्या- महर्षि वेदव्यास द्वारा विरचित महाभारत के भीष्मपर्व में वर्णित श्रीमद्भगवद्गीता सर्वाधिक लोकप्रिय भारतीय सनातनधर्म का ग्रन्थरत्न है। गीता में उन सभी विषयों का समावेश है जो हमें पृथक्-पृथक् शास्त्रों में प्राप्त होते हैं। अतएव महर्षि वेदव्यास ने कहा है- **गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।**
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

अर्थः- गीता सुगीता करने योग्य है अर्थात् श्रीगीताजी को भली-भाँति पढ़कर अर्थ और भाव सहित अन्तःकरण में धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है, जो कि स्वयं पद्मनाभ भगवान् श्रीविष्णु के मुखारविन्द से निकली हुई है, फिर अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन? श्रीमद्भगवद्गीता में कुल 18 अध्याय और 700 श्लोक हैं। इसका सबसे बड़ा अध्याय 18वाँ अध्याय (मोक्षसंन्यासयोग 78 श्लोक) तथा सबसे छोटा अध्याय 12वाँ और 15वाँ (भक्तियोग तथा पुरुषोत्तमयोग 20 श्लोक) हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय एवं उनके नामः-

अध्याय अध्यायनाम

1. अर्जुनविषादयोग 8 अक्षरब्रह्मयोग 15 पुरुषोत्तमयोग
2. सांख्ययोग 9 राजविद्याराजगुह्ययोग 16 देवासुरसम्पद्विभागयोग
3. कर्मयोग 10 विभूतियोग 17 श्रद्धात्रयविभागयोग
4. ज्ञानकर्मसंन्यासयोग 11 विश्वरूपदर्शनयोग 18 मोक्षसंन्यास योग
5. कर्मसंन्यासयोग 12 भक्तियोग
6. आत्मसंयमयोग 13 क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग
7. ज्ञानविज्ञानयोग 14 गुणत्रयविभागयोग

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्रीमद्भगवद्गीता में 'कर्मयोग' तृतीय अध्याय को कहा जाता है।

अतः विकल्प B सही है।

स्त्रोत- श्रीमद्भगवद्गीता - अध्याय तीन

98. ''एपिग्राफिया इण्डिका' इति पत्रिकायाः प्रकाशनम् केन प्रारब्धम्?
(A) जेम्स प्रिंसेपमहोदयेन
(B) सर विलियमजोंसमहोदयेन
(C) जे॰बर्जेसमहोदयेन
(D) कीलहार्न महोदयेन

व्याख्या- एपिग्राफिया इण्डिका नामक पत्रिका आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया की ओर से 1882 से 1977 तक प्रकाशित होती थी। इसका पहला संस्करण जेम्स बर्जेस महोदय द्वारा सम्पादित किया गया था (1882 ई. में)। 1892 से 1920 के मध्य तक यह पत्रिका तीन महीने में एक बार 'द इण्डियन एंटीक्वरी' के परिशिष्टरूप में प्रकाशित होती रही। इस पत्रिका के लगभग 43 संस्करण प्रकाशित हुए। ये सभी संस्करण पुरालेखशास्त्र की शाखा के ASI अधिकारियों द्वारा सम्पादित किये जाते थे। अतः इस पत्रिका के प्रकाशन में जेम्स बर्जेस की मुख्य भूमिका रही।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है।
कि विकल्प C सही है। स्रोत- गूगल विकीपीडिया

99. 'धम्मलिपि' नाम कस्य लेखेषु प्राप्यते?
(A) अशोकस्य (B) समुद्रगुप्तस्य
(C) खारवेलस्य (D) कनिष्कस्य

व्याख्या- मौर्य सम्राट् अशोक के ब्राह्मी, खरोष्ठी, आरामेयिक और यूनानी- लिपियों में अंकित अभिलेख देश के विभिन्न भागों से प्राप्त हुए अशोक के 14 अभिलेख प्राप्त हुए हैं।
अशोक के अभिलेखों को धम्मलिपि या धम्मानुशासन धर्मलिपि, धर्मानुशासन, धर्मशास्त्र कहा है। अशोक ने भी इन्हें धम्मलिपि नाम दिया है- 'इयं धम्मलिपि'। प्रथम शिलालेख ही प्रारम्भ होता है- 'इयं धम्मलिपि देवानां पियेना पियदसिला लेखिता' से। इसलिए इन्हें 'धम्मलिपि' नाम से सम्बोधित किया जाता है।
* समुद्रगुप्त का प्रयागस्तम्भ अभिलेख –
स्थान - प्रयागराज, उत्तर प्रदेश
भाषा - संस्कृत
लिपि - ब्राह्मी
काल - समुद्रगुप्त, (लगभग 335-76ई.)
विषय - समुद्रगुप्त का जीवनचरित तथा उपलब्धियों का वर्णन।
*** खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख –**
स्थान- हाथीगुम्फा- भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि पहाड़ी जिला पुरी, उड़ीसा। लिपि - ब्राह्मी
काल - लगभग प्रथमशती ई.पू. का उत्तरार्ध
विषय - चेदिवंशी राजा कलिंगाधिपति खारवेल के जीवन की घटनाओं का क्रमिक विवरण एवं उसकी राजनैतिक उपलब्धियों तथा लोकमंगल के कार्यों का उल्लेख।
*** कनिष्क का सारनाथ बौद्धप्रतिमाभिलेख**
स्थान - सारनाथ, जिला – वाराणसी, उत्तर-प्रदेश
भाषा - प्राकृत संस्कृत से प्रभावित
लिपि - ब्राह्मी
काल - प्रथम शताब्दी ई॰ उत्तरार्द्ध
विषय - भिक्षु बल द्वारा विभिन्न लोगों के साथ, छत्र और यष्टि की स्थापना, हित और सुख के लिए।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि धम्मलिपि अशोक के लेखों में प्राप्त है। **अतः विकल्प A सही है।**
स्रोत- भारतीय पुरालेख - शिवस्वरूप सहाय, पेज 90

100. भारतवर्षे दानलेखानाम् उत्कीर्णनं बाहुल्येन कस्मिन् धातौ कृतम्?
(A) लौहधातौ (B) ताम्रधातौ
(C) रजतधातौ (D) स्वर्णधातौ

व्याख्या- प्राचीनकाल में भारतवर्ष में दान की परम्परा का प्रचलन था इस काल में जो भी दान राजा या जिसके द्वारा दिया जाता था उसका लेख ताम्रधातु पर लिखा जाता था जिनमें से कुछ दान लेखों के ताम्रपत्र का विवरण है-
(1) स्कन्दगुप्त का इन्दौर ताम्रपत्र अभिलेख
स्थान- ग्राम- इन्दौर, तहसील- अनूपशहर, जिला-बुलन्दशहर, उ.प्र.
भाषा - संस्कृत
विषय - देवविष्णु ब्राह्मण द्वारा इन्द्रपुर में सूर्यमन्दिर को अक्षयनीवी दान दिए जाने का उल्लेख।
(2) प्रभावती गुप्त का पूना ताम्रपत्र अभिलेख
स्थान - पूना, जिला महाराष्ट्र
भाषा - संस्कृत लिपि-दक्षिण भारतीय नेकदार सिरवाली ब्राह्मी
विषय- गुप्त वंशावली, वैष्णव सन्त चनाल स्वामी को दङ्गुण नामक ग्राम दान तथा प्रशासनिक आदेश।
(3) हर्ष का बाँसखेड़ा का ताम्रपत्र लेख-
यह ताम्रपत्र महाराजाधिराज श्री हर्षवर्धन द्वारा लिखवाया गया है यह उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले के बाँसखेड़ा नामक स्थान से प्राप्त हुआ। इस ताम्रपत्र में उन गाँवों का विवरण है जो अग्रहारु दाना के लिए इस प्रतापी राजा ने ब्राह्मणों को दिया।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतवर्ष में दान लेखों के प्रचलन में ताम्रधातु का अधिक प्रयोग होता था।
अतः विकल्प B सही है।

उत्तरमाला

1- B	2- D	3- C	4- A	5- A	6- C	7- A	8- C	9- C	10- B
11- D	12- B	13- C	14- B	15- C	16- B	17- A	18- D	19- C	20- D
21- B	22- B	23- A	24- C	25- C	26- B	27- C	28- B	29- C	30- B
31- B	32- A	33- C	34- A	35- C	36- D	37- A	38- D	39- D	40- B
41- A	42- D	43- C	44- B	45- A	46- C	47- D	48- D	49- D	50- A
51- B	52- C	53- B	54- B	55- B	56- A	57- C	58- A	59- B	60- A
61- B	62- A	63- A	64- B	65- B	66- C	67- A	68- D	69- B	70- A
71- C	72- B	73- D	74- B	75- A	76- A	77- B	78- D	79- C	80- A
81- C	82- B	83- C	84- C	85- A	86- A	87- B	88- D	89- B	90- B
91- D	92- A	93- B	94- A	95- B	96- A	97- B	98- C	99- A	100- B

5	जनवरी 2017	NTA UGC–NET/JRF संस्कृतम्	प्रश्नपत्रम् II

1. अधस्तनेषु उचितसम्बन्धयुतं विकल्पं चिनुत

(A) द्यावाचिदस्मै पृथिवी नमेते ...। अग्निसूक्तम्

(B) यस्य ब्रह्मवर्धनं यस्य सोमः ...। सोमसूक्तम्

(C) राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्..रुद्रसूक्तम्

(D) ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः। विष्णुसूक्तम्

व्याख्या-

(A) द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते- (इन्द्र सूक्त 2.12.13)

प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के 12वें सूक्त (इन्द्र सूक्त) से उद्धृत है जिसमें इन्द्र की स्तुति की गई है- ''इस इन्द्र के लिए द्युलोक और पृथिवी लोक भी प्रणाम करने के लिये स्वयं झुक जाते हैं।''

(B) यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमः (इन्द्रसूक्त 2.12.14)

प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के 12वें सूक्त (इन्द्र सूक्त) से उद्धृत है जिसमें इन्द्र की स्तुति की गई है- वृद्धि करने वाले ब्रह्म नामक स्तोत्र जिसको बढ़ाते हैं, सोम रस जिसको बढ़ाने वाला है, हे असुरों! वही इन्द्र है।

(C) राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्- (अग्नि सूक्त 1.1.8)

प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त (अग्निसूक्त) से उद्धृत है जिसमें अग्नि की स्तुति करते हुए कहा गया है कि 'प्रकाशमान होते हुये, हिंसारहित यज्ञों के रक्षक, सत्य कर्मफलों को पुनः पुनः प्रकाशित करने वाले हैं।

(D) ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः (विष्णुसूक्त 1.154.6)

प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 154वें सूक्त (विष्णुसूक्त) से उद्धृत है जिसमें विष्णु की स्तुति की गई है- हे यजमान और हे उसकी पत्नी! जहाँ बड़े-बड़े ऊँचे सींगों वाली गायें अथवा अनेक प्रकार से फैलने वाली किरणें निवास करती हैं या अत्यधिक प्रकाश से युक्त हैं। इस विष्णु के प्रिय उस लोक को प्राप्त करूँ, जहाँ उस विष्णु के भक्तजन आनन्द का अनुभव करते हैं।

स्पष्टीकरण- विकल्प D में विष्णु की स्तुति की गई है जो कि सुमेलित है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्त संग्रह (1.154.6)- हरिदत्त शास्त्री, पेज 170

2. अधस्तनयुग्मानां समुचितां तालिकां चिनुत-

(क) पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनु- व्रतं चरसि विश्ववारे — (i) इन्द्रसूक्तम्

(ख) स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव — (ii) विष्णुसूक्तम्

(ग) यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात् — (iii) उषस्सूक्तम्

(घ) तदस्य प्रियमभिपाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति — (iv) अग्निसूक्तम्

	(क)	(ख)	(ग)	(घ)
(A)	(iii)	(iv)	(i)	(ii)
(B)	(iv)	(i)	(iii)	(ii)
(C)	(i)	(iii)	(ii)	(iv)
(D)	(ii)	(iv)	(i)	(iii)

व्याख्या-

(ख) स नः पितेव सूनवे, अग्ने सूपायनो भव- (अग्निसूक्त 1.1.9)

ऋषि-मधुच्छन्दा, देवता-अग्नि, छन्द-गायत्री।

अग्नि की स्तुति करते हुए कहा गया है कि- हे अग्निदेव! जिस प्रकार पिता पुत्र के लिए सुप्राप्य और कल्याण करने वाला होता है,उसी प्रकार तुम भी हमारे लिए सुप्राप्य बनो और हमारे कल्याण के लिए हमारे संग रहो।

(क) पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे- (उषस् सूक्त 3.61.1)

ऋषि-विश्वामित्र, देवता-उषस्, छन्द-त्रिष्टुप्।

हे उषा देवी! तुम पुरातनी युवती के समान हो अथवा सनातन काल से युवती ही बनी हुई हो, बहुत अधिक बुद्धिमती हो और तुम हमारे यज्ञ आदि नियमों, व्रतों को लक्ष्य करके विचरण करती हो।

(ग) यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्- (इन्द्र सूक्त 2.12.2)

ऋषि-गृत्समद, देवता-इन्द्र, छन्द- त्रिष्टुप्।

इन्द्र की स्तुति में, हे असुरों! जिसने हिलती हुई पृथिवी को स्थिर कर दिया था जिसने पृथिवी को और उस पर रहने वाले प्राणियों को स्थिरता प्रदान की थी जिसने कुपित हुए अर्थात्

इच्छानुसार इधर उधर स्वच्छन्द विचरण करते हुए पंखों से युक्त पर्वतों को अपने-अपने स्थान पर नियमित कर दिया।

(घ) तदस्य प्रियमभिपाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति- (विष्णु सूक्त 1.154.5)

ऋषि-दीर्घतमा, देवता-विष्णु, छन्द-त्रिष्टुप्।

इस विष्णु के उस प्रिय लोक द्युलोक को प्राप्त करूँ जहाँ पर देवताओं को प्राप्त करने की इच्छा वाले देवताओं की पूजा करने वाले लोग आनन्द को प्राप्त करते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि **विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह - हरिदत्त शास्त्री, पेज 233

3. ''नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः'' इति मन्त्रांशो वर्तते।

(A) विश्वामित्र-नदीसूक्ते (B) सरमा-पणि सूक्ते

(C) यम-यमी सूक्ते (D) पुरुरवा-उर्वशी सूक्ते

व्याख्या-

➢ **सरमा पणि सूक्त**

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः।
गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपात इत पणयो वरीयः॥

(ऋ.10.108.10)

प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल के 108वें सूक्त का दसवाँ मन्त्र है इस मन्त्र के देवता सरमा, पणि एवं ऋषि पणि, सरमा हैं। प्रस्तुत मन्त्र में त्रिष्टुप् एवं स्वर धैवत है।

सरमा ने पणि से कहा कि- मैं न तो भ्रातृत्व को जानती हूँ न स्वसृत्व को, इन्द्र तथा भयानक अंगिरस इसको जानते हैं जब मैं आई वे गायों की इच्छा करने वाले मालूम पड़े। अतः हे पणियों किसी विस्तृत स्थान पर चले जाओ।

➢ **विश्वामित्र-नदी सूक्त** ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के 33वें सूक्त के रूप में यह सूक्त वर्णित है जिसके ऋषि विश्वामित्र एवं देवता विपाट्, शुतुद्री (नदियाँ) हैं इस सूक्त के मन्त्रों में पंक्ति त्रिष्टुप् एवं उष्णिक् छन्द हैं। इस सूक्त में 13मन्त्र हैं।

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम्।
देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः॥
(ऋ.3.33.6)

वज्रधारी इन्द्र ने हमें खोदकर बाहर किया। उसने नदियों को घेरने वाले वृत्र को मारा। सुन्दर हाथों वाले सवितृ देव ने हम लोगों को लाया। हम जितनी चौड़ी हैं, उसकी आज्ञा में निरन्तर बहती हैं।

➢ **यम-यमी सूक्त-**

यम-यमी सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल के दसवें सूक्त के रूप में वर्णित है। जिसके ऋषि यमी वैवस्वती, यम वैवस्वत एवं देवता यम वैवस्वत, यमी वैवस्वती हैं। छन्द त्रिष्टुप् तथा स्वर धैवत है, मन्त्रों की संख्या 14 है।

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात्।
काममूता बह्वे तद्रपामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि॥

(ऋ.10.10.11)

यमी ने यम से कहा- वह कैसा भ्राता है, जिसके रहते भगिनी अनाथ हो जाय और भगिनी ही क्या है, जिसके रहते भ्राता का दुःख दूर न हो? मैं काममूर्च्छित होकर नाना प्रकार से बोल रही हूँ, यह विचार करके भली भाँति मेरा सम्भोग करो।

➢ **पुरूरवा उर्वशी सूक्त-**

पुरूरवा उर्वशी सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल के 95वें सूक्त के रूप में वर्णित है। इसके ऋषि पुरूरवा ऐल और उर्वशी तथा देवता उर्वशी और पुरूरवा ऐल है। इस मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द तथा स्वर धैवत एवं मन्त्रों की संख्या 14 है।

सा वसु दधती श्वसुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात्।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन॥

(ऋ.10.95.4)

हे उषा! उर्वशी यदि श्वसुर को भोजन कराना चाहती तो निकटस्थ घर से पति के पास जाती और दिन-रात स्वामी के पास रमणसुख भोगती।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत मन्त्र सरमा पणि संवाद सूक्त से गृहीत है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- ऋग्वेद (10-108-10)- वेदान्ततीर्थ, पेज 465

4. ''को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत्'' इति मन्त्रांशो वर्तते-

(A) सरमा-पणि सूक्ते (B) विश्वामित्र नदी सूक्ते

(C) पुरूरवा-उर्वशी सूक्ते (D) यम-यमी सूक्ते।

व्याख्या-

➢ **पुरूरवा उर्वशी सूक्त-** ऋग्वेद के दशम मण्डल के 95वें सूक्त के रूप में वर्णित है, इस सूक्त के ऋषि पुरुरवा ऐल और उर्वशी तथा देवता उर्वशी और पुरुरवा ऐल हैं। इस मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द तथा स्वर धैवत एवं मन्त्रों की संख्या 18 है।

कदासूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन्।
को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत्॥

(ऋ.10.95.12)

पुरुरवा ने उर्वशी से कहा- तुम्हारा पुत्र मेरे पास किस प्रकार रहेगा? वह मेरे पास आकर रोवेगा। पारस्परिक प्रेम के बन्धन को कौन सद्गृहस्थ तोड़ना स्वीकार करेगा? तुम्हारे श्वसुर के घर में श्रेष्ठ आलोक जगमगा उठा है।

➢ **विश्वामित्र नदी सूक्त-**

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते॥
(ऋ.3.33.1)

पर्वतों की गोद से निकलकर समुद्र की ओर जाने की इच्छा करती हुई परस्पर स्पर्धा से दौड़ती हुई, खुले बाग वाली दो घोड़ियों की तरह बछड़े को चाटती हुई दो सफेद माता गायों की तरह विपाट् और शुतुद्री प्रवाह से तेजी से बह रही हैं।

➢ **सरमा पणि सूक्त-**

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत्कथं रसाया अतरः पयांसि॥ (ऋ.10.108.1)

सरमा क्या इच्छा करती हुई इस स्थान पर पहुँची है, क्योंकि मार्ग बहुत दूर उभरा हुआ तथा गमनागमन से रहित है। हममें तुम्हारा कौन सा अभिप्रेत अर्थ निहित है? तुम्हारी यात्रा कैसी थी? रसा नदी के जल को तुमने कैसे पार किया?

➢ **यम-यमी सूक्त-**

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः॥
(ऋ.10.10.1)

यमी अपने भाई यम से कहती है- विस्तृत समुद्र के मध्य द्वीप में आकर इस निर्जन प्रदेश में मैं तुम्हारा सहवास चाहती हूँ, क्योंकि माता की गर्भावस्था से ही तुम मेरे साथी हो। विधाता ने मन ही मन समझा है कि तुम्हारे द्वारा मेरे गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा वह हमारे पिता का एक श्रेष्ठ नाती होगा। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- (i) ऋग्वेद (10-95-12)- वेदान्ततीर्थ, पेज 430
(ii) वैदिकवाङ्मयसार - सर्वज्ञभूषण, पेज 13

5. अधस्तनेषु सामवेदस्य ब्राह्मणमस्ति-
(A) शांखायनब्राह्मण (B) कौषीतकिब्राह्मण
(C) षड्विंशब्राह्मण (D) तैत्तिरीयब्राह्मण

व्याख्या-

ऋग्वेद के ब्राह्मण-
* ऐतरेय ब्राह्मण
* शांखायन (कौषीतकि) ब्राह्मण

शुक्लयजुर्वेद के ब्राह्मण-
* शतपथ ब्राह्मण

कृष्णयजुर्वेद के ब्राह्मण-
* तैत्तिरीय ब्राह्मण

सामवेद के ब्राह्मण
* तांड्य ब्राह्मण * मन्त्र ब्राह्मण (उपनिषद् ब्राह्मण)
* षड्विंश ब्राह्मण * देवताध्याय ब्राह्मण
* सामविधान ब्राह्मण * वंश ब्राह्मण
* आर्षेय ब्राह्मण * संहितोपनिषद् ब्राह्मण

अथर्ववेद के ब्राह्मण-
* गोपथ ब्राह्मण

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामवेद का ब्राह्मण 'षड्विंश ब्राह्मण' है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी,पेज-10

6. ''अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः'' सन्दर्भोऽयं वर्तते-
(A) कठोपनिषदि (B) ईशोपनिषदि
(C) श्वेताश्वतरोपनिषदि (D) बृहदारण्यकोपनिषदि

व्याख्या-

कठोपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की कठशाखा से सम्बन्धित उपनिषद् है जिसमें दो अध्याय एवं प्रत्येक अध्याय में तीन-तीन वल्ली हैं-

कठोपनिषद् की कुछ प्रमुख सूक्तियाँ-

* **न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः** (1.1.27) मनुष्य धन से कभी भी तृप्त नहीं होता।
* **श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत** (1.2.2)- मनुष्य में श्रेय और प्रेय ये दोनों गुण समान रूप से आते हैं।
* **आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।**
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ (1.3.3)

तुम आत्मा को रथी जान, शरीर को रथ समझ, बुद्धि को सारथि जान और मन को लगाम समझ।

➢ **ईशोपनिषद्-** ईशावास्योपनिषद् शुक्लयजुर्वेद की काण्वशाखा का चालीसवाँ अध्याय है। ईशावास्योपनिषद् में कुल 18 मन्त्र हैं।

ईशावास्योपनिषद् के प्रमुख मन्त्र-

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः।।(मन्त्र-9)

जो मनुष्य अविद्या की उपासना करते हैं वे अज्ञान स्वरूप घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं जो मनुष्य विद्या में रत हैं अर्थात् ज्ञान के मिथ्याभिमान में मत्त हैं वे उससे भी मानों अधिकतर अन्धकार

में प्रवेश करते हैं।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।। (मन्त्र-11)
अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः।। (मन्त्र-12)

➢ **श्वेताश्वतरोपनिषद्-** श्वेताश्वतरोपनिषद् शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित उपनिषद् है इस उपनिषद् में शिव (रुद्र) का परम पुरुष के रूप में वर्णन है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् की प्रमुख सूक्तियाँ-

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः।। (3.2)
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्। (4.10)
अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः (4.5)

➢ **बृहदारण्यकोपनिषद्-**

बृहदारण्यकोपनिषद् शतपथ ब्राह्मण के 14वें काण्ड का अन्तिम भाग है। यह उपनिषद् शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध है। आकार की दृष्टि से यह उपनिषद् सबसे विशालकाय है। इस उपनिषद् में छः अध्याय हैं और अध्याय उपखण्डों में विभक्त हैं। याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद इसी उपनिषद् में प्राप्त होता है।

बृहदारण्यकोपनिषद् के प्रमुख मन्त्र-

* आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो (4.5.6)
* अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति। (4.5.3)
* आत्मनस्तु कामाय जाया प्रियाभवति (4.5.6)
* असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय।।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते......मन्त्र ईशोपनिषद् से उद्धृत है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- ईशादि नौ उपनिषद् (ईश. -9) - गीताप्रेस, पेज 34

7. ''सृष्ट्युत्पत्तिकाल एव वेदानामुत्पत्तिकालः'' इति कः स्वीकरोति?

(A) मैक्डानलः (B) मैक्समूलरः
(C) एम. विन्टरनिट्जः (D) महर्षिदयानन्दः

व्याख्या-

➢ **मैक्समूलर-** मैक्समूलर ने गौतमबुद्ध के आविर्भाव को अपना आधार माना है। बुद्ध ने वैदिकी हिंसा का खण्डन किया है अतः वैदिक काल बुद्ध के जन्म से पूर्व होना चाहिए। मैक्समूलर ने वैदिक काल को चार भागों में विभक्त किया है-

छन्दकाल - 1200 ई.पू.-1000 ई.पू.
मन्त्रकाल - 1000 ई.पू.-800 ई.पू.
ब्राह्मणकाल - 800 ई.पू. - 600 ई.पू.
सूत्रकाल - 600 ई.पू. - 400 ई.पू.

बोगाजकोई के शिलालेख की प्राप्ति के बाद यह मत सर्वथा निरस्त हो गया।

➢ **एम. विन्टरनित्स-** एम. विन्टरनित्स ने सभी मतों की विस्तृत आलोचना के बाद अपना समन्वयात्मक मत दिया। इन्होंने वैदिक काल को 2500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक माना है।

➢ **महर्षिदयानन्द-**

आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों के सन्दर्भों के द्वारा प्रतिपादित किया है कि वेदों का उद्भव परमात्मा से सृष्टि उत्पत्ति काल से ही प्रारम्भ हुआ। उसने ही अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, और सूर्य से सामवेद को प्रकट किया। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-39

8. अधस्तनयुग्मानां समुचितां तालिकां चिनुत-

(क) कात्यायनशुल्बसूत्रम् (i) व्याकरणम्
(ख) त्रिमुनि (ii) कृष्णयजुर्वेदः
(ग) ऋक्तन्त्रप्रातिशाख्यम् (iii) शुक्लयजुर्वेदः
(घ) आपस्तम्बगृह्यसूत्रम् (iv) सामवेदः

	(क)	(ख)	(ग)	(घ)
(A)	(ii)	(i)	(iii)	(iv)
(B)	(iii)	(i)	(iv)	(ii)
(C)	(ii)	(iii)	(i)	(iv)
(D)	(ii)	(i)	(iv)	(iii)

व्याख्या-

➢ **कात्यायन शुल्बसूत्र-** कात्यायन शुल्बसूत्र का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद से है। कात्यायन शुल्बसूत्र को 'कात्यायन शुल्ब परिशिष्ट या कातीय शुल्ब परिशिष्ट' भी कहते हैं। इस शुल्बसूत्र के दो भाग हैं। प्रथम भाग सूत्रों में है तथा द्वितीय भाग श्लोकात्मक है। प्रथमभाग में 102 सूत्र तथा द्वितीय भाग में 40 श्लोक हैं।

यजुर्वेद के अन्य शुल्बसूत्र- बौधायन शुल्बसूत्र, मानव शुल्बसूत्र, आपस्तम्ब शुल्बसूत्र, मैत्रायणीय शुल्बसूत्र, हिरण्यकेशि शुल्बसूत्र, वाराह शुल्बसूत्र।

➢ **त्रिमुनि-** त्रिमुनि के अन्तर्गत पाणिनि, कात्यायन तथा पतञ्जलि आते हैं। पाणिनि ने अष्टाध्यायी, कात्यायन ने अष्टाध्यायी पर वार्तिक एवं पतञ्जलि ने इन दोनों पर महाभाष्य की रचना की। इन सबका सम्बन्ध व्याकरण से है।

➢ **ऋक्तन्त्रप्रातिशाख्य-** ऋक्तन्त्रप्रातिशाख्य का सम्बन्ध सामवेद की कौथुमशाखा से है। इसे 'ऋक्तन्त्र व्याकरण' भी कहते हैं। इसमें पाँच प्रपाठक और 280 सूत्र हैं। इसके रचयिता आचार्य शाकटायन हैं।

➢ **आपस्तम्ब गृह्यसूत्र-** आपस्तम्ब गृह्यसूत्र का सम्बन्ध कृष्णयजुर्वेद से है। यह आपस्तम्ब कल्पसूत्र का एक अंश है। इस कल्प में 30 प्रश्न (अध्याय) हैं। इनमें से 25,26 और 27 अध्याय गृह्यसूत्र हैं।

कृष्णयजुर्वेद के अन्य गृह्यसूत्र- बौधायन, मानव, भारद्वाज काठक, आग्निवेश्य, हिरण्यकेशि, वाराह, वैखानस, चारायणीय, वैजवाप।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि कात्यायन शुल्बसूत्र का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद से, त्रिमुनि का सम्बन्ध व्याकरण से, ऋक्तन्त्रप्रातिशाख्य का सम्बन्ध सामवेद से, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र का सम्बन्ध कृष्णयजुर्वेद से है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव, पेज-9,116,198

9. वेदानां विकृतिपाठः कतिविधः?

(A) त्रिविधः (B) पञ्चविधः

(C) अष्टविधः (D) नवविधः

व्याख्या-

वेदों के संरक्षण के उपाय- वेदों के संरक्षण के उपाय की अष्ट विकृतियाँ हैं। वेद के मन्त्रों के उच्चारण में तथा उनकी सुरक्षा में कोई अन्तर न आने पाए इसके लिए अनेक उपाय किए गए हैं इन उपायों को ही विकृतियाँ कहते हैं इनमें मन्त्रों को घुमा फिरा कर अनेक प्रकार से उच्चारण किया जाता है। ये विकृतियाँ 8 हैं-

''जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वजो, दण्डो, रथो, घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥''

जटापाठ, मालापाठ, शिखापाठ, रेखापाठ, ध्वजपाठ, दण्डपाठ, रथपाठ, घनपाठ ये वेदों की अष्ट विकृतियाँ हैं। उपर्युक्त आठ विकृतियों के अतिरिक्त तीन पाठ और भी हैं- **संहितापाठ, पदपाठ, क्रमपाठ।**

* वेदों में स्वर सम्बन्धी तीन नियम हैं-

उदात्त स्वर- उदात्त वर्ण पर कोई चिह्न नहीं होता।

अनुदात्त स्वर- अनुदात्त वर्ण पर नीचे पड़ी लकीर खींची जाती है।

स्वरित स्वर- स्वरित वर्ण पर ऊपर, खड़ी लकीर खींची जाती है।

➢ महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में व्याकरण अध्ययन के पाँच प्रयोजन बताए हैं- **'रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजनम्'**

(1) **रक्षा-** वेदों की रक्षा के लिए।
(2) **ऊह** (तर्क)- यथा विभक्ति परिवर्तन, वाच्यपरिवर्तन आदि के लिए।
(3) **आगम-** ब्राह्मण को निष्काम भाव से वेद पढ़ना चाहिए इस आदेश की पूर्ति के लिए।
(4) **लघु-** सरल ढंग से शब्द ज्ञान के लिए।
(5) **असन्देह-** शब्द और अर्थ विषयक सन्देह के निराकरण के लिए।

➢ महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में अथर्ववेद की नौ शाखाओं का उल्लेख किया- पैप्पलाद, तौद, मौद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, देवदर्श, चारणवैद्य। परन्तु इनमें से दो ही शाखाएँ प्राप्त होती हैं- शौनकीय शाखा, पैप्पलाद शाखा।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि वेदों की विकृति पाठ की आठ विधियाँ हैं। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी,पेज-8

10. द्विविधो विभाजनक्रमो वर्तते-

(A) अथर्ववेदस्य (B) ऋग्वेदस्य

(C) ईशोपनिषदः (D) कठोपनिषदः

व्याख्या-

ऋग्वेद का विभाजन- ऋग्वेद संहिता का विभाजन दो प्रकार से किया गया है- (1) अष्टक, अध्याय, वर्ग और मन्त्र (2) मण्डल, अनुवाक, सूक्त और मन्त्र।

(A) **अष्टक क्रम-** इसमें पूरे ऋग्वेद को 8 समान भागों में बाँटा गया है। इसलिए इसे अष्टक कहते हैं। प्रत्येक अष्टक को आठ अध्यायों में बाँटा गया है। इस प्रकार पूरे ऋग्वेद में 64 अध्याय हैं। बालखिल्य सूक्तों को सम्मिलित करते हुए ऋग्वेद में 8 अष्टक, 64 अध्याय, 2024 वर्ग और 10,552 मन्त्र हैं।

(B) **मण्डल क्रम-** ऋग्वेद को ऋषि और देवता के अनुसार 10 मण्डलों में विभक्त किया गया है। बालखिल्य के 11 सूक्तों के 80 मन्त्रों को सम्मिलित करते हुए 85 अनुवाक 1028 सूक्त और 10552 मन्त्र हैं।

➢ **यजुर्वेद का विभाजन-** यजुर्वेद दो भागों में विभक्त है- शुक्लयजुर्वेद तथा कृष्णयजुर्वेद। शुक्लयजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं- माध्यन्दिन या वाजसनेयि संहिता तथा काण्व संहिता। दोनों ही संहिताओं में 40-40 अध्याय हैं। इसप्रकार शुक्लयजुर्वेद का विभाजन अध्यायों में हुआ है।

➢ **कृष्णयजुर्वेद का विभाजन-** कृष्णयजुर्वेद की शाखाओं का विभाजन विभिन्न प्रकार से किया गया है।

* **तैत्तिरीय संहिता-** काण्डों में विभक्त (7 काण्ड, 44 प्रपाठक, 631 अनुवाक)

* **मैत्रायणी संहिता-** काण्डों में विभक्त (4 काण्ड, 54 प्रपाठक, 3144 मन्त्र)

* **काठक संहिता-** खण्डों में विभक्त (5 खण्ड, 53 उपखण्ड, 843 अनुवाक, 3028 मन्त्र)

* **कठ-कपिष्ठल संहिता-** यह शाखा "चरणव्यूह" के अनुसार चरकों की 12 शाखाओं में से एक है। डा. रघुवीर ने इसका एक सुन्दर संस्करण 1932 में लाहौर से प्रकाशित किया था। यह ऋग्वेद के तुल्य अष्टकों और अध्यायों में विभक्त हैं। इसके केवल छः अष्टक उपलब्ध हैं।

➢ **सामवेद का विभाजन-** सामवेद की विभिन्न शाखाओं का विभाजन निम्नवत् है-

* **कौथुम शाखा-** कौथुम शाखा का विभाजन अध्याय, खण्ड और मन्त्र के रूप में है।

* **राणायनीय शाखा-** प्रपाठक, अर्धप्रपाठक, दशति और मन्त्र के रूप में है।

* **जैमिनीय शाखा-** इसमें 1687 मन्त्र हैं।

➢ **अथर्ववेद का विभाजन-** अथर्ववेद की नौ शाखाओं में दो ही शाखाएँ प्राप्त होती हैं (1) शौनकीयशाखा (2) पैप्पलाद शाखा।
(1) शौनकीय शाखा- 20 काण्ड 730 सूक्त एवं 5987 मन्त्र
(2) पैप्पलाद शाखा- काण्डों में विभक्त।

➢ **ईशोपनिषद्-** ईशावास्योपनिषद् शुक्लयजुर्वेद का 40वाँ अध्याय है। इसमें मन्त्रों की संख्या 18 है। इस उपनिषद् में सम्भूति-असम्भूति, विद्या-अविद्या का वर्णन है।

➢ **कठोपनिषद्-** कृष्णयजुर्वेद की कठशाखा से सम्बन्धित है इसमें दो अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में तीन-तीन वल्ली हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि ऋग्वेद का विभाजन दो प्रकार से (अष्टक एवं मण्डल क्रम में) हुआ है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-46

11. शुक्लयजुर्वेदस्य कति शाखाः समुपलभ्यन्ते?

(A) 4 (B) 3
(C) 5 (D) 2

व्याख्या-

➢ **ऋग्वेद की शाखाएँ-**

महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में ऋग्वेद की 21 शाखाओं का उल्लेख किया है 'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्' इनमें से केवल पाँच शाखाओं का ही मुख्य रूप से उल्लेख प्राप्त होता है। चरणव्यूह के अनुसार ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ हैं-
(1) शाकल शाखा (2) बाष्कल शाखा (3) आश्वलायन शाखा (4) शांखायन शाखा (5) माण्डूकायन शाखा।

➢ यजुर्वेद मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त है-
(1) शुक्लयजुर्वेद (2) कृष्णयजुर्वेद

शुक्लयजुर्वेद की शाखा- शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं-

(1) माध्यन्दिन या वाजसनेयि शाखा- इस शाखा में 40 अध्याय एवं 1975 मन्त्र हैं।

(2) काण्व शाखा- काण्व शाखा का विभाजन अध्याय, अनुवाक मन्त्र के रूप में है। इस प्रकार इस शाखा में चालीस अध्याय, 328 अनुवाक और 2086 मन्त्र हैं।

➢ **सामवेद की शाखाएँ-**

महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में 'सहस्रवर्त्मा सामवेदः' कह कर सामवेद की एक हजार शाखाएँ मानी हैं।

सामतर्पण में सामवेद की 13 शाखाओं का उल्लेख प्राप्त होता है- (1) राणायन (2) शाट्यमुग्र्य (सात्यमुग्रि) (3) व्यास (4) भागुरि (5) औलुण्डी (6) गौल्गुलवि (7) भानुमान् औपमन्यव (8) काराटि (द्वाराल) (9) मशक गार्ग्य (10) वार्षगण्य (वार्षगव्य) (11) कुथुम (कौथुमि, कुथुमि) (12) शालिहोत्र (13) जैमिनि। परन्तु इन 13 शाखाओं में से केवल तीन शाखाएँ ही प्राप्त होती हैं- 1. कौथुमीय शाखा (2) राणायनीयशाखा (3) जैमिनीयशाखा

➢ **अथर्ववेद की शाखाएँ-** 'नवधाऽऽथर्वणो वेदः' कहकर पतञ्जलि ने अथर्ववेद की नौ शाखाओं का उल्लेख किया-
(1) पैप्पलाद (2) तौद (3) मौद (40 शौनकीय (50 जाजल (6) जलद (7) ब्रह्मवद (8) देवदर्श (9) चारणवैद्य।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखायें उपलब्ध हैं। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-9

12. अधस्तनयुग्मानां समुचितां तालिकां चिनुत-

(क)	पिङ्गलः	(i)	ज्योतिषम्
(ख)	शुल्बसूत्राणि	(ii)	निरुक्तम्
(ग)	लगधः	(iii)	छन्दःशास्त्रम्
(घ)	तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्यं स्वार्थसाधकञ्च	(iv)	कल्पः

	(क)	(ख)	(ग)	(घ)
(A)	(i)	(iii)	(iv)	(ii)
(B)	(iii)	(i)	(ii)	(iv)
(C)	(ii)	(iv)	(iii)	(i)
(D)	(iii)	(iv)	(i)	(ii)

व्याख्या-

वेदाङ्गों की संख्या छः है- शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प।

* **ज्योतिष-** पाणिनीय शिक्षा में **'ज्योतिषामयनं चक्षुः'** ज्योतिष को चक्षु कहा गया है। ज्योतिष का अर्थ है ज्योतिर्विज्ञान। ज्योतिष विषयक केवल एक ही प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध होता है जो महर्षि लगध का 'वेदाङ्ग ज्योतिष' तथा दूसरे का नाम 'याजुष ज्योतिष' है।

* **निरुक्त-** पणिनीय शिक्षा में **'निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते'** निरुक्त को श्रोत्र (कान) कहा गया है। निरुक्त महर्षि यास्क की रचना है जिसमें परिशिष्ट सहित चौदह अध्याय हैं। निरुक्त का अर्थ है - निर्वचन या व्युत्पत्ति।

'तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कात्स्र्न्यं स्वार्थसाधकं च' यह निरुक्तशास्त्र व्याकरण का पूरक भी है क्योंकि शब्दार्थ के परिज्ञान द्वारा स्वर-संस्कार के विधान में व्याकरण की सहायता करता है और अपने अर्थ का साधक भी है।

'षड्भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः' मुख्य रूप से क्रियाओं के छः भेद हैं ऐसा वार्ष्यायणि मानते हैं। छः प्रकार की क्रियाएँ हैं- जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते, विनश्यति।

'नामानि आख्यातजानि इति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च' सारे ही नाम आख्यातज हैं, यह शाकटायन और नैरुक्तों का सिद्धान्त है।

* **छन्दशास्त्र-** पाणिनीय शिक्षा में **'छन्दः पादौ तु वेदस्य'** छन्द को वेदपुरुष का पैर कहा गया है।

पिंगल के छन्दसूत्र के पूर्वभाग में वैदिक छन्दों का विवेचन है तथा उत्तरभाग में लौकिक छन्दों का विश्लेषण है।

* **कल्प-** पाणिनीय शिक्षा में **'हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते'** कल्प को वेदपुरुष का हाथ कहा गया है। कल्प को चार भागों में बाँटा गया है। जिन ग्रन्थों में यज्ञ सम्बन्धी विधियों का प्रतिपादन हो उसे कल्प कहते हैं।

* **श्रौतसूत्र-** श्रौत का अर्थ है- **श्रुति प्रतिपादित या वेदों में वर्णित।** श्रौतसूत्रों में वेदों में वर्णित बड़े यज्ञ-याग इष्टियों का विस्तार से विवेचन है।

* **गृह्यसूत्र-** गृह्यसूत्रों में गृहस्थ से सम्बद्ध सोलह संस्कार, पञ्च महायज्ञ, सात पाकयज्ञ, गृह निर्माण, गृह प्रवेश, पशुपालन आदि का विस्तृत वर्णन है।

* **धर्मसूत्र-** इनमें वर्णाश्रम के कर्तव्यों, आचार-विचार, मान्यताओं और सामाजिक जीवन के कर्तव्य- अकर्तव्यों का वर्णन है।

* **शुल्बसूत्र-** ये शुद्ध रूप से गणितशास्त्रीय वैज्ञानिक ग्रन्थ है। इनमें गणितशास्त्र के अंग ज्यामितिशास्त्र से सम्बद्ध अनेक प्रमेय दिए गये हैं। शुल्बसूत्र में सभी प्रकार की वेदियों के निर्माण की पूरी विधि दी गई है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज- 190,199,214,208, निरुक्तम्-आचार्य विश्वेश्वर,पेज 96

13. महत् किमस्ति?

(A) प्रकृतिः (B) विकृतिः
(C) प्रकृतिविकृती (D) न प्रकृतिः न विकृतिः

व्याख्या-

सांख्यकारिकाकार ईश्वरकृष्ण ने पदार्थों का वर्णन इस प्रकार किया है-

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥ (सां.का.3)

मूलप्रकृति किसी का विकार नहीं है - महत् आदि सात पदार्थ (तत्त्व) प्रकृति विकृति अर्थात् कार्य और कारण दोनों हैं सोलह पदार्थ केवल विकार अर्थात् कार्य हैं, पुरुष न प्रकृति है न विकृति।

* प्रकृतिः- मूल प्रकृति (अविकृति) =1

* विकृतिः (विकार)-: पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय- पाँच महाभूत, मन =16

* प्रकृति विकृति- महत्, अहंकार, पाँच तन्मात्रा =7

* न प्रकृतिः न विकृतिः- पुरुष =1

* पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ- श्रोत्र, नेत्र, घ्राण, त्वक्, रसना

* पाँच कर्मेन्द्रियाँ- वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ

* पाँच महाभूत- आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी

* पाँच तन्मात्रा- शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध

अतः विकल्प C सही है।

स्रोत- सांख्यकारिका- (का. - 3) राकेश शास्त्री,पेज-8

14. 'तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकम्' लक्षणमिदं कस्य विद्यते?

(A) शब्दप्रमाणस्य (B) अनुमानप्रमाणस्य
(C) प्रत्यक्षप्रमाणस्य (D) उपमानप्रमाणस्य

व्याख्या-

ईश्वरकृष्ण ने सांख्यकारिका में प्रमाण का वर्णन इसप्रकार किया है-

प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टं त्रिविधमनुमानमाख्यातम्।
तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकमाप्तश्रुतिराप्तवचनन्तु ॥5॥

(A) **शब्द प्रमाण-** सांख्यकारिका में शब्दप्रमाण का लक्षण निम्नवत् है- **''आप्तश्रुतिराप्तवचनं तु''** आप्तवचन अर्थात्

आगम प्रमाण युक्त श्रुति अर्थात् युक्त वाक्य से उत्पन्न उसके अर्थ ज्ञान को कहते हैं। जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही बताने वाला व्यक्ति 'आप्त' कहलाता है तथा श्रुति का अर्थ है- वाक्य से उत्पन्न होने वाला अर्थात् आप्तव्यक्ति द्वारा कहे गये वाक्य से उत्पन्न होने वाला ज्ञान ही आप्त श्रुति है।

(B) **अनुमान प्रमाण- ''तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकम्''** अनुमान प्रमाण लिङ्ग तथा लिङ्गी के ज्ञान से उत्पन्न होता है। लिङ्ग को दार्शनिक भाषा में व्याप्त या साधन कहते हैं क्योंकि यह लिङ्गी व्यापक की अपेक्षा कम स्थानों पर रहता है। लिङ्गी का अर्थ है-ः व्यापक अर्थात् अपेक्षाकृत अधिक स्थानों पर रहना।
अनुमान प्रमाण के तीन भेद हैं- पूर्ववत्, सामान्यतोदृष्ट, शेषवत्।

(C) **प्रत्यक्ष प्रमाण-''प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टम्''** विषय से सन्निकृष्ट इन्द्रिय पर आश्रित बुद्धि-व्यापार या ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

(D) सांख्यशास्त्र में उपमान प्रमाण की चर्चा नहीं की गयी है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकम् यह लक्षण अनुमान प्रमाण का है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- सांख्यकारिका- (का. - 5) राकेश शास्त्री, पेज-16

15. व्यक्तं कीदृक् न भवति?

(A) हेतुमत् (B) अव्यापि
(C) अनाश्रितम् (D) सावयवम्

व्याख्या-

सांख्यकारिकाकार ईश्वरकृष्ण के अनुसार व्यक्त और अव्यक्त का लक्षण निम्नवत् है- **'हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्। सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥'** (सां.का.10)

व्यक्त पदार्थ - हेतुमद्, अनित्य, अव्यापि,सक्रिय अनेक, आश्रित, लिङ्गी, सावयव तथा परतन्त्र होते हैं।
अव्यक्त पदार्थ इसके विपरीत होते हैं अर्थात् अहेतुमत्, नित्य, व्यापि, असक्रिय, एक, अनाश्रित, अलिङ्गी, निरवयव, स्वतन्त्र।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि व्यक्त पदार्थ हेतुमत्, अव्यापी, सावयव होता है वह अनाश्रित न होकर आश्रित होता है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- सांख्यकारिका-(कारिका 10) राकेश शास्त्री, पेज-32-33

16. ''तदैक्यप्रमेयस्य तत्प्रतिपादकोपनिषत्प्रमाणस्य च बोध्यबोधकभावः'' वेदान्तसारानुसारं लक्षणमिदं कस्यास्ति?

(A) अधिकारिणः (B) विषयस्य
(C) सम्बन्धस्य (D) प्रयोजनस्य

व्याख्या-

सदानन्द प्रणीत वेदान्तसार में अनुबन्धों की संख्या चार है- अधिकारी, विषय, सम्बन्ध, प्रयोजन।

(A) **अधिकारी- 'अधिकारी तु विधिवदधीत..... नितान्तनिर्मलस्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता।'**

जिसने इस जन्म में अथवा अन्य जन्मों में वेदों और वेदाङ्गों का विधिपूर्वक अध्ययन करने के द्वारा समस्त वेदान्त के अर्थ को सामान्य रूप से समझ लिया है, काम्य एवं निषिद्ध कर्मों का परित्याग करके नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त, उपासना कर्मों का अनुष्ठान करने से, समस्त कल्मषों के दूर हो जाने के कारण जिसका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल हो गया है, प्रमाणों के द्वारा व्यवहार करने में समर्थ साधनचतुष्टय से सम्पन्न प्रमाता इस ग्रन्थ का अधिकारी है।

(B) **विषय- 'विषयो जीवब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयं तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात्।'**
जीव और ब्रह्म की एकता अर्थात् अभेद ही वेदान्त का विषय है।

(C) **सम्बन्ध-**
'सम्बन्धस्तु तदैक्यप्रमेयस्य तत्प्रतिपादकोपनिषत्प्रमाणस्य च बोध्यबोधकभावलक्षणः।'
जीव और ब्रह्म की एकतारूप प्रमेय का और उसका प्रतिपादन करने वाले उपनिषद् रूप प्रमाण का परस्पर बोध्य-बोधकभाव ही इस शास्त्र का सम्बन्ध है।

(D) **प्रयोजन- 'प्रयोजनं तु तदैक्यप्रमेयगताज्ञाननि-वृत्तिः स्वस्वरूपानन्दावाप्तिश्च।'**
जीव और ब्रह्म की एकतारूप प्रमेय के सम्बन्ध में जो अज्ञान है उसकी निवृत्ति होना और अपने वास्तविक स्वरूप आनन्द की प्राप्ति होना इस ग्रन्थ का प्रयोजन है।

स्पष्टीकरण- 'तदैक्यप्रमेयस्य तत्प्रतिपादकोपनिषत्प्रमाणस्य च बोध्यबोधकभावः' यह लक्षण सम्बन्ध का है।
अतः विकल्प C सही है।

स्रोत- वेदान्तसार- आद्याप्रसाद मिश्र, पेज 36

17. 'समष्टिव्यष्ट्यभिप्रायेणैकमनेकमिति' उक्तिरियं वेदान्तसारे कस्य सन्दर्भेऽस्ति?

(A) विद्यायाः (B) अज्ञानस्य
(C) अध्यारोपस्य (D) समाधेः

व्याख्या-

(A) **शुक्लयजुर्वेद** का चालीसवाँ अध्याय ईशावस्योपनिषद् है, इसके मन्त्र संख्या ग्यारह में विद्या और अविद्या की चर्चा की

गयी है जो इस प्रकार है-

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥ (ईश.मन्त्र.11)

जो साधक पुरुष विद्या अर्थात् ज्ञान को अथवा ज्ञानरूप साधन को अर्थात् ज्ञानमार्ग को और कर्म रूप साधन को दोनों को एक साथ जान लिया करता है वह कर्मों के यथावत् अनुष्ठान के द्वारा मृत्यु को अर्थात् जन्म-मृत्यु के बन्धन को पार करके तत्त्वज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान के द्वारा अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है।

(B) **अज्ञान- अज्ञानं तु सदसद्‌भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपम्।**

अज्ञान सत् या असत् रूप से अनिर्वचनीय, त्रिगुणात्मक, ज्ञान का विरोधी, भावरूप है।

* इस अज्ञान के दो भेद हैं- **'इदमज्ञानं समष्टिव्यष्ट्यभिप्रायेणै-कमनेकमिति च व्यवह्रियते'** यह अज्ञान समष्टि के अभिप्राय से एक और व्यष्टि के अभिप्राय से अनेक कहा जाता है।
* इस अज्ञान की दो शक्तियाँ भी हैं-

'अस्याज्ञानस्यावरणविक्षेपनामकमस्ति शक्तिद्वयम्'

अज्ञान की आवरण और विक्षेप नामक दो शक्तियाँ हैं।

(C) **अध्यारोप-**

'असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवद् वस्तुन्यवस्त्वारोपोऽध्या-रोपः' कभी भी सर्पभाव को न प्राप्त होने वाली रस्सी पर सर्प के आरोप के समान, वस्तु पर अवस्तु का आरोप करना ही अध्यारोप है।

(D) **समाधि-** वेदान्तसार में समाधि के दो भेद हैं-

(1) सविकल्पक समाधि (2) निर्विकल्पक समाधि

* निर्विकल्पक समाधि के आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।
* निर्विकल्पक समाधि के चार विघ्न हैं- लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि **''समष्टिव्यष्ट्यभिप्राये-णैकमनेकमिति''** यह लाइन अज्ञान के सन्दर्भ में कही गई है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार- आद्याप्रसाद मिश्र, पेज 42

18. अज्ञानोपहितं चैतन्यं कीदृशं कारणं भवति ?

(A) निमित्तकारणम्
(B) उपादानकारणम्
(C) निमित्तकारणम् उपादानकारणम् च
(D) कीदृशमपि कारणम् न

व्याख्या-

सदानन्दप्रणीत वेदान्तसार में अज्ञान की दोनों शक्तियों आवरण और विक्षेप के स्वरूप के विषय में वर्णन प्राप्त होता है-

'शक्तिद्वयवदज्ञानोपहितं चैतन्यं स्वप्रधानतया निमित्तं स्वोपाधिप्रधानतयोपादानं च भवति'

अपनी आवरण और विक्षेप नाम वाली दो शक्तियों से सम्पन्न अज्ञान से उपहित चैतन्य अपनी प्रधानता से जगत् का निमित्त कारण तथा अपनी उपाधि की प्रधानता से उपादान कारण होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त प्रश्न में अज्ञान से उपहित चैतन्य कैसा कारण होता है यह पूछा गया है इसलिए अज्ञान से उपहित चैतन्य निमित्त और उपादान दोनों कारण होता है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार-सन्तनारायण श्रीवास्तव्य, पेज-59

19. वेदान्तसारानुसारं सूक्ष्मशरीरे कति अवयवानि भवन्ति?

(A) षोडशावयवानि (B) पञ्चदशावयवानि
(C) सप्तदशावयवानि (D) त्रयोदशावयवानि

व्याख्या-

* सदानन्दप्रणीत वेदान्तसार के अनुसार सूक्ष्मशरीर का निर्माण सत्रह अवयवों से होता है-

'सूक्ष्मशरीराणि सप्तदशावयवानि लिङ्गशरीराणि'

सूक्ष्मशरीर को लिङ्गशरीर भी कहते हैं।

सत्रह अवयवों के नाम-

* पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ- श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण
* पञ्च कर्मेन्द्रियाँ- वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ
* पञ्च वायु- प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, बुद्धि और मन

⇒ तर्कभाषा के अनुसार पदार्थों की संख्या सोलह है-

प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान।

⇒ सांख्य के अनुसार सूक्ष्मशरीर / लिङ्गशरीर में 18 अवयव होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि वेदान्तसार के अनुसार सूक्ष्मशरीर का निर्माण सत्रह अवयवों से होता है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार- सन्तनारायण श्रीवास्तव, पेज-65

20. तर्कसङ्ग्रहानुसारं रूपं कतिविधम् ?

(A) पञ्चविधम् (B) सप्तविधम्
(C) षड्विधम् (D) नवविधम्

व्याख्या-

अन्नम्भट्ट प्रणीत 'तर्कसंग्रह' न्यायवैशेषिक का प्रकरणग्रन्थ है।

* तर्कसंग्रह में कर्म के पाँच भेद बताए गये हैं-

'उत्क्षेपणापक्षेपणाऽकुञ्चनप्रसारणगमनानि पञ्चकर्माणि' (1) उत्क्षेपण (2) अपक्षेपण (3) आकुञ्चन (4) प्रसारण (5) गमन

* चौबीस गुणों के अन्तर्गत रूप नामक गुण प्रथम गुण है जिसका लक्षण है-

'चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम्' अर्थात् जिस गुण का ग्रहण मात्र चक्षु इन्द्रिय के द्वारा ही किया जाता है उसे रूप कहते हैं।

वह रूप नामक गुण सात प्रकार का होता है-

'तच्च शुक्ल-नील-पीत-रक्त-हरित-कपिश-चित्र-भेदात्सप्तविधम्' अर्थात् वह रूप शुक्ल (सफेद), नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र के भेद से सात प्रकार का होता है।

* चौबीस गुणों के अन्तर्गत परिगणित रस नामक गुण द्वितीय गुण है जिसका लक्षण है-

'रसनाग्राह्यो गुणो रसः' जिस गुण का रसना इन्द्रिय से ग्रहण किया जाता है उसे रस कहते हैं उस रस के छः भेद हैं- **'स च मधुर-अम्ल-लवण-कटु-कषाय-तिक्तभेदात् षड्विधः'** अर्थात् मधुर (मीठा), अम्ल (खट्टा), लवण (नमकीन), कटु (कड़वा), कषाय (कसैला) और तिक्त (तीता) के भेद से रस के छः भेद हैं।

* तर्कसंग्रह के अनुसार द्रव्य के नव भेद हैं **'तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव'** अर्थात् पृथ्वी,जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा, मन के भेद से द्रव्य के नव भेद हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रूप के सात भेद हैं। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- तर्कसंग्रह- गोविन्दाचार्य, पेज 80

21. 'गौरश्वः पुरुषो हस्ती' इति पदसमुदायः प्रमाणं कथं न भवति?

(A) योग्यताविरहात् (B) आकाङ्क्षाविरहात्

(C) सान्निध्याभावात् (D) पदसमूहाभावात्

व्याख्या-

➢ तर्कभाषाकार केशवमिश्र प्रमाणविवेचन के क्रम में शब्द प्रमाण का लक्षण करते हैं- **'आप्तवाक्यं शब्दः'** अर्थात् आप्त के वाक्य को शब्द कहते हैं। जो पदार्थ जैसा है उसका उसी रूप में उपदेश करने वाला आप्त पुरुष कहलाता है।

* इसी क्रम में वाक्य का लक्षण करते हैंः **'वाक्यं त्वाकाङ्क्षायोग्यता-सन्निधिमतां पदानां समूहः।'** आकाङ्क्षा, योग्यता और सन्निधि वाले पदों का समूह वाक्य होता है।

गौ, अश्व, पुरुष, हस्ती ये पदसमूह वाक्य नहीं है, क्योंकि इनमें परस्पर आकाङ्क्षा का अभाव है।

* इसीप्रकार 'अग्निना सिञ्चति' यह भी वाक्य नहीं है क्योंकि अग्नि द्वारा सेचन रूपी कार्य नहीं हो सकता अतः इसमें योग्यता का अभाव है यह भी वाक्य नहीं हो सकता।

* इसी प्रकार प्रहर-प्रहर में एक साथ उच्चरित न किए गए 'गाय को लाओ' इत्यादि पदसमूह वाक्य नहीं होते, क्योंकि वहाँ परस्पर सन्निधि का अभाव होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि 'गौरश्वः पुरुषो हस्ती' इस समुदाय में परस्पर आकाङ्क्षा न होने से वाक्य नहीं है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- तर्कभाषा- श्रीनिवास शास्त्री,पेज-122

22. असाधारणधर्मः कस्य लक्षणम्?

(A) लक्षणस्य (B) उद्देशः

(C) परीक्षायाः (D) आत्मनः

व्याख्या-

तर्कभाषाकार आचार्य केशवमिश्र के अनुसार न्यायशास्त्र की तीन प्रकार की प्रवृत्ति होती है-

उद्देश- 'उद्देशस्तु नाममात्रेण वस्तुसंकीर्तनम्' अर्थात् नाम मात्र से पदार्थ का कथन उद्देश है।

लक्षण- 'लक्षणन्त्वसाधारणधर्मवचनम्' असाधारण धर्म का कथन लक्षण है, जैसे- 'गोः सास्नादिमत्त्वम्' अर्थात् गलकम्बल आदि वाली होना गौ का लक्षण है।

परीक्षा- 'लक्षितस्य लक्षणमुपपद्यते न वेति विचारः परीक्षा' अर्थात् जिसका लक्षण किया गया है उसका यह लक्षण ठीक है या नहीं इस प्रकार का विचार करना परीक्षा है।

* बारह प्रमेयों के अन्तर्गत परिगणित आत्मा प्रथम प्रमेय है जिसका लक्षण है- **'तत्रात्मत्वसामान्यवानात्मा'** अर्थात् आत्मत्व जाति जिसमें रहती है वह आत्मा है। वह आत्मा देह, इन्द्रिय से भिन्न है, प्रत्येक शरीर में पृथक्-पृथक् है विभु एवं नित्य है।

* आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख तथा अपवर्ग ये बारह प्रमेय हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि 'असाधारणधर्मः' लक्षण का लक्षण है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- तर्कभाषा - श्रीनिवास शास्त्री, पेज - 7

23. तर्कभाषायां 'प्रकरणसम'हेत्वाभासस्य काऽपरा सञ्ज्ञा?

(A) बाधितविषयः (B) सत्प्रतिपक्षः
(C) सव्यभिचारः (D) अनुपसंहारी

व्याख्या-

तर्कभाषाकार केशवमिश्र अनुमान प्रमाण के सन्दर्भ में हेतु से भिन्न हेत्वाभास को परिभाषित करते हैं-

'असिद्ध-विरुद्ध अनैकान्तिक-प्रकरणसम-कालात्ययापदिष्टभेदात् पञ्चैव' अर्थात् (1) असिद्ध (2) विरुद्ध (3) अनैकान्तिक (4) प्रकरणसम (5) कालात्ययापदिष्ट ये पाँच हेत्वाभास हैं।

असिद्ध हेत्वाभास-'तत्र लिङ्गत्वेनानिश्चितो हेतुरसिद्धः' उनमें लिङ्ग के रूप में निश्चित न होने वाला हेतु असिद्ध हेत्वाभास कहलाता है। वह असिद्ध हेत्वाभास तीन प्रकार का होता है- (1) आश्रयासिद्ध (2) स्वरूपासिद्ध (3) व्याप्यत्वासिद्ध।

* **विरुद्ध हेत्वाभास-'साध्यविपर्ययव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः'** साध्य के अभाव से व्याप्त हेतु विरुद्ध हेत्वाभास कहलाता है।

* **अनैकान्तिक हेत्वाभास- 'सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः'** सव्यभिचार हेतु अनैकान्तिक हेत्वाभास कहलाता है। अनैकान्तिक हेत्वाभास दो प्रकार का होता है- (1) साधारण अनैकान्तिक हेत्वाभास (2) असाधारण अनैकान्तिक हेत्वाभास।

* **प्रकरणसम हेत्वाभास - 'प्रकरणसमस्तु स एव यस्य हेतोः साध्य-विपरीतसाधकं हेत्वन्तरं विद्यते'** जिस हेतु के साध्य के विपरीत अर्थ का साधक दूसरा हेतु विद्यमान होता है वह प्रकरणसम हेत्वाभास कहलाता है। इस प्रकरणसम हेत्वाभास को ही सत्प्रतिपक्ष भी कहते हैं। 'अयमेव हि सत्प्रतिपक्ष इति चोच्यते'।

* **कालात्ययापदिष्ट या बाधितविषय हेत्वाभास-**

'पक्षे प्रमाणान्तरावधृतसाध्याभावो हेतुर्बाधितविषयः कालात्ययापदिष्ट इति चोच्यते' जिसके साध्य का अभाव अन्य प्रमाण से निश्चित कर दिया जाता है वह हेतु बाधितविषय तथा कालात्ययापदिष्ट कहलाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रकरणसम हेत्वाभास की अपरा सञ्ज्ञा सत्प्रतिपक्ष है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- तर्कभाषा- बदरीनाथ शुक्ल, पेज-122

24. तर्कभाषानुसारं समवायिकारणं किम्भवति?

(A) गुणः (B) द्रव्यम्
(C) कर्म (D) सामान्यम्

व्याख्या-

* आचार्य केशवमिश्र तर्कभाषा में तीन प्रकार के कारण बताए हैं- (1) समवायिकारण (2) असमवायिकारण (3) निमित्तकारण।

* **समवायिकारण-** 'यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्' अर्थात् जिसमें समवेत होकर कार्य उत्पन्न होता है वह समवायिकारण है। उदाहरण - तन्तु पट के समवायिकारण हैं, मिट्टी का पिण्ड भी घट का समवायिकारण है।

इसी क्रम में पूर्वपक्ष का खण्डन करते हुए केशवमिश्र कहते हैं कि गुणों का आश्रय न होने के कारण घट आदि में द्रव्यत्व का अभाव होने लगेगा क्योंकि **'समवायिकारणं द्रव्यमिति द्रव्यलक्षणयोगात्'** अर्थात् समवायी कारण द्रव्य होता है, यह द्रव्य का लक्षण घटित हो जाता है, तथा द्रव्य निरूपण के प्रसंग में द्रव्य का लक्षण करते हैं- जो समवायी कारण होता है वह द्रव्य का लक्षण है।

* **असमवायिकारण- 'यत्समवायिकारणप्रत्यासन्नम-वधृतसामर्थ्यं तदसमवायिकारणम्'** अर्थात् जो समवायि कारण में निकटतः सम्बद्ध होता है और जिसकी कार्य के प्रति सामर्थ्य निश्चित होती है वह असमवायी कारण होता है। उदाहरण- तन्तुसंयोग पट का असमवायी कारण है।

* **निमित्त कारण- 'यन्न समवायिकारणम्, नाप्यसमवायिकारणम् अथ च कारणम्'** अर्थात् जो न समवायी कारण है, न ही असमवायी कारण है किन्तु कारण है वह निमित्त कारण कहलाता है जैसे वेमा आदि पट का निमित्त कारण है।

* **गुण-** 'सामान्यमान् असमवायिकारणम् अस्पन्दात्मा गुणः' अर्थात् सामान्य से युक्त, असमवायी कारण होने वाला, कर्मस्वरूप न होने वाला गुण कहलाता है। वह द्रव्य के आश्रित ही रहा करता है। गुणों के 24 प्रकार हैं-

(1) रूप (2) रस (3) गन्ध (4) स्पर्श (5) संख्या (6) परिमाण (7) पृथक्त्व (8) संयोग (9) विभाग (10) परत्व (11) अपरत्व (12) गुरुत्व (13) द्रवत्व (14) स्नेह (15) शब्द (16) बुद्धि (17) सुख (18) दुःख (19) इच्छा (20) द्वेष (21) प्रयत्न (22) धर्म (23) अधर्म (24) संस्कार

* **कर्म-** 'चलनात्मकं कर्म' अर्थात् कर्म का स्वरूप है क्रिया (चलना, हिलना, गति)। कर्म के पाँच प्रकार हैं- उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण, गमन।

* **सामान्य-** 'अनुवृत्तिप्रत्ययहेतुः सामान्यम्' अर्थात् समानाकारक प्रतीति का हेतु सामान्य जाति है। वह द्रव्य आदि तीन (द्रव्य, गुण, कर्म) में रहती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि 'समवायिकारणं द्रव्यम्' द्रव्य का लक्षण है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- तर्कभाषा- बदरीनाथ,पेज-47

25. 'पठति' इति क्रियापदं कीदृश्याः भाषायाः उदाहरणमस्ति-
(A) अयोगात्मिकायाः
(B) प्रश्लिष्टयोगात्मिकायाः
(C) श्लिष्टयोगात्मिकायाः
(D) अश्लिष्टयोगात्मिकायाः

व्याख्या-

भाषा का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है (1) अयोगात्मक (2) योगात्मक। योगात्मक वर्गीकरण के तीन भेद हैं- (1) अश्लिष्ट योगात्मक (2) श्लिष्ट योगात्मक (3) प्रश्लिष्ट योगात्मक।

श्लिष्ट योगात्मक- श्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व अर्थात् प्रकृति और प्रत्यय घनिष्ठता से मिले होते हैं। यह संयोग 'नीर-क्षीरन्याय' कहा जा सकता है। इस वर्ग की भाषाओं के दो भेद किए हैं (क) अन्तर्मुखी (ख) बहिर्मुखी। इन दोनों के भी दो भेद किए जाते हैं संयोगात्मक तथा वियोगात्मक। अन्तर्मुखी में अरबी और बहिर्मुखी में संस्कृत प्रतिनिधि भाषा है। संस्कृत में भी शब्दों के अन्दर परिवर्तन होता है, जैसे-दैविक, नैतिक, पपाठ, जगाम, ममार आदि।

गम् से गच्छति, पठ् से पठति, हस् से हसति इन सारे उदाहरणों में अ + ति प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। ये **बहिर्मुखी श्लिष्ट योगात्मक** के उदाहरण हैं।

प्रश्लिष्टयोगात्मक - प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ उन्हें कहते हैं जिनमें प्रकृति और प्रत्यय इस प्रकार से जुड़े हुए होते हैं कि उनको अलग-अलग करना सम्भव नहीं होता है। इस संयोग को दधिघृतन्याय कहा जा सकता है। इसके उदाहरण हैं- आर्जव-ऋजु + अ, सौवर-स्वर + अ, दित्सति-दा + स +ति।

अश्लिष्ट योगात्मक- अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में अर्थ-तत्त्व और सम्बन्धतत्त्व अर्थात् प्रकृति और प्रत्यय इस प्रकार से जुड़े रहते हैं कि इनको स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस प्रकार के जोड़ को पूर्णतया न जुड़े होने से अश्लिष्ट और जुड़े होने के कारण योगात्मक कहा जाता है। इस संयोग को तिल तण्डुल-न्याय कहा जा सकता है।

अयोगात्मक भाषा- अयोगात्मक उन भाषाओं को कहते हैं, जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का संयोग नहीं होता है। प्रत्येक शब्द स्वतन्त्र होता है। इसे Root language कहते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है 'पठति' श्लिष्ट योगात्मक भाषा है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- भाषा-विज्ञान एवं भाषाशास्त्र-कपिलदेव द्विवेदी, पेज-365

26. ग्रीकभाषा कस्य परिवारस्य भाषा अस्ति?
(A) भारोपीय-परिवारस्य (B) सेमेटिक-परिवारस्य
(C) सूडानी-परिवारस्य (D) काकेशी-परिवारस्य

व्याख्या-

विश्व भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण के अनुसार 18 भेद माने गए हैं। **यूरेशिया (यूरोप एशिया) खण्ड में-** 1 द्राविड 2- भारोपीय 3- काकेशी 4- बुरुशस्की 5- यूराल अल्ताई 6- बास्क 7- चीनी 8- अत्युत्तरी (हाइपरबोरी) 9- जापानी- कोरियाई 10- सामी हामी (सेमेटिक, हैमेटिक)

अफ्रीका खण्ड में- 11 सूडानी 12- होतेन्तोत बुशमैनी 13- बान्तू (सामी-हामी)

प्रशान्त महासागरीय खण्ड में- 14 मलय बहुद्वीपीय 15- पापुई 16- आस्ट्रेलियन 17- दक्षिणपूर्व एशियन

अमेरिका खण्ड में- 18 अमेरिकी परिवार हैं।

भारोपीय परिवार की शाखाएँ- भारोपीय शब्द भारत+यूरोपीय का संक्षिप्त रूप है। यह Indo-European का अनुवाद है। भारोपीय में भारतवर्ष से लेकर यूरोप तक फैली हुई भाषाओं का संग्रह है। इसकी दस शाखाएँ हैं-

1- भारत ईरानी (आर्य) - (क) भारतीय (ख) ईरानी
2- बाल्टो स्लाविक (क) बाल्टिक (ख) स्लाविक
3- आर्मीनी
4- अल्बानी (इलीरी)
5- ग्रीक (हेलेनिक)
6- केल्टिक
7- जर्मानिक (ट्यूटानिक)
8- इटालिक
9- हिटाइट (हित्ती)
10- तोखारी

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ग्रीकभाषा भारोपीय परिवार की भाषा के अन्तर्गत आती है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- भाषा-विज्ञान एवं भाषा शास्त्र-कपिलदेव द्विवेदी, पेज-369

27. निम्नलिखितासु भाषासु का भाषा 'सतम्' वर्गस्य नास्ति?
(A) संस्कृत भाषा (B) ईरानी भाषा
(C) ग्रीक भाषा (D) फारसी भाषा

व्याख्या-

भारोपीय परिवार की भाषाओं को ध्वनि के आधार पर दो

भागों में विभक्त किया गया है- (1) केन्टुम् वर्ग (2) शतम् वर्ग। इस विभाजन का श्रेय प्रो. अस्कोली को दिया जाता है। यह मत उन्होंने 1870. ई. में प्रस्तुत किया। सभी भारोपीय भाषाओं को इन दो भागों में विभक्त किया गया है-
भारोपीय परिवार को **केन्टुम् और शतम् वर्ग** के आधार पर निम्न प्रकार से बाँटा जा सकता है-

भारोपीय भाषा

शतम् वर्ग	**केन्टुम् वर्ग**
संस्कृत- शतम्	लैटिन - केन्टुम्
अवेस्ता (ईरानी)- सतम्	ग्रीक - हेकटोन
फारसी- सद्	केल्टिक - केत्
हिन्दी- सौ	तोखारी - कन्ध
रूसी - स्तो	गाथिक - हुन्ड
लिथुआनियन- स्जिम्तास	जर्मन - हुन्डर्ट
	फ्रेञ्च - सं./सेन्ट
	इटालियन - केन्तो

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि शतम् वर्ग की भाषा संस्कृत, ईरानी (अवेस्ता), फारसी है जबकि ग्रीक भाषा केन्टुम् वर्ग की है। **अतः विकल्प C सही है।**
स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र-कपिलदेव द्विवेदी, पेज-385

28. अंग्रेजी-भाषायाः सम्बन्धः कया भाषाशाखया अस्ति?
(A) कैल्टिकशाखया (B) जर्मनिकशाखया
(C) इटैलिकशाखया (D) ग्रीकशाखया

व्याख्या-
जर्मनिक या ट्यूटानिक- जर्मनिक या ट्यूटानिक का क्षेत्रीय विभाजन इस प्रकार है-
पूर्वी क्षेत्र- गाथिक
उत्तरी क्षेत्र- आइसलैण्डिक (आइसलैण्ड में), नार्वेजियन (नार्वे में), डेनिश (डेनमार्क में), स्वीडिश (स्वीडन में)
पश्चिमी क्षेत्र- अंग्रेज़ी (इग्लैण्ड), उच्चजर्मन (दक्षिणी जर्मनी में), निम्न जर्मन (उत्तरी जर्मनी में), डच (हालैण्ड में), फ्लेमिश (बेल्जियम में) यह भारोपीय परिवार की सबसे अधिक विस्तृत भू भाग में बोली जाने वाली भाषा है। इसकी एक शाखा अंग्रेजी विश्व में सबसे अधिक फैली हुई है। जर्मन और डच भाषा का साहित्य भी उच्चकोटि का है।
केल्टिक- यह भाषा यूरोप के बहुत बड़े भूभाग में बोली जाती थी। यह पूर्व में एशिया माइनर तक फैली हुई थी। अब यह यूरोप के पश्चिमी भाग में ही सीमित रह गई है। फ्रांस के पश्चिमोत्तर भाग तथा ग्रेट ब्रिटेन में बोली जाती है।
इटैलिक- इटालिक या रोमान्स वर्ग का क्षेत्रीय विभाजन इस प्रकार है- (1) इटालियन- इटली, सिसिली, कोर्सिका।
(2) फ्रेञ्च- फ्रांस में (3) स्पेनिश- स्पेन में, (4) रूमानियन रूमानिया में (5) पुर्तगाली- पुर्तगाल में।
रोमान्स वर्ग की भाषाओं का विकास लैटिन से हुआ है। लैटिन मूलतः रोम और उसके समीपवर्ती जिले की भाषा थी।
ग्रीक- ग्रीक भाषा का क्षेत्र दक्षिणी, अल्बानिया और यूगोस्लाविया,बल्गोरिया-टर्की- साइप्रस का कुछ भाग है।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि अंग्रेजी भाषा का सम्बन्ध जर्मनिक शाखा से है। **अतः विकल्प B सही है।**
स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र-कपिलदेव द्विवेदी, पेज-391-392

29. संस्कृतभाषायां निम्नलिखितेषु स्वरेषु कस्य स्वरस्य दीर्घो नास्ति?
(A) ऋकारस्य (B) अकारस्य
(C) इकारस्य (D) ऌकारस्य

व्याख्या-
श्रीवरदराजाचार्य कृत लघुसिद्धान्तकौमुदी के संज्ञाप्रकरण में स्वरों की चर्चा की गयी है-
अ- इ- उ- ऋ- एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादशभेदाः।
अ, इ, उ, ऋ इन चार वर्णों के अठारह-अठारह भेद होते हैं। इनका ह्रस्व और दीर्घ दोनों होता है।
ऌवर्णस्य द्वादश तस्य दीर्घाभावात्।
एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात्। ए, ओ, ऐ, औ का ह्रस्व (छोटा) नहीं होता इसलिए बारह ही भेद माने जाते हैं।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि संस्कृत भाषा के स्वरों में ऌ का दीर्घ नहीं होता है। **अतः विकल्प D सही है।**
स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी-धरानन्दशास्त्री, पेज 16

30. अन्त्यादलः पूर्ववर्णस्य का सञ्ज्ञा भवति?
(A) अपृक्तसञ्ज्ञा (B) उपधासञ्ज्ञा
(C) टि-सञ्ज्ञा (D) सर्वनामस्थान सञ्ज्ञा

व्याख्या-
* **अपृक्तसञ्ज्ञा-** अपृक्तसञ्ज्ञा का विधान करने वाला सञ्ज्ञा सूत्र है- **अपृक्त एकाल्प्रत्ययः** (1.2.41) अर्थात् जो प्रत्यय एक वर्णरूप हो गया हो उसकी अपृक्त सञ्ज्ञा होती है।
उदा.- 'वाच् स्' यहाँ 'स्' एक वर्णरूप प्रत्यय है अतः स् अपृक्त सञ्ज्ञक है।

* **उपधा सञ्ज्ञा-** उपधा सञ्ज्ञा का विधान करने वाला सञ्ज्ञा सूत्र है- **'अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** (1.1.64)' अन्तिम अल् (स्वर या व्यञ्जन) से पूर्व वर्ण की उपधा सञ्ज्ञा होती है।
उदाहरण- गम् में मकार से पूर्व वर्ण गकारोत्तरवर्ती अकार की, मुच् में चकार से पूर्व वर्ण मकारोत्तरवर्ती उकार की उपधा सञ्ज्ञा होगी।

* **टि सञ्ज्ञा-** टि सञ्ज्ञा का विधान करने वाला सञ्ज्ञा सूत्र है- **अचोऽन्त्यादि टि** (1.1.63) अर्थात् अचों (स्वरों) के मध्य में जो अन्तिम अच् (स्वर), वह है आदि में जिसके, उस समुदाय की टि सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण- मनस् में नकारोत्तरवर्ती अकार अन्तिम स्वर है अतः पूर्ण समुदाय अस् की टि सञ्ज्ञा होगी। राजन् में अन् की टि सञ्ज्ञा होगी।

* **सर्वनामस्थान सञ्ज्ञा-** सर्वनामस्थान सञ्ज्ञा विधायक सञ्ज्ञासूत्र है- **शि सर्वनामस्थानम्** (1.141)- शि की सर्वनामस्थान सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण- वनानि, दधीनि, मधूनि।

(2) **सुडनपुंसकस्य** (1.1.42)- नपुंसकलिङ्ग से भिन्न सुट् (सु, औ, जस्, अम्, औट् इन पाँच) प्रत्ययों की सर्वनामस्थान सञ्ज्ञा होती है। उदाहरण- राजा, राजानौ, राजानः, राजानम्, राजानौ में क्रमशः सु, औ, जस्, अम्, औट् इन पाँच प्रत्ययों की सर्वनामस्थान सञ्ज्ञा है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अन्तिम अल् से पूर्व वर्ण की उपधा सञ्ज्ञा होगी। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी- गोविन्दाचार्य, पेज-175

31. निषेध-विकल्पयोः सञ्ज्ञा का ?
(A) अपृक्त सञ्ज्ञा (B) विभाषा सञ्ज्ञा
(C) उपधा सञ्ज्ञा (D) प्रगृह्य सञ्ज्ञा

व्याख्या-

* **विभाषा सञ्ज्ञा-** विभाषा सञ्ज्ञा विधायक सञ्ज्ञासूत्र है- **न वेति विभाषा** (1.1.43) न का अर्थ है निषेध तथा वा का अर्थ है निषेध तथा विकल्प - इन दो अर्थों की विभाषा सञ्ज्ञा होती है।

* **प्रगृह्यसञ्ज्ञा-** प्रगृह्यसञ्ज्ञा विधायक सञ्ज्ञासूत्रों की संख्या आठ है- **(1) ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् (1.1.11)-** दीर्घ ईकारान्त, दीर्घ ऊकारान्त, तथा दीर्घ एकारान्त द्विवचनान्त की प्रगृह्य सञ्ज्ञा होती है। उदाहरण- हरी एतौ, विष्णू इमौ, गंगे अमू, आदि।

(2) अदसो मात् (1.1.12)- अदस् शब्द के मकार से परे ईत् तथा ऊत् प्रगृह्यसञ्ज्ञक होते हैं। उदाहरण- अमी ईशाः अमू आसाते।

(3) शे (1.1.13)- शे इस सुबादेश की प्रगृह्य सञ्ज्ञा होती है (प्रायः वेदों में) उदाहरण- युष्मे इति, त्वे इति, मे इति।

(4) निपात एकाजनाङ् (1.1.14)- आङ् को छोड़कर एक अच् स्वरूप निपात की प्रगृह्य सञ्ज्ञा होती है। उदाहरण- अ अपेहि, इ इन्द्रम् आदि।

(5) ओत् (1.1.15) ओकारान्त निपात की प्रगृह्य सञ्ज्ञा होती है। उदाहरण- उताहो अनिष्टम्, अहो अद्य शीतम्।

(6) सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे (1.1.16)- सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार की अवैदिक 'इति' शब्द के परे रहते विकल्प से प्रगृह्य सञ्ज्ञा होती है। यह सूत्र विकल्प से प्रगृह्य सञ्ज्ञा का विधान करता है। उदाहरण- विष्णो इति।

(7) ईदूतौ च सप्तम्यर्थे इति प्रगृह्यम् (1.1.19)- सप्तमी के अर्थ में ईकारान्त व ऊकारान्त की प्रगृह्य सञ्ज्ञा होती है। **उदाहरण-** तनू इति, गौरी अधिश्रितः आदि।

(8) उञः ऊँ (1.1.17)- यह सूत्र उञ् अव्यय की प्रगृह्य सञ्ज्ञा का विधान करता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि निषेध विकल्प का विधान करने वाला सूत्र **'न वेति विभाषा'** है।

अतः विकल्प B सही है।

स्रोत- अष्टाध्यायी (1.1.43)- ईश्वरचन्द्र, पेज 25

32. 'सुडनपुंसकस्य' इति सूत्रेण का सञ्ज्ञा क्रियते?
(A) सर्वनामस्थान सञ्ज्ञा (B) निष्ठा सञ्ज्ञा
(C) प्रातिपदिक सञ्ज्ञा (D) पद सञ्ज्ञा

व्याख्या-

➢ सर्वनामस्थान सञ्ज्ञा का विधान करने वाला सञ्ज्ञासूत्र है-

(1) शि सर्वनामस्थानम् (1.1.41)- शि की सर्वनाम स्थान सञ्ज्ञा होती है। उदाहरण- वनानि, दधीनि, मधूनि।

(2) सुडनपुंसकस्य (1.1.42)- नपुंसकलिङ्ग से भिन्न सुट् (सु, औ, जस्, अम्, औट्) इन पाँच प्रत्ययों की सर्वनामस्थान सञ्ज्ञा होती है। उदाहरण- राजा में सु, राजानौ में औ, राजानः में जस्, राजानम् में अम्, राजानौ में औट् की सर्वनामस्थान सञ्ज्ञा होती है।

➢ प्रातिपदिकसञ्ज्ञा का विधान करने वाले सञ्ज्ञासूत्र हैं-

(1) अर्थवदधातुरप्रत्ययः (1.2.45)- धातुरहित, प्रत्यय व प्रत्ययान्त रहित सार्थक शब्दस्वरूप की प्रातिपदिक सञ्ज्ञा होती है। उदाहरण- राम, कृष्ण, लता आदि।

(2) कृत्तद्धितसमासाश्च (1.2.46)- कृत् प्रत्ययान्त,

तद्धित प्रत्ययान्त तथा समास भी प्रातिपदिकसञ्ज्ञक होते हैं। उदाहरण- कारकः (कृत्), शालीयः (तद्धित), राजपुरुषः (समास)

➤ निष्ठा सञ्ज्ञा का विधान करने वाला सञ्ज्ञासूत्र है-

क्तक्तवतू निष्ठा (1.1.26)- क्त तथा क्तवतु प्रत्यय की निष्ठा सञ्ज्ञा होती है। उदाहरण- मुक्तः में क्त प्रत्यय, भुक्तवान् में क्तवतु प्रत्यय।

➤ **पदसञ्ज्ञा-** पदसञ्ज्ञा का विधान करने वाला सञ्ज्ञासूत्र है-

(1) सुप्तिङन्तं पदम् (1.4.14)- सुबन्त तथा तिङन्त शब्दों की पद सञ्ज्ञा होती है। उदाहरण- देवः सुबन्त तथा पठति तिङन्त की पद सञ्ज्ञा हुई है।

(2) नः क्ये (1.4.15)- नकारान्त शब्द की क्यच्, क्यङ् व क्यष् प्रत्यय परे रहते पदसञ्ज्ञा होती है। उदाहरण- राजीयति, राजायते।

(3) सिति च (1.4.16)- सित् प्रत्यय परे रहते पूर्व की पद सञ्ज्ञा होती है। उदाहरण- भवत् + छस् = भवदीयः।

(4) स्वादिष्वसर्वनामस्थाने (1.4.17)- सर्वनामस्थान भिन्न सु आदि प्रत्ययों के परे रहते पूर्व शब्दसमुदाय की पद सञ्ज्ञा होती है। उदाहरण- राजाभ्याम् = राजन् + भ्याम् में राजन् की पदसञ्ज्ञा होगी।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'सुडनपुंसकस्य' सूत्र से सर्वनामस्थान सञ्ज्ञा होती है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी-(1.1.93) गोविन्दाचार्य, पेज 166

33. 'अनुविष्णु' इत्यत्र 'अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि' इत्यादिसूत्रेण कस्मिन् अर्थेऽव्ययीभावसमासः?

(A) समीपार्थे (B) असम्प्रत्यर्थे

(C) पश्चादर्थे (D) आनुपूर्व्यार्थे

व्याख्या-

अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि- व्यृद्ध्यर्थाभावाऽत्ययाऽसम्प्रति-शब्दप्रादुर्भावपश्चाद्-यथाऽऽनुपूर्व्य- यौगपद्य-सादृश्यसम्पत्ति-साकल्याऽन्तवचनेषु। (2.1.6)

1- विभक्ति 2- समीप 3- समृद्धि 4- व्यृद्धि 5- अर्थाभाव 6- अत्यय 7- असम्प्रति 8- शब्दप्रादुर्भाव 9- पश्चाद् 10- यथा- (योग्यता,वीप्सा,पदार्थानतिवृत्ति और सादृश्य) 11- आनुपूर्व्य 12- यौगपद्य 13- सादृश्य 14- सम्पत्ति 15- साकल्य 16- अन्त- इन सोलह अर्थों में से किसी भी अर्थ में वर्तमान जो अव्यय, वह समर्थ सुबन्त के साथ नित्य समास होता है। और वह समास अव्ययीभाव संज्ञक होता है।

सामासिक पद	अर्थ	
अधिहरि	विभक्ति अर्थ	(हरि में)
अधिगोपम्	विभक्ति अर्थ	(गोप में)
उपकृष्णम्	समीप अर्थ	(कृष्ण के समीप)
सुमद्रम्	समृद्धि अर्थ में	(मद्रदेशवासियों की समृद्धि)
दुर्यवनम्	अभाव अर्थ	(यवनों का अभाव)
निर्मक्षिकम्	अभाव अर्थ	(मक्खियों का अभाव)
अतिहिमम्	नाश अर्थ	(हिम का अत्यय)
अतिनिद्रम्	समय उचित नहीं है	(निद्रा का समय उचित नहीं है)
इतिहरि	नाम की प्रसिद्धि	(शब्द प्रादुर्भाव)
अनुविष्णु	**पश्चात् अर्थ**	**(विष्णु के पीछे)**
अनुरूपम्	योग्यता अर्थ	(रूप के योग्य)
प्रत्यर्थम्	वीप्सा अर्थ में	(प्रत्येक अर्थ के प्रति)
यथाशक्ति	उल्लंघन न करना	(शक्ति के उल्लंघन के बिना)
सहरि	सदृश अर्थ	हरि के सदृश
अनुज्येष्ठम्	आनुपूर्व्य अर्थ में	ज्येष्ठ के क्रम से
सचक्रम्	यौगपद्य अर्थ	(चक्र के साथ एक ही काल में)
ससखि	सादृश्य अर्थ	(सखा के समान)
सक्षत्रम्	सम्पत्ति अर्थ	(क्षत्रियों के अनुरूप)
सतृणम् (अत्ति)	सम्पूर्ण अर्थ	(तिनकों को छोड़े बिना)
साग्नि	अन्त अर्थ	(अग्निग्रन्थ पर्यन्तम्)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अनुविष्णु 'पश्चात्' अर्थ में प्रयोग हुआ है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी-गोविन्दाचार्य, पेज 900

34. 'व्यूढोरस्कः' इत्यत्र कीदृशः समासः?

(A) अव्ययीभावः (B) तत्पुरुषः

(C) द्वन्द्वः (D) बहुव्रीहिः

व्याख्या-

व्यूढोरस्कः- (चौड़ी छाती वाला पुरुष)

लौकिक-विग्रह व्यूढं उरो यस्य सः

अलौकिक-विग्रह व्यूढ सु+उरस् सु

अनेकमन्यपदार्थे- सूत्र से बहुव्रीहि समास होकर विशेषण का पूर्वनिपात समास की प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्रातिपदिक के अवयवों सुपों का लुक् करने पर व्यूढ+उरस्

'आद्गुणः' सूत्र से गुण करने पर व्यूढोरस् बना।

अब यहाँ बहुव्रीहि समास के अन्त में उरस् शब्द आया है जो

उरःप्रभृतिगण का पहला शब्द है अतः 'उरः प्रभृतिभ्यः कप्' सूत्र द्वारा समासान्त कप् प्रत्यय होकर पकार अनुबन्ध का लोप करने से हुआ।

व्यूढोरस् + क

ससजुषो रुः से पदान्त सकार को रुँ आदेश उकारलोप

खरवसानयोर्विसर्जनीयः से रेफ को विसर्ग आदेश करने पर व्यूढोरः+क

सोऽपदादौ- सूत्र से विसर्ग को सकार आदेश कर विभक्ति कार्य करके **'व्यूढोरस्कः'** प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

अन्य उदाहरण- प्रियसर्पिष्कः

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'व्यूढोरस्कः' में बहुव्रीहि समास है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी-गोविन्दाचार्य, पेज 966

35. 'सर्पिषोऽपि स्याद्' इत्यत्र 'अपि' शब्दस्य कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञा कस्मिन् अर्थे भवति?

(A) सम्भावनाद्योतकतायाम्

(B) अन्ववसर्गद्योतकतायाम्

(C) समुच्चयद्योतकतायाम्

(D) पदार्थद्योतकतायाम्

व्याख्या-

अपिः पदार्थसम्भावनाऽन्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु (1.4.96)

पदार्थ, सम्भावना, अन्ववसर्ग (कामाचारानुज्ञा), गर्हा (निन्दा), और समुच्चय अर्थों के द्योतित होने पर 'अपि' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

जैसे- **सर्पिषोऽपि स्यात्**। घी का बिन्दु हो सकता है) यहाँ 'अपि की अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु' सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा और अपि शब्द के पदार्थ की द्योतकता है। **'इयमेव ह्यपिशब्दस्य पदार्थद्योतकता नाम'** यही व्याकरण में पाणिनि के द्वारा कहा गया है।

* **अपि स्तुयाद् विष्णुम्** (वह विष्णु की स्तुति कर सकता है।) यहाँ अपि शब्द सम्भावना अर्थ को द्योतित करता है।

* **अपि स्तुहि-** (चाहे स्तुति करो या न करो) अन्ववसर्ग के अर्थ में अपि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई है।

* **धिग् देवदत्तम् अपि स्तुयाद् वृषलम्-** (निन्दा या तिरस्कार) गर्हा के अर्थ में अपि की 'अपिः पदार्थ- सम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु' सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई।

* **अपि सिञ्च अपि स्तुहि-** (सींचो भी और स्तुति भी करो) यहाँ अपि समुच्चय अर्थ को प्रकट करता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'सर्पिषोऽपि स्याद्' में अपि शब्द 'पदार्थ' अर्थ में प्रयोग हुआ है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- सिद्धान्तकौमुदी (कारक प्रकरण)-राममुनि पाण्डेय, पेज 53

36. 'अधिकरणवाचिनश्च' इति सूत्रस्योदाहरणं किं भवति?

(A) राज्ञां मतः

(B) द्विरह्नो भोजनम्

(C) शब्दानामनुशासनमाचार्यस्य

(D) इदम् एषाम् आसितम्

व्याख्या-

अधिकरणवाचिनश्च (2.3.68)-

क्तस्य योगे षष्ठी स्यात्। इदमेषामासितं शयितं गतं भुक्तम् वा। अधिकरणवाचक क्तप्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है।

जैसे- **1. इदम् एषाम् आसितम्** (यह इनका आसन है)- 'आस्ते अस्मिन् इति आसितम्' यहाँ पर आस् धातु से क्त प्रत्यय जोड़कर आसितम् बनता है। अधिकरणवाचक क्तप्रत्ययान्त आसितम् के योग में अनुक्त कर्ता इदम् 'अधिकरणवाचिनश्च' सूत्र से षष्ठी विभक्ति होकर एषाम् बना।

(2) इदमेषां शयितम् (यह इनकी शय्या है)-

'शेते अस्मिन् इति शयितम्' में शी अकर्मक धातु से अधिकरण के अर्थ में क्त प्रत्यय हुआ है अतः 'अधिकरणवाचिनश्च' सूत्र से अधिकरणवाची शयितम् के योग में एषाम् में षष्ठी विभक्ति हुई है।

(3) इदमेषां गतम् (यह इनका गमन मार्ग है)-

'गच्छति अस्मिन् इति गतम्' इस अधिकरण अर्थ में गम् धातु से क्त प्रत्यय होता है अतः कर्ताकारक एतत् में अधिकरणवाचिनश्च सूत्र से षष्ठी विभक्ति होकर एषाम् बना।

(4) इदमेषां भुक्तम् - (यह इनका भोजनपात्र है)

'भुङ्क्ते अस्मिन् इति भुक्तम्' इस अधिकरण अर्थ में भुज् धातु से क्त प्रत्यय होकर भुक्तम् बना। अतएव अधिकरण वाचक भुक्तम् के योग में कर्ताकारक एतत् में अधिकरणवाचिनश्च सूत्र से षष्ठी विभक्ति होकर एषाम् बना।।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इदम् एषाम् आसितम् उदाहरण में 'अधिकरणवाचिनश्च' सूत्र से षष्ठी विभक्ति का विधान हुआ है। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- सिद्धान्तकौमुदी (कारक प्रकरण)-राममुनि पाण्डेय, पेज 185

37. अधस्तनयुग्मानां समीचीनां तालिकां चिनुत-

(क)	भासः	(i)	मालतीमाधवम्
(ख)	कालिदासः	(ii)	मृच्छकटिकम्
(ग)	भवभूतिः	(iii)	मालविकाग्निमित्रम्
(घ)	शूद्रकः	(iv)	पञ्चरात्रम्

	(क)	(ख)	(ग)	(घ)
(A)	(iv)	(iii)	(i)	(ii)
(B)	(ii)	(iii)	(iv)	(i)
(C)	(iii)	(iv)	(ii)	(i)
(D)	(i)	(ii)	(iii)	(iv)

व्याख्या-

➤ महाकवि भास द्वारा रचित नाटकों को ट्रावनकोर राज्य से टी॰ गणपति शास्त्री ने सन् 1909 ई. में प्राप्त कर उसे प्रकाशित कराया- जिनकी संख्या 13 है-

(**क**) **उदयनकथामूलक-** (1) प्रतिज्ञायौगन्धरायण (2) स्वप्नवासवदत्तम्

(**ख**) **महाभारतमूलक-** (1) ऊरुभंगम्, (2) दूतवाक्यम् (3) पञ्चरात्रम् (4) बालचरितम् (5) दूतघटोत्कचम् (6) कर्णभारम् (7) मध्यमव्यायोगम्

(**ग**) **रामायणमूलक-** (1) प्रतिमानाटकम् (2) अभिषेकनाटकम्

(**घ**) **कल्पनामूलक-** (1) अविमारकम् (2) चारुदत्तम्

➤ **कालिदास-** कालिदास द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या सात है जिसमें दो महाकाव्य, दो गीतिकाव्य या खण्डकाव्य तथा तीन नाटक।

महाकाव्य- रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्

गीतिकाव्य (खण्डकाव्य)- ऋतुसंहारम्, मेघदूतम्

नाटक- मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्,अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

➤ **भवभूति-** भवभूति द्वारा रचित तीन ग्रन्थ प्राप्त होते हैं- (1) मालतीमाधवम् (2) महावीरचरितम् (3) उत्तररामचरितम्

शूद्रक- शूद्रक द्वारा रचित केवल एक ही ग्रन्थ प्राप्त होता है। जो कि प्रकरण है जिसका नाम मृच्छकटिकम् है इसमें दस अङ्क हैं। नायक चारुदत्त तथा नायिका वसन्तसेना एवं सहनायिका धूता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि भास की रचना पञ्चरात्रम्, कालिदास की रचना मालविकाग्निमित्रम्, भवभूति की रचना मालतीमाधवम् एवं शूद्रक की रचना मृच्छकटिकम् है।

अतः विकल्प A सही है।

स्रोत- संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास-कपिलदेव द्विवेदी, पेज क-275, ख-137, ग-395, घ-301

38. शिशुपालवधमहाकाव्यस्य प्रथमसर्गस्य नाम भवति-

(A) श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् (B) नारदगुणकीर्तनम्
(C) कृष्णनारदसम्भाषणम् (D) नारदावतरणम्

व्याख्या-

महाकवि माघ द्वारा रचित शिशुपालवध महाकाव्य में बीस सर्ग हैं। जिसकी गणना बृहत्त्रयी के अन्तर्गत होती है। इस महाकाव्य के नायक श्रीकृष्ण एवं प्रतिनायक शिशुपाल हैं।

शिशुपालवध महाकाव्य के 20 सर्गों के नाम इस प्रकार हैं-

प्रथम सर्ग	-	श्रीकृष्ण नारद का सम्भाषण
द्वितीय सर्ग	-	उद्धव तथा बलराम के साथ मन्त्रणा
तृतीय सर्ग	-	द्वारिकापुरी से कृष्ण का प्रस्थान
चतुर्थ सर्ग	-	रैवतक वर्णन
पञ्चम सर्ग	-	रैवतक पर सेना का प्रस्थान तथा शिविर का वर्णन
षष्ठ सर्ग	-	छह ऋतुओं का वर्णन
सप्तम सर्ग	-	वनविहार वर्णन
अष्टम सर्ग	-	जलविहार वर्णन
नवम सर्ग	-	सूर्यास्त वर्णन
दशम सर्ग	-	मद्यपान वर्णन
एकादश सर्ग	-	प्रभात वर्णन
द्वादश सर्ग	-	श्रीकृष्ण का सेनासहित प्रस्थान
त्रयोदश सर्ग	-	श्रीकृष्ण का यज्ञसभा में प्रवेश
चतुर्दश सर्ग	-	महाराजयुधिष्ठिर का भगवान् श्रीकृष्ण का प्रथमार्घ्य
पञ्चदश सर्ग	-	श्रीकृष्ण की पूजा से शिशुपाल का कोपाग्नि से भड़कना
षोडश सर्ग	-	शिशुपाल द्वारा प्रेषित दूत का कृष्ण से संवाद
सप्तदश सर्ग	-	यदुवंश क्षोभवर्णन
अष्टादश सर्ग	-	संकुल युद्ध वर्णन
एकोनविंशति सर्ग	-	द्वन्द्वयुद्ध वर्णन
विंशति सर्ग	-	शिशुपालवध वर्णन

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि शिशुपालवध के प्रथम सर्ग का नाम 'श्रीकृष्ण नारद सम्भाषण' है।

अतः विकल्प C सही है।

स्रोत- शिशुपालवधम् -हरगोविन्द शास्त्री, पेज 54

39. सानुमत्याः उपाख्यानम् अभिज्ञानशाकुन्तले कस्मिन् अङ्के अस्ति?

(A) सप्तमे (B) षष्ठे
(C) पञ्चमे (D) चतुर्थे

व्याख्या-

सप्त अङ्कात्मक, शृङ्गाररसप्रधान, महाभारत आदिपर्व के शकुन्तलोपाख्यान पर आधारित, महाकवि कालिदास द्वारा विरचित, दुष्यन्त शकुन्तला की प्रणय कथा से समन्वित, विश्वविख्यात नाटक का नाम है- **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**। जिस नाटक की अङ्कवार प्रमुख घटनाएँ निम्नवत् हैं-

* **प्रथम अङ्क-** मृग का अनुसरण करते हुए दुष्यन्त कण्व ऋषि के आश्रम पहुँचता है और शकुन्तला को देखकर मोहित हो जाता है, शकुन्तला भी उस पर आसक्त होती है। ग्रीष्म ऋतु का वर्णन।
* **द्वितीय अङ्क-** शकुन्तला पर आसक्त राजा का कामी अवस्था में प्रवेश। भाग्यवश ऋषि कुमारों का प्रवेश और राजा द्वारा राक्षसों से यज्ञ की सुरक्षा के लिये राजा को आश्रम में रुकने की स्वीकृति। माता द्वारा दुष्यन्त को बुलाया जाना।
* **तृतीय अङ्क-** राजा के द्वारा गान्धर्व विवाह का प्रस्ताव। शान्ति -जल लेकर आश्रम की स्वामिनी गौतमी का प्रवेश, यज्ञ में राक्षसों के विघ्न को दूर करने के लिए राजा का प्रस्थान। शकुन्तला का गर्भिणी होना।
* **चतुर्थ अङ्क-** शकुन्तला का पतिगृह हस्तिनापुर के लिए गमन अर्थात् - विदाई, दुर्वासा के द्वारा शकुन्तला को शाप मिलना, कण्व का सोमतीर्थ से आगमन।
* **पञ्चम अङ्क-** शार्ङ्गरव, शारद्वत और गौतमी का शकुन्तला को लेकर राजद्वार पर आगमन। दुर्वासा के शाप के प्रभाव के कारण शकुन्तला का तिरस्कार, राजा द्वारा शकुन्तला को पहचानने से इनकार करना। अँगूठी का न मिलना, शचीतीर्थ में अँगूठी के गिर जाने का पता चलना।
* **षष्ठ अङ्क-** धीवर वृत्तान्त, **सानुमती उपाख्यान**, अँगूठी के मिलने से राजा को शकुन्तला सम्बन्धी वृत्तान्त याद आना और राजा का पश्चात्ताप करना, मातलि का आगमन और इन्द्र का सन्देश प्राप्त होना।
* **सप्तम अङ्क-** राजा की दानवों पर विजय। इन्द्र के द्वारा राजा को स्वर्ग से विदा करना। लौटते समय राजा का हेमकूट पर्वत पर मारीच ऋषि का आश्रम देखना। मारीच ऋषि से मिलना। शकुन्तला और पुत्र सर्वदमन (भरत) से मिलन होना।

*** षष्ठ अङ्क में वर्णित सानुमती के प्रमुख कथन-**

* **सानुमती- निर्वर्तितं मया पर्यायनिर्वर्तनीयमप्सरस्तीर्थ-सांनिध्यं यावत् साधुजनस्याभिषेककाल इति।**

सानुमती- जब तक सज्जनों के स्नान का समय है, तब तक अप्सरातीर्थ पर बारी-बारी से वहाँ उपस्थित रहने का जो नियम है, वह मैंने पूरा कर लिया है।

* **सानुमती- उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः। गुरुणा कारणेन भवितव्यम्।** मनुष्य उत्सवप्रिय होते हैं। यह कोई बड़ा कारण होगा।

सानुमती- लतासंश्रिता द्रक्ष्यामि तावत् सख्याः प्रतिकृतिम्। ततोऽस्या भर्तुर्बहुमुखमनुरागं निवेदयिष्यामि।

मैं लता का सहारा लेकर अपनी सखी का चित्र देखती हूँ, तत्पश्चात् उसके पति के विविध प्रकार से प्रकट हुए प्रेम को उसे बताऊँगी।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अभिज्ञानशाकुन्तल का सानुमती उपाख्यान षष्ठ अङ्क में वर्णित है।

अतः विकल्प B सही है।

स्रोत- अभिज्ञानशाकुन्तलम् (अङ्क 6)-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 375

40. आसु कस्याः उल्लेखो मेघदूते नास्ति-

(A) रेवायाः (B) शिप्रायाः
(C) तुङ्गभद्रायाः (D) गन्धवत्याः

व्याख्या-

कालिदासकृत मेघदूत एक खण्डकाव्य है, जो दो खण्डों में विभक्त है- पूर्वमेघ और उत्तरमेघ।

मेघदूत में प्रमुख नदियों का वर्णनः-

गन्धवती, गम्भीरा, चर्मण्वती, जाह्नवी, निर्विन्ध्या, यमुना, रेवा, वेत्रवती, शिप्रा, सरस्वती।

मेघदूतम् में प्रमुख पर्वतों का वर्णनः-

आम्रकूट, कैलास, नीचैर्गिरि, विन्ध्य, हिमालय, रामगिरि।

मेघदूतम् में प्रमुख राजधानियों (नगरों) का वर्णनः-

अलकापुरी, अवन्ति, उज्जयिनी, कुरुक्षेत्र, दशपुर, दशार्ण, देवगिरि, ब्रह्मावर्त, माल, विदिशा, विशाला आदि।

मेघदूतम् में गन्धवती नदी का वर्णनः-

* भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः--- स्नानतिक्तैर्मरुद्भिः। (पूर्वमेघ-37) चन्दन आदि से सुगन्धित गन्धवती (नामक नदी) की वायु से कम्पित उपवन वाले त्रैलोक्यस्वामी पार्वतीपति (महादेव) के पवित्र स्थान (महाकाल) में जाना।

* **शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः॥ (पूर्वमेघ-32)** शिप्रा नदी का वायु याचना करने में चापलूस प्रियतम के समान स्त्रियों की संभोग से होने वाली थकान को दूर करता है।

***रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां- भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य॥ (पूर्वमेघ-19)**

ऊँची-नीची विन्ध्य पर्वत की तलहटी पर बिखरी हुई नर्मदा (नामक नदी) को हाथी के शरीर पर रेखाचित्र द्वारा किये गये शृङ्गार के समान देखोगे।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मेघदूतम् में रेवा, शिप्रा, गन्धवती आदि नदियों का वर्णन प्राप्त होता है, किन्तु 'तुङ्गभद्रा' नदी का वर्णन नहीं है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- मेघदूतम् - शेषराज शर्मा रेग्मी, भू. पेज 35

41. मृच्छकटिकम् इति कस्य रूपकस्य उदाहरणं भवति?

(A) नाटकस्य (B) प्रकरणस्य
(C) व्यायोगस्य (D) समवकारस्य

व्याख्या- प्रकरण-

शूद्रक प्रणीत मृच्छकटिकम् रूपक का एक भेद प्रकरण ग्रन्थ है जिसमें दस अंक हैं। मृच्छकटिकम् का नायक चारुदत्त धीरप्रशान्त कोटि का तथा गणिका नायिका वसन्तसेना एवं कुल स्त्री नायिका धूता है तथा मुख्य रस शृङ्गार है। प्रकरण का लक्षण-

भवेत् प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्।
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक्।।
सापायधर्मकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः
नायिका कुलजा क्वापि वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित्।
तेन भेदास्त्रयः तस्य तत्र भेदस्तृतीयकः।।(सा.द. 6/224-227)

प्रकरण रूपक का भेद है, इसमें वृत्त लौकिक तथा कविकल्पित होता है।

शृङ्गार मुख्य रस होता है, ब्राह्मण, अमात्य या वणिक् में से कोई एक नायक होता है।

नायक धीरप्रशान्त कोटि का होता है, तथा विपरीत परिस्थितियों में भी धर्म, अर्थ, काम में परायण होता है।

प्रकरण की नायिका कुलस्त्री या वेश्या होती है। किसी प्रकरण में कुलस्त्री तथा वेश्या दोनों ही नायिका रूप में दिखलायी जाती है। इन नायिकाओं की विविधता से प्रकरण के तीन भेद हो जाते हैं।

➢ **नाटक-** नाटक की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध होती है, नाटक के इतिवृत्त में पाँच सन्धियाँ होती हैं। नाटक का नायक धीरोदात्त कोटि का होता है। इसका नायक किसी प्रसिद्ध राजवंश का कोई राजर्षि हो सकता है। इसमें न्यूनतम अंकों की संख्या पाँच तथा अधिकतम अङ्कों की संख्या दस होती है। नाटक का मुख्य रस शृङ्गार या वीर होता है। जैसे- अभिज्ञानशाकुन्तलम्, स्वप्नवासवदत्तम् आदि।

➢ **व्यायोग-** व्यायोग का कथानक प्रख्यात हुआ करता है, जिसमें स्त्रीपात्रों की संख्या बहुत कम और पुरुषपात्रों की संख्या अधिक हुआ करती है। जिसके लिए गर्भ और विमर्श सन्धियों की योजना अपेक्षित नहीं रहा करती है और जिसकी कथावस्तु एक अङ्क में समाप्त होती है। इसका नायक कोई प्रसिद्ध पुरुष हुआ करता है। जिसमें धीरोदात्त प्रकृति के ही नायक का चित्रण अपेक्षित है। जैसे- सौगन्धिकाहरण।

➢ **समवकार-** समवकार का कथानक प्रख्यात हुआ करता है, जिसमें स्त्री पात्रों की संख्या कम और पुरुष पात्रों की संख्या अधिक हुआ करती है। इसका कथानक एक ही अङ्क में समाप्त हो जाता है। इसमें कैशिकी वृत्ति का वर्णन नहीं होता है। इसका नायक देव विशेष का होना आवश्यक है जो धीरोदात्त प्रकृति का होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त प्रकरण का लक्षण मृच्छकटिकम् पर घटित होता है अतः मृच्छकटिकम् एक प्रकरण ग्रन्थ है।

अतः विकल्प B सही है।

स्रोत- संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 307

42. कृतककोपवृत्तान्तः मुद्राराक्षसे कस्मिन्नङ्केऽस्ति?

(A) प्रथमे (B) द्वितीये
(C) तृतीये (D) चतुर्थे

व्याख्या-

विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस नाटक में सात अंक है। इस नाटक का कथानक ऐतिहासिक है। इस नाटक में विदूषक एवं नायिका का सर्वथा अभाव है। नाटक का नायक चाणक्य, जो धीरोदात्त कोटि का है कुछ लोग चाणक्य के स्थान पर चन्द्रगुप्त को नायक मानते हैं। इस नाटक में मुद्रा के द्वारा राक्षस को पराजित करने का उल्लेख कवि ने किया है।

नाटक के सात अङ्कों के नाम-

प्रथम अङ्क	-	मुद्रालाभ	- 27 श्लोक
द्वितीय अङ्क	-	राक्षस विचार	- 23 श्लोक
तृतीय अङ्क	-	कृतककलह	- 33 श्लोक
चतुर्थ अङ्क	-	राक्षस उद्योग	- 22 श्लोक
पञ्चम अङ्क	-	राक्षस निकार	- 24 श्लोक
षष्ठ अङ्क	-	राक्षस निर्वेद	- 21 श्लोक
सप्तम अङ्क	-	राक्षस निग्रह	- 19 श्लोक

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कृतककोपवृत्तान्त का वर्णन मुद्राराक्षस के तृतीय अङ्क में प्राप्त होता है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- मुद्राराक्षसम् -पुष्पा गुप्ता, पेज 192

43. कालक्रमानुसारेण तालिकां चिनुत-

(a) भारविः (b) भासः
(c) कालिदासः (d) विश्वनाथः

व्याख्या-

(A)	(a)	(b)	(c)	(d)
(B)	(b)	(a)	(c)	(d)
(C)	(c)	(a)	(b)	(d)
(D)	(b)	(c)	(a)	(d)

ग्रन्थकार	अनुमानित समय
(1) भास	100ई.पू.से 200ई.के मध्य
(2) कालिदास	ई.पू. प्रथमशताब्दी
(3) भारवि	छठी शताब्दी
(4) विश्वनाथ	14वीं शताब्दी

रचनाएँ- कालिदास (रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्, ऋतुसंहारम्, मेघदूतम्, मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम्) भारवि किरातार्जुनीयम् नामक महाकाव्य एक मात्र रचना विश्वनाथ- साहित्यदर्पण, राघवविलास, कुवलयाचरित आदि।

भास- प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम्, ऊरुभंग, दूतवाक्य, पञ्चरात्र, बालचरित, दूतघटोत्कच, कर्णभार, मध्यमव्यायोग, प्रतिमानाटक, अभिषेकनाटक, अविमारक, चारुदत्त।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि कालक्रम के अनुसार भास, कालिदास, भारवि, विश्वनाथ का क्रम सही है।

अतः विकल्प D सही है।

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज अ-242, ब-465, स-201, द-587

44. विश्वनाथमते हास्यं कतिविधं भवति?

(A) चतुर्विधम् (B) पञ्चविधम्
(C) षड्विधम् (D) द्विविधम्

व्याख्या-

आचार्य विश्वनाथ साहित्यदर्पण के तृतीय परिच्छेद में रसों के भेदों का वर्णन किया है-

शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः॥

(सा.द.3.182)

(1) शृङ्गार (2) हास्य (3) करुण (4) रौद्र (5)वीर (6) भयानक (7) बीभत्स (8) अद्भुत (9) शान्त।

हास्य रस-

विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद्भवेत्।
हास्यो हासस्थायिभावः श्वेतः प्रमथदैवतः॥

(सा.द.3.214)

हास्य वह रस है जिसे हास स्थायिभाव का अभिव्यञ्जक कहा जाया करता है। इसका वर्ण श्वेत है और इसके अधिष्ठातृदेव प्रमथगण हैं।

हास्य रस के छः भेद हैं-

ज्येष्ठानां स्मितहसिते मध्यानां विहसितावहसिते च।
नीचानामपहसितं तथातिहसितं तदेष षड्भेदः॥

(सा.द.3.217)

(1) उत्तम प्रकृतिगत 'स्मित' हास्य
(2) उत्तम प्रकृतिगत 'हसित' हास्य
(3) मध्यम प्रकृतिगत 'विहसित' हास्य
(4) मध्यम प्रकृतिगत 'अवहसित' हास्य
(5) अधम प्रकृतिगत 'अपहसित' हास्य
(6) अधम प्रकृतिगत 'अतिहसित' हास्य

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि हास्य के छः भेद हैं जबकि वीररस के चार भेद दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर, दयावीर, एवं शृङ्गार रस के दो भेद सम्भोग शृङ्गार एवं विप्रलम्भ शृङ्गार है।

अतः विकल्प C सही है।

स्रोत- साहित्यदर्पण (3/217)-शालिग्राम शास्त्री, पेज 115

45. काव्यलक्षणविचारे ''स्ववचनविरोधाद् अपास्तम्'' इति कथनेन कस्य मतं विश्वनाथेन निराकृतम्?

(A) आनन्दवर्धनस्य (B) वामनस्य
(C) मम्मटस्य (D) व्यक्तिविवेकस्य

व्याख्या-

'काव्यस्यात्मा ध्वनिः' अर्थात् काव्य की आत्मा ध्वनि है। इसी प्रसंग में आनन्दवर्धन काव्य के दो भेद करते हैं वाच्यार्थ और प्रतीयमानार्थ-

योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः।
वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ॥

(ध्वन्या.1.2)

सहृदयों द्वारा प्रशंसित जो अर्थ काव्य के आत्मा रूप में प्रतिष्ठित है उसके वाच्य और प्रतीयमान दो भेद कहे गये हैं। जिसका खण्डन करते हुए साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कहते हैं, जिसमें वाच्यरूप अर्थ काव्य का आत्मतत्त्व बना दिखाई दे रहा है और अन्यत्र यह कहा है कि काव्य का जो आत्मभूत तत्त्व है वह ध्वनि ही है, ये दोनों परस्पर विरुद्ध कथन क्यों काव्य स्वरूप के निरूपण में प्रमाण होने लगे। ध्वनिकार ने जो ध्वनि के दो भेद वाच्य और प्रतीयमान किए हैं वह उनका वदतो व्याघात स्ववचन विरोध है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- साहित्यदर्पण- शालिग्राम शास्त्री, पेज 18

46. साहित्यदर्पणमते नीलवर्णः महाकालदैवतः रसः कः भवति?

(A) रौद्रः (B) वीरः
(C) भयानकः (D) बीभत्सः

व्याख्या-

आचार्य विश्वनाथ साहित्यदर्पण के तृतीय परिच्छेद में रसों का वर्णन एवं उनके भेदों आदि का वर्णन किया है-

➢ **शृङ्गार रस-** 'स्थायिभावो रतिः श्यामोवर्णोऽयं विष्णुदैवतः'

अर्थात् रति जिसका स्थायीभाव है वह शृङ्गार रस है। यह श्याम वर्ण का एवं इसके देवता विष्णु हैं।

➢ **हास्य रस-** 'हास्यो हासस्थायिभावः श्वेतः प्रमथदैवतः' (सा.द.3.214)

हास स्थायीभाव है जिसका ऐसा हास्य रस है इसका वर्ण श्वेत है और इसके देवता प्रमथगण हैं।

➢ **करुण रस-** 'धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथितो यमदैवतः' (सा.द.3.222)

शोक स्थायीभाव है जिसका वह करुण रस है। इसका वर्ण कपोत एवं देवता यम हैं।

➢ **रौद्र रस-** 'रौद्रः क्रोधस्थायिभावो रक्तो रुद्राधिदैवतः' (सा.द.3.227)

क्रोध स्थायीभाव है जिसका वह रौद्र रस है। इसका वर्ण रक्त एवं देवता रुद्र हैं।

➢ **वीर रस-** महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः (सा.द.3.232)

उत्साह स्थायीभाव है जिसका वह वीर रस है। इसका वर्ण स्वर्ण एवं देवता महेन्द्र हैं।

➢ **भयानक रस-** 'भयानको भयस्थायिभावः भूताधिदैवतः' (सा.द.3.235)

भय स्थायीभाव है जिसका वह भयानक रस है इसका वर्ण कृष्ण एवं देवता काल है।

➢ **बीभत्स रस-** नीलवर्णो महाकालदैवतोऽयमुदाहृतः (सा.द.3.239)

जुगुप्सा स्थायीभाव है जिसका वह बीभत्स रस है इसका वर्ण नीला एवं देवता महाकाल हैं।

➢ **अद्भुत रस-** अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो गन्धर्वदैवतः (सा.द.3.242)

विस्मय स्थायीभाव है जिसका वह अद्भुत रस है। इसका वर्ण पीत एवं देवता गन्धर्व हैं।

➢ **शान्त रस-** 'शान्तः शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः' (सा.द.3.245)

शम स्थायीभाव है जिसका वह शान्त रस है इसका वर्ण कुन्दपुष्पवत् एवं देवता श्रीनारायण हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि नील वर्ण और महाकाल देवता बीभत्स रस के हैं। **अतः विकल्प D सही है।**

स्रोत- साहित्यदर्पण (3/239)-शालिग्राम शास्त्री, पेज 120

47. जतुकर्णीपुत्रः भवति-

(A) भवभूतिः (B) कालिदासः
(C) माघः (D) श्रीहर्षः

व्याख्या-

➢ भवभूति प्रणीत उत्तररामचरितम् नाटक में नान्दी पाठ के पश्चात् सूत्रधार भवभूति के विषय में सूचना देते हुए कहता है-

'अस्ति खलु तत्रभवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्य-प्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः' कश्यपगोत्र में उत्पन्न श्रीकण्ठ उपाधिधारी, व्याकरण, मीमांसा और न्यायशास्त्र के ज्ञाता जतुकर्णी के पुत्र माननीय भवभूति नाम के एक महान् विद्वान् हैं।

➢ **श्रीहर्ष-** नैषधीयचरितम् के लेखक श्रीहर्ष ने सर्गान्त में अपने विषय में वर्णन करते हुए कहते हैं-

श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः सुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम् (1.145)

कविराजसमूह के मुकुट के आभूषणरूप हीरे श्रीहीर तथा मामल्लदेवी ने इन्द्रियों के समूह को जीतने वाले जिस श्रीहर्ष नाम के पुत्र को उत्पन्न किया।

➢ **कालिदास** के जीवन वृत्तान्त के विषय में सामग्री का सर्वथा अभाव है। कालिदास के द्वारा रचित सात रचनाएँ हैं-

महाकाव्य- रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्।

गीतिकाव्य (खण्डकाव्य)- ऋतुसंहारम्, मेघदूतम्।

नाटक- विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

➢ **माघ-** माघ द्वारा रचित केवल एक ही ग्रन्थ शिशुपालवध महाकाव्य है जिसमें बीस सर्ग हैं इस ग्रन्थ के नायक श्रीकृष्ण एवं प्रतिनायक शिशुपाल है।

* **माघ के विषय में प्रशस्तियाँ-** (i) नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते। (ii) माघे सन्ति त्रयो गुणाः।

माघ के पिता का नाम दत्तक था जो महान् वैयाकरण थे।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि 'जातुकर्णीपुत्र भवभूति' हैं। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 395

48. शाकुन्तले दुष्यन्तपुत्रस्य प्रथमं नाम किम् आसीत्?

(A) भरतः (B) सर्वदमनः

(C) गौतमः (D) वातायनः

व्याख्या-

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के सप्तम अङ्क में दुष्यन्तपुत्र के द्वारा शेर के दाँत गिने जाने के अवसर पर पहली तापसी कहती है कि- **'किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि? हन्त, वर्धते ते संरम्भः। स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि'** अर्थात् पितृतुल्य प्रिय इन प्राणियों को तू क्यों तंग (परेशान) कर रहा है? हाय तेरा क्रोध बढ़ता ही जा रहा है ऋषियों ने ठीक ही तेरा नाम सर्वदमन रखा है। इसी क्रम में दुष्यन्त पुत्र के विषय में ऋषि मारीच दुष्यन्त से कहते हैं-

इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः।

पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात्॥

(अभि.7.33)

आप इसको वंशप्रतिष्ठा स्वरूप चक्रवर्ती सम्राट् समझें। अद्वितीय महारथी यह अस्खलित और शान्त गति वाले रथ से समुद्रों को पार करके भविष्य में सातद्वीपों से युक्त सारी पृथ्वी पर विजय करेगा। यहाँ पर जीवों को बलात् वश में करने के कारण इसका नाम सर्वदमन था। भविष्य में यह संसार का पालन करेगा अतः इसका नाम 'भरत' पड़ेगा।

इसप्रकार दुष्यन्त के पुत्र का प्रथम नाम सर्वदमन एवं द्वितीय नाम भरत है। **अतः विकल्प B सही है।**

अभिज्ञानशाकुन्तलम् के कुछ प्रमुख पात्रों का नाम-

सेनापति	-	भद्रसेन
विदूषक	-	माधव्य (माढव्य)
कञ्चुकी	-	वातायन
ऋषिकुमार	-	गौतम एवं नारद
कण्व शिष्य	-	शार्ङ्गरव, शारद्वत
राजा का भृत्य	-	रैवतक, करभक, कञ्चुकी,
दो पुलिस वाले	-	सूचक, जानुक।
मारीच का शिष्य	-	गालव

स्रोत- अभिज्ञानशाकुन्तलम् -कपिलदेव द्विवेदी, पेज 448

49. साहित्यदर्पणानुसारेण एषु कस्य रूपकमध्ये गणनं न भवति-

(A) समवकारस्य (B) नाटिकायाः

(C) प्रकरणस्य (D) प्रहसनस्य

व्याख्या-

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद में रूपकों की गणना की है। दस रूपक निम्नवत् हैं -

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।

ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।(सा.द.6.3)

अर्थात् (1) नाटक (2) प्रकरण (3) भाण (4) व्यायोग (5) समवकार (6) डिम (7) ईहामृग (8) अङ्क (9) वीथी (10) प्रहसन ये रूपक के दस भेद हैं।

इसी क्रम में उपरूपक के भी 18 भेदों का वर्णन करते हैं, जिनके नाम हैं- (1) नाटिका (2) त्रोटक (3) गोष्ठी (4) सट्टक (5) नाट्यरासक (6) प्रस्थानक (7) उल्लाप्य (8) काव्य (9) प्रेङ्खण (10) रासक (11) संलापक (12) श्रीगदित (13) शिल्पक (14) विलासिका (15) दुर्मल्लिका (16) प्रकरणिका (17) हल्लीश (18) भाणिका ये उपरूपक के 18 भेद हैं।

अतः विकल्प B सही है।

स्रोत- साहित्यदर्पण (6/3) - शालिग्राम शास्त्री, पेज 170

50. एषु गतिसञ्ज्ञाविधायकं सूत्रं किमस्ति?

(A) ऊर्यादिच्विँडाचश्च

(B) कुगतिप्रादयः

(C) तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्

(D) एक विभक्ति-चापूर्वनिपाते

व्याख्या-

➢ **ऊर्यादिच्विँडाचश्च** (1.4.60)- ऊरी-आदिगण में पढ़े गये शब्द, च्विँ प्रत्ययान्त शब्द तथा डाच् प्रत्ययान्त शब्द क्रिया के योग में गतिसंज्ञक हों।

जैसे- ऊरीकृत्य, शुक्लीकृत्य,पटपटाकृत्य,सुपुरुषः।

यह सूत्र गति सञ्ज्ञाविधायक सञ्ज्ञासूत्र है।

➢ **कुगतिप्रादयः-** (2.2.18)- कुत्सितवाचक अव्यय, गतिसञ्ज्ञक और प्र आदि शब्द इनका समर्थ सुबन्त के साथ नित्य समास होता है। यह सूत्र गति समास विधायक विधिसूत्र है।

उदाहरण- कुपुरुषः, सुपुत्रः, आदि।

तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् (3.1.92)- धातोः सूत्र के अधिकार के अन्तर्गत कर्मण्यण् आदि सूत्रों में सप्तमी विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट कुम्भ आदि तद्वाचक पद की उपपद सञ्ज्ञा होती है।

यह सूत्र उपपद सञ्ज्ञाविधायक सञ्ज्ञा सूत्र है।

➢ **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते (1.2.44)-** विग्रह में जो नियत विभक्ति वाला है उसकी उपसर्जन सञ्ज्ञा होती है किन्तु उसका पूर्वनिपात नहीं होता है।

यह सूत्र उपसर्जनसञ्ज्ञा विधायक सञ्ज्ञासूत्र है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि गतिसञ्ज्ञा विधायक सञ्ज्ञासूत्र 'ऊर्यादिच्विँडाचश्च' है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी (1.4.61)-गोविन्दाचार्य, पेज 935

उत्तरमाला

1- D 2- A 3- B 4- C 5- C 6- B 7- D 8- B 9- C 10- B 11- D 12- D 13- C
14- B 15- C 16- C 17- B 18- C 19- C 20- B 21- B 22- A 23- B 24- B 25- C
26- A 27- C 28- B 29- D 30- B 31- B 32- A 33- C 34- D 35- D 36- D 37- A
38- C 39- B 40- C 41- B 42- C 43- D 44- C 45- A 46- D 47- A 48- B 49- B
50- A

6	जुलाई 2016	NTA UGC–NET/JRF संस्कृतम्	प्रश्नपत्रम् II

1. वाजसनेयिमाध्यन्दिनसंहिता सम्बन्धिता अस्ति -
(A) कृष्णयजुर्वेदेन (B) शुक्लयजुर्वेदेन
(C) सामवेदेन (D) अथर्ववेदेन

व्याख्या-

वेद		संहिता
* ऋग्वेद	-	(1) शाकल संहिता
		(2) बाष्कल संहित21ा
* शुक्लयजुर्वेद	-	(1) वाजसनेयिमाध्यन्दिनसंहिता
		(2) काण्वसंहिता
* कृष्णयजुर्वेद	-	(1) तैत्तिरीय संहिता
		(2) कठ संहिता
* सामवेद	-	जैमिनीय संहिता
* अथर्ववेद	-	शौनक संहिता

स्पष्टीकरण-उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि वाजसनेयिमाध्यन्दिन संहिता शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वैदिकसाहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-9,10

2. वेदा अपौरुषेयाः सन्तीति मतमस्ति-
(A) महर्षिदयानन्दस्य (B) ए. वेबरस्य
(C) मैक्समूलरस्य (D) विन्टरनिट्जस्य

व्याख्या-

वेद के भाष्यकारों ने वेद को अपौरुषेय माना है । इसके लिए किसी ने मीमांसा के तर्कों को उद्धृत किया, किसी ने न्याय-वैशेषिक के, किसी ने अन्य पुराणों के साक्ष्य उद्धृत किये हैं-

* **स्वामी दयानन्द सरस्वती-** आधुनिक युग के विद्वानों में इनका नाम आता है। इन्होंने वेद की नित्यता एवं अपौरुषेयता का समर्थन किया है तथा इसके लिए शास्त्रीय तथा लौकिक युक्तियाँ दी हैं। स्वामी विद्यानन्द विदेह ने भी महर्षि दयानन्द का समर्थन किया है।

* **मैक्समूलर-** पाश्चात्य विद्वान् भारतीय परम्परागत वेद के अपौरुषेयत्व सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते। मैक्समूलर, रास आदि पाश्चात्य विद्वान् वेद को मनुष्यकृत मानकर ही उसके अध्ययन में प्रवृत्त हुए और उसके कालनिर्धारण की दिशा में प्रयास किये।

जे म्यूर ने अपने 'ओरिजिनल संस्कृत टेक्स्ट्स' के तृतीय भाग के द्वितीय अध्याय में वैदिक संहिताओं के उन स्थलों को उद्धृत किया है जिनमें वैदिक सूक्तों की उत्पत्ति के विषय में उल्लेख है।

* **आचार्य सायण-** वेदों की व्याख्या करने वाले आचार्यों में आचार्य सायण का स्थान अग्रगण्य है। इन्होंने भी वेदों को अपौरुषेय और नित्य माना हैं।

* **आनन्द कुमार स्वामी-** इन्होंने वेदों को सिद्धों की वाणी कहा है।

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द ने वेद को अपौरुषेय कहा है। पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों को पौरुषेय माना है। **अतः विकल्प 'A'सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-18

3. वैतानश्रौतसूत्रं केन वेदेन सह सम्बद्धमस्ति -
(A) सामवेदेन (B) ऋग्वेदेन
(C) अथर्ववेदेन (D) कृष्णयजुर्वेदेन

व्याख्या-वेदों से सम्बन्धित श्रौतसूत्र निम्नलिखित हैं-

वेद		श्रौतसूत्र
ऋग्वेद	-	(1) आश्वलायन (2) शांखायन
शुक्लयजुर्वेद	-	(1) कात्यायन श्रौतसूत्र
कृष्णयजुर्वेद	-	(1) बौधायन (2) वाधूल (3) मानव (4) भारद्वाज (5) आपस्तम्ब (6) काठक (7) सत्याषाढ़ (8) वाराह (9) वैखानस श्रौतसूत्र
सामवेद	-	(1) जैमिनीय (2) लाट्यायन (3) द्राह्यायण (4) निदान (5) उपनिदान
अथर्ववेद	-	वैतान श्रौतसूत्र

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि 'वैतान-श्रौतसूत्र' अथर्ववेद से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-225

**4. 'स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥' अस्य मन्त्रस्य का देवता अस्ति?**
(A) रुद्रः (B) अग्निः
(C) सोमः (D) सविता

व्याख्या-

मन्त्र	देवता	ऋषि
* स नः पितेव सूनवे-(1.1.9)	अग्नि	मधुच्छन्दा
* अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्-(1.1.1)	अग्नि	मधुच्छन्दा
* राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। (1.1.8)	अग्नि	मधुच्छन्दा
* आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो-(1.35.2)	सविता	हिरण्यस्तूप
* विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः-(1.154.1)	विष्णु	दीर्घतमा
* मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः (1.154.2)	विष्णु	दीर्घतमा
* यस्य त्री पूर्णा मधुना-(1.154.4)	विष्णु	दीर्घतमा
* यो जात एव प्रथमो मनस्वान्-(2.12.1)	इन्द्र	गृत्समद
* यो रध्रस्य चोदिता यः-(2.12.6)	इन्द्र	गृत्समद
* यः सूर्यं य उषसं जजान (2.12.7)	इन्द्र	गृत्समद
* बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।। (2.33.15)	रुद्र	गृत्समद
* ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्- (4.51.8)	उषा	वामदेव
* पीतोऽमर्त्यो मर्त्यां आविवेश (8.48.12)	सोम	कण्वपुत्र प्रगाथ
* सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः- (10.90.1)	पुरुष	नारायण
* छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्- (10.90.9)	पुरुष	नारायण
* चन्द्रमा मनसो जातः- (10.90.13)	पुरुष	नारायण

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 'स नः [illegible] **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह-हरिदत्त शास्त्री, कृष्णकुमार, पेज-60

5. मुण्डकोपनिषद् केन वेदेन सह सम्बद्धा अस्ति-

(A) यजुर्वेदेन (B) अथर्ववेदेन

(C) ऋग्वेदेन (D) सामवेदेन

व्याख्या-

वेदों से सम्बन्धित उपनिषद्

वेद		उपनिषद्
* ऋग्वेद	-	(1) ऐतरेय (2) कौषीतकि
* शुक्लयजुर्वेद	-	(1) ईशोपनिषद् (2) बृहदारण्यक उपनिषद्
* कृष्णयजुर्वेद	-	(1) तैत्तिरीय (2) कठ (3) श्वेताश्वतर (4) मैत्रायणी (5) महानारायण उपनिषद्
* सामवेद	-	(1) छान्दोग्य (2) केन उपनिषद्
* अथर्ववेद	-	(1) प्रश्नोपनिषद् (2) मुण्डकोपनिषद् (3) माण्डूक्योपनिषद्

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'मुण्डकोपनिषद्' अथर्ववेद से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-177

6. 'षड्विंशब्राह्मणम्' इति ग्रन्थः केन वेदेन सह सम्बद्धोऽस्ति-

(A) यजुर्वेदेन (B) ऋग्वेदेन

(C) अथर्ववेदेन (D) सामवेदेन

व्याख्या-

वेद से सम्बन्धित ब्राह्मण-

वेद		ब्राह्मण
* ऋग्वेद	-	(1) ऐतरेय (2) कौषीतकि (शांखायन) ब्राह्मण
* शुक्लयजुर्वेदेन	-	शतपथ ब्राह्मण
* कृष्णयजुर्वेद	-	तैत्तिरीय ब्राह्मण
* सामवेद-		(1) ताण्ड्य महाब्राह्मण (पञ्चविंश या प्रौढ) (2) **षड्विंश ब्राह्मण** एवं अद्भुत ब्राह्मण (3) सामविधान (4) आर्षेय (5) मन्त्र (उपनिषद्) (6) देवताध्याय (7) वंश (8) संहितोपनिषद् ब्राह्मण
* अथर्ववेद		गोपथ ब्राह्मण

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि 'षड्विंशब्राह्मणम्' सामवेद से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-143

7. 'तलवकार- आरण्यकम्' केन वेदेन सह सम्बद्धमस्ति?

(A) ऋग्वेदेन (B) यजुर्वेदेन

(C) अथर्ववेदेन (D) सामवेदेन

व्याख्या-

वेद और उनसे सम्बन्धित आरण्यक :-

वेद		आरण्यक
* ऋग्वेद	-	(1) ऐतरेय (2) शांखायन आरण्यक
* शुक्लयजुर्वेद	-	बृहदारण्यक
* कृष्णयजुर्वेद	-	तैत्तिरीय आरण्यक, मैत्रायणी आरण्यक
* सामवेद	-	(i) तलवकार आरण्यक (जैमिनीय आरण्यक) (ii) छान्दोग्यारण्यक (ताण्ड्यब्राह्मण)
* अथर्ववेद	-	कोई आरण्यक नहीं।

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि 'तलवकार आरण्यक' सामवेद से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-166

8. 'विश्वामित्र-नदी' सूक्तस्य कः ऋषिरस्ति?

(A) वसिष्ठः (B) विश्वामित्रः

(C) मधुच्छन्दाः (D) दीर्घतमाः

व्याख्या-

सूक्त	देवता	ऋषि	मन्त्र
* विश्वामित्र नदी संवाद सूक्त (3.33)	- नदी	- विश्वामित्र	- 13
* पुरुरवा-उर्वशी (10/95)	-पुरुरवा उर्वशी- उर्वशी ऋषिका	पुरुरवा ऐल	- 18
* यम/यमी (10/10)	-यमी वैवस्वती यमो वैवस्वत	यमी वैवस्वती यमो वैवस्वत	- 14
* सरमा/पणि (10/108)	- सरमा, एवं पणि-	पणि एवं सरमा	-11
* पुरुषसूक्त (10/90)	- पुरुष	- नारायण	- 16
* नासदीय सूक्त (10/129)	-परमात्मा	- परमेष्ठी प्रजापति	- 7
* हिरण्यगर्भ सूक्त (10/121)	- क संज्ञक प्रजापति	- हिरण्यगर्भ	- 10
* वाक्सूक्त (10/125)	- परमात्मा	- वाक्	- 8
* अग्निसूक्त (1.1)	- अग्नि	- मधुच्छन्दा	- 9
* विष्णुसूक्त (1.154)	- विष्णु	- दीर्घतमा	- 6

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विश्वामित्र नदी संवादसूक्त के ऋषि विश्वामित्र हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्त संग्रह- हरिदत्त शास्त्री, पेज-207

9. 'पुरूरवा-उर्वशी' सूक्ते कति मन्त्राः सन्ति?

(A) 17 **(B)** 18

(C) 19 **(D)** 20

व्याख्या-

सूक्त	मन्त्र
* पुरूरवा उर्वशी संवाद सूक्त (10/95)	18
* विश्वामित्र-नदी संवाद (3.33)	13
* सरमा-पणि संवाद (10/108)	11
* यम-यमी संवाद (10/10)	14
* इन्द्र सूक्त (2/12)	15
* उषस् सूक्त (3/61)	07
* रुद्र सूक्त (2/33)	15
* पर्जन्य सूक्त (5.83)	10
* सवितृ सूक्त (1.35)	11

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि पुरूरवा-उर्वशी सूक्त में 18 मन्त्र हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वैदिकवाङ्मय- परीक्षादृष्टि- सर्वज्ञभूषण,पेज-10

10. अधस्तनयुग्मानां समीचीनां तालिकां चिनुत-

(क) यम-यमी संवादसूक्तम् (i) यजुर्वेदः

(ख) कठोपनिषद् (ii) सामवेदः

(ग) लाट्यायनश्रौतसूत्रम् (iii) ऋग्वेदः

(घ) माण्डूक्योपनिषद् (iv) अथर्ववेदः

	क	ख	ग	घ
(A)	III	I	II	IV
(B)	I	III	II	IV
(C)	IV	I	III	II
(D)	III	II	IV	I

व्याख्या- ऋग्वेद के संवाद सूक्त-

ऋग्वेद (1) पुरुरवा-उर्वशी संवाद (10.95)
(2) यम-यमी संवाद (10.10)
(3) सरमा-पणि संवाद (10.108)
(4) विश्वामित्र-नदी संवाद (3.33)

कृष्णयजुर्वेद उपनिषद् (1) मैत्रायणी उपनिषद्
(2) कठोपनिषद्
(3) तैत्तिरीय उपनिषद्
(4) श्वेताश्वतर उपनिषद्
(5) महानारायण उपनिषद्

सामवेद के श्रौतसूत्र (1) जैमिनीय **(2) लाट्यायन**
(3) द्राह्यायण

अथर्ववेद के उपनिषद् (1) प्रश्नोपनिषद् **(2) माण्डूक्योपनिषद्**
(3) मुण्डकोपनिषद्

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि यम यमी संवाद सूक्त ऋग्वेद से, कठोपनिषद् यजुर्वेद से, लाट्यायन श्रौतसूत्र सामवेद से तथा माण्डूक्योपनिषद् अथर्ववेद से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-57,175,219,10

11. अधस्तनेषु को ग्रन्थः कल्पवेदाङ्गान्तर्गतोऽस्ति?

(A) पारस्करगृह्यसूत्रम्

(B) काशकृत्स्नव्याकरणम्

(C) ऋग्वेदप्रातिशाख्यम्

(D) पाणिनीयशिक्षा

व्याख्या-वेदाङ्गों की संख्या छः है-

शिक्षाव्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः।।

(1) शिक्षा (2) व्याकरण (3) छन्द (4) निरुक्त
(5) ज्योतिष (6) कल्प ये छः वेदाङ्ग हैं।

* कल्पसूत्र के चार भेद हैं-
(1) श्रौतसूत्र (2) गृह्यसूत्र (3) धर्मसूत्र (4) शुल्बसूत्र

वेद	**गृह्यसूत्र**
ऋग्वेद	- (1) आश्वलायन (2) शांखायन (3) कौषीतकि
शुक्लयजुर्वेद	- **पारस्करगृह्यसूत्र**
कृष्णयजुर्वेद	- (1) बौधायन (2) मानव (3) भारद्वाज (4) आपस्तम्ब (5) काठक (6) आग्निवेश्य (7) हिरण्यकेशि (8) वाराह (9) वैखानस
सामवेद-	(1) गोभिल (2) कौथुम (3) खादिर (4) द्राह्यायण (5) जैमिनीय गृह्यसूत्र
अथर्ववेद-	कौशिक गृह्यसूत्र

⇒**स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कल्पवेदाङ्ग के अन्तर्गत 'पारस्करगृह्यसूत्र' आता है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-228

12. अधोऽङ्कितेषु वेदाङ्गमस्ति-
(A) ईशोपनिषद् (B) ऐतरेयारण्यकम्
(C) मानवशुल्बसूत्रम् (D) शतपथब्राह्मणम्

व्याख्या-वेदाङ्ग का अर्थ है- वेद के अङ्ग। वेदाङ्ग छः हैं- (1)शिक्षा(2)व्याकरण (3) छन्द (4) निरुक्त(5)ज्योतिष(6) कल्प।

कल्प के अन्तर्गत- (1) श्रौतसूत्र (2) गृह्यसूत्र (3) धर्मसूत्र (4) शुल्बसूत्र आते हैं।

वेद	**शुल्बसूत्र**
ऋग्वेद -	कोई शुल्बसूत्र प्राप्त नहीं होता
शुक्लयजुर्वेद-	कात्यायन शुल्बसूत्र
कृष्णयजुर्वेद -	(1) बौधायन (2) मानव शुल्बसूत्र (3) आपस्तम्ब (4) कात्यायन (5) मैत्रायणीय (6) वाराह शुल्बसूत्र
सामवेद-	कोई शुल्बसूत्र प्राप्त नहीं होता।
अथर्ववेद-	कोई शुल्बसूत्र प्राप्त नहीं होता।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि वेदाङ्ग के अन्तर्गत 'कल्प' और कल्प के अन्तर्गत 'शुल्बसूत्र' आता है। यजुर्वेद से सम्बन्धित मानव शुल्बसूत्र है। ईशोपनिषद् उपनिषद् ग्रन्थ है, ऐतरेयारण्यक आरण्यक ग्रन्थ है, शतपथ ब्राह्मणम् ब्राह्मणग्रन्थ है, मानवशुल्बसूत्रम् कल्पवेदाङ्ग है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-241

13. 'अधिवसति वैकुण्ठं हरिः' इत्यत्र कर्मसंज्ञाविधायकं सूत्रं किमस्ति?
(A) उपान्वध्याङ्वसः (B) अधि-शीङ्स्थासां कर्म
(C) अधिरीश्वरे (D) अधिपरी अनर्थकौ

व्याख्या-

अधिशीङ्स्थासां कर्म (1.4.46) अधि पूर्वक शीङ् धातु, अधिपूर्वक स्था धातु तथा अधिपूर्वक आस् धातु के आधार की कर्म संज्ञा होती है।

उदाहरण- हरिः वैकुण्ठम् अधिशेते। (हरि वैकुण्ठ में रहता है।) यहाँ पर हरि का आधार वैकुण्ठ है और अधि उपसर्ग पूर्वक शीङ् धातु का प्रयोग होने पर हरि के आधार वैकुण्ठ की 'अधिशीङ्स्थासां' कर्म से कर्मसंज्ञा और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति हुई है।

अभिनिविशश्च (1.4.47) अभि तथा नि उपसर्ग पूर्वक 'विश्' धातु के आधार की कर्मसंज्ञा होती है।

उदाहरण- सन्मार्गम् अभिनिविशते। (सन्मार्ग पर चलता है।) यहाँ 'सन्मार्ग' अभिनिविश् धातु का आधार है। 'अभिनिविशश्च' सूत्र के द्वारा सन्मार्गम् की कर्मसंज्ञा और कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति हुई है।

उपान्वध्याङ्वसः (1.4.48)-उप, अनु, अधि तथा आङ् पूर्वक वस् धातु के आधार की कर्मसंज्ञा होती है। उप आदि उपसर्गों में प्रत्येक के साथ 'वस्' धातु का सम्बन्ध है।

उदाहरण- अधिवसति वैकुण्ठं हरिः - (हरि वैकुण्ठ में निवास करते हैं) यहाँ पर अधि उपसर्ग से युक्त वस् धातु होने के कारण आधार 'वैकुण्ठ' की कर्मसंज्ञा हुई और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति हुई है।

⇒**स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'अधिवसति वैकुण्ठं हरिः' इसका कर्मसंज्ञाविधायक सूत्र 'उपान्वध्याङ्वसः' है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- कारकप्रकरण- राममुनि पाण्डेय, पेज-44

14. 'इत्थम्भूतलक्षणे' इति सूत्रस्योदाहरणं किम्भवति?
(A) जटाभिस्तापसः
(B) जपमनु प्रावर्षत्
(C) मासं कल्याणी
(D) लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः

व्याख्या-

➢ **इत्थम्भूतलक्षणे (2.3.21)**

'वह इस प्रकार है'- इसप्रकार कथन में लक्षणवाची शब्द से तृतीया होती है।

* **जटाभिस्तापसः** - जटाओं से तपस्वी जान पड़ता है।
* **चन्दनेन पण्डितः** - चन्दन से पण्डित
* **पुस्तकैः छात्रः** - पुस्तकों से छात्र
* **वर्णेन गौरः** - रंग से गोरा।
* **कमण्डलुना छात्रः** - कमण्डल से छात्र
* **वेषेण यतिः** - वेश से संन्यासी

➢ **अनुर्लक्षणे (1.4.84)**

लक्षण अर्थात् हेतु के अर्थ में अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

उदा॰- **जपमनु प्रावर्षत्।**

इस वाक्य में लक्षण के अर्थ में अनु की **'अनुर्लक्षणे'** सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई और 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' सूत्र से जपम् में द्वितीया विभक्ति हुई।

➢ **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे (2.3.5)**

अनुवृत्ति- द्वितीया

अर्थ- अत्यन्त संयोग के अर्थ में अर्थात् निरन्तरता के द्योतित होने पर काल एवं मार्गवाचक शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है।

उदाहरण- मासं कल्याणी (मास पर्यन्त शुभ है।)
मासम् अधीते (महीने भर लगातार पढ़ता है।)
मासं गुडधानाः (महीने भर लगातार गुड़ और लावा है।)

➢ **लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः (1.4.89)**

अर्थ- इत्थम्भूताख्यान का अर्थ है- 'वह इस प्रकार का है'- ऐसा कथन। वीप्सा व्याप्ति को कहते हैं।

लक्षण, इत्थम्भूताख्यान, भाग और वीप्सा अर्थों में प्रति, परि तथा अनु की कर्मप्रवचनीय तथा निपातसंज्ञा होती है।

उदा॰- **लक्षण-** वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् (वृक्ष पर बिजली चमकती है)

इत्थम्भूताख्यान- साधुर्देवो मातरं प्रति (परि, अनु)
(देव माता के प्रति अच्छा व्यवहार करता है।)

भाग का उदाहरण- लक्ष्मीः हरिं प्रति परि अनु वा
(लक्ष्मी हरि का भाग है)

वीप्सा का उदाहरण- वृक्षं वृक्षं प्रति परि अनु वा सिञ्चति (प्रत्येक वृक्ष को सींचता है।)

⟹ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'इत्थम्भूतलक्षणे' का उदाहरण 'जटाभिस्तापसः'है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- कारकप्रकरण- राममुनि पाण्डेय, पेज-62

15. 'अधिगोपम्' इत्यत्राव्ययीभावसमासः कस्मिन्नर्थे भवति-
(A) समीपार्थे (B) अत्ययार्थे
(C) विभक्त्यर्थे (D) साकल्यार्थे

व्याख्या-

अव्ययं विभक्ति- समीप- समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययाऽसम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव- पश्चाद्- यथाऽऽनुपूर्व्य-यौगपद्य- सादृश्य- सम्पत्ति-साकल्याऽन्तवचनेषु। (2.1.6)

(1) विभक्ति (2) समीप (3) समृद्धि (4) व्यृद्धि (5) अर्थाभाव (6) अत्यय (7) असम्प्रति (8) शब्दप्रादुर्भाव (9) पश्चाद् (10) यथा, (योग्यता, वीप्सा,पदार्थानतिवृत्ति और सादृश्य) (11) आनुपूर्व्य (12) यौगपद्य (13) सादृश्य (14) सम्पत्ति (15) साकल्य और (16) अन्त (समाप्ति)। इन सोलह अर्थों में से किसी भी अर्थ में वर्तमान जो अव्यय है उसका समर्थ सुबन्त के साथ नित्यसमास होता है, और वह समास अव्ययीभावसञ्ज्ञक होता है।

सामासिकपद		**अर्थ**
अधिहरि	-	विभक्ति अर्थ में
अधिगोपम्	-	विभक्ति अर्थ में
उपकृष्णम्	-	समीप अर्थ में
सुमद्रम्	-	समृद्धि अर्थ में
दुर्यवनम्	-	व्यृद्धि अर्थ में
निर्मक्षिकम्	-	अभाव अर्थ में
अतिहिमम्	-	नाश(अत्यय) अर्थ में
अतिनिद्रम्	-	असम्प्रति अर्थ में
इतिहरि	-	नाम की प्रसिद्धि अर्थ में
अनुविष्णु	-	पश्चात् अर्थ में
अनुरूपम्	-	योग्यता अर्थ में
प्रत्यर्थम्	-	(वीप्सा अर्थ में) प्रत्येक अर्थ के प्रति
यथाशक्ति	-	पदार्थानतिवृत्ति अर्थ में शक्ति के
	-	उल्लंघन के बिना
सहरि	-	(हरि के सदृश) यथा के सदृश अर्थ में
अनुज्येष्ठम्	-	(ज्येष्ठ के क्रम से) आनुपूर्व्य अर्थ में
सचक्रम्	-	यौगपद्य अर्थ में एक साथ एक ही काल में
ससखि	-	सादृश्य (अर्थात् समान अर्थ में समास)
सक्षत्रम्	-	सम्पत्ति अर्थ में

सतृणम् (अत्ति) - सम्पूर्ण अर्थ में

साग्नि (अधीते) - अन्त अर्थात् 'यहाँ तक' इस अर्थ में समास

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 'अधिगोपम्' विभक्ति अर्थ में है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी- गोविन्दाचार्य, पेज- ८९६

16. व्यधिकरणबहुव्रीहिसमासे किं ज्ञापकम्?
(A) 'अनेकमन्यपदार्थे इत्यत्र 'अनेक'- ग्रहणम्
(B) 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' इत्यत्र 'संज्ञायाम्' इत्यस्य ग्रहणम्
(C) 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' इत्यत्र 'सप्तमी' इत्यस्य ग्रहणम्
(D) 'शेषो बहुव्रीहिः' इत्यत्र 'शेष' ग्रहणम्

व्याख्या-

बहुव्रीहि समास में पूर्वनिपात का विशेष विधान करते हुए भट्टोजिदीक्षित सिद्धान्तकौमुदी में पाणिनीय सूत्र की वृत्ति में लिखते हैं-

सूत्र- सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ (2.2.35)

वृत्ति- सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं प्रयोज्यम्। कण्ठेकालः। अतएव ज्ञापकात् व्यधिकरणपक्षे बहुव्रीहिः।

सूत्रार्थ- बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त शब्द तथा विशेषण शब्द का पूर्व में प्रयोग होता है।

उदाहरण- कण्ठेकालः (कण्ठ में काला या नीलवर्ण है जिसका वह नीलकण्ठ शृङ्गार)।

कण्ठे कालो यस्य- लौकिक विग्रह

कण्ठ ङि काल सु - अलौकिक विग्रह

इस भिन्न विभक्ति अर्थात् व्यधिकरण में उक्त ज्ञापक के द्वारा समास हुआ।

सप्तम्यन्त पद कण्ठ ङि का 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' से पूर्वप्रयोग होकर 'कण्ठेकालः' बना।

⇒ यहाँ यह शंका उपस्थित होती है कि 'कण्ठेकालः' में समानाधिकरण न होने से जब बहुव्रीहि समास की प्राप्ति ही नहीं थी तब सप्तम्यन्त पद के पूर्वनियत की सम्भावना ही कैसे हो गयी?

* 'अतएव ज्ञापकात् व्यधिकरणपक्षे बहुव्रीहिः' व्यधिकरण (भिन्न-भिन्न विभक्ति) शब्दों में सप्तम्यन्त शब्द का पूर्वप्रयोग का विधान **''सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ''** इस सूत्र से किये जाने के कारण ही यह ज्ञापन मिलता है। कभी-कभी बहुव्रीहि समास में भिन्न-भिन्न विभक्ति वाले पदों का भी समास होता है। केवल समानाधिकरण अर्थात् समान विभक्ति की ही बहुव्रीहि समास में समास नहीं होता अपितु व्यधिकरण अर्थात् भिन्न-भिन्न विभक्ति वाले पदों का भी बहुव्रीहि समास होता है।

⇒ **स्पष्टीकरण- 'अतएव ज्ञापकाद् व्यधिकरण पक्षे बहुव्रीहिः'** अर्थात् जब बहुव्रीहि समास में सब पद प्रथमान्त होने से समानाधिकरण ही होते हैं, कोई पद व्यधिकरण नहीं होता तो पाणिनि का 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' सूत्र से सप्तम्यन्त पद का पूर्वनिपात करना यह ज्ञापित करता है कि क्वचित् व्यधिकरणपदों में भी बहुव्रीहि समास हो जाता है। यदि ऐसा न होता तो सूत्रकार पाणिनि सप्तम्यन्त पद का बहुव्रीहि में पूर्वनिपात क्यों कहते? उनका ऐसा कहना व्यधिकरणपद बहुव्रीहिसमास के होने का ज्ञापक है। **अतः विकल्प C सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी- गोविन्दाचार्य, पेज-952

17. 'वर्णानामतिशयितः सन्निधिः' को भवति?

(A) घिसञ्ज्ञः	**(B) उपधासञ्ज्ञः**
(C) निष्ठासञ्ज्ञः	**(D) संहितासञ्ज्ञः**

व्याख्या- घि संज्ञा-शेषो घ्यसखि (1.4.7) असखि का अर्थ है- सखि शब्द को छोड़कर। शेष का अर्थ है- जिन शब्दों की नदी संज्ञा नहीं है।

सूत्रार्थ- जिनकी नदी संज्ञा नहीं है ऐसे ह्रस्व इकार और ह्रस्व उकार है अन्त में जिनके, उन शब्दों की घि संज्ञा होती है, सखि शब्द को छोड़कर।

उदा॰- पुँल्लिङ्ग व नपुंसकलिङ्ग में ह्रस्व इकारान्त व ह्रस्व उकारान्त की घिसंज्ञा शब्द- हरिः, भानुः, वारि, मधु आदि।

घि संज्ञा- पतिः समास एव (1.4.8)

अर्थ- पति शब्द समास में ही घि संज्ञक होता है। समस्तपद में आये 'पति' शब्द की ही घि संज्ञा होती है, केवल 'पति' शब्द की नहीं।

उदाहरण- भूपतिः, प्रजापतिः रमापतिः, सीतापतिः, उमापतिः आदि

विशेष- सूत्रस्थ 'एव' शब्द अवधारणार्थक है। 'समासे एव' का अभिप्राय है कि पति शब्द की समास होने पर ही घि संज्ञा होती है।

अलोऽन्त्यात्-पूर्व उपधा (1.1.64)

सूत्रार्थ- अन्त्य अल् से पूर्व वर्ण की उपधा संज्ञा होती है।

उदा॰- गम्, मुच्, भिद्, वृध्।

गम् में अन्त्य अल् मकार है इससे पूर्व अकार है जिसकी

उपधा संज्ञा हुई है। मुच् में 'उ' की, भिद् में 'इ' की, वृध् में 'ऋ' की उपधा संज्ञा।

क्तक्तवतू निष्ठा (1.1.25)

सूत्रार्थ- क्त तथा क्तवतु प्रत्यय की निष्ठा संज्ञा होती है।

उदा॰- भुक्तः (क्त), भुक्तवान् (क्तवतु)

भुज् की 'भूवादयो धातवः (1.3.1)' से धातुसंज्ञा होकर धातोः,प्रत्ययः, परश्च के अधिकार में निष्ठा तथा क्तक्तवतू निष्ठा से क्त प्रत्यय होता है।

संहिता संज्ञा- परः सन्निकर्षः संहिता (1.4.108)

वृत्ति - 'वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात्।'

वर्णों के अत्यधिक सामीप्य की 'संहितासंज्ञा' होती है।

उदाहरण- मधु अपि = मध्वपि

यहाँ उकार तथा अकार की अत्यधिक समीपता है, इनकी संहिता संज्ञा होकर संहितायाम् के अधिकार में 'इको यणचि' से यण् आदेश होता है।

* अत्यधिक समीपता का अर्थ है- दो वर्णों के मध्य आधी मात्रा या इससे भी कम काल का व्यवधान होना।

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'वर्णानामतिशयितः सन्निधिः' को संहितासंज्ञा कहेंगे। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी- गोविन्दाचार्य, पेज-22

18. अधोलिखितेषु कस्य सर्वनामस्थानसंज्ञा भवति?
(A) 'टा' इत्यस्य (B) 'ङे' इत्यस्य
(C) 'शि' इत्यस्य (D) 'ङि' इत्यस्य

व्याख्या-

शि सर्वनामस्थानम् (1.1.41)

अर्थ- शि पद के द्वारा 'जश्शसोः शिः' से जस् व शस् के स्थान पर होने वाले शि आदेश का ही ग्रहण होता है।

सूत्रार्थ- शि की सर्वनामस्थानसंज्ञा होती है।

उदा॰- वनानि, दधीनि, मधूनि।

वन+जस्- इस दशा में शि आदेश और सर्वनामस्थान संज्ञा, अनुबन्ध लोप, ''नपुंसकस्य झलचः'' के द्वारा नुम् आगम वन शि- वन इ- वन नुम् इ- वन न् इ-

'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ'- सूत्र से दीर्घ होकर वनानि बना।

सुप् प्रत्यय-	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	सु	औ	जस्
द्वितीया	अम्	औट्	शस्
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सर्वनामस्थान संज्ञा 'शि' है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी- गोविन्दाचार्य, पेज-240

19. निमित्तात् कर्मयोगे, इत्यत्र 'योग' शब्दस्य भट्टोजिदीक्षितमते कोऽर्थः?
(A) चित्तवृत्तिनिरोधः
(B) संयोगसम्बन्धः केवलम्
(C) संयोग-समवायसम्बन्धौ
(D) स्वरूपसम्बन्धः

व्याख्या-

* आचार्य भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी के कारक प्रकरण के 'सप्तम्यधिकरणे च' (2.6.36) सूत्र पर 'निमित्तात्कर्मयोगे' वार्तिक उद्धृत किया है जिसका अर्थ है- कर्मयोग में निमित्तवाची शब्द से सप्तमी विभक्ति होती है यदि वह निमित (फल) उस क्रिया के कर्म से संयुक्त हो।

* इस वार्तिक में 'निमित्त' शब्द का अर्थ है- फल। (निमित्तमिह फलम्) 'योग' का अर्थ है- संयोगसमवायात्मक अर्थात् संयोग या समवाय सम्बन्ध **(योगः संयोगसमवायात्मकः)**

उदाहरण - चर्मणि द्वीपिनं हन्ति। (चमड़े के लिए गैंड़े को मारता है) इस उदाहरण में हनन क्रिया का फल चर्म है और वह हनन क्रिया का कर्म द्वीपी से संयुक्त है। अतः 'निमित्तात् कर्मयोगे' वार्तिक से निमित्तवाचक चर्मन् में सप्तमी विभक्ति होकर 'चर्मणि' बना।

इसीप्रकार- दन्तयोः कुञ्जरं हन्ति। (दाँतों के लिए हाथी को मारता है।) केशेषु चमरीं हन्ति। (केशों के लिए चमरी को मारता है।)

➢ चित्तवृत्तिनिरोध-पतञ्जलिकृत योगसूत्र में यह योग का लक्षण दिया गया है कि चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहते हैं। **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'**

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **विकल्प C सही है।**

स्रोत- सिद्धान्तकौमुदी कारक प्रकरण- राममुनि पाण्डेय, पेज-97

20. 'अधि रामे भूः' इत्यत्र 'अधि' शब्दस्य कर्मप्रवचनीय संज्ञा- विधायकं सूत्रं किमस्ति?
(A) अधिरीश्वरे (B) उपोऽधिके च
(C) अधि-परी अनर्थकौ (D) हीने

व्याख्या-

अधिरीश्वरे (1.4.97) स्व-स्वामिभाव रूप सम्बन्ध अर्थ में अधि शब्द की कर्मप्रवचनीय और निपात संज्ञा होती है।

यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी-(2.3.9) जिससे अधिक हो और जिसका ईश्वरत्व या स्वामित्व कहा जाय उन शब्दों में कर्मप्रवचनीय के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे- अधिरामे भूः (पृथिवी राम की स्व है।) यहाँ अधि की **'अधिरीश्वरे'** से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई तथा यहाँ स्वामी वाचक राम शब्द में 'यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी' सूत्र से सप्तमी विभक्ति करने पर रामे बना।

अधि भुवि रामः (राम पृथ्वी के स्वामी हैं।)

उपोऽधिके च (1.4.87) अधिक और हीन अर्थ द्योतित होने पर 'उप' अव्यय की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। अधिक अर्थ द्योतित होने पर सप्तमी विभक्ति होती है और हीन अर्थ में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे- उप हरिं सुराः (सभी देवता हरि से हीन हैं।)

अधिपरी अनर्थकौ- (1.4.92) अर्थरहित अधि एवं परि कर्मप्रवचनीय संज्ञक हैं। जैसे-कुतः अध्यागच्छति, कुतः पर्यागच्छति। (कहाँ से आता है)

हीने- (1.4.86) अनु शब्द से हीन अर्थात् न्यूनता अर्थ द्योतित होने पर अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

जैसे- अनु हरिं सुराः (देवता हरि से पीछे या न्यून हैं।) यहाँ 'हीने' सूत्र से अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई और 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' सूत्र से द्वितीया विभक्ति होकर 'हरिम्' बना।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'अधि रामे भूः' में अधि शब्द की 'अधिरीश्वरे' सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- अष्टाध्यायी- ईश्वरचन्द्र, पेज-143

21. को ध्वनिः अघोषमहाप्राणः अस्ति?

(A) घ्	**(B) छ्**
(C) ज्	**(D) ढ्**

व्याख्या-

भाषाविज्ञान के अनुसार अघोष वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में स्वरतन्त्रियाँ खुली रहती हैं और वायु बिना अवरोध के बाहर आती है। स्वरतन्त्रियों में कम्पन न होने कारण इन्हें अघोष कहते हैं। वर्गों के प्रथम और द्वितीय वर्ण-क-ख, च-छ, ट-ठ, त-थ, प-फ, अघोष व्यञ्जन हैं।

चूँकि जब वायुप्रवाह अधिक होता है तब उन वर्णों को महाप्राण कहते हैं। वर्गों के द्वितीय चतुर्थ वर्ण महाप्राण होते हैं अतः चवर्ग में छ् और झ् वर्ण महाप्राण हैं।

घोष अघोष की चर्चा व्याकरणशास्त्र में भी की गयी है जो इस प्रकार है- लघुसिद्धान्तकौमुदीकार वरदराजाचार्य ने सञ्ज्ञाप्रकरण में दो प्रकार के प्रयत्न बताए हैं- बाह्य प्रयत्न और आभ्यन्तर प्रयत्न। आभ्यन्तर प्रयत्न 5 होते हैं- स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और संवृत। (यत्नो द्विधा आभ्यन्तरो बाह्यश्च। आद्यः पञ्चधा।)

बाह्यप्रयत्न 11 प्रकार का होता है- विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित। (बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा।)

व्यञ्जनों के बाह्यप्रयत्न का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है-

1. खर् वर्णों अर्थात् खफछठथचटतकपशषस का बाह्यप्रयत्न विवार, श्वास और अघोष होता है। (खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च।

2. हश् वर्णों अर्थात् ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द का बाह्य प्रयत्न संवार, नाद और घोष होता है। (हशः संवारा नादा घोषाश्च।)

3. वर्गों के प्रथम, तृतीय, पञ्चम और यण् (य् व् र् ल्) अल्पप्राण यत्न वाले होते हैं। (वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः।)

4. वर्गों के द्वितीय, चतुर्थ और (शल् श् ष् स् ह्) महाप्राण यत्न वाले होते हैं। (वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः।)

* ज्- हश् वर्णों में आने से तथा चवर्ग का तृतीय वर्ण होने से संवार, नाद, घोष और अल्पप्राण यत्न वाली ध्वनि है।

* ढ्- हश् वर्णों में आने से और टवर्ग का चतुर्थ वर्ण होने से संवार नाद घोष और महाप्राण ध्वनि है।

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि छ् वर्ण अघोष तथा महाप्राण ध्वनि है। **अतः विकल्प B सही है।**

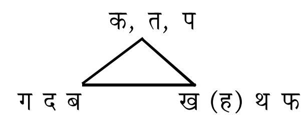
स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी, (प्रथम भाग) भैमी व्याख्या, पेज-28

22. ग्रिमनियमानुसारं संस्कृतस्य क्, त्, प् इति ध्वनयः जर्मनभाषायां केषु ध्वनिषु परिवर्तिताः?

(A) च्, छ्, ज्	**(B) ख्, थ्, फ्**
(C) ग्, द्, ब्	**(D) ऊष्मसु**

व्याख्या-

क, त, प



ग द ब ख (ह) थ फ

वर्ण परिवर्तन का क्रम क्, त्, प् (अघोष अल्पप्राण)

(घोष अल्पप्राण) (महाप्राण)

ग्, द्, ब् ख्,(ह्) थ्, फ्

ग्रिम नियम- यह ध्वनि नियम प्रो॰ याकोब ग्रिम (Jacob Grimm 1785-1863) के नाम से प्रसिद्ध है। इस नियम को ध्वनिपरिवर्तन (जर्मन में लाउत ध्वनि (Laut verschiebung) फेशीबुंग परिवर्तन, sound shifting नाम दिया गया। प्रो॰ मैक्समूलर ने इसे (ग्रिम नियम) Grimm's Law नाम दिया है। प्रो॰ ऑटो येस्पर्सन (Otto-Jespersen) का कथन है कि इस नियम को Rask's Law (रास्क-नियम) नाम दिया जाना चाहिये।

प्रथम वर्ण परिवर्तन- यह वर्ण परिवर्तन ईसा के जन्म से पूर्व हो चुका था, इसका प्रभाव समान रूप से गाथिक, निम्न जर्मन और अंग्रेजी, डच आदि भाषाओं पर पड़ा है। भारोपीय मूलभाषा की व्यंजन ध्वनियाँ संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि में सुरक्षित हैं। अंग्रेजी का उद्‍भव निम्न जर्मन से है अतः इसके द्वारा संस्कृत और अंग्रेजी की तुलना से यह परिवर्तन स्पष्ट हो जाता है।

⇒**स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि क्, त्, प् ध्वनियों का, ख्, थ् फ् ध्वनियों में परिवर्तन होता है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 242

23. संस्कृतभाषा कीदृशी अस्ति?
(A) श्लिष्टयोगात्मिका (B) प्रश्लिष्टयोगात्मिका
(C) अयोगात्मिका (D) अश्लिष्टयोगात्मिका

व्याख्या-

विश्व की भाषाओं के वर्गीकरण के दो भेद हैं- आकृतिमूलक और पारिवारिक। आकृतिमूलक वर्गीकरण के भी दो भेद हैं- योगात्मक और अयोगात्मक।

अयोगात्मक भेद एक ही प्रकार का है। योगात्मक के तीन भेद हैं- श्लिष्ट (Inflecting), अश्लिष्ट (Agglutinating), प्रश्लिष्ट (Incorporating)। योगात्मक भाषायें प्रकृति और प्रत्यय के संयोग से बनी हुई होती हैं।

आकृतिमूलक वर्गीकरण को वंशवृक्ष के रूप में दर्शाया गया है-

भाषा

अयोगात्मक (चीनी, तिब्बती) - योगात्मक

अश्लिष्ट

पूर्वयोगात्मक (काफिर) मध्ययोगात्मक (सन्थाली) अन्तयोगात्मक (तुर्की) पूर्वान्तयोगात्मक (मफोर)

श्लिष्ट

अन्तर्मुखी - बहिर्मुखी

अन्तर्मुखी संयोगात्मक (अरबी) वियोगात्मक (हिब्रू)

बहिर्मुखी संयोगात्मक (संस्कृत) वियोगात्मक (हिन्दी)

प्रश्लिष्ट

पूर्णप्रश्लिष्ट (चेरोकी) आंशिकप्रश्लिष्ट (बास्क)

⇒**स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवेचन के द्वारा स्पष्ट होता है कि संस्कृत भाषा श्लिष्ट योगात्मक (बहिर्मुखी-संयोगात्मक) के अन्तर्गत आती है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र–कपिलदेव द्विवेदी, पेज- 385-386

24. ग्रीकभाषा कस्य भाषापरिवारस्य भाषा अस्ति?
(A) सेमिटिक-परिवारस्य (B) बान्टू-परिवारस्य
(C) भारोपीय-परिवारस्य (D) काकेशी-परिवारस्य

व्याख्या-

विश्व भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण के अनुसार 18 भेद माने गये हैं। **भारोपीय परिवार-**

यूरेशिया भूखण्ड के अन्तर्गत भारोपीय परिवार आता है जिनकी भाषायें निम्नलिखित हैं-

भाषायें- संस्कृत, अवेस्ता, ग्रीक, लैटिन आदि भाषायें हैं।

सेमिटिक या सामी- हामी परिवार- यह भी यूरेशिया भूखण्ड के अन्तर्गत है-

प्रमुख भाषायें- सामी- अक्कदियन, कनानित, अरमाइक, अरबी, एबीसीनियन।

हामी- लीबियन, मेरोइटिक, एथियोपिक (कुशीत), मिश्री।

काकेशी परिवार-

यह यूरेशिया भूखण्ड के अन्तर्गत ही सम्मिलित है। इस परिवार की प्रमुख भाषायें हैं-

प्रमुख भाषायें- उत्तरी वर्ग- कबर्डिन, सर्कासियन, चेचेनिश, लेगियन।

दक्षिणी वर्ग- जार्जियन, मिग्रेलियन, लासिश, स्वानियन।

बान्टू परिवार- यह भाषा अफ्रीका भूखण्ड के अन्तर्गत आता है। इन क्षेत्रों में बोली जाने वाली प्रमुख भाषायें हैं-

इनमें 150 भाषायें हैं।

पूर्वी वर्ग- जुलू, काफिर, स्वाहिली

मध्य वर्ग- सेसुतो

पश्चिमी वर्ग- हेरेरो, कांगो

⇒**स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'ग्रीकभाषा' भारोपीय परिवार के अन्तर्गत आती है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र–कपिलदेव द्विवेदी, पेज- 357,385,386,397,402

25. संस्कृतस्य 'शतम्' इत्यस्य कृते 'केन्टुम्' इत्ययं शब्दः कस्यां भाषायां विद्यते?
(A) लैटिनभाषायाम् **(B) ग्रीकभाषायाम्**
(C) जर्मनभाषायाम् **(D) ईरानीभाषायाम्**

व्याख्या-

* 'सौ' के लिए मूल भारोपीय भाषा का Kmtom (क्मतोम्) माना जाता है। इसका विभिन्न भाषाओं में विकास इस प्रकार माना जाता है।

मूल भारोपीय शब्द Kmtom (क्मतोम् = शतम्)

शतम् वर्ग	**केन्टुम् वर्ग**
संस्कृत-शतम्	लैटिन-केन्टुम् (Centum)
अवेस्ता-सतम्	ग्रीक-हेकटोन (Hekaton)
फारसी-सद	केल्टिक-आयरिश-केत् (cet)
हिन्दी-सौ	तोखारी-कन्ध (Kandh)
रूसी-स्तो (Sto)	गाथिक-हुन्ट (Hund)
लिथुआनियन-स्जिम्तास (Szimatas)	जर्मन-हुन्डर्ट (Hundert)
	फ्रेंच-सं (सेन्ट, Cent)
	इटालियन-केन्तो

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि संस्कृत के शतम् शब्द को लैटिन भाषा में केन्टुम् कहा जाता है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- भाषा-विज्ञान एवं भाषाशास्त्र- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 385

26. सिन्धीभाषायाः विकासः प्राकृतभाषायाः अभवत् ?
(A) शौरसेनी-प्राकृतात् **(B) पैशाची-प्राकृतात्**
(C) मागधी-प्राकृतात् **(D)अर्धमागधी-प्राकृतात्**

व्याख्या-भारतीय आर्यभाषाएँ-

भारतीय आर्यभाषाओं को काल की दृष्टि से तीन भागों में बाँटा जाता है-

क- प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ- (2500 ई0पू0 से 500 ई0पू0)

ख- मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ- (500 ई0पू0 से 1000 ई0 तक)

ग- आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ- (1000 ई0 से वर्तमान समय तक)

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ- आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास मध्यकालीन अपभ्रंश भाषाओं से हुआ है। प्राचीन पाँच प्राकृतों से पाँच अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ है। इन पाँच अपभ्रंशों के साथ ही ब्राचड़ एवं खास दो अपभ्रंशों को और लिया जाता है। इसप्रकार अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास माना जाता है।

अपभ्रंश		**विकसित आधुनिक भाषाएँ**
1. शौरसेनी	-	(क) पश्चिमी हिन्दी
	-	(ख) राजस्थानी
	-	(ग) गुजराती
2. महाराष्ट्री	-	मराठी
3. मागधी	-	(क) बिहारी (ख) बंगाली
	-	(ग) उड़िया (घ) असमी
4. अर्धमागधी	-	पूर्वी हिन्दी
5. पैशाची	-	लहँदा
6. ब्राचड़	-	(क) सिन्धी (ख) पंजाबी
7. खस	-	पहाड़ी

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ब्राचड़ पैशाची प्राकृत के अन्तर्गत ही परिगणित है। अतः सिद्ध है कि सिन्धी भाषा का विकास पैशाची प्राकृत से हुआ है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान- एवं भाषाशास्त्र- कपिलदेव द्विवेदी, पेज-442

27. सत्कार्यवादस्य सिद्धिः कस्माद् हेतोः न भवति?
(A) असदकरणात्
(B) सर्वस्मात् सर्वसम्भवात्
(C) शक्तस्य शक्यकरणात्
(D) कारणभावात्

व्याख्या-

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।।
(सां.का.-09)

सत्कार्यवाद को सिद्ध करने के लिए पाँच हेतु बताये गये हैं- (1) असदकरणात् (2) उपादानग्रहणात् (3) सर्वसम्भव-अभावात् (4) शक्तस्य शक्यकरणात् (5) कारणभावात्।

असदकरणात्- उत्पत्ति से पहले भी कार्य-कारण में विद्यमान रहता है। यदि ऐसा नहीं होता तो कारण में असत् वस्तुरूप कार्य को भी प्रकट करने की सामर्थ्य होती, किन्तु कारण में विद्यमान कार्य की ही अभिव्यक्ति होती है। जैसे तेल निकालने के लिए तिलों

को ही व्यक्ति लेता है, चावलों को नहीं। वह जानता है कि चावलों से असत् वस्तु तेल की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः सत्कार्यवाद का सिद्धान्त मान्य है।

उपादान-ग्रहणात्- मिट्टी घड़े का उपादान कारण है। मिट्टी के बिना घड़ा नहीं बन सकता। वस्तु के निर्माण के लिए मूलकारण उपादान या समवायिकारण आवश्यक होता है।

सर्वसम्भवाभावात्- यदि हम सत्कार्यवाद के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान नहीं करते हैं, तो उस स्थिति में प्रत्येक वस्तु से प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति माननी होगी। जैसे- तेल को रेत, चावल गेहूँ आदि सभी पदार्थों से प्राप्त होना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता। क्योंकि कारण में पहले से ही कार्य विद्यमान रहता है।

शक्तस्य शक्यकरणात्- शक्य अर्थात् कार्य विशेष को उत्पन्न करने की शक्ति रखने वाला कारण ही, शक्य (उस कार्य को) उत्पन्न करता है। इसलिए सत्कार्यवाद का सिद्धान्त मान्य है। जिस प्रकार तिलों में ही तेल को उत्पन्न करने की शक्ति है, बालू में नहीं।

कारणभावात्- कार्य-कारण से अलग न होकर कारण का एक रूप होता है। वस्तुतः कारण और कार्य परस्पर सापेक्ष हैं। क्योंकि किसी को कार्य तभी कहा जाता है जब उसका कोई कारण होता है तथा कारण की अपेक्षा से ही उसे कार्य माना जाता है।

सत्कार्यवाद

1. असत्-अकरणात् (बालू से तेल नहीं)
2. उपादानग्रहणात् (घड़े के निर्माण हेतु मिट्टी लेनी होगी)
3. सर्वसम्भव-अभावात् (सभी वस्तुओं से सभी की उत्पत्ति सम्भव नहीं, तिल से तेल प्राप्त, दूध से जल नहीं)
4. कारणभावात्- (कारण कार्य अभिन्न है) दूध का विकसित रूप ही दही है।

⇒**स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सत्कार्यवाद की सिद्धि में सर्वस्मात् -सर्वसम्भवात् हेतु नहीं है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- सांख्यकारिका (का.-9) राकेश शास्त्री, पेज 29

28. प्रधानपुरुषयोः को धर्मः समानः?

(A) त्रिगुणत्वम् **(B) अहेतुत्वम्**
(C) सामान्यत्वम् **(D) अचेतनत्वम्**

व्याख्या-

अव्यक्त और व्यक्त का साम्य, पुरुष का दोनों से वैषम्य

त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥ (सां.का.-11)

पुरुष		**प्रधान अव्यक्त प्रकृति**	**व्यक्त**
			महत् आदि 23 पदार्थ
1- गुणरहितता			1- त्रिगुणम्
2- विवेकत्व			2- अविवेकि
3- अविषयत्व	वैषम्य		3- विषय
4- असामान्यत्व			4- सामान्यम्
5- चेतनत्व			5- अचेतनम्
6- अप्रसवधर्मित्व			6- प्रसवधर्मि

पुमान् - विपरीतः व्यक्तम् + अव्यक्तम्

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥ (सां.का.10)

व्यक्त	**अव्यक्त (मूलप्रकृति)**	**व्यक्त**	**अव्यक्त**
हेतुमत् -	1-(कारणरहित) अहेतुमत्	आश्रित-	6-अनाश्रित
अनित्य -	2- नित्य	लिङ्गसहित-	7-लिङ्गरहित
अव्यापी -	3- व्यापक	सावयव -	8- निरवयव
सक्रिय -	4- निष्क्रिय	परतन्त्र -	9- स्वतन्त्र
अनेक -	5- एक		

⇒**स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि प्रधान और पुरुष में 'अहेतुत्वम्' धर्म समान है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- सांख्यकारिका (का.-10-11)- राकेश शास्त्री, पेज 37-38

29. अव्यक्तं कस्माद् हेतोः कारणं भवति?

(A) नित्यत्वात् **(B) परिणामवत्त्वात्**
(C) चैतन्यात् **(D) निष्क्रियत्वात्**

व्याख्या-

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥ (सां.का.-10)

सांख्य की सृष्टिप्रक्रिया में अव्यक्त प्रकृति से व्यक्त पदार्थ महत् आदि की उत्पत्ति होती है अर्थात् अव्यक्त मूलप्रकृति का प्रथम परिणाम व्यक्त पदार्थ है अतः परिणामत्त्वात् अव्यक्त (प्रकृति) सभी 23 व्यक्त पदार्थो का कारण है। सत्त्व, रजस् और तमोगुण की साम्यावस्था का नाम ही मूलप्रकृति है। कारिका के प्रथम तीन चरण में ग्रन्थकार ने व्यक्त पदार्थों के नौ गुण-हेतुमत्, अनित्य, अव्यापी, सक्रिय, अनेक, आश्रित, लिङ्ग, सावयव, और परतन्त्र का उल्लेख करके चतुर्थ चरण में मात्र इतना कहा है कि अव्यक्त इन गुणों के

विपरीत गुणों वाला होता है। अर्थात् अहेतुमत्, नित्य, व्यापी, निष्क्रिय, एक, अनाश्रित, अलिङ्गी, निरवयव और स्वतन्त्र रूप वाली प्रकृति अव्यक्त तत्त्व है। **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- सांख्यकारिका (का.15-16) राकेश शास्त्री, पेज 51-52

30. प्रकृतिपुरुषयोः सम्बन्धः कीदृशो भवति?

(A) जलाग्निवत् **(B) कार्यकारणवत्**

(C) मातृपुत्रवत् **(D) पङ्ग्वन्धवत्**

व्याख्या-

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।

पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः॥(सां.का.21)

प्रकृति के दर्शन के लिए एवं पुरुष के कैवल्य के लिए दोनों पुरुष एवं प्रकृति का संयोग अन्धे और लँगड़े के समान (होता है) पूरी सृष्टि उस संयोग के द्वारा ही बनी हुई है।

पुरुष एवं प्रकृति के संयोग

प्रदर्शन	कैवल्य
प्रकृति के लिए	पुरुष के लिए

संयोग

पङ्गु - अन्धवत्

पुरुष - प्रकृति

⟹ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्रकृति और पुरुष में पङ्गु-अन्धवत् (लँगड़े-अन्धे के समान) सम्बन्ध है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- सांख्यकारिका (का.21) राकेश शास्त्री, पेज 68

31. अध्यारोपः किं भवति-

(A) मिथ्याज्ञानम् **(B) अस्पष्टं ज्ञानम्**

(C) यथार्थज्ञानम् **(D)वस्तुनि अवस्त्वारोपः**

व्याख्या-

अध्यारोप- 'असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवद्वस्तुन्य-वस्त्वारोपोऽध्यारोपः।।'

सर्प की सत्ता से रहित रस्सी में सर्प के आरोप के समान वस्तु में अवस्तु का आरोप ही अध्यारोप है।

अज्ञान- 'अज्ञानं तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चिदिति।'

अज्ञान को तो सत् और असत् दोनों से विलक्षण होने से अनिर्वचनीय, त्रिगुणात्मक, ज्ञान का विरोधी तथा भावरूप होने से यत्किञ्चित् ऐसा कहते हैं।

अज्ञान के भेद- 'अस्याज्ञानस्यावरणविक्षेपनामकमस्ति शक्तिद्वयम्'

आवरण और विक्षेप नामक अज्ञान की दो शक्तियाँ हैं।

⟹ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि अध्यारोप का लक्षण 'वस्तुनि अवस्त्वारोपः' है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार- राकेश शास्त्री, पेज 149

32. आवरणम् कस्य शक्तिरस्ति-

(A) रजोगुणस्य **(B) अज्ञानस्य**

(C) जीवस्य **(D) चैतन्यस्य**

व्याख्या-सदानन्द योगीन्द्र प्रणीत वेदान्तसार में अज्ञान की दो शक्तियाँ बतायी गयी हैं- **आवरणविक्षेपशक्ति- अस्याज्ञानस्यावरणविक्षेपनामकमस्ति शक्तिद्वयम्।** इस अज्ञान की आवरण और विक्षेप नामक दो शक्तियाँ हैं।

जीवन्मुक्त का लक्षण- भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

अपने स्वरूपभूत अखण्ड ब्रह्म के ज्ञान से, ब्रह्मविषयक अज्ञान का बाध होने के द्वारा, स्वरूपभूत अखण्ड ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर, अज्ञान, उसके कार्य, सञ्चित कर्म, संशय और विपर्यय आदि का नाश हो जाने से समस्त बन्धनों से रहित हुआ ब्रह्मनिष्ठ पुरुष जीवन्मुक्त होता है।

अपवाद- अपवादो नाम रज्जुविवर्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववद् वस्तु विवर्तस्यावस्तुनोऽज्ञानादेः प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्वम् तदुक्तम्

''सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदीरितः।
अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदीरितः''॥

जिस प्रकार रज्जु का विवर्त्त सर्प रज्जुमात्र ही होता है। उसी प्रकार (ब्रह्म रूप) वस्तु का विवर्त अर्थात् ब्रह्मरूप वस्तु में अज्ञान के कारण भाषित होने वाला जो अवस्तुभूत अज्ञानादि प्रपञ्च है, उसका वस्तुमात्र ही रह जाना अपवाद है।

ऐसा कहा गया है- किसी वस्तु का वस्तुतः अन्यरूप से प्रसिद्ध होना विकार कहा गया है, और मिथ्यारूप से अन्यवस्तु के रूप में भासित होना विवर्त कहा गया है।

⟹ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि आवरण अज्ञान की प्रथम शक्ति है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार- राकेश शास्त्री- पेज-173

33. वेदान्तसारानुसारं लिङ्गशरीरे कस्य गणना न भवति-

(A) बुद्धेः **(B) मनसः**

(C) प्राणस्य **(D) आकाशस्य**

व्याख्या-

सूक्ष्मशरीराणि सप्तदशावयवानि लिङ्गशरीराणि। अवयवास्तु ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं बुद्धिमनसी कर्मेन्द्रियपञ्चकं वायुपञ्चकं चेति।

सत्रह अवयवों से युक्त सूक्ष्मशरीर ही लिङ्ग शरीर है। पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, बुद्धि एवं मन, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ तथा पञ्चवायु ही इसके अवयव हैं। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण नामक पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ- पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं।

प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान- पाँच वायु हैं।

बुद्धिर्नाम निश्चयात्मिकान्तःकरणवृत्तिः- निश्चय करने वाली अन्तःकरण की वृत्ति ही बुद्धि है।

मनो नाम सङ्कल्पविकल्पात्मिकान्तःकरणवृत्तिः- सङ्कल्प विकल्प करने वाली अन्तःकरण की वृत्ति वस्तुतः मन है।

इन दोनों में ही चित्त और अहङ्कार दोनों का अन्तर्भाव हो जाता है।

सूक्ष्मशरीर (17 अवयव)

पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ+बुद्धि+मन+पञ्चकर्मेन्द्रियाँ+पञ्चवायु =17

⇒**स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि वेदान्तसार के अनुसार लिङ्गशरीर में सत्रह अवयवों की गणना होती है। और आकाश उनमें सम्मिलित नहीं है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार- राकेश शास्त्री, पेज-185

34. गौतमसूत्रोक्तषोडशपदार्थेषु कस्य पदार्थस्य निम्नाङ्कितेषु ग्रहणं नास्ति-

(A) 'संशय' पदार्थस्य (B) 'विशेष' पदार्थस्य
(C) 'अवयव' पदार्थस्य (D) 'निर्णय' पदार्थस्य

व्याख्या-

गौतम प्रणीत न्यायसूत्र में षोडश पदार्थों की चर्चा की गयी है- प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्त-अवयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास-च्छल-जाति-निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसाधिगमः। (न्या.सू.-1.1.1)

इन षोडश पदार्थों के तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति कराना प्रयोजन है।

संशय-'एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानार्थावमर्शः संशयः।' स च त्रिविधः। एक धर्मी में अनेक विरुद्ध धर्मों का ज्ञान संशय है। वह तीन प्रकार का है-

अवयव- 'अनुमानवाक्यस्यैकदेशा अवयवाः।'

अनुमान के वाक्य के अंश (एकदेश) अवयव (कहे जाते) हैं।

निर्णय- निर्णयोऽवधारणज्ञानम्। तच्च प्रमाणानां फलम्। निश्चित ज्ञान ही निर्णय है और वह प्रमाणों का फल होता है।

⇒अन्नम्भट्ट कृत तर्कसंग्रह में सप्त पदार्थों की चर्चा की गयी है- **द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवायाऽभावाः सप्तपदार्थाः** के अन्तर्गत पाँचवाँ पदार्थ विशेष है इसका लक्षण है- **विशेष-** नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता एव। नित्य द्रव्यवृत्ति वाले विशेष नामक पदार्थ तो अनन्त ही हैं।

⇒**स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि गौतमसूत्र के षोडश पदार्थों में विशेष नामक पदार्थ सम्मिलित नहीं है। वैशेषिक दर्शन के सात पदार्थों में 'विशेष' नामक पदार्थ परिगणित है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत-तर्कभाषा- आचार्य विश्वेश्वर, पेज-8

35. मृत्पिण्डः घटस्य कीदृशं कारणमुच्यते?

(A) निमित्तकारणम्
(B) समवायिकारणम्
(C) असमवायिकारणम्
(D) समवाय्यसमवायिकारणम्

व्याख्या-

केशवमिश्र प्रणीत तर्कभाषा में तीन कारणों की चर्चा की गयी है- कारणं त्रिविधम् -समवायि-असमवायि-निमित्तभेदात्

वह कारण समवायि, असमवायि तथा निमित्तकारण के भेद से तीन प्रकार का है।

समवायिकारण- यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्। यथा तन्तवः पटस्य समवायिकारणम्।

उनमें से समवायिकारण वह, जिसमें कार्य समवाय सम्बन्ध से उत्पन्न होता है। जैसे तन्तु पट के समवायिकारण है। क्योंकि तन्तुओं में ही पट समवाय सम्बन्ध से उत्पन्न होता है, तुरी आदि में नहीं। **पटश्च स्वगतरूपादेः समवायिकारणम्। एवं मृत्पिण्डोऽपि घटस्य समवायिकारणं, घटश्च स्वगतरूपादेः समवायिकारणम्।** पट अपने रूप आदि का समवायिकारण होता है। इसी प्रकार मिट्टी का पिण्ड भी घट का समवायिकारण है तथा घट अपने में स्थित रूप आदि का समवायिकारण है।

असमवायिकारण- यत्समवायिकारणप्रत्यासन्नमवधृतसामर्थ्यं तदसमवायिकारणम्। यथा तन्तुसंयोगः पटस्यासमवायिकारणम्। जो समवायि कारण में प्रत्यासन्न होता है और जिसकी कार्य के प्रति सामर्थ्य निश्चित होती है वह असमवायि कारण है। जैसे- तन्तुसंयोग पट का असमवायिकारण है।

निमित्तकारण- यन्न समवायिकारणम्, नाप्यसमवायिकारणम्। अथ च कारणम्। यथा वेमादिकं पटस्य निमित्तकारणम्। जो न समवायिकारण है न ही असमवायिकारण है किन्तु कारण है वह निमित्तकारण कहलाता है।

उदाहरण- वेमा आदि पट का निमित्तकारण है।

➤ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मृत्पिण्डः घटस्य समवायिकारणमुच्यते। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- तर्कभाषा- आचार्य विश्वेश्वर, पेज-25, 32

36. यदा चक्षुरादिना घटगतरूपादिकं गृह्यते तदाऽनयोरिन्द्रियार्थसन्निकर्षः कः?
(A) संयोगः (B) समवायः
(C) संयुक्तसमवायः (D) समवेतसमवायः

व्याख्या- आचार्य केशवमिश्र द्वारा रचित तर्कभाषा न्यायदर्शन का प्रकरण ग्रन्थ है। इन्होंने तर्कभाषा में प्रत्यक्ष ज्ञान का कारण इन्द्रियार्थसन्निकर्ष को माना है। सन्निकर्ष सर्वप्रथम दो प्रकार का होता है वैदिक एवं लौकिक। लौकिक सन्निकर्ष छः प्रकार के होते हैं।-

सन्निकर्ष		इन्द्रिय		ज्ञान
1- संयोग	-	चक्षु	-	घट
2- संयुक्तसमवाय	-	चक्षु	-	घटरूप
3- संयुक्तसमवेतसमवाय	-	चक्षु	-	घटरूपत्व
4- समवाय	-	श्रोत्र	-	शब्द
5- समवेत समवाय	-	श्रोत्र	-	शब्दत्व
6- विशेषण विशेष्यभाव	-	चक्षु	-	भूतले घटाभाव

➤ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि घटगत रूपादि में 'संयुक्तसमवाय सन्निकर्ष' है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- तर्कभाषा- आचार्य विश्वेश्वर, पेज-53

37. 'जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिमत्त्वात्' इत्यत्र 'प्राणादिमत्त्वम्' कीदृशो हेतुः?
(A) केवलान्वयी (B) केवलव्यतिरेकी
(C) अन्वय-व्यतिरेकी (D) असद्धेतुः

व्याख्या-

तर्कभाषाकार आचार्य केशवमिश्र ने अनुमान प्रमाण के निरूपण में अनुमान के दो भेद स्वार्थानुमान और परार्थानुमान किये हैं **(तच्चानुमानं द्विविधम्, स्वार्थं परार्थं चेति।)** परार्थानुमान में पञ्चावयववाक्य का प्रयोग किया जाता है जिसमें- 1. प्रतिज्ञा 2. हेतु 3. उदाहरण 4. उपनय 5. निगमन होते हैं। इन पञ्चावयवों में हेतु तीन प्रकार के होते हैं- अन्वयव्यतिरेकी, केवलव्यतिरेकी और केवलान्वयी।

⇒ **अन्वयव्यतिरेकी-** 'यत्राग्निर्नास्ति तत्र धूमोऽपि नास्ति, यथा महाह्रद' जहाँ अग्नि नहीं होती, वहाँ धूम भी नहीं होता, जैसे- महाह्रद यानी जलाशय में व्यतिरेकव्याप्ति है। क्योंकि महाह्रद में धूम और अग्नि का अभाव (व्यतिरेक) रहता है। 'महानस' के उदाहरण में अन्वयव्याप्ति बतायी गयी है और महाह्रद के उदाहरण में व्यतिरेकव्याप्ति बतायी गई है। इसीलिए 'धूमवत्त्वहेतु' को अन्वयव्यतिरेकी कहा गया है।

केवलव्यतिरेकी- केवलव्यतिरेकी हेतु वह होता है जिसके साथ केवल व्यतिरेकव्याप्ति बनती है, अन्वयव्याप्ति नहीं बन पाती, इसका उदाहरण है- ''जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिमत्त्वात्''- जीवित शरीर सात्मक (आत्मायुक्त) है, प्राणादिमान् होने से।

केवलान्वयी- अन्वयव्यतिरेकी और केवलव्यतिरेकी के अतिरिक्त कोई हेतु केवलान्वयी भी होता हैः शब्दोऽभिधेयः प्रमेयत्वात्- शब्द अभिधेय है, प्रमेय होने से, यत्प्रमेयं तदभिधेयं यथा घटः- जो प्रमेय होता है वह अभिधेय होता है। जैसे- घट। केवलान्वयी का लक्षण इस प्रकार बताया गया है-

सर्वेषु केषुचिद्वापि सपक्षेषु समन्वयि।
विपक्षशून्यं पक्षस्य व्यापकं केवलान्वयि।।

उस हेतु को केवलान्वयी हेतु कहते हैं जिसमें केवल अन्वयव्याप्ति ही उपलब्ध होती है, व्यतिरेकव्याप्ति कभी भी उसमें उपलब्ध नहीं होती, क्योंकि उसके लिए दृष्टान्त ही नहीं दिखाया जा सकता।

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिमत्त्वात्' में 'प्राणादिमत्त्वम्' में 'केवलव्यतिरेकी' हेतु है **अतः विकल्प B सही है।**

स्रोत- तर्कभाषा- गजाननशास्त्री मुसलगाँवकर, पेज-137,139,145

38. 'साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य विद्यते सः'- हेत्वाभासेऽन्नम्भट्टेन केन नाम्ना प्रोक्तः?
(A) 'सत्प्रतिपक्ष' नाम्ना (B) 'असिद्ध' नाम्ना
(C) 'सव्यभिचार' नाम्ना (D) 'विरुद्ध' नाम्ना

व्याख्या-

अन्नम्भट्टानुसार प्रणीत तर्कसंग्रह में पाँच हेत्वाभासों की चर्चा की गयी है-

हेत्वाभास- सव्यभिचारविरुद्धसत्प्रतिपक्षऽसिद्धबाधिताः पञ्च हेत्वाभासाः। हेत्वाभास पाँच होते हैं- सव्यभिचार, विरुद्ध, सत्प्रतिपक्ष, असिद्ध और बाधित।

1. सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः। स त्रिविधः साधारणासाधारणानुपसंहारिभेदात् - इनमें जो सव्यभिचारी अनैकान्तिक हेत्वाभास है वह- साधारण, असाधारण और अनुपसंहारी भेद से तीन प्रकार का होता है।

(i) साधारण अनैकान्तिक- तत्र साध्याभाववद्वृत्तिः साधारणोऽनैकान्तिकः। यथा पर्वतो वह्निमान् प्रमेयत्वादिति।

उनमें भी साध्य के अभाव में भी विद्यमान रहने वाला हेतु साधारण अनैकान्तिक हेत्वाभास है। जैसे-पर्वत अग्निवाला है, क्योंकि यह प्रमेय है।

(ii) असाधारण अनैकान्तिक- सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तः पक्षमात्रवृत्तिरसाधारणः। यथा-शब्दो नित्यः शब्दत्वादिति।

सभी सपक्ष एवं विपक्ष को छोड़कर केवल पक्ष में विद्यमान रहता है। वह असाधारण अनैकान्तिक हेत्वाभास होता है। जैसे- शब्द- नित्य है, शब्दत्व के कारण।

(iii) अनुपसंहारी- अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितोऽनुपसंहारी। यथा- सर्वमनित्यं प्रमेयत्वादिति।

अन्वय व्यतिरेक-व्याप्ति युक्त दृष्टान्त से रहित अनुपसंहारी अनैकान्तिक हेत्वाभास होता है। जैसे- सभी कुछ अनित्य है प्रमेयत्व के कारण। यहाँ सभी का पक्ष होने के कारण कोई दृष्टान्त ही नहीं है।

2. विरुद्ध हेत्वाभास- साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः। यथा- शब्दो नित्यः कृतकत्वादिति। साध्य के अभाव से व्याप्त हेतु विरुद्ध हेत्वाभास है। जैसे-शब्द नित्य है, कार्य होने से। यहाँ कृतकत्व, नित्यत्व के अभावरूप अनित्यत्व से व्याप्त है।

3. सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभास- यस्य साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं विद्यते स सत्प्रतिपक्षः। यथा शब्दो नित्यः श्रावणत्वाच्छब्दवत्। शब्दोऽनित्यः कार्यत्वाद् घटवदिति।

जिस हेतु के साध्य के अभाव को सिद्ध करने वाला दूसरा हेतु होता है, वह सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभास होता है। इसी को प्रकरणसम भी कहते हैं। जैसे-शब्द नित्य है। श्रावणत्व के कारण, शब्द के समान। शब्द अनित्य है कार्य होने से, घट के समान।

4. असिद्ध हेत्वाभास- असिद्धस्त्रिविधः - आश्रयासिद्धः, स्वरूपासिद्धः व्याप्यत्वासिद्धश्चेति।

आश्रयासिद्धो यथा- गगनारविन्दं सुरभि अरविन्दत्वात् सरोजारविन्दवत्। अत्र गगनारविन्दमाश्रयः, स च नास्त्येव। असिद्ध नामक हेत्वाभास तीन प्रकार का होता है।

(i) आश्रयासिद्ध (ii) स्वरूपासिद्ध (iii) व्याप्यत्वासिद्ध

(i) आश्रय असिद्ध जैसे- आकाश कमल से सुगन्धित होता है, कमल होने के कारण, सरोवर में उत्पन्न कमल के समान। यहाँ आकाश कमल का जो आश्रय है, वह वस्तुतः होता ही नहीं है।

(ii) स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास- स्वरूपासिद्धो यथा-शब्दो गुणश्चाक्षुषत्त्वात् रूपवत्। अत्र चाक्षुषत्वं शब्दे नास्ति शब्दस्य श्रावणत्वात्।

स्वरूप असिद्ध- यहाँ चाक्षुषत्व शब्द में नहीं है, क्योंकि शब्द का तो श्रवणेन्द्रिय द्वारा ग्रहण होता है।

(iii) व्याप्यत्वासिद्ध हेत्वाभास- सोपाधिको हेतुर्व्याप्यत्वासिद्धः। साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमुपाधिः।

पर्वतो धूमवान् वह्निमत्त्वात् इत्यत्रार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः।

उपाधि से युक्त हेतु व्याप्यत्वासिद्ध नामक हेत्वाभास होता है। साध्य के व्यापक होने पर साधन का अव्यापक पदार्थ उपाधि होता है। यथा- पर्वत धूमवान् है। वह्निमत्त्वात् होने के कारण। यहाँ गीले ईंधन का संयोग उपाधि है।

5. बाधित हेत्वाभास- यस्य साध्याभावः प्रमाणान्तरेण पक्षे निश्चितः सः बाधितः। यथा वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वादिति।

जिस हेतु के साध्य का अभाव अन्य प्रमाण द्वारा निश्चित होता है, वह बाधित हेत्वाभास है। जैसे- अग्नि शीतल होती है, द्रव्य होने के कारण।

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य विद्यते सः' यह लक्षण सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभास का है।

अतः विकल्प 'A' सही है।

स्रोत- तर्कसंग्रह- आद्याप्रसाद मिश्र, पेज-57

39. तर्कसंग्रहे तर्कलक्षणं किं युक्तम्?

(A) मिथ्याज्ञानम्

(B) व्याप्यारोपेण व्यापकारोपः

(C) सन्निकृष्टसंयोगहेतुः

(D) एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानम्

व्याख्या-अन्नम्भट्ट कृत तर्कसंग्रह के अन्तर्गत गुण लक्षण प्रकरण में ग्रन्थकार ने सभी प्रकार के व्यवहार के हेतु रूप गुण को बुद्धि माना था तथा उसके स्मृति और अनुभव दो भेदों का उल्लेख किया था। तत्पश्चात् अनुभव को भी यथार्थ अनुभव और अयथार्थ अनुभव रूप में दो भागों में विभाजित किया। इसी क्रम में अयथार्थ अनुभव के संशय, विपर्यय और तर्क नामक तीन भेदों को बताया गया है। अयथार्थानुभवस्त्रिविधः- संशयविपर्ययतर्कभेदात्।

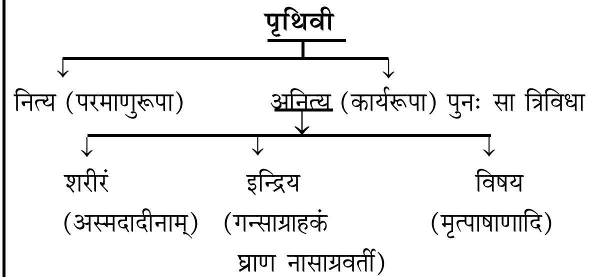
संशय- एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानं संशयः यथा- स्थाणुर्वा पुरुषो वेति।
एक धर्मी में परस्पर विरुद्ध अनेक प्रकार के धर्मों की विशिष्टता से युक्त ज्ञान 'संशय' है। जैसे- यह स्थाणु है या पुरुष।
विपर्यय- मिथ्याज्ञानं विपर्ययः। यथा शुक्ताविदं रजतमिति। मिथ्याज्ञान ही विपर्यय है। जैसे- सीपी में 'यह चाँदी है' ऐसा ज्ञान होना।
तर्क- व्याप्याऽऽरोपेण व्यापकारोपस्तर्कः। यथा-यदा वह्निर्न स्यात्तर्हि धूमोऽपि न स्यादिति।
व्याप्य के आरोप के साथ व्यापक का आरोप करना (ही) तर्क है। जैसे- जब अग्नि नहीं होती तो धूम भी नहीं होता।
संयोग- संयुक्तव्यवहारहेतुः संयोगः। सर्वद्रव्यवृत्तिः। संयुक्त व्यवहार का कारण संयोग नामक गुण है। यह भी सभी द्रव्यों में विद्यमान रहता है।
⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि तर्क का लक्षण 'व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः' है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**
स्रोत- तर्कसंग्रह- आद्याप्रसाद मिश्र, पेज-63

40. अभावप्रत्यक्षे अन्नम्भट्टानुसारं कः सन्निकर्षोऽङ्गीकृतः?
(A) विशेषण-विशेष्यभावः (B) समवायः
(C) संयुक्तसमवेत-समवायः (D) संयोगः

व्याख्या-
प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसन्निकर्षः षड्विधः-संयोगः, संयुक्तसमवायः, संयुक्तसमवेतसमवायः। समवायः, समवेतसमवायः, विशेषणविशेष्यभावश्चेति।
प्रत्यक्ष ज्ञान का हेतु इन्द्रिय और पदार्थ का सन्निकर्ष-
(1) संयोग (2) संयुक्तसमवाय (3) संयुक्त समवेत समवाय (4) समवाय (5) समवेत समवाय (6) विशेषण-विशेष्यभाव रूप से छः प्रकार का होता है।
(1) चक्षुषा घटप्रत्यक्षजनने संयोगः सन्निकर्षः।
नेत्र से घट का प्रत्यक्ष होने में 'संयोग' नामक सन्निकर्ष होता है।
(2) घटरूपप्रत्यक्षजनने संयुक्तसमवायः सन्निकर्षः, चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपस्य समवायात्।
घट के रूप का प्रत्यक्ष करने में 'संयुक्तसमवाय' नामक सन्निकर्ष है। क्योंकि नेत्र से संयुक्त घट में रूप समवायसम्बन्ध से स्थित रहता है।
(3) रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसमवायः सन्निकर्षः, चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपं समवेतं तत्र रूपत्वस्य समवायात्।
रूपत्व जाति के प्रत्यक्ष में 'संयुक्तसमवेतसमवाय' नामक सन्निकर्ष होता है, क्योंकि चक्षु से संयुक्त घटरूप समवेत है तथा उसमें रूपत्व समवाय सम्बन्ध से स्थित है।
(4) श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः सन्निकर्षः, कर्णविवर-वर्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वाच्छब्दस्याकाशगुणत्वाद् गुणगुणिनोश्च समवायात्। कर्णविवर में स्थित आकाश ही श्रोत्र होने से तथा आकाश का गुण शब्द होने के कारण एवं गुण-गुणी का समवाय सम्बन्ध होने से श्रोत्र द्वारा शब्द का साक्षात्कार करने में समवाय सन्निकर्ष है।
(5) शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवायः सन्निकर्षः। श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात्।
इसी प्रकार श्रोत्र में समवेत रूप से विद्यमान शब्द में शब्दत्व जाति के समवाय सम्बन्ध से स्थित रहने के कारण, शब्दत्व के साक्षात्कार में 'समवेत समवाय' नामक सन्निकर्ष होता है।
(6) अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावः सन्निकर्षः। घटाभाववद्भूतलमित्यत्र चक्षुःसंयुक्ते भूतले घटाभावस्य विशेषणत्वात्।
'भूतल घट के अभाव वाला है', यहाँ नेत्र से संयुक्त भूतल में घट का अभाव विशेषण है। अतः अभाव का प्रत्यक्ष करने में विशेषण-विशेष्यभाव सन्निकर्ष होता है।
⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि अभाव प्रत्यक्ष में 'विशेषण-विशेष्यभाव सन्निकर्ष' है।
अतः विकल्प 'A' सही है।
स्रोत- तर्कसंग्रह- आद्याप्रसाद मिश्र, पेज-48

41. गन्धवत्त्वं कस्य लक्षणम्?
(A) अपः (B) पृथिव्याः
(C) वायोः (D) अग्नेः

व्याख्या-
अन्नम्भट्ट प्रणीत तर्कसंग्रह में सर्वप्रथम सप्त पदार्थों की चर्चा के उपरान्त नव द्रव्यों की चर्चा करते हुए उन नौ द्रव्यों में सर्वप्रथम पृथिवी का लक्षण करते हैं- **तत्र गन्धवती पृथिवी।** गन्ध से युक्त पृथिवी कहलाती है।



आपः- शीतस्पर्शवत्यः आपः। शीतस्पर्श वाला जल है।

अग्नि (तेजः)- उष्णस्पर्शवत्तेजः। उष्ण स्पर्श वाला तेज है।

वायुः- रूपरहितस्पर्शवान् वायुः। रूप से रहित और स्पर्श युक्त वायु है।

⇒**स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'गन्धवत्त्वं पृथिवी' का लक्षण है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- तर्कसंग्रह- आद्याप्रसाद मिश्र, पेज-23

42. कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः मामल्लदेवी च कस्य पितरौ?

(A) भासस्य (B) श्रीहर्षस्य

(C) दण्डिनः (D) भारवेः

व्याख्या-

कवि	माता	पिता
* श्रीहर्ष	- मामल्लदेवी	- श्रीहीर
* अश्वघोष	- सुवर्णाक्षी	- पृथु (भास्करदत्त)
* भारवि	- सुशीला	- श्रीधर (नारायणस्वामी)
* माघ	- ब्राह्मी	- दत्तक (सर्वाश्रय)
* हर्षवर्धन	- यशोमती	- प्रभाकरवर्धन
* बाणभट्ट	- राजदेवी	- चित्रभानु
* दण्डी	- गौरी	- वीरदत्त
* भवभूति	- जतुकर्णी	- नीलकण्ठ
* बिल्हण	- नागदेवी	- ज्येष्ठकलश
* अम्बिकादत्तव्यास		- दुर्गादत्त
* पण्डिता क्षमाराव		- पं. शङ्करपाण्डुरङ्ग

⇒**स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि श्रीहीर और मामल्लदेवी श्रीहर्ष के पिता-माता हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- संस्कृतसाहित्य का इतिहास- उमाशङ्कर शर्मा, पेज-284

43. अधस्तनयुग्मानां समीचीनतालिकां चिनुत-

(क) श्रीहर्षः (i) हर्षचरितम्

(ख) दण्डी (ii) मुद्राराक्षसम्

(ग) बाणभट्टः (iii) नैषधीयचरितम्

(घ) विशाखदत्तः (iv) दशकुमारचरितम्

	क	ख	ग	घ
A	(i)	(iii)	(iv)	(ii)
B	(iii)	(iv)	(i)	(ii)
C	(ii)	(iii)	(iv)	(i)
D	(iv)	(iii)	(ii)	(i)

व्याख्या-

ग्रन्थ	ग्रन्थकार	विभाजन
* हर्षचरितम्	- बाणभट्ट	- आठ उच्छ्वास
* मुद्राराक्षसम्	- विशाखदत्त	- सात अङ्क
* नैषधीयचरितम्	- श्रीहर्ष	- बाइस सर्ग
* दशकुमारचरितम्	- दण्डी	- आठ उच्छ्वास
* अभिज्ञानशाकुन्तलम्	- कालिदास	- सात अङ्क
* किरातार्जुनीयम्	- भारवि	- अठारह सर्ग
* शिशुपालवधम्	- माघ	- बीस सर्ग
* बुद्धचरितम्	- अश्वघोष	- अट्ठाइस सर्ग

⇒**स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि कौन किस ग्रन्थ के कवि हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- संस्कृत सा. का इति.- उमाशङ्करशर्मा, पेज-285,381,395,501

44. दशकुमारचरितस्य नायकः कः?

(A) राजहंसः (B) उपहारवर्मा

(C) राजवाहनः (D) अपहारवर्मा

व्याख्या-

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	नायक	नायिका
* दण्डी	- दशकुमारचरितम्	- राजवाहन	- अवन्तिसुन्दरी
* भास	- स्वप्नवासवदत्तम्	- उदयन	- वासवदत्ता/पद्मावती
* शूद्रक	- मृच्छकटिकम्	- चारुदत्त	- वसन्तसेना/धूता
* कालिदास	- अभिज्ञानशाकुन्तलम्	- दुष्यन्त	- शकुन्तला
* भारवि	- किरातार्जुनीयम्	- अर्जुन	- द्रौपदी
* श्रीहर्ष	- नैषधीयचरितम्	- नल	- दमयन्ती
* माघ	- शिशुपालवधम्	- श्रीकृष्ण	- सत्यभामा/रुक्मिणी
* कालिदास	- रघुवंशम्	- राम	- सीता
* विशाखदत्त	मुद्राराक्षस	चाणक्य/चन्द्रगुप्त	नायिका का अभाव

⇒**स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि दशकुमारचरितम् के नायक राजवाहन हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- संस्कृतसाहित्य का इति.- उमाशङ्करशर्मा ऋषि, पेज-383

45. विश्वनाथमतानुसारं वीररसः कतिविधः?

(A) द्विविधः (B) त्रिविधः

(C) पञ्चविधः (D) चतुर्विधः

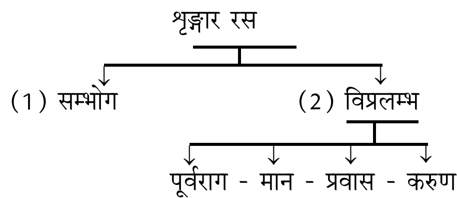
व्याख्या-

आचार्य विश्वनाथकृत साहित्यदर्पणानुसार वीररस का लक्षण एवं उनके भेद इसप्रकार हैं-

➢ **वीररस लक्षण-** उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः। महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः।। (सा.द.3/232-233) उत्तम पात्र (रामादि) में आश्रित वीररस होता है। इसका स्थायीभाव उत्साह, देवता महेन्द्र, रंग सुवर्ण के सदृश होता है।

स च वीरो दानवीरो धर्मवीरो युद्धवीरो दयावीरश्चेति चतुर्विधः। वीररस चार प्रकार के हैं- (1) दानवीर (2) धर्मवीर (3) दयावीर (4) युद्धवीर।

➢ **शृङ्गार रस-** विप्रलम्भ और सम्भोग ये दो शृङ्गाररस के भेद हैं। 'विप्रलम्भोऽथ संभोग इत्येष द्विविधो मतः। (सा.द. 3/186) विप्रलम्भ के चार भेद-(1) पूर्वराग (2) मान (3) प्रवास (40) करुण



हास रस- ज्येष्ठानां स्मितहसिते मध्यानां विहसितावहसिते च। नीचानामपहसितं तथातिहसितं तदेष षड्भेदः।। (सा.द. 3/217)

हास्य के छः भेद- उत्तम श्रेणी के लोगों में स्मित और हसित होते हैं। मध्यमश्रेणी के लोगों में 'विहसित और अवहसित' होते हैं। नीच पुरुषों में अपहसित और अतिहसित होते हैं।

हास्यरस के भेद

(1) स्मित (2) हसित (3) विहसित (4) अवहसित (5) अपहसित (6) अतिहसित

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वीररस के चार भेद होते हैं। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- साहित्यदर्पण- शालिग्राम शास्त्री, पेज-118

46. बृहत्त्रय्यां न गण्यते-

(A) नैषधीयचरितम् **(B) रघुवंशम्**
(C) किरातार्जुनीयम् **(D) शिशुपालवधम्**

व्याख्या-

बृहत्त्रयी

किरातार्जुनीयम्	शिशुपालवधम्	नैषधीयचरितम्
भारवि	माघ	श्रीहर्ष
18सर्ग	20सर्ग	22सर्ग

लघुत्रयी

रघुवंशम्	कुमारसम्भवम्	मेघदूतम्
कालिदास	कालिदास	कालिदास
19सर्ग	17सर्ग	2 भाग

गद्यत्रयी

वासवदत्ता	कादम्बरी	दशकुमारचरितम्
सुबन्धु	बाणभट्ट	दण्डी

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि बृहत्त्रयी के अन्तर्गत रघुवंशम् नहीं आता **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- संस्कृतसाहित्य का इति.- उमाशङ्करशर्मा 'ऋषि', पेज 208

47. गद्यकाव्यं नास्ति-

(A) कादम्बरी (B) दशकुमारचरितम्
(C) बुद्धचरितम् (D) हर्षचरितम्

व्याख्या-

	ग्रन्थ		विधा
*	वासवदत्ता	-	गद्यकाव्य (कथा)
*	कादम्बरी	-	गद्यकाव्य (कथा)
*	दशकुमारचरितम्	-	आख्यायिका
*	हर्षचरितम्	-	आख्यायिका
*	बुद्धचरितम्	-	महाकाव्य
*	रघुवंशम्	-	महाकाव्य
*	किरातार्जुनीयम्	-	महाकाव्य
*	शिशुपालवधम्	-	महाकाव्य
*	नैषधीयचरितम्	-	महाकाव्य
*	कुमारसम्भवम्	-	महाकाव्य
*	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	-	नाटक
*	स्वप्नवासवदत्तम्	-	नाटक
*	उत्तररामचरितम्	-	नाटक
*	मुद्राराक्षसम्	-	नाटक
*	वेणीसंहारम्	-	नाटक
*	मृच्छकटिकम्	-	प्रकरण
*	रत्नावली	-	नाटिका
*	नलचम्पू	-	चम्पूकाव्य

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि गद्यकाव्य 'बुद्धचरितम्' नहीं है। यह एक महाकाव्य है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- संस्कृतसाहित्य का इतिहास- उमाशङ्करशर्मा ऋषि, पेज-229

48. केन कविना बौद्धधर्मस्य प्रचारार्थं काव्यानि लिखितानि?
(A) कालिदासेन (B) माघेन
(C) अश्वघोषेण (D) भवभूतिना

व्याख्या-

➤ **अश्वघोष-** बौद्ध महाकवि अश्वघोष महान् धर्मप्रचारक, दार्शनिक तथा उच्चकोटि के विद्वान् थे। इनकी रचनाओं के अन्त में यह वाक्य मिलता है- आर्यसुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतस्य भिक्षोराचार्यस्य भदन्ताश्वघोषस्य महाकवेर्महावादिनः कृतिरियम्। इससे यह स्पष्ट होता है कि इनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। ये साकेत के निवासी थे। ये बौद्ध भिक्षु तथा आचार्य थे जिसे भदन्त, महाकवि और महावादी भी कहा जाता था। बौद्धधर्म के प्रचारार्थ इन्होंने बुद्धचरितम् आदि काव्य लिखें।

रचनायें- अश्वघोष की प्रमाणसिद्ध काव्यकृतियाँ चार हैं-

(1) बुद्धचरित (2) सौन्दरनन्द (3) शारिपुत्रप्रकरण (4) राष्ट्रपाल नाटक।

➤ **कालिदास-** कालिदास के ग्रन्थों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि कालिदास जन्म से ब्राह्मण तथा शिवभक्त थे। कुछ विद्वान् इन्हें शैव सम्प्रदाय का मानते हैं।

रचनायें- इनकी सात रचनायें हैं-

महाकाव्य- कुमारसम्भवम्, रघुवंशम्

नाटक- मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम्

गीतिकाव्य- ऋतुसंहारम्, मेघदूतम् (खण्डकाव्य)

➤ **माघ-** शिशुपालवध नामक महाकाव्य के रचयिता महाकवि माघ का स्थान संस्कृत महाकवियों में विशेष महत्त्व रखता है। इनके पितामह 'सुप्रभदेव' थे। पिता 'दत्तक' जो अत्यन्त उदार, क्षमाशील कोमल एवं धर्मपरायण थे। इन्हें लोग 'सर्वाश्रय' भी कहते थे क्योंकि यह सबकी सहायता के लिए तत्पर रहते थे।

'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' माघ विषयक प्रशस्तियों में यह सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

कालिदास, भारवि, दण्डी के साथ माघ की महत्ता का वर्णन किया गया है- **उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।

महाकवि कालिदास की विशिष्टता उपमा के कारण है, भारवि का प्रधानगुण अर्थगौरव है, दण्डी की विशिष्टता पदलालित्य के कारण है तो माघ में तीनों गुणों का समन्वय है।

➤ **भवभूति-** भवभूति ने शास्त्रीय ज्ञान व्यापक रूप से प्राप्त किया था। वेदों, दर्शनों और कर्मकाण्ड के ये प्रमुख विद्वान् थे। इनके रूपकों में मालतीमाधवम् की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि ये विदर्भ प्रदेश के पद्मपुर के निवासी थे। इन्होंने अपने पितामह (भट्टगोपाल), पिता-नीलकण्ठ एवं माता जतुकर्णी के नाम लिये हैं। इन्होंने तीनों रूपकों में स्वयं को 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' अर्थात् व्याकरण, मीमांसा, न्यायशास्त्र का विद्वान् कहा है।

रचनायें- भवभूति ने तीन रूपकों की रचना की-

(i) मालतीमाधवम्- (शृङ्गाररस का प्रकरण)
(ii) महावीरचरितम्- (वीररस का रामायणाश्रित नाटक)
(iii) उत्तररामचरितम्- (करुण रस का रामायणाश्रित नाटक)

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि जो कवि बौद्धधर्म का प्रचार करते हुए काव्यग्रन्थों को लिखा वह कवि 'अश्वघोष' हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- संस्कृतसाहित्य का इतिहास-उमाशङ्करशर्मा ऋषि, पेज-229

49. नैषधीयचरिते कति सर्गाः सन्ति?
(A) एकोनविंशतिः (B) द्वाविंशतिः
(C) अष्टाविंशतिः (D) चतुर्विंशतिः

व्याख्या-

	ग्रन्थकार		**ग्रन्थ**		**विभाजन**
*	श्रीहर्ष	-	नैषधीयचरितम्	-	22सर्ग
*	कालिदास	-	रघुवंशम्	-	19सर्ग
*	कालिदास	-	कुमारसम्भवम्	-	17सर्ग
*	अश्वघोष	-	सौन्दरनन्द	-	18सर्ग
*	अश्वघोष	-	बुद्धचरितम्	-	28सर्ग
*	भट्टि	-	भट्टिकाव्य	-	22सर्ग
*	रत्नाकर	-	हरविजयम्	-	50सर्ग

⇒ **स्पष्टीकरण-** उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 'नैषधीयचरितम्' में द्वाविंशतिः (22) सर्ग हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- संस्कृतसाहित्य का इतिहास-उमाशङ्करशर्मा ऋषि, पेज-287

50. किरातार्जुनीयमहाकाव्यस्य कथावस्तु कुतः गृहीतम्?
(A) महाभारतस्य आदिपर्वतः
(B) महाभारतस्य भीष्मपर्वतः
(C) महाभारतस्य वनपर्वतः
(D) रामायणमहाकाव्यात्

व्याख्या-

ग्रन्थकार	**ग्रन्थ**	**उपजीव्य ग्रन्थ**
भारवि	किरातार्जुनीयम्	महाभारत का वनपर्व
माघ	शिशुपालवधम्	महाभारत का सभापर्व
श्रीहर्ष	नैषधीयचरितम्	महाभारत का वनपर्व
कालिदास	रघुवंशम्	वाल्मीकीय रामायण/पद्मपुराण
कालिदास	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	महाभारत का आदिपर्व एवं पद्मपुराण
भट्टनारायण	वेणीसंहारम्	महाभारत का सभापर्व
शूद्रक	मृच्छकटिकम्	भासकृत चारुदत्तम् नाटक
बाणभट्ट	कादम्बरी	गुणाढ्य की बृहत्कथा सुमनस् वृत्तान्त
अश्वघोष	बुद्धचरितम्	'ललितविस्तर' बौद्धग्रन्थ
भास	स्वप्नवासवदत्तम्	इतिहासप्रसिद्ध उदयन-विषयक लोककथायें
भवभूति	उत्तररामचरितम्	उत्तरकाण्ड (42 से97 सर्ग तक)

स्पष्टीकरण-उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि किरातार्जुनीयम् की कथावस्तु महाभारत के वनपर्व से ली गयी है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्करशर्मा ऋषि, पेज-243

उत्तरमाला

1. (B)	**2.** (A)	**3.** (C)	**4.** (B)	**5.** (B)	**6.** (D)	**7.** (D)	**8.** (B)	**9.** (B)	**10.** (A)
11. (A)	**12.** (C)	**13.** (A)	**14.** (A)	**15.** (C)	**16.** (C)	**17.** (D)	**18.** (C)	**19.** (C)	**20.** (A)
21. (B)	**22.** (B)	**23.** (A)	**24.** (C)	**25.** (A)	**26.** (B)	**27.** (B)	**28.** (B)	**29.** (B)	**30.** (D)
31. (D)	**32.** (B)	**33.** (D)	**34.** (B)	**35.** (B)	**36.** (C)	**37.** (B)	**38.** (A)	**39.** (B)	**40.** (A)
41. (B)	**42.** (B)	**43.** (B)	**44.** (C)	**45.** (D)	**46.** (B)	**47.** (C)	**48.** (C)	**49.** (B)	**50.** (C)

7	जुलाई 2016	NTA UGC–NET/JRF संस्कृतम्	प्रश्नपत्रम् III

1. ऋग्वेदीय-नासदीयसूक्तस्य (10.129) ऋषिरस्ति-
(A) प्रजापतिः परमेष्ठी (B) सुकीर्तिः काक्षीवतः
(C) यज्ञः प्राजापत्यः (D) कुल्मल बर्हिषः

व्याख्या-

सूक्त	ऋषि	देवता	छन्द
1. अग्निसूक्त (1.1)	विश्वामित्र	अग्नि	गायत्री
2. वरुणसूक्त (1.25)	शुनःशेप	वरुण	गायत्री
3. सवितृसूक्त (1.35)	हिरण्यस्तूप	सविता	1 और 9 में जगती शेष में त्रिष्टुप्
4. सूर्यसूक्त (1.115)	कुत्स	सूर्य	त्रिष्टुप्
5. विष्णुसूक्त (1.154)	दीर्घतमा	विष्णु	त्रिष्टुप्
6. इन्द्रसूक्त (2.12)	गृत्समद	इन्द्र	त्रिष्टुप्
7. उषस् सूक्त (3.61)	विश्वामित्र	उषस्	त्रिष्टुप्
8. अक्ष सूक्त (10.34)	कवषऐलूष	अक्षकृषि प्रशंसा	7वें मन्त्र में जगती शेष में त्रिष्टुप्
9. पुरुष सूक्त (10.90)	नारायण	पुरुष	अन्तिम में त्रिष्टुप् शेष में अनुष्टुप्
10. हिरण्यगर्भ सूक्त (10.121)	हिरण्यगर्भ	क संज्ञक प्रजापति	त्रिष्टुप्
11. नासदीय सूक्त (10.129)	परमेष्ठी प्रजापति	परमात्मा	त्रिष्टुप्
12. वाक् सूक्त (10.125)	वाक्	परमात्मा	दूसरें मन्त्र में जगती शेष त्रिष्टुप्

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त के ऋषि परमेष्ठी प्रजापति हैं। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह - हरिदत्त शास्त्री, पेज 430

2. अथर्ववेदस्य पृथिवीसूक्ते (12.1) कति मन्त्राः सन्ति ?
(A) 23 (B) 33
(C) 53 (D) 63

व्याख्या-

वेद	सूक्त	ऋषि	देवता	मन्त्रसंख्या
अथर्ववेद	पृथिवी सूक्त (12.1)	अथर्वा	भूमि	63
यजुर्वेद	शिवसंकल्प सूक्त	याज्ञवल्क्य	मनस्	06
यजुर्वेद	प्रजापति सूक्त	प्रजापति	परमेश्वर	05
अथर्ववेद	राष्ट्राभिवर्धन (1.29)	वशिष्ठ	ब्रह्मणस्पति/ अभीवर्तमणि	06
अथर्ववेद	कालसूक्त (10.53)	भृगु	काल	10
ऋग्वेद	अग्निसूक्त (1.1)	मधुच्छन्दा	अग्नि	09
	इन्द्रसूक्त (2.12)	गृत्समद	इन्द्र	15
	उषस् सूक्त (3.61)	विश्वामित्र	उषस्	7
	अक्षसूक्त (10.34)	कवषऐलूष	अक्ष	14

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि पृथिवीसूक्त में कुल 63 मन्त्र हैं। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- अथर्ववेद (12.1) - वेदान्ततीर्थ, पेज 101

3. सृष्ट्युत्पत्तिविषयकं सूक्तमस्ति ऋग्वेदे-
(A) पुरुषसूक्तम् (10.90) (B) अग्निसूक्तम् (1.1)
(C) इन्द्रसूक्तम् (2.12) (D) वाक्सूक्तम् (10.125)

व्याख्या-

सृष्टि उत्पत्ति विषयक दार्शनिक सूक्त-

पुरुषसूक्त (ऋ. 10.90)- यह सूक्त चारों वेदों में आया है। इसमें पुरुष (परमात्मा) के विराट् रूप का वर्णन किया गया है और उसी से समस्त विश्व की सृष्टि का वर्णन है। पुरुष को ही सृष्टि का सर्वस्व, वर्तमान, भूत और भविष्य बताया गया है।

नासदीयसूक्त (ऋ. 10.129)- यह सूक्त वैदिक ऋषियों की प्रतिभा, ज्ञान और अलौकिक दार्शनिक चिन्तन का परिचायक है। इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस समय न असत् था और न सत्, न रात्रि थी और न दिन। सृष्टि का सूचक कोई चिह्न नहीं था।

इस सूक्त में प्रतिभा की शक्ति से अद्वैत तत्त्व की शाश्वत स्थिति की अनुभूति की गई है।

हिरण्यगर्भसूक्त (ऋ. 10.121)- इस सूक्त में उदात्त दार्शनिक भावों की अभिव्यक्ति करते हुए क अर्थात् प्रजापति का महत्त्व वर्णित है। 9 मन्त्रों में 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' अर्थात् ऐसे प्रजापति देव को हम अपनी स्तुति अर्पित करते हैं, यह कहा गया है। वह प्रजापति सृष्टि के प्रारम्भ में हिरण्यगर्भ के रूप में प्रकट हुआ। वही सृष्टि का नियामक है।

अन्य सूक्त -

अस्यवामीय सूक्त (ऋ. 1.164)- यह ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का दीर्घतमा ऋषि द्वारा दृष्ट अतिमहत्त्वपूर्ण सूक्त है इसमें 52 मन्त्रों में दर्शन, अध्यात्म, मनोविज्ञान, भाषाविज्ञान ज्योतिष और भौतिक विज्ञान से सम्बद्ध अनेक तथ्यों का वर्णन है। इस सूक्त में ही एकेश्वरवाद का प्रतिपादक मन्त्र 'एकं सद् विप्रा॰' आया है।

श्रद्धासूक्त (ऋ. 10.151)- इस सूक्त में पाँच ही मन्त्र हैं। यह श्रद्धा ही जीवन को पवित्र बनाती है और महान् लक्ष्यों को प्राप्त कराती है। श्रद्धा से ही ब्रह्मप्राप्ति सम्भव है।

वाक्सूक्त (ऋ. 10.125)- ऋग्वेद के अतिमहत्त्वपूर्ण सूक्तों में वाक्सूक्त है। इस सूक्त के आठ मन्त्रों में वाक्तत्त्व, शब्दब्रह्म या वाग्देवी का ब्रह्म के रूप में वर्णन किया गया है।

संज्ञानसूक्त (ऋ. 10.191)- इस सूक्त के चार मन्त्रों में सामाजिक, सौहार्द, सामञ्जस्य, सह-अस्तित्व, ऐकमत्य और संगठन का उपदेश दिया गया है।

दानस्तुतिसूक्त (ऋ. 10.107 व 117)- ऋग्वेद के इन सूक्तों में दान की महिमा का गुणगान है। वैदिक संस्कृति में त्याग और दान इन दो गुणों को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। वह मित्र नहीं जो मित्र को धन-दान न दे। ''केवलाघो भवति केवलादी'' अकेला खाने वाला अकेला ही पापी होता है।

अक्षसूक्त (ऋ. 10.34)- इस सूक्त के चौदह मन्त्रों में अक्ष (द्यूत,जुआ) की कड़े शब्दों में निन्दा की गई है। यह सामाजिक कुरीति है। शिक्षा दी गयी है कि जुआ न खेलो, कृषि करो, कृषि की आय से ही सन्तुष्ट रहो।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धित सूक्त पुरुषसूक्त है। **अत: विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह - हरिदत्त शास्त्री, पेज 392-404

4. 'शुन:शेपम्' इत्याख्यानं कस्मिन् ग्रन्थे प्राप्यते ?

(A) कौषीतकिब्राह्मणग्रन्थे (B) ऐतरेयब्राह्मणग्रन्थे
(C) सामविधानब्राह्मणग्रन्थे (D) ऐतरेयारण्यकग्रन्थे

व्याख्या- वेदों के अनुसार ब्राह्मणग्रन्थों के नाम-

ऋग्वेदीय ब्राह्मण – 1. ऐतरेय ब्राह्मण 2. शांखायन ब्राह्मण (कौषीतकि ब्राह्मण)

ऐतरेय ब्राह्मण- ऐतरेय ब्राह्मण का आख्यान शुनःशेप आख्यान है जिसे 'हरिश्चन्द्र-उपाख्यान' भी कहते हैं। इसका चरैवेति गान विश्व-विश्रुत है। शुनःशेप ऋषि ऋग्वेद प्रथम मण्डल के सात सूक्तों के द्रष्टा हैं।

कौषीतकि ब्राह्मण- यह ऋग्वेद का द्वितीय ब्राह्मण है। इसके रचयिता शांखायन ऋषि माने जाते हैं। शांखायन आरण्यक में इनकी वंशपरम्परा का उल्लेख मिलता है। तदनुसार उद्दालक आरुणि से कहोल कौषीतकि को उनसे गुण शांखायन को और उनसे शांखायन आरण्यक के लेखक को यह विद्या परम्परा से प्राप्त हुई शांखायन ने अपने गुरु के नाम को भी अमर करने हेतु इसका नाम 'कौषीतकि ब्राह्मण' रखा।

शतपथ ब्राह्मण- यह शुक्लयजुर्वेदीय ब्राह्मण है। इसके रचयिता वाजसनि के पुत्र याज्ञवल्क्य माने जाते हैं। वाजसनि के पुत्र होने से इन्हें 'वाजसनेय' कहा जाता है। सूर्य की कृपा से प्राप्त शुक्लयजुर्वेद की व्याख्या वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने की। माध्यन्दिन (शुक्लयजुर्वेदीय) शतपथ ब्राह्मण में 14 काण्ड, 100 अध्याय, 438 ब्राह्मण और 7624 कण्डिकाएँ हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ 14 भागों में विभक्त है।

सामविधान ब्राह्मण- यह सामवेदीय ब्राह्मण है। इसमें जादू-टोने से सम्बद्ध सामग्री बहुत है। सामविधान ब्राह्मण में तीन प्रपाठक और पच्चीस अनुवाक हैं।

गोपथ ब्राह्मण- यह अथर्ववेदीय एकमात्र ब्राह्मण है। पहले इसे शौनकीय शाखा से समझा जाता था, क्योंकि इसमें उस शाखा के कुछ मन्त्रों के प्रतीक हैं। पैप्पलाद शाखा के अथर्ववेद का प्रथम मन्त्र 'शं नो देवीरभिष्टय' है। इसके रचयिता गोपथ ऋषि हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'शुनःशेप' आख्यान ऐतरेय ब्राह्मण में प्राप्त है। **अत: विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 120-121

5. महर्षिणा दयानन्देन कस्य वेदस्य भाष्यं कृतमस्ति ?

(A) पैप्पलादसंहितायाः (B) शौनकसंहितायाः
(C) काण्वसंहितायाः (D) वाजसनेयिमाध्यन्दिनसंहितायाः

व्याख्या-

स्वामी दयानन्द सरस्वती- आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती आधुनिक युग में वेदों के पुनरुद्धारक माने जाते हैं। उन्होंने शुक्लयजुर्वेद सम्पूर्ण की संस्कृत, हिन्दी में व्याख्या की है।

श्री सातवलेकर- वेदमूर्ति पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर आधुनिक युग के सायण हैं। उन्होंने चारों वेदों, तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक, दैवत आदि के विशुद्ध संस्करण निकाले हैं। चारों वेदों का हिन्दी में 'सुबोध-भाष्य' प्रकाशित किया है। ये स्वामी दयानन्द के समर्थक हैं।

ऋग्वेदीय भाष्यकार-

स्कन्दस्वामी- ऋग्वेद का सबसे प्राचीन भाष्य स्कन्दस्वामी का उपलब्ध है। ऋग्वेद के भाष्य में वेंकटमाधव ने लिखा है कि स्कन्दस्वामी, नारायण, उद्गीथ आचार्यों ने मिलकर ऋग्वेद का भाष्य किया था।

यजुर्वेदीय भाष्यकार-

उव्वट या उवट- यजुर्वेद भाष्य के अन्त में इन्होंने अपना परिचय दिया है। ये आनन्दपुर निवासी वज्रट के पुत्र थे। राजा भोज के समय में इन्होंने वेदभाष्य किया। अतः इनका समय 11वीं शती ई. है। यजुर्वेदभाष्य के अतिरिक्त ये ग्रन्थ लिखे हैं-

1. ऋक्प्रातिशाख्य की टीका
2. यजुःप्रातिशाख्य की टीका
3. ऋक्सर्वानुक्रमणी पर भाष्य
4. ईशोपनिषद् पर भाष्य

हलायुध- सायण से पूर्ववर्ती हलायुध ने काण्वसंहिता पर अपना भाष्य लिखा है। इस भाष्य का नाम 'ब्राह्मणसर्वस्व' है। उन्होंने कुछ अन्य ग्रन्थ भी लिखे हैं- मीमांसासर्वस्व, वैष्णवसर्वस्व, शैवसर्वस्व, पण्डितसर्वस्व आदि।

सायण- सायण ने माध्यन्दिन संहिता पर भाष्य न लिखकर काण्व संहिता पर अपना भाष्य लिखा है।

सामवेदीय भाष्यकार-

माधव- (600 ई. के लगभग) ये सामवेद के प्रथम भाष्यकार हैं। इन्होंने सम्पूर्ण सामवेद का भाष्य लिखा है। जिसका नाम 'विवरण' है।

गुणविष्णु- सामवेद की कौथुम शाखा पर छान्दोग्य मन्त्र भाष्य लिखा है।

अथर्ववेदीय भाष्यकार-

सायण- अथर्ववेद पर केवल सायण का ही भाष्य प्राप्त होता है। सायण ने पूरे अथर्ववेद पर भाष्य लिखा था, परन्तु प्रकाशित ग्रन्थों में केवल 12 काण्डों (1 से 4, 6 से 8, 11, 17 से 20 काण्ड) का ही भाष्य मिलता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द ने वाजसनेयि माध्यन्दिनसंहिता पर भाष्य किया था। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 18

6. 'शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्ति-हिरण्यमश्वान्' इति कथनमस्ति-

(A) वाजश्रवसः (B) नचिकेतसः
(C) यमराजस्य (D) याज्ञवल्क्यस्य

व्याख्या- कठोपनिषद् उपनिषदों में बहुत प्रसिद्ध है। यह कृष्णयुजर्वेद की कठशाखा के अन्तर्गत है। इसमें नचिकेता और यम के संवाद रूप में परमात्मा के रहस्यमय तत्त्व का बड़ा ही उपयोगी और विशद वर्णन है। इसमें दो अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में तीन-तीन वल्लियाँ हैं।

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व
बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व
स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि॥ (1. 1.23)

यम नचिकेता से कहते हैं- नचिकेता! तुम बड़े भोले हो, क्या करोगे इस वर को लेकर? तुम ग्रहण करो इन सुख की विशाल सामग्रियों को। सौ-सौ वर्ष जीने वाले पुत्र पौत्रादि बड़े परिवार को माँग लो। गौ आदि बहुत से उपयोगी पशु, हाथी, सुवर्ण, घोड़े और विशाल भूमण्डल के महान् साम्राज्य को माँग लो और इन सबको भोगने के लिये जितने वर्षों तक जीने की इच्छा हो, उतने ही वर्षों तक जीते रहो।

नचिकेता का कथन- तीसरा वर इस मन्त्र में माँगते हैं-

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः। (1. 1.20)

मृत मनुष्य के विषय में जो यह सन्देह है, कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तित्व रहता है। अन्य लोग कहते हैं कि 'नहीं रहता' (तो) आप से शिक्षित हुआ मैं इसको जानूँ, वरों में यह तीसरा वर है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'शतायुषः पुत्रपौत्रान् .....' इस पंक्ति को यम ने कहा है। **अतः विकल्प 'C'सही है।**

स्रोत- ईशादि नौ उपनिषद् (कठोप. 1.1.23) शाङ्करभाष्य-गीताप्रेस, पेज 220

7. अधोऽङ्कितेषु एकमसत्यमस्ति-

(A) विद्यां च अविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह इति ईशोपनिषदि वर्तते
(B) ईशोपनिषद् तैत्तिरीयशाखायां वर्तते
(C) याज्ञवल्क्यमैत्रेयी-संवादो बृहदारण्यकोपनिषदि वर्तते
(D) नचिकेतसः वर्णनं कठोपनिषदि वर्तते

व्याख्या-ईशावास्योपनिषद्- यह शुक्लयजुर्वेदीय

काण्वशाखीय संहिता का चालीसवाँ अध्याय है। मन्त्र-भाग का अंश होने से इसका विशेष महत्त्व है। इसी को सबसे पहला उपनिषद् माना जाता है। शुक्लयजुर्वेद के प्रथम उन्तालीस अध्यायों में कर्मकाण्ड का निरूपण हुआ है। यह उस काण्ड का अन्तिम अध्याय है और इसमें भगवत्तत्त्वरूप ज्ञानकाण्ड का निरूपण किया गया है। इसके पहले मन्त्र में 'ईशावास्यम्' वाक्य आने से इसका नाम 'ईशावास्य' माना गया है।

प्रमुख मन्त्र-

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्। (ईशा. मन्त्र-01)

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। (ईशा. मन्त्र-02)

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥ (ईशा. मन्त्र-11)

योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि। (ईशा. मन्त्र-16)

बृहदारण्यकोपनिषद्- शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम छः अध्यायों को बृहदारण्यक कहते हैं। इसमें आरण्यक और उपनिषद् दोनों ही मिश्रित हैं। इसलिए इसका नाम 'बृहदारण्यकोपनिषद्' पड़ा। यह विशालकाय एवं प्राचीनतम उपनिषद् है। इस उपनिषद् में तीन भाग हैं और प्रत्येक भाग में दो-दो अध्याय हैं। इस प्रकार कुल छः अध्याय हैं। इनमें प्रथम भाग को मधुकाण्ड, द्वितीय भाग को याज्ञवल्क्यकाण्ड और तृतीय भाग को खिलकाण्ड कहते हैं।

* इसमें याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद का प्रमुख वर्णन है।

कठोपनिषद्-

कृष्णयजुर्वेद की कठ शाखा के अन्तर्गत आता है। कठोपनिषद् उपनिषदों में बहुत प्रसिद्ध है। इसमें नचिकेता और यम के संवाद रूप परमात्मा के रहस्यमय तत्त्व का बड़ा ही उपयोगी और विशद वर्णन है। इसमें दो अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में तीन-तीन वल्लियाँ हैं।

प्रमुख मन्त्र-

* अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत्। (कठ. 1.1.3)
* सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः।। (कठ. 1.1.6)
* नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु। (कठ 1.1.9)
* शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो (कठ 1.1.10)
* स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति (कठ 1.1.12)
* येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। (कठ. 1.1.20)
* शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्। (1.1.23)
* न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः। (कठ. 1.1.27)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'ईशावास्योपनिषद्' तैत्तिरीय शाखा का नहीं है अपितु शुक्लयजुर्वेद की काण्वशाखा से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- (A) ईशादि नौ उपनिषद् (ईशोपनिषद्-11)
(C) वैदिक साहित्य का इति.-पारसनाथ द्विवेदी, पेज 154,156

8. अनयोः कथनयोर्विषये उचितं युग्मं चिनुत।
क. 'शीक्षावल्ली' कठोपनिषदि वर्तते
ख. शीक्षावल्याम् गुरु सम्बन्धितो व्यवहारो निरूपितः
(A) (क) असत्यम् (ख) सत्यम्
(B) (क) सत्यम् (ख) असत्यम्
(C) उभे सत्ये स्तः
(D) उभे असत्ये स्तः

व्याख्या- तैत्तिरीयोपनिषद्- यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा के अन्तर्गत तैत्तिरीय आरण्यक का अङ्ग है। तैत्तिरीय आरण्यक में दस अध्याय हैं। उनमें से सातवें, आठवें और नवें अध्यायों को ही तैत्तिरीय उपनिषद् कहा जाता है।

यह शीक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली, भृगुवल्ली में विभाजित है। शीक्षावल्ली के अनुवाक 11 में गुरु शिष्य को उपदेश देते हुए कहते हैं कि- **स्वाध्यायान्मा प्रमदः।**

गृहस्थ को अपना जीवन कैसा बनाना चाहिये, यह बात समझाने के लिए इस अनुवाक का आरम्भ किया गया है। आचार्य शिष्य को भलीभाँति अध्ययन कराकर समावर्तन संस्कार के समय गृहस्थाश्रम में प्रवेश हेतु उपदेश देते हैं। पुत्र! तुम सदा सत्य भाषण करना, आपत्ति पड़ने पर भी झूठ का कदापि आश्रय न लेना।

कठोपनिषद्- कठोपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की कठ शाखा से सम्बद्ध है। इसमें दो अध्याय हैं और दोनों अध्याय तीन-तीन वल्लियों में विभाजित है। इसमें यम और नचिकेता का संवाद है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शिक्षावल्ली तैत्तिरीयोपनिषद् से सम्बन्धित है न कि कठोपनिषद् से। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य का इतिहास-पारसनाथ द्विवेदी, पेज 15

9. 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' इत्युद्धरणं कुत्र वर्तते ?
(A) केनोपनिषदि (B) कठोपनिषदि
(C) तैत्तिरीयोपनिषदि (D) बृहदारण्यकोपनिषदि

व्याख्या- कठोपनिषद्- * यह कृष्णयजुर्वेदीय कठ शाखा के अन्तर्गत है।

* यह मन्त्र कठोपनिषद् के प्रथम अध्याय की तृतीय वल्ली में

परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करके तथा उसकी प्राप्ति का महत्त्व और साधन बतलाकर मनुष्यों को सावधान करता हुआ कहता है-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥ (कठ. 1.3.14)

हे मनुष्यों ! तुम जन्म जन्मान्तर से अज्ञाननिद्रा में सो रहे हो अब तुम्हें परमात्मा की दया से यह दुर्लभ मनुष्य शरीर मिला है। इसे पाकर अब एक क्षण भी प्रमाद में मत खोओ। शीघ्र सावधान हो जाओ। श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जाकर उनके उपदेश द्वारा अपने कल्याण का मार्ग और परमात्मा का रहस्य समझ लो।

अन्य प्रमुख मन्त्र-

* **ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके**
सर्वान् कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व। (कठ 1.1.25)

यम नचिकेता से कहते हैं- जो जो भोग मृत्युलोक में दुर्लभ हैं, उन सबको तुम अपने इच्छानुसार माँग लो।

* **श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः। श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥** (कठ 1.2.2)

यम का नचिकेता से कथन- अधिकांश मनुष्य तो पुनर्जन्म में विश्वास न होने के कारण इस विषय में विचार ही नहीं करते, वे भोगों में आसक्त होकर अपने देवदुर्लभ मनुष्य जीवन को पशुवत् भोगों के भोगने में ही समाप्त कर देते हैं। किन्तु जिनका पुनर्जन्म में और परलोक में विश्वास है, उन विचारशील मनुष्यों के सामने जब ये श्रेय और प्रेय दोनों आते हैं, तब वे इन दोनों के गुण-दोषों पर विचार कर दोनों को पृथक्-पृथक् समझते हैं।

केनोपनिषद्-

* यह उपनिषद् सामवेद के 'तलवकार ब्राह्मण' के अन्तर्गत आता है।
* तलवकार को 'जैमिनीय-उपनिषद्' भी कहते हैं।
* केनोपनिषद् को तलवकार 'उपनिषद्' और ब्राह्मणोपनिषद् भी कहते हैं।

प्रमुख मन्त्र-

* **तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।** (केनो. 1.1.4)

उसको ही तू ब्रह्म जान, वाणी के द्वारा बताने में आने वाले जिस तत्त्व की लोग उपासना करते हैं, यह ब्रह्म नहीं है।

* **आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्।** (केनो. 2.2.4)

मन्त्रविद्या से अमृतरूप परब्रह्म की प्राप्ति होती है, यह इसीलिये कहा गया है कि जिससे मनुष्य में परब्रह्म पुरुषोत्तम के यथार्थ स्वरूप को जानने के लिये रुचि और उत्साह की वृद्धि हो।

* **भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।** (2.2.5)

बुद्धिमान् पुरुष प्राणी-प्राणी में परब्रह्म परमेश्वर को समझकर इस लोक से प्रयाण करके अमर हो जाते हैं।

तैत्तिरीयोपनिषद्-

यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा के अन्तर्गत तैत्तिरीय-आरण्यक का अङ्ग है।

प्रमुख मन्त्र-

* **स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ।** (तैत्तिरीयोपनिषद् 11 अनुवाक)

वेदों को पढ़ने और पढ़ाने में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

* **मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथि देवो भव।**

तुम माता में देवबुद्धि करने वाले बनो, पिता को देवरूप समझने वाले होओ, आचार्य को देवरूप समझने वाले बनो। अतिथि को देवतुल्य समझने वाले होओ।

* **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।**

ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है।

* **अन्नाद्भूतानि जायन्ते जातान्यन्नेन वर्धन्ते।**

अन्न से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर अन्न से ही बढ़ते हैं।

बृहदारण्यकोपनिषद् के प्रमुख मन्त्र-

* **असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमयेति।** (बृहदा. 1.3.28)

मुझे असत् से सत् की ओर ले जाओ मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाओ और मृत्यु से अमृत की ओर ले जाओ।

* **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।** (बृहदा. 2.4.5)

हे मैत्रेयि ! इस आत्मा के ही दर्शन, श्रवण, मनन एवं विज्ञान से सबका ज्ञान हो जाता है।

* **न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु।** (बृहदा. 2.4.5)

याज्ञवल्क्य मैत्रेयी से कहते हैं- स्त्री के प्रयोजन के लिए स्त्री प्रिया नहीं होती, अपने ही प्रयोजन के लिये स्त्री प्रिया होती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि **'उत्तिष्ठत जाग्रत-'** यह मन्त्र कठोपनिषद् से उद्धृत है।

अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत- कठोपनिषद् - (1.3.14)

10. अधोलिखितानां केन सह कस्य सम्बन्धः? इति समीचीनां तालिकां चिनुत।

(क) मा गृधः कस्यस्विद्धनम् (i) केनोपनिषद्

(ख) उमाया उपदेशः (ii) बृहदारण्यकोपनिषद्

(ग) अथ शीक्षां व्याख्यास्यामः (iii) ईशोपनिषद्

(घ) आत्मा वा अरे द्रष्टव्यो (iv) तैत्तिरीयोपनिषद् मन्तव्यः

	क	ख	ग	घ
(A)	ii	iv	iii	i
(B)	i	iii	iv	ii
(C)	iv	ii	iii	i
(D)	iii	i	iv	ii

व्याख्या-

*** मा गृधः कस्यस्विद्धनम् । (ईशावास्य-मन्त्र 01)**

आसक्त मत होओ धन, भोग्य-पदार्थ किसका है अर्थात् किसी का भी नहीं है।

*** बहुशोभमानामुमां हैमवतीं तां होवाच किमेतद् यक्षमिति।**

यह मन्त्र केनोपनिषद् के खण्ड तीन से उद्धृत है।

इसमें अत्यन्त शोभामयी हिमाचलकुमारी उमादेवी प्रकट हो गयी हैं। इन्द्र पर कृपा करके करुणामय परब्रह्म पुरुषोत्तम ने ही उमारूपा साक्षात् ब्रह्मविद्या को प्रकट किया था।

*** अथ शीक्षां व्याख्यास्यामः। (तैत्तिरीयो. 1.2)**

तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुवाक दो में शिक्षा का वर्णन किया गया है। 'अब हम शिक्षा का वर्णन करेंगे।'

वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, संतान यह शिक्षा के भेद हैं।

*** आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः मन्तव्यः। (बृहदा. 2.4.5)**

याज्ञवल्क्य मैत्रेयी से कहते हैं- हे मैत्रेयि! इस आत्मा के ही दर्शन, श्रवण, मनन एवं विज्ञान से इस सबका ज्ञान हो जाता है।

मन्त्र	**उपनिषद्**
मा गृधः कस्यस्विद्धनम्	ईशावास्योपनिषद्
उमायाः उपदेशः	केनोपनिषद्
अथ शीक्षां व्याख्यास्यामः	तैत्तिरीयोपनिषद्
आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः	बृहदारण्यकोपनिषद्

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मिलान करने पर **विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति - कपिलदेव द्विवेदी, पेज A-174, B-175, C-179, D-171

11. षड्वेदाङ्गेषु किं न गण्यते ?

(A) निरुक्तम् (B) छन्दस्

(C) मीमांसा (D) कल्पः

व्याख्या- वेदाङ्ग-

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः॥

षड्वेदाङ्ग

1. शिक्षा 2. व्याकरण 3. छन्द 4. निरुक्त 5. ज्योतिष 6. कल्प

वेद

1. ऋग्वेद 2. यजुर्वेद 3. सामवेद 4. अथर्ववेद

षड्दर्शन-

1. सांख्य 2. योग 3. न्याय 4. वैशेषिक 5. पूर्वमीमांसा 6. उत्तरमीमांसा

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि षड्वेदाङ्गों में मीमांसा की गणना नहीं होती। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य का इतिहास-पारसनाथ द्विवेदी, पेज–172

12. यास्कमते पदानां प्रकाराः कति भवन्ति ?

(A) चत्वारः (B) पञ्च

(C) द्वौ (D) षड्

व्याख्या- यास्क द्वारा रचित निरुक्त में पदों की संख्या चार बतायी गयी है-

*** चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्च तानीमानि भवन्ति ।**

1. नाम 2. आख्यात 3. उपसर्ग 4. निपात।

षड्भावविकार- षड्भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः-

जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते, विनश्यति

तास्त्रिविधाः ऋचः-

1. परोक्षकृताः 2. प्रत्यक्षकृताः 3. आध्यात्मिक्य

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि यास्कमत में पदों की संख्या चार है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- हिन्दी निरुक्त - कपिलदेव शास्त्री, पेज 08

13. षड्भावविकारेषु कतमो नास्ति ?

(A) जायते (B) नश्यति

(C) वर्धते (D) स्मरति

व्याख्या- यास्क कृत निरुक्त में सम्पूर्ण चौदह अध्यायों

का संकलन है। जिसके प्रथम अध्याय में षड्भावविकारों की चर्चा की गई है-

षड्भावविकार- वार्ष्यायणि का मत है कि- छः प्रकार के भावविकार होते हैं। 1.जायते (उत्पन्न) 2.अस्ति (होना) 3.विपरिणमते (परिवर्तित होना) 4.वर्धते (बढ़ना) 5.अपक्षीयते (घटना) 6.विनश्यति (नष्ट होना)।

*** प्रथम भावविकार है-** 'जायते' अर्थात् उत्पन्न होना। बीज से अङ्कुर निकलता है तब यह कहा जाता है कि अंकुर पैदा हुआ यद्यपि पैदा होना के साथ-साथ होना रूप क्रिया या भावविकार भी है।

*** दूसरा भाव विकार है-** 'अस्ति' जिसका अर्थ है 'होना' अपनी सत्ता धारण करना। वैयाकरणों ने अस्ति का अर्थ किया है भावानुकूलो व्यापारः । अस्ति, भवति, विद्यते, वर्तते ये सभी धातुएँ सामान्य सत्ता अथवा 'भाव' को ही कहती हैं।

*** तीसरा भावविकार-** 'विपरिणमते' जिसका अभिप्राय है 'परिवर्तन'

*** चौथा भावविकार-** 'वर्धते' (वृद्धि) यह वृद्धि दो प्रकार की हो सकती है। पहली अपनी शरीर की वृद्धि तथा दूसरी अपने से सम्बद्ध या संयुक्त पदार्थों की वृद्धि।

*** पाँचवाँ भावविकार-** 'अपक्षीयते' (ह्रास) अथवा अपक्षय। यह भी दो प्रकार का बताया गया है- पहला शरीर का ह्रास तथा दूसरा अपने से युक्त पदार्थों का ह्रास।

*** छठा भाव विकार-** 'विनश्यति' (नष्ट होना) विनाश। जब ह्रास अपनी सीमा पर आ जाता है तब विनाश का प्रारम्भ हो जाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि षड्भावों में 'स्मरति' की गणना नहीं होती। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- हिन्दी निरुक्त - कपिलदेव शास्त्री, पेज 23

14. याज्ञवल्क्यशिक्षा केन वेदेन सम्बद्धा अस्ति ?

(A) ऋग्वेदेन (B) यजुर्वेदेन

(C) सामवेदेन (D) अथर्ववेदेन

व्याख्या- ऋग्वेदीय शिक्षा

1. पाणिनीय शिक्षा 2. स्वराङ्कुशा शिक्षा
3. षोडशश्लोकी शिक्षा 4. शैशिरीय शिक्षा
5. आपिशलि शिक्षा

सामवेदीय शिक्षा

1. गौतमी शिक्षा 2. लोमशी शिक्षा 3. नारदीय शिक्षा

यजुर्वेद-(शुक्लयजुर्वेदीय शिक्षा)

1. याज्ञवल्क्य शिक्षा 2. वाशिष्ठी शिक्षा
3. पाराशरी शिक्षा 4. कात्यायनी शिक्षा
5. माण्डव्य शिक्षा 6. अमोघानन्दिनी शिक्षा
7. लघु अमोघानन्दिनी शिक्षा 8. माध्यन्दिनी शिक्षा
9. वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा 10. केशवी शिक्षा
11. हस्तस्वर प्रक्रिया 12. अवसाननिर्णय शिक्षा (मल्लशर्मशिक्षा)
13. स्वरभक्ति लक्षणपरिशिष्ट शिक्षा 14. क्रमसन्धान शिक्षा
15. मनःस्वार शिक्षा 16. यजुर्विधान शिक्षा
17. स्वराष्टक शिक्षा 18. क्रमकारिका शिक्षा

कृष्णयजुर्वेदीय शिक्षा-

1. भारद्वाज शिक्षा 2. व्यास शिक्षा (तैत्तिरीय संहिता)
3. शम्भु शिक्षा 4. कौहलीय शिक्षा
5. सर्वसम्मत शिक्षा 6. आरण्य शिक्षा
7. सिद्धान्त शिक्षा

अथर्ववेदीय शिक्षा-

1. माण्डूकी शिक्षा

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्य शिक्षा यजुर्वेद से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य का इति. - गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर, पेज 253

15. 'नैगमकाण्डम्' कस्मिन् ग्रन्थे वर्तते-

(A) आपस्तम्बगृह्यसूत्रे (B) निरुक्ते

(C) गौतमधर्मसूत्रे (D) बौधायनधर्मसूत्रे

व्याख्या-

* यास्ककृत निरुक्त 'निघण्टु' ग्रन्थ की व्याख्या है।
* निघण्टु ग्रन्थ पाँच अध्यायों और तीन काण्डों में विभक्त है।
* प्रथम तीन अध्याय 'नैघण्टुक काण्ड' कहलाते हैं।
* चौथा अध्याय 'ऐकपदिक' या 'नैगम काण्ड' कहलाता है।
* पाँचवा अध्याय 'दैवत काण्ड' है।

दैवतकाण्ड- निघण्टु के शब्दों को तीन भागों में विभक्त किया गया है। एक तो वे शब्द जो वेद में प्रधान रूप से स्तुत देवताओं के नाम हैं। इन शब्दों को 'दैवत' कहते हैं। निघण्टु का पाँचवाँ अध्याय देवतानामों का संग्रह है, इसीलिए उसे 'दैवतकाण्ड' कहते हैं। इसमें अग्नि से लेकर देवपत्नी शब्द पर्यन्त 151 शब्द हैं।

ऐकपदिक या नैगमकाण्ड- दूसरे वे शब्द हैं जो अनेकार्थक हैं अथवा अनवगत संस्कार हैं अर्थात् जिनमें यह स्पष्ट नहीं है कि यह शब्द किस धातु से किस प्रत्यय से बना है- उसका नाम 'ऐकपदिक या नैगम' है। अर्थ- निश्चयात्मक होने के कारण इन्हें नैगम-निगमों का समूह भी कहते हैं। इसीलिये चौथे अध्याय का नाम ऐकपदिक या नैगमकाण्ड है।

निघण्टु- तीसरे प्रकार के शब्द हैं- पर्यायशब्द अथवा एकार्थक अनेक शब्द और एकार्थक अनेक धातु, इनका नाम निघण्टु ही रहने दिया। यद्यपि निघण्टु नैगम और दैवतकाण्ड के शब्दों में उपयुक्त रीति से भेद दिखाकर उन्हें भिन्न कर दिया और उनकी संज्ञा भी पृथक् कर दी। प्राचीनकाल में शब्दसंग्रह रूप कोशग्रन्थों को 'निघण्टु' कहा करते थे।

'अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम्'। इस लक्षण से निघण्टु को भी निरुक्त मान लिया गया।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'नैगम काण्ड' निरुक्त के अन्तर्गत आता है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- हिन्दी निरुक्त - कपिलदेव शास्त्री, भू. पेज 11

16. 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे' इति भाष्यवार्तिके नित्यपर्यायवाची 'सिद्ध' शब्द एवोपात्तो, न त्वसन्दिग्धो 'नित्य' शब्दस्तत्र को हेतुः ?

(A) अवधारणार्थे 'सिद्ध' शब्दप्रयोगात्।
(B) पूर्वपदलोप-परकस्य 'सिद्ध' शब्दस्य प्रयोगात्।
(C) व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तेः 'सिद्ध' शब्दस्य नित्यार्थकत्वात्
(D) नित्यपर्यायवाचिनं सिद्धशब्दस्य मङ्गलार्थत्वादपि।

व्याख्या- वैयाकरण और मीमांसक शब्द की नित्यता का और नैयायिक अनित्यता का समर्थन करते हैं। आचार्य पाणिनि के अनुसार तो केवल शब्द ही नहीं अपितु, शब्द अर्थ और सम्बन्ध- ये तीनों ही नित्य हैं। 'स्फोट' रूप शब्द तो नित्य हैं ही। जब शब्द और अर्थ- ये दोनों नित्य हैं तो इनका सम्बन्ध स्वतः नित्य है। इसी तथ्य को कात्यायन ने अपने सबसे पहले वार्तिक में लिखा है- सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे

शब्द भी सिद्ध है, अर्थ भी सिद्ध है और इन दोनों का सम्बन्ध भी सिद्ध=नित्य है।

* इस वार्तिक में 'सिद्ध' शब्द के ग्रहण से क्या लाभ है, क्यों नहीं 'सिद्ध' शब्द के स्थान पर 'नित्य' शब्द का ही ग्रहण कर लिया जाय- **'किं न महता कण्ठेन नित्यशब्द एवोपात्तः .....'** इसके उत्तर में भाष्यकार कहते हैं ''मङ्गलार्थम्'' मङ्गल के लिए 'सिद्ध' शब्द का प्रयोग है।

* **''माङ्गलिक आचार्यो महतः शास्त्रौघस्य मङ्गलार्थं सिद्धशब्दमादितः प्रयुङ्क्ते ....''**

माङ्गलिक आचार्य कात्यायन विशाल वार्तिकसमुदाय के मङ्गल (साफल्य) के लिए आदि में 'सिद्ध' शब्द का प्रयोग करते हैं। क्योंकि जिनके आदि में मङ्गल है ऐसे शास्त्रों का विस्तार एवं प्रचार प्रसार होता है, ऐसे शास्त्र के अध्येता वीर पुरुष और दीर्घायु पुरुष होते हैं, अध्येता सिद्धार्थ होते हैं । इसीकारण कात्यायन ने प्रथम वार्तिक सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे में 'सिद्धे' शब्द का प्रयोग किया है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे' कात्यायन के इस प्रथम वार्तिक में 'सिद्धे' शब्द नित्य अर्थ का पर्यायवाची होता हुआ मङ्गलार्थक भी है।

अतः विकल्प 'D' सही है।

स्रोत- व्याकरण महाभाष्य (प्रथम आह्निक)-चारुदेव शास्त्री, पेज 25

17. वृत्तिसमवायार्थो वर्णानामुपदेशः इत्यत्र 'समवाय' शब्दस्य कोऽर्थः ?

(A) नित्यसम्बन्धः
(B) समूहः
(C) वर्णानामानुपूर्व्येण सन्निवेशः
(D) वृत्तिनियामकसम्बन्धः

व्याख्या- महर्षि पाणिनि द्वारा 'अइउण्' आदि चतुर्दश सूत्रों में किये गए वर्णोपदेश का क्या प्रयोजन है- ''अत्र किमर्थो वर्णानामुपदेशः ? '' ऐसा महाभाष्य पस्पशाह्निक में प्रश्न किया गया। इस प्रश्न के उत्तर में महर्षि पतञ्जलि महाभाष्य में समाधानवार्तिक को उद्धृत करते हैं कि- ''वृत्तिसमवायार्थ उपदेशः''

'वृत्तिसमवायार्थो वर्णानामुपदेशः कर्तव्यः'- (भाष्यम्)

अर्थात् वृत्तिसमवायार्थ वर्णों का उपदेश मानना चाहिए।

*** 'वृत्तिसमवायार्थ'- इसका क्या आशय है?**

(क) वृत्तये समवायः = वृत्तिसमवायः (वृत्ति के लिए समवाय)
(ख) वृत्त्यर्थो वा समवायः = वृत्तिसमवायः (जिसका फल वृत्ति है वह समवाय)
(ग) वृत्तिप्रयोजनो वा समवायः = वृत्तिसमवायः (जिसका प्रयोजन वृत्ति है, वह समवाय 'वृत्तिसमवाय' है)

*** वृत्ति- 'वृत्ति' शब्द का क्या अर्थ है-**

''शास्त्रप्रवृत्तिः'' अर्थात् शास्त्र (सूत्रों) की प्रवृत्ति = लागू होना वृत्ति है।

*** समवाय- 'समवाय' का अर्थ क्या है?**

'वर्णानामानुपूर्व्येण संनिवेशः'

अर्थात् वर्णों का आनुपूर्वी क्रम से सन्निवेश = उपस्थापन समवाय है।

*** उपदेश- 'उपदेश' का अर्थ क्या है?**

'उच्चारणम्' उपदेश का अर्थ है- उच्चारण।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'वृत्तिसमवायार्थो वर्णानामुपदेशः' इस वाक्य में 'समवाय' शब्द का अर्थ 'वर्णानामानुपूर्व्येण सन्निवेशः है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- व्याकरण-महाभाष्यम् (पस्पशाह्निक)- मधुसूदन मिश्र, पेज 69

18. अधोलिखितप्रयोगेषु 'इणः षीध्वंलुँङ्-लिटां धोऽङ्गात्' इति भ्वादिगणीय सूत्रस्योदाहरणं किमस्ति?

(A) एधध्वे (B) एधाञ्चकृढ्वे

(C) एधिष्यध्वे (D) एधध्वम्

व्याख्या- लघुसिद्धान्तकौमुदी के भ्वादिगण में धातुरूप सिद्धि- प्रक्रिया के अन्तर्गत 'एध्' धातु लिट् लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन के रूप 'एधाञ्चकृढ्वे' की सिद्धिप्रसंग में, आचार्य वरदराज इस सूत्र को उद्धृत करते हैं-

इणः षीध्वंलुँङ्लिँटां धोऽङ्गात् (8.3.78)

अर्थ- इणन्त अङ्ग से परे षीध्वम् (आशीर्लिङ्) शब्द के तथा लुँङ् और लिँट् के धकार को मूर्धन्य (ढकार) आदेश हो।

वृत्ति- इण्णन्ताद् अङ्गात् परेषां षीध्वंलुँङ्लिँटां धस्य ढः स्यात्। एधाञ्चकृढ्वे।

'एधाम् + चकृ + ध्वे' में इणन्त अङ्ग है चकृ इससे परे 'ध्वे' यह लिँट् विद्यमान है अतः इस सूत्र में इसके धकार के स्थान पर मूर्धन्य ढकार होकर अनुस्वार और परसवर्ण करने से 'एधाञ्चकृढ्वे' प्रयोग सिद्ध होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भ्वादिगणीय 'एध्' धातु इणः षीध्वं-सूत्र से षकार को ढकार आदेश करने पर 'एधाञ्चकृढ्वे' बना। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी- भैमीव्याख्या (खण्ड 2), पेज 214-15

19. एषु शुद्धो मत्वर्थीयप्रयोगः कः ?

(A) विद्युद्वान् (B) विद्युद्मान्

(C) विद्युत्वान् (D) विद्युत्मान्

व्याख्या- विद्युत् शब्द के तकारान्त होने के कारण **तसौ मत्वर्थे-** सूत्र से भसंज्ञा हो जाती है, फलतः पदसंज्ञा का बाध हो जाता है।

अतः पदत्वाभावात् झलां जशोऽन्ते सूत्र से तकार को जश्त्व नहीं होता।

विद्युत्वान्- (बिजली वाला) विद्युत् अस्य अस्ति विग्रह करके विद्युत्+सु- इस स्थिति में

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्- से मतुप् होने पर अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके विद्युत्+मत्-पद बना। यहाँ पर झय् है तकार। अतः **झयः** (8.2.10)- सूत्र से मतुप् के मकार को वकार आदेश होकर विद्युत्वत् शब्द बना है। स्वादिकार्य में विद्युत्वान् सिद्ध हो जाता है।

इसी प्रकार- गरुत्मान्, मरुत्वान् भी बनते हैं।

इसका रूप- विद्युत्वान् विद्युत्वन्तौ विद्युत्वन्तः धीमान् की तरह चलता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि विद्युत्वान् मत्वर्थीय प्रयोग है। जबकि विद्युद्वान् विद्युद्मान्, विद्युत्मान् यह अशुद्ध प्रयोग हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (भाग-3)- गोविन्दाचार्य, पेज-856

20. 'वास्तव्यः' इत्यत्र 'वस्' धातोः 'तव्यत्' प्रत्ययो भवति कस्मिन्नर्थे?

(A) कर्तरि (B) कर्मणि

(C) भावे (D) स्वार्थे

व्याख्या- वसतीति वास्तव्यः- निवास करता है, इस अर्थ में वस् निवासे धातु के कर्ता अर्थ में 'वसेस्तव्यत्कर्तरि णिच्च' वार्तिक से तव्यत् प्रत्यय होकर 'वस्+तव्य' बना। प्रत्यय को णिद्वद्भाव होने के कारण उसके परे रहते 'अत उपधायाः' से उपधाभूत अकार की वृद्धि आकार होकर वास्तव्य बना। इसके बाद प्रातिपदिकसंज्ञा होने से स्वादि कार्य होकर प्रथमा एकवचन में 'वास्तव्यः' सिद्ध हो जाता है।

वास्तव्यः वास्तव्यौ वास्तव्याः इस प्रकार से रूप बनते हैं।

'कर्तरि कृत्' (3.4.67)- कृत् प्रत्यय कर्ता अर्थ में होता है।

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः (3.4.70)- कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में ही होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'वास्तव्यः' में प्रत्यय 'कर्तरि' अर्थ में है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (भाग-6)-गोविन्दाचार्य, पेज-8

21. निम्नलिखितेषु शब्देषु अर्थसंकोचस्य उदाहरणं किमस्ति?

(A) सिंहः (B) वृकः

(C) कुशलः (D) मृगः

व्याख्या- संसार की सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। भाषा भी परिवर्तनशील है। जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार प्रत्येक भाषा के शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होता रहता है। यह अर्थ परिवर्तन तीन प्रकार का होता है-

1. अर्थविस्तार (Expansion of meaning)
2. अर्थसंकोच (Contraction of meaning)
3. अर्थादेश (Transforence of meaning)

अर्थविस्तार- किसी अर्थविशेष के क्षेत्र का पूर्व की अपेक्षा बाद में बढ़ जाना ही अर्थविस्तार है। जब पहले शब्द के अर्थ का क्षेत्र सीमित हो और बाद में उसकी सीमा का विस्तार हो जाय तो उसे अर्थविस्तार कहते हैं।

जैसे- 'प्रवीण' प्रवीण शब्द का अर्थ पहले 'प्रकृष्टो-वीणायाम्' अर्थात् वीणावादन में निपुण था, बाद में किसी भी कार्य में आगे रहने वाले को प्रवीण कहा जाने लगा।

अन्य उदाहरण- कुशल, गोष्ठ, गवेषणा, तैल आदि।
अर्थसंकोच- अर्थविस्तार का विपरीत ही अर्थसंकोच है। उनका विस्तृत अर्थ संकुचित या सीमित हो गया है। जैसे *गच्छतीति गौः चलने वाले को 'गो' (गाय) कहते हैं। मनुष्य भी चलता है, उसे गो (गाय) नहीं कह सकते।
* 'अश्नुते अध्वानम् इति अश्वः' सड़क पर चलने वाले को 'अश्व' (घोड़ा) कहते हैं। सभी सड़क पर चलने वाले को अश्व (घोड़ा) नहीं कह सकते।
मृग- पशु-मात्र के लिए था। अब केवल हिरन अर्थ रह गया है। अंग्रेजी का Deer भी पशुमात्र का वाचक था, अब 'हिरन' अर्थ रह गया है।
अर्थसंकोच के अन्य उदाहरण- जगत्, पंकज, अम्बुद (बादल), नीरधि (समुद्र), सर्प, पर्वत, तटस्थ, मन्दिर, सभ्य, श्राद्ध, तर्पण, अनुकूल, वेदना, घृणा आदि।
अर्थादेश- अर्थादिश का अर्थ है – एक अर्थ के स्थान पर दूसरे अर्थ का आ जाना। आदेश का अर्थ है- एक को हटाकर दूसरे का आना।
उदाहरण- असुर- मूल अर्थ असु+र देवता था। बाद में सुर (देवता) का उल्टा अ+सुर (राक्षस) अर्थ हो गया।
अन्य उदाहरण- वर (दूल्हा), सह, मौन, देवानां प्रियः, पाषण्ड, आकाशवाणी, साहस, भद्र-भद्दा, मुग्ध, वाटिका-बाड़ी, कर्पट-कपड़ा आदि।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अर्थसंकोच का उदाहरण मृग है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**
स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 338

22. निम्नलिखितेषु को ध्वनिः महाप्राणो नास्ति ?
(A) ध् (B) भ्
(C) ह् (D) ड्

व्याख्या- प्राण का अर्थ है- 'हवा' 'श्वास' या 'हवा की शक्ति' इस आधार पर कुछ व्यञ्जन अल्पप्राण कहे जाते हैं और कुछ महाप्राण

महाप्राण- जिन व्यञ्जनों के उच्चारण में हवा का आधिक्य हो या श्वास-बल अधिक हो, उन्हें महाप्राण (Aspirated) कहते हैं। 'ह' ध्वनि शुद्ध 'प्राण' से बहुत मिलती जुलती है, इसी कारण महाप्राण ध्वनियों को ह युक्त लिखा जाता है।

महाप्राण ध्वनियाँ- ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, न्ह, म्ह, ल्ह, रह, ।

अल्पप्राण- जिन व्यञ्जनों के उच्चारण में हवा का आधिक्य न हो या श्वास बल कम हो, उन्हें 'अल्पप्राण' (Unaspirated) कहते हैं।

अल्पप्राण ध्वनियाँ- क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, ल, र, ड़ ।
प्रयत्न के आधार पर व्यञ्जनों के मुख्यतः निम्नाङ्कित भेद होते हैं-

स्पर्श- (Stop) स्पर्श का अर्थ है 'छूना'। इसके उच्चारण में एक उच्चारण अवयव दूसरे का स्पर्श करता है।
उदाहरण- क से म तक के वर्ण ।

संघर्षी- (Fricative) इनके उच्चारण में दो उच्चारण अवयव एक दूसरे के इतने निकट चले जाते हैं कि दोनों के बीच से निकलने वाली हवा घर्षण या संघर्ष करती हुई बाहर निकालती है।
उदाहरण- स, ष, श, ह संघर्षी व्यञ्जन हैं।

स्पर्श संघर्षी- (Affricate) इन ध्वनियों के उच्चारण में प्रारम्भिक चरण स्पर्श का होता है, अन्तिम चरण संघर्ष का।
उदाहरण- चना, नाच।

नासिक्य- इनके उच्चारण में हवा नाक से निकलती है। ङ, ञ, ण, न, म नासिक्य व्यञ्जन हैं।

पार्श्विक- इनके उच्चारण में मुँह के मध्य भाग में दो अवयव एक दूसरे से मिलकर वायु को अवरुद्ध कर देते हैं, किन्तु हवा एक या दोनों पार्श्वों से निकलती रहती है।
उदाहरण- ल।

उक्षिप्त- इसके उच्चारण में जीभ ऊपर उठकर झटके से नीचे आती है।
जैसे- ड़, ढ़।

कम्पनजात- इसके उच्चारण में किसी अवयव की नोक में से वायु के प्रवाह से कम्पन्न होता है।
जैसे- र।
नोट- धीरेन्द्र वर्मा तथा बाबूराम सक्सेना ने हिन्दी 'र' को लुण्ठित कहा है।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि महाप्राणध्वनियों में ड् की परिगणना नहीं है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**
स्रोत- भाषाविज्ञान- भोलानाथ तिवारी, पेज-318-320

23. ऐश्वर्यं कस्य लक्षणं भवति-
(A) रजोगुणस्य (B) सत्त्वगुणस्य
(C) तमोगुणस्य (D) पुरुषस्य

व्याख्या- ईश्वरकृष्ण सांख्यकारिका में बुद्धि का लक्षण करते हुए उसके सात्त्विक एवं तामस धर्मों को बताते हैं-
बुद्धि (महत्)- 'अध्यवसायो बुद्धिः' निश्चय बुद्धि है। बुद्धि का स्वरूप अध्यवसाय है, यहाँ 'अध्यवसाय' से अर्थ प्रायः 'निश्चय' से है। अतः निश्चय ही बुद्धि है।

बुद्धि के आठ धर्म- धर्म, ज्ञान, विराग एवं ऐश्वर्य सत्त्वगुण की प्रधानता के कारण सात्त्विक तथा इनके ठीक विपरीत अधर्म, अज्ञान, राग तथा अनैश्वर्य तमोगुण की प्रधानता के कारण तामसिक माने गए हैं।

अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्॥ (का- 23)

ऐश्वर्यम्- अणिमा, लघिमा, गरिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व एवं ईशित्व- इन आठ सिद्धियों की प्राप्ति ही 'ऐश्वर्य' कहलाता है। सिद्धियों का प्रादुर्भाव भी बुद्धि का ही धर्म है, जो सत्त्वगुण के प्रभावी होने से प्राप्त होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'ऐश्वर्यम्' यह सत्त्वगुण की प्रधानता के कारण बुद्धि का सात्त्विक धर्म माना जाता है, **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- सांख्यकारिका (का.-23)- राकेश शास्त्री, पेज 76

24. वेदान्तसारानुसारं तितिक्षायाः किं लक्षणम् अस्ति ?
(A) विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागः
(B) मोक्षेच्छा
(C) शीतोष्णादिद्वन्द्वसहिष्णुता
(D) जन्ममरणबन्धनात् मुक्तिः

व्याख्या- 'साधनचतुष्टयसम्पन्न प्रमाता वेदान्त का अधिकारी होता है, ऐसा कहने से यह आकाङ्क्षा उत्पन्न होती है कि चार साधन कौन-कौन से हैं, अतः इनका वर्णन करते हुए कहते हैं-

साधनानि नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रार्थफलभोगविराग-शमादिषट्कसम्पत्तिमुमुक्षुत्वानि।

साधन हैं- 1. नित्यानित्यवस्तुविवेक 2. इहामुत्रार्थफलभोगविराग 3.शमादिषट्कसम्पत्ति 4. मुमुक्षुत्व

नित्यानित्यवस्तुविवेक- केवल ब्रह्म ही नित्य वस्तु है और इससे भिन्न (प्रतीत होने वाला) सब कुछ अनित्य है, ऐसा प्रमाणों के द्वारा विवेचन करना नित्यानित्यवस्तुविवेक है।

नित्यानित्यवस्तुविवेकस्तावद् ब्रह्मैव नित्यं वस्तु ततोऽन्यद-खिलमनित्यमिति विवेचनम्।

इहामुत्रार्थफलभोगविराग- इस लोक में प्राप्त होने वाले माला चन्दन-कामिनी आदि विषयभोग जिस प्रकार कर्मजन्य होकर अनित्य हैं उसी प्रकार परलोक में प्राप्त होने वाले अमृतादि विषयभोग भी अनित्य हैं, इसलिए उन भोगों से अत्यन्त विरति का होना इहामुत्रार्थफलभोगविराग है ।

ऐहिकानां स्रक्चन्दनवनितादिविषयभोगानां कर्मजन्यतयानित्य-त्ववदामुष्मिकाणामप्यमृतादिविषयभोगानामनित्यतया तेभ्यो नितरां विरतिरिहामुत्रार्थफलभोगविरागः।

शमादयस्तु शमदमोपरतितितिक्षासमाधानश्रद्धाख्याः ।

शमादि हैं- शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा ।

शम- शमस्तावच्छ्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यो मनसो निग्रहः।

श्रवण, मनन और निदिध्यासन से भिन्न विषयों से मन को हटा लेना ही शम है।

दम- दमो बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्त्तनम्।

बाह्य इन्द्रियों को श्रवणादि के अतिरिक्त विषयों से हटाने को दम कहते हैं।

उपरति- निवर्तितानामेतेषां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्य उपरमणमुपरतिः, अथवा विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागः।

फिर से विषयों की ओर प्रवृत्त होने का उत्साह न रह जाने से स्थिर हो जाना उपरति है।

तितिक्षा- तितिक्षा शीतोष्णादिद्वन्द्वसहिष्णुता ।

शीत-उष्ण (मान-अपमान, लाभ-हानि, जय-पराजय, निन्दा-स्तुति, हर्ष-शोक) आदि द्वन्द्वों को सहन करना तितिक्षा है।

समाधान- निगृहीतस्य मनसः श्रवणादौ तदनुगुणविषये च समाधिः समाधानम्।

निगृहीत चित्त का श्रवणादि में तथा श्रवणादि के अनुकूल विषयों में स्थिर हो जाना समाधान है।

श्रद्धा- गुरूपदिष्टवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा।

गुरु और वेदान्त वाक्यों में विश्वास होना ही श्रद्धा है।

मुमुक्षुत्व- मुमुक्षुत्वं मोक्षेच्छा।

मोक्ष की इच्छा से युक्त होना मुमुक्षुत्व है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'शीतोष्णादिद्वन्द्वसहिष्णुता' ही तितिक्षा है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार - सन्तनारायण श्रीवास्तव, पेज 20

25. 'अथातो धर्मजिज्ञासा' इति जैमिनीयसूत्रे वेदाध्ययनस्य दृष्टार्थत्वं को ब्रूते ?
(A) 'अथ' शब्दः (B) 'अतः' शब्द
(C) 'धर्म' शब्दः (D) 'जिज्ञासा' शब्दः

व्याख्या- महर्षि जैमिनिकृत बारह अध्यायों वाले मीमांसादर्शन का प्रकरणग्रन्थ है अर्थसंग्रह, जिसके रचनाकार लौगाक्षिभास्कर हैं।

* जैमिनि के मीमांसासूत्रों में 'अथातो धर्मजिज्ञासा' प्रथम सूत्र है।
* 'अथ' शब्द वेदाध्ययन की अनन्तरता का वाचक है । तथा 'अतः' शब्द वेदाध्ययन की दृष्टार्थता का बोधक है।
* शङ्कराचार्य ने 'अथ' शब्द का अर्थ आनन्तर्यवाचक और 'अतः' पद का अर्थ हेतुवाचक माना है।

'अर्थात् ब्रह्मजिज्ञासा' यह ब्रह्मसूत्र का प्रथमसूत्र है।
* महाभाष्यकार पतञ्जलि ने व्याकरण के महाभाष्य के प्रथम सूत्र 'अथ शब्दानुशासनम्' में 'अथ' शब्द का अर्थ अधिकार वाचक माना है।
* पातञ्जलयोगदर्शन के प्रथमसूत्र 'अथ योगानुशासनम्' के पहला शब्द 'अथ' अधिकार वाचक है। योगानुशासनम् अर्थात् योगशास्त्र (आरम्भ हुआ) जानना चाहिये।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अतः शब्द 'वेदाध्ययन की दृष्टार्थता' का वाचक है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**
स्रोत- अर्थसंग्रह- राजेश्वरशास्त्री मुसलगाँवकर, पेज-6-7

26. 'आदित्यो यूपः' इत्यत्र किंविधोऽर्थवादः ?
(A) भूतार्थवादः (B) अनुवादः
(C) निषेधशेषः (D) गुणवादः

व्याख्या- लौगाक्षिभास्कर कृत अर्थसंग्रह में अर्थवाद का लक्षण करते हुए बताते हैं-
'प्राशस्त्यनिन्दान्यतरपरं वाक्यम् अर्थवादः।'
प्रशंसापरक अथवा निन्दापरक वाक्य को अर्थवाद कहते हैं।
सः द्विविधः- विधिशेषो निषेधशेषश्चेति।
तत्र वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकाम इत्यादि विधिशेषस्य
अर्थवाद के दो प्रभेद हैं- (1) विधिशेष (2) निषेधशेष उनमें वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः (ऐश्वर्यप्राप्ति का इच्छुक व्यक्ति वायु देवता के लिए श्वेत पशु का आलम्भन करें।
स पुनस्त्रिधा- 'विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते। भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधा मत' इति।
वह अर्थवाद पुनः तीन प्रकार का होता है-
1. गुणवाद 2. अनुवाद 3. भूतार्थवाद
गुणवाद- प्रमाणान्तरविरोधे सत्यर्थवादो गुणवादः। यथा 'आदित्यो यूप' इत्यादि।
जिस अर्थवाद का प्रमाणान्तर से विरोध हो वह गुणवाद कहा जाता है। यथा- आदित्यो यूपः। यूप आदित्य है इत्यादि।
अनुवाद- प्रमाणान्तरावगतार्थबोधकोऽर्थवादोऽनुवादः।
यथा- अग्निर्हिमस्य भेषजमित्यत्र हिमविरोधित्वऽस्याग्नौ प्रत्यक्षावगतत्वात्। प्रमाणान्तर से अवगत अर्थ के बोधक अर्थवाद को अनुवाद कहा जाता है। जैसे- अग्निर्हिमस्य भेषजम् अग्नि शैत्य की ओषधि है। प्रकृत में प्रत्यक्ष प्रमाण से पूर्व से ही ज्ञात है कि अग्नि हिम का विरोधी है। अतः अनुवाद है।
भूतार्थवाद- प्रमाणान्तरविरोधतत्प्राप्तिरहितार्थ-बोधकोऽर्थवादो भूतार्थवादः। यथेन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छदित्यादि।
जिसका दूसरे किसी प्रमाण से विरोध न हो रहा हो एवं जिसके द्वारा अवबोधित अर्थ प्रमाणान्तर से सम्भव नहीं हो उसे भूतार्थवाद कहा जाता है।
जैसे- 'इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्' इन्द्र ने वृत्र का हनन करने के लिए वज्र उठा लिया।

अर्थवाद
(1) गुणवाद (2) अनुवाद (3) भूतार्थवाद

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त से स्पष्ट है कि 'आदित्यो यूपः' गुणवाद का उदाहरण है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**
स्रोत- अर्थसंग्रह- राजेश्वरशास्त्री मुसलगाँवकर, पेज- 350

27. यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् इति उक्तिः कस्य विषये ?
(A) योगवाशिष्ठस्य (B) श्रीमद्भागवतस्य
(C) महाभारतस्य (D) मृच्छकटिकस्य

व्याख्या- विश्व-साहित्य में सबसे बड़ा ग्रन्थ महाभारत ही है जिसमें एक लाख से कुछ अधिक श्लोक हैं। यह भारत के सांस्कृतिक विषयों का विराट् कोश तथा आचार की संहिता है। महाभारत के सन्दर्भ में लोकोक्ति है-
* **धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।**
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥ (1/62/53)
* **'यन्न भारते तन्न भारते ।'** जो बातें महाभारत में नहीं हैं वे भारतवर्ष में नहीं होती हैं।
रामायण- महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण में चौबीस सहस्र पद्य या श्लोक हैं। इसीलिए इसे 'चतुर्विंशतिसाहस्री संहिता' कहते हैं। रामायण सात काण्डों में विभक्त है। रामायण के प्रसङ्ग में लोकोक्ति कही गयी है-
रम्या रामायणी कथा।
यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥ (1.2.37)
श्रीमद्भागवत- यह 18 महापुराणों के अन्तर्गत सर्वाधिक प्रसिद्ध महापुराण है। इसमें 18 हजार श्लोक हैं। द्वादश स्कन्धात्मक व्यासरचित इस महापुराण में उच्चकोटि के दर्शन, औपनिषदिक अध्यात्म की व्याख्या मिलती है- **'विद्यावतां भागवते परीक्षा ।'**
मृच्छकटिकम्- मृत्+शकटिकम् अर्थात् 'मिट्टी की गाड़ी' का वर्णन प्रमुख है। जिसके कारण मृच्छकटिकम् नाम पड़ा। यह शूद्रक प्रणीत एक प्रकरणग्रन्थ है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि यदिहास्ति तदन्यत्र---यह उक्ति महाभारत के लिए प्रसिद्ध है।
अतः विकल्प 'C' सही है।
स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास - कपिलदेव द्विवेदी, पेज 117

28. श्रीमद्भगवद्गीता महाभारतस्य कस्मिन् पर्वणि वर्तते?
(A) कर्ण-पर्वणि (B) भीष्म-पर्वणि
(C) अनुशासन-पर्वणि (D) शान्ति-पर्वणि

व्याख्या-
* श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत के भीष्मपर्व से उद्धृत है।
* महाभारत के आदिपर्व से अभिज्ञानशाकुन्तलम् उद्धृत है।
* महाभारत के सभापर्व से शिशुपालवधम् का अवतरण हुआ है।
* महाभारत के वनपर्व से नैषधीयचरितम् और किरातार्जुनीयम् यह दोनों महाकाव्य अवतरित हैं।

पर्व	विषय वर्णन
आदिपर्व	चन्द्रवंश का इतिहास
सभापर्व	कौरव पाण्डवों की उत्पत्ति
वनपर्व	पाण्डवों का वनवास
विराटपर्व	पाण्डवों का अज्ञातवास
उद्योगपर्व	श्रीकृष्ण का दौत्यकर्म
भीष्मपर्व	अर्जुन को गीता का उपदेश, युद्ध का प्रारम्भ, भीष्म का आहत होना
द्रोणपर्व	अभिमन्यु एवं द्रोणवध
कर्णपर्व	कर्ण का युद्ध और वध
शल्यपर्व	शल्य का युद्ध और वध
सौप्तिकपर्व	सोते हुए पाण्डवों के पुत्रों का अश्वत्थामा द्वारा वध
स्त्रीपर्व	शोकाकुल स्त्रियों का विलाप
शान्तिपर्व	युधिष्ठिर को भीष्म द्वारा ज्ञान दिया जाना
अनुशासनपर्व	धर्म एवं नीति की कथाएँ, भीष्म का स्वर्गारोहण
आश्वमेधिकपर्व	युधिष्ठिर द्वारा अश्वमेध का अनुष्ठान
आश्रमवासिकपर्व	धृतराष्ट्र आदि का वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश
मौसलपर्व	यादवों का पारस्परिक संघर्ष और नाश
महाप्रस्थानिकपर्व	पाण्डवों की हिमालय यात्रा
स्वर्गारोहणपर्व	पाण्डवों का स्वर्गारोहण

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि श्रीमद्भगवद्गीता 'भीष्मपर्व' से ली गयी है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**
स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशंकर शर्मा, पेज 158

29. वाल्मीकिरामायणानुसारं दशरथस्य पुत्रेष्टियज्ञे पुरोहित आसीत् ।
(A) वसिष्ठः (B) ऋष्यशृङ्गः
(C) भरद्वाजः (D) विश्वामित्रः

व्याख्या- वाल्मीकिकृत आदिकाव्य रामायण में सात काण्ड हैं। पहले काण्ड अर्थात् बालकाण्ड में दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ के पुरोहित ऋष्यशृङ्ग थे।
ऋष्यशृङ्गस्तु जामाता पुत्रांस्तव विधास्यति। (रामा. 01.9.19)
वशिष्ठ- राजा दशरथ के कुलगुरु थे। रामायण में दशरथ वशिष्ठ से कहते हैं कि-
* **अभिवाद्य वसिष्ठं च न्यायतः प्रतिपूज्य च।** (1.13.2)
वसिष्ठ जी को प्रमाण करके राजा ने न्यायतः उनका पूजन किया।
***भवान् स्निग्धः सुहृन्मह्यं गुरुश्च परमो महान्। (1.13.4)**
आप मेरे सुहृद्-अकारण हितैषी, गुरु और परम महान् हैं।
भरद्वाज- भरद्वाज महर्षि वाल्मीकि के शिष्य थे।
एवमुक्तो भरद्वाजो वाल्मीकेन महात्मना। (1.2.7)
महात्मा वाल्मीकि के ऐसा कहने पर नियमपरायण शिष्य भरद्वाज ने अपने गुरु मुनिवर वाल्मीकि को वल्कल वस्त्र दिया।
स शिष्यहस्तादादाय वल्कलं नियतेन्द्रियः। (1.2.8)
शिष्य के हाथ से वल्कल वस्त्र लेकर वे जितेन्द्रिय मुनि वहाँ की विशाल शोभा देखते हुए सब ओर विचरने लगे।
विश्वामित्र- कुशिकवंशी गाधिपुत्र विश्वामित्र राजा दशरथ से राम-लक्ष्मण को लेने आये थे-
शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनः सुतम्। (1.18.39)
अभ्यागच्छन्महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः। (1.18.38)
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि दशरथ के पुत्रेष्टियज्ञ के पुरोहित ऋष्यशृङ्ग हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**
स्रोत- वाल्मीकि रामायण (बालकाण्ड सर्ग-15) गीता प्रेस, पेज 62

30. वाल्मीकिरामायणानुसारं शम्बूकः केन हतः?
(A) दशरथेन (B) रामेण
(C) परशुरामेण (D) भरतेन

व्याख्या- वाल्मीकि कृत आर्षकाव्य रामायण के उत्तरकाण्ड में श्रीराम के द्वारा शम्बूकवध का वर्णन प्राप्त होता है-
शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूको नाम नामतः। (उत्तरकाण्ड 76.3)
देवलोक पर विजय पाने की इच्छा से ही तपस्या में लगा हूँ। आप मुझे शूद्र समझिये। मेरा नाम शम्बूक है।

भाषतस्तस्य शूद्रस्य खड्गं सुरुचिरप्रभम्।
निष्कृष्य कोशाद् विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः॥ (उत्तरकाण्ड. 76.4)
श्रीरामचन्द्र जी ने म्यान से चमचमाती हुई तलवार खींच ली और उसी से उसका सिर काट लिया।
श्रीराम द्वारा विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के समय राक्षसों का संहार और ताटका वध।
शरेणोरसि विव्याध सा पपात ममार च। (1.26.25)
श्रीराम ने एक बाण मारकर उसकी (ताटका) छाती चीर डाली तब ताटका पृथ्वी पर गिरी और मर गयी।
राम के द्वारा त्रिशिरा का वध-
रामश्चिच्छेद बाणेन ध्वजं चास्य समुच्छ्रितम्।
ततो हतरथात् तस्मादुत्पतन्तं निशाचरम्॥
चिच्छेद रामस्तं बाणैर्हृदये सोऽभवज्जडः। (3.27.16)
श्रीराम ने एक बाण से उसकी ध्वजा भी काट डाली ।
तदन्तर जब वह उस नष्ट हुए रथ से कूदने लगा, उसी समय श्रीराघवेन्द्र ने अनेक बाणों द्वारा उस निशाचर की छाती छेद डाली। फिर तो वह जडवत् हो गया।

खर का वध-
स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना।
रुद्रेणेव विनिर्दग्धः श्वेतारण्ये यथान्धकः॥ (3.30.27)
दण्डकवन में श्रीराम के उस बाण की आग में जलता हुआ निशाचर खर पृथ्वी पर गिर पड़ा।
वालिवध- राम ने किष्किन्धाकाण्ड में वालिवध किया-
राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः। (4.16.35)
श्रीरघुनाथ जी ने वज्र की भाँति गड़गड़ाहट और प्रज्वलित अशनि की भाँति प्रकाश पैदा करने वाला वह महान् बाण छोड़ दिया तथा उसके द्वारा वाली के वक्षस्थल पर चोट पहुँचायी।

कुम्भकर्ण का वध-
चकर्त रक्षोऽधिपतेः शिरस्तदा
यथैव वृत्रस्य पुरा पुरंदरः। (6.67.167)
राम ने उस बाण से राक्षसराज कुम्भकर्ण के महान् पर्वत शिखर के समान ऊँचे, सुन्दर गोलाकार दाढों से युक्त तथा हिलते हुए मनोहर कुण्डलों से अलङ्कृत मस्तक को धड़ से अलग कर दिया।

रावणवध-
बिभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः। (6.108.18)
महान् वेगशाली श्रेष्ठ बाण ने छूटते ही दुरात्मा रावण के हृदय को विदीर्ण कर डाला।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि वाल्मीकिरामायणानुसार शम्बूक को राम ने मारा था। **अतः विकल्प 'B' सही है।**
स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 127

31. महापुराणेषु न गण्यते-
(A) एकाम्रपुराणम् (B) ब्रह्मपुराणम्
(C) लिङ्गपुराणम् (D) पद्मपुराणम्

व्याख्या- * पुराण का विकास दो रूप में हुआ है- महापुराण और उपपुराण।
* महापुराण प्राचीनतर हैं जिनकी संख्या अठारह है।
मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक्-पृथक्॥

म से	=	मत्स्य और मार्कण्डेय पुराण
भ से	=	भविष्य और भागवत पुराण
ब्र से	=	ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त पुराण
व से	=	विष्णु, वामन, वराह तथा वायु पुराण
अ से	=	अग्नि पुराण
ना से	=	नारद पुराण
प से	=	पद्म पुराण
लिं से	=	लिङ्ग पुराण
ग से	=	गरुड़ पुराण
कू से	=	कूर्म पुराण
स्क से	=	स्कन्द पुराण

उपपुराण- इनकी भी संख्या अठारह है।
1. सनत्कुमार 2. नारसिंह 3. स्कान्द (शिव) 4. शिवधर्म 5. आश्चर्य 6. नारदीय 7. कापिल 8. औशनस 9. वारुण 10. कल्कि 11. कालिका 12. माहेश्वर 13. साम्ब 14. सौर 15. पाराशर 16. मारीच 17. भार्गव 18. नन्द।

पुराणों का अन्य विभाजन-
* सात्त्विक, तामस और राजस के रूप में हुआ है जो क्रमशः विष्णु, शिव और ब्रह्मा या अन्य देवताओं को महत्त्व देने के आधार पर है।
सात्त्विक (वैष्णव) पुराण- विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म तथा वराह
तामस (शैव) पुराण- मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, अग्नि, स्कन्द
राजस (ब्राह्म) पुराण- ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, ब्रह्म, वामन तथा भविष्य
1. ब्रह्म 2. पद्म 3. विष्णु 4. वायु 5. भागवत 6. नारद 7. मार्कण्डेय 8. अग्नि 9. भविष्य 10. ब्रह्मवैवर्त 11. लिङ्ग 12. वराह 13. स्कन्द 14. वामन 15. कूर्म 16. मत्स्य 17. गरुड़ 18. ब्रह्माण्ड

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महापुराणों में 'एकाम्रपुराण' की गणना नहीं होती है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का इतिहास-उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज – 176

32. कौटिल्यानुसारं मानवाः कां विद्यां पृथक् न मन्यन्ते-

(A) आन्वीक्षकीम् (B) त्रयीम्
(C) वार्ताम् (D) दण्डनीतिम्

व्याख्या- कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में पन्द्रह अधिकरण हैं। विनयाधिकारिक नामक प्रथम अधिकरण में चार विद्याओं की चर्चा की गयी है-

आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति- ये चार विद्याएँ हैं-

आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः।

मनु के अनुसार- 'त्रयीवार्ता दण्डनीतिश्चेति मानवाः। त्रयीविशेषो आन्वीक्षकीति।' मनु सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्य त्रयी, वार्ता और दण्डनीति इन तीन विद्याओं को मानते हैं। उनका मत है कि आन्वीक्षकी का समावेश त्रयी के अन्तर्गत हो जाता है।

आचार्य बृहस्पति के अनुसार- 'वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्हस्पत्याः संवरणमात्रं हि त्रयी लोकयात्राविद इति।' आचार्य बृहस्पति के अनुयायी विद्वान् केवल दो ही विद्याएँ मानते हैं- वार्ता और दण्डनीति। उनके मतानुसार त्रयी तो दुनियादार लोगों की आजीविका का साधनमात्र है।

शुक्राचार्य के अनुसार- 'दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसाः तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिबद्धा इति'।

शुक्राचार्य के अनुयायी विद्वानों ने तो केवल दण्डनीति को ही विद्या माना है, उसी को सम्पूर्ण विद्याओं का स्थान एवं कारण स्वीकार किया है।

आचार्य कौटिल्य के अनुसार- 'चतस्र एव विद्या इति कौटिल्यः। ताभिर्धर्मार्थौ यद्विद्यात्तद्विद्यानां विद्यात्वम्।'

आचार्य कौटिल्य उक्त चारों विद्याओं को मानते हैं और उनकी यथार्थता धर्म तथा अधर्म के ज्ञान को बताते हैं।

सांख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षकी ।

सांख्य, योग, लोकायत ये आन्वीक्षकी विद्या के अन्तर्गत हैं।

आचार्य	**विद्या**
मनु	त्रयी, वार्ता, दण्डनीति
बृहस्पति	वार्ता, दण्डनीति
शुक्राचार्य	दण्डनीति
कौटिल्य	आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनु के अनुसार विद्या तीन हैं- त्रयी, वार्ता, दण्डनीति । **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- कौटिलीय अर्थशास्त्र - वाचस्पति गैरोला, पेज 08

33. कौटिल्यानुसारं त्रयीं के संवरणमात्रं मन्यन्ते ?

(A) मानसाः (B) मानवाः
(C) बार्हस्पत्याः (D) औशनसाः

व्याख्या- कौटिलीय अर्थशास्त्र में 180 प्रकरण, 150 अध्याय और 15 अधिकरण, 6000 श्लोक हैं।

* इसके मङ्गलाचरण में शुक्र और बृहस्पति को नमस्कार किया गया है।
* प्रथम प्रकरण के प्रथम अध्याय में विद्यासमुद्देशः आन्वीक्षकी स्थापना का वर्णन है।
* प्रथम प्रकरण के द्वितीय अध्याय में त्रयीस्थापना का वर्ण्य विषय है।
* प्रथम प्रकरण के अध्याय तीन में वार्तादण्डनीतिस्थापना विषय की चर्चा की गयी है।
* आन्वीक्षकी विद्या सर्वदा ही सब विद्याओं का प्रदीप, सभी कार्यों का साधन और सब धर्मों का आश्रय मानी गई है।

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षकी मता॥

बृहस्पति ने विद्या के विषय में कहा है-

संवरणमात्रं हि त्रयी लोकयात्राविद इति।

आचार्य बृहस्पति के अनुयायी विद्वान् केवल दो ही विद्याओं को मानते हैं। वार्ता और दण्डनीति।

उनके मतानुसार त्रयी तो दुनियादार लोगों की आजीविका का साधनमात्र है।

त्रयी- सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी। साम,ऋक्, यजुः इन तीनों वेदों का समन्वित नाम ही त्रयी है।

वार्ता- कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता।

कृषि पशुपालन और व्यापार ये वार्ताविद्या के विषय हैं।

दण्डनीति- आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः तस्य नीतिः दण्डनीतिः।

आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता इन सभी विद्याओं की सुख- समृद्धि दण्ड पर निर्भर है। दण्ड को प्रतिपादित करने वाली नीति ही दण्डनीति कहलाती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'कौटिल्यानुसार त्रयी को संवरणमात्र बृहस्पति मानते हैं।' **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- कौटिलीय अर्थशास्त्र- वाचस्पति गैरोला, पेज 08

34. मनुसंहितानुसारम् एषु किं ब्राह्मणस्य कर्म न भवति-

(A) अध्यापनम् (B) प्रजारक्षणम्
(C) यजनम् (D) याजनम्

व्याख्या- आचार्य मनु प्रणीत मनुस्मृति में 12 अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में ब्राह्मणादि चारों वर्णों के कर्मों की चर्चा की गयी है-

ब्राह्मण-

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।। (1.88)

पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना ये छः कर्म ब्राह्मणों के रचे गये हैं।

क्षत्रिय-

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।। (1.89)

प्रजा की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना और विषयों में न लगना ये क्षत्रिय के कर्म संक्षेप से बनाए।

वैश्य-

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वाणिक्पथं च कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।। (1.90)

पशुओं की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार, ब्याज और खेती ये कर्म वैश्य के बनाए।

शूद्र-

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।। (1.91)

प्रभु ने शूद्र का एक ही कर्म बनाया है कि वह इन चारों वर्णों की निष्कपट होकर सेवा करें।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ब्राह्मण का कर्म प्रजारक्षण करना नहीं है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- मनुस्मृति - गिरिधर गोपाल शर्मा, पेज 45

35. मनुसंहितानुसारं सचिवानां संख्या भवेत् ?

(A) 3-4 (B) 5-6
(C) 7-8 (D) 9-10

व्याख्या-

*** सचिवों की संख्या-**

मनुकृत मनुस्मृति द्वादश अध्यायों में विभक्त है। जिसके सातवें अध्याय में राजादि का वर्णन किया गया है-

मौलाञ्छास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षान्कुलोद्भवान्।
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्।। (7/54)

वंशपरम्परागत, शास्त्रों के जानने वाले, शूर, शस्त्रविद्या में निपुण, कुलीन और परीक्षित ऐसे सात या आठ मन्त्रियों को राजा नियुक्त करें।

*** व्यसनों की संख्या-**

दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्।। (7/45)

काम से उत्पन्न हुए दस व्यसन और क्रोध से उत्पन्न हुए आठ व्यसन हैं, इन व्यसनों को राजा यत्नपूर्वक छोड़ दे क्योंकि ये अन्त में दुस्सह कष्टदायक हैं।

*** कामज दोषों की संख्या-**

मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः।। (7/47)

मृगया, जुआ खेलना, दिन में सोना, पराया दोष कहना, स्त्रियों में आसक्ति, मद्यपान, बजाना, नाचना, गाना और वृथा घूमना ये दस (दोष) काम से उत्पन्न होते हैं।

*** क्रोधज दोषों की संख्या-**

पैशुन्यं साहसं ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः।।
(7/48)

चुगली, दुःसाहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया (गुणों में दोष निकालना) दूसरे की वस्तु हरना, कठोर वचन बोलना और अनुचित दण्ड देना ये आठ दोष क्रोध से उत्पन्न हैं।

सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता।
मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम्।। (7/58)

राजा को चाहिये कि सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय इन छः विषयों की सलाह मन्त्रियों में से धार्मिक पण्डित और ब्राह्मण के साथ करें।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनु के अनुसार सचिवों की संख्या 7-8 होनी चाहिये। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- मुनुस्मृति - गिरिधर गोपाल शर्मा (7/45)

36. 'याज्ञवल्क्यस्मृत्यनुसारं रिक्ते स्थाने कः शब्दः उपयुक्तः 'दर्शने प्रत्यये दाने .... विधीयते।'

(A) व्यवहारम् (B) प्रातिभाव्यम्
(C) ऋणादानम् (D) वाक्पारुष्यम्

व्याख्या-

* याज्ञवल्क्यस्मृति के रचयिता याज्ञवल्क्य वैदिक ऋषि हैं, वे शुक्लयजुर्वेद के द्रष्टा थे।
* याज्ञवल्क्यस्मृति में लगभग एक हजार श्लोक और वह अनुष्टुप् छन्द में हैं।
* याज्ञवल्क्यस्मृति तीन भागों में विभक्त है-
(1) आचाराध्याय (2) व्यवहाराध्याय (3) प्रायश्चित्ताध्याय
* याज्ञवल्क्यस्मृति के सुप्रसिद्ध टीकाकार विश्वरूप, विज्ञानेश्वर

और अपरार्क ने वृद्ध याज्ञवल्क्य को अनेक बार उद्धृत किया है।

* **दर्शने प्रत्यये दाने प्रातिभाव्यं विधीयते।**
आद्यौ तु वितथे दाप्यावितरस्य सुता अपि॥ (2.53)

दर्शन (दिखा देना), प्रत्यय (विश्वास दिलाना) और दान (स्वयं देने की प्रतिज्ञा) को प्रातिभाव्य (प्रतिभू या जामिन होना) कहते हैं। प्रथम दो प्रकार का प्रातिभाव्य करने वाले झूठा पड़े तो राजा उनसे धनी व्यक्ति को दिलावे, तीसरे प्रकार का प्रातिभाव्य करने वाले के झूठा पड़ने पर उसके पुत्रों से भी वह धन वसूल करें।

* **स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः।**
अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः॥ (2.21)

जब दो स्मृतियों (धर्मशास्त्र के वचनों) में परस्पर विरोध हो तो व्यवहार से दिया गया न्याय बलवान् होता है।
अर्थशास्त्र की अपेक्षा धर्मशास्त्र का प्रमाण अधिक सबल होता है।

* **स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाऽऽधर्षितः परैः।**
आवेदयति चेद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत्॥ (2.5)

यदि धर्मशास्त्र और समय के आचार के विरुद्ध ढंग से दूसरों द्वारा पीड़ित होकर राजा निवेदन करें तो वह व्यवहार का विषय होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'दर्शने प्रत्यये दाने प्रतिभाव्यम् विधीयते'। **अतः विकल्प 'B' सही है।**
स्रोत- याज्ञवल्क्यस्मृति - उमेश चन्द्र पाण्डेय, पेज 211

37. रघुवंशस्य चतुर्दशसर्गस्य नाम किम् ?
(A) सीतापवादः (B) सीतापरित्यागः
(C) श्रीराममनस्तापः (D) सीतावनवासः

व्याख्या-

	सर्ग संख्या	सर्गों का नाम	श्लोक
1.	प्रथम	वशिष्ठाश्रमाभिगमन	95
2.	द्वितीय	नन्दिनीवरदान	75
3.	तृतीय	रघुराज्याभिषेक	70
4.	चतुर्थ	रघुदिग्विजय	88
5.	पञ्चम	स्वयंवर अभिगमन	75
6.	षष्ठ	स्वयंवर वर्णन	86
7.	सप्तम	अजपाणिग्रहण	71
8.	अष्टम	अजविलाप	95
9.	नव	मृगयावर्णन	82
10.	दश	रामावतार	86
11.	एकादश	सीताविवाहवर्णन	93
12.	द्वादश	रावणवध	104
13.	त्रयोदश	दण्डकाप्रत्यागमन	79
14.	चतुर्दश	सीतापरित्याग	87
15.	पञ्चदश	श्रीरामस्वर्गारोहण	103
16.	षोडश	कुमुद्वती परिणय	88
17.	सप्तदश	अतिथि वर्णन	81
18.	अष्टादश	वंशानुक्रम	53
19.	नवदश (एकोनविंशति)	अग्निवर्णशृङ्गार	57

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि रघुवंश के चौदहवें सर्ग का नाम 'सीतापरित्याग' है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**
स्रोत- रघुवंशम् - हरगोविन्द मिश्र, पेज 369

38. 'अतिदुर्धरो बान्धवस्नेहः सर्वप्रमाथी'-हर्षचरिते इयमुक्तिर्भवति-
(A) प्रभाकरवर्धनस्य (B) हर्षवर्धनस्य
(C) भाण्डिनः (D) यशोमत्याः

व्याख्या- हर्षचरितम् के पाँचवें उच्छ्वास में प्रभाकरवर्धन अपने छोटे पुत्र हर्षवर्धन से कहते हैं कि-
अतिदुर्धरो बान्धवस्नेहः सर्वप्रमाथी।
बान्धव का स्नेह अत्यन्त दुःखदायी और दुःसह होता है।
हर्षवर्धन- लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः।
सचमुच संसार में स्नेह के बन्धन पाश लोहे से भी बढ़कर कठोर होते हैं।
भाण्डि- 'देव! तृतीयमहः कृताहारस्यास्याद्य इति।' भाण्डि ने कहा राजा से- देव! आज तीन दिन बीत गए, इन्होंने अपना आहार नहीं किया।
यशोमती- 'नास्ति मत्समा सीमन्तिनी दुःखभागिनी'
मेरे समान दुखिया नारी कोई नहीं।
अन्य सूक्तियाँ- यशोमती का कथन
विधवानां यशसा ख्यातुमिच्छामि लोके न वपुषा। (पञ्चमोच्छ्वास)
हे वत्स! इस लोक में मैं, शरीर से नहीं, प्रत्युत विधवाओं के यश से रहना चाहती हूँ।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'अतिदुर्धरो बान्धवस्नेहः-' यह पंक्ति प्रभाकरवर्धन की है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**
स्रोत- हर्षचरितम् (पञ्चम उच्छ्वास) - शिवनाथ पाण्डेय, पेज 60

39. अधस्तनयुग्मानां समीचीनां मेलनतालिकां चिनुत-
क. अनङ्गोऽयमनङ्गत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम् - उत्तररामचरितम्
ख. उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलम् - कादम्बरी
ग. प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः - रत्नावली
घ. न हि क्षुद्रनिर्घातपाताभिहता चलति वसुधा - अभिज्ञानशाकुन्तलम्

	क	ख	ग	घ
(A)	1	2	3	4
(B)	3	4	1	2
(C)	2	3	4	1
(D)	4	1	2	3

व्याख्या- हर्षकृत नाटिका रत्नावली के प्रथम अङ्क में राजा उदयन नायिका वासवदत्ता से कहते हैं कि-

अनङ्गोऽयमनङ्गत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम्।
यदनेन न सम्प्राप्तः पाणिस्पर्शोत्सवस्तव॥ (1/22)

यह अनङ्ग (कामदेव) आज निश्चय ही अपनी शरीरहीनता को धिक्कारेगा, क्योंकि इसने (शरीर न होने के कारण) तुम्हारे हस्तस्पर्श के आनन्द को नहीं प्राप्त किया।

* कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के सातवें अङ्क में राजा दुष्यन्त ऋषि मारीच से कहते हैं-

उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं
घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रम-
स्तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पदः॥ (7/30)

भगवन् ! फूल आते हैं, फिर फल होते हैं। पहले बादल आते हैं, तत्पश्चात् वर्षा होती है। कारण और कार्य का यह क्रम है, किन्तु आपकी कृपा के आगे सम्पत्ति चलती है।

* महाकवि भवभूति प्रणीत उत्तररामचरितम् नाटक के द्वितीय अङ्क में आत्रेयी वनदेवता से कहती है-

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि पुनर्भूयान्भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः॥ (2/4)

गुरु जिस प्रकार व्युत्पन्न शिष्य को उसी प्रकार मन्द-बुद्धि शिष्य को भी विद्या देता है। वह उन दोनों शिष्यों के ज्ञान में न तो सामर्थ्य की वृद्धि करता है और न ही सामर्थ्य को नष्ट करता है। परन्तु (विद्या के) फल में बहुत अधिक अन्तर होता है, जैसे स्वच्छ मणि प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ होते हैं, मिट्टी आदि पदार्थ नहीं।

बाणभट्ट प्रणीत कादम्बरी महाश्वेतावृत्तान्त में चन्द्रापीड-महाश्वेता के विषय में चिन्तन करता हुआ कहता है कि-

'नहि क्षुद्रनिर्घातपाताभिहता चलति वसुधेति।

इसकी (महाश्वेता) की ऐसी विकलता के पीछे अवश्य ही कोई महान् कारण है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'अनङ्गोऽयमनङ्गत्वमद्य'- यह सूक्ति रत्नावली से, 'उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलम्' यह अभिज्ञानशाकुन्तलम् से, प्रभवति शुचिर्बिम्बेग्राहे ...... यह उत्तररामचरितम् से न हि क्षुद्रनिर्घातपाताभिहता- यह कादम्बरी से सम्बन्धित है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- (A) रत्नावली (1.22), (B) अभिज्ञानशाकुन्तलम् (7-30), (C) उत्तररामचरितम् (2-4), (D) कादम्बरी (महाश्वेतावृत्तान्त) - राजदेव मिश्र, पेज 31

40. 'अखण्डेषु कारणेषु फलावचः'- कस्य अलङ्कारस्य लक्षणम्

(A) विशेषोक्तेः (B) विभावनायाः
(C) समासोक्तेः (D) वक्रोक्तेः

व्याख्या- आचार्य मम्मटकृत काव्यप्रकाश के नवें उल्लास में शब्दालङ्कार और दसवें उल्लास में अर्थालङ्कारों का निरूपण किया गया है।

वक्रोक्ति- मम्मट ने वक्रोक्ति को शब्दालङ्कार के अन्तर्गत माना है जिसका लक्षण इस प्रकार है-

यदुक्तमन्यथावाक्यमन्यथाऽन्येन योज्यते।
श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा॥

जो वक्ता द्वारा अन्य प्रकार से अन्य अर्थ में कहा हुआ वाक्य दूसरे के द्वारा श्लेष अर्थात् शब्द के दो अर्थ वाला होने से काकु अर्थात् बोलने के लहजे से, अन्य प्रकार से अर्थात् वक्ता के अभिप्राय से भिन्न अर्थ में लगा लिया जाता है, वह वक्रोक्ति नामक शब्दालङ्कार होता है। और वह उस प्रकार से श्लेष वक्रोक्ति और काकुवक्रोक्ति दो तरह का होता है।

उदाहरण-

गुरुजनपरतन्त्रतया दूरतरं देशमुद्यतो गन्तुम्।
अलिकुलकोकिलललिते नैष्यति सखि! सुरभि समयेऽसौ।

गुरुजनों (माता-पिता) के अधीन होने से (उनकी आज्ञा से) वे विदेश जाने को उद्यत हुए थे, उनकी इच्छा से नहीं इसलिए हे सखि, भ्रमरसमूह एवं कोकिलों की मधुर ध्वनि से मधुर वसन्त समय में नहीं लौटेंगे।

स्पष्टीकरण- यह नायिका और उसकी सखी के बीच की बातचीत है। नायिका ने निराशापूर्ण भाव से कहा है कि वे गुरुजनों के आज्ञाकारी हैं, उन्हें मेरी चिन्ता नहीं है, इसलिए वे वसन्त में लौटकर आयेंगे, यह आशा नहीं है। उसकी सखी इसी वाक्य को फिर भिन्नकण्ठध्वनि से बोलती है। तब नहीं आयेंगे का अर्थ अवश्य आवेंगे, यह हो जाता है। इसलिए यह काकुवक्रोक्ति का उदाहरण दिया है।

विशेषोक्ति- आचार्य मम्मट ने दसवें उल्लास में अर्थालङ्कारों के अन्तर्गत विशेषोक्ति, विभावना और समासोक्ति अलङ्कारों को रखा है।

विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः।
सम्पूर्ण कारणों के होने पर फल का न कहना ही विशेषोक्ति है।
उदाहरण-
कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने जने।
नमोऽस्तु वार्यवीर्याय तस्मै मकरकेतवे॥
जो कामदेव कपूर के समान भस्म हो जाने पर भी जन-जन में शक्तिमान् हो गया है, उस अप्रत्याहत पराक्रमवाले कामदेव को नमस्कार है।
स्पष्टीकरण- यहाँ भस्म हो जाना शक्तिक्षय का कारण है। उसके विद्यमान होने पर भी कामदेव की शक्ति का क्षय नहीं हुआ है। यह कारण के होने पर भी कार्य के न होने से विशेषोक्ति अलङ्कार है।
विभावना-
क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना।
सम्पूर्ण कारणों के निषेध होने पर भी फल की उत्पत्ति (कहना) विभावना है।
उदाहरण-
कुसुमितलताभिरहताऽप्यधत्त रुजमलिकुलैरदष्टापि।
परिवर्त्तते स्म नलिनीलहरीभिरलोलिताप्यघूर्णत सा॥
स्पष्टीकरण- खिली हुई लताओं से ताडित न होने पर भी वह नायिका पीड़ा को प्राप्त हो रही थी, भ्रमर कुल से न काटे जाने पर भी तड़प रही थी और कमलिनियों से युक्त लहरों के चक्कर में पड़े बिना भी चक्कर खा रही थी।
यहाँ लताओं की चोट पीड़ा का हेतु हो सकती थी, भ्रमर का काटना तड़पने का और कमलिनियों की लहरों के चक्कर में फँस जाना चक्कर आने का कारण हो सकता था। परन्तु उन कारणों से निषेध होने पर भी कार्य को बताया गया। इसलिए विभावना अलङ्कार है।
समासोक्ति- परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः।
श्लेषयुक्त विशेषणों द्वारा अप्रकृत (के व्यवहार) का कथन 'समासेन संक्षेपेण उक्तिः' (दो अर्थों का संक्षेप से कथन होने के कारण) समासोक्ति अलङ्कार होता है।
उदाहरण-
लब्ध्वा तव बाहुस्पर्शं यस्याः स कोऽप्युल्लासः।
जयलक्ष्मीस्तव विरहे न खलूज्ज्वला दुर्बला ननु सा॥
तुम्हारे बाहु स्पर्श को पाकर जिसको वह कुछ अनिर्वचनीय प्रसन्नता होती है वह जयलक्ष्मी तुम्हारे वियोग में प्रसन्न नहीं है, निश्चय ही दुर्बल हो गयी है। यहाँ केवल विशेष्यवाचक जयलक्ष्मी शब्द कान्ता रूप अर्थ का वाचक नहीं है अपितु श्लेषयुक्त विशेषणों के द्वारा जयलक्ष्मी शब्द नायिका का बोधक भी है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'अखण्डेषु कारणेषु फलावचः' यह विशेषोक्ति का लक्षण है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**
स्रोत- काव्यप्रकाश - आचार्य विश्वेश्वर, पेज 498

41. 'शिखरिणि क्व नु नाम कियच्चिरं, किमभिधानमसावकरोत्तपः।' इत्यादि-श्लोकः ध्वन्यालोके उदाहरणरूपेण उल्लिखितः-
(A) अविवक्षितवाच्य-प्रसङ्गे
(B) अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारप्रसङ्गे
(C) विवक्षितान्यपरवाच्य-प्रसङ्गे
(D) दीपकालङ्कारप्रसङ्गे

व्याख्या- आचार्य आनन्दवर्धनकृत ध्वन्यालोक में चार उद्योत हैं। प्रथम उद्योत में ध्वनिकाव्य के भेद की चर्चा करते हैं-
स चाविवक्षितवाच्यो विवक्षितान्यपरवाच्यश्चेति द्विविधः सामान्येन।
वह (ध्वनि) सामान्यतः अविवक्षितवाच्य (लक्षणामूल) और विवक्षितान्यपरवाच्य (अभिधामूल) भेद से दो प्रकार का होता है। उनमें से प्रथम (अविवक्षितवाच्य, लक्षणामूल ध्वनि) का उदाहरण है-
उदाहरण-
सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्॥
सुवर्ण जिसका पुष्प है ऐसी पृथिवी का चयन अर्थात् पृथिवीरूप लता के सुवर्णरूप पुष्पों का चयन तीन ही पुरुष करते हैं- शूर, विद्वान् और जो सेवा करना जानता है।
दूसरे (विवक्षितान्यपरवाच्य, अभिधामूलध्वनि) का भी उदाहरण देते हैं-
शिखरिणि क्व नु नाम कियच्चिरं किमभिधानमसावकरोत्तपः।
सुमुखि येन तवाधरपाटलं दशति बिम्बफलं शुकशावकः॥
हे सुमुखि! इस शुकशावक ने किस पर्वत पर, कितने दिनों तक कौन सा तप किया है, जिसके कारण तुम्हारे अधर के समान रक्तवर्ण बिम्बफल को काट रहा है।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि शिखरिणि क्व नु-यह विवक्षितपरवाच्य, अभिधामूलध्वनि का उदाहरण है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**
स्रोत- ध्वन्यालोक – आचार्य विश्वेश्वर, पेज-56

42. कालक्रमानुसारं तालिकां चिनुत-
(i) अप्पयदीक्षितः (ii) भरतः (iii) विश्वनाथकविराजः (iv) वामनः

	क	ख	ग	घ
(a)	ii	iv	iii	i
(b)	ii	iv	i	iii
(c)	ii	i	iii	iv
(d)	i	ii	iv	iii

व्याख्या-

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	काल
भरतमुनि	नाट्यशास्त्र	ई.पू. द्वितीय शताब्दी
भामह	काव्यालङ्कार	500 ई.
दण्डी	काव्यादर्श	सातवीं शताब्दी
उद्भट	काव्यालङ्कारसारसंग्रह	अष्टमशताब्दी का उत्तरार्ध
वामन	काव्यालङ्कारसूत्र	800-850 ई. लगभग
रुद्रट	काव्यालङ्कार	नवम शताब्दी का पूर्वार्द्ध
आनन्दवर्धन	ध्वन्यालोक	नवीं शताब्दी उत्तरार्ध
राजशेखर	काव्यमीमांसा	दशम शताब्दी
धनञ्जय/धनिक	दशरूपक	दशम शताब्दी का उत्तरार्ध
कुन्तक	वक्रोक्तिजीवितम्	एकादश शताब्दी का पूर्वार्द्ध
मम्मट	काव्यप्रकाश	1050 ई. (एकादश उत्तरार्ध)
आचार्य विश्वनाथ	साहित्यदर्पण	14वीं शताब्दी
अप्पयदीक्षित	कुवलयानन्द, चित्रमीमांसा	षोडश शताब्दी
पण्डितराज जगन्नाथ	रसगङ्गाधर	17वींशताब्दी का मध्यमान

कालक्रम- भरत-वामन-विश्वनाथ-अप्पयदीक्षित

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भरतमुनि का काल ई.पू. द्वितीय शताब्दी, वामन का काल नवम शताब्दी, विश्वनाथ का काल 14वीं शताब्दी एवं अप्पयदीक्षित का काल 16वीं शताब्दी है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- काव्यप्रकाश-आचार्य विश्वेश्वर, पेज भू. 18,44,87,91

43. 'प्रारभ्यते न खुल विघ्नभयेन नीचैः, प्रारम्भ विघ्नविहताः विरमन्ति मध्याः।' मुद्राराक्षसे कस्येयमुक्तिः?

(A) विराधगुप्तस्य (B) चाणक्यस्य

(C) राक्षसस्य (D) चन्द्रगुप्तस्य

व्याख्या- विशाखदत्त द्वारा प्रणीत मुद्राराक्षस सात अङ्कों का नाटक है। जिसके द्वितीय अङ्क में विराधगुप्त राक्षस को समझाते हुए कहता है-

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारम्भविघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तम गुणास्त्वमिवोद्वहन्ति॥ (2/17)

राक्षस के द्वारा चन्द्रगुप्त को मारने के लिए बनाई गई अपनी योजनाओं के पूर्णरूप से असफल हो जाने पर उसका गुप्तचर विराधगुप्त उसे समझाते हुए कहता है कि- निस्सन्देह विघ्नों के भय से नीच मनुष्यों के द्वारा कार्य प्रारम्भ नहीं किया जाता। मध्यम श्रेणी के मनुष्य प्रारम्भ करके विघ्नों से प्रताड़ित किए जाने पर छोड़ देते हैं। परन्तु विघ्नों के द्वारा बार-बार प्रताड़ित किए जाने पर भी उत्तम पुरुष प्रारम्भ किये हुए कार्य को नहीं छोड़ते। यह श्लोक नीतिशतकम् में भी प्राप्त होता है। इस श्लोक में तीन श्रेणी के लोगों का वर्णन किया गया है- अधम, मध्यम और उत्तम। प्रथम अङ्क में सभा की प्रशंसा करते हुए सूत्रधार कहता है कि

* **चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः।**
न शालेः स्तम्बकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते॥ (1/3)

एक मूर्ख की भी उपजाऊ भूमि पर बोई गई खेती वृद्धि को प्राप्त होती है। धान की सघनता बोने वाले के गुणों को नहीं देखती।

* **अत्यादरः शङ्कनीयः। (प्रथम अङ्क)**

चन्दनक का कथन- अत्यधिक आदर शंका उत्पन्न करता है।

* **पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी॥ (2/7)**

राक्षस का कथन- स्त्रियों की चञ्चल बुद्धि स्वभाव से मनुष्य के गुणों को पहचानने में विमुख होती है।

* **भव्यं रक्षति भवितव्यता। (द्वितीय अङ्क)**

विराधगुप्त राक्षस से कहता है- भाग्य भावी की रक्षा करता है।

* **'दैवमविद्वान्सः प्रमाणयन्ति'। (तृतीय अङ्क)**

चाणक्य का कथन- भाग्य को मूर्ख लोग मानते हैं।

* **श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भृशम् (3/5)**

चन्द्रगुप्त मन ही मन सोचता है- आश्चर्य है कि राजलक्ष्मी अतिप्रसिद्ध वाराङ्गना की भाँति अत्यन्त कष्ट से आराध्य होती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि प्रारभ्यते न खलु .... यह सूक्ति मुद्राराक्षस ग्रन्थ में विराधगुप्त का कथन है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- मुद्राराक्षसम् - परमेश्वरदीन पाण्डेय, पेज 118

44. 'सिद्धिर्भ्रान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि, स्वेच्छाचारी भीत एवास्मि भर्तुः' इत्युक्तिः रत्नावल्यां केन सम्बद्धा ?

(A) उदयनेन (B) वसन्तकेन

(C) बाभ्रव्येण (D) यौगन्धरायणेन

व्याख्या- महाकवि हर्ष द्वारा प्रणीत चार अङ्कों वाली रत्नावली नाटिका के प्रथम अङ्क में उदयन का प्रधानमन्त्री यौगन्धरायण कहता है कि-

* **प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवेनेत्थं दत्तहस्तावलम्बे। सिद्धेर्भ्रान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि, स्वेच्छाचारी भीत एवास्मि भर्तुः॥ (1/7)**

स्वामी के चक्रवर्ती पद रूप अभ्युदय के कारणभूत इस कार्य में भाग्य के द्वारा इस तरह का हाथ का सहारा देने पर सफलता के

विषय में सन्देह नहीं करने वाला मैं स्वामी से डर रहा हूँ।

उदयन का कथन-

* **अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः।**

रत्नावली के द्वितीय अङ्क में राजा उदयन कहते हैं कि मणि, मन्त्र और ओषधियों का प्रभाव अचिन्तनीय हुआ करता है। विदूषक राजा उदयन से द्वितीय अङ्क में कहता है कि-

* **सखि अतोऽपि मेऽधिकतरं सन्तापो वर्धते।**

सखि इससे भी मेरा सन्ताप अधिक बढ़ रहा है।

* **दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा।**
प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं न वरमेकम्॥ (2/7)

विदूषक वसन्तक अपने मित्र राजा उदयन से कहता है कि- इसने (सारिका ने) यह कहा है। दुर्लभ व्यक्ति के प्रति प्रेम है। भारी लज्जा है। अपना शरीर दूसरे के अधीन है। प्रिय सखि, इस तरह प्रेम सङ्कटों से भरा हुआ है। अतः मेरे लिये अब केवल मृत्यु ही सबसे अच्छा उपाय है।

बाभ्रव्य-

* **हा दैव, किमिदमकारणमेव भरतकुलं संशयतुलामारोपितम्।** (चतुर्थ अङ्क)

राजा उदयन का कञ्चुकी बाभ्रव्य है यह चतुर्थ अङ्क में कहता है कि- हे विधाता! क्यों अकारण ही भरतवंश को संशयतुला (सन्देहरूपी तराजू) पर चढ़ा दिया ?

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'सिद्धेर्भ्रान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि-' यह सूक्ति यौगन्धरायण के द्वारा कही गयी है।

अतः विकल्प 'D' सही है।

स्रोत- रत्नावली (1.7) - श्रीकृष्ण त्रिपाठी, पेज 12

45. दशरूपकानुसारं- बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्। ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते इत्यादि लक्षणं भवति-
(A) मुखसन्धेः (B) गर्भसन्धेः
(C) निर्वहणसन्धेः (D) प्रतिमुखसन्धेः

व्याख्या- धनञ्जय और धनिक द्वारा प्रणीत दशरूपक के प्रथम प्रकाश में पञ्चसन्धियों की चर्चा की गयी है-

मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः।

मुख, प्रतिमुख, गर्भ, सावमर्श और उपसंहृति।

मुखसन्धि-

मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।
अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात्॥ (1/24)

जहाँ अनेक प्रकार के प्रयोजन और रस को निष्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति होती है, वह मुखसन्धि है। बीज और आरम्भ से मिलकर इसके 12 अङ्ग होते हैं।

बारह अङ्गों के नाम- 1. उपक्षेप 2. परिकर 3.परिन्यास 4. विलोभन 5. युक्ति 6. प्राप्ति 7. समाधान 8. विधान 9. परिभावना 10. उद्भेद 11. भेद 12. करण।

(2) प्रतिमुखसन्धि-

लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश॥ (1/30)

जहाँ उस बीज का कुछ लक्ष्य रूप में और कुछ अलक्ष्य रूप में उद्भेद होता है वह प्रतिमुख सन्धि कहलाती है। बिन्दु + प्रयत्न से मिलकर इसके तेरह अंग होते हैं।

तेरह अङ्ग- 1. विलास 2. परिसर्प 3. विधूत 4. शम 5. नर्म 6. नर्मद्युति 7. प्रगमन 8. निरोध 9. पर्युपासन 10. वज्र 11. पुष्प 12. उपन्यास 13. वर्णसंहार।

(3) गर्भसन्धि-

गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।
द्वादशाङ्गः पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसम्भवः॥ (1/36)

जहाँ दिखलाई देकर खोये हुए बीज का बार-बार अन्वेषण किया जाता है वह गर्भसन्धि है। इसमें पताका कहीं होती है कहीं नहीं भी होती, किन्तु प्राप्त्याशा नाम की कार्यावस्था होती ही है। इसके बारह अङ्ग हैं।

बारह अङ्ग- 1. अभूताहरण 2. मार्ग 3. रूप 4. उदाहरण 5. क्रम 6. संग्रह 7. अनुमान 8. तोटक 9. अधिबल 10. उद्वेग 11. संभ्रम 12. आक्षेप।

(4) अवमर्शसन्धि-

क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः॥ (1/43)

जहाँ क्रोध से, व्यसन से अथवा प्रलोभन से विमर्श किया जाता है तथा जिसमें गर्भसन्धि द्वारा निर्भिन्नबीजार्थ का सम्बन्ध दिखलाया जाता है वह अवमर्श सन्धि है।

तेरह अङ्ग- 1. अपवाद 2. संफेट 3. विद्रव 4. द्रव 5. शक्ति 6. द्युति 7. प्रसङ्ग 8. छलन 9. व्यवसाय 10. विरोधन 11. प्ररोचना 12. विचलन 13. आदान।

निर्वहणसन्धि-

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्॥ (1/48)

जहाँ बीज से सम्बन्ध रखने वाले मुख सन्धि आदि में अपने-अपने स्थान पर बिखरे हुए अर्थों को एक मुख्य प्रयोजन के साथ दिखलाया जाता है वह निर्वहण सन्धि कहलाती है।

चौदह अङ्ग- 1. सन्धि 2. विबोध 3. ग्रथन 4. निर्णय 5. परिभाषण 6. प्रसाद 7. आनन्द 8. समय 9. कृति 10. भाषा

11. उपगूहन 12. पूर्वभाव 13. उपसंहार 14. प्रशस्ति।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि दशरूपक में सन्धियाँ पाँच होती हैं। बीजवन्तो मुखाद्यर्था....यह निर्वहण सन्धि का लक्षण है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- दशरूपक - श्रीनिवास शास्त्री, पेज 81

46. प्रशंसात उन्मुखीकरणं दशरूपके कस्य लक्षणं भवति?

(A) भारत्याः (B) वीथ्याः

(C) प्ररोचनायाः (D) प्रहसनस्य

व्याख्या- आचार्य विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद में जिसमें दृश्य, श्रव्य काव्यों का निरूपण किया है-

भारती –

भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नराश्रयः। (6/29)
तस्याः प्ररोचना वीथी तथा प्रहसनामुखे।

संस्कृत बहुल वाग्व्यापार, जो नर के ही आश्रय हो, नारी के नहीं, उसे भारती कहते हैं। भारती के चार अङ्ग होते हैं-

1. प्ररोचना 2. वीथी 3. प्रहसन 4. आमुख।

प्ररोचना- अंगान्यत्रोन्मुखीकारः प्रशंसातः प्ररोचना। (6/30)

प्रशंसा के द्वारा श्रोताओं को प्रकृत वस्तु की ओर आकर्षित करना प्ररोचना कहलाता है।

उदाहरण- रत्नावली में श्रीहर्ष इत्यादि।

वीथी-

वीथ्यामेको भवेदङ्कः कश्चिदेकोऽत्र कल्प्यते।
आकाशभाषितै रूक्तैश्चित्रां प्रत्युक्तिमाश्रितः॥
सूचयेद् भूरिशृङ्गारं किंचिदन्यान् रसान्प्रति।
मुखनिर्वहणे संधी अर्थप्रकृतयोऽखिलाः॥ (6/254)

वीथी में एक ही अङ्क होता है और कोई एक पुरुष उत्तम-मध्यम या अधम नायक कल्पित कर लिया जाता है। आकाशभाषित के द्वारा विचित्र युक्ति प्रत्युक्ति होती है। शृङ्गार की बहुलता रहती है। इसमें मुख और निर्वहण सन्धियाँ होती हैं। अर्थप्रकृतियाँ सब रहती हैं। शृङ्गार की अधिकता के कारण कैशिकी वृत्ति प्रधान रहती है।

प्रहसन-

भाणवत्संधिसन्ध्यंगलास्यांगाङ्कैर्विनिर्मितम्।
भवेत्प्रहसनं वृत्तं निन्द्यानां कविकल्पितम्॥ (सा.द. 6/264)

भाण के समान सन्धि, सन्ध्यङ्ग, लास्याङ्ग और अङ्कों के द्वारा सम्पादित, निन्दनीय पुरुषों का कवि-कल्पित वृत्तान्त प्रहसन कहलाता है। इसमें न आरभटी होती है, न विष्कम्भक और न प्रवेशक। इसमें हास्यरस प्रधान रहता है। वीथ्यङ्ग कहीं होते हैं कहीं नहीं भी होते।

आमुख (प्रस्तावना)-

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा॥ (6/31)

जहाँ नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ अपने कार्य के विषय में विचित्र वाक्यों से इस प्रकार बातचीत करें, जिससे प्रस्तुत कथा का सूचन हो जाय उसे आमुख कहते हैं और उसी का नाम प्रस्तावना भी है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'प्रशंसात उन्मुखीकरणं' यह 'प्ररोचना' का लक्षण है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- साहित्यदर्पण - शालिग्राम शास्त्री, पेज 175

47. तर्कसंग्रहदीपिकानुसारं 'परमाणुष्वेव पाको, न द्व्यणुकादावपीति केषाम्मते ?

(A) नैयायिकानाम् (B) वैशेषिकानाम्

(C) साङ्ख्यानाम् (D) वेदान्तिनाम्

व्याख्या- न्यायवैशेषिक के प्रकरणग्रन्थ तर्कसंग्रह की अन्नम्भट्टकृत तर्कसंग्रहदीपिका टीका में 24 गुणों में 'रूप' गुण की व्याख्या में 'पाक' की चर्चा आती है-

* वैशेषिकों के मत में-**'परमाणुष्वेव पाकः न द्व्यणुकादौ' इति पीलुपाकवादिनो वैशेषिकाः**

पृथ्वी में रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये चारों गुण पाक द्वारा उत्पन्न होते हैं, अतः अनित्य हैं। अन्यत्र ये अपाकज हैं और नित्य तथा अनित्य दोनों प्रकार के होते हैं। ये नित्य पदार्थों में नित्य तथा अनित्य में अनित्य हैं।

* 'पिठरपाकवादिनो नैयायिकाः'- नैयायिकों को पिठरपाकवादी माना जाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि परमाणुष्वेव पाको, न द्व्यणुकादावपि यह वैशेषिकों का मत है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- तर्कसंग्रह - गोविन्दाचार्य, पेज 92

48. तर्कसंग्रहानुसारम् आत्ममात्रविशेषगुणेषु कस्य परिगणनं नास्ति ?

(A) बुद्धेः

(B) इच्छायाः

(C) स्थिति-स्थापकसंस्कारस्य

(D) धर्मस्य

व्याख्या- अन्नम्भट्टकृत तर्कसंग्रह में 24 गुणों की चर्चा की

गयी है, जिसमें 'बुद्धि' नामक गुण का लक्षण करते हुए कहते हैं- सर्वव्यवहारहेतुर्ज्ञानं बुद्धिः (सम्पूर्ण व्यवहारों का जो कारण गुण है उसे ज्ञान अर्थात् बुद्धि कहते हैं-

बुद्ध्यादयोऽष्टावात्ममात्रविशेषगुणाः। बुद्धीच्छाप्रयत्ना द्विविधाः नित्या अनित्याश्च। नित्या ईश्वरस्य अनित्या जीवस्य।

बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा,द्वेष, प्रयत्न, धर्म और अधर्म ये आठ केवल आत्मा में रहने वाले विशेष गुण हैं। उनमें बुद्धि, इच्छा और प्रयत्न ये तीन नित्य और अनित्य होते हैं। ये ईश्वर में नित्य होते हैं और जीव में अनित्य हैं।

संस्कारस्त्रिविधः वेगो भावना स्थितिस्थापकश्चेति।

वेगः पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिः।

वेग, भावना और स्थितिस्थापक के भेद से संस्कार तीन प्रकार का होता है और यह वेग, पृथिवी, जल, तेज, वायु और मन में रहता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- तर्कसंग्रह - गोविन्दाचार्य, पेज 267, 303

49. तर्कभाषानुसारं प्रमायाः करणं किम्भवति ?

(A) प्रमाता (B) प्रमेयम्

(C) तर्कः (D) इन्द्रियसंयोगादिः

व्याख्या- न्यायदर्शन के प्रकरणग्रन्थ तर्कभाषा में आचार्य केशवमिश्र षोडश पदार्थों में प्रथम परिगणित 'प्रमाण' पदार्थ का लक्षण करते हैं- 'प्रमाकरणं प्रमाणम्' अर्थात् प्रमा का करण प्रमाण है।

* यहाँ प्रमा की परिभाषा है- 'यथार्थानुभवः प्रमा' यथार्थ अनुभव का नाम प्रमा है।

* 'करण' का लक्षण करते हैं- 'साधकतमं करणम्' साधकतम को 'करण' कहते हैं।

* प्रमा के करण तो प्रमाता, प्रमेय आदि बहुत से होते हैं, तो क्या वे सभी प्रमा के करण होते हैं अथवा नहीं-?

इसके उत्तर में केशवमिश्र कहते हैं—प्रमाता और प्रमेय के होने पर भी इन्द्रियसन्निकर्ष सम्बन्ध के बिना प्रमा की उत्पत्ति नहीं होती, किन्तु इन्द्रियसंयोगादि के होने पर शीघ्र ही 'प्रमा' की उत्पत्ति होती है। इसलिए इन्द्रियसंयोगादि ही 'प्रमा' का कारण है—

''सत्यपि प्रमातरि प्रमेये च प्रमानुत्पत्तेरिन्द्रियसंयोगादौ सति अविलम्बेन प्रमोत्पत्तेरत इन्द्रियसंयोगादिरेव करणम्''

अतः इन्द्रियसंयोगादि ही प्रमा का करण होने से उसी को प्रमाण कहा जाता है—

''अत इन्द्रियसंयोगादिरेव प्रमाकरणत्वात् प्रमाणं न प्रमात्रादि–''

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इन्द्रियसंयोगादि ही प्रमा का करण है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- तर्कभाषा - श्रीनिवास शास्त्री, पेज 68, 69, 70

50. व्याप्यस्य पक्षवृत्तित्वधीः किमुच्यते ?

(A) पक्षता (B) सपक्षः

(C) परामर्शः (D) व्याप्तिः

व्याख्या- परामर्श- ''व्याप्यस्य पक्षवृत्तित्वधीः परामर्श उच्यते'' साध्य के व्याप्य का पक्ष में रहने का जो ज्ञान है उसी को परामर्श कहते हैं।

व्याप्ति- व्याप्तिः साध्यवदन्यस्मिन्नसम्बन्ध उदाहृतः।।

साध्य (जो हेतु के द्वारा अनुमेय है, जैसे वह्नि आदि) से युक्त भिन्न वस्तु में हेतु (धूम आदि) का सम्बन्ध न होना व्याप्ति कहा जाता है।

पक्ष- सिषाधयिषया शून्या सिद्धिर्यत्र न विद्यते।
स पक्षस्तत्र वृत्तित्वज्ञानादनुमितिर्भवेत्।।

साधन (अनुमान) करने की इच्छा से शून्य सिद्धि जहाँ नहीं है, वह पक्ष कहलाता है। उसमें वृत्तित्व के ज्ञान से अनुमिति होती है।

अन्नम्भट्ट के अनुसार- पक्ष, सपक्ष और विपक्ष की परिभाषा इस प्रकार है—

पक्ष- 'सन्दिग्धसाध्यवान् पक्षः' सन्दिग्ध साध्य वाला 'पक्ष' कहलाता है।

जैसे- धूमकत्व हेतु में पर्वत। क्योंकि पर्वत में धुएँ को उठते हुए देखकर व्यक्ति को उसमें अग्नि होने का सन्देह हुआ। अतः इस स्थिति में पर्वत यहाँ 'पक्ष' संज्ञा वाला होगा।

सपक्ष- 'निश्चितसाध्यवान् सपक्षः'- निश्चितरूप से साध्य वाला सपक्ष होता है।

जैसे- रसोई घर क्योंकि अग्नि और धूम के साहचर्य को सिद्ध करने के लिए अग्नि साध्य होगा, जिसकी रसोई घर में स्थिति अनिवार्यतः देखने को मिलती है। अतः महानस अर्थात् रसोईघर इस उदाहरण में सपक्ष संज्ञा वाला कहा जायेगा।

विपक्ष- 'निश्चितसाध्याऽभाववान् विपक्षः' साध्यरूप अग्नि के निश्चितरूप से अभाव वाला ही विपक्ष होता है।

जैसे- जलाशय को अग्नि के अभाव के उदाहरण रूप में निश्चयपूर्वक प्रस्तुत किया जा सकता है, क्योंकि जलाशय में अग्नि का पूर्णतया अभाव होता है। अतः वह धूमाग्नि सिद्धि उदाहरण में विपक्ष कहा जायेगा।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'व्याप्यस्य पक्षवृत्तित्वधीः परामर्श उच्यते'। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (अनुमानखण्ड), गणेशदत्त शास्त्रिशुक्लः, पेज 03

51.'मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं विदधे पुरुत्रा' इति मन्त्रांशो वर्तते-
(A) उषस्सूक्ते (B) कालसूक्ते
(C) वरुणसूक्ते (D) पर्जन्यसूक्ते

व्याख्या- उषस् सूक्त ऋग्वेद के मण्डल 3, सूक्त 61 है। इसके ऋषि विश्वामित्र, देवता उषस् हैं। छन्द त्रिष्टुप् है।

उषस् सूक्त-

* **ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश। मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं विदधे पुरुत्रा॥**

(उषस् सूक्त मं.-7)

वर्षा करने वाले सूर्य प्राकृतिक नियमों के अथवा अग्निहोत्र आदि नियमों के ज्ञापक सत्यभूत दिन के मूल में उषा को प्रेरित करता हुआ महान् द्युलोक और पृथ्वीलोक में सब ओर प्रविष्ट हो गया। मित्र देवता और वरुण देवता की महती माया अर्थात् विचित्र शक्ति-रूपा उषा देवी सुनहरी कान्ति के समान स्वर्णिम सूर्य को बहुत स्थानों में प्रसारित करती है।

* **अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी**

(उषस् सू. मं. 4)

धन सम्पत्तिशालिनी सूर्य की या दिन की पत्नी होती हुई यह उषा देवी वस्त्र के समान आच्छादित करने वाले अन्धकार का विनाश करती हुई अथवा अपने वस्त्र से अन्धकार को फेंकती हुई चली जाती है।

* **ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात्।**

(उषस् सूक्त मं.-6)

सत्य से युक्त अथवा सत्य नियमों का पालन कराने वाली उषा देवी द्युलोक से आने वाले अपने तेज पुञ्ज से जानी जाती है।

वरुणसूक्त-

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते॥

कर्मविशेष को स्वीकार करने वाला अर्थात् अपने अधिकृत कर्तव्य का पालन करने वाला वह वरुण देवता उत्पन्न होने वाली प्रजा से युक्त अथवा दिनों समेत चैत्र से लेकर फाल्गुन तक बारहों महीनों को जानता है और जो तेरहवाँ मास उत्पन्न हो जाता है, उसको भी वह जानता है।

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्याश्३स्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥

(मन्त्र -10)

अपने स्वीकृत नियमों का पालन करने वाले और श्रेष्ठ कर्मों को करने वाले वरुण देवता प्रजा के साम्राज्य की सिद्धि के लिए दिव्य प्रजाओं में आकर अधिष्ठित हुए हैं।

पर्जन्यसूक्त-

यत्पर्जन्य कनिक्रदत् स्तनयन् हंसि दुष्कृतः।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि॥ (म. 09)

हे पर्जन्य! जब तुम अत्यधिक शब्द करते हुये और गरजते हुए दुष्टों को मारते हो, यह सारा संसार और जो कुछ भी इस पृथिवी पर है,प्रसन्न हो जाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ''मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं विदधे पुरुत्रा'' यह मन्त्रांश उषस् सूक्त से सम्बद्ध है। **अतः विकल्प A सही है।**

स्त्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह - हरिदत्त शास्त्री, पेज 241

52. ऋग्वेदीय- पर्जन्यसूक्तस्य कः ऋषिरस्ति ?
(A) विश्वामित्रः (B) गौतमः
(C) अत्रिः (D) कण्वः

व्याख्या-

सूक्त	मण्डल/सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
अक्षसूक्त	10-34	कवष ऐलूष	अक्षकृषि प्रशंसा	14
पुरुषसूक्त	10-90	नारायण	पुरुष	16
हिरण्यगर्भसूक्त	10-121	हिरण्यगर्भ	क संज्ञक प्रजापति	10
वाक्सूक्त	10-125	वाक्	परमात्मा	08
नासदीयसूक्त	10-129	परमेष्ठी	सृष्टि-स्थिति-प्रलय कर्ता परमात्मा	07
अग्निसूक्त	1-1	मधुच्छन्दा	अग्नि	09
वरुणसूक्त	1-25	शुनःशेप	वरुण	21
सूर्यसूक्त	1-115	कुत्स	सूर्य	06
इन्द्रसूक्त	2-12	गृत्समद	इन्द्र	15
उषस् सूक्त	3-61	विश्वामित्र	उषस्	07
पर्जन्यसूक्त	5-83	अत्रि	पर्जन्य	10
यम-यमी संवाद	10-10	यमी वैवस्वती यम वैवस्वत	यमी वैवस्वती यम वैवस्वत	14
पुरूरवा उर्वशी संवाद	10-95	पुरूरवा ऐल उर्वशी	उर्वशी पुरूरवा	14
सरमा पणिसंवाद	10-108	पणि, सरमा	सरमा, पणि	11
विश्वामित्र नदी संवाद	3.33	विश्वामित्र	नदियाँ विपाट्/शुतुद्री	13

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पर्जन्यसूक्त के ऋषि 'अत्रि' हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्त्रोत- ऋक्सूक्त संग्रह - हरिदत्त शास्त्री, पेज 283

53. यजुर्वेदीय शिवसंकल्पमन्त्राणां का देवता ?
(A) मनस् (B) शिवः
(C) संकल्पः (D) विष्णुः

व्याख्या-

सूक्त	ऋषि	देवता	छन्द	मन्त्र
शिवसंकल्पसूक्त (यजुर्वेद)	याज्ञवल्क्य	मनस्	त्रिष्टुप्	06
पृथिवीसूक्त (12.1) (अथर्ववेद)	अथर्वा	भूमि	त्रिष्टुप्, जगती, पंक्ति	63
कालसूक्त (अथर्ववेद)	भृगु	काल	त्रिष्टुप्	10
राष्ट्राभिवर्धनसूक्त वशिष्ठ (अथर्ववेद)	वशिष्ठ	ब्रह्मणस्पति अभीवर्तमणि	अनुष्टुप्	6
ज्ञानसूक्त (10/7)	बृहस्पति	परब्रह्मज्ञान	9वें में जगती शेष में त्रिष्टुप्	11

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि यजुर्वेदीय शिवसंकल्पमन्त्र के देवता 'मनस्' है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- वैदिक सूक्तसंग्रह - विजयशङ्कर पाण्डेय, पेज 51

54. ऋग्वेदप्रातिशाख्यानुसारं रक्त-संज्ञका के सन्ति ?
(A) कण्ठ्यवर्णाः (B) अयोगवाहाः
(C) निरनुनासिकवर्णाः (D) अनुनासिकवर्णाः

व्याख्या- रक्तसंज्ञा

* **रक्तसंज्ञोऽनुनासिकः-** अनुनासिक वर्ण रक्तसंज्ञक हैं।
जैसे- ङ, ञ, ण, न, म।

* **समानाक्षरसंज्ञा-** अष्टौ समानाक्षराण्यादितः।
आदि अर्थात् प्रारम्भ के आठ अक्षरों की समानाक्षर संज्ञा है।
उदाहरण- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ।

* **सन्ध्यक्षरसंज्ञा-** 'ततश्चत्वारि सन्ध्यक्षराण्युत्तराणि।'
तत्पश्चात् आगे वाले चार अक्षर सन्ध्यक्षर हैं।
उदाहरण- ए, ओ, ऐ, औ।

* **संयोगसंज्ञा-** संयोगस्तु व्यञ्जनसंनिपातः।
व्यञ्जन वर्णों का मेल (सन्निपात) संयोग संज्ञा है। यथा- प्रप्रवस्त्रिष्टुभमिषम्।

* **प्रगृह्यसंज्ञा-** ओकार आमन्त्रितजः प्रगृह्यः।
सम्बोधन (आमन्त्रित) से उत्पन्न अर्थात् सम्बोधन पद के अन्त में विद्यमान ओकार प्रगृह्य संज्ञक होता है।
यथा- (i) इन्दो इति (i) विष्णो इति

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि रक्तसंज्ञक अनुनासिक वर्ण होते हैं। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- ऋग्वेद प्रातिशाख्यम् - वीरेन्द्र कुमार वर्मा, पेज 69

55. 'तिस्र एव देवताः' इति कथनमस्ति ?
(A) निरुक्ते दैवतकाण्डे
(B) ऋक्प्रातिशाख्ये
(C) निरुक्ते द्वितीयेऽध्याये
(D) अथर्ववेदे राष्ट्राभिवर्धनसूक्ते

व्याख्या- यास्क प्रणीत निरुक्त निघण्टु ग्रन्थ की व्याख्या है। यह निघण्टु ग्रन्थ पाँच अध्याय और तीन काण्डों में विभाजित है। प्रथम तीन अध्याय 'नैघण्टुक काण्ड' कहलाते हैं। चौथा अध्याय ऐकपदिक या 'नैगमकाण्ड' कहा जाता है और पाँचवा अध्याय दैवतकाण्ड है।

दैवतकाण्ड- निघण्टु के शब्दों को तीन भागों में बाँटा गया है। एक तो वे शब्द जो वेदों में प्रधानरूप से स्तुत देवताओं के नाम है। इन शब्दों को दैवत कहते हैं।

नैगमकाण्ड- दूसरे वे शब्द जो अनेकार्थक हैं। अर्थात् जिनमें यह स्पष्ट नहीं है कि यह शब्द किस धातु से, किस प्रत्यय से मिलकर बना है उनका नाम ऐकपदिक या नैगम है।

नैघण्टुक काण्ड- पर्याय शब्द अथवा एकार्थक अनेक शब्द और एकार्थक अनेक धातु, इनका नाम निघण्टु ही रहने दिया। प्राचीन काल में शब्दसंग्रहरूप कोशग्रन्थों को निघण्टु कहा करते थे। यह पञ्चाध्यायात्मक उपर्युक्त निघण्टु ग्रन्थ भी वैदिक शब्दों का छोटा सा संग्रह कोष है।

* यास्क निरुक्त के सप्तम अध्याय के द्वितीयपाद के दैवतकाण्ड में देवता की चर्चा करते हुए कहते हैं-

* **तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। 'अग्निः पृथिवीस्थानः वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः। सूर्यो द्युस्थानः।'**

तीन ही देवता हैं- पहला अग्नि जो कि पृथिवीस्थानीय है दूसरा वायु अथवा विद्युदाख्य इन्द्र और तीसरा द्युस्थानीय सूर्य है।

* ऋग्वेद में इनकी संख्या तीन ही बताई गई है। वास्तव में उक्त देवता तत्तत् स्थानों के प्रतिनिधि देवता हैं, यही नैरुक्तों की मान्यता है।

* देवता की संख्या विभिन्न दृष्टियों से भिन्न-भिन्न हो सकती है। यहाँ स्थान को आधार बनाकर उनकी संख्या को निश्चित करने का प्रयास किया गया है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि निरुक्त के अनुसार देवताओं की संख्या तीन है। 'तिस्र एव देवता' यह निरुक्त के दैवतकाण्ड में है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- हिन्दी निरुक्त - कपिलदेव शास्त्री, पेज 280

56. जन्मादयो विकाराः ब्रह्मणः कां शक्तिमुपाश्रिताः भवन्ति
(A) आवरणशक्तिम्
(B) आध्यात्मिकीं शक्तिम्
(C) कालशक्तिम्
(D) भिन्नात्मिकां शक्तिम्

व्याख्या- भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय के आदिम ब्रह्मकाण्ड में सर्वप्रथम शब्दतत्त्व की नित्यता को दर्शाते हुए उससे ही नामरूपात्मक जगत् की उत्पत्ति मानी गई है। प्रथम श्लोक में कहा गया है-

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥1॥

जो उत्पत्ति और विनाश से रहित कभी क्षीण न होने वाला अविनाशी ब्रह्म परमेश्वर अथवा वेद है, वही शब्दतत्त्व और अर्थ का मूल शब्दब्रह्म कहलाता है।
ब्रह्म की किन शक्तियों से जन्मादि षड्विकार उत्पन्न होते हैं, उसको बताते हैं-

अध्याहित कला यस्य कालशक्तिमुपाश्रिताः।
जन्मादयो विकाराः षड्भावभेदस्य योनयः॥3॥

जिस ब्रह्म की अविनाशी शक्तियाँ समय की शक्ति को प्राप्त हुई, उसी से पैदा होना, अस्तित्व में आना, बढ़ना परिवर्तन होना, अपक्षय होना ये षड्विकार उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के रूपान्तर पदार्थों के भेद-प्रभेदों के कारण हुआ करते हैं।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि 'जन्मादयो विकाराः ब्रह्मणः कालशक्तिमुपाश्रिताः' है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**
स्रोत- वाक्यपदीयम् (1/3) - शिवशङ्कर अवस्थी, पेज 58

57. अत्रातीतविपर्यासः केवलामनुपश्यति।
छन्दस्यश्छन्दसां योनिमात्मा छन्दोमयीं तनुम्॥
अस्यां कारिकायाम् 'छन्दस्यः' इत्यस्य शब्दस्य कोऽर्थः?
(A) वेदार्थग्रहणसमर्थः
(B) स्वतन्त्रः
(C) वैदिकछन्दसां निर्माता
(D) वैदिकछन्दसां प्रयोगे निष्णातः

व्याख्या- भर्तृहरिकृत वाक्यपदीयम् के ब्रह्मकाण्ड में कहा गया है-

अत्रातीतविपर्यासः केवलामनुपश्यति।
छन्दस्यः छन्दसां योनिमात्मा छन्दोमयीं तनुम्॥1/17॥

(अत्र) इस व्याकरण में (अतीतविपर्यासः) शब्दों के अपभ्रंश प्रयोग की आशंका या भय नहीं रहता। (छन्दस्यः) वेदों के और (छन्दसां) संस्कृत भाषा के शब्दों के ज्ञान से शुद्ध हुआ अन्तःकरण वेदमन्त्रों के (योनिम्) कारणरूप (छन्दोमयीम्) छन्दोवाक् अथवा आद्यऋषियों की अन्तरात्मा में सूक्ष्म रूप से ईश्वर प्रेरणा से प्राप्त वेदवाणी रूप शरीर को जो एकमात्र मूल-यथार्थ ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण वाणी है, उसको ही एक वैयाकरण, विद्वान् भाषा शब्दों के संस्कार के लिए (अनुपश्यति) आश्रय रूप में जानता है।
भर्तृहरि ने छन्दस्य शब्द का अर्थ किया है-

छन्दस्यः छन्दसि साधुः रक्षकत्वात्।
छन्दस्य आत्मा व्याकरणादपगतशब्दार्थविपर्यासः
छन्दोमयीं तनुं परमं वेदरूपं पश्यतीति व्याचख्यौ।
द्वावुपादानशब्देषु शब्दौ शब्दविदो विदुः।
एको निमित्तं शब्दानामपरोऽर्थे प्रयुज्यते। (1/43)

शब्दशास्त्र और शब्दतत्त्व को जानने वाले उपादान अर्थात् अर्थरूप प्रयोजन को दर्शाने के लिए जो शब्द वक्ता द्वारा बोले जाते हैं, उनमें शब्द दो प्रकार का है। उपादान शब्दों के मध्य में जो उनका बाह्यरूप है अर्थात् वर्णसमुदाय रूप वाचक अंश है, वह एक वैखरी रूप, ध्वन्यात्मक अंश कारण रूप अंश है, वह शब्द के अर्थ में प्रयुक्त होता है। वैयाकरणों ने इस शब्द के वाच्य अर्थ रूप अंश को मध्यमावाक् और स्फोट नाम से अभिहित किया है।
'स्फुटत्यर्थोऽस्मादिति स्फोटः'- इस व्युत्पत्ति के अनुसार स्फोट, शब्द का वह वास्तविक और नित्य स्वरूप है, जो उस शब्द के अर्थ को प्रकाशित करता है।
स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि छन्दस्य शब्द का अर्थ 'वेदार्थग्रहणसमर्थ' है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**
स्रोत- वाक्यपदीयम् (1.17) - शिवशङ्कर अवस्थी, पेज 126

58. स्फोटः भेदवान् कथं प्रतीयते ?
(A) भिन्नद्रव्यानाम् अभिव्यक्तिसाधनात्
(B) भिन्नोच्चारणात्
(C) भिन्नार्थेषु प्रयोगात्
(D) नादस्य क्रमजन्मत्वात्

व्याख्या- भर्तृहरिकृत वाक्यपदीयम् के (प्रथमकाण्ड) ब्रह्मकाण्ड में स्फोट की चर्चा की गयी है-

नादस्य क्रमजन्मत्वान्न पूर्वो न परश्च सः।
अक्रमः क्रमरूपेण भेदवानिव जायते॥ (1/48)

(नादस्य) अकेले ध्वनि के ही (क्रमजन्मत्वात्) क्रमशः एक-एक वर्ण के पश्चात् दूसरे-दूसरे वर्ण के पैदा होने से (सः) वह स्फोट नाद ध्वनि के समान न तो पहले वाला और न बाद वाला इस प्रकार के व्यपदेश को प्राप्त हुआ करता है। वस्तुतः पौर्वापर्य के व्यवहार से रहित होने के कारण स्फोट सर्वथा क्रमशून्य एक रूप रहा करता है, किन्तु व्यञ्जक नाद या ध्वनि के वाला जैसा हो जाया करता है। वस्तुतः स्फोट एकरूप ही है और इस प्रकार स्फोट

और नाद भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं, यह कारिका का आशय है।

शब्दस्योर्ध्वमभिव्यक्तेर्वृत्तिभेदं तु वैकृताः।
ध्वनयः समुपोहन्ते स्फोटात्मा तैर्न भिद्यते॥ (1/76)

शब्द की अभिव्यक्ति अर्थात् उच्चारण के पश्चात् ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत नामक वृत्तियों को एक, दो, तीन मात्राओं वाली विकार को प्राप्त ध्वनियाँ निष्पन्न करती हैं, किन्तु इस उच्चारण प्रक्रिया से उनके द्वारा स्फोटरूप शब्दात्मा में ह्रस्वादि भेद नहीं होता। वह स्फोट सदा एक ही रूप में बना रहता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट होता है कि स्फोटः भेदवान् नादस्य क्रमजन्मत्वात् प्रतीयते। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वाक्यपदीयम् (1/47) - शिवशङ्कर अवस्थी, पेज 218

59. एषूदाहरणेषु वैषयिकाधारस्योदाहरणं किमस्ति ?
(A) मोक्षे इच्छाऽस्ति (B) कटे आस्ते
(C) स्थाल्यां पचति (D) सर्वस्मिन्नात्मास्ति

व्याख्या- आधारोऽधिकरणम् (1.4.45)

क्रिया के साक्षात् आधार कर्ता और कर्म होते हैं लेकिन उनके कर्ता और कर्म के आधार को भी परम्परा से क्रिया का आधार माना जाता है। अधिकरण उसे कहते हैं जो कर्ता या कर्म का आधार होता है।

सप्तम्यधिकरणे च (2.3.36)

अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति होती है। सूत्र में आये हुए 'च' के कारण दूरवाची और समीपवाची शब्दों में भी सप्तमी विभक्ति होती है।

सूत्र में चकार की अनुवृत्ति इस सूत्र के पूर्ववर्ती 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' से दूरान्तिकार्थेभ्यः की अनुवृत्ति आती है अतः दूर और अन्तिक के अर्थ वाले शब्दों से भी सप्तमी होती है।

आधार- आधार तीन प्रकार के होते हैं-

(1) औपश्लेषिक (2) वैषयिक (3) अभिव्यापक

औपश्लेषिक- संयोग सम्बन्धी आधार। जहाँ आधार और आधेय का संयोग भौतिक हो उसे औपश्लेषिक आधार कहते हैं।

(i) कटे आस्ते- (चटाई पर बैठता है।)

बैठना क्रिया का साक्षात् आश्रय है। उस कर्ता का आधार है कट। बैठने वाले का कट के साथ स्पर्शमात्र का संयोग है। अतः यहाँ औपश्लेषिक आधार है और सप्तम्यधिकरणेन सूत्र से औपश्लेषिक आधार कट में सप्तमी विभक्ति होकर कटे बना।

(ii) स्थाल्यां पचति। (पतीली में पकाता है।)

2. वैषयिक आधार- जिस आधार के साथ आधेय का बौद्धिक संश्लेषण हो उसे वैषयिक आधार कहते हैं।

उदाहरण- मोक्षे इच्छास्ति (मोक्ष सम्बन्धी इच्छा है।)

यहाँ मोक्ष का विषय है। अतः इच्छारूपी कर्ता के वैषयिक आधार मोक्ष की 'आधारोऽधिकरणम्' सूत्र से अधिकरणसंज्ञा हुई और 'सप्तम्यधिकरणे च' से सप्तमी विभक्ति होकर 'मोक्षे' बना।

3. अभिव्यापक आधार- जिस आधार के सम्पूर्ण अवयवों में आधेय व्याप्त रहता है। उसे अभिव्यापक आधार कहते हैं।

उदाहरण- सर्वस्मिन् आत्मा अस्ति- (सबमें आत्मा व्याप्त है।)

आधेय आत्मा है और सर्व अभिव्यापक है। अतः आधारोऽधिकरणम् सूत्र से सर्व की अभिव्यापक आधार संज्ञा हुई और 'सप्तम्यधिकरणे च' सूत्र से सप्तमी विभक्ति होकर सर्वस्मिन् बना।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वैषयिक आधार का उदाहरण 'मोक्षे इच्छास्ति' है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- सिद्धान्तकौमुदी (कारकप्रकरण)-राममुनि पाण्डेय, पेज 93

60. पाणिनीयशिक्षानुसारम् उदात्तस्वरोच्चारणकाले हस्तः कुत्र निधेयः?
(A) हृदि (B) कर्णमूले
(C) सर्वास्ये (D) मूर्ध्नि

व्याख्या- * षड्वेदाङ्गों में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

* शिक्षा का प्रथम सोपान वर्णशिक्षा है।
* शिक्षा का अर्थ सायण ने ऋग्वेदभाष्यभूमिका में किया है- "वर्णस्वराद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा।"

जिसमें वर्ण, स्वर आदि उच्चारण प्रकारों का उपदेश हो, उसे शिक्षा कहते हैं।

* पाणिनीयशिक्षा ऋग्वेदीय शिक्षा के अन्तर्गत आती है।
* इस शिक्षा में साठ (60) श्लोक हैं।

पहले श्लोक में पाणिनि ने लौकिक और वैदिक शिक्षा को बताया गया है-

* **अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा।**
  शास्त्रानुपूर्वं तद् विद्याद् यथोक्तं लोकवेदयोः॥1॥

अब मैं पाणिनि के मत के अनुकूल शिक्षा को कहूँगा। शिष्यजन पाणिनि के उस मत को वैदिक, लौकिक विषयों में पूर्वाचार्यों से प्रोक्त लौकिक वैदिक शिक्षाशास्त्रों में जो कहा गया है उसी के अनुगत जाने।

* **त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।**
  प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा॥3॥

प्राकृत और संस्कृत भाषा में शम्भु के मत में तिरसठ या चौंसठ वर्ण कहे गये हैं। स्वयं ब्रह्मा के द्वारा भी यह कहा गया है।

* **स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः।**
  यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः॥4॥

* **अनुस्वारो विसर्गश्च क पौ चापि पराश्रितौ**
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो ऌकारः प्लुत एव च॥5॥

इक्कीस स्वर, पच्चीस व्यञ्जन, यादि आठ और यम चार जानने चाहिए। अनुस्वार एक, विसर्ग एक, क प दो (जिह्वामूलीय, उपध्मानीय) पराश्रित, दुःस्पृष्ट एक और प्लुत ऌकार एक जानना चाहिये।

* **अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः।**
स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः॥48॥

अनुदात्त स्वर का स्थान हृदय को, उदात्त का मूर्धा को, स्वरित का कर्णमूल को और प्रचय का समस्त मुख (नासाग्रभाग से तात्पर्य है) को समझना चाहिए।

* **मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥52॥**

स्वर से अथवा वर्ण से हीन मन्त्र मिथ्याप्रयुक्त होने के कारण उस अर्थ को नहीं कहता है। वह मन्त्र वाणीरूपी वज्र होकर यजमान का नाश करता है, जिस प्रकार स्वरदोष से युक्त इन्द्रशत्रुः (शब्द)।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि उदात्त स्वर के उच्चारण काल में मूर्द्धा का प्रयोग होता है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- पाणिनीयशिक्षा - (श्लोक 48)

61. व्यासभाष्यानुसारेण का उक्तिः सत्या ?
(A) चित्तं हि प्रख्याप्रवृत्तिस्थितिशीलत्वात् त्रिगुणम्।
(B) चित्तवृत्तीनां निरोधः असाध्यः।
(C) सर्ववृत्तिनिरोधे सम्प्रज्ञातः समाधिः।
(D) चित्तवृत्तिबोधे पुरुषस्य अनादिः सम्बन्धः न हेतुः।

व्याख्या- पातञ्जल कृत योगदर्शन के (प्रथमपाद) समाधिपाद में योग का लक्षण -

* **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**॥1/2॥

योग चित्तवृत्तियों का निरोध है।

व्यासभाष्य में सूत्रस्थ 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' में चित्त को परिभाषित करते हुये कहते हैं-

***चित्तं हि प्रख्याप्रवृत्तिस्थितिशीलत्वात् त्रिगुणम्।**

चित्त प्रकाशशील, चेष्टाशील एवं स्थैर्यशील होने से त्रिगुणात्मक है।

* इसी प्रकार व्यासभाष्य में योग को बताते हैं-

सर्वशब्दाग्रहणात्सम्प्रज्ञातोऽपि योग इत्याख्यायते।

सर्व शब्द का प्रयोग न किये जाने के कारण सम्प्रज्ञात समाधि भी योग कही जाती है।

व्यासभाष्य के अन्य- महत्त्वपूर्ण वचन-

अथ योगानुशासनम् (1/1)। अब योगशास्त्र आरम्भ होता है।

* 'अथ' शब्द का अर्थ व्यासभाष्य में 'अथेत्ययमधिकारार्थः' अर्थात् यह 'अथ' शब्द अधिकारवाचक है।

* क्षिप्तं, मूढं, विक्षिप्तमेकाग्रं, निरुद्धमिति चित्तभूमयः। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध चित्त की ये पाँच भूमियाँ हैं।

* स च वितर्कानुगतो, विचारानुगत, आनन्दानुगतोऽस्मितानुगत इत्युपरिष्टात्प्रवेदयिष्यामः।

वह सम्प्रज्ञात योग वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत तथा अस्मितानुगत इन चार अवस्थाओं वाला होता है।

* **सर्ववृत्तिनिरोधस्त्वसम्प्रज्ञातसमाधिः॥ (1/1)**

सभी वृत्तियों का निरोध होने पर तो असम्प्रज्ञात समाधि होती है। (वही असम्प्रज्ञात योग है।)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि व्यासभाष्य के अनुसार चित्त के विषय में 'चित्तं हि प्रख्याप्रवृत्तिस्थितिशीलत्वात् त्रिगुणत्वम्।' यह पंक्ति सत्य है अन्य तीन विकल्प असंगत हैं। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- पातञ्जलयोगदर्शन - सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, पेज 09

62. ब्रह्मसूत्रस्य रचयिता कोऽस्ति ?
(A) शङ्कराचार्यः (B) बादरायणः
(C) कपिलः (D) सदानन्दः

व्याख्या-

ग्रन्थ	आचार्य
ब्रह्मसूत्र	बादरायण
शारीरकभाष्य	शङ्कराचार्य
सांख्यदर्शन	कपिल
वेदान्तसार	सदानन्द
न्यायदर्शन	गौतम
वैशेषिकदर्शन	कणाद
पूर्वमीमांसादर्शन	जैमिनि
उत्तरमीमांसा/वेदान्तदर्शन	बादरायण
योगदर्शन	पतञ्जलि

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि ब्रह्मसूत्र के रचनाकार बादरायण हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वेदान्तसार - राकेश शास्त्री, पेज भू. 04

63. शब्दप्रमाणस्य फलं किम्भवति ?
(A) पदज्ञानम् (B) वाक्यार्थज्ञानम्
(C) शक्तिज्ञानम् (D) पदजन्यपदार्थस्मरणम्

व्याख्या- अन्नम्भट्टप्रणीत तर्कसंग्रह में चार प्रमाण बताये

गये हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द। ये शब्दप्रमाण की चर्चा करते हुए कहते हैं कि-

आप्तवाक्यं शब्दः- आप्त (व्यक्ति) का वाक्य शब्दप्रमाण होता है। आप्तपुरुष से अभिप्राय यथार्थ वक्ता से है।

शक्तं पदम्- शक्ति से युक्त पद होता है। इस पद से यह अर्थ समझना चाहिए, इस प्रकार का ईश्वरसङ्केत ही शक्ति है।

वाक्यार्थज्ञानम्- आकांक्षा-योग्यता-सन्निधिश्च वाक्यार्थज्ञाने हेतुः। आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि वाक्य के अर्थज्ञान के प्रति कुल तीन हेतु हैं।

एक पद का अन्य अर्थ के अभाव में शब्द का बोध करवाने की असमर्थता ही आकांक्षा होती है तथा पदों का बिना किसी विलम्ब के उच्चारण करना ही सन्निधि होती है।

शब्दप्रमाण के फल- **वाक्यार्थज्ञानं शाब्दज्ञानम्। तत्करणं तु शब्दः।** वाक्य के अर्थ का ज्ञान ही शाब्द-ज्ञान होता है और उसका 'करण' शब्द ही है।

वाक्यार्थ ज्ञान के हेतु	आकाङ्क्षा	योग्यता
		सन्निधि(आसत्ति)
शाब्दबोध हेतु एक शब्द	अर्थ का बाधारहित	
		पदों का अविलम्ब
के साथ अन्य शब्द का प्रयोग	होना	उच्चारण
गौरश्वः पुरुषो हस्ती	अग्निना सिञ्चति	गाम् आनय
आकांक्षायाः	योग्यतायाः	सन्निध्याः अभावः एषु वाक्येषु

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शब्द प्रमाण का फल वाक्यार्थज्ञान है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- तर्कसंग्रह - अनितासेन गुप्ता, पेज 111

64. न्यायसिद्धान्तमुक्तावल्यां साध्यशून्यो यत्र पक्षस्त्वसौ क उदाहृतः ?

(A) विरुद्धः (B) बाधः
(C) अनैकान्तिकः (D) सत्प्रतिपक्षः

व्याख्या- श्रीविश्वनाथपञ्चाननभट्टाचार्य प्रणीत न्यायसिद्धान्तमुक्तावली के अनुमानखण्ड में हेत्वाभास की चर्चा करते हैं-

अनैकान्तो विरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः।
कालात्ययापदिष्टश्च हेत्वाभासास्तु पञ्चधा॥

अनैकान्त, विरुद्ध, असिद्ध, प्रतिपक्षित एवं कालात्ययापदिष्ट- इस प्रकार हेत्वाभास पाँच प्रकार के होते हैं।

आद्यः साधारणस्तु स्यादसाधारणकोऽपरः।
तथैवानुपसंहारी त्रिधाऽनैकान्तिको भवेत्॥

पहला साधारण, दूसरा असाधारण एवं तीसरा अनुपसंहारी भेद से अनैकान्तिक हेत्वाभास तीन प्रकार का होता है।

यः सपक्षे विपक्षे च भवेत् साधारणस्तु सः॥

जो हेतु सपक्ष एवं विपक्ष में भी होता है, वह साधारण कहलाता है।

यस्तूभयस्माद् व्यावृत्तः स चासाधारणो मतः॥

जो दोनों (सपक्ष एवं विपक्ष) से अलग रहे, वह हेतु असाधारण माना जाता है।

तथैवानुपसंहारी केवलान्वयिपक्षकः।

उसी तरह केवलान्वयी पक्ष वाला अनुपसंहारी होता है।

विरुद्ध- यः साध्यवति नैवाऽस्ति स विरुद्ध उदाहृतः।

जो साध्य के अधिकरण में नहीं है, वैसा हेतु विरुद्ध कहलाता है।

आश्रयासिद्धिराद्या स्यात्स्वरूपासिद्धिरप्यथ।
व्याप्यत्वासिद्धिरपरा स्याद् सिद्धिरतस्त्रिधा॥

पहली आश्रयासिद्धि, उसके बाद स्वरूपासिद्धि, तीसरी व्याप्यत्वासिद्धि, इस कारण असिद्धि तीन प्रकार की होती है।

पक्षासिद्धिर्यत्र पक्षो भवेन्मणिमयो गिरिः।

पक्षासिद्धि वहाँ होती है जहाँ मणिमय गिरि पक्ष होता है।

ह्रदो द्रव्यं धूमत्त्वादत्रासिद्धिरथापरा॥

ह्रदो द्रव्यं धूमवत्वात् में दूसरी असिद्धि होती है।

व्याप्यत्वासिद्धिरपरा नीलधूमादिके भवेत्॥

नीलधूम आदि में व्याप्यत्वासिद्धि होती है।

सत्प्रतिपक्ष- विरुद्धयोः परामर्शे हेत्वोः सत्प्रतिपक्षता॥

परस्पर असमान अधिकरणवाले साध्यों के जो हेतु हैं उनके साध्य व्याप्यवान् पक्ष तथा साध्याभाव व्याप्यवान् पक्ष ऐसे दोनों परामर्शों में सत्प्रतिपक्षता होती है और उससे युक्त सत्प्रतिपक्ष होता है।

बाध- साध्यशून्यो यत्र पक्षस्त्वसौ बाध उदाहृतः।
उत्पत्तिकालीनघटे गन्धादिर्यत्र साध्यते॥

जहाँ पक्ष साध्य से शून्य होता है वह बाध कहलाता है, जहाँ उत्पत्तिकालीन घट में गन्ध आदि साधित किया जाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'साध्यशून्यो यत्र पक्षस्त्वसौ बाध उदाहृतः'। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- न्यायसिद्धान्तमुक्तावली - महानन्द झा, पेज 127

65. बौद्धदर्शनस्य भावनाचतुष्टये किं नोपदिष्टम् ?

(A) सर्वं क्षणिकं क्षणिकम् (B) स्वलक्षणं स्वलक्षणम्
(C) सामान्यं सामान्यम् (D) शून्यं शून्यम्

व्याख्या- भारतीयदर्शन को मुख्यरूप से दो भागों में विभाजित किया गया है- (1) आस्तिक (2) नास्तिक

आस्तिक दर्शन

सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा।

नास्तिक दर्शन

(1) चार्वाक (2) जैन (3) बौद्ध

* **बौद्धदर्शन के चार भेद-** ये बौद्ध लोग चार प्रकार की भावना (दृष्टिकोण) से परम पुरुषार्थ का वर्णन करते हैं। ये बौद्ध माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक के नाम से प्रसिद्ध है।

1. सब कुछ शून्य होना -सर्वं शून्यम् (माध्यमिक)
2. बाह्यपदार्थों का शून्य होना -बाह्यार्थशून्यत्व (योगाचार)
3. बाह्यपदार्थों का अनुमान से ज्ञान होना - बाह्यार्थानुमेयत्वम् (सौत्रान्तिक)
4. बाह्यपदार्थों का प्रत्यक्ष से ज्ञान होना- बाह्यार्थप्रत्यक्षत्व (वैभाषिक)

* **भावनाचतुष्टय**

1. सब कुछ क्षणिक है क्षणिक -सर्वं क्षणिकं क्षणिकं
2. सब कुछ दुःख है दुःख -दुखं दुखं
3. सबों का लक्षण अपने आप में है -स्वलक्षणं स्वलक्षणं
4. सब कुछ शून्य है शून्य -शून्यं शून्यम्

* **चार आर्यसत्य**- 1. दुःख 2. समुदाय 3. निरोध 4. मार्ग दुःखसमुदायनिरोधमार्गाश्चत्वार आर्यबुद्धस्याभिमतानि तत्त्वानि।

* बौद्ध के अनुसार पाँच स्कन्ध हैं-

1. रूपस्कन्ध 2. विज्ञानस्कन्ध 3. वेदनास्कन्ध 4. संज्ञास्कन्ध 5. संस्कारस्कन्ध

सोऽयं चित्तचैत्तात्मकः स्कन्धः पञ्चविधो रूप-विज्ञान-वेदना संज्ञासंस्कारसंज्ञकः।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि भावनाचतुष्टय के अन्तर्गत 'सामान्यं सामान्यम्' नहीं आता है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- सर्वदर्शन संग्रह - उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पेज 31

66. शयिता सविधेऽप्यनीश्वरा सफलीकर्तुमहो मनोरथान् पण्डितराजजगन्नाथेन कस्य काव्यस्य उदाहरणरूपे उद्धृतोऽयं श्लोकः ?

(A) अधमस्य (B) उत्तमोत्तमस्य

(C) उत्तमस्य (D) मध्यमस्य

व्याख्या- पं. राज जगन्नाथ कृत रसगङ्गाधर के अन्तर्गत चार आनन हैं। प्रथम आनन में काव्य के चार भेदों की चर्चा करते हैं-

तच्चोत्तमोत्तमोत्तममध्यमाधमभेदाश्चतुर्धा।

1. उत्तमोत्तम 2.उत्तम 3. मध्यम 4. अधम

उत्तमोत्तम काव्य- शब्दार्थौ यत्र गुणीभावितात्मानौ कमप्यर्थमभि- व्यङ्क्तस्तदाद्यम् ।

जिसमें शब्द और अर्थ (वाच्य, लक्ष्य, व्यङ्ग्य) दोनों अपने को गौण बनाकर किसी (चत्मकारजनक प्रधान) अर्थ को व्यक्त करते हैं, उसे उत्तमोत्तम काव्य कहते हैं।

उदाहरण- शयिता सविधेऽप्यनीश्वरा सफलीकर्तुमहो मनोरथान् दयिता दयिताननाम्बुजं दरमीलन्नयना निरीक्षते।।

नववधू अपने प्रियतम के समीप सोई है, परन्तु आश्चर्य है कि वह अपने मनोगत मनोरथों को सफल बनाने में असमर्थ है- उसे लज्जा और भय ने दबा रखा है, जिससे वह कुछ कर नहीं पाती इस स्थिति में प्रियतम की अभिलाषायें भी पूर्ण नहीं हो पातीं यह स्वतः सिद्ध है, फिर भी वह प्रियतम की दयिता है, प्रेयसी है, केलि विमुख भी नवोढा पत्नी सहृदय प्रेमियों के लिए अप्रीतिकर नहीं अपितु प्रीतिवर्धक होती है।

अब यहाँ ग्रन्थकार इस पद्य से होने वाले उस व्यङ्ग्य को दर्शाते हैं जिसके बल पर यह श्लोक उत्तमोत्तम काव्य का उदाहरण है।

यत्र व्यङ्ग्यप्रधानमेव सच्चमत्कारकारणं तद् द्वितीयम्।।

जिस काव्य में व्यङ्ग्य अप्रधान होकर ही चमत्कार का कारण हो, वह द्वितीय उत्तम नामक काव्य कहलाता है।

उदाहरण – राघवविरहज्वाला-सन्तापितसह्यशैलशिखरेषु। शिशिरे सुखं शयानाः कपयः कुप्यन्ति पवनतनयाय।।

* **यत्र व्यङ्ग्यचमत्कारासमानाधिकरणो वाच्यचमत्कारस्तत्तृतीयम्।** जिस काव्य में व्यङ्ग्य अर्थ का चमत्कार लघु अंश में रहकर भी व्यापक वाच्य अर्थ के चमत्कार में अन्तर्मुख हो जाने से स्पष्टतया अनुभूत न हो वह मध्यम नामक काव्य कहलाता है।

उदाहरण- तनयमैनाकगवेषणलम्बीकृत-जलधिजठर प्रविष्ट हिमगिरिभुजायमानाया भगवत्या भागीरथ्याः सखी इति।

* **यत्रार्थचमत्कृत्युपस्कृता शब्दचमत्कृतिः प्रधानं तदधमं चतुर्थम्।** जिस काव्य में वाच्य अर्थ चमत्कार से परिपोषित होकर शब्द का चमत्कार प्रधान हो, उसको 'अधमकाव्य' कहते हैं। इस काव्य में भी कुछ न कुछ व्यङ्ग्य अवश्य रहता है, परन्तु वह रहकर भी चमत्कारजनक न होने से अविवक्षित रहता है अतः उसकी प्रधानता नहीं रहती।

मित्रात्रिपुत्त्रनेत्राय त्रयीशात्रवशत्रवे।
गोत्रारिगोत्रजत्राय गोत्रात्रे ते नमो नमः।।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'शयिता सविधेऽप्यनीश्वरा ....' यह उत्तमोत्तम काव्य का उदाहरण है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- रसगङ्गाधर - मदनमोहन झा, पेज 38

67. उपकारकत्वादलङ्कारः सप्तममङ्गम् इति यायावरीयः। उक्तिरियं कुत्रास्ति ?
(A) नाट्यशास्त्रे (B) काव्यप्रकाशे
(C) काव्यमीमांसायाम् (D) वक्रोक्तिजीविते

व्याख्या-
* राजशेखरकृत काव्यमीमांसा में अठारह अध्याय थे जिसमें केवल प्रथम अधिकरण ही प्राप्त हैं। जो अठारह अध्यायों में विभाजित हैं।
* प्रथम अधिकरण का नाम 'कविरहस्य' है जिसमें कवियों की चर्चा की गयी है।
* द्वितीय अधिकरण का नाम 'शास्त्रनिर्देशः' है। जिसमें शास्त्र, काव्य का विशद् वर्णन है।
* **'उपकारकत्वादलङ्कारः सप्तममङ्गम् इति यायावरीयः।'** यायावर कुल में उत्पन्न आचार्य राजशेखर का कथन है कि उपयोगी होने से अलङ्कार सातवाँ अङ्ग है।
* मम्मटकृत काव्यप्रकाश में अलङ्कार का लक्षण-
उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः॥
अर्थ- जो काव्य में विद्यमान उस अङ्गी रस को शब्द तथा अर्थरूप अङ्गों के द्वारा कभी-कभी उत्कर्षयुक्त करते हैं, वे अनुप्रास और उपमा आदि हार आदि के समान (काव्य के) अलङ्कार होते हैं।
आचार्यभरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में नाट्य की महत्ता-
न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते। (1/16)
विश्व में ऐसा कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग एवं कर्म नहीं है जिसका उपयोग नाट्य में न होता हो।
* काव्यमीमांसा में काव्यपुरुष के शिष्यों ने विशेष विषय पर अपने ग्रन्थ लिखे-

कवि	रचना
सहस्राक्ष	कविरहस्य
उक्तिगर्भ	उक्तिविषयक (औक्तिक)
सुवर्णनाभ	रीति का निर्णय
प्रचेता	अनुप्रास के विवेचक अंश
यम	यमक
चित्राङ्गद	चित्रकाव्य
आचार्यश्लेष	शब्दश्लेष
पुलस्त्यवास्तविकता अर्थात्	स्वभावोक्ति
औपकायन	उपमालङ्कार
पराशर	अतिशयोक्ति
उतथ्य	अर्थश्लेष
कुबेर	उभयालङ्कार
कामदेवविनोद	(हास्य)
नन्दिकेश्वर	रस विषयक ग्रन्थ
धिषण (बृहस्पति)	दोष विषयक ग्रन्थ
उपमन्युगुणों और दोष	
कुचमार	औपनिषदिक

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण में स्पष्ट है कि 'उपकारकत्वादलङ्कारः सप्तममङ्गम्' यह राजशेखरकृत काव्यमीमांसा में उद्धृत है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**
स्रोत- काव्यमीमांसा - गंगासागर राय, पेज 03

68. वक्रोक्तिजीवितानुसारं कविव्यापारवक्रत्वप्रकाराः कति सम्भवन्ति ?
(A) त्रयः (B) चत्वारः
(C) पञ्च (D) षट्

व्याख्या- * आचार्य कुन्तककृत वक्रोक्तिजीवितम् में चार उन्मेष हैं।
* कवि ग्रन्थ की निर्विघ्न परिसमाप्ति हेतु शक्ति के परिस्पन्द मात्र उपकरण वाले त्रिभुवन में विचित्र कर्म करने वाले परमतत्त्व शिव की वन्दना करता है।
* आचार्य कुन्तक कवियों के व्यापार (काव्य) की वक्रता का व्याख्यान करते हैं। सर्वप्रथम वक्रता के छः भेद आचार्य ने माने हैं-
कविव्यापारवक्रत्वप्रकाराः सम्भवन्ति षट्।
प्रत्येकं बहवो भेदास्तेषां विच्छित्तिशोभिनः॥ (1/18)
वर्णविन्यासवक्रत्वं पदपूर्वार्द्धवक्रता।
वक्रतायाः परोऽप्यस्ति प्रकारः प्रत्ययाश्रयः॥ (1/19)
(1) वर्णविन्यास वक्रता (2) पदपूर्वार्द्धवक्रता (3) प्रत्ययाश्रितवक्रता (4) वाक्यवक्रता (5) प्रकरणवक्रता (6) प्रबन्धवक्रता
* **धर्मादिसाधनोपायः सुकुमारक्रमोदितः।**
काव्यबन्धोऽभिजातानां हृदयाह्लादकारकः॥ (1/3)
कोमल परिपाटी से कहा गया महाकाव्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के साधन का उपाय है तथा अभिजात राजपुत्रों आदि के हृदय को आह्लादित करने वाला होता है।
वक्रोक्तिकार का काव्यलक्षण-
शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि॥ (1/7)
शास्त्रादि प्रसिद्ध शब्द तथा अर्थ के उपनिबन्धन से भिन्न कविव्यापार से शोभित काव्यतत्त्वज्ञों को आनन्दित करने वाले काव्य में

विशेष रूप से स्थित सहभाव से युक्त शब्द तथा अर्थ दोनों मिलकर काव्य होता है।

वक्रोक्ति का लक्षण-

उभावेतावलङ्कार्यौ तयोः पुनरलङ्कृतिः।
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते॥ (1/10)

यह शब्द तथा अर्थ दोनों ही अलङ्कार्य हैं फिर शब्द तथा अर्थ दोनों की अलङ्कृति चातुर्यपूर्ण कथन वक्रोक्ति कहलाती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वक्रोक्तिजीवितानुसार कविव्यापारवक्रता षट् प्रकाराः सन्ति। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वक्रोक्तिजीवितम् - राधेश्याम मिश्र भू., पेज 24

69. काव्यप्रकाशानुसारं शृङ्गारे द्रुतिकारणम् आह्लादकत्वं कस्य ?

(A) माधुर्यम् (B) ओजसः
(C) प्रसादस्य (D) समतायाः

व्याख्या- आचार्य मम्मट कृत काव्यप्रकाश के गुणालङ्कारनियतगुणनिर्णय नामक अष्टमोल्लास में गुणों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि

'माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश'

(वे गुण) माधुर्य, ओज, प्रसाद नामक तीन गुण होते हैं। वामन के अभिप्रेत दस गुण नहीं।

माधुर्यगुण-

आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम्।

चित्त के द्रवीभाव का कारण और शृङ्गार में रहने वाला जो आह्लादस्वरूपरूपत्व है वह माधुर्य नामक गुण कहलाता है।

करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्।

यह माधुर्य गुण सामान्यतः सम्भोगशृङ्गार में रहता है। परन्तु करुण, विप्रलम्भ, शृङ्गार तथा शान्त रस में वह उत्तरोत्तर अधिक चमत्कारजनक होता है।

ओजगुण- दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितिः।

चित्त के द्रवीभाव का कारणभूत आह्लादकत्व जिस प्रकार माधुर्यगुण कहलाता है, वीररस में रहने वाली आत्मा चित्त के विस्तार रूप दीप्तत्व का जनक ओजगुण कहलाता है।

बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च॥

यह ओज सामान्यतः वीर रस में रहता है परन्तु बीभत्स और रौद्र रसों में क्रमशः इसका आधिक्य रहता है।

प्रसाद गुण-

शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः।
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः॥

सूखे ईंधन में अग्नि के समान अथवा स्वच्छ जल के समान जो चित्त में सहसा व्याप्त हो जाता है, वह सर्वत्र सब रसों में रहने वाला प्रसाद गुण कहलाता है।

प्रमुख आचार्यों के अनुसार गुणों की संख्या-

वामन- वामन ने गुणों की संख्या दश मानी है।

भामह- भामह ने तीन गुण माने हैं।

विश्वनाथ- विश्वनाथ ने तीन गुण स्वीकार किये हैं।

माधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा। (सा. द. 8/1)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि 'आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम्' यह माधुर्य का लक्षण है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- काव्यप्रकाश - आचार्य विश्वेश्वर, पेज 388

70. पण्डितराजजगन्नाथमते काव्यस्य कति भेदाः स्वीकृताः?

(A) त्रयः (B) द्वौ
(C) चत्वारः (D) पञ्च

व्याख्या- पण्डितराज जगन्नाथ कृत रसगङ्गाधर में चार आनन हैं। प्रथम आनन के अन्तर्गत काव्यभेदों की चर्चा की गयी है-

काव्यभेद-

* **तच्चोत्तमोत्तमोत्तममध्यमाधमभेदाश्चतुर्धा।**

काव्य के चार भेद हैं- 1. उत्तमोत्तम 2. उत्तम 3. मध्यम 4. अधम।

* आचार्य मम्मट के अनुसार काव्य के भेद तीन हैं-

(1) उत्तम (2) मध्यम (3) अधम

काव्यहेतु-

* पण्डितराजजगन्नाथ ने काव्य के एक हेतु प्रतिभा को मानते हैं। 'तस्य च कारणं कविगता केवला प्रतिभा'। इसी प्रकार वामन, रुद्रट भी प्रतिभा को ही काव्य का कारण मानते हैं।
* दण्डी, वाग्भट और पीयूषवर्ष, प्रतिभा, व्युत्पत्ति, और अभ्यास को काव्य का हेतु मानते हैं।
* आचार्य मम्मट काव्यप्रकाश में तीन हेतु की स्वीकार करते हैं-

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

शक्ति, निपुणता और अभ्यास ये तीन हेतु हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि पं. राज जगन्नाथ के मत में चार काव्य माने गये हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- रसगङ्गाधर - मदनमोहन झा, पेज 37

71. ब्राह्मीलिपेः उद्वाचने प्रथमां सफलतां कः प्राप्तवान्?

(A) मैक्समूलरः (B) विलियम जोन्सः
(C) जेम्स प्रिंसेपः (D) ह्विटनी

व्याख्या- ब्राह्मी लिपि भारतवर्ष की प्राचीन लिपि है,

पहले इस लिपि के लेख अशोक के समय अर्थात् ईसा पूर्व की तीसरी शताब्दी तक के ही मिले परन्तु कुछ वर्ष पूर्व इस लिपि के दो छोटे-छोटे लेख प्राप्त हुए जिनमें से एक पिप्रावा के स्तूप से और दूसरा बर्ली गाँव से।

अशोक के अभिलेखों को सबसे पहले 1750 में टी. फैन्थैलर ने खोजा था।

अशोक के अभिलेखों को सर्वप्रथम 1837 में कलकत्ता टकसाल के अधिकारी एवं एशियाटिक सोसायटी के सचिव जेम्स प्रिन्सेप ने पढ़ा था। इन्होंने दिल्ली-टोपरा अभिलेख को पढ़ा था। इस समय अलेक्जेण्डर कनिंघम इनके सहायक थे। अतः जेम्स प्रिंसेप ने ही सबसे पहली बार ब्राह्मी लिपि का सफलतापूर्वक उद्वाचन किया। लेकिन इन्होंने एक गलती कर दी कि देवानांप्रिय का समीकरण लंका के राजा तिस्स से स्थापित कर दिया।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त से स्पष्ट है कि ब्राह्मी लिपि का प्रथम वाचन 'जेम्स प्रिंसेप' ने किया **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- प्राचीन भारत-सौरभ चौबे, पेज 266

72. अशोकस्य शिलालेखानां भाषा का अस्ति ?
(A) प्राकृतम् (B) संस्कृतम्
(C) अपभ्रंशः (D) अवेस्ता

व्याख्या- अशोक के अभिलेख-

प्रथम शिलालेख-	(गिरनार)
स्थान -	गिरनार जिला-जूनागढ़ महाराष्ट्र
भाषा -	प्राकृत (पालि)
लिपि -	ब्राह्मी
काल -	अशोककालीन लगभग (272-32 ई.पू.)
विषय -	हिंसा और साम्राज्यवाद का विरोध, व्यक्तिगत जीवन

* अशोक के चौदह शिलालेखों का वर्णन प्राप्त होता है।
* यह धम्म लिपि देवानांप्रिय (देवताओं में प्रिय) प्रियदर्शी राजा (अशोक) द्वारा लिखवाई गयी।
* कोई भी जीव बलि के लिए नहीं मारा जायेगा।
* पहले देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा के रन्धनागार रसोई में प्रतिदिन बहुत लाख प्राणी सूप के लिए मारे जाते थे। परन्तु जब से यह धम्मलिपि लिखवाई तीन प्राणी ही मारे जाते हैं। दो मोर और एक हिरन।
* वह हिरन भी सदैव नहीं। ये तीन प्राणी भी बाद में नहीं मारे जाएँगे।
* गुजरात की गिरनार पहाड़ियों में प्राप्त अशोक के चौदह शिलालेखों में से प्रथम शिलालेख पर राजा जीवों पर दया की भावना से पशुयज्ञ और पशु-मांस भक्षण की निषेधाज्ञा जारी की गई है।
* ये अभिलेख प्राकृत भाषा में हैं और ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण किये गये हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अशोक के शिलालेख की भाषा प्राकृत थी। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- भारतीय पुरालेखों का अध्ययन- शिवस्वरूप सहाय, पेज– 90

73. कुत्र अशोकस्य नाम प्रदत्तम् ?
(A) मास्कि-शिलालेखे
(B) प्रयागस्तम्भलेखे
(C) गिरनार-शिलालेखे
(D) कान्धार-द्विभाषी शिलालेखे

व्याख्या- अशोक के अभिलेख- मौर्य सम्राट् अशोक के ब्राह्मी, खरोष्ठी, आरामेयिक और यूनानी लिपियों में अंकित अभिलेख देश के विभिन्न भागों से प्राप्त हुए हैं। इनमें से सबसे अधिक संख्या ब्राह्मी लिपि में लिखे गये अभिलेखों की है, जो देश के प्रायः सभी भागों से मिले हैं।
* इन अभिलेखों में से अधिकांश में अशोक का उल्लेख देवानांप्रिय और प्रियदर्शी राजा उपाधियों से हुआ है।

कुछ विद्वान् इन अभिलेखों के अशोक के होने से सन्देह प्रकट करते रहे। किन्तु मास्कि अभिलेख में देवानांपियस असोकस और गुर्जरा अभिलेख में देवानांपियस पियदसिनो असोकराजस के स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होने से यह भ्रम निर्मूल सिद्ध हो गया।

कौशाम्बी वाले स्तम्भलेख में अशोक की द्वितीय महिषी कारुवाकी (चारुवाकी) के पुत्र तीवर का नाम है और पाङ्गुररिया लेख में कुमार सम्ब का उल्लेख है।

अशोक के जीवनकाल में कुछ प्रमुख कार्यों का परिचय-
1. आठवें वर्ष कलिंग विजय (13 वाँ शिलाभिलेख)
2. दसवें वर्ष- सम्बोधि (बोधगया) की यात्रा (8वाँ शिलालेख)
3. बारहवें वर्ष- युक्तों, राजुकों और प्रादेशिकों को दौर पर जाने का आदेश (तीसरा शिलाभिलेख)

धम्मलिपि का आलेखन (चौथा तथा छठाशिलाभिलेख)

अभिलेखों का मुख्य उद्देश्य अशोक द्वारा धर्म प्रतिपादन था। उनसे स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि वह स्वयं बौद्ध धर्म का अनुयायी था और संघ के प्रति कर्त्तव्यनिर्वाह के प्रति सजग था।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अशोक का नाम

मास्कि अभिलेख में उल्लेख प्राप्त होता है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख - परमेश्वरी लाल गुप्त, पेज 09, 10

74. गिरनारस्य तडागेन सम्बद्धो नासीत्-

(A) चन्द्रगुप्तः मौर्यः (B) अशोकः मौर्यः

(C) कनिष्कः कुषाणः (D) रुद्रदामा शकः

व्याख्या- सौराष्ट्र प्रान्त के गिरनार (जूनागढ़) में स्थित गिरनार पर्वत पर गुप्तवंशीय नरेश का नाम अंकित है।

रैवतक एवं उर्जयत पर्वतों के जल स्रोतों के ऊपर कृत्रिम बाँध बनाकर पलासिनी नदी एवं सुवर्णसिकता नदी को आपस में जोड़कर सुदर्शन झील का निर्माण किया गया था।

यह बाँध दो बार टूटा। सबसे पहली बार शक रुद्रदामन् के समय टूटा। इसने सुविशाख पह्लव के माध्यम से बिना जनता के ऊपर कर बेगार डाले अपने कोष से झील का पुनर्निर्माण कराया। स्कन्दगुप्त के समय यह बाँध पुनः टूट गया। इस समय सौराष्ट्र का राज्यपाल पर्णदत्त था। इसके पुत्र चक्रपालित ने बाँध का पुनः पुनर्निर्माण करवाया इस झील का इतिहास जूनागढ़ अभिलेख से विदित होता है। इसी अभिलेख में चार शासकों एवं उनके चार राज्यपालों का उल्लेख क्रमशः मिलता है-

चार शासक	सौराष्ट्र के चार गवर्नर
चन्द्रगुप्त	पुष्यगुप्त वैश्य
अशोक यवन	तुषास्प
रुद्रदामन्	सुविशाख पह्लव
स्कन्दगुप्त	पर्णदत्त

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि गिरनार तडाग का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त, अशोक, रुद्रदामन् से है जबकि कनिष्क कुषाण का सम्बन्ध गिरनार तडाग से नहीं है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- प्राचीन भारत का इतिहास - सौरभ चौबे, पेज 263

75. अत्र वर्तते कालिदासस्य नामोल्लेखः-

(A) तन्तुवाय-श्रेण्याः मन्दसौर शिलालेखे

(B) प्रभावतगुप्तायाः पूना-ताम्रपट्टलेखे

(C) पुलकेशिद्वितीयस्य एहोल-शिलालेखे

(D) मिहिरभोजस्य ग्वालियर-शिलालेखे

व्याख्या- पुलकेशिन् द्वितीय के आश्रित कवि रविकीर्ति के दक्षिण भारत के ऐहोल नामक ग्राम में प्राप्त शिलालेख में कालिदास का उल्लेख है। यह शिलालेख शक संवत् 556 अर्थात् 634 ई. का है। इसमें रविकीर्ति अपने आपको कालिदास और भारवि जैसा महाकवि बताता है-

येनायोजि नवेऽश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।

स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः॥

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कालिदास का नामोल्लेख पुलकेशिन् द्वितीय के ऐहोल शिलालेख में प्राप्त होता है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- अभिज्ञानशाकुन्तलम् - कपिलदेव द्विवेदी, पेज भू. 13

उत्तरमाला

1.A 2.D 3.A 4.B 5.D 6.C 7.B 8.A 9.B 10.D 11.C 12.A 13.D 14.B 15.B 16.D 17.C 18.B 19.C 20.A 21.D 22.D 23.B 24.C 25.B 26.D 27.C 28.B 29.B 30.B 31.A 32.A 33.C 34.B 35.C 36.B 37.B 38.A 39.B 40.A 41.C 42.A 43.A 44.D 45.C 46.C 47.B 48.C 49.D 50.C 51.A 52.C 53.A 54.D 55.A 56.C 57.A 58.D 59.A 60.D 61.A 62.B 63.B 64.B 65.C 66.B 67.C 68.D 69.A 70.C 71.C 72.A 73.A 74.C 75.C

8	दिसम्बर 2015	NTA UGC–NET/JRF संस्कृतम्	प्रश्नपत्रम् III

1. दानस्तुतिसूक्तानि संहितायां सन्ति -
(A) काण्वसंहितायाम् **(B)** तैत्तिरीयसंहितायाम्
(C) ऋग्वेदसंहितायाम् **(D)** माध्यन्दिनसंहितायाम्

व्याख्या- ऋग्वेद में आर्य-संस्कृति का विशद निरूपण हुआ है। इसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, नैतिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, कलात्मक एवं वैज्ञानिक तथ्यों का भी यथास्थान निरूपण हुआ है।

* ऋग्वेद में मुख्य रूप से विभिन्न देवों की स्तुति है और उनसे यश, विद्या, श्रीवृद्धि आदि की प्रार्थनाएँ की गई हैं।
* अनेक स्थलों पर मनोविज्ञान, सृष्टि-उत्पत्ति, आयुर्वेद, भाषाविज्ञान, ज्योतिष आदि से संबद्ध सामग्री भी प्रचुर मात्रा में मिलती है।
* आध्यात्मिक और दार्शनिक भाव तो पद-पद पर प्राप्य हैं।
* हिरण्यगर्भ, नासदीय एवं पुरुष आदि सूक्त सृष्टि-प्रक्रिया का विवेचन प्रस्तुत करते हैं। साथ ही आचारशिक्षा, नीतिशिक्षा, धर्मशिक्षा तथा कर्तव्योपदेश आदि का वर्णन पग-पग पर प्राप्य है।

ऋग्वेद के कुछ महत्त्वपूर्ण सूक्त -

1. पुरुषसूक्त (ऋग् ० 10.90)- यह सूक्त चारों वेदों में आया है।
* इसमें पुरुष के विराट् रूप का वर्णन किया गया है और उसी से समस्त विश्व की सृष्टि का वर्णन है।
* इसमें पुरुष को सहस्रों सिर, पैर आदि से युक्त बताया गया है।
* उससे चराचर जगत् की सृष्टि तथा चारों वेदों की उत्पत्ति कही गयी है।
* सर्वप्रथम चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था का इसमें उल्लेख है।
* चारों वर्णों को विराट् पुरुष का मुख आदि अंग बताया गया है।
* यज्ञप्रक्रिया को सृष्टि का प्रथम धर्म कहा गया है।
* पुरुष को ही सृष्टि का सर्वस्व, वर्तमान, भूत और भविष्य बताया गया है।

2. नासदीयसूक्त (ऋग् ० 10.129)- यह सूक्त वैदिक ऋषियों के ज्ञान और अलौकिक दार्शनिक चिन्तन का परिचायक है।
* इसमें सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस समय न असत् था और सत्, न रात्रि थी और न दिन। सृष्टि का कोई चिह्न नहीं था।

3. हिरण्यगर्भसूक्त (ऋग् ० 10.121)- इस सूक्त में उदात्त दार्शनिक भावों की अभिव्यक्ति करते हुए 'क' अर्थात् प्रजापति का महत्त्व वर्णित है।
* 9 मंत्रों में 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' अर्थात् ऐसे प्रजापति देव को हम अपनी स्तुति अर्पित करते हैं, यह कहा गया है।
* वह प्रजापति सृष्टि के प्रारम्भ में हिरण्यगर्भ (सुवर्णपिण्ड) के रूप में प्रकट हुआ। वही सृष्टि का नियामक हुआ।

4. श्रद्धासूक्त (ऋग् ० 10.151)- इस सूक्त में यद्यपि 5 ही मंत्र हैं, परन्तु भावगाम्भीर्य और विचारों की उदात्तता के कारण यह सूक्त अत्यन्त आदरणीय माना जाता है।
* मंत्र में श्रद्धा की परिभाषा दी गयी है- किसी कार्य में अतिशय हार्दिक संकल्प से अभिनिवेश या प्रवृत्ति श्रद्धा है।
* यह श्रद्धा ही जीवन को पवित्र बनाती है और महान् लक्ष्यों को प्राप्त कराती है।
* वेदों में उच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ऋत और सत्य के साथ श्रद्धा को आवश्यक बताया गया है।

5. वाक्सूक्त (ऋग्० 10.125)- ऋग्वेद के महत्त्वपूर्ण सूक्तों में वाक्सूक्त है।
* इस सूक्त के 8 मंत्रों में वाक्तत्त्व, शब्दब्रह्म, शब्दतत्त्व या वाग्देवी का ब्रह्म के रूप में वर्णन किया गया है। वाक्तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है।
* यह इन्द्र, अग्नि, सोम, मित्र, वरुण आदि की ऊर्जा का स्रोत है।
* यह राष्ट्रनिर्मात्री शक्ति है। वाक्तत्त्व ही प्रतिभा है।
* पूरा सूक्त उत्तमपुरुष में 'वाक् आम्भृणी' ऋषिका द्वारा आत्मविवेचन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

6. दानस्तुतिसूक्ति (ऋग् ० 10.107 और 117)- ऋग्वेद के इन सूक्तों में दान की महिमा का गुणगान है।
* वैदिक संस्कृति में त्याग और दान- इन दो गुणों को सर्वोच्च स्थान दिया गया है।
* इन सूक्तों में कहा गया है कि दानी अमर हो जाता है।
* उसके यहाँ अर्थसंकट कभी नहीं होता, वह समाज और राष्ट्र में सर्वत्र पूजा जाता है।
* उसे सूर्यलोक और स्वर्ग में भी उच्चस्थान प्राप्त होता है। दानी को ही सन्त, महात्मा, ऋषि और ब्रह्मा कहा जाता है।

8. संज्ञानसूक्त (ऋग् ० 10.191)- इस सूक्त के 4 मंत्रों में सामाजिक सौहार्द, सौमनस्य, सह-अस्तित्व, ऐकमत्य और संगठन का उपदेश दिया गया है।

* यह सूक्त सामाजिक, राष्ट्रीय और आर्थिक चिन्तन में समवेत-स्वर या समन्वय की भावना का प्रतिपादक है।

9. अक्षसूक्त (ऋग् 10.34)- इस सूक्त के 14 मंत्रों में अक्ष की कड़े शब्दों में निन्दा की गयी है।

* यह सामाजिक कुरीति है। जुआँ खेलना स्वयं को और अपने परिवार को नष्ट करना है।

10. विवाहसूक्त (ऋग् 10.85)- अथर्ववेद में भी विवाह से संबद्ध दो सूक्त (कांड 14 सूक्त 1 और 2) आये हैं।

* अधिकांश मंत्र वे ही हैं।
* इसमें सूर्या (सूर्य की पुत्री) का सोम (चन्द्रमा) से विवाह का वर्णन है।

स्पष्टीकरण - उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'दानस्तुतिसूक्ति' ऋग्वेदसंहिता में वर्णित है। **अतः विकल्प (C) सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 55

2. ऋग्वेदीयषष्ठमण्डलस्य ऋषिः वर्त्तते -

(A) भरद्वाजः **(B)** वामदेवः

(C) वसिष्ठः **(D)** विश्वामित्रः

व्याख्या- ऋग्वेद-संहिता का विभाजन दो प्रकार से किया गया है- (1) अष्टकक्रम (2) मण्डलक्रम

अष्टकक्रम- पूरे ऋग्वेद को 8 समान भागों में बाँटा गया है, इन्हें 'अष्टक' कहते हैं। प्रत्येक अष्टक को 8 अध्यायों में बाँटा गया है। अतः पूरे ऋग्वेद में 64 अध्याय हैं। अध्याय वर्गों में विभाजित हैं, प्रत्येक अध्याय में वर्गों की संख्या भिन्न-भिन्न है। इस प्रकार ऋग्वेद में बालखिल्य सूक्तों को भी सम्मिलित करते हुए 8 अष्टक, 64 अध्याय, 2024 वर्ग और 10552 मंत्र हैं। इसमें बालखिल्य सूक्तों सहित 1028 सूक्त हैं और 3,97,256 अक्षर हैं।

मण्डलक्रम- यह विभाजन अधिक सुसंगत और उपयुक्त है। इसमें पूरे ऋग्वेद को ऋषि और देवता के अनुसार 10 मण्डलों में विभक्त किया गया है। इसमें बालखिल्य के 11 सूक्तों के 80 मंत्रों को सम्मिलित करते हुए 85 अनुवाक, 1028 सूक्त और 10,552 मंत्र हैं।

*** मंत्रद्रष्टा ऋषि -** सुविधा की दृष्टि से ऋग्वेद के मण्डल, सूक्त, मंत्र-संख्या और संबद्ध ऋषियों की सारणी दी जा रही है।

मण्डल	सूक्तसंख्या	मंत्रसंख्या	ऋषि नाम
1.	191	2006	मधुच्छन्दा, मेधातिथि, दीर्घतमा, अगस्त्य, गौतम, पराशर आदि।
2.	43	429	गृत्समद एवं उनके वंशज
3.	62	617	विश्वामित्र एवं उनके वंशज
4.	58	589	वामदेव एवं उनके वंशज
5.	87	727	अत्रि एवं उनके वंशज
6.	75	765	भरद्वाज एवं उनके वंशज
7.	104	841	वसिष्ठ एवं उनके वंशज
8.	103	1716	कण्व, भृगु, अंगिरस् एवं वंशज
9.	114	1108	ऋषिगण, विषय-पवमान-सोम
10.	191	1754	वित, विमद, इन्द्र, श्रद्धा-कामायनी, इन्द्राणी, शची, उर्वशी, नारायण आदि।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि ऋग्वेद के षष्ठ मण्डल में भरद्वाज ऋषि का वर्णन प्राप्त है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 47

3. 'बृहदारण्यकम्' कस्य वेदस्य वर्त्तते?

(A) सामवेदस्य **(B)** यजुर्वेदस्य

(C) ऋग्वेदस्य **(D)** अथर्ववेदस्य

व्याख्या- आरण्यकग्रन्थों का उद्भव नैसर्गिक प्रक्रिया के अनुरूप ब्राह्मणग्रन्थों के पश्चात् हुआ है।

* स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना मानवीय प्रवृत्ति है।
* वेदों और ब्राह्मणों में वर्णित यज्ञप्रक्रिया कष्टसाध्य, दुर्बोध और नीरस होने के कारण अरुचिकर होती जा रही थी, अतः आत्मिक शान्ति के लिए अध्यात्म की आवश्यकता अनुभव की गई।

* आवश्यकता आविष्कार की जननी है, अतः आरण्यकों की सृष्टि हुई।
* आरण्यकग्रन्थ ब्राह्मणग्रन्थों और उपनिषदों को जोड़ने वाली कड़ी है।
* ब्राह्मणग्रन्थों में यज्ञों के दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष का जो अंकुरण हुआ है, उसका पल्लवित रूप आरण्यकग्रन्थ हैं।
* आरण्यकों में पवित्र ब्रह्मविद्या का वर्णन है। आरण्यकग्रन्थ उपनिषदों का पूर्वरूप हैं।
* उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा, सृष्ट्युत्पत्ति, ज्ञान- कर्म, उपासना और तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन है। उसी तत्त्वज्ञान का प्रारम्भिक रूप हम आरण्यकों में पाते हैं।

उपलब्ध आरण्यकग्रन्थ-

सम्प्रति केवल 6 आरण्यकग्रन्थ प्राप्य हैं। वेदों के अनुसार इन्हें इस प्रकार रख सकते हैं।

1. **ऋग्वेदीय -** ऋग्वेद से सम्बद्ध दो आरण्यकग्रन्थ हैं-
(i) ऐतरेय और (ii) शांखायन आरण्यक।

(i) ऐतरेय आरण्यक- यह ऐतरेयब्राह्मण का ही परिशिष्ट भाग है। इसमें पांच भाग हैं। इसमें प्राणविद्या, आत्मविद्या आदि का वर्णन है।

(ii) शांखायन आरण्यक- यह ऋग्वेदीय आरण्यक है। इसमें 15 अध्याय हैं। अध्याय 3 से 6 तक को 'कौषीतकि उपनिषद्' कहते हैं। अध्याय 7 से 8 को संहितोपनिषद् कहते हैं। इसी को कौषीतकि आरण्यक भी कहा जाता है।

2. **शुक्लयजुर्वेदीय-** इसमें बृहदारण्यक प्राप्त है। यह माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं में प्राप्य है।

बृहदारण्यक - यह शुक्लयजुर्वेदीय आरण्यक है। यह शतपथ ब्राह्मण आरण्यक की अपेक्षा उपनिषद् के रूप में अधिक मान्यता प्राप्त है। इसमें आत्मतत्त्व की विशद व्याख्या है।

3. **कृष्णयजुर्वेदीय-** कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय और काठक शाखाओं का एक आरण्यक है- तैत्तिरीय आरण्यक।

मैत्रायणी शाखा का एक आरण्यक 'मैत्रायणीय आरण्यक' है इसको 'मैत्रायणीय उपनिषद्' भी कहते हैं।

4. **सामवेदीय-** सामवेद की जैमिनिशाखा का 'तवलकार आरण्यक' है। इसको 'जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण' भी कहते हैं। सामवेद की कौथुम शाखा का आरण्यक नहीं है। छान्दोग्य उपनिषद् कौथुम शाखा से सम्बद्ध है।

5. **अथर्ववेदीय-** अथर्ववेद का कोई पृथक् आरण्यक नहीं है। गोपथब्राह्मण के ही ब्रह्मविद्यापरक कुछ अंशों को आरण्यक कह सकते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'बृहदारण्यक' यजुर्वेद से सम्बद्ध है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 163

4. 'आग्नीध्र'- नामा ऋत्विक् कस्य गणस्य वर्तते?

(A) ब्रह्मगणस्य **(B)** अध्वर्युगणस्य
(C) होतृगणस्य **(D)** उद्गातृगणस्य

व्याख्या- समस्त वेदों के अलग-अलग ऋत्विक् बताये गये हैं-
जैसे -ऋग्वेद के ऋत्विक् - होता
यजुर्वेद के ऋत्विक् - अध्वर्यु
सामवेद के ऋत्विक् - उद्गाता
अथर्ववेद के ऋत्विक् - ब्रह्मा

इस प्रकार समस्त वेदों के अलग-अलग ऋत्विक् बताये गये हैं, जिसमें सोलह ऋत्विक् होते हैं, जो चार गणों में विभक्त रहते हैं। वे हैं- अध्वर्युगण, ब्रह्मगण, होतृगण और उद्गातृगण। प्रत्येक गण में चार-चार ऋत्विक् होते हैं, सब मिलाकर सोलह ऋत्विक् होते हैं। वे इस प्रकार हैं -

अध्वर्युगण	ब्रह्मगण	होतृगण	उद्गातृगण
अध्वर्यु	ब्रह्मा	होता	उद्गाता
प्रतिप्रस्थाता	ब्राह्मणाच्छंसी	मैत्रावरुण	प्रस्तोता
नेष्टा	आग्नीध्र	अच्छावाक	प्रतिहर्ता
उन्नेता	पोता	ग्रावस्तुत्	सुब्रह्मण्य

लिखने के क्रम के अनुसार ही संख्या भी होती है- पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा। जैसे- अध्वर्युगण में अध्वर्यु पहला है, प्रतिप्रस्थाता दूसरा है, नेष्टा तीसरा है, उन्नेता चौथा है; इत्यादि। उसी के अनुसार दक्षिणा में भी क्रम हैं जितनी गायें दक्षिणा में देने को कही गयी हैं, उन्हें बराबर-बराबर चार भागों में विभक्त कर एक-एक गण के लिए एक-एक भाग दे। एक-एक भाग के लिए दी जाने वाली दक्षिणा भी समविभाग न करके विषम विभाग करके ही देना चाहिए।

जैसे-अध्वर्यु जितनी गायें पाये उससे आधी प्रतिप्रस्थाता अध्वर्यु के भाग की, तृतीय भाग नेष्टा और उसका चतुर्थ भाग उन्नेता पाये।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि 'आग्नीध्र' नाम ऋत्विक् का वर्णन ब्रह्मगण में है । **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- श्रौतयज्ञ परिचय- वेणीराम शर्मा गौड़, पेज 28

5. 'सुमन्तु'- ऋषये व्यासः कं वेदं प्रोक्तवान् ?

(A) यजुर्वेदम् **(B)** ऋग्वेदम्
(C) अथर्ववेदम् **(D)** सामवेदम्

व्याख्या- वस्तुतः वेद चार हैं - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

* अथर्ववेद में मारण-मोहन-उच्चाटन सम्बन्धी मन्त्रों का सङ्कलन किया गया है।

* सम्भवतः ये विषय उस समय समाज द्वारा अनादृत रहे हों अतः इसकी गणना वेद के अन्तर्गत न की गई हो।

* यजुर्वेद के भाष्यकार महीधर का कथन है कि ब्रह्मा से चली आ रही वेद-परम्परा को ग्रहण करके वेदव्यास ने मन्दमति मनुष्यों के लिए वेद को ऋक्, यजुः, साम और अथर्व के रूप में विभक्त कर क्रमशः पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु को उपदेश दिया-

तत्रादौ ब्रह्म-परम्परया प्राप्तं वेदं वेदव्यासो मन्दमतीन् मनुष्यान् विचिन्त्य तत्कृपया चतुर्धा व्यस्य ऋग्यजुःसामाथर्वाख्याश्चतुरो वेदान् पैल-वैशम्पायन-जैमिनि सुमन्तुभ्यः क्रमादुपदिदेश। (यजुर्वेदभाष्य)

इस प्रकार स्पष्ट है कि महर्षि वेदव्यास ने ऋग्वेद का उपदेश पैल को, यजुर्वेद का उपदेश वैशम्पायन को, सामवेद का उपदेश जैमिनि को और अथर्ववेद का उपदेश सुमन्तु को दिया।

इस प्रकार वेद का चतुर्धा विभाजन किया जाता है। प्राचीन काल में वेद को 'त्रयी' कहा जाता था, बाद में जब अथर्ववेद को वेद की संज्ञा प्राप्त हो गयी तो वेद चार हो गये और 'वेदचतुष्टय' की प्रसिद्धि हो गई। वेदों के इस प्रकार का पृथक्करण करने के कारण व्यास को 'वेदव्यास' कहा जाता है-

'विव्यास वेदान् यस्मात्स वेदव्यास इति स्मृतः।'

वेदव्यास द्वारा ऋषियों को दिये गये वेदों का उपदेश-

पैल - ऋग्वेद
वैशम्पायन - यजुर्वेद
जैमिनि - सामवेद
सुमन्तु - अथर्ववेद

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'महर्षि वेदव्यास' ने 'सुमन्तु' को अथर्ववेद का उपदेश दिया। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य का इतिहास-पारसनाथ द्विवेदी, पेज 4

6. दर्शपौर्णमासेष्टियागे प्रयाजानां संख्या विद्यते -

(A) एकादश **(B)** पञ्च
(C) त्रयः **(D)** नव

व्याख्या- यज्ञादि का स्वरूप- श्रुति में वैदिक यज्ञ पाँच प्रकार के बताये गये हैं -

1. अग्निहोत्र 2. दर्शपूर्णमास 3. चातुर्मास्य
4. पशुयाग 5. सोमयाग

* स्मृति में सात पाकयज्ञ, सात हविर्यज्ञ, सात सोमसंस्थाएँ हैं। इन सब श्रौत और स्मार्तों को मिलाकर इक्कीस यज्ञ कहे गये हैं।

सात पाकयज्ञ	**सात हविर्यज्ञ**
1. औपासन होम	1. अग्निहोत्र
2. वैश्वदेव	2. दर्शपूर्णमास
3. पार्वण	3. आग्रयण
4. अष्टका	4. चातुर्मास्य
5. मासिश्राद्ध	5. निरूढपशुबन्ध
6. श्रवणा	6. सौत्रामणी
7. शूलगव।	7. पिण्ड पितृयज्ञ।

सात सोम संस्थाएँ -

1. अग्निष्टोम	4. षोडशी
2. अत्यग्निष्टोम	5. वाजपेय
3. उक्थ्य	6. अतिरात्र
7. अप्तोर्याम।	

इनमें सात पाकयज्ञ स्मार्त्त हैं और सात हविर्यज्ञ, सात सोमयज्ञ श्रौत हैं।

दर्शपूर्णमास याग- दर्शपूर्णमास नामक याग अमावस्या और पूर्णिमा में अनुष्ठान होने से ही इन यागों का 'दर्शपूर्णमास' यह नाम पड़ा है। दर्श अर्थात् अमावस्या, पूर्णमास अर्थात् पौर्णमासी।

दर्शपूर्णमासयाग में पाँच प्रयाज और तीन अनुयाज बताये गये हैं। जिनसे देवताओं का प्रकृष्ट रूप से यजन होता है वे प्रयाज हैं तथा 'अनु' अर्थात् 'प्रधान याग के अनन्तर जिनसे यजन किया जाता है'- इस व्युत्पत्ति से होता द्वारा पढ़े जाने वाले याज्या मन्त्र अनुयाज है।

पञ्च प्रयाज	**तीन अनुयाज**
1. दो आज्यभाग	1. भागप्राशन
2. प्रधानयाग	2. अन्वाहार्य
3. स्विष्टकृत्	3. दक्षिणा
4. प्राशित्रावदान	
5. इडावदान।	

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि दर्शपौर्णमासयाग में पञ्चप्रयाज बताये हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- श्रौतयाग परिचय- वेणीराम शर्मा गौड़, पेज 13

7. याज्ञवल्क्यशिक्षानुसारं कति विवृत्तयः?

(A) चतस्रः **(B)** तिस्रः

(C) पञ्च **(D)** षट्

व्याख्या- विवृत्ति क्या है? -

जहाँ दो स्वरों के बीच में सन्धि न दिखाई दे वहाँ विवृत्ति जानना चाहिए। जैसा कि **शुक्लयजुर्वेद संहिता** के **'यऽईशे'** इस मन्त्र में हुआ है।

विवृत्ति का उच्चारण- जिस प्रकार आकाश में स्थित (चमकने वाली) बिजली मणियों में गुँथे हुए सूत्र के समान स्फुटित होने पर जितना समय लगता है, उतने ही समय में विवृत्ति का उच्चारण होता है।

जिस प्रकार केश (बाल) काटते समय छुरा से 'कुट' शब्द निकलता है उसी तीव्रता से विवृत्ति का उच्चारण करें।

विवृत्ति के भेद -

1. पिपीलिका 2. पाकवती 3. वत्सानुसारिणी
4. वत्सानुसृजिता

पिपीलिका पाकवती तथा वत्सानुसारिणी।
वत्सानुसृजिता चैव चतस्रस्ता विवृत्तयः॥10॥

1. पिपीलिका- विवृत्ति के आदि और अन्त में जहाँ पर दोनों ओर दीर्घ वर्ण हों, वहाँ पिपीलिका (जन्तुवत्) नाम की विवृत्ति होती है। **जैसे- संहितोक्त 'नाभ्याऽआसीत्'।**

2. पाकवती- विवृत्ति के आदि और अन्त में जहाँ पर दोनों ओर ह्रस्व वर्ण हो और उसी प्रकार सन्धि-विच्छेद हुआ हो तो पाकवती नाम की विवृत्ति होती है। **यथा- व्विनऽइन्द्र**

3. वत्सानुसारिणी- संधि-विश्लेष के साथ प्रारम्भिक वर्ण दीर्घ होता है और पीछे का वर्ण ह्रस्व। **यथा- 'ताऽअस्य'**

4. वत्सानुसृजिता- जहाँ आद्यक्षर ह्रस्व और परवर्ण दीर्घ होता है। **यथा- 'तानऽआवोढमश्विना'**

स्पष्टीकरण- इस प्रकार उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्य शिक्षानुसार 4 विवृत्तियाँ हैं। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- याज्ञवल्क्यशिक्षा- डॉ. नरेश झा, पेज 89

8. ऋक्संहितायाः समुपलब्धेषु भाष्येषु प्रथमो भाष्यकारः वर्तते -

(A) आनन्दतीर्थः **(B)** सायणः

(C) स्कन्दस्वामी **(D)** वेङ्कटमाधवः

व्याख्या- ऋग्वेद की उपलब्ध ऋक्संहिता पर अनेक भाष्यकारों ने अपने-अपने भाष्य लिखें हैं, जिनमें कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं-

ऋग्वेदसंहिता भाष्यकार :

स्कन्दस्वामी - (625 ई. के लगभग)। ऋग्वेद का सबसे प्राचीन भाष्य स्कन्दस्वामी का ही उपलब्ध होता है। ऋग्वेद के भाष्य में वेंकटमाधव ने लिखा है कि स्कन्दस्वामी, नारायण और उद्गीथ आचार्यों ने मिलकर ऋग्वेद का भाष्य किया था।

स्कन्दस्वामी नारायण उद्गीथ इति ते क्रमात् ।
चक्रुः सहैकम् ऋग्भाष्यं, पदवाक्यार्थगोचरम् ॥

स्कन्दस्वामी का भाष्य ऋग्वेद के चतुर्थ अष्टक तक मिलता है। शेष भाग नारायण और उद्गीथ ने किया है।

नारायण - नारायण ने स्कन्दस्वामी के भाष्य में सहायता की थी। 'क्रमात्' से ज्ञात होता है कि चतुर्थ अष्टक के बाद के अंश पर इन्होंने ऋग्वेद का भाष्य लिखा है।

उद्गीथ - आचार्य उद्गीथ ने भी स्कन्दस्वामी के भाष्य में सहायता की थी। इन्होंने ऋग्वेद के अन्तिम भाग पर भाष्य लिखा है।

माधवभट्ट - (षष्ठ शती ई.) ये स्कन्दस्वामी (7वीं शती), वेंकटमाधव (10वीं शती) और सायण (14वीं शती) से पूर्ववर्ती हैं। स्कन्दस्वामी, वेंकटमाधव और सायण ने इनके भाष्य का अनुसरण किया है।

वेंकटमाधव- (1050 से 1150 ई. के मध्य) इन्होंने पूरे ऋग्वेद का भाष्य लिखा है। इन्होंने प्रथम अध्याय के अन्त में अपना परिचय दिया है। इनके पितामह-माधव, पिता-वेंकटाचार्य, माता-सुन्दरी, गोत्र- कौशिक, निवासस्थान- चोल देश।

आनन्दतीर्थ - (1255 से 1335 विक्रमी संवत्, 13वीं शती ई.)। इनका दूसरा नाम 'मध्व' है। इन्होंने माध्व वैष्णव सम्प्रदाय चलाया है। इन्होंने ऋग्वेद के 40 सूक्तों का पद्यात्मक भाष्य किया है।

सायण - (14वीं शती ई.) ये विजयनगर के संस्थापक महाराज बुक्क और महाराज हरिहर के अमात्य एवं सेनानी थे। इन्होंने अपने बड़े भाई माधव के आदेशानुसार वेदभाष्य किया।

स्कन्दस्वामी 625 ई. लगभग	नारायण सातवीं शती उत्तरार्द्ध	उद्गीथ सातवीं शती उत्तरार्द्ध	माधवभट्ट छठी शती ई.
वेंकटमाधव 1050 से 1150 ई. के मध्य	आनन्दतीर्थ 1255 से 1335 ई.	सायण 14वीं शती ई.	

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि ऋग्वेदसंहिता के

उपलब्ध भाष्यों में प्रथमभाष्यकार स्कन्दस्वामी हैं।

अतः विकल्प 'C' सही है।

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 22

9. वैदिकस्वरप्रक्रियायाः वृत्तिकारः कः?

(A) भट्टोजिदीक्षितः **(B)** पाणिनिः

(C) पतञ्जलिः **(D)** कात्यायनः

व्याख्या- संस्कृत व्याकरण का प्रमुख ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' महर्षि पाणिनि प्रणीत है जिसे उन्होंने सूत्रों में वर्णित किया है, जिस पर कात्यायन ने वार्तिक एवं पतञ्जलि ने महाभाष्य एवं भट्टोजिदीक्षित ने उनकी वृत्ति लिखी।

भट्टोजिदीक्षित - प्रक्रियानुसारी ग्रन्थों में भट्टोजिदीक्षित प्रणीत सिद्धान्तकौमुदी में समग्र पाणिनि अष्टक को संकलित किया गया है। जिसमें उन्होंने सम्पूर्ण अष्टाध्यायी की वृत्ति लिखी है। संज्ञा, समास, परिभाषा, सन्धि, सुबन्त, अव्यय, स्त्रीप्रत्यय, कारक तथा तद्धित प्रकरणों को निबद्ध किया है। यहाँ तक लौकिक शब्दों के निर्वचन की प्रक्रिया है। इसके अतिरिक्त वैदिक शब्दों के अन्वाख्यान की प्रक्रिया को दर्शाने के लिए अन्तिम दो प्रकरणों में 'वैदिक प्रकरण' और 'स्वर प्रकरण' में वैदिक प्रयोग तथा वेदों में प्रयुक्त स्वर सम्बन्धी विशेषताओं का निदर्शन किया है।

उन्होंने स्वर-वैदिकी को सर्वान्त में जोड़ दिया। वैदिक-प्रक्रिया में 263 तथा स्वरप्रक्रिया में 329 सूत्रों की व्याख्या की गयी है।

सिद्धान्तकौमुदी का प्रक्रिया विवरण-

1. संज्ञा-प्रकरण	8. समास
2. परिभाषा-प्रकरण	9. तद्धित
3. सन्धि-प्रकरण	10. तिङन्तप्रक्रिया
4. सुबन्त-प्रकरण	11. भ्वादि
5. अव्यय	12. कृदन्त
6. स्त्रीप्रत्यय	13. वैदिकीप्रक्रिया
7. कारक	14. स्वरप्रक्रिया

पाणिनि- महर्षि पाणिनि की अमरकृति 'अष्टाध्यायी' के नाम से सुविदित है। इसका दूसरा नाम 'पाणिनीयाष्टक' भी प्रसिद्ध है। जिसे उन्होंने आठ अध्यायों में, सूत्रों में वर्णित किया है जिससे ये व्याकरण सूत्रकार भी कहे जाते हैं।

प्रत्येक अध्याय चार-चार पादों में विभक्त है। इस प्रकार इसमें 32 पाद हैं।

कात्यायन- पाणिनि अष्टाध्यायी सूत्रों पर कात्यायन ने वार्तिक लिखे। जहाँ भी सूत्रों में उनको कमियाँ दिखीं, उसके सुधार में उन्होंने वार्तिकों की रचना की, इसीलिए इन्हें वार्तिककार भी कहते हैं।

पतञ्जलि- महर्षि पतञ्जलि ने अष्टाध्यायी की व्याख्या के रूप में महाभाष्य की रचना की जिससे इन्हें भाष्यकार भी कहा गया।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वैदिक स्वरप्रक्रिया के वृत्तिकार भट्टोजिदीक्षित हैं। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास (खण्ड 15)

10. 'ब्राह्मणसर्वस्व'- नामकं वेदभाष्यं केन विरचितम् ?

(A) हरिस्वामिना **(B)** हलायुधेन

(C) गुणविष्णुना **(D)** उव्वटेन

व्याख्या- ऋग्वेद -

वेदभाष्यकार		**प्रमुख भाष्य**
		माधवभट्ट नामानुक्रमणी, आख्यातानुक्रमणी, निर्वचनानुक्रमणी, छन्दोऽनुक्रमणी, स्वरानुक्रमणी आदि।
सायण	–	'माधवीयवेदार्थप्रकाश'

शुक्लयजुर्वेद - माध्यन्दिनशाखा

वेदभाष्यकार	–	**प्रमुख भाष्य**
उव्वट		ऋक्प्रातिशाख्य की टीका, यजुःप्रातिशाख्य की टीका, ऋक्सर्वानुक्रमणी पर भाष्य, ईशोपनिषद् पर भाष्य
महीधर	–	'वेददीप', मन्त्रमहोदधि

काण्वशाखा-

हलायुध	–	ब्राह्मणसर्वस्व, मीमांसासर्वस्व, वैष्णव सर्वस्व, शैवसर्वस्व, पण्डित-सर्वस्व

कृष्णयजुर्वेद-

भट्टभास्कर	–	'ज्ञानयज्ञ'

सामवेद-

वेदभाष्यकार	–	**प्रमुखभाष्य**
माधव	–	विवरण
गुणविष्णु	–	छान्दोग्य-मन्त्रभाष्य मंत्रब्राह्मण-भाष्य पारस्करगृह्यसूत्र-भाष्य

अथर्ववेद- सायण ने पूरे अथर्ववेद पर भाष्य लिखा।

प्रमुख ब्राह्मण ग्रन्थों के भाष्यकार

वेदभाष्यकार	ब्राह्मण
नीलकण्ठ	काण्वशतपथब्राह्मण
हरिस्वामी	माध्यन्दिन शतपथब्राह्मण
गोविन्दस्वामी	ऐतरेयब्राह्मण 'बौधायनीय-धर्मविवरण'
षड्गुरुशिष्य	ऐतरेयब्राह्मण, ऐतरेय आरण्यक, सर्वानुक्रमणी वेदार्थदीपिका
सायण	ऐतरेय ब्राह्मण
भवस्वामी	तैत्तिरीय ब्राह्मण
जयस्वामी	ताण्ड्य ब्राह्मण
भास्कर मिश्र	आर्षेय ब्राह्मण

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'ब्राह्मणसर्वस्व' वेदभाष्य हलायुध द्वारा लिखा गया है।

अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 24

11. 'वाक्सूक्तम्' ऋग्वेदस्य कस्मिन् मण्डले विद्यते?

(A) दशमे (B) पञ्चमे
(C) अष्टमे (D) सप्तमे

व्याख्या-

ऋग्वेद के प्रमुख सूक्त-

पुरुषसूक्त - (ऋग् 10.90) यह सूक्त चारों वेदों में आया है इसमें पुरुष परमात्मा के विराट् रूप का वर्णन किया गया है। उसी से समस्त विश्व की सृष्टि का वर्णन है।

यथा-

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् (10.90.2)
'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
(10.90.12)

नासदीयसूक्त - (ऋग् ० 10.129) यह सूक्त वैदिक ऋषियों के प्रतिभा ज्ञान के लिए विख्यात अलौकिक चिन्तन का परिचायक है। इसमें भी सृष्टि- उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।

हिरण्यगर्भसूक्त - (ऋग् ० 10.121) इस सूक्त में उदात्त दार्शनिक भावों की अभिव्यक्ति करते हुए 'क' अर्थात् प्रजापति का महत्त्व वर्णित है। 9 मंत्रों में 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' अर्थात् ऐसे प्रजापति देव को हम अपनी स्तुति अर्पित करते हैं- ऐसा कहा गया है।

श्रद्धासूक्त - (ऋग् ०10.151) इस सूक्त में यद्यपि 5 ही मंत्र हैं, परन्तु भावगाम्भीर्य और विचारों की उदात्तता के कारण यह सूक्त अत्यन्त आदरणीय माना जाता है। मंत्र में श्रद्धा की परिभाषा दी गयी है।

संज्ञानसूक्त- (ऋग् ० 10.191) इस सूक्त के 4 मंत्रों में सामाजिक, सौहार्द, सामञ्जस्य, सह-अस्तित्व, ऐकमत्य और संगठन का उपदेश दिया गया है। यह सूक्त सामाजिक, राष्ट्रीय और आर्थिक चिन्तन में समवेत-स्वर या समन्वय की भावना का प्रतिपादक है।

यथा- 'सं गच्छध्वं सं वदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्।'

वाक्सूक्त- (ऋग् ० 10.125) ऋग्वेद के अतिमहत्त्वपूर्ण सूक्तों में वाक्सूक्त है। यह 8 मंत्रों में वाक्तत्त्व, शब्दब्रह्म, वादतत्त्व या वाग्देवी का ब्रह्म के रूप में वर्णन किया गया है। वाक्तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है। यह इन्द्र, अग्नि, सोम, मित्र, वरुण आदि की ऊर्जा का स्रोत है।

दानस्तुतिसूक्त- (ऋग् 10.107-117) ऋग्वेद के इस सूक्त में दान की महिमा का गुणगान है। वैदिक संस्कृति में त्याग और दान इन दो गुणों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। वह समाज एवं राष्ट्र में सर्वत्र पूजा जाता है जो दानी होता है।

- अस्यवामीयसूक्त ऋक् 1.164
- अक्षसूक्त ऋक् 10.34
- विवाहसूक्त ऋक् 10.85

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'वाक्सूक्त' ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 54

12. ऋग्वेदसंहिताया आंग्लपद्यानुवादकः वैदेशिकः विद्वान् वर्तते?

(A) एच. विल्सनः (B) ए.ए. मैक्डानलः
(C) आर.टी.एच. ग्रीफिथः (D) विलियम कैलेण्डः

व्याख्या- प्रमुख वैदेशिक विद्वान् :-

➢ **चार्ल्स विल्किन्स-** चार्ल्स विल्किन्स पहला अंग्रेज था जिसने वारेन् हेस्टिंग्ज की प्रेरणा से बनारस में रहकर संस्कृत भाषा का अध्ययन किया था। उसने 1785 ई. में भगवद्गीता का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। 1787 ई. में हितोपदेश का तथा 1795 ई. में महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान का अंग्रेजी अनुवाद किया।

➢ **सर विलियम जोन्स-** (1746-1794) विलियम जोन्स ने संस्कृत का ज्ञान प्राप्तकर 1789 में संस्कृत के महाकवि कालिदास के प्रमुख नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया।

➢ **एच. एच. विल्सन-** डॉ. विल्सन ने 1850 में सायण भाष्य का उपयोग करते हुए सम्पूर्ण ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित किया है।

➢ **आर. टी. एच. ग्रिफिथ-** ग्रिफिथ महोदय ने 1889-1892 के मध्य सायणभाष्य का उपयोग करते हुए ऋग्वेद का अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया है। इसके अतिरिक्त यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता तथा सामवेद का अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया।

➢ **डा. कीलहार्न-** डॉ. कीलहार्न जर्मन निवासी थे। वे पूना में डेक्कन कॉलेज में अध्यापक रहे। इन्होंने अथक परिश्रम कर 'पातञ्जल महाभाष्य' का सम्पादन किया। 'परिभाषेन्दुशेखर' का कई खण्डों में अंग्रेजी में अनुवाद किया।

ग्रासमन- ग्रासमन जर्मनी के संस्कृत एवं भाषाविज्ञान के विद्वान् थे। इन्होंने 1867-1877 ई. में सायणभाष्य की उपेक्षा कर स्वतन्त्र रीति से ऋग्वेद का दो भागों में जर्मन पद्यानुवाद किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने 1873-1875 में 'वैदिक कोश' लिखा है।

लुडविग- लुडविग जर्मन विद्वान् थे। इन्होंने 1873-88 ई. में ऋग्वेद का छः खण्डों में जर्मन भाषा में गद्यानुवाद किया है।

मैक्डोनल- मैक्डोनल ने 'वैदिक व्याकरण', वैदिक 'माइथोलॉजी' और 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ऋग्वेदसंहिता के आंग्ल पद्यानुवादक वैदेशिक विद्वान् आर.टी.एच. ग्रिफिथ हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य का इतिहास - पारसनाथ द्विवेदी, पेज 20

13. सामविकाराः परिगणिताः सन्ति?

(A) सप्तः **(B)** चत्वारः
(C) त्रयः **(D)** षट्

व्याख्या- * सामविकार- किसी भी ऋचा को गान का रूप देने के लिए कुछ परिवर्तन किए जाते हैं, इन्हें सामवेद की पारिभाषिक शब्दावली में 'विकार' कहा जाता है। इस प्रकार सामवेद में 6 प्रकार के विकार बताए गये हैं। जिनमें स्तोभ प्रमुख है-

(क) स्तोभ	**(घ)** विश्लेषण
(ख) विकार	**(ङ)** अभ्यास
(ग) विकर्षण	**(च)** विराम

(क) स्तोभ- ऋचा को गान का रूप देने के लिए कुछ अतिरिक्त पद मंत्र के साथ जोड़ दिए जाते हैं। ये पद आलाप के लिए होते हैं। जैसे- औहोवा-हाउ आदि।

स्तोभ अक्षरों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है-
1. अन्वयी - अन्वयी ऋचा के प्रारम्भ में जुड़ते हैं।
2. अनुषंगी - ये दो शब्दों के मध्य में या मंत्र के अन्त में जुड़ते हैं।

(ख) विकार- मंत्र के शब्दों में ज्ञान की दृष्टि से कुछ परिवर्तन किया जाता है। जैसे- 'अग्ने' को 'ओग्नायि' बोलना।

(ग) विश्लेषण- एक पद का पृथक्करण अर्थात् एक पद को दो या दो से अधिक खंडों में विभक्त करना।

(घ) विकर्षण- एक स्वर को लम्बा खींचकर देर तक उच्चारण करना। जैसे- 'ये' को 'या' 2, 3 'यि' अर्थात् दीर्घ और प्लुत तक लम्बा खींचना।

(ङ) अभ्यास- किसी पद का दो या अधिक बार उच्चारण करना। जैसे- या 2 'यि', तो या 2 यि। दो बार उच्चारण करना।

(घ) विराम- गान की सुविधा के लिए किसी पद के बीच में रुक जाना। जैसे- गृणानो हव्य दातये का 'गृणानो' है।

➢ **साम गान-** सामयोनि मंत्रों का आश्रय लेकर ऋषियों ने विभिन्न गानों की रचना की है। सामगान चार प्रकार का है-

1. ग्रामगेय गान - इसे प्रकृतिगान अथवा वेयगान भी कहते हैं।
2. आरण्यगान - इसे आरण्यक गेयगान भी कहते हैं, यह वनों या पवित्र स्थानों पर होता है।
3. ऊहगान - ऊह का अर्थ है- विचारपूर्वक विन्यास। पूर्वार्चिक से सम्बद्ध उत्तरार्चिक का गान इस विधि से होता है।
4. ऊह्यगान - ऊह्यगान रहस्यगान है।

सामगान की 5 भक्तियाँ है -

1. प्रस्ताव	2. उद्गीथ
3. प्रतिहार	4. उपद्रव
5. निधन	

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सामविकार छः बताये गये हैं। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 88

14. 'पदक्रमसदन' नामकं भाष्यं कस्य प्रातिशाख्यस्य विद्यते?

(A) वाजसनेयिप्रातिशाख्यस्य **(B)** ऋक्प्रातिशाख्यस्य
(C) अथर्वप्रातिशाख्यस्य **(D)** तैत्तिरीयप्रातिशाख्यस्य

व्याख्या- प्रातिशाख्य- प्रत्येक शाखा से सम्बद्ध व्याकरण आदि का बोध कराने वाले ग्रन्थ प्रातिशाख्य कहलाते हैं। चारों वेदों की अनेक शाखाओं के अनुसार प्रातिशाख्य ग्रन्थों की संख्या भी है।

प्रातिशाख्य ग्रन्थों का शिक्षा, व्याकरण और छन्द तीनों से साक्षात् सम्बन्ध है।

1. ऋक्प्रातिशाख्य- ऋग्वेदप्रातिशाख्य ऋग्वेद की शाकल शाखा की शैशिरीय उपशाखा से लिया गया है। इसको पार्षद या पारिषदसूत्र भी कहते हैं। इसके रचयिता शौनक हैं। इसमें 18 पटल (अध्याय) है।

भाष्य - उव्वटभाष्य (11वीं शती ई.), विष्णुमित्र कृत वृत्ति

2. शुक्लयजुःप्रातिशाख्य (वाजसनेयिप्रातिशाख्य)- इसके रचयिता कात्यायन हैं। इसमें 8 अध्याय हैं। इसमें मुख्यरूप से इन विषयों का वर्णन है :- (i) वर्णविचार, (ii) स्वर-विचार, (iii) सन्धि-विचार, (iv) पदपाठविचार, (v) क्रमपाठ-विचार आदि।

भाष्य - उव्वटकृत मातृवेदनात्मकभाष्य
अनन्तभट्टकृत पदार्थप्रकाशकभाष्य

3. तैत्तिरीयप्रातिशाख्य- यह कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयसंहिता से सम्बद्ध है। इसमें दो प्रश्नों (खंडों) में 12-12 अध्याय हैं। इस प्रकार पूरे ग्रन्थ में 24 अध्याय हैं।

इसमें मुख्यरूप से वर्ण-समाम्नाय, स्वर एवं व्यंजन सन्धियाँ, स्वरों के भेद और संहिता का स्वरूप आदि विषयों का वर्णन है।

*** वेदों के पाठ के दो प्रकार-**

(i) प्रकृतिपाठ (ii) विकृतिपाठ

भाष्य-

* महिषेय-कृत, - 'पदक्रमसदन' भाष्य

* सोमयार्य-कृत - 'त्रिभाष्यरत्न' भाष्य

* गोपालयज्वा कृत - 'वैदिकाभरण' भाष्य

4. अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य- इसके दो प्रातिशाख्य उपलब्ध होते हैं - (i) शौनकीय चतुरध्यायिका (ii) अथर्ववेदप्रातिशाख्य

अथर्ववेदप्रातिशाख्य- इसमें सन्धि, स्वर और पदपाठ के नियम विशेष रूप से बताये गये हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'पदक्रमसदन' नामक भाष्य 'तैत्तिरीयप्रातिशाख्य' का भाष्य है।

अतः विकल्प 'D' सही है।

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 198

15. पाणिनीयशिक्षायां कति श्लोकाः सन्ति?

(A) चतुःषष्टिः **(B)** त्रिषष्टिः
(C) षष्टिः **(D)** सप्ततिः

व्याख्या- शिक्षा का प्रथम सोपान वर्णशिक्षा है। ऋक्प्रातिशाख्य को भी वर्णशिक्षा नाम से जाना जाता है।

''निन्दन्त्यकृत्स्नेति च वर्णशिक्षाम् ।''

सायण- शिक्षा का अर्थ आचार्य सायण ने ऋग्वेदभाष्यभूमिका में किया है -

''वर्णस्वराद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा।''

शिक्षाशास्त्रों में 'पाणिनीयशिक्षा' ही प्रामाणिकतम एवं प्राचीनतम है।

1. पाणिनीयशिक्षा- महर्षि पाणिनि द्वारा रचित 'पाणिनीय शिक्षा' ऋग्वेद से सम्बन्धित शिक्षाग्रन्थ है। ऋग्वेद से सम्बन्धित शिक्षा ऋक्प्रातिशाख्य भी प्राप्त होती है जिसके रचनाकार आचार्य शौनक हैं।

पाणिनीयशिक्षा में श्लोकों की संख्या 60 है। पाणिनीय-शिक्षा में शिक्षा को वेदपुरुष का प्राण कहा गया है-

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥41॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥42॥

2. भरद्वाजशिक्षा- इनमें पदों की शुद्धता तथा ध्वनि भेद से उदात्त आदि स्वरों में भेद का वर्णन है।

3. याज्ञवल्क्यशिक्षा- इसमें 232 श्लोक हैं। इसमें वैदिक स्वरों का विवेचन है। वर्णों के भेद, स्वरूप, लोप, आगम, विकार, प्रकृतिभाव आदि का वर्णन है।

4. प्रातिशाख्य प्रदीप शिक्षा- इसमें स्वर-वर्ण आदि की शिक्षा का विस्तृत विवेचन है। प्राचीन वैयाकरणों के मतों का भी उल्लेख है।

अन्य कुछ मुख्य शिक्षा-ग्रन्थ ये हैं -

(i) व्यास शिक्षा (ii) वासिष्ठी शिक्षा (iii) कात्यायनी शिक्षा (iv) पाराशरी शिक्षा (v) माण्डव्य शिक्षा आदि।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'पाणिनीय शिक्षा' में **60 श्लोक** हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 192

16. 'मघवा' देवः कः?

(A) इन्द्रः **(B)** विष्णुः
(C) वरुणः **(D)** हिरण्यगर्भः

व्याख्या- **इन्द्र -**

- ऋग्वेद का सबसे महान् देवता है।
- स्तुति 250 सूक्तों में की गयी है।
- **तीन विशेष गुण -**
  1 महान् कार्यों को करने की शक्ति
  2 अतुल पराक्रम
  3 असुरों को युद्ध में जीतना
- प्रमुख शस्त्र वज्र था।
- इनको शचीपति, शतक्रतु, मरुत्वान्, मघवा, शक्र, शचीवान् इत्यादि नामों से जाना जाता है।

विष्णुः –

- स्तुति ऋग्वेद के पहले मण्डल के 154 सूक्त में की गई है।
- विष्णु शब्द 'विष्लृ व्याप्तौ' धातु से बनता है, जिसका अर्थ है- व्यापनशील होना। इसी कारण ये सूर्य के वाचक हुये, जिसका अर्थ है-तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाला।
- इनको परम-पद का 'अधिष्ठाता' कहा गया है। परमपद उच्चलोक है।
- यह त्रिविक्रम, उरुक्रम, उरुगाय इत्यादि नामों से जाने जाते हैं।

वरुणः -

- वरुण की स्तुति 12 सूक्तों में की गई है।
- वरुण का मुख्य रूप शासक का है, जो प्रशासन तथा नियमों का संचालन करता है।
- इनको धृतव्रत और असुर (असु-प्राण को, र-देने वाला) नाम से जाना जाता है।

हिरण्यगर्भः -

- पुरुष में जो 'विराट्' उत्पन्न होता है वही हिरण्यगर्भ है।
- पुराणों में इनको ब्रह्मा कहा गया है।
- इनको प्रजापति नाम से भी जाना जाता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'मघवा' इन्द्र देवता हैं। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह- हरिदत्त शास्त्री, भूमिका पेज 12

17. 'यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्' अस्य मन्त्रस्य द्रष्टा ऋषिः कः?

(A) विश्वामित्रः **(B)** मधुच्छन्दा
(C) गृत्समदः **(D)** इन्द्रः

व्याख्या- इन्द्रसूक्त -

- ऋग्वेद के दूसरे मण्डल के 12वें सूक्त में वर्णित है।
- देवता- इन्द्र, ऋषि- गृत्समद, छन्द- त्रिष्टुप्, कुल मन्त्र- 15

प्रमुख मन्त्र -

- यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्।
- यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो।
- यो जात एव प्रथमो मनस्वान्, देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्। यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां, नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः।।
- यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
- द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।

➢ **अग्निसूक्त -**

- ऋग्वेद के पहले मण्डल के पहले सूक्त में वर्णित है।
- ऋषि - मधुच्छन्दा
- देवता - अग्नि
- छन्द - गायत्री
- कुल मन्त्र - 9

प्रमुख मन्त्र -

- यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
  तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः।।
- राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।
  वर्धमानं स्वे दमे।।
- स नः पितेव सूनवे, अग्ने सूपायनो भव सचस्वा नः स्वस्तये।।

➢ **सूर्यसूक्त -**

- ऋग्वेद के पहले मण्डल के 115वें सूक्त से लिया गया है।
- ऋषि - कुत्स
- देवता - सूर्य
- छन्द - त्रिष्टुप्
- कुल मन्त्र - 6

प्रमुख मन्त्र -

- चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
  आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।।
- यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्।
- तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
  अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति।।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत मन्त्र इन्द्र सूक्त से लिया गया है इसके द्रष्टा 'गृत्समद' ऋषि हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- ऋक्सूक्तसंग्रह (2.12.2) - हरिदत्त शास्त्री, पेज 178

18. ऋग्वेदस्य शाकलसंहितायां कति सन्ध्यक्षराणि स्वीकृतानि?

(A) एकम् **(B)** द्वे
(C) चत्वारि **(D)** त्रीणि

व्याख्या- ऋग्वेद शाकलसंहिता - ऋग्वेद शाकलसंहिता में समानाक्षर, संध्यक्षर, ऊष्मवर्ण, यम, रिफित आदि अनेक विषयों का वर्णन हुआ है।

➢ **समानाक्षर संज्ञा -**

'अष्टौ समानाक्षराण्यादितः'

समानाक्षर आठ होते हैं -

यथा - अ, आ, ऋ, ॠ, इ, ई, उ, ऊ।

समानाक्षरसंज्ञायाः प्रयोजनम् - समान स्थान वाले दो समानाक्षर (एक दीर्घ 'स्वर' - वर्ण को प्राप्त हो जाते हैं।

➤ **संध्यक्षर संज्ञा -**

'ततश्चत्वारि संध्यक्षराण्युत्तराणि'

तत्पश्चात् आगे वाले चार (अक्षर) संध्यक्षर हैं।

तत्पश्चात् अर्थात् तेभ्यः समानाक्षरेभ्यः, उत्तराणि चत्वारि, (संध्यक्षराणि) संध्यक्षरसंज्ञकानि, भवन्ति।

यथा- ए, ओ, ऐ, औ।

संध्यक्षरसंज्ञायाः प्रयोजनम् - 'संध्यानि संध्यक्षराण्याहुरेके'

समानाक्षर के बाद चार संध्यक्षर होते हैं।

अकार की इकार, उकार, एकार और ओकार के साथ सन्धि होने पर, जो 'अक्षर' निष्पन्न होते हैं वे वैसे अर्थात् 'संध्यक्षर' कहे जाते हैं।

जैसे- ए, ओ, ऐ, औ।

संध्यक्षरसंज्ञा का प्रयोजन - 'कुछ (लोग) संधि से उत्पन्न अक्षरों को संध्यक्षर कहते हैं।

समानाक्षरों के अनन्तर 'संध्यक्षर' हैं तथापि सूत्रकार ने 'उत्तराणि' पद का प्रयोग इसलिए किया है जिससे कोई यह न समझ बैठे कि संध्यक्षरों में ल और ऌ ये दो स्वर वर्ण आते हैं। संध्यक्षरों में इन दो 'स्वर' वर्णों का प्रतिबोध करने के लिए ही सूत्रकार ने 'उत्तराणि' पद का प्रयोग किया है।

ज्ञातव्य है कि इस प्रातिशाख्य में 'स्वर' वर्णों का क्रम इस प्रकार है- अ, आ, ऋ, ॠ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ, ऐ, औ, ऌ, (ॡ) ई।

जो ये 'समानाक्षर' और 'संध्यक्षर' संज्ञा वाले वर्ण हैं, बारह वर्णों को, स्वरसंज्ञक वर्ण जानना चाहिए।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि संध्यक्षर चार हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- ऋग्वेदप्रातिशाख्यम् - वीरेन्द्रकुमार वर्मा, पेज 43

19. 'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति, स वेदः' इति लक्षणं कस्य?

(A) महीधरस्य **(B)** लौगाक्षिभास्करस्य
(C) सायणस्य **(D)** पारस्करस्य

व्याख्या- वेद का अर्थ - विद् (ज्ञाने) + घञ् = वेद इसका आशय है - ज्ञान। अतः वेद शब्द का अर्थ होता है- ज्ञान की राशि या ज्ञान का संग्रह-ग्रन्थ।

वेद शब्द चार धातुओं से विभिन्न अर्थों में बनता है-

1. विद सत्तायाम् (होना, दिवादि)
2. विद ज्ञाने (जानना, अदादि)
3. विद विचारणे (विचारना, रुधादि)
4. विद्ऌ लाभे (प्राप्त करना, तुदादि)

'सत्तायां विद्यते ज्ञाने, वेत्ति विन्ते विचारणे।
विन्दति विन्दते प्राप्तौ, श्यन्लुक्श्नम्शेष्विदं क्रमात्॥

➤ ऋक्प्रातिशाख्य के व्याख्याकार विष्णुमित्र ने वेद का अर्थ बताया है-

'विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते एभिर्धर्मादि-पुरुषार्था इति वेदाः।

अर्थात् 1. जिन ग्रन्थों के द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी पुरुषार्थचतुष्टय के अस्तित्व का बोध हो।
2. पुरुषार्थचतुष्टय का ज्ञान हो एवं
3. जिनसे पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति हो वही वेद हैं।

➤ आचार्य सायण के अनुसार वेद शब्द का अर्थ-

'इष्टप्राप्त्यनिष्ट-परिहारयोरलौकिकम् उपायं यो ग्रन्थो वेदयति, स वेदः।' (तैत्तिरीय संहिता-भाष्य की भूमिका)

अर्थात् जो ग्रन्थ इष्ट-प्राप्ति और अनिष्ट-निवारण का अलौकिक उपाय बताता है, उसे वेद कहते हैं।

मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का सामूहिक नाम 'वेद' है। वेद शब्द के पर्याय के रूप में अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे-

1. श्रुति 2. निगम
3. आगम 4. त्रयी
5. छन्दस् 6. आम्नाय
7. स्वाध्याय आदि।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत पंक्ति में वेद का लक्षण आचार्य सायण द्वारा किया गया है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 01

20. 'वाधूलशुल्बसूत्रम्' केन वेदेन सम्बद्धमस्ति?

(A) अथर्ववेदेन **(B)** सामवेदेन
(C) ऋग्वेदेन **(D)** यजुर्वेदेन

व्याख्या- 1. ऋग्वेद - ऋग्वेद का ऋत्विक् 'होता' है। मन्त्र 10580-1/4 हैं। सूक्त 1028, अनुवाक 85, मण्डल 10 मुख्य देवता अग्नि, आचार्य पैल हैं।

कल्पसूत्र

श्रौतसूत्र	**गृह्यसूत्र**	**धर्मसूत्र**	**शुल्बसूत्र**
1. आश्वलायन	1. आश्वलायन	1. वशिष्ठ	कोई नहीं
2. कौषीतकि या शांखायन	2. शांखायन	(एकमात्र)	
	3. शाम्बव्य		

2. यजुर्वेद -

ऋत्विक् - अध्वर्यु
शाखाएँ - 85
मुख्यदेवता - वायु
मुख्य आचार्य - वैशम्पायन
विषय - विविधयागादि

कल्पसूत्र

श्रौतसूत्र	गृह्यसूत्र	धर्मसूत्र	शुल्बसूत्र
1 शुक्ल यजुर्वेद			
1 कात्यायन या पारस्कर	1कात्यायन या पारस्कर	1 हारीत 2 शंख	1 कात्यायन
2 कृष्णयजुर्वेद			
1 कठ	1 कठ	1 विष्णु	1 मानव
2 आपस्तम्ब	2 आपस्तम्ब	2 वशिष्ठ	2 बौधायन
3 बौधायन	3 बौधायन	3 आपस्तम्ब	3 आपस्तम्ब
4 सत्याषाढ	4 सत्याषाढ	4 बौधायन	4 मैत्रायणी
5 वैखानस	5 वैखानस	5 हिरण्यकेशी	5 वाराह
6 भारद्वाज	6 भारद्वाज	6 वैखानस	6 वाधूल
7 वाधूल	7 वाधूल		

3. सामवेद -

ऋत्विक् - उद्गाता
शाखाएँ - 1000 (सहस्रवर्त्मा सामवेदः)
उत्तरार्चिक - 1225 मन्त्र
पूर्वार्चिक - 650 मन्त्र
कुल मन्त्र - 1875 मन्त्र
सामविकार - 6
सामगान - 5
मुख्यदेव एवं आचार्य - सूर्य एवं जैमिनि
विषय - स्तुतिस्तोम

कल्पसूत्र

श्रौतसूत्र	गृह्यसूत्र	धर्मसूत्र	शुल्बसूत्र
1 लाट्यायन	1 खादिर	गौतम (एकमात्र)	कोई नहीं
2 द्राह्यायण	2 गोभिल		
3 मशक/आर्षेय	3 गौतम		
4 खादिर	4 जैमिनीय		
5 जैमिनीय			

4. अथर्ववेद - ऋत्विक् - ब्रह्मा, सूक्त - 731
देवता/आचार्य - सोम/सुमन्तु, मन्त्र - 6000,
काण्ड - 20

कल्पसूत्र

श्रौतसूत्र	गृह्यसूत्र	धर्मसूत्र	शुल्बसूत्र
वैतान (एकमात्र)	1 कौशिक (एकमात्र)	कोई नहीं	कोई नहीं

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वाधूल शुल्बसूत्र यजुर्वेद से लिया गया है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 09

21. 'विलोहितः' इति कस्याः देवतायाः विशेषणम् अस्ति?
(A) विष्णोः **(B)** वायोः
(C) रुद्रस्य **(D)** इन्द्रस्य

व्याख्या- 1. रुद्र अन्तरिक्षस्थानीय देवता हैं। सम्पूर्ण ऋग्वेद में 'रुद्र' से सम्बन्ध तीन ही सूक्त हैं। (1/114, 2/33, 7/46)।

रुद्र शब्द की व्युत्पत्ति -

'रौतीति सतो रोरूयमाणो द्रवतीति वा रोदयतेर्वा, यदरुदत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्, यदरोदीत तदद्रुस्य रुद्रत्वम्।

निवास स्थान- अन्तरिक्ष

ऋषि - गृत्समद

विशेषण - पशुपति, त्र्यम्बक, शर्व, भव, नीललोहित, मरुत्पिता, मरुत्वान्, असुर, कृत्तिवास, रक्तवर्णी, मृण्याकु, बभ्रु, वङ्कु, जलाषभेषज, नीलकण्ठ, अधृष्म, द्रुतगामी, प्रचेतस्, नीलोदर, लोहित-पृष्ठ, विलोहित इत्यादि।

2. विष्णु - विष्णु द्यु-स्थानीय देवता है। सम्पूर्ण ऋग्वेद में विष्णु से सम्बन्धित 5 ही सूक्त प्राप्त होते हैं।

विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति -

'विष्णातेर्विशतेर्वा स्याद् वेवेष्टेर्व्याप्तिकर्मणः।

ऋषि - दीर्घतमा

निवासस्थान - द्युलोक

विशेषण - उरुक्रम, उरुगाय, त्रिविक्रम, भीम, कुचर, गिरिष्ठा, गिरिक्षित, गिरिजा, वृष्ण, मातरिश्वा आदि।

3. इन्द्र - इन्द्र अन्तरिक्षस्थानीय देवता हैं। स्तुति ऋग्वेद में लगभग 250 सूक्तों में की गयी है। जो ऋग्वेद का चतुर्थांश है। इसके अतिरिक्त 50 सूक्तों में अन्य देवताओं के साथ की गयी है।

इन्द्र शब्द की व्युत्पत्ति -

इरां दृणाति, इरां ददाति, इरां दधाति, इरां धारयते, इन्दवे द्रवति, इन्दौ रमते, इन्दञ्छत्रूणां दारयिता।

स्थान - अन्तरिक्ष

ऋषि - गृत्समद

विशेषण - वृत्रहा, सुशिप्र, सोमपा, वज्री, शक्र, पुरन्दर, वज्रहस्त, मरुत्वान्, मरुत्सखा, वज्रबाहु, हरिकेश, हिरण्यबाहु, चित्रबाहु, शचीपति, वसुपति, वज्रिन्, शतक्रतु, मनस्वान् आदि।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विलोहित 'रुद्र' देवता का विशेषण है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैदिकसूक्तसंग्रह - गीताप्रेस, पेज 19

22. 'छन्दःसूत्रम्' इति वेदाङ्गग्रन्थस्य प्रणेता विद्यते -

(A) हलायुधः **(B)** पिङ्गलः

(C) लगधः **(D)** भरतः

व्याख्या- ➢ **पिङ्गलः -** 'छन्द' वेदाङ्ग को वेद-पुरुष के पादों (पैर) के रूप में माना जाता है - 'छन्दः पादौ तु वेदस्य'। वेद छन्दोमयी वाणी है।

कात्यायन ने अपनी सर्वानुक्रमणी में अक्षर परिमाण को ही छन्द का लक्षण बतलाया है-

''यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः''।

अर्थात् जहाँ अक्षरों की संख्या निश्चित होती है, उसे छन्द कहते हैं।

वेदमन्त्रों के साथ छन्दों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'छन्दयति पृणाति रोचते इति छन्दः', अर्थात् जिस वाणी को सुनते ही मन आह्लादित हो जाता है, वह छन्दोमयी वाणी ही वेद है।

यास्काचार्य ने छन्द शब्द की व्युत्पत्ति **छद् (ढँकना) आच्छादने, आवरणे** से बताई है जो वेद को आसुरी हस्तक्षेप से सुरक्षित रखता है, वह छन्द है।

आचार्य पिङ्गल द्वारा रचित 'छन्दःसूत्रम्' प्रमुख ग्रन्थ है। आचार्य पिङ्गल छन्दःशास्त्र के प्रणेता माने जाते हैं।

➢ **हलायुध-** शुक्लयजुर्वेद काण्वसंहिता के हलायुध प्रमुख वेद भाष्यकार माने जाते हैं। इनके भाष्य का नाम 'ब्राह्मणसर्वस्व' है।

इनका समय 12 वीं शती ई. है। इनके कुछ अन्य प्रमुख ग्रन्थ - मीमांसासर्वस्व, वैष्णवसर्वस्व, शैवसर्वस्व, पण्डित-सर्वस्व आदि।

➢ **लगध-** ज्योतिषशास्त्र के प्रणेता आचार्य लगध हैं। वेदाङ्गज्योतिष के दो प्रतिनिधि ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं -

1 आर्च ज्योतिष (ऋग्वेद) - 36 पद्य

2 याजुष ज्योतिष (यजुर्वेद) - 43 पद्य

इस ग्रन्थ के प्राचीनतम टीकाकार **सोमाकार** है।

➢ **भरत-** नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि हैं। इसमें 36 अध्याय हैं। भरतमतानुसार नाट्यशास्त्र पञ्चमवेद है। **'नाट्यस्तु पञ्चमो वेदः'**

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'छन्दःसूत्रम्' के प्रणेता आचार्य पिङ्गल हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 199

23. यास्कीयनिरुक्तग्रन्थे काण्डानि विद्यन्ते?

(A) पञ्च **(B)** त्रीणि

(C) सप्त **(D)** नव

व्याख्या- मुनि यास्क द्वारा रचित 'निरुक्त' उनका प्रमुख ग्रन्थ है। जो तीन काण्डों एवं बारह अध्यायों में विभक्त है। वेदों में निरुक्त को श्रोत्र (कर्ण) के समान बताया गया है। तीन काण्ड इस प्रकार हैं -

1. नैघण्टुक काण्ड
2. नैगम काण्ड
3. दैवत काण्ड

नैघण्टुक काण्ड - नैघण्टुक काण्ड तीन अध्यायों में विभक्त है। जिसमें प्रथम अध्याय में नाम, आख्यात आदि चार पदविभाग, शब्द नित्यता का विवेचन, षड्भाव-विकार, उपसर्गों का अर्थ विवेचन, सभी नाम धातुज हैं- इसका प्रतिपादन, मंत्रों की सार्थकता, अर्थज्ञान का प्रतिपादन। द्वितीय और तृतीय अध्याय में निर्वचन, वर्णपरिवर्तन आदि से सम्बन्धित भाषाशास्त्रीय विवेचन का वर्णन है।

नैगम काण्ड- नैगम काण्ड या ऐकपदिक काण्ड भी तीन अध्यायों 4 से 6 अध्यायों में विभाजित है। इन तीनों काण्डों में वेदों के निघण्टु में पठित कठिन शब्दों की सोदाहरण व्याख्या की गयी है।

दैवत काण्ड - दैवत काण्ड 6 अध्यायों, 7 से 12 अध्याय तक वर्णित है। इन अध्यायों में देवतावाचक शब्दों की विस्तृत व्याख्या तथा द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवीस्थानीय देवों का विवेचन है।

* इसके अतिरिक्त दो अध्याय परिशिष्टरूप में जोड़े गये हैं। अध्याय 13 और 14 जिसमें निर्वचन-प्रक्रिया, सृष्टि-उत्पत्ति तथा दार्शनिक महत्त्व के अनेक विषयों का विवेचन है।

* यास्क का निरुक्त वस्तुतः निघण्टु की व्याख्या या भाष्य है। निघण्टु वैदिक शब्दकोश या वैदिक शब्दों का संकलन है। इसमें 5 अध्याय हैं तथा संगृहीत शब्दों की संख्या 1738 है।

निरुक्त के प्रतिपाद्य विषय- संक्षेप में निरुक्त के प्रतिपाद्य विषय 5 बताए गये हैं।

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्॥

1 वर्णागम-विचार

2 वर्णविपर्यय-विचार

3 वर्णविकार-विचार

4 वर्णनाश-विचार

5 धातुओं का अनेक अर्थों में प्रयोग सम्बन्धी विचार

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि निरुक्त में 3 काण्ड हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 204

24. 'भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि' इति पंक्तिः कस्मिन् प्रसङ्गे महाभाष्ये उद्धृता?

(A) शब्दपरिभाषाप्रसङ्गे

(B) व्याकरणाध्ययनप्रयोजनप्रसङ्गे

(C) शब्दार्थसम्बन्धप्रसङ्गे

(D) व्याकरणलक्षणप्रसङ्गे

व्याख्या- महाभाष्य- पाणिनि की अष्टाध्यायी का विशद व्याख्यान पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में किया है। भाष्य का लक्षण-

'सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥

इसका विभाजन आह्निकों में है - 'अह्ना निर्वृत्तम्' -आह्निकम्' अर्थात् एक-एक दिन के अध्ययनीय या अध्यापित विषय का संग्रह एक-एक आह्निक में किया गया है।

- इसमें 84 आह्निक हैं।
- प्रथम आह्निक - पस्पशाह्निकम् है।

➤ **पस्पशाह्निक का प्रतिपाद्य विषय -**

- शब्द स्वरूप
- व्याकरणाध्ययन का प्रयोजन
- शब्दानुशासन की पद्धति
- शब्द-अर्थ-सम्बन्ध की नित्यता
- व्याकरणशास्त्र द्वारा नियम का बोधन आदि।

➤ **शब्दानुशासन (व्याकरणाध्ययन) का प्रयोजन-**

*** मुख्य प्रयोजन-** मुख्य प्रयोजन पाँच हैं - रक्षा, ऊह, आगम, लघु और असन्देह।

*** गौण प्रयोजन -** तेऽसुराः, दुष्टः शब्दः, यदधीतम्, यस्तु प्रयुङ्क्ते, अविद्वांसः, विभक्तिं कुर्वन्ति, यो वा इमाम्, चत्वारि, उत त्वः, सक्तुमिव, सारस्वतीम्, दशम्यां पुत्रस्य, सुदेवो असि वरुण।

➤ **सक्तुमिव -**

''सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि।।

जिस (व्याकरण) में ध्यान लगाने से वैयाकरणों ने चलनी के द्वारा सत्तुओं के समान (ध्यानयुक्त) मन (प्रकृष्ट ज्ञान) द्वारा वाणी को किया। इस (ब्रह्मप्रतिपादक शब्द) के विषय में समानज्ञान वाले (यथार्थ ज्ञान वाले होते हुए) सायुज्य-ऐक्य प्राप्त करते हैं। (इनकी वाणी में कल्याणमयी लक्ष्मी (स्वप्रकाशरूपा शक्ति) अधिक रहती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत पंक्ति व्याकरणाध्ययन प्रयोजन के प्रसंग में उद्धृत है।

अतः विकल्प 'B' सही है।

स्रोत- व्याकरण-महाभाष्यम्, पस्पशाह्निकम् - जयशङ्कर लाल त्रिपाठी, पेज 56

25. 'लोटो लङ्वत्' इति सूत्रेण अधोलिखितविकल्प मात्रेषु किमभिप्रेतः?

(A) अडागमः **(B)** आडागमः

(C) आदेशः **(D)** सलोपः

व्याख्या- ➤ लोटो लङ्वत् (3/4/85) -

लोटस्तामादयः सलोपश्च।

लोट्लकार लङ् के समान होता है।

लङ्लकार में ङकार की इत्संज्ञा होने से वह ङित् है। इसी प्रकार लोट्लकार स्वतः ङित् नहीं, टित् है। अतः ङित् को मानकर होने वाले कार्य नहीं हो पा रहे थे। इसलिए पाणिनि ने इस सूत्र को बनाया।

लोट्लकार को भी लङ् के समान ङित् लकार माना जाय, जिससे ङित् को मानकर होने वाले कार्य हो जायें।

यह सूत्र **ताम्** आदि आदेश करना हो अथवा **नित्यं ङितः** से **सलोप** करना हो तब प्रवृत्त होगा, अन्यत्र नहीं।

➤ **सेर्ह्यपिच्च (3/4/87॥)**

लोटः सेर्हिः सोऽपिच्च।

लोट्लकार के 'सि' के स्थान पर 'हि' आदेश होता है और वह अपित् होता है।

सिप् के पकार की इत्संज्ञा होती है, अतः वह स्वतः पित् है। अतः यह सूत्र पित् को अपित् होने का अतिदेश कर रहा है।

'लोटो लङ्वत्' से अङित् लकार को ङित् लकार का अतिदेश किया था। अब यहाँ पित् प्रत्यय को अपित् कर रहे हैं। इसी को अतिदेश कहते हैं। जो जैसा नहीं है, उसको वैसा मान लिया जाए। यही अतिदेश है।

➤ **आडुत्तमस्य पिच्च (3/4/92)**

लोडुत्तमस्याट् स्यात् पिच्च।

लोट्लकार के उत्तमपुरुष को आट् का आगम होता है और वह आट्सहित उत्तमपुरुष पित् के समान होता है।

➤ **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः (6/4/71)**

एष्वङ्गस्याट् ।

लुङ्, लङ्, लृङ् के परे रहने पर धातुरूप अङ्ग को अट् आगम का होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ''लोटो लङ्वत्'' सूत्र सलोप का विधान करता है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी - गोविन्दाचार्य, पेज 401

26. 'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः' इति सूत्रेण किं विधीयते?

(A) आम्प्रत्ययः (B) लुक्
(C) क्राद्यनुप्रयोगः (D) सलोपः

व्याख्या- ➢'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः' (3/1/36)

इजादिर्यो धातुर्गुरुमानृच्छत्यन्यस्तत आम् स्याल्लिटि।

ऋच्छ् धातु से भिन्न इजादि जो गुरु-वर्ण से युक्त धातु, उससे परे आम् प्रत्यय होता है, लिट् के परे होने पर।

- इच् एक प्रत्याहार है, वह आदि में है जिस धातु के वह धातु इजादि हुआ।
- जिस धातु में दीर्घ वर्ण या संयोग हो वह धातु गुरुमान् अर्थात् गुरुसंज्ञक वर्ण वाला होता है।
- ऋच्छ् धातु में च्, छ् का संयोग है, अतः यह भी गुरुमान् हुआ।
- ऋच्छ् धातु से आम् प्रत्यय अभीष्ट नहीं था, इसलिए निषेध करने के लिए सूत्र में 'अनृच्छः' पढ़ा गया।
- आम् के मकार की इत्संज्ञा नहीं होती है। अतः पूरा आम् धातु से परे होता है। लिट् परे रहते विहित होने से धातु और लिट् के बीच में बैठ जाता है।

➢ **आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य (1/3/63)**

आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः।

आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मनेपदम् ।

आम् प्रकृति वाली धातु अर्थात् आम् प्रत्यय जिस धातु से होता है, ऐसी धातु के समान अनुप्रयोग की जाने वाली कृ धातु से भी आत्मनेपद ही होता है।

➢ **धि च (8/2/25 ॥)**

धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः। एधिताध्वे।

धकारादि प्रत्यय के परे होने पर सकार का लोप होता है।

एधिताध्वे -

एध् + लुट्
एध् + ध्वम्
एध् तास् + ध्वम्
एध् इतास् + ध्वम्
एधिताधि च सलोप + ध्वम्
एधिता + ध्वम्
एधिता + ध्वे (टित आत्मनेपदानां टेरे)
एधिताध्वे

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः' सूत्र से **आम् प्रत्यय** का विधान हुआ है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी - गोविन्दाचार्य, पेज 482

27. अधोऽङ्कितयुग्मेभ्यः समीचीना तालिका चेतव्या?

(क) कृत्यानां कर्तरि वा (2.3.71) **(i) दण्डिकः**
(ख) उगितश्च (4.1.6) **(ii) मम मया वा सेव्यो हरिः**
(ग) ई च खनः (3.1.111) **(iii) भवती**
(घ) अत इनि-ठनौ (5.2.115) **(iv) खेयम्**

	(क)	(ख)	(ग)	(घ)
(A)	(ii)	(iii)	(iv)	(i)
(B)	(ii)	(iv)	(iii)	(i)
(C)	(i)	(iii)	(iv)	(ii)
(D)	(ii)	(i)	(iii)	(iv)

व्याख्या- भट्टोजिदीक्षित द्वारा रचित सिद्धान्तकौमुदी व्याकरण का प्रमुख ग्रन्थ है जिसमें सन्धि, समास, कारक, प्रत्यय आदि अनेक विषयों का वर्णन हुआ है।

➢ **कृत्यानां कर्तरि वा-** यह कारकविधायक सूत्र है जो षष्ठी का विधान करता है। 'कृत्य' प्रत्ययान्त शब्दों के योग में अनुक्त कर्ता में तृतीया के स्थान पर विकल्प से षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे - मया मम वा सेव्यो हरिः।

इस प्रकार पक्ष में तृतीया तथा विकल्प से षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है।

➢ **उगिश्च -** उगिदन्तात्प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। जिसमें उक् अर्थात् उ, ऋ, लृ की इत्संज्ञा हो गयी हो ऐसे प्रातिपदिकों से स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

जैसे - भवती, भवन्ती, पचन्ती, दीव्यन्ती।

जैसे - 'भवत्' प्रातिपदिक में।

'उगितश्च' से ङीप् लगाकर, अनुबन्धलोप,

भवत् + ई = भवती
भवत + ई = भवन्ती
पच् = पचन्ती

➢ **अत इनिठनौ -** ह्रस्व अकारान्त प्रथमान्त प्रातिपदिक से इनि

और ठन् प्रत्यय होते हैं। ये प्रत्यय मत्वर्थीय के अन्तर्गत आते हैं। जैसे - दण्ड + इनि = 'अत इनिठनौ'

दण्डिन् = नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य तथा उपधादीर्घ होकर = दण्डी

दण्ड + ठन = अत इनिठनौ

'ठस्येकः' से इक आदेश

दण्डिकः

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि 'कृत्यानां कर्तरि वा' से 'मया मम वा सेव्यो हरिः' 'उगितश्च' से ङीप् तथा ह्रस्व अवर्णान्त से मत्वर्थीय इनि प्रत्यय तथा भवत् में ङीप् जोड़कर भवती, पचन्ती आदि सिद्ध हैं। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- अष्टाध्यायी -ईश्वरचन्द्र, पेज 219, 423, 295, 600

28. 'दन्तुरः' इत्यत्र कः प्रत्ययः?

(A) र **(B)** अच्

(C) इरच् **(D)** उरच्

व्याख्या- ➢ उरच् प्रत्यय - 'दन्त उन्नत उरच्' (5/2/106)

उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य दन्तुरः।

* दाँतों का उन्नत होना अर्थ गम्यमान हो तो प्रथमान्त 'दन्त' शब्द से मत्वर्थ में 'उरच्' प्रत्यय होता है।

* चकार इत्संज्ञक है, 'उर' बचता है। जहाँ 'उन्नत दाँत वाला' अर्थ न होकर केवल सामान्य दाँत वाला अर्थ होगा, वहाँ उरच् न होकर मतुप् के योग में 'दन्तवान्' बनता है।

दन्तुरः - ऊँचे दाँत वाला व्यक्ति। उन्नता दन्ता सन्त्यस्य।

दन्त + उरच् = 'दन्त उन्नत उरच्' सूत्र से

दन्त + उरच् = 'हलन्त्यम्' से च् की इत्संज्ञा 'तस्य लोपः' से उसका लोप

दन्त + उर = 'यचि भम्' से दन्त की 'भ' संज्ञा

दन्त् + उर = 'यस्येति च' से त के (अ) का लोप

दन्तुर + सुप् = 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' से सुप्

दन्तुर + सुप् = (प) की 'हलन्त्यम्' एवं (उ) की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत्संज्ञा 'तस्यलोपः' से लोप

दन्तुर + स = 'ससजुषो रुः' से रुत्व

दन्तुर + रु = रु के उ की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत्संज्ञा 'तस्य लोपः' से लोप

दन्तुर + र् = 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग

दन्तुर + ः = दन्तुरः

➢ **अच् प्रत्यय- 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (3/1/134)

नन्दि आदि, ग्रहि आदि और पच् आदि धातुओं से क्रमशः ल्यु, णिनि और अच् प्रत्यय होते हैं।

'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' के नियम से क्रमशः विधान होने पर नन्दि आदि धातुओं से ल्यु, ग्रहि आदि धातुओं से णिनि और पच् आदि धातुओं से अच् प्रत्यय हो जाते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'दन्तुर' में (उरच्) प्रत्यय है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी - गोविन्दाचार्य, पेज 1115

29. 'सुमुखा शाला' इत्यत्र स्वाङ्गलक्षणङीष् कथं न?

(A) अप्राणिस्थत्वात् **(B)** अमूर्तत्वात्

(C) विकारजत्वात् **(D)** द्रवत्वात्

व्याख्या- ङीष् विधायक सूत्र -

सूत्र - 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' (4.1.54) - जिसकी उपधा में संयोग न हो ऐसा जो उपसर्जनसञ्ज्ञक स्वाङ्गवाची शब्द तदन्त अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय हो।

यथा - अतिकेशी / अतिकेशा = केशान्, अतिक्रान्ता पक्ष में ङीप् होकर

अतिकेश + ङीष् (ई) = अतिकेशी

अभाव पक्ष में टाप् (अजाद्यतष्टाप्) करके-

अतिकेश + टाप्

अतिकेश + आ = सवर्ण दीर्घ होकर = अतिकेशा

इसी प्रकार - चन्द्रमुखी / चन्द्रमुखा- चन्द्र इव मुखं यस्याः सा

चन्द्रमुख + ङीष् (ई) = चन्द्रमुखी

चन्द्रमुख + टाप् = चन्द्रमुखा

*** असंयोगोपधात् किम् ?** असंयोग होने पर ही 'ङीष्' होगा अन्यथा संयोग होने पर टाप् हो जायेगा।

यथा- सुगुल्फ + टाप् = सुगुल्फा

*** उपसर्जनात् किम् ?** क्योंकि उपसर्जन न होने पर ङीष् न हो तब केवल टाप् प्रत्यय होगा।

यथा - शिखा + टाप् (आ) = शिखा

*** स्वाङ्ग -** स्वाङ्ग से यहाँ अपना अङ्ग नहीं समझना चाहिए व्याकरण में यह परिभाषिक शब्द माना गया है। वैयाकरणों ने स्वाङ्ग को त्रिविध बताया है।

1. अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम् ।

2. अतस्थं तत्र दृष्टं च।

3. तेन चेत्तत्थायुतम् ।।

अद्रव मूर्तिमत् स्वाङ्ग प्राणिस्थमविकारणम् - जो पदार्थ द्रव न हो, मूर्तिमान् हो, विकार से उत्पन्न न हुआ हो एवं प्राणियों में स्थित रहता हो वह 'स्वाङ्ग' कहलाता है।

जैसे - प्राणिस्थ केश, मुख, स्तन आदि स्वाङ्ग हैं, तदन्तों से प्रकृतसूत्र द्वारा ङीष् तथा पक्ष में टाप् होता है।

जैसे - सुकेशी-सुकेशा

चन्द्रमुखी - चन्द्रमुखा

- इनसे भिन्न स्थलों में ङीष् नहीं होता तब टाप् होता है।

जैसे - सुमुखा शाला सुन्दरं मुखं यस्याः सा सुमुखा (सुन्दर द्वारा वाला घर)

- यहाँ मुख शब्द प्राणिस्थ न होने से स्वाङ्ग नहीं है अतः ङीष् नहीं हुआ।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि 'सुमुखा शाला' में अप्राणिस्थत्वात् के कारण स्वाङ्गलक्षण ङीष् नहीं हुआ। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- लघुसिद्धान्तकौमुदी (भैमी व्याख्या भाग 6), पेज 63

30. 'शत्रुमधिकुरुते' इत्यत्र क्रियापदे आत्मनेपदविधायकं सूत्रं किम् ?

(A) वेः शब्दकर्मणः **(B)** अकर्मकाच्च

(C) अधेः प्रसहने **(D)** उपपराभ्याम्

व्याख्या- 'वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी' भट्टोजिदीक्षित प्रणीत उनका प्रमुख व्याकरण ग्रन्थ है।

आत्मनेपद विधायक कुछ प्रमुख सूत्र -

* **भावकर्मणोः (1/3/13)-** भाव और कर्म अर्थ में हुए लकार के स्थान पर आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं।

यथा - बभूवे, अनुबभूवे।

* **कर्तरि कर्मव्यतिहारे (1/3/14) -** क्रिया का विनिमय अर्थात् अदला-बदली अर्थ द्योत्य होने पर धातु से कर्तृवाच्य में आत्मनेपद होता है।

यथा - व्यतिराते, व्यतिराते, व्यतिराते।

व्यतिभाते, व्यतिभाते, व्यतिभाते, व्यतिबभे।

व्यतिलुनीते।

* **नेर्विशः (1/3/17) -** नि उपसर्ग से परे विश् धातु से आत्मनेपद होता है।

निविशते । निविविशे । निवेक्ष्यते ।

* **विपराभ्यां जेः (1/3/19) -** वि तथा परा उपसर्ग से परे जि धातु से आत्मनेपद होता है।

यथा - विजयते। पराजयते।

* **अकर्मकाच्च (1/3/26) -** उद् उपसर्गपूर्वक स्था धातु यदि अकर्मक हो तो उससे आत्मनेपद होता है।

यथा - भोजनकाले उपतिष्ठते।

* **अधेः प्रसहने (1/3/33) -** अधि उपसर्ग से युक्त कृ धातु से अभिभव अर्थ में आत्मनेपद हो जाता है।

यथा - शत्रुमधिकुरुते

* **उपपराभ्याम् (1/3/39) -** वृत्ति, सर्ग, तायन अर्थ गम्यमान होने पर उप और परा उपसर्गों से भी परे क्रम् धातु से आत्मनेपद होता है।

यथा - उपक्रमते। पराक्रमते।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि 'शत्रुमधिकुरुते' - इस उदाहरण में आत्मनेपदविधायक 'अधेः प्रसहने' सूत्र है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी (भाग 5)-गोविन्दाचार्य, पेज 397

31. 'अध्यापयति वेदम्' इत्यत्र क्रियापदे परस्मैपदविधायकं सूत्रं किम्?

(A) विभाषाऽकर्मकात्

(B) निगरणचलनार्थेभ्यश्च

(C) परेर्मृषः

(D) बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः

व्याख्या- 'वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी' भट्टोजिदीक्षित द्वारा प्रणीत है।

परस्मैपदविधायक प्रमुख सूत्र -

* **अनुपराभ्यां कृञः (1/3/79) -** क्रियाफल के कर्तृगामी होने पर और गन्धन आदि अर्थ होने पर अनु अथवा परा उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से परस्मैपद ही होता है।

यथा - अनुकरोति। पराकरोति।

* **अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः (1/3/80) -** अभि, प्रति और अति उपसर्गों से परे क्षिप् धातु से कर्ता अर्थ में परस्मैपद होता है।

यथा - अभिक्षिपति। अभिभूत करता है।

प्रतिक्षिपति। अतिक्षिपति।

* **प्राद्वहः (1/3/81) -** प्र उपसर्ग से परे वह् धातु से परस्मैपद होता है।

यथा - प्रवहति।

* **परेर्मृषः (1/3/82) -** परि उपसर्ग से परे मृष् धातु से परस्मैपद होता है।

यथा - परिमृष्यति।

* **व्याङ्परिभ्यो रमः (1/3/83) -** वि, आङ् और परि उपसर्ग से परे रम् धातु से परस्मैपद होता है।

यथा - विरमति, परिरमति, आरमति।

* **उपाच्च (1/3/84) -** उप उपसर्ग से परे रम् धातु से भी परस्मैपद होता है।

यथा - उपरमति (प्रेरणा में उपरमयति।)

* **विभाषाऽकर्मकात् (1/3/85) -** उप उपसर्ग से परे रम् धातु अकर्मक अवस्था में हो तो उससे आत्मनेपद विकल्प से होता है।

यथा- उपरमति, उपरमते।

* **बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः (1/3/86)-** णिजन्त, बुध्, युध्, नश्, जन्, इङ्, प्रु, द्रु और स्रु धातुओं से परस्मैपद होता है।

यथा - अध्यापयति वेदम् ।
बोधयति पद्मम् ।
योधयति, नाशयति, प्रावयति
द्रावयति, स्रावयति आदि।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'अध्यापयति देवान्' में परस्मैपदविधायक सूत्र 'बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः' है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (भाग 5)-गोविन्दाचार्य, पेज 445

32. 'एकोनिमित्तं शब्दानामपरोऽर्थे प्रयुज्यते' इति पंक्तिः कुत्र उपलभ्यते?
(A) महाभाष्ये **(B)** वाक्यपदीये
(C) पाणिनीयशिक्षायाम् **(D)** अष्टाध्याय्याम्

व्याख्या- महाकवि भर्तृहरि द्वारा रचित **'वाक्यपदीयम्'** व्याकरण ग्रन्थ है। वाक्यपदीयम् में तीन काण्ड हैं, इसीलिए इसे त्रिकाण्डी भी कहा जाता है।

1. ब्रह्मकाण्ड (कारिकाएँ) 156
2. वाक्यकाण्ड (कारिकाएँ) 486
3. पदकाण्ड (कारिकाएँ) 1218

वाक्यपदीयम् में कुल (कारिकाएँ) 1860 हैं।

*** ब्रह्मकाण्ड को मुख्यतः 'आगमकाण्ड' कहा जाता है।**

व्याकरणसम्मत शब्द का स्वरूप -

'द्वावुपादानशब्देषु शब्दौ शब्दविदो विदुः।
एको निमित्तं शब्दानामपरोऽर्थे प्रयुज्यते ॥1/43॥

शब्दविद् वैयाकरण उपादान या वाचक शब्दों में दो अन्य शब्द निहित हैं, ऐसा मानते हैं। एक शब्दों का निमित्त है, जिसे 'स्फोट' कहते हैं और दूसरा स्वरूपार्थ के रूप में प्रयुक्त होता है।

इसप्रकार प्रत्येक वाचक शब्द तीन शब्दों का समुदाय होता है-

(i) वाचक या अभिधान शब्द
(ii) स्वरूपार्थ या अभिधेय शब्द
(iii) निमित्त शब्द

*** उपादान शब्द-** उपादान शब्द को वाचक शब्द भी कहते हैं। जिनके उच्चारण करते ही दो शब्द लक्षित होते हैं-

(क) शब्द की अवधारणा
(ख) स्वरूपार्थ की अवधारणा

इनमें एक शब्द प्रतिपादक का निमित्त है और दूसरा अर्थप्रतिपत्ति का निमित्त है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत पंक्ति **'वाक्यपदीयम्'** से ली गयी है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- वाक्यपदीयम् (1/43)- शिवशंकर अवस्थी, पेज 60

33. 'शास्त्रानुपूर्व्यं तद्विद्यात् यथोक्तं लोकवेदयोः' इति पंक्तिः कस्मिन् ग्रन्थे उपलभ्यते?
(A) पाणिनीयशिक्षायाम् **(B)** अष्टाध्याय्याम्
(C) वाक्यपदीये **(D)** महाभाष्ये

व्याख्या- 1. पाणिनीय शिक्षा- शिक्षा का प्रथम सोपान वर्ण- शिक्षा है। शिक्षा का अर्थ सायण ने ऋग्वेदभाष्यभूमिका में किया है-

''वर्णस्वराद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा।''

अर्थात् जिसमें वर्ण, स्वर आदि उच्चारण प्रकारों का उपदेश हो, उसे 'शिक्षा' कहते हैं।

शिक्षाशास्त्रों में **'पाणिनीय शिक्षा'** ही प्रामाणिकतम तथा प्राचीनतम है।

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा।
शास्त्रानुपूर्व्यं तद्विद्याद्यथोक्तं लोकवेदयोः॥1॥

अर्थात् अब मैं पाणिनिप्रोक्त 'शिक्षा' (नामक वेदांग) को प्रकृष्ट रूप से कहूँगा। उस (पाणिनीय मत) को शास्त्रोपदेष्टृपरम्परा से प्राप्त लोक और वेद में जैसा कहा गया है, वैसा जानें।

2. महाभाष्य- पाणिनि की अष्टाध्यायी का विशद व्याख्यान पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में किया है।

''सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥

इसका विभाजन आह्निकों में है- 'अह्ना निर्वृत्तम् - आह्निकम्' अर्थात् एक दिन में अध्यापनीय विषय का संग्रह एक-एक आह्निक में किया गया है। प्रथम आह्निक का नाम 'पस्पशाह्निक' है।

अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते। शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम् ।

यहाँ 'अथ' शब्द अधिकार के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। 'शब्दानुशासन' नामक शास्त्र का अधिकार (अर्थात् प्रारम्भ) किया जा रहा है, ऐसा समझना चाहिए।

3. वाक्यपदीय- वाक्यपदीय के रचनाकार भर्तृहरि हैं। वाक्यपदीय व्याकरण का दार्शनिक ग्रन्थ है। इसे त्रिकाण्डी भी कहते हैं। इसकी अनादिनिधन आदि चार कारिकाओं, वृत्ति और श्रीवृषभाचार्य की पद्धति में शब्दब्रह्म का निरूपण किया गया है।

''अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥1॥

उत्पत्ति और नाश से रहित शब्दतत्त्वात्मक ब्रह्म जो अक्षर या ओङ्कार के नाम से जाना जाता है, जिससे जगत् की प्रक्रिया या विकार अर्थ के रूप में परिणत होते हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत पंक्ति **पाणिनीय -शिक्षा** से ली गयी है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- पाणिनीय-शिक्षा - रमाशङ्कर मिश्र, पेज 03

34. संस्कृतभाषाध्वनिसन्दर्भेऽधोलिखितेषु 'अर्धस्वरः' कः?
(A) क **(B)** ष
(C) म **(D)** व

व्याख्या- संस्कृत भाषा ध्वनि सन्दर्भ में स्वर, अर्धस्वर, स्पर्श, संघर्षी, स्पर्शसंघर्षी, अनुनासिक, पार्श्विक, लुण्ठित, उत्क्षिप्त, अन्तःस्थ आदि विभिन्न विषयों का वर्णन किया गया है।

स्वर - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ, ऐ, औ स्वरों के 4 भेद हैं।

स्वर	अर्धसंवृत	अर्धविवृत	विवृत
इ	ए	अ	आ
ई	ओ		आ
उ			
इ			

स्पर्श - क् ख् ग् घ्
ट् ठ् ड् ढ्
त् थ् द् ध्
प् फ् ब् भ्

संघर्षी - ह, .ख्, .ग्, स्, श्, .ज्, .फ्, .व्
स्पर्श संघर्षी - च्, छ्, ज्, झ्
अनुनासिक - ङ्, ञ्, ण्, न्, म्, न्ह, म्ह
पार्श्विक - ल्
लुंठित - ऱ् (ऱ्ह)।
उत्क्षिप्त - ड़, ढ़ ।
अर्धस्वर - य्, व्, ऱ्, ल् ।
अन्तःस्थ - य्, व्, ऱ्, ल् ।
अघोष संघर्षी - श्, ष्, स् ।
घोष ऊष्म - ह
अघोष ऊष्म - ः (विसर्ग)
शुद्ध अनुनासिक - ं (अनुस्वार)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'व' अर्धस्वर है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र - कपिलदेव द्विवेदी, पेज 148-149

35. अर्थविस्तारोदाहरणेष्वन्यतमो नास्ति?
(A) तैलम् **(B)** मुग्धः
(C) गौः **(D)** सभ्यः

व्याख्या- अर्थपरिवर्तन (अर्थविकास) की दिशाएँ-

अर्थ-परिवर्तन को विकास सिद्धान्त की दृष्टि से 'अर्थविकास' भी कहा जाता है।

अर्थ-परिवर्तन तीन प्रकार का होता है -
1. अर्थविस्तार 2. अर्थसंकोच 3. अर्थादेश
अन्य दो भेद- (1) अर्थोत्कर्ष (2) अर्थापकर्ष

1. अर्थविस्तार- कुछ शब्द मूलरूप से संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होते थे। बाद में उनके अर्थ में विस्तार हो गया। यथा-

(i) कुशल- कुशल शब्द का अर्थ था- कुशान् लाति (कुशों को लाने वाला) बाद में इसका अर्थविस्तार होकर चतुरता एवं निपुणता हो गया।

(ii) प्रवीण- प्रवीण का अर्थ था- प्रकृष्टो वीणायाम् (वीणावादन में श्रेष्ठ या निपुण) इसमें अर्थ विस्तार होकर निपुण या दक्ष अर्थ निकला।

(iii) तैल- सबसे पहले 'तिल' का तेल (द्रव) निकला था। अब अर्थ-विस्तार होकर तेल या द्रवमात्र के लिए प्रयुक्त होने लगा।

2. अर्थसंकोच - अर्थविस्तार के विपरीत कुछ शब्दों के अर्थों का संकोच हुआ। यथा-

(i) जगत्- इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है-गतिशील, संसरणशील। परन्तु यह शब्द संसार अर्थ में रूढ़ हो गया।

(ii) गौः- इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ- 'गच्छतीति गौः' चलने वाले को 'गो' (गाय) कहते हैं। परन्तु अब यह पशु विशेष 'गाय' अर्थ में रूढ़ हो गया है।

(iii) सभ्य- पहले इस शब्द का अर्थ- 'सभा में बैठने वाला' था परन्तु अब सुसंस्कृत, शिष्ट के लिए हो गया।

3. अर्थादेश - अर्थादेश का अर्थ है, एक अर्थ के स्थान पर दूसरे अर्थ का आ जाना। आदेश का अर्थ है- एक को हटाकर दूसरे का आना। यथा-

(i) असुर- मूल अर्थ असु + र (प्राणशक्ति संपन्न) 'देवता' था। बाद में सुर का उल्टा अ + सुर (राक्षस) अर्थ हो गया।

(ii) मौन- मूल अर्थ 'मुनि-कर्म' था। अब 'चुप रहना' अर्थ रह गया।

(iii) देवानां प्रियः- देवों का प्रिय। अशोक की उपाधि थी। बौद्धों के द्वेष के कारण ब्राह्मणों ने 'देवानां प्रियः' का अर्थ 'मूर्ख' कर दिया।

(iv) मुग्ध- मूल अर्थ था 'मूर्ख'। इसका अर्थ हो गया है- 'मोहित होना' सौन्दर्य पर मुग्ध होना।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि 'गौः' शब्द अर्थविस्तार का उदाहरण नहीं है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 337

36. अर्थसङ्कोचोदाहरणेष्वन्यतमो नास्ति?

(A) जलदः **(B)** सभ्यः

(C) मनुष्यः **(D)** पङ्कजम्

व्याख्या- अर्थपरिवर्तन की दिशाएँ- संसार की सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं और भाषा भी विकास की दृष्टि से परिवर्तनशील है। जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होता है उसी प्रकार भाषा के शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होता है। भाषाविज्ञान में परिवर्तन की तीन दिशाएँ बतायी गयी हैं -

1. अर्थविस्तार
2. अर्थसंकोच
3. अर्थादेश

अर्थादेश के फिर दो भेद हो जाते हैं-

(क) अर्थोत्कर्ष **(ख)** अर्थापकर्ष

1. अर्थ विस्तार- कुछ शब्द मूलरूप में किसी विशेष या संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होते थे। बाद में उनके अर्थ में विस्तार हो गया। जैसे - कुशल, प्रवीण, तैल, गोशाला, गोष्ठ, महाराज, गवेषणा

2. अर्थ संकोच- अर्थविस्तार के विपरीत कुछ अर्थ संकुचित अर्थात् सीमित हो गया है या जिनका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ बहुत विस्तृत है, परन्तु ये किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो गये हैं।
जैसे - गो, अश्व, पृथ्वी, जगत्, संसार, अम्बुज, पंकज, वारिधि, सरसिज, जलद, तोयद, सर्प, पर्वत, तटस्थ, मध्यस्थ, उदासीन, मन्दिर, मृदा, सभ्य, श्राद्ध, तर्पण, अनुकूल, प्रतिकूल, वेदना, घृणा इनके अलावा समास, उपसर्ग, प्रत्यय, विश्लेषण, नामकरण आदि शब्द अर्थसंकोच के उदाहरण हैं।

3. अर्थादेश- अर्थादेश का अर्थ है- एक को हटाकर उसके स्थान पर दूसरा अर्थ आना। अर्थादेश में शब्द का प्राचीन अर्थ लुप्त हो जाता है और नया अर्थ आ जाता है।
जैसे - असुर, वर, सह, मौन, देवानां प्रियः, बौद्ध-बुद्ध, पाखण्ड, आकाशवाणी, साहस, खाद-खाला, भद्र-भद्दा, मुग्धा, वाटिका आदि।

(i) अर्थोत्कर्ष - उनमें कुछ शब्दों में परिवर्तन से अर्थ में उत्कर्ष आ जाता है।
जैसे - मुग्ध, साहस-साहसी, कर्पट-कपड़ा, गोष्ठ- गोष्ठी, गवेषणा, सभ्य।

(ii) अर्थापकर्ष - कुछ शब्दों में परिवर्तन से अर्थ में अपकर्ष आ जाता है।
जैसे - असुर, जुगुप्सा, शौच, देवानां प्रियः, भद्र-भद्दा, घृणा, महाराज, लिङ्ग, चतुर्वेदी।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'सभ्यः' अर्थसंकोच के अन्तर्गत आता है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र-कपिलदेव द्विवेदी, पेज 337

37. ध्वनिवैज्ञानिकैः करणत्वेन किं स्वीक्रियते?

(A) मृदुतालु **(B)** वर्त्सः

(C) ऊर्ध्वैष्ठिः **(D)** नासिकाविवरः

व्याख्या- वाग्यंत्र के समस्त अवयवों को कार्य और उपयोगिता की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जाता है- 1. करण 2. स्थान

1. करण- वाग्यन्त्र के उन अवयवों को कहते हैं जो सामान्यतया इधर-उधर गतिशील हो सकते हैं और इस आधार पर वे अपनी विभिन्न स्थितियाँ धारण कर सकते हैं। इसी आधार पर जिह्वा के अग्र, मध्य और पश्च भेद किये जाते हैं। इसको ऊँचाई और निचाई के आधार पर संवृत, अर्ध-संवृत, अर्ध-विवृत और विवृत भेद किये जाते हैं।

इसी प्रकार ओष्ठ के वृत्ताकार, अवृत्ताकार भेद किये जाते हैं।

2. स्थान या उच्चारण-स्थान- वाग्यंत्र के उन अवयवों को कहते हैं, जो अपने स्थान पर स्थिर रहते हैं और जिह्वा जिन स्थानों के पास जाती है या उनका स्पर्श करती है। दन्त, तालु, मूर्धा आदि इस प्रकार के अवयव हैं।

* **मृदुतालु (Soft Palate, कोमल तालु)-** गलबिल (कण्ठमार्ग) की ओर से आगे आने पर कोमल तालु मिलता है। यह कठोर तालु की समाप्ति से लेकर गलबिल तक फैला हुआ है।

यह कोमल मांस-खण्ड के तुल्य है।

ध्वनि-विज्ञान में यह एक महत्त्वपूर्ण अवयव है। यह मुख-विवर और नासिकाविवर के मध्य कपाट या ढक्कन के तुल्य कार्य करता है। स्वरों (अ, इ आदि) और स्पर्श व्यंजनों (क, ख, ग आदि) के उच्चारण में कोमल तालु ऊपर उठकर नासारन्ध्र को बन्द कर देता है, अतः पूरी वायु मुख-मार्ग से निकलती है नासिक्य ध्वनियों के उच्चारण में कोमल तालु नीचे आ जाता है और मुख-द्वार को बन्द कर देता है, अतः पूरी वायु नासाविवर से ही निकलती हैं ध्वनिवैज्ञानिक ने इसे ही करण के रूप में स्वीकार करते हैं।

* **वर्त्स (Alveolus)-** यह दाँतों के मूल से लेकर कठोर तालु के प्रारम्भ तक का भाग है। दाँतों की जड़ में यह उभरा हुआ खुरदुरा भाग 'वर्त्स' कहलाता है।

* **नासाविवर (Nasal Cavity, नेज़ल केविटी)-** यह गलबिल से प्रारम्भ होकर नासिका के अग्रभाग तक फैला हुआ है। इसके अन्दर एक विवर है। इस विवर से वायु के निर्गत होने पर अनुनासिक या नासिक्य ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ध्वनिवैज्ञानिक करण के रूप में मृदुतालु (कोमल तालु) को स्वीकार करते हैं। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 136

38. ''सा च त्रिविधा विधात्री, अभिधात्री, विनियोक्त्री च'' इत्यत्र सा का?

(A) वैदिकीसमाख्या **(B)** श्रुतिः

(C) लौकिकीसमाख्या **(D)** शब्दशक्तिः

व्याख्या- अर्थसंग्रह लौगाक्षिभास्कर द्वारा रचित है। इसमें चार विधियाँ हैं-

1. उत्पत्तिविधि 2. विनियोगविधि
3. प्रयोगविधि 4. अधिकारविधि

1. उत्पत्ति विधि-

'कर्मस्वरूपमात्रबोधको विधिरुत्पत्तिविधिः
यथा - अग्निहोत्रं जुहोति।

अर्थात् (याग आदि) कर्म के केवल स्वरूप के बोधक विधि को उत्पत्तिविधि कहते हैं। जैसे- अग्निहोत्रं जुहोति।

2. विनियोगविधि-

'अङ्गप्रधानसम्बन्धबोधको विधिर्विनियोगविधिः।
यथा- दध्ना जुहोतीति।

अर्थात् (द्रव्य, देवता आदि) अङ्ग तथा प्रधान (होम आदि) के सम्बन्ध के ज्ञापक विधि को विनियोग विधि कहते हैं। जैसे - दध्ना जुहोति।

'एतस्य विधेः सहकारिभूतानि षट्प्रमाणानि- श्रुति-लिङ्ग-वाक्य-प्रकरण-स्थान-समाख्यारूपाणि।

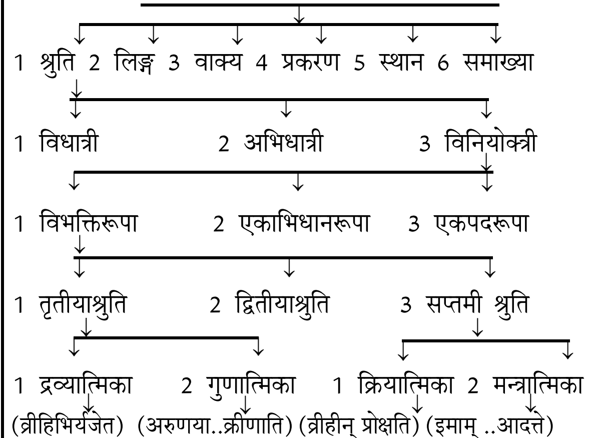
अर्थात् इस विनियोगविधि के सहायक छः प्रमाण -

(i) श्रुति (ii) लिङ्ग (iii) वाक्य (iv) प्रकरण
(v) स्थान (vi) समाख्या रूप में है।

तत्र निरपेक्षो रवः श्रुतिः। सा च त्रिविधा - विधात्री, अभिधात्री, विनियोक्त्री च।

अर्थात् उन (छः प्रकार के प्रमाणों) में (शेषत्व या अङ्गत्व का बोध कराने के लिए दूसरे प्रमाण की) आवश्यकता से रहित शब्द श्रुति (नामक प्रमाण) है। वह तीन प्रकार की होती है -
(i) विधात्री (ii) अभिधात्री और (iii) विनियोक्त्री।

विनियोग विधि के सहकारी प्रमाण



स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि तीनों भेद 'श्रुति' नामक प्रमाण के हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- अर्थसंग्रह - वाचस्पति उपाध्याय, पेज 57

39. अर्थसंग्रहानुसारं 'शाब्दीभावना' इत्यनेन कः अभिप्रायः?

(A) अपौरुषेयवाक्यम्
(B) समभिव्यवहारः
(C) पुरुषप्रवृत्त्यनुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः
(D) प्रयोजनेच्छाजनितक्रियाविषयव्यापारः

व्याख्या- लौगाक्षिभास्कररचित 'अर्थसंग्रह' पूर्वमीमांसा दर्शन का प्रमुख प्रकरण ग्रन्थ है।

भावना - अर्थसंग्रह में दो प्रकार की भावना बतायी गयी है-
1. शाब्दी भावना 2. आर्थी भावना

1. शाब्दी भावना-

'पुरुषप्रवृत्त्यनुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः शाब्दीभावना। सा च लिङंशेनोच्यते।

उनमें अर्थात् शाब्दी तथा आर्थी भावनाओं में व्यक्ति की प्रवृत्ति की जनक अथवा सहायक प्रयोजन का व्यापारविशेष शाब्दी भावना है। वह लिङ् अंश से व्यक्त होती है, क्योंकि लिङ् का श्रवण होने पर निश्चित रूप से प्रतीत होता है कि यह मुझे प्रवृत्त कर रहा है अर्थात् यह मेरी प्रवृत्ति के अनुकूल व्यापार करने वाला है।

शाब्दी भावना में तीन अंश बताए गये हैं -

(क) साध्य - किं भावयेत् **(ख)** साधन - केन भावयेत्

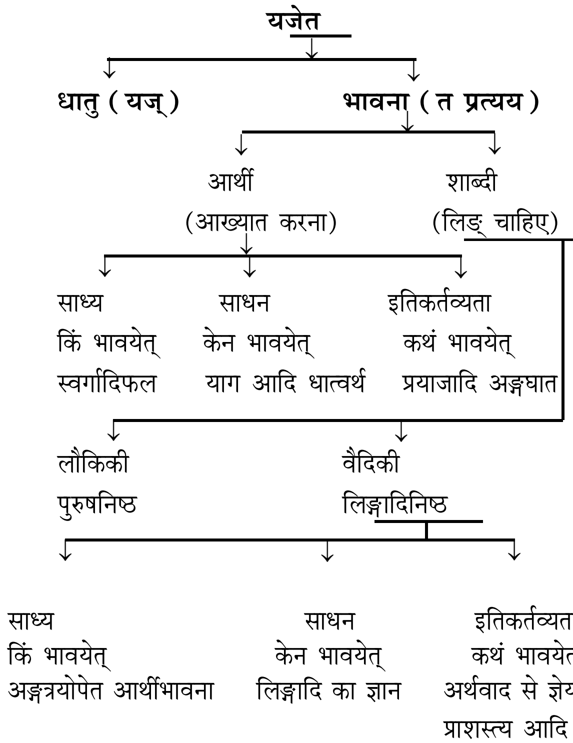
(ग) इतिकर्तव्यता - कथं भावयेत्

इन तीनों अंशों का अभिप्राय क्रमशः यह है कि शाब्दी भावना से किस फल को सिद्ध किया जाए, किस साधन से सिद्ध किया जाये तथा किस प्रकार सिद्ध किया जाये।

2. आर्थी भावना-

'प्रयोजनेच्छाजनितक्रियाविषयव्यापार आर्थीभावना। सा चाख्यातत्वांशेनोच्यते, आख्यातसामान्यस्य व्यापार-वाचित्वात्।

स्वर्ग आदि उद्देश्य की इच्छा से होने वाली याग आदि क्रिया से सम्बद्ध व्यापार आर्थीभावना है। वह आख्यातत्व अंश से व्यक्त होती है। क्योंकि आख्यात व्यापार को ही प्रकट करते हैं। इसमें भी साध्य, साधन, इतिकर्तव्यता तीन अंशों की अपेक्षा होती है।



स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शाब्दभावना का अभिप्राय 'पुरुषप्रवृत्त्यानुकूलोभावयितुर्व्यापारविशेषः' है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- अर्थसंग्रह - कामेश्वरनाथ मिश्र, पेज 27

40. अर्थसंग्रहानुसारं विधिश्चतुर्विधः उत्पत्तिविधिः, विनियोगविधिः, अधिकारविधि .... च।

(A) नियमविधिः **(B)** प्रयोगविधिः

(C) यज्ञविधिः **(D)** परिसंख्याविधिः

व्याख्या- अर्थसंग्रह नामक मीमांसाग्रन्थ लौगाक्षिभास्कर द्वारा प्रणीत है। लौगाक्षिभास्कर के दो ही ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं -

1 मीमांसा दर्शन का 'अर्थसंग्रह'

2 वैशेषिकदर्शन का 'तर्ककौमुदी'

अर्थसंग्रह में चार प्रकार की विधियों का वर्णन है -

1. उत्पत्तिविधि 2. विनियोगविधि

3. अधिकारविधि 4. प्रयोगविधि

'अर्थसंग्रहानुसारं विधिश्चतुर्विधः - उत्पत्तिविधिः, विनियोगविधिः, अधिकारविधिः, प्रयोगविधिश्चेति।

1. उत्पत्ति विधि -

तत्र कर्मस्वरूपमात्रबोधको विधिरुत्पत्तिविधिः, यथा 'अग्निहोत्रं जुहोति'।

उन (चारों प्रकार की विधियों में (याग आदि) कर्म के केवल स्वरूप के बोधक विधि को उत्पत्तिविधि कहते हैं।

जैसे - 'अग्निहोत्रं जुहोति'।

2. विनियोग विधि -

'अङ्गप्रधानसम्बन्धबोधको विधिर्विनियोगविधिः।'

यथा- 'दध्ना जुहोति'।

अर्थात् (द्रव्य, देवता आदि) अङ्ग तथा प्रधान (होम आदि) के सम्बन्ध के ज्ञापक विधि को विनियोग विधि कहते हैं।

जैसे- 'दध्ना जुहोति'।

3. अधिकार विधि -

'कर्मजन्यफलस्वाम्यबोधको विधिरधिकारविधिः। कर्मजन्यफलस्वाम्यं कर्मजन्यफलभोक्तृत्वम् । स च 'यजेत स्वर्गकामः' इत्यादिरूपः।

अर्थात् (यागादि) कर्म से उत्पन्न होने वाले (स्वर्गादि) फल के स्वामित्व का ज्ञान कराने वाली विधि अधिकारविधि है। कर्म से उत्पाद्य फल के स्वामित्व का अर्थ है- कर्म से उत्पाद्य फल का भोक्ता होना और उस अधिकारविधि का रूप है- 'स्वर्गकामो यजेत'।

4. प्रयोग विधि -

'प्रयोगप्राशुभावबोधकोविधिः प्रयोगविधिः। स चाङ्गवाक्यैकवाक्यतापन्नः प्रधानविधिरेव।

अर्थात् प्रयोग कर्मसम्पादन में शीघ्रता के भाव की ज्ञापक विधि प्रयोगविधि है। वह अङ्गवाक्यों के साथ एकवाक्यता को प्राप्त प्रधानविधि ही है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि प्रस्तुत पंक्ति में रिक्तस्थान की जगह प्रयोगविधि होगा। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- अर्थसंग्रह -कामेश्वरनाथ मिश्र, पेज 46, 61, 115, 138

41. योगदर्शनानुसारं कः 'योगाङ्गैः' सह सम्बद्धः न अस्ति?

(A) विकल्पः **(B)** नियमः

(C) प्रत्याहारः **(D)** प्राणायामः

व्याख्या- 'योगसूत्र' महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रणीत है। यह 'योगदर्शन' का आधार है-

योगदर्शन को 'सेश्वर सांख्य' भी कहा जाता है। योगसूत्र पर व्यास ने 'योगभाष्य' लिखा है।

योगसूत्र में चार पाद हैं -

1 समाधिपाद 2 साधनपाद

3 विभूतिपाद 4 कैवल्यपाद

इसमें कुल 195 सूत्र हैं।

1 समाधिपाद - योग तथा समाधि के स्वरूप एवं भेदों का वर्णन है।

योग - 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'

समाधि - समाधि दो प्रकार की है - सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात

2 साधनपाद - योग प्राप्ति के साधन तथा अष्टयोगाङ्गों का वर्णन।

अष्टाङ्गयोग - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि- ये आठ योग के अङ्ग हैं।

'यमनियमाऽऽसनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि। (2/29)

(क) यमाः - अहिंसादयः पञ्च, अहिंसा इत्यादि पाँच यम हैं।

'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। (2/30)

(ख) नियम - शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान नियम कहे जाते हैं।

'शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। (2/32)

(ग) आसन - जो शारीरिक स्थिति स्थायी और सुखद हो, वह आसन है।

'स्थिरसुखमासनम्' (2/46)

(घ) प्राणायाम - उस आसनजय के होने पर श्वास और प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है।

'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।' (2/49)

(ङ) प्रत्याहार - इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से हटा लेना प्रत्याहार है।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुसार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ (2/54)

(च) धारणा - चित्त को किसी बाहरी या भीतरी प्रदेश में लगाना धारणा है।

'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।' (3/1)

(छ) ध्यान - उस विषय में ज्ञान की एकतानता ही ध्यान है।

'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।' (3/2)

(ज) समाधि - समाधि दो प्रकार की होती है -

(1) सविकल्पक (2) निर्विकल्पक

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि 'विकल्पः' योग का अङ्ग नहीं है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- योगसूत्र - (2/29)

42. 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इत्यत्र 'अथ' शब्दः कस्मिन् अर्थे अस्ति?

(A) हेत्वर्थे **(B)** अधिकारार्थे

(C) अन्तयार्थे **(D)** आनन्तर्यार्थे

व्याख्या- वेदान्तदर्शन का प्रमुख ग्रन्थ 'ब्रह्मसूत्र' है जो महर्षि बादरायण प्रणीत है। जिस पर आदि शंकराचार्य ने शांकरभाष्य लिखा है।

वेदान्तमीमांसा शास्त्र का यह आदि ग्रन्थ है-

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' ॥1॥

अथ अतः ब्रह्मजिज्ञासा।

सूत्रार्थ - विवेक आदि साधनचतुष्टयरूप सम्पत्तिसिद्धि के अनन्तर कर्मफल के अनित्य और ज्ञानफल मोक्ष के नित्य होने से मुमुक्षु को ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिए।

यद्यपि अध्याय की सिद्धि के अनन्तर विषय और प्रयोजन की सिद्धि होने पर प्रस्तुत ग्रन्थ अर्थात् ब्रह्मसूत्र का आरम्भ करना युक्त है। तत्र अथ शब्द आनन्तर्यार्थः परिगृह्यते। 'अथ' शब्द आनन्तर्यार्थ का बोधक है।

➢ **अथ योगानुशासनम् -** भाष्यम् । अथेत्ययमधिकारार्थः। योगानुशासनं शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यं। योगः समाधिः।

- 'अथ' शब्द अधिकारार्थक है। योगानुशासन रूप शास्त्र आरम्भ हुआ है, यह जानना चाहिए।
- योग का अर्थ है समाधि।
- वह चित्त का सार्वभूमि धर्म है।
- क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध- ये चित्त की पाँच भूमियाँ हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' प्रस्तुत सूत्र में अथ शब्द 'आनन्तर्य' अर्थ में है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- ब्रह्मसूत्र (शाङ्करभाष्य)- स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, पेज 19

43. व्याप्यस्य 'पक्षधर्मत्वधीः' इति किम्?

(A) परामर्शः **(B)** अनुमितिः
(C) पक्षता **(D)** प्रतिज्ञा

व्याख्या- विश्वनाथपञ्चानन भट्टाचार्य प्रणीत न्यायसिद्धान्तमुक्तावली नामक टीका 'कारिकावली' ग्रन्थ की है। 'कारिकावली' में कुल 168 कारिकाएँ हैं।

* **अनुमिति -** अनुमिति में परामर्श ही व्यापार है और व्याप्ति का ज्ञान करण होता है।

'व्यापारस्तु परामर्शः करणं व्याप्तिधीर्भवेत्।'

* **परामर्श -** व्याप्य अर्थात् व्याप्ति से विशिष्ट जो धूम आदि हेतु हैं, उनका पक्ष अर्थात् सन्दिग्ध साध्य वाला विषय पर्वत आदि में वृत्तित्व अर्थात् रहने का ज्ञान परामर्श कहलाता है।

'व्याप्यस्य पक्षवृत्तित्वधीः परामर्श उच्यते।'

* **व्याप्ति -** साध्य (जो हेतु के द्वारा अनुमेय है, जैसे वह्नि आदि) से युक्त भिन्न वस्तु में हेतु (धूम आदि) का सम्बन्ध न होना व्याप्ति कहा जाता है।

'व्याप्तिः साध्यवदन्यस्मिन्नसम्बन्ध उदाहृतः'। (68)

अथवा हेतु के अधिकरण में रहने वाले अभाव के अप्रतियोगी (अविरोधी) साध्य के साथ हेतु का एक ही अधिकरण में रहना व्याप्ति है।

'अथवा हेतुमन्निष्ठविरहाऽप्रतियोगिना।
साध्येन हेतोरैकाधिकरण्यं व्याप्तिरुच्यते।।' (69)

* **पक्ष-** साधन (अनुमान) करने की इच्छा से शून्य सिद्धि जहाँ नहीं है, वह पक्ष कहलाता है। उसमें वृत्तित्व के ज्ञान से अनुमिति होती है।

'सिषाधयिषया शून्या सिद्धिर्यत्र न विद्यते।
स पक्षस्तत्र वृत्तित्वज्ञानादनुमितिर्भवेत्।।' (70)

* **हेत्वाभास -** अनैकान्त, विरुद्ध, असिद्ध, प्रतिपक्षित एवं कालात्ययापदिष्ट- इस प्रकार हेत्वाभास पाँच प्रकार के होते हैं। (जो केवल हेतु जैसे लगते हैं लेकिन हेतु नहीं होते वे हेत्वाभास कहलाते हैं।

'अनैकान्तो विरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः।
कालात्ययापदिष्टश्च हेत्वाभासास्तु पञ्चधा।।' (71)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रश्नोक्त पंक्ति 'परामर्श' का लक्षण है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (अनुमानोपमान खण्ड) महानन्द झा, पेज 21

44. जैनदर्शनानुसारं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि ....।

(A) जीवः **(B)** मोक्षमार्गः
(C) मनःपर्यायः **(D)** मोक्षः

व्याख्या- ➢ **जैनदर्शन -** जैन शब्द 'जिन' से बना है।

* 'जिन'-'जि' + नक्, आदि वृद्धि होकर जैन शब्द बना है। 'जिन' शब्द का अर्थ है - **विजेता**
* अर्थात् रागद्वेषादि मनोविकारों का दमन कर विजय प्राप्त करने वाला 'जिन' कहलाता है -
 'रागद्वेषादिमनोविकाराञ्जयतीति जिनः।'
* 'जिन' के उपासक 'जैन' कहलाये **'जिन उपास्यदेवतास्येति जैनः।'**
* 'जैन दर्शन' के आदिप्रवर्तक **'ऋषभदेव'** हैं। जैनों के कुल 24 तीर्थंकर हैं। इनके अन्तिम तीर्थंकर **'महावीर स्वामी'** हैं।

➢ **त्रिरत्न -** सम्यक् ज्ञान, सम्यक् श्रद्धा (दर्शन) और सम्यक् चरित्र (आचरण) त्रिरत्न कहलाते हैं। ये ही **'मोक्षप्राप्ति'** के **'निश्चित मार्ग'** हैं।

1. सम्यक् ज्ञान - जैनाचार्य **'उमास्वाति'** ने ज्ञान के दो भेद किये हैं - (क) निर्विकल्पक (ख) सविकल्पक

(क) निर्विकल्पक ज्ञान- चक्षु, अचक्षु, अवधि तथा केवल चार प्रकार का होता है।

(ख) सविकल्पक ज्ञान - सविकल्पक ज्ञान प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का होता है।

अप्रत्यक्ष एवं प्रत्यक्ष सविकल्पक ज्ञान- मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्याय और केवल के भेद से पाँच प्रकार का होता है।

2. सम्यक् दर्शन- जिनदेव द्वारा कहे गये तत्त्वों में रुचि होना ही सम्यक्दर्शन कहलाता है। सम्यक्दर्शन के आठ अङ्ग हैं -

(क) जीव **(ख)** अजीव **(ग)** आस्रव **(घ)** बन्ध **(ङ)** संवर **(च)** निर्जरा **(छ)** मोक्ष

* इन्हीं जीव आदि सातों तत्त्वों में विश्वास रखना ही सम्यक् दर्शन है।

3. सम्यक् चरित्र - रागद्वेषादि सांसारिक वासनाओं के परित्याग के लिए किया जाने वाला आचरण ही सम्यक् चरित्र है। सम्यक् आचरण के लिए **'पाँच महाव्रतों'** का पालन करना आवश्यक है। वे निम्नलिखित हैं -

(क) अहिंसा **(ख)** सत्य **(ग)** अस्तेय **(घ)** ब्रह्मचर्य **(ङ)** अपरिग्रह

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ये त्रिरत्न मोक्ष के मार्ग हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- भारतीय दर्शन एवं संस्कृति- महराजदीन पाण्डेय, पेज 233

45. 'सर्वं शून्यम्' इति केन बौद्धसम्प्रदायेन स्वीकृतम् ?

(A) माध्यमिकेन **(B)** सौत्रान्तिकेन

(C) योगाचारेण **(D)** वैभाषिकेन

व्याख्या- बौद्ध दर्शन के संस्थापक 'गौतम बुद्ध' हैं। इनका नाम सिद्धार्थ था। इनके माता-पिता मायादेवी और शुद्धोधन थे। 19 वर्ष की अवस्था में इन्होंने 'महाभिनिष्क्रमण' (गृहत्याग) किया था। बौद्ध दर्शन के चार सम्प्रदाय हैं -

1 माध्यमिक (शून्यवाद)

2 योगाचार (विज्ञानवाद)

3 सौत्रान्तिक (बाह्यार्थानुमेयवाद)

4 वैभाषिक (बाह्यार्थ प्रत्यक्षवाद)

सर्वं शून्यम् - माध्यमिक (शून्यवादी)

बाह्यपदार्थस्य शून्यम् - योगाचार (विज्ञानवादी)

बाह्यपदार्थस्य अनुमानात् ज्ञायते - सौत्रान्तिक

बाह्यपदार्थस्य प्रत्यक्षात् ज्ञायते - वैभाषिक

➤ **चार आर्य सत्य -** महात्मा बुद्ध ने चार आर्यसत्यों का प्रतिपादन किया -

1 दुःख **2** दुःखसमुदय **3** दुःखनिरोध **4** दुःखनिरोधगामिनी

➤ **अष्टाङ्गिक मार्ग -** यह अष्टाङ्ग मार्ग बौद्ध धर्म का **'आचार मार्ग'** है। इसे श्रेष्ठ मार्ग भी कहा गया है। ये आठ मार्ग हैं-

1 सम्यक् दृष्टि	**5** सम्यक् आजीव
2 सम्यक् संकल्प	**6** सम्यक् व्यायाम
3 सम्यक् वाक्	**7** सम्यक् स्मृति
4 सम्यक् कर्मान्त	**8** सम्यक् समाधि

➤ **त्रिरत्न -** बौद्ध धर्म के त्रिरत्न निम्न हैं-

1 बुद्ध **2** धम्म **3** संघ

➤ **प्रमाण-** प्रमाण दो हैं - **1** प्रत्यक्ष **2** अनुमान

➤ **द्वादश निदान -** प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान द्वादश निदानों से होता है।

1. अविद्या	**7.** वेदना
2. संस्कार	**8.** तृष्णा
3. विज्ञान	**9.** उपादान
4. नामरूप	**10.** भव
5. षडायतन	**11.** जाति
6. स्पर्श	**12.** जरामरण

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि 'सर्वं शून्यम्' माध्यमिक सम्प्रदाय से लिया गया है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- भारतीय दर्शन एवं संस्कृति -महराजदीन पाण्डेय, पेज 305

46. तर्कसंग्रहानुसारं 'संस्कारमात्रजनकं ज्ञानम्' अस्ति?

(A) अनुभवः **(B)** यथार्थः

(C) स्मृतिः **(D)** प्रमाणम्

व्याख्या- वैशेषिक दर्शन के आदिप्रवर्तक महर्षि कणाद माने जाते हैं। वैशेषिकदर्शन का प्रकरणग्रन्थ तर्कसंग्रह अन्नम्भट्ट' द्वारा रचित है। जो एक प्रमेयप्रधान ग्रन्थ है।

इसमें सात पदार्थ बताये गये हैं -

1 द्रव्य	5 विशेष
2 गुण	6 समवाय
3 कर्म	7 अभाव
4 सामान्य	

1. द्रव्य - नौ प्रकार के बताये गये हैं।

'तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाखाकाशकाल-दिगात्मनांसि नवैव।

(i) पृथ्वी (ii) जल (iii) तेज (iv) वायु (v) आकाश (vi) काल (vii) दिक् (viii) आत्मा (ix) मन।

2. गुण - चौबीस प्रकार के बताए गये हैं -

(1) रूप (2) रस (3) गन्ध (4) स्पर्श (5) संख्या (6) परिमाण (7) पृथक्त्व (8) संयोग (9) विभाग (10) परत्व (11) अपरत्व (12) गुरुत्व (13) द्रव्यत्व (14) स्नेह (15) शब्द (16) बुद्धि (17) सुख (18) दुःख (19) इच्छा (20) द्वेष (21) प्रयत्न (22) धर्म (23) अधर्म (24) संस्कार।

3. कर्म - पाँच प्रकार के बताये गये हैं -

(i) उत्क्षेपण (ii) अपक्षेपण (iii) आकुञ्चन (iv) प्रसारण (v) गमन। उत्क्षेपणापक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणगमनानि पञ्च कर्माणि।

4. सामान्य - सामान्य दो प्रकार के बताये गयें हैं-

(i) पर (ii) अपर

5. विशेष - विशेष अनन्त बताये गये हैं। (नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्तवन्ता एव)

6. समवाय - समवाय एक बताया गया है।

7. अभाव - अभाव चार प्रकार के बताये गये हैं-

(i) प्रागभाव (ii) प्रध्वंसाभाव (iii) अन्योन्याभाव (iv) अत्यन्ताभाव

चौबीस प्रकार के गुणों में सोलहवाँ गुण बुद्धि है, जो इस प्रकार बताया गया-

*** बुद्धि - 'सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम्' सा द्विविधा– स्मृतिरनुभवश्च।**

समस्त व्यवहारों के कारण भूत गुण को 'बुद्धि' अर्थात् ज्ञान कहते हैं वह दो प्रकार की होती है -

(i) स्मृति (ii) अनुभव

*** स्मृति - संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः।**

संस्कार-मात्र से उत्पन्न ज्ञान को 'स्मृति' कहते हैं।

*** अनुभव- तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः। स द्विविधः यथार्थोऽयथार्थश्च।**

स्मृति से भिन्न ज्ञान को 'अनुभव' कहते हैं। वह दो प्रकार का होता है। यथार्थ, अयथार्थ।

*** यथार्थ - तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः।**

यथा- रजते इदं रजतम् इति ज्ञानम्। सैव प्रमेत्युच्यते।

*** अयथार्थ - तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः।**

यथा- शुक्तौ इदं रजतम् इति ज्ञानम्। सैवाप्रमत्युच्यते।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि 'संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानम्' यह लक्षण स्मृति का है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- तर्कसंग्रह - आद्याप्रसाद मिश्र, पेज 38

47. तर्कसंग्रहानुसारं शब्दसाक्षात्कारे कः सन्निकर्षः?

(A) समवायः **(B)** संयोगः

(C) समवेतसमवायः **(D)** विशेषण-विशेष्यभावः

व्याख्या- * न्याय, वैशेषिक दर्शन का प्रधान प्रकरण ग्रन्थ 'तर्कसंग्रह' अन्नम्भट्ट प्रणीत है।

* तर्कसंग्रह प्रमेयप्रधान ग्रन्थ है चूँकि प्रमेयों का ज्ञान प्रमाण द्वारा होता है, अतः यहाँ चार प्रकार के प्रमाण बताए गये हैं -

(1) प्रत्यक्ष (2) अनुमान

(3) उपमान (4) शब्द

*** प्रत्यक्ष - तत्र प्रात्यक्षज्ञानकरणं प्रात्यक्षम् । इन्द्रियार्थसन्निकर्ष- जन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्।**

अर्थात् प्रत्यक्षज्ञान का करण प्रत्यक्ष कहलाता है तथा इन्द्रियार्थ-सन्निकर्षजन्य ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं।

प्रत्यक्षज्ञानहेतुः इन्द्रियार्थसन्निकर्षः षड्विधः -

(1) संयोग (4) समवाय

(2) संयुक्त समवाय (5) समवेत समवाय

(3) संयुक्त समवेत समवाय (6) विशेषण-विशेष्य-भाव

(1) संयोग - चक्षुषा घटप्रत्यक्षजनने संयोगः सन्निकर्षः।

अर्थात् चक्षु से घट का प्रत्यक्ष ज्ञान होना संयोग सन्निकर्ष है।

(2) संयुक्तसमवाय - घटरूपप्रत्यक्षज्ञानजनने संयुक्तसमवायः सन्निकर्षः, चक्षुः संयुक्ते घटे रूपस्य समवायात्।

अर्थात् चक्षु से घटरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान होना संयुक्त समवाय सन्निकर्ष कहलाता है। चक्षु से संयुक्त घट में रूप का समवाय होने से।

(3) संयुक्तसमवेतसमवाय - रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्त-समवेतसमवायसन्निकर्षः। चक्षुः संयुक्ते घटे रूपं समवेतं, तत्र रूपत्वस्य समवायात्।

अर्थात् चक्षुसंयुक्त घटरूप में समवेतरूपत्व सामान्य का ज्ञान होना संयुक्तसमेवतसमवाय कहलाता है।

(4) समवाय- श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः सम्बन्धः। कर्णविवरवर्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वाच्छब्दस्याकाशगुणत्वाद् गुणगुणिनोश्च समवायात् ।

अर्थात् श्रोत्र द्वारा शब्द का साक्षात्कार समवायसन्निकर्ष कहलाता है।

(5) समवेतसमवाय - शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवायः सन्निकर्षः। श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात्।

अर्थात् श्रोत्र द्वारा शब्द में समवेत शब्दत्व का साक्षात्कार होना समवेत समवाय कहलाता है।

(6) विशेषणविशेष्यभाव- जब भूतल पर घट के अभाव का प्रत्यक्ष होता है तो भूतल पर घट के अभाव को कहने के लिए 'भूतल का घटाभाव' विशेषण होता है और 'भूतल' विशेष्य होता है। अतः किसी वस्तु के अभाव का प्रत्यक्ष कराने के लिए न्यायवैशेषिक शास्त्र में 'विशेष-विशेषण भाव-सन्निकर्ष' को मान्यता दी गई।

*** अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावः सन्निकर्षः। घटाभाववद्भूतलम् इत्यत्र चक्षुःसंयुक्ते भूतले घटाभावस्य विशेषणत्वात्।**

अर्थात् अभाव का प्रत्यक्ष ज्ञान होना विशेषणविशेष्यभाव सन्निकर्ष कहलाता है। जैसे - चक्षु से संयुक्त भूतल में घटाभाव का ज्ञान होना।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि शब्द साक्षात्कार समवाय सन्निकर्ष है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- तर्कसंग्रह - आद्याप्रसाद मिश्र, पेज 48

48. ''श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्'' इति वार्ता केन सम्बद्धा?

(A) माघेन **(B)** भारविणा

(C) श्रीहर्षेण **(D)** भासेन

व्याख्या- ➢ **माघ-** शिशुपालवधम् नामक महाकाव्य के प्रणेता महाकवि माघ हैं जो इनकी एकमात्र रचना है। इन्हें विद्वानों ने श्रेष्ठ महाकाव्य प्रणेता माना है। **(काव्येषु माघः)**

सर्वाधिकारी सुकृताधिकारी श्री वर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः।
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा ॥

पितामह - सुप्रभदेव थे जो राजा वर्मलात या श्रीवर्मल के सर्वाधिकारी अर्थात् दीवान थे।

पिता - दत्तक

माता - ब्राह्मी

स्थान - गुजरात (भीनमाल)

समय - सातवीं शती उत्तरार्द्ध (675 ई. लगभग)

➢ **भवभूति -** महाकवि भवभूति ने तीन नाटकों की रचना की है- (1) मालतीमाधवम् (2) महावीरचरितम् (3) उत्तररामचरितम्

पिता - नीलकण्ठ

माता - जतुकर्णी

मूलनाम - श्रीकण्ठ

समय - आठवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध

आश्रयदाता - यशोवर्मन्

पितामह - भट्टगोपाल

* कल्हण ने राजतरंगिणी में राजा यशोवर्मा को भवभूति तथा वाक्पतिराज का आश्रयदाता बताया है।

कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्॥

➢ **श्रीहर्ष -** श्रीहर्ष द्वारा रचित 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य उनका प्रमुख ग्रन्थ है जिसमें उन्होंने अपना जीवन परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त भी अनेक ग्रन्थों की रचना की।

'श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः सुतम्।
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्॥
(1/145)

यह नैषधीयचरित के प्रथम सर्ग का अन्तिम (145) श्लोक है जिसमें उन्होंने अपना परिचय दिया है।

पिता - श्रीहीर

माता - मामल्लदेवी

समय - 12वीं शती

आश्रयदाता - जयचन्द्र

उपाधि - नवभारती, कविपण्डित

➢ **भास -** महाकवि भास के तेरह नाटक प्राप्त होते हैं। इनके जीवन चरित के विषय में कोई भी विवरण प्राप्त नहीं होता।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि 'श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्' श्रीहर्ष के विषय में कहा गया है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 216, 395, 221, 274

49. ''नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमाबुद्धिस्तु मा गान्मम'' मुद्राराक्षसे कस्येयमुक्तिः?

(A) चन्द्रगुप्तस्य **(B)** चाणक्यस्य
(C) राक्षसस्य **(D)** चन्दनदासस्य

व्याख्या- 'नाटककार विशाखदत्त' की सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं अमर कृति एकमात्र 'मुद्राराक्षसम्' नाटक है।

* मुद्रा के द्वारा राक्षस के निग्रह की घटना अंकित की गई है। इसलिए इसका नाम मुद्राराक्षस रखा-

'मुद्रया गृहीतं राक्षसमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः मुद्राराक्षसम्।'

* कथावस्तु का मूल स्रोत - **श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराण।**

* 'चाणक्य' के ही गुप्तचरों के पलायन की सूचना शिष्य द्वारा उनको दिये जाने पर शिष्य से कहते हैं -

(स्वगतम्)

'सर्वेषामेव शिवाः पन्थानः सन्तु। (प्रकाशम्) वत्स। अलं विषादेन। पश्य -

(मन ही मन) सभी का कल्याण हो। (प्रकट रूप में) वत्स। विषाद मत करो। देखो -

ये याताः किमपि प्रधार्य्य हृदये, पूर्वं गता एव ते
ये तिष्ठन्ति, भवन्तु तेऽपि गमने कामं प्रकामोद्यमाः।
एका केवलमर्थसाधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम ॥1.26॥

जिन्होंने पहले ही भागने का विचार हृदय में कर लिया था, वे लोग तो चले ही गये। अब जो रह गये हैं, यदि वे भागने के इच्छुक हों तो इच्छानुसार चले जायें, किन्तु कार्य पूर्ण करने में सैकड़ों सेनाओं से बढ़कर, नन्दवंश का विनाश करने में लगी शक्तिमहिमा वाली मेरी बुद्धि मुझसे अलग न होवे।

सूक्तियाँ -

1. 'लब्धायां पुरि यावदिच्छमुषितं कृत्वा पदं नो गले'- **चन्द्रगुप्त**
2. 'अत्यादरः शङ्कनीयः।' – **चन्दनदास**
3. 'अनुचित उपचारो हृदयस्य परिभवादपि दुःखमुत्पादयति'- **चन्दनदास**
4. 'न युक्तं प्राकृतमपि रिपुमवज्ञातुम्।'- **चाणक्य**
5. 'चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः।'- **सूत्रधार**

6. 'न शालेः स्तम्बकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते।' - **सूत्रधार**
7. 'भव्यं रक्षति भवितव्यता।'- **विराधगुप्त**
8. 'दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति।' - **चाणक्य**
9. 'अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः।' - **राक्षस**
10. 'प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः।' **कञ्चुकी**

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रश्नोक्त उक्ति चाणक्य की है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- मुद्राराक्षसम् - (1/26)

50. समीचीनां तालिकां चिनुत -

(क) अभिज्ञानशाकुन्तलम्	**(i) उत्तररामचरितम्**
(ख) तीर्थोदकञ्च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः	**(ii) श्रीहर्षो निपुणः कविः**
(ग) रत्नावली	**(iii) हर्षचरितम्**
(घ) परिवर्तमान एकः कालः शैलानिवानन्तः	**(iv) श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम्**

	क	ख	ग	घ
(A)	(iv)	(i)	(ii)	(iii)
(B)	(iii)	(i)	(ii)	(iv)
(C)	(iv)	(ii)	(i)	(iii)
(D)	(i)	(ii)	(iii)	(iv)

व्याख्या- ➢ अभिज्ञानशाकुन्तलम् - महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'अभिज्ञानशाकुन्तल' विश्व प्रसिद्ध नाटक ग्रन्थ है। जैसा कि कहा गया है -

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः तत्र श्लोकचतुष्टयम् ॥

प्रमुख श्लोक -

(1) श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम् । (7/29)
(2) अवेहि तनयां ब्रह्मन् अग्निगर्भां शमीमिव। (4/4)
(3) शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने। (4/18)
(4) अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनान् ....। (4/17)
(5) अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् सङ्गतं रहः। (5/24)
(6) तदेषां भवतः कान्ता, त्यज वैनां गृहाण वा। (5/26)
(7) उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः। (7/30)
(8) छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा। (7/32)

➢ उत्तररामचरितम् - 'उत्तररामचरितम्' महाकवि भवभूति द्वारा प्रणीत है।

प्रमुख सूक्तियाँ -

(1) अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्। (1/28)
(2) एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः।
(3) इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयोः। (1/38)
(4) दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति।
(5) तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः। (1/13)

➢ रत्नावली - श्रीहर्षवर्धन द्वारा रचित रत्नावली नाटिका ग्रन्थ है जो चार अंकों में विभाजित है।

प्रमुख सूक्तियाँ -

(1) श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी। (1/4)
(2) द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात्। (1/6)
(3) परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी। (1/24)
(4) यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैव ....।
(5) हरिहरब्रह्ममुखान्देवान्दर्शयामि देवराजं च। (4/10)

➢ हर्षचरितम् - हर्षचरितम् महाकवि बाणभट्ट द्वारा प्रणीत ग्रन्थ है।

प्रमुख सूक्तियाँ -

(1) अतिदुर्धरो बान्धवस्नेहः सर्वप्रमाथी। (5 उच्छ्वास)
(2) परिवर्तमान एकः कालः शैलानिवानन्तः। (5/12)
(3) लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः।
(4) मरणाच्च मे जीवितमेवास्मिन्समये साहसम्। (5 उच्छ्वास)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत तालिका में **विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 7/29, रत्नावली - बैद्यनाथ पाण्डेय, पेज 7, उत्तररामचरितम् - 1/13, हर्षचरितम् - 5/12, पेज- 258, 273, 292

51. अभिज्ञानशाकुन्तलं षष्ठाङ्कगतः धीवरवृत्तान्तः कस्य उदाहरणं भवति?

(A) प्रवेशकस्य **(B)** विष्कम्भकस्य
(C) अङ्कावतारस्य **(D)** प्रस्तावनायाः

व्याख्या- * अर्थोपक्षेपक - ये पाँच होते हैं -
(1) विष्कम्भक (2) चूलिका (3) अङ्कास्य (4) अङ्कावतार (5) प्रवेशक।

➢ विष्कम्भक - बीते हुए और आगे होने वाले कथा भागों का सूचक, संक्षिप्त अर्थ वाला तथा मध्यम पात्रों द्वारा प्रयुक्त जो अर्थोपक्षेपक है, वह विष्कम्भक कहलाता है।

''वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः॥''

अभिज्ञानशाकुन्तल के 4 अंक में **'गान्धर्वेण विधिना निवृत्तकल्याणा शकुन्तला'** से सम्पन्न हो चुके हुए दुष्यन्त और शकुन्तला के गान्धर्व विवाह की सूचना दी है तथा **'अभिज्ञानाभरण-दर्शनेन शापो निवर्तिष्यते'** से भविष्य में घटित होने वाले शाप निवृत्ति की ओर संकेत किया गया है। अतः यह **'शुद्ध विष्कम्भक'** है।

➢ **अङ्कावतार -** प्रथम अङ्क की कथा का विच्छेद किये बिना द्वितीय अङ्क अवतरित होता है। वह अङ्कावतार कहलाता है।

'अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः।'

अभिज्ञानशाकुन्तल के **द्वितीय अंक** में प्रथम अंक के राजा के कथन -

'मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति। न खलु शक्नोमि शकुन्तलाव्यापारादात्मनं निवर्तयितुम् ।' से राजा द्वारा नगर जाने की उत्सुकता मन्द पड़ जाने की कथा आगे द्वितीय अङ्क में विदूषक के कथन -

'ह्यः किलास्मास्ववहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारेणाश्रमपदं प्रविष्टस्य तापसकन्यका शकुन्तला ममाधन्यताया दर्शिता। साम्प्रतं नगरगमनाय मनः कथमपि न करोति।' से प्रथम अङ्क की कथा का विच्छेद हुए बिना द्वितीय अङ्क अवतरित हुआ है। अतः यह **'अङ्कावतार'** का उदाहरण है।

➢ **प्रवेशक -** भूत और भविष्य के कथांशों का सूचक, नीचपात्रों द्वारा अनुदात्त उक्तियों से प्रयुक्त, दो अंकों के बीच में स्थित शेष (अप्रदर्शनीय) अर्थ का सूचक प्रवेशक कहलाता है।

''तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।''
प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः॥

अभिज्ञानशाकुन्तल के **पञ्चम अङ्क** में भूतकाल की घटना शक्रावतार में गिरकर अंगूठी खोने - **'नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिलं वन्दमानायाः प्रभ्रष्टमङ्गुलीयकम्'** यह गौतमी का कथन एवं **षष्ठ अङ्क** में उसके मिल जाने पर दुष्यन्त के भावी वियोग की सूचना- **'तस्य दर्शनेन भर्तुरभिमता जनः स्मारितः। मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्यश्रुनयन आसीत् ।'** श्याल का कथन है। अतः यहाँ प्रवेशक है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् के षष्ठ अङ्क में प्रवेशक है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- अभिज्ञानशाकुन्तलम् - कपिलदेव द्विवेदी, पेज 317

52. ''तीव्राघातप्रतिहततरुः स्कन्धलग्नैकदन्तः''- केन छन्दसा विनिर्मितोऽयं श्लोकपादः?

(A) हरिणी **(B)** शिखरिणी
(C) मन्दाक्रान्ता **(D)** मालिनी

व्याख्या- 'महाकवि कालिदास' द्वारा विरचित **'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' 7 अङ्कों** का विश्वविख्यात नाटक है।

इस नाटक का उपजीव्य- महाभारत के आदिपर्व का शकुन्तलोपाख्यानम् (68-74 अध्याय) है।

सातों अङ्कों के नाम -

(1) आश्रमप्रवेश (5) प्रत्याख्यान
(2) आश्रमनिवेश (6) पश्चात्ताप
(3) मिलन (7) पुनर्मिलन
(4) विदाई

➢ **हरिणी छन्द -** जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, लघु तथा गुरु वर्ण होते हैं और 6, 4, 7 पर यति होती है। उसे **हरिणी** छन्द कहते हैं -

'नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता'

यथा-
'इदमशिशिरैरन्तस्तापाद् विवर्णमणीकृतं
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिरश्रुभिः।
अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते॥ (3/10॥)

➢ **शिखरिणी छन्द -** शिखरिणी छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः दो यगण, एक मगण, नगण, सगण तथा भगण, लघु तथा गुरु वर्ण होता है और 6 एवं 11 पर यति होती है।

'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी'।

यथा- यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद् विपुलतां ....
...... न मे दूरे किञ्चित् क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात् ।
(अभि. 1-9)

➢ **मन्दाक्रान्ता छन्द -** इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, भगण, नगण, दो तगण, दो गुरु वर्ण होते हैं एवं 4, 6, 7 पर यति होती है।

''मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैः म्भौ नतौ ताद्गुरू चेत्॥''

यथा -
'तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः
पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसञ्जातपाशः।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्गयूथो
धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः॥'
(अभि. 1-33)

मालिनी छन्द - इस छन्द के प्रत्येक चरण में दो नगण, मगण, दो गुरु वर्ण एवं 7, 8 पर यति होती है।

'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।'

यथा - सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं ....

.... किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥

(अभि. 1-20)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- अभिज्ञानशाकुन्तलम् - (1/33)

53. ''शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम्'' शिशुपालवधे कस्य प्रशंसेयम् ?

(A) नारदस्य **(B)** श्रीकृष्णस्य

(C) वसुदेवस्य **(D)** बलरामस्य

व्याख्या- महाकवि 'माघ' द्वारा विरचित 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य बृहत्त्रयी के अन्तर्गत आता है। इसमें कुल 20 सर्ग हैं।

टीका - सर्वङ्कषा (मल्लिनाथ)

1. ''हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम्॥'' (1/26)

प्रस्तुत श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा **'नारद ऋषि'** की प्रशंसा की गयी है।

2. ''विलोकनेनैव तवामुना मुने
कृतः कृतार्थोऽस्मि निबर्हितांहसा।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसी
गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते॥'' (1/29)

इस श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा **'महर्षि नारद'** की प्रशंसा की गयी है।

3. कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा
सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो
निधिः श्रुतीनां धनसम्पदामिव॥ (1/28)

प्रस्तुत श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा **'नारद मुनि'** की प्रशंसा की गयी है।

4. 'इति ब्रुवन्तं तमुवाच स व्रती
न वाच्यमित्थं पुरुषोत्तम त्वया।
त्वमेव साक्षात्करणीय इत्यतः
किमस्ति कार्यं गुरुयोगिनामपि॥' (1/31)

प्रस्तुत श्लोक में महर्षि नारद द्वारा **'भगवान् श्रीकृष्ण'** की प्रशंसा की गयी है।

5. 'उदासितारं निगृहीतमानसैः
गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः
पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥' (1/33)

प्रस्तुत श्लोक में मुनि नारद द्वारा **'भगवान् श्रीकृष्ण'** की प्रशंसा की गई है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत पंक्ति में **'महर्षि नारद'** की प्रशंसा की गई है।

अतः विकल्प 'A' सही है।

स्रोत- शिशुपालवधम् (1/26)

54. ''ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात् तस्य सप्रसवा इव॥''
कस्य गुणाः श्लोकेऽस्मिन् उल्लिखिताः?

(A) रघोः **(B)** रामस्य

(C) अजस्य **(D)** दिलीपस्य

व्याख्या- **'महाकवि कालिदास'** द्वारा विरचित **'रघुवंशम् महाकाव्य'** लघुत्रयी के अन्तर्गत वर्णित है।

सर्ग - 19

टीका - संजीवनी (मल्लिनाथ)

➢ **रघुवंशम् महाकाव्य में राजा दिलीप के गुणों का कथन-**

1. ''तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव।।'' (1/12)

2. ''प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।'' (1/18)

3. ''सेना परिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम् ।
शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता।।'' (1/19)

4. ''ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात् तस्य सप्रसवा इव।।'' (1/22)

5. ''द्वेष्योऽपि संमतः शिष्टस्तस्यार्त्तस्य यथौषधम् ।
त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता।।'' (1/28)

➢ **महारानी सुदक्षिणा के गुणों का वर्णन -**

6. ''तस्य दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना मगधवंशजा।
पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा।।'' (1/31)

➢ **अरुन्धती सहित महर्षि वशिष्ठ का वर्णन -**

7. ''विधेः सायन्तनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम् ।
अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम् ।।'' (1/56)

➢ **कामधेनु पुत्री नन्दिनी के गुणों का वर्णन -**

8. "रजः कणैः खुरोद्धूतैः स्पृशद्भिर्गात्रमन्तिकात् ।
तीर्थाभिषेकजां शुद्धिमादधाना महीक्षितः।।" (1/85)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत श्लोक में **'राजा दिलीप'** के गुणों का वर्णन है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- रघुवंशम् (1/22)

55. 'पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः' - उत्तररामचरिते उक्तिरियं भवति -

(A) सीतायाः **(B)** मुरलायाः
(C) तमसायाः **(D)** वासन्त्याः

व्याख्या- 'महाकवि भवभूति' द्वारा विरचित **'उत्तररामचरितम्'** नाटक 7 अङ्कों का है।

रीति - गौणी एवं वैदर्भी का समन्वय

प्रधानरस - करुण

उपजीव्य - वाल्मीकिरामायण उत्तरकाण्ड (सर्ग 42-97) पद्मपुराण (पातालखण्ड 1-68 तक)

विशेषताएँ - विदूषकरहित नाटक
सप्तम अङ्क में गर्भनाटक की योजना।

उक्तियाँ -

(1) "दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति।" **सीता का कथन**

(2) "यैवं प्रलपन्तं प्रलापयसि।" **सीता का कथन**

(3) "किमिति किलैषा मंस्यत एष परित्याग एषोऽभिषङ्ग इति।" **सीता का कथन**

(4) "सन्तापकारिणो बन्धुजन विप्रयोगा भवन्ति।" **सीता का कथन**

(5) "अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ।।" (1/28) **लक्ष्मण का कथन**

(6) "अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।।" (3/1)
मुरला का कथन

(7) "करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी।" (3/4)
तमसा का कथन

(8) "प्रियाशोको जीवं कुसुममिव घर्मो ग्लपयति।" (3/30)
तमसा का कथन

(9) "एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्।" (3/47)
तमसा का कथन

(10) "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।" (2/7)
वासन्ती का कथन

(11) "अयि कठोर! यशः किल ते प्रियम् ....मन्यसे।" (3/27)
वासन्ती का कथन

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि प्रस्तुत पंक्ति या उक्ति 'मुरला' की है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- उत्तररामचरितम् (3/1)

56. रत्नावल्याः मङ्गलाचरणस्य प्रथमे श्लोके कस्य स्तुतिः प्राप्यते?

(A) विष्णोः **(B)** ब्रह्मणः
(C) शिवस्य **(D)** गणेशस्य

व्याख्या- 'महाकवि श्रीहर्ष' द्वारा विरचित **'रत्नावली'** नामक नाटिका 4 अङ्कों में रचित है। जिसका मङ्गलाचरण है-

**1. पादाग्रस्थितया मुहुः स्तनभरेणानीतया नम्रतां
शम्भोः सस्पृहलोचनत्रयपथं यान्त्या तदाराधने।
ह्रीमत्या शिरसीहितः सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया
विश्लिष्यन्कुसुमाञ्जलिर्गिरिजया क्षिप्तोऽन्तरे पातु वः
॥1/1॥**

भगवान् शिव की आराधना में, बार-बार चरणों के अग्रभाग पर (अर्थात् चरणों की उँगलियों के सहारे) खड़ी होने वाली, स्तनों के भार से (बार-बार) झुकती हुयी (कल्याण करने वाले) शम्भु के अनुरागयुक्त तीनों नेत्रों का विषय बनने वाली (अतएव) रोमाञ्च, स्वेद और कम्पन्न से युक्त होने के कारण लज्जित होने वाली पार्वती के द्वारा (शिव) के सिर पर (समर्पित करने के लिए) (अतएव शिव के शिर पर न पहुँच सकने के कारण उमा और शिव के) बीच में ही बिखरती हुयी पुष्पाञ्जलि तुम्हारी की रक्षा करें।

टिप्पणी - भगवान् शिव की स्तुति की गयी है। वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण है। शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

**2. औत्सुक्येन कृतत्वरा सहभुवा व्यावर्तमाना ह्रिया
तैस्तैर्बन्धुवधूजनस्य वचनैर्नीताभिमुख्यं पुनः।
दृष्ट्वाग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे सङ्गमे
संरोहत्पुलका हरेण हसता श्लिष्टा शिवायाऽस्तु वः॥
(1/2)**

टिप्पणी - भगवान् शिव की स्तुति, वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण शार्दूलविक्रीडित छन्द।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रत्नावली नामक नाटिका के मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में 'भगवान् शिव' की

स्तुति की गयी है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- रत्नावली नाटिका (1/1)

57. पुण्यवर्मा कस्य देशस्य राजा आसीत् दशकुमारचरिते?

(A) विदर्भस्य	**(B)** वाराणस्याः
(C) गौणस्य	**(D)** मगधस्य

व्याख्या- 'महाकवि दण्डी' विरचित **'दशकुमारचरितम्'** उच्छ्वासों में विभक्त है। इसके तीन भाग हैं -

1. पूर्वपीठिका - 5 उच्छ्वास
2. मूलभाग - 8 उच्छ्वास
3. उत्तरपीठिका - 1 उच्छ्वास

रीति - वैदर्भी

गुण - प्रसाद

* दशकुमारचरितम् में 10 राजकुमारों का वर्णन है। **पुष्पपुरी (पटना)** के राजा **राजहंस** नायक एवं **मालवा** का राजा **मानसार** प्रतिनायक है।

* राजा राजहंस के पुत्रों सहित 10 राजकुमारों के नाम इस प्रकार हैं -

1. राजवाहन (राजकुमार)	6. अर्थपाल
2. सोमदत्त	7. मित्रगुप्त
3. पुष्पोद्भव	8. मन्त्रगुप्त
4. अपहारवर्मा	9. प्रगति
5. उपहारवर्मा	10. सुश्रुत (विश्रुत)

* राजकुमार सुश्रुत (विश्रुत) द्वारा विन्ध्याटवी भ्रमण करते हुए भूख एवं प्यास से पीड़ित 8 वर्ष का बालक कुएँ के पास देखा।

* उसकी याचना पर कुएँ में गिरे हुए वृद्ध को बाहर निकाला फिर वृद्ध से उसकी दशा पूछी तो वृद्ध ने कुछ इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया-

''श्रूयतां महाभाग, विदर्भो नाम जनपदः तस्मिन्भोजवंशभूषणम् अंशावतार इव धर्मस्य, अतिसत्त्वः, सत्यवादी, वदान्यः, विनीतः, विनेता प्रजानाम्, रञ्जितभृत्यः, कीर्तिमान् .... पुण्यश्लोकः, पुण्यवर्मा नामासीत् । सः पुण्यैः कर्मभिः प्राप्य पुरुषायुषं, पुनरपुण्येन प्रजानामगण्यतामरेषु। तदनन्तरमनन्तवर्मा नाम तदायतिरवनिमध्यतिष्ठत् ।''

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पुण्यवर्मा विदर्भ देश का राजा था। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- दशकुमारचरितम् - विश्वनाथ झा, पेज 238

58. मम्मटमते कति काव्यगुणाः?

(A) दश	**(B)** पञ्च
(C) त्रयः	**(D)** अष्टौ

व्याख्या- 'आचार्य मम्मट' द्वारा विरचित **'काव्यप्रकाश'** काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है।

➢ **गुण का लक्षण -**

'ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥

'आत्मा के शौर्यादि धर्मों के समान (काव्य के आत्मभूत) प्रधान रस के जो अपरिहार्य और उत्कर्षाधायक धर्म हैं वे गुण कहलाते हैं।

➢ **गुण के भेद -**

''माधुर्यौजःप्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश।''

आचार्य मम्मट 'वामन' के 10 गुणों का खण्डन करते हुए बताते हैं कि गुण तीन प्रकार का होता है-

1. माधुर्य 2. ओज 3. प्रसाद

➢ **माधुर्य गुण का लक्षण -**

'आह्लादकत्वं माधुर्यं शृंगारे द्रुतिकारणम्।
करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्।।'

➢ **ओज गुण का लक्षण -**

'दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति।
बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च।।'

➢ **प्रसाद गुण का लक्षण -**

'शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः।।'

➢ **वामनोक्त शब्दगुणों का खण्डन -**

'केचिदन्तर्भवन्त्येषु दोषत्यागात्परे श्रिताः।
अन्ये भजन्ति दोषत्वं कुत्रचिन्न ततो दश।।'

वामनोक्त दस गुणों में से कुछ इन तीनों गुणों के अन्तर्भूत हो जाते हैं, कुछ दोषाभाव रूप होते हैं और कुछ गुण न होकर दोषरूप हो जाते हैं। इसलिए दस गुण नहीं माने जाते हैं।

* **अन्तर्भाव -** श्लेष, समाधि, उदारता, प्रसाद - ओज
माधुर्य - माधुर्य, अर्थव्यक्ति - प्रसाद

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मम्मटोक्त गुण 3 हैं। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- काव्यप्रकाश (8/38) -आचार्य विश्वेश्वर, पेज 388

59. ध्वन्यालोकतः रिक्तस्थानं पूरयत - ''यत्नतः .... तौ शब्दार्थौ महाकवेः।''

(A) अवगन्तव्यौ **(B)** प्रत्यभिज्ञेयौ

(C) परिहन्तव्यौ **(D)** संस्मरणीयौ

व्याख्या- आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा विरचित 'ध्वन्यालोक' काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ है।

ध्वन्यालोक में ध्वनि की सत्ता सिद्ध करते हुए बताते हैं -

सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निःष्यन्दमाना महतां कवीनाम्।
अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम्॥
(1/6)

आस्वादमय रसभावरूप उस अर्थतत्त्व को प्रवाहित करने वाली महाकवियों की वाणी अलौकिक और परिस्फुरित होती हुई प्रतिभा के विशेष को अभिव्यक्त करती है।

चूँकि वह प्रतीयमान अर्थ ही ध्वनि है अतः प्रतीयमान अर्थ की सत्ता सिद्ध करते हैं।

शब्दार्थशासनज्ञानमात्रेणैव न वेद्यते।
वेद्यते स तु काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम्। (1/7)

प्रतीयमान अर्थ की सत्ता सिद्ध करते हुए बताते हैं कि वह प्रतीयमान अर्थ केवल शब्दमात्र शब्दशास्त्र (व्याकरण) आदि के और अर्थशास्त्र आदि के जानने से विदित नहीं होता, अपितु केवल काव्य के अर्थ के तत्त्व को जानने वालों को ही विदित होता है।

इस प्रकार वाच्य से अतिरिक्त व्यङ्ग्य अर्थ के अस्तित्व का प्रतिपादन करके यह प्रदर्शित करते हैं कि काव्य में प्रधानता भी इस व्यङ्ग्य अर्थ की ही है।

सोऽर्थस्तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन।
यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थौ महाकवेः। (1/8)

वह प्रतीयमान अर्थ और उस प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य से युक्त जो कोई विशेष शब्द हैं। इन दोनों शब्द और अर्थ को पहचानना चाहिए।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रिक्तस्थान में 'प्रत्यभिज्ञेयौ' शब्द आयेगा। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- ध्वन्यालोक (कारिका 1/8)

60. दशरूपकानुसारं फलस्याप्राप्तावुपाययोजनादिरूपः चेष्टा-विशेषः भवति -

(A) आरम्भः **(B)** प्रयत्नः

(C) प्राप्त्याशा **(D)** नियताप्तिः

व्याख्या- दशरूपक नामक लक्षणपरक ग्रन्थ आचार्य धनञ्जय द्वारा रचित है जो चार प्रकाशों में विभाजित हैं।

दशरूपक में पाँच प्रकार की कार्यावस्थाओं का वर्णन है -

(1) आरम्भ (2) प्रयत्न (3) प्राप्त्याशा (4) नियताप्ति (5) फलागमः

(1) आरम्भ - 'औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे।'

प्रचुर फल प्राप्ति के लिए उत्सुकतामात्र होना ही आरम्भ कहलाता है।

(2) प्रयत्न -'प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः'। (1/20)

फल के प्राप्त न होने पर उसके लिए अत्यन्तवेगपूर्वक उद्योग करना ही प्रयत्न कहलाता है।

यथा- रत्नावली में -

आलेख्याभिलेखनादिर्वत्सराजसमागमोपायः।

(3) प्राप्त्याशा -'उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः।'

उपाय के होने तथा विघ्न की शङ्का होने से जो फलप्राप्ति की सम्भावना मात्र होती है, वह प्राप्त्याशा कहलाती है।

यथा - रत्नावल्याम् तृतीयेऽङ्के 'वेषपरिवर्ताभिसरणादौ समागमोपाये सति वासवदत्तालक्षणापायशङ्कायाः।

(4) नियताप्ति -'अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता'। (1/21)

विघ्नों के अभाव से फल की निश्चित रूप से प्राप्ति ही नियताप्ति कहलाती है।

यथा- रत्नावली में अन्त में राजा को रत्नावली की प्राप्ति।

(5) फलागम -'समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो यथोदितः।'

पूर्णरूप से फल की प्राप्ति ही फलागम है जैसा कि पहले कहा गया है।

यथा - रत्नावली नाटिका में राजा को रत्नावली की प्राप्ति तथा चक्रवर्ती पद की प्राप्ति।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि प्रस्तुत लक्षण 'प्रयत्न' का है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- दशरूपक - रमाशंकर त्रिपाठी, पेज 23

61. शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् .... इति हेतुस्तदुद्भवे। काव्यप्रकाशतः रिक्तस्थानं पूरयत।
(A) काव्यज्ञशिक्षयाभ्यासः **(B)** लोकतत्त्वानुशीलनम्
(C) रसभावयोश्चिन्तनम् **(D)** भावाभासस्य चिन्तनम्

व्याख्या- 'ध्वनिप्रस्थापनपरमाचार्य मम्मट' द्वारा रचित **काव्यप्रकाश 10 उल्लासों** में विभक्त है।

इन्होंने काव्य के तीन हेतु बताये हैं-

'शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

(1) शक्ति (2) लोक (व्यवहार), शास्त्र तथा काव्य आदि के पर्यालोचन से उत्पन्न निपुणता और (3) काव्य को जानने वाले (गुरु) की शिक्षा के अनुसार (काव्य-निर्माण का) अभ्यास, ये (तीनों मिलकर समष्टि-रूप से) उस (काव्य) के विकास (उद्भव) के कारण हैं।

➢ **काव्य के छः प्रयोजन -**

'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

काव्य यशजनक अर्थ का उत्पादक, (लोक) व्यवहार का बोधक, (शिव अर्थात् कल्याण, शिवेतर अर्थात् उससे भिन्न) अनिष्ट का नाशक, पढ़ने (या सुनने, देखने आदि) के साथ ही (सद्यः) परम आनन्द देने वाला और स्त्री के समान (सरसरूप से कर्तव्याकर्तव्य का) उपदेश प्रदान करने वाला होता है।

➢ **काव्य का लक्षण -**

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।

दोषों से रहित, गुण-युक्त और (साधारणतः अलङ्कार सहित परन्तु) कहीं-कहीं अलङ्कार-रहित शब्द और अर्थ (दोनों की समष्टि) काव्य (कहलाती) है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रिक्तस्थान में **'काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास'** शब्द आयेगा। **अतः विकल्प 'A' सही है।**
स्रोत- काव्यप्रकाश (कारिका 1/3) - आचार्य विश्वेश्वर, पेज 16

62. काव्यप्रकाशे उपमानोपमेययोः विपर्यासे कोऽलङ्कारः?
(A) अनन्वयः **(B)** विभावना
(C) विशेषोक्तिः **(D)** उपमेयोपमा

व्याख्या- 'आचार्य मम्मट' द्वारा रचित **'काव्यप्रकाश'** 10 उल्लासों में विभक्त है। जिसके नौवें एवं दशवें उल्लास में अलंकारों का वर्णन है। नौवें में शब्दालंकार एवं दशवें में अर्थालंकारों का वर्णन है।

1. अनन्वय अलंकार -

'उपमानोपमेयत्वे एकस्यैवैकवाक्यगे अनन्वयः'

एक वाक्य में एक ही के उपमान तथा उपमेय (दोनों) होने पर अनन्वय (अलंकार) होता है।

उदाहरण-

'न केवलं भाति नितान्तकान्तिर्नितम्बिनी सैव नितम्बिनीव।
यावद्विलासायुधलास्यवासास्ते तद्विलासा इव तद्विलासाः॥

2. विभावना अलंकार -

'क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना।'

कारण का निषेध होने पर भी फल की उत्पत्ति (का वर्णन) होने पर विभावना (अलङ्कार) होता है।

उदाहरण -

'कुसुमितलताभिरहताऽप्यधत्त रुजमलिकुलैरदष्टापि।
परिवर्त्तते स्म नलिनीलहरीभिरलोलिताप्यघूर्णत सा॥

3. विशेषोक्ति अलङ्कार -

'विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः।'

कारणों के एकत्र होने पर भी कार्य का कथन न करना विशेषोक्ति (अलङ्कार) होता है।

उदाहरण -

'कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने जने।
नमोऽस्त्ववार्यवीर्याय तस्मै मकरकेतवे॥

4. उपमेयोपमा अलङ्कार -

'विपर्यास उपमेयोपमा तयोः।

उन दोनों (उपमान और उपमेय) का परिवर्तन हो जाना ही उपमेयोपमा अलङ्कार होता है।

उदाहरण -

'कमलेव मतिर्मतिरिव कमला तनुरिव विभा विभेव तनुः।
धरणीव धृतिर्धृतिरिव धरणी सततं विभाति बत यस्य॥

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत पंक्ति में **उपमेयोपमा अलङ्कार** है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**
स्रोत- काव्यप्रकाश (सूत्र-135) - आचार्य विश्वेश्वर, पेज 460

63. कालक्रमानुसारेण तालिकां चिनुत -
(a) अप्पयदीक्षितः **(b)** भरतः
(c) आनन्दवर्धनः **(d)** दण्डी

(A) (a) (b) (c) (d)
(B) (b) (c) (a) (d)
(C) (c) (a) (b) (d)
(D) (b) (d) (c) (a)

व्याख्या- * भरत - साहित्यशास्त्र के सबसे प्राचीन आचार्य भरतमुनि नाट्यशास्त्र के प्रणेता हैं। इनका समय ई.पू. द्वितीय शताब्दी है। इनका एकमात्र ग्रन्थ नाट्यशास्त्र है जो समस्त कलाओं का विश्वकोष है।

* इसमें 36 अध्याय हैं एवं 6000 श्लोक हैं। इसको 'षट्साहस्त्री संहिता' भी कहा जाता है।

*** दण्डी -** दण्डी का समय छठवीं शताब्दी है। दण्डी ने अपने 'अवन्तिसुन्दरीकथा' में अपने को महाकवि भारवि का प्रपौत्र बतलाया है और बाण तथा मयूर कवि की प्रशंसा की है।

रचनाएं -

(i) दशकुमारचरितम् (ii) काव्यादर्श (iii) अवन्तिसुन्दरी कथा

*** आनन्दवर्धन -** ध्वनिप्रस्थापनाचार्य आनन्दवर्धन कश्मीर के निवासी हैं। इनका समय नवम शताब्दी पूर्वार्द्ध है।

इनकी रचनाएँ -

1. विषमबाणलीला **2.** अर्जुनचरित **3.** देवीशतक **4.** तत्त्वालोक **5.** ध्वन्यालोक

➢ **अप्पयदीक्षित -** अप्पयदीक्षित दक्षिण भारत की विभूति हैं। इन्हें 104 ग्रन्थों का कर्ता कहा जाता है।

इनकी रचनाएँ -

1. वृत्तिवार्तिकग्रन्थ **2.** चित्रमीमांसा **3.** कुवलयानन्द

कवि		**समय**
भरतमुनि	–	ई.पू. द्वितीय शताब्दी
दण्डी	–	छठवीं शताब्दी
आनन्दवर्धन	–	नवमशताब्दी पूर्वार्द्ध
अप्पयदीक्षित	–	17वीं शताब्दी

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कालक्रमानुसार **विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- काव्यप्रकाश - आचार्य विश्वेश्वर, पेज 18, 29, 91

64. 'दोषा गुणा-गुणा दोषा यत्र स्युर्मृदवं हि तत्' - दशरूपके कस्मिन् प्रसङ्गे इयमुक्तिः?

(A) वीथ्यङ्गप्रसङ्गे **(B)** नृत्यलक्षणप्रसङ्गे
(C) सन्धिभेदप्रसङ्गे **(D)** प्रहसनलक्षणप्रसङ्गे

व्याख्या- श्री धनञ्जय द्वारा विरचित 'दशरूपक' नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ है यह चार प्रकाशों में विभक्त है -

प्रथम प्रकाश - वस्तु का वर्णन।
द्वितीय प्रकाश - नायक का वर्णन।
तृतीय प्रकाश - रूपक का वर्णन।
चतुर्थ प्रकाश - रस का वर्णन।

➢ **वीथी के 13 अंग -**

उद्घात्यकावगलिते प्रपञ्चत्रिगते छलम्।
वाक्केल्यधिबले गण्डमवस्यन्दितनालिके।
असत्प्रलापव्याहारमृदवानि त्रयोदश। (3/12)

उद्घात्यक - 'गूढार्थपदपर्यायमाला प्रश्नोत्तरस्य वा। (3/13)
यत्रान्योन्यं समालापो द्वेधोद्घात्यं तदुच्यते।।'

अवलगितम् - 'यत्रैकत्र समावेशात्कार्यमन्यत्प्रसाध्यते। (3/14)
प्रस्तुतेऽन्यत्र वाऽन्यत्स्यात्तच्चावगलितं द्विधा।'

प्रपञ्च - असद्भूतं मिथः स्तोत्रं प्रपञ्चो हास्यकृन्मतः। (3/15)

त्रिगतम् - श्रुतिसाम्यादनेकार्थयोजनं त्रिगतं त्विह।
नटादित्रितयालापः पूर्वरङ्गे तदिष्यते। (3/16)

छलनम् - प्रियाभैरप्रियैर्वाक्यैर्विलोभ्य छलनाच्छलम्।

वाक्केलि - विनिवृत्त्यास्य वाक्केली द्विस्त्रिः प्रत्युक्तितोऽपि वा। (3/17)

अथाधिबलम् - अन्योन्यवाक्याधिक्योक्तिः स्पर्धयाऽधिबलं भवेत्।

गण्ड - गण्डः प्रस्तुतसम्बन्धि भिन्नार्थं सहसोदितम्। (3/18)

अवस्पन्दित - रसोक्तस्यान्यथा व्याख्या यत्रावस्यन्दितं हि तत्।

नालिका - सोपहासा निगूढार्था नालिकैव प्रहेलिका। (3/19)

असत्प्रलाप - असम्बद्धकथाप्रायोऽसत्प्रलापो यथोत्तरः। (3/20)

व्याहार - अन्यार्थमेव व्याहारो हास्यलोभकरं वचः।

मृदव - दोषा गुणा गुणा दोषा यत्र स्युर्मृदवं हि तत्।

नृत्यलक्षण - अन्यद्भावाश्रयं नृत्यम् ।
भाव पर आश्रित नृत्य नाट्य से भिन्न होता है।

सन्धिभेद - मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः।

प्रहसनलक्षण - तद्वत्प्रहसनं त्रेधा शुद्धवैकृतसंकरैः।
पाखण्डिविप्रप्रभृतिचेटचेटीविटाकुलम्
चेष्टितं वेषभाषाभिः शुद्धं हास्यवचोन्वितम्। (3/54)
कामुकादिवचोवेषैः षण्ढकञ्चुकितापसैः विकृतं। (3/55)

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि प्रस्तुत लक्षण वीथ्यङ्ग (मृदव) का है। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- दशरूपक - रमाशङ्कर त्रिपाठी, पेज 218

65. ''न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।'' इत्यादि श्लोकः भवति।

(A) काव्यप्रशंसा **(B)** गुणप्रशंसा
(C) नाट्यप्रशंसा **(D)** अलङ्कारप्रशंसा

व्याख्या- नाट्यशास्त्र के प्रथम प्रणेता आचार्य भरतमुनि हैं। इनकी एकमात्र रचना नाट्यशास्त्र है जो समस्त कलाओं का विश्वकोष है। **अध्याय - 36, श्लोक -** 6000

इसे 'षट्साहस्री संहिता' भी कहा जाता है। छन्द प्रायः **अनुष्टुप्** है। स्वयं भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' का परिचय देते हुए लिखा है-

'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥
(1/117)

अर्थात् - जो बात उन्होंने नाट्य के विषय में कही है वही बात उनके 'नाट्यशास्त्र' पर भी चरितार्थ होती है। उनका 'नाट्यशास्त्र' न केवल नाट्य का ही अपितु समस्त ललित एवं उपयोगी कलाओं का आकर ग्रन्थ है। (जो नाट्य में न मिले ऐसा न तो कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और न ही कोई कार्य हो सकता है।)

*** नाट्यशास्त्र के टीकाकार -**

1. उद्भट
2. भट्टलोल्लट
3. श्री शंकुक
4. भट्टनायक
5. अभिनवगुप्त

*** नाट्यशास्त्र पर उपलब्ध अन्य ग्रन्थ एवं ग्रन्थकर्ताओं की सूची -**

	ग्रन्थ	ग्रन्थकार
1.	नाट्यशास्त्र	भरतमुनि एवं इनके टीकाकार
2.	अभिनयदर्पण	नन्दिकेश्वर
3.	दशरूपक	धनञ्जय, इनके टीकाकार
4.	भाव-प्रकाशन	शारदातनय
5.	शृंगारप्रकाश	भोज
6.	नाट्यदर्पण	रामचन्द्र - गुणचन्द्र
7.	साहित्यदर्पण	विश्वनाथ कविराज

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत पंक्ति में नाट्यशास्त्र की प्रशंसा की गयी है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- नाट्यशास्त्रम् (श्लोक 1/117) -ब्रजमोहन शास्त्री, पेज 113

66. ''तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।
अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः॥
इति मनुवचनं केन सम्बद्धम् ?

(A) अण्डजेन प्राणिना **(B)** उद्भिदा
(C) स्वेदजेन प्राणिना **(D)** जरायुजेन प्राणिना

व्याख्या- * आचार्य मनु विरचित 'मनुस्मृति' प्रथम स्मृतिग्रन्थ है। यह बारह अध्यायों में विभक्त हैं।

* मनुस्मृति में आचार्य मनु ने चार प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति बतायी है।

*** जरायुज प्राणी -**

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः।
रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः॥ (1/43)

पशु, मृग, सर्प, दोनों ओर दाँतो वाले, राक्षस, पिशाच और मनुष्य ये सब जरायुज हैं अर्थात् झिल्ली से उत्पन्न होते हैं।

*** अण्डज प्राणी -**

अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः।
यानि चैवं प्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च॥ (1/44)

पक्षी, सर्प, मगर, मछली और कछुए अण्डज हैं और जितने ऐसे जीव जल और स्थल में पैदा होते हैं वे सब भी अण्डज हैं।

*** स्वेदज -**

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम्।
ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चाऽन्यत्किंचिदीदृशम्॥ (1/45)

दंश, मच्छर, जूँ, मक्खी, खटमल और अन्य ऐसे ही जो गर्मी से उत्पन्न होते हैं वे स्वेदज हैं।

*** उद्भिज्जप्राणी -**

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः।
ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः। (1/46)
तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।
अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः। (1/49)

बीज से पृथ्वी फोड़कर जो वृक्ष उगते हैं उनको उद्भिज्ज कहते हैं और फल पकने पर जो सूख जाते हैं जिनमें बहुत से फल और फूल लगते हैं। ये पूर्वजन्म के कर्म के कारण बहुत से तमोगुण से घिरे हुए हैं, सुख-दुःख से युक्त हैं और इनके भीतर चेतना है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत लक्षण उद्भिद् प्राणियों का है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- मनुस्मृति (1/49)

67. मनुसंहितातः रिक्तं स्थानं पूरयत -

''नृपतौ कोशराष्ट्रे च .... सन्धिविपर्ययौ''।

(A) अमात्ये **(B)** दूते

(C) सेनापतौ **(D)** मन्त्रिणि

व्याख्या- 'मनुस्मृति' आचार्य मनु द्वारा विरचित आद्यस्मृति ग्रन्थ है जो बारह अध्यायों में विभाजित है।

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते संधिविपर्ययौ॥ (7/65)

मनुस्मृति में कौन किसके अधीन है इसको प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से बताते हैं - दण्ड सेनापति के अधीन, विनय दण्ड के अधीन, कोश और देश राजा के अधीन, सन्धिविग्रह दूत के अधीन होते हैं।

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्।
इङ्गिताऽऽकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम्। (7/63)

जो इंगित आकार और चेष्टा का ज्ञाता, कुलीन, सब शास्त्रों का ज्ञाता, चतुर, पवित्र उसे दूत नियुक्त करें।

दूत प्रशंसा -

अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान्देशकालवित्।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते। (7/64)

जो प्रीतियुक्त, धन से पवित्र, चतुर, स्मरणशक्ति वाला, देशकाल का ज्ञाता, सुन्दर, निर्भय और बातचीत करने में निपुण हो ऐसे राजदूत की प्रशंसा होती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है प्रस्तुत रिक्तस्थान में 'दूते' शब्द सही होगा। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- मनुस्मृति (श्लोक 7/65)

68. कस्मिन् पुराणे 'काशी-खण्डः' समुपलभ्यते?

(A) लिङ्गपुराणे **(B)** शिवपुराणे

(C) ब्रह्माण्डपुराणे **(D)** स्कन्दपुराणे

व्याख्या- पुराण महर्षि वेदव्यास की रचना है। पुराणों की संख्या 18 बताई गई है।

➤ **पुराण का लक्षण -** विष्णुपुराण आदि में प्रतिपाद्य विषयों के आधार पर पुराण का लक्षण किया है-

''सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

लिङ्गपुराण - इसमें 11 सहस्र श्लोक हैं। इसमें शिव के 28 अवतारों का वर्णन है। इसमें शिवलिंग की पूजा का माहात्म्य वर्णित है।

शिवपुराण - इसे वायुपुराण भी कहा जाता है। इसमें 112 अध्याय और 10 सहस्र श्लोक हैं।

ब्रह्माण्डपुराण - इसमें तीर्थ माहात्म्य और उपाख्यानों का संग्रह है। इसके सात खण्डों में अध्यात्म-रामायण दी गयी है।

स्कन्दपुराण - इसमें 5 संहिताएँ हैं -

(1) सनत्कुमारीय (2) ब्राह्म
(3) वैष्णव (4) शंकर / अगस्त्य
(5) सौर

इसके अतिरिक्त काशीखंड नामक 50 छोटे अध्याय हैं। इसमें 81 सहस्र श्लोक हैं। यह सबसे विशालकाय पुराण है। इसमें मुख्यतः शिवभक्ति का वर्णन है। इसमें प्राप्त सूतसंहिता बहुत प्रसिद्ध है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि काशीखंड स्कन्दपुराण में प्राप्त होता है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 97

69. याज्ञवल्क्यस्मृत्यनुसारं रिक्तस्थानं पूरयत -

''स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः।
अर्थशास्त्रात्तु बलवद् .... इति स्थितिः''॥

(A) धर्मशास्त्रम् **(B)** राजादेशः

(C) नृपस्येच्छा **(D)** नीतिशास्त्रम्

व्याख्या- याज्ञवल्क्य द्वारा रचित याज्ञवल्क्यस्मृति अनुष्टुप् छन्द में वर्णित है। इसमें लगभग 1000 श्लोक हैं। यह तीन भागों में विभाजित है -

(1) आचाराध्याय (2) व्यवहाराध्याय
(3) प्रायश्चित्ताध्याय

व्यवहाराध्याय- इसके विषय में याज्ञवल्क्य कहते हैं -

'स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाऽधर्षितः परैः।
आवेदयति चेद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत् ॥ (2/5)

यदि कोई व्यक्ति जो दूसरों के द्वारा स्मृतिनियमों और आचार अथवा रुढ़ियों के विरोध में पीड़ित किया जाता है, वह राजा या न्यायाधिकारी को सूचित करता है तो इसको 'व्यवहारपद' कहते हैं।

याज्ञवल्क्य ने बीस व्यवहारपदों की गणना की है-

(1) ऋणादान (11) सीमाविवाद
(2) उपनिधि (12) वाक्पारुष्य
(3) स्वामिविक्रय (13) दण्डपारुष्य
(4) सम्भूय-समुत्थान (14) स्तेय
(5) दत्ताप्रदानिक (15) साहस

(6) वेतनादान	(16) स्त्रीसंग्रहण
(7) संविद्-व्यतिक्रम	(17) दायविभाग
(8) क्रीतानुशय	(18) द्यूतसमाह्वय
(9) विक्रीयासंप्रदान	(19) अभ्युपेत्याशुश्रूषा
(10) स्वामिपालविवाद	(20) प्रकीर्ण

'स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः।
अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः॥ (2/21)

दो स्मृतियों में विरोध होने पर व्यवहार (प्राचीन व्यवहार) से किया निर्णय बलवान् होता है। (किन्तु सार्वकालिक) व्यवस्था यह है कि अर्थशास्त्र की अपेक्षा धर्मशास्त्र बलवान् होता है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि प्रस्तुत पंक्ति में रिक्त स्थान में 'धर्मशास्त्रम्' होगा। **अतः विकल्प 'A' सही है।**

स्रोत- याज्ञवल्क्यस्मृति (श्लोक 2/21)

70. याज्ञवल्क्यस्मृत्यनुसारेण सबन्धके ऋणे मासि-मासि वृद्धिः भवति -

(A) पञ्चाशद् भागः **(B)** अशीतिभागः
(C) त्रिंशद् भागः **(D)** विंशो भागः

व्याख्या- महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा विरचित 'याज्ञवल्क्यस्मृति' स्मृति ग्रन्थ है जो तीन भागों में विभाजित है।

(1) आचाराध्याय (2) व्यवहाराध्याय (3) प्रायश्चित्ताध्याय

जिसके व्यवहार नामक भाग में ऋण एवं ऋणवृद्धि के विषय में बताया गया है।

अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सबन्धके।
वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुष्पञ्चकमन्यथा॥ (2/37)

बन्धक रखे जाने पर प्रत्येक मास में उसका अस्सीवाँ भाग ब्याज होता है। अन्य स्थिति में बन्धक न होने पर वर्णक्रम (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रम) से दो, तीन, चार और पाँच प्रतिशत वृद्धि होती है।

कान्तारगास्तु दशकं सामुद्रा विंशकं शतम् ।

जो (सूद पर धन लेकर अधिक कमाने के लिए) जंगल में चले जायें उनसे दश प्रतिशत जो समुद्र में चले जायें उनसे बीस प्रतिशत ब्याज लें।

रसस्याष्टगुणा परा।
वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणा परा॥ (2/39)

रस (तेल घृत) आदि की वृद्धि स्वीकृत वृद्धि से अधिकतम आठगुनी हो सकती है। वस्त्र, धान्य और स्वर्ण की अधिकतम वृद्धि क्रमशः चौगुनी, तिगुनी या दुगुनी हो सकती है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'वृद्धि मासे मासे अशीतिभागः' भवति। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- याज्ञवल्क्यस्मृति (श्लोक 2/37)

71. श्रीमद्भगवद्गीतायाः विश्वरूपदर्शनयोगः अस्ति -

(A) दशमेऽध्याये **(B)** एकादशेऽध्याये
(C) प्रथमाध्याये **(D)** त्रयोदशाध्याये

व्याख्या- श्रीमद्भगवद्गीता महर्षि वेदव्यास द्वारा विरचित है जो महाभारत के भीष्मपर्व से ली गयी है। यह अठारह अध्यायों में विभाजित है।

जिनमें सभी अध्यायों का नामकरण विषय वस्तु के आधार पर किया गया है। जो निम्नवत् हैं -

प्रथम अध्याय - अर्जुनविषादयोग
द्वितीय अध्याय - सांख्ययोग
तृतीय अध्याय - कर्मयोग
चतुर्थ अध्याय - ज्ञानकर्मयोग
पञ्चम अध्याय - कर्मसंन्यासयोग
षष्ठ अध्याय - दिव्ययोग
सप्तम अध्याय - ज्ञानविज्ञानयोग
अष्टम अध्याय - अक्षरब्रह्मयोग
नवम अध्याय - राजगुह्यराजविद्यायोग
दशम अध्याय - विभूतियोग
एकादश अध्याय - विश्वरूपदर्शनयोग
द्वादश अध्याय - भक्तियोग
त्रयोदश अध्याय - क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोग
चतुर्दश अध्याय - गुणत्रयविभागयोग
पञ्चदश अध्याय - पुरुषोत्तमयोग
षोडश अध्याय - दैवासुरसंग्रामयोग
सप्तदश अध्याय - श्रद्धात्रयविभागयोग
अष्टादश अध्याय - मोक्षसंन्यासयोग

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'विश्वरूपदर्शनयोग' एकादश अध्याय का नाम है। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय 11)

72. 'शतसाहस्री संहिता' इति कस्य अपरं नाम?

(A) रामायणस्य **(B)** भविष्यपुराणस्य
(C) स्कन्दपुराणस्य **(D)** महाभारतस्य

व्याख्या- ➢ **रामायण-** रामायण महर्षि वाल्मीकि की कृति है। इसमें रामकथा आद्योपान्त वर्णित है। इसमें सात काण्ड हैं -

बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड।

इसमें लगभग 24 सहस्र श्लोक हैं अतः इसे 'चतुर्विंशति-साहस्री संहिता' भी कहते हैं। यह मुख्यतः अनुष्टुप् छन्दों में है। भाव, भाषा, शैली, परिष्कार और काव्यत्व के कारण रामायण का स्थान भारतीय काव्यों में सर्वोच्च माना जाता है।

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥ (1/2/37)

➢ **महाभारत -** भारतीय लौकिक साहित्य में रामायण के पश्चात् महाभारत का ही स्थान है। इसमें चतुर्वर्ग के सभी विषय, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्रतिपादित हैं। महाभारत में स्वयं इस तथ्य का उल्लेख है।

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥
(1/62/53)

यह 18 पर्वों में विभाजित है।

(1) आदिपर्व	(10) सौप्तिकपर्व
(2) सभापर्व	(11) स्त्रीपर्व
(3) वनपर्व	(12) शान्तिपर्व
(4) विराटपर्व	(13) अनुशासनपर्व
(5) उद्योगपर्व	(14) आश्वमेधिकपर्व
(6) भीष्मपर्व	(15) आश्रमवासिकपर्व
(7) द्रोणपर्व	(16) मौसलपर्व
(8) कर्णपर्व	(17) महाप्रस्थानिकपर्व
(9) शल्यपर्व	(18) स्वर्गारोहणपर्व

महाभारत की प्रगति के तीन चरण -

जय - 8800 श्लोक

भारत - 24000 श्लोक (चतुर्विंशति साहस्री)

महाभारत - 1 लाख (शतसाहस्री)

➢ **भविष्यपुराण -** इसमें तीर्थ-माहात्म्य और भविष्यवाणियाँ हैं। इसमें चारों वर्णों के कर्तव्य, सूर्य, नागदेव एवं अग्नि की पूजा का वर्णन है। इसका परिशिष्ट भविष्योत्तरपुराण है। भविष्यपुराण में 50,000 श्लोक हैं।

➢ **स्कन्दपुराण -** इसमें 5 संहिताएँ हैं - सनत्कुमारीय, ब्राह्मी, वैष्णवी, शंकर या अगस्त्य और सौर। इनके अतिरिक्त 'काशीखण्ड' नामक 50 छोटे अध्याय हैं। इसमें वाराणसी एवं उसके समीपवर्ती मन्दिरों का वर्णन है। इसमें 81,000 श्लोक हैं।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'शतसाहस्री संहिता' महाभारत को कहा गया है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 123

73. रामायणस्य श्लोकसंख्या भवति -

(A) 31000-40000 **(B)** 22000-25000
(C) 11000-15000 **(D)** 5000-10000

व्याख्या- आदिकवि महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' आदिकाव्य है। यह सात काण्डों में विभाजित है -

(1) बालकाण्ड (2) अयोध्याकाण्ड (3) अरण्यकाण्ड
(4) किष्किन्धाकाण्ड (5) सुन्दरकाण्ड (6) युद्धकाण्ड
(7) उत्तरकाण्ड

इसमें लगभग 24000 श्लोक हैं अतः इसे 'चतुर्विंशति साहस्री संहिता' भी कहते हैं। यह मुख्यतः अनुष्टुप् छन्दों में है। गायत्री मंत्र में 24 वर्ण होते हैं, अतः यह मान्यता है कि उसको आधार मानकर 24 हजार श्लोक हैं और प्रत्येक एक सहस्र श्लोक के बाद गायत्री के नए वर्ण से नया श्लोक प्रारम्भ होता है। रामचरित का सर्वांगपूर्ण वर्णन होने के कारण यह धार्मिक ग्रन्थ एवं आचार-संहिता माना जाता है।

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रामायण में 24000 श्लोक हैं। **अतः विकल्प 'B' सही है।**

स्रोत- संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास- कपिलदेव द्विवेदी, पेज 103

74. हरिषेण विरचिते इलाहाबादशिलालेखे 'कविराज' इत्युपाधिः भवति?

(A) चन्द्रगुप्तस्य **(B)** अशोकस्य
(C) समुद्रगुप्तस्य **(D)** स्कन्दगुप्तस्य

व्याख्या- हरिषेण विरचित समुद्रगुप्त का इलाहाबाद शिलालेख अथवा प्रयाग स्तम्भ अभिलेख है।

स्थान - इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश (यह मूलतः कौशाम्बी में था जहाँ से इलाहाबाद किले में लाया गया।

भाषा - संस्कृत

लिपि - ब्राह्मी

काल - समुद्रगुप्त (लगभग 335-76 ई.)

विषय - समुद्रगुप्त का जीवनचरित

इलाहाबाद किले में अब स्थापित मूलरूप से कौशाम्बी में

स्थापित कौशाम्बी के अशोक स्तम्भ पर अशोक के लेख के नीचे ब्राह्मी लिपि में समुद्रगुप्त का यह लेख उत्कीर्ण है।

इसे महादण्डनायक ध्रुवभूति के पुत्र समुद्रगुप्त के कुमारामात्य एवं सन्धिविग्रहिक हरिषेण नामक कवि ने उत्कीर्ण कराया था।

लेख का नाम - इस स्तम्भ में समुद्रगुप्त की प्रशस्ति का उल्लेख है तथा यह प्रयाग में है। इससे इसको **'प्रयागप्रशस्ति'** कहा जाता है। चूँकि इसका लेखक 'हरिषेण' हैं इससे इसको **'हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति'** नाम से भी जाना जाता है।

* अंग्रेजी में इसको **'Allahabad Pillar Inscription'** कहते हैं।

* यह तिथिविहीन अभिलेख है इसमें समुद्रगुप्त की विजयों का आद्योपान्त उल्लेख है।

'निशितविदग्धमति- गान्धर्व्वललितैर्व्रीडित-त्रिदशपतिगुरु- तुम्बुरुनारदादेर्व्विद्वज्जनोपजीव्यानेक-काव्य-विक्रयाभिः प्रतिष्ठित-कविराज-शब्दस्य सुचिर-स्तोतव्यानेकाद्भुतोदारचरितस्य।

तीक्ष्ण एवं विदग्धमति, वाद्य एवं कण्ठ संगीत द्वारा इन्द्र, गुरु बृहस्पति, तुम्बरु तथा नारदादि को लज्जित करने वाला था, विद्वानों की जीविकार्जनोपयोगी अनेक काव्यों की रचना द्वारा 'कविराज' उपाधि को प्रतिष्ठित करने वाला था, चिरकाल तक स्तुत्य जिसके अनेक विलक्षण एवं उदार कार्य थे।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इलाहाबाद शिलालेख में समुद्रगुप्त को 'कविराज' की उपाधि दी गयी है। **अतः विकल्प 'C' सही है।**

स्रोत- भारतीय पुरालेखों का अध्ययन-शिवस्वरूप सहाय, पेज 246-251

75. अर्थशास्त्रे आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो भवति -

(A) साम **(B)** दानम्

(C) भेदः **(D)** दण्डः

व्याख्या- 'अर्थशास्त्र' आचार्य कौटिल्य द्वारा रचित है। यह पन्द्रह अधिकरणों में विभक्त है जो निम्नलिखित है -

(1) विनयाधिकारिक निरूपण	(2) अध्यक्षों का निरूपण
(3) न्याय का निरूपण	(4) कण्टकशोधन
(5) योगवृत्त निरूपण	(6) प्रकृतियों का निरूपण
(7) छह गुणों का निरूपण	(8) व्यसनों का निरूपण
(9) आक्रमण का निरूपण	(10) संग्राम का निरूपण
(11) संघवृत्त निरूपण	(12) आबलीयस का निरूपण
(13) दुर्ग प्राप्ति का निरूपण	(14) औपनिषदिक निरूपण
(15) तंत्रयुक्ति का निरूपण	

1. विनयाधिकरण - यह अधिकरण 17 प्रकरणों में विभाजित है जिसमें आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति का वर्णन है एवं उसके अन्तर्गत साम, दान, दण्ड, भेद चार प्रकार के दण्ड बताये गये हैं।

*** आन्वीक्षकी-**

सांख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षकी।

धर्माधर्मौ त्रय्यामर्थानर्थौ वार्तायां नयापनयौ दण्डनीत्याम्। बलाबले चैतासां हेतुभिरन्वीक्षमाणान्वीक्षकी लोकस्योपकरोति।

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् ।

आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षकी मता।

*** त्रयी -** एष त्रयीधर्मश्चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां च स्वधर्मस्थापना-दौपकारिकः।

साम, ऋक् तथा यजुः इन तीनों वेदों का समन्वित नाम ही त्रयी है।

*** वार्ता -** कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता। धान्यपशुहिरण्य-कुप्यविष्टिप्रदानादौपकारिकी।

कृषि, पशुपालन और व्यापार ये वार्ताविद्या के विषय हैं। यह विद्या, धान्य, पशु, हिरण्य, ताम्र आदि खनिज पदार्थ प्रदान करने से परम उपकारिणी है।

*** दण्ड -** आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः। तस्य नीतिर्दण्डनीतिः।

आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता इन सभी की सुख-समृद्धि दण्ड पर निर्भर है।

स्पष्टीकरण- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत उक्ति दण्ड के विषय में कही गयी है। **अतः विकल्प 'D' सही है।**

स्रोत- कौटिल्य अर्थशास्त्र - वाचस्पति गैरोला, पेज 12